1

विभिन्न अवस्थाओं में बालक का विकास
[Development of Child at Different Stages]

1.1 वृद्धि और विकास का संप्रत्यय, अर्थ तथा सामान्य सिद्धान्त
[Concept of Meaning and General Principles of Development]

1. वृद्धि और विकास से आपका क्या अभिप्राय है? वृद्धि और विकास का ज्ञान अध्यापक के लिए क्यों आवश्यक है?
(What do you mean by growth and development ? Why is the knowledge of growth and development essential for a teacher?)

अथवा

वृद्धि और विकास में अन्तर स्पष्ट करें।
(Differentiate between growth and development.)

अथवा

वृद्धि और विकास की संकल्पना दीजिए।
(Give the concept of growth and development.)

परिचय →
उत्तर–व्यक्ति की वृद्धि और विकास की प्रक्रिया का अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि वृद्धि और विकास के स्वरूप को जाने बिना एक अध्यापक विद्यार्थियों की सहायता नहीं कर सकता और न ही सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली निर्धारित कर सकता है। शिक्षा के मुख्य उद्देश्य 'सर्वांगीण विकास' *(All Round Development)* को प्राप्त करना भी वृद्धि और विकास के अध्ययन के अभाव में असंभव हो जाएगा। शिक्षा के इस सर्वमान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बालक की वृद्धि और उसके विकास को जानना एक अध्यापक के लिए अति आवश्यक है। अतः वृद्धि और विकास के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना अति आवश्यक है।

1. वृद्धि का अर्थ (Meaning of Growth)—वृद्धि का अर्थ आमतौर पर मानव के शरीर के विभिन्न अंगों के विकास तथा उन अंगों की कार्य करने की क्षमता का विकास माना जाता है। व्यक्ति के इन शारीरिक अंगों के विकास के परिणामस्वरूप उसका व्यवहार किसी न किसी रूप से प्रभावित होता है। इस प्रभाव के परिणामस्वरूप ही उस व्यक्ति के अंगों में परिवर्तन होता है। इस तरह वृद्धि से अभिप्राय है—शरीर, आकार और भार में वृद्धि। इस प्रकार की वृद्धि में व्यक्ति की माँसपेशियों की वृद्धि भी शामिल है। हरबर्ट सोरेन्सन *(Herbert Sorenson)* ने तो शारीरिक वृद्धि को 'बड़ा और भारी होना' बताया है, जो वृद्धि और परिवर्तनों की ओर संकेत करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

एच. वी. मैरीडिथ *(H.V. Meredith)* के अनुसार, "वृद्धि और विकास का पहला प्रमाण मानव के आकार में परिवर्तनों का आना है। दूसरा प्रमाण संख्या है। दो कोशिकाओं के मिलने से कई कोशिकाओं वाला मानव जन्म लेता है। तीसरा प्रमाण है–मानव की हड्डियों में परिवर्तन होना। चौथा प्रमाण है–हृदय, आँतड़ियों और अन्य अंगों के कोणों और स्थिति में परिवर्तन का होना। पाँचवां प्रमाण है–सापेक्षिक आकार में परिवर्तन, अर्थात् सिर टाँगों की अपेक्षा छोटा हो जाता है।" संक्षेप में, वृद्धि और विकास के पाँच प्रमाण हुए–आकार, संख्या, प्रकार, स्थिति तथा सापेक्षिक आकार *(Size, Number, Kind, Position and Relative size)*।

After definition → जैसा कि हमें मालूम है कि मानव की वृद्धि निषेचित अंड *(Fertilized Ovum)* में विभाजन के परिणामस्वरूप होती है। विभाजित निषेचित अंड ही भ्रूण *(Embryo)* बनता है तथा उसकी कोशिकाओं *(Cells)* में वृद्धि से ही मानव शरीर में वृद्धि होती है। वृद्धि तथा शारीरिक वृद्धि निरन्तर नहीं होती। इसकी गति एक जैसी नहीं होती। वृद्धि की गति में परिवर्तन आते रहते हैं। किसी विशेष समय तक वृद्धि होती रहती है तथा उसके पश्चात् यह रुक जाती है।

वृद्धि एक विशेष पद्धति *(Pattern)* पर तथा आन्तरिक रूप से होती रहती है। शिशुकाल में वृद्धि की गति बहुत तीव्र होती है, लेकिन बाद में यह धीमी हो जाती है। वृद्धि वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया से होती है।

फ्रैंक (Frank) ने वृद्धि को इस प्रकार परिभाषित किया है–'शरीर के किसी विशेष पक्ष में जो परिवर्तन आता है उसे वृद्धि कहते हैं।'

विशेषताएँ या विशेषताएँ → उपरोक्त विवरण से वृद्धि के अर्थ एवं प्रकृति को निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट कर देते हैं–

1. वृद्धि से व्यक्ति बड़ा और भारी होता है।
2. वृद्धि को मात्रा *(Quantity)* के रूप में माना जा सकता है।
3. वृद्धि की सामान्य पद्धति *(General Pattern)* होती है, न कि अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग।
4. वृद्धि निषेचित अंड में विभाजन के परिणामस्वरूप होती है।
5. वृद्धि निरन्तर नहीं होती।
6. वृद्धि की गति एक समान नहीं रहती। इसमें (गति में) परिवर्तन आते रहते हैं।
7. वृद्धि एक विशेष समय तक होती रहती है। फिर उसके बाद रुक जाती है।
8. वृद्धि आन्तरिक रूप से होती है।
9. स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा वृद्धि तीव्र होती है।
10. वृद्धि वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया से होती है।
11. शिशुकाल में वृद्धि तीव्र गति से होती है, लेकिन बाद में धीमी हो जाती है।
12. शारीरिक और मानसिक वृद्धि का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है।
13. जब कद में वृद्धि होती है तो भार कम हो जाता है।
14. स्वास्थ्य और भोजन शारीरिक और मानसिक वृद्धि को प्रभावित करते हैं।
15. शारीरिक वृद्धि को देखना मानसिक वृद्धि की अपेक्षा सरल होता है।

विकास → **2. विकास का अर्थ (Meaning of Development)**—विकास *(Development)* शब्द उन्नति से सम्बन्धित परिवर्तनों की ओर संकेत करता है और परिपक्वता *(Maturity)* की ओर अग्रसर करता है। मानव के आकार और उसकी रचना में गुणात्मक और मात्रात्मक *(Qualitative and Quantitative)* परिवर्तनों के कारण उसमें कार्य सम्बन्धी सुधार आ जाते हैं। अतः विकास परिपक्वता की ही एक प्रक्रिया है। अधिकतर शारीरिक विकास शारीरिक वृद्धि पर निर्भर करता है। वृद्धि और विकास के इस बुनियादी सम्बन्ध के कारण वृद्धि और विकास शब्दों को एक-दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है।

परिभाषाएँ → **जर्सिल्ड, टेलफोर्ड और सॉरी (Jersild, Telford and Sawrey)** के अनुसार, **"विकास शब्द का अर्थ उन जटिल प्रक्रियाओं का समूह है जिनसे निषेचित अंड से एक परिपक्व व्यक्ति का उदय होता है।"**

Scanned with OKEN Scanner

(Development refers to the complex set of processes involved in the emergence of a mature functioning organism from a fertilized ovum.)

हरलॉक (Hurlock) के अनुसार, **"विकास परतों में वृद्धि तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह परिपक्वता के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों की एक प्रगतिशील शृंखला है।"** *(Development is not limited to growing layers. Instead it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity.)*

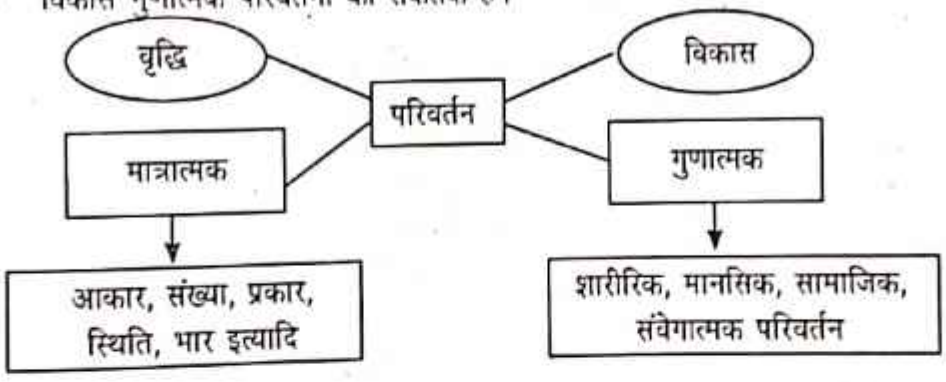
हरलॉक के अनुसार भी, विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नई विशेषताओं और नई योग्यताओं का उदय होता है।

वृद्धि की भाँति विकास की भी अपनी विशेष प्रकृति होती है। विकास की भी अपनी एक निश्चित पद्धति होती है। विकास सदा सामान्य से विशिष्ट *(General to Specific)* दिशा की ओर होता है। वृद्धि की तरह विकास रुकता नहीं। यह जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर होता ही रहता है।

वास्तव में 'विकास' शब्द का प्रयोग सभी प्रकार के परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है, जिससे व्यक्ति की कार्यक्षमता, कार्य-कुशलता और व्यवहार में प्रगति हो। इस दृष्टि से विकास का अर्थ वृद्धि की अपेक्षा व्यापक है। विकास के विस्तृत अर्थ में ही वृद्धि भी शामिल है। विकास गुणात्मक परिवर्तनों की ओर संकेत करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विकास व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में आने वाले विभिन्न परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करता है, चाहे वे परिवर्तन सामाजिक, शारीरिक, संवेगात्मक या बौद्धिक हों। सामान्यतः वृद्धि और विकास की प्रक्रियाएँ साथ-साथ ही चलती हैं।

इस प्रकार विकास की प्रकृति *(Nature)* निम्न तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है–

1. विकास की निश्चित पद्धति होती है।
2. विकास सामान्य से विशिष्ट दिशा की ओर होता है।
3. विकास रुकता नहीं, निरन्तर चलता रहता है।
4. विकास सभी प्रकार के परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करता है।
5. विकास का अर्थ अधिक व्यापक है।
6. विकास और वृद्धि की प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं।
7. विकास गुणात्मक परिवर्तनों का संकेतक है।



चित्र : वृद्धि और विकास का अर्थ

वृद्धि तथा विकास में अन्तर *(Difference between growth and Development)*

प्रायः यह देखा गया है कि वृद्धि और विकास शब्दों को एक-दूसरे का पर्यायवाची समझ लिया जाता है, जबकि यह सत्य नहीं है। दोनों शब्दों के अर्थ, प्रयोग, सिद्धान्तों, प्रकृति आदि में कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य दिखाई देता है। इन अन्तरों का अध्ययन करना अध्यापक के लिए अति आवश्यक है। वृद्धि और विकास में मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं–

Scanned with OKEN Scanner

(i) अर्थ में अन्तर (Difference in meanings)–वृद्धि का अर्थ है–शारीरिक परिवर्तन। इन शारीरिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप ही व्यवहारों में परिवर्तन आने प्रारम्भ हो जाते हैं। लेकिन विकास शब्द का प्रयोग शरीर के विभिन्न अंगों की विभिन्न दिशाओं में गुणात्मक उन्नति के बारे में किया जाता है।

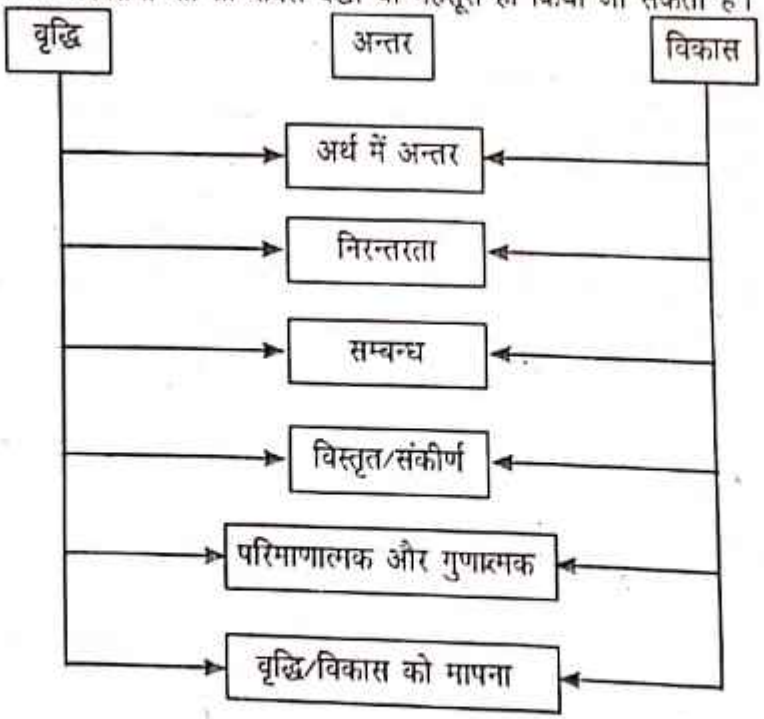
(ii) वृद्धि और विकास की निरन्तरता (Continuity of Growth and Development)–वृद्धि लगातार नहीं होती रहती और न ही यह जीवन भर चलती है। एक विशेष आयु सीमा के पश्चात् वृद्धि रुक जाती है या धीमी हो जाती है। ऐसी अवस्था को प्रौढ़ावस्था कहा जाता है। दूसरी ओर विकास की प्रक्रिया में निरन्तरता रहती है। विकास जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर चलता ही रहता है चाहे इसकी गति कैसी भी रहे। अतः विकास की प्रक्रिया कभी थमती नहीं। मनुष्य में गुणात्मक परिवर्तन आयु भर होते ही रहते हैं।

(iii) वृद्धि तथा विकास में सम्बन्ध (Relationship between Growth & Development)–वृद्धि और विकास शब्दों को एक-दूसरे का पर्यायवाची समझा जाता है। बढ़ते हुए शरीर के साथ उसकी कार्य-कुशलता भी बढ़ती है। लेकिन कई बार विकास की प्रक्रिया वृद्धि के बिना भी हो जाती है। शारीरिक रूप में कई लोग विकसित नहीं होते या 'वृद्धि' पक्ष दुर्बल रह जाता है। लेकिन विकास के अन्य पक्षों में वे समृद्ध होते हैं, जैसे बौद्धिक पक्ष, सामाजिक पक्ष या संवेगात्मक पक्ष। दूसरे शब्दों में विकास का पक्ष हावी हो जाता है। इसी प्रकार जब वृद्धि के पक्ष रुक जाते हैं तो विकास के अन्य पक्ष सक्रिय हो जाते हैं।

(iv) विस्तृत और संकीर्ण शब्द (Broader and Narrow terms)–वृद्धि शब्द संकीर्ण माना गया है, जबकि विकास एक व्यापक शब्द है। विकास शब्द में 'वृद्धि' शब्द को भी शामिल किया जाता है अर्थात् विकास के अर्थ में वृद्धि का पक्ष भी शामिल होता है। विकास के विभिन्न तत्त्वों में से एक तत्त्व 'वृद्धि' भी है।

(v) परिमाणात्मक और गुणात्मक (Quantitative and Qualitative)–'वृद्धि' परिमाणात्मक परिवर्तनों से जुड़ी हुई है, जबकि विकास का सम्बन्ध गुणात्मक परिवर्तनों से होता है।

(vi) वृद्धि और विकास को मापना (Measurement of Growth and Development)–वृद्धि का सम्बन्ध आकार, भार, ऊँचाई आदि में परिवर्तनों से होता है। इस प्रकार के परिवर्तनों को मापा जा सकता है। ऐसे परिवर्तनों को आँखों से देखा जा सकता है। लेकिन दूसरी ओर विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों को मापना बहुत ही कठिन है, बल्कि असंभव है। इन्हें मापने के लिए ऐसा कोई तरीका विकसित नहीं हुआ। विकास के परिवर्तनों को तो केवल देखा या महसूस ही किया जा सकता है।



चित्र : वृद्धि और विकास में अन्तर

Scanned with OKEN Scanner

यद्यपि वृद्धि एवं विकास दोनों में पर्याप्त भिन्नताएँ पाई जाती हैं, तथापि दोनों में कुछ समानताएँ भी हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(1) विकास एवं वृद्धि दोनों में परिवर्तन होते हैं।

(2) दोनों ही प्रत्यय *(Concepts)* मानव एवं पशु दोनों पर समान रूप से लागू होते हैं।

(3) वृद्धि एवं विकास दोनों का मापन किया जा सकता है।

(4) वृद्धि एवं विकास दोनों में ही परिपक्वता की अवस्था तक परिवर्तन पाये जाते हैं।

सारांश (Conclusion)–अतः हम कह सकते हैं कि विकास की प्रक्रिया के दौरान होने वाले परिवर्तनों का व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्त्व है। विकास की अवधि में होने वाले परिवर्तनों के कारण ही बालक विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक गुणों को प्राप्त करते हुए अपने जीवन की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान करने के योग्य हो पाता है तथा एक सफल नागरिक का रूप धारण करता है। ये सभी प्रकार के परिवर्तन धीरे-धीरे विकास को एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर स्वाभाविक रूप में होते हैं तथा साथ ही बालक की विभिन्न अवस्थाओं में समायोजन करने की क्षमता में सहायक सिद्ध होते हैं।

◆◆◆

वृद्धि तथ विकास के सामान्य सिद्धान्त
(General Principles of Growth and Development)

2. वृद्धि और विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुये विकास के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये। (Clarifying growth and development, explain about the various principles of growth and development.)

अथवा

वृद्धि और विकास को परिभाषित करें तथा वृद्धि एवं विकास के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये। (Define growth and development and discuss various principles of growth and development.)

अथवा

वृद्धि और विकास से आप क्या समझते हैं? वृद्धि एवं विकास के मुख्य सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए। (What do you understand by growth and development? Throw light on the main principles of Growth and development.)

परिचय →

उत्तर–जब एक छोटा पौधा, जो अंकुर बनकर फूटता है कुछ ही दिनों व वर्षों में पौधे या वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, फिर हम कहते हैं कि देखो इस पौधे की वृद्धि हो गई, यह पेड़ बन गया। इसी तरह माँ के गर्भ में बच्चे की जब से जीवन-लीला शुरू होती है, तब से लेकर मृत्यु तक उसमें वृद्धि और विकास की प्रक्रिया चलती रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी जीव के लिए वृद्धि व विकास बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। वैसे तो वृद्धि व विकास में चोली-दामन का सम्बन्ध है, जिन्हें अलग करना संभव नहीं है, फिर भी इनके अर्थों को व इनके बीच का अंतर समझने के लिए दोनों का अलग-अलग जानना अति आवश्यक है।

वृद्धि का अर्थ (Meaning of Growth)–'वृद्धि' शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शरीर, आकार, भार आदि में वृद्धि के सन्दर्भ में किया जाता है। इस वृद्धि में व्यक्ति की मांसपेशियों और शरीर की साधारण वृद्धि भी शामिल होती है। अतः हम कह सकते हैं कि वृद्धि की मुख्य विशेषता यह होती है कि इसे नापा, तोला व देखा जा सकता है। वृद्धि के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए फ्रैंक ने कहा है–"शरीर के किसी विशेष पहलू में जो परिवर्तन होता है, उसे वृद्धि कहते हैं।"

Scanned with OKEN Scanner

विकास का अर्थ (Meaning of Development)–बच्चे की शरीर की वृद्धि होने के साथ-साथ ही उसका मानसिक विकास भी होता रहता है अर्थात् बालक की वृद्धि के साथ-साथ उसकी विकास की प्रक्रिया भी चलती रहती है। शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास के परिणामस्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन दिखाई देते हैं और साथ ही उसमें विभिन्न प्रकार की योग्यताओं एवं शीलगुणों *(traits)* का उदय होता रहता है। बालक की बाल्यावस्था में विकास के पश्चात् उसमें विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। बाल्यावस्था में बालक में होने वाला यह विकास उसके भावी जीवन के लिए दिशा प्रदान करता है। इस प्रकार से धीरे-धीरे एक नन्हा शिशु बढ़ते-बढ़ते एक जिम्मेदार नागरिक अथवा वयस्क का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है तथा व्यक्ति के व्यवहार को जीवन भर दिशा प्रदान करती रहती है। अतः विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि प्राणी में घटित होने वाले विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों के साथ-साथ गुणों तथा विशेषताओं की नियमित और क्रमिक उत्पत्ति को मनोविज्ञान की भाषा में 'विकास' के नाम से जाना जाता है।

इंगलिश तथा इंगलिश के अनुसार–**"विकास शरीर व्यवस्था में एक लम्बे समय में होने वाले सतत् परिवर्तन का एक अनुक्रम है। विशेषतया मानव में इस प्रकार के परिवर्तन अथवा सम्बन्धित और स्थायी विशेष परिवर्तन उसके जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त होते रहते हैं।"**

हरलॉक (Hurlock) ने विकास का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है–**"विकास का तात्पर्य ऐसे प्रगतिशील परिवर्तनों से है, जो नियमित और क्रमिक रूप से होते हैं।"**

विकास के सिद्धान्त (Principles of Development)–विकास की प्रक्रिया बहुत ही विस्तृत और जटिल होने के कारण तथा इसकी निरन्तरता के कारण इसे कुछ सिद्धान्तों का अनुकरण करना पड़ता है अर्थात् विकास के कुछ सिद्धान्त हैं, जिनको जाने बिना विकास की प्रक्रिया को समझना कठिन है। विकास के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का वर्णन निम्नलिखित है–

(1) निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity)–विकास की प्रक्रिया कभी न रुकने वाली प्रक्रिया है अर्थात् यह जन्म से लेकर मृत्यु तक चलती ही रहती है। बल्कि वैज्ञानिक दृष्टि से तो विकास की प्रक्रिया माँ के गर्भ में ही शुरू हो जाती है। दो कोषों *(Cells)* अर्थात् शुक्र *(Sperm)* और अंड *(Ovum)* के निषेचन के परिणामस्वरूप बने निषेचित अंड *(Fertilized Egg or Ovum)* से जीवन लीला शुरू होती है और विभिन्न परिवर्तनों का अनुभव करते हुए यह निषेचित अंड मानव बनकर विकास के अन्य पक्षों की ओर बढ़ता है। इस प्रकार विकास की यह प्रक्रिया धीरे-धीरे तथा निरन्तर चलती रहती है। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि विकास की निरन्तरता की गति एक समान नहीं रहती। इसमें भी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। इस सिद्धान्त से यह भी स्पष्ट होता है कि व्यक्ति में आया कोई भी परिवर्तन अचानक नहीं होता। आज दिखाई देने वाला परिवर्तन निरन्तरता के सिद्धान्त का अनुकरण करते हुए कुछ समय पहले शुरू हुआ होगा।

(2) एकरूपता का सिद्धान्त (Principle of Uniform Pattern)–विकास की प्रक्रिया में एकरूपता *(Uniformity)* दिखाई देती है, चाहे व्यक्तिगत विभिन्नताएँ कितनी भी हों। लेकिन यह एकरूपता विकास के क्रम के संदर्भ में होती है। उदाहरणार्थ–बच्चों में भाषा का विकास एक निश्चित क्रम से ही होगा, चाहे ये बच्चे विश्व के किसी भी देश के हों। बच्चों का शारीरिक विकास भी एक निश्चित क्रम में होगा अर्थात्–यह विकास सिर से शुरू होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों के विकास की गति में तो अन्तर हो सकता है, लेकिन विकास के क्रम में एकरूपता होती है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि सभी बच्चों के दूध के दांत सबसे पहले टूटते हैं तथा दूसरे नम्बर में। इस प्रकार एक ही जाति के सदस्यों का विकास एक निश्चित क्रम या प्रतिमान द्वारा होता है। अतः कह सकते हैं कि

(3) वैयक्तिक भिन्नताओं का सिद्धान्त (Principle of Individual Differences)–मनोवैज्ञानिक वैयक्तिक भिन्नताओं के सिद्धान्त को बहुत महत्त्व देते हैं। चूँकि विकास प्रक्रिया को विभिन्न आयु-वर्गों में बाँटा गया है तथा हर आयु-वर्ग की अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं, जिनके कारण हर आयु-वर्ग के व्यवहारों

Scanned with OKEN Scanner

में अन्तर होता है। इन अन्तरों को हम अनदेखी नहीं कर सकते। जुड़वाँ बच्चों में भी वैयक्तिक भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। अतः सभी व्यक्तियों की वृद्धि और विकास उनकी अपनी स्वाभाविक गति से होता है। किसी व्यक्ति में कुछ विशेषताएँ या व्यवहार शीघ्र विकसित हो जाते हैं तथा कुछ व्यक्तियों में वही विशेषताएँ या व्यवहार देर से विकसित होते हैं। इस प्रकार उनमें पर्याप्त वैयक्तिक भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। सभी बालक वृद्धि और विकास के संदर्भ में समानता नहीं रखते।

(4) वंशानुक्रम और वातावरण के संयुक्त परिणाम का सिद्धान्त (Principle of joint product of Heredity & Environment)–बच्चे की वृद्धि और विकास वंशानुक्रम की और वातावरण का संयुक्त परिणाम है। विभिन्न अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि बालक की वृद्धि और विकास पर वंशानुक्रम और वातावरण का निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है। इन दोनों के प्रभाव को अलग नहीं किया जा सकता। वंशानुक्रम को बच्चे के व्यक्ति की नींव माना जाता है।

(5) समग्र विकास का सिद्धान्त (Principle of Total Development)–मनुष्य के शरीर का विकास समग्र रूप से ही होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का विकास साथ-साथ चलता रहता है। जैसे सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक विकास। ऐसा भी सत्य है कि सभी पक्ष परस्पर इस विकास पर निर्भर करते हैं तथा एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। इस दृष्टि से अध्यापक को बालक के सभी पक्षों के विकास की ओर ध्यान देना चाहिए।

(6) परिपक्वता और अधिगम का सिद्धान्त (Principle of Maturation & Learning)–वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में परिपक्वता और अधिगम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परिपक्वता से वृद्धि और विकास प्रभावित होते हैं और ये प्रभावित हुए वृद्धि और विकास बदले में सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। कोई भी बालक किसी एक कार्य को सीखने के लिए परिपक्वता ग्रहण कर लेता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि उसकी यह परिपक्वता अन्य कार्यों को करने के लिए उपयुक्त हो। अतः बच्चों में परिपक्वता के स्तर में भी भिन्नताएँ होती हैं। यही भिन्नताएँ उसकी अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई बालक किसी कार्य को सीखने के लिए अभिप्रेरित है, लेकिन उस कार्य के लिए अभी उसका भौतिक विकास पर्याप्त नहीं है तो वह बालक उस कार्य को सीखने में असमर्थ होगा और हमें उस बालक से अधिक आशाएँ रखनी भी नहीं चाहिएँ।

(7) विकास की दिशा का सिद्धान्त (Principle of Developmental Direction)–वृद्धि और विकास की अपनी ही दिशा होती है और यह दिशा निश्चित है। मानव के बच्चे का सबसे पहले 'सिर' प्रौढ़ आकार *(Adult Size)* ग्रहण करता है तथा टाँगें सबसे बाद में। भ्रूण *(Embryo)* के विकास में यह सिद्धान्त बहुत ही स्पष्ट है। इस प्रकार विकास की निम्न दिशाएँ होती हैं–

(i) सिर से पाँव की ओर (Cephalo Caudal Sequence)–मानव शिशु सिर से पाँव की ओर बढ़ता और विकसित होता है, न कि पाँव से सिर की ओर।

(ii) रीढ़ की हड्डी से बाहर की ओर (Proximodistal Sequence)–इसी प्रकार विकास का क्रम रीढ़ की हड्डी से शुरू होता है और फिर बाहरी *(Proximo-distal sequence)* विकास होना शुरू होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भ्रूणावस्था *(Embryonic stage)* में सबसे पहले सिर का विकास होता है, फिर शरीर का निचला सिरा विकसित होता है। इसी प्रकार पहले सुषुम्ना नाड़ी *(Spinal cord)* का विकास होता है, फिर हृदय, छाती आदि भागों का विकास होता है।

(iii) स्वरूप के पश्चात् क्रियाएँ (Structure Precedes Functions)–सर्वप्रथम शरीर के विभिन्न भाग विकसित होते हैं, फिर उसके पश्चात् उनका प्रयोग किया जाता है। लेकिन उन्हें किसी विशिष्ट कार्य के लिए प्रयोग करने से पहले इनकी माँसपेशियों का विकास हो जाना चाहिए।

(8) वृद्धि और विकास की गति की दर में भिन्नता का सिद्धान्त (Principle of Variation in the rate of Growth and Development)–व्यक्ति की वृद्धि और विकास की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। उन सभी अवस्थाओं के दौरान वृद्धि और विकास की गति की दर में भी भिन्नताएँ होती हैं। उन

Scanned with OKEN Scanner

अवस्थाओं के दौरान विकास की गति-दर एक समान नहीं होती। प्रारम्भिक अवस्थाओं में यह गति तीव्र होती है, लेकिन बाद में वह गति धीमी पड़ जाती है। प्रारम्भिक अवस्थाओं में शारीरिक वृद्धि और विकास की दर तीव्र होती है, लेकिन बाद में भी धीमी हो जाती है। फिर एक ऐसी अवस्था आ पहुँचती है कि शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। लेकिन तब गुणात्मक विकास होता रहता है।

(9) विकास की भविष्यवाणी का सिद्धान्त (Principle of Predictability of Development) –अब अनुसंधान से यह भी स्पष्ट हो चुका है कि विकास की भविष्यवाणी करना अब संभव है। उदाहरणार्थ बालक के सम्मान, रुचियाँ, अभिरुचियाँ, वृद्धि इत्यादि।

(10) सामान्य से विशिष्ट की ओर विकास का सिद्धान्त (Principle of Development from General to Specific)–इस सिद्धान्त के अनुसार बालक पहले सामान्य व्यवहार सीखता है, फिर धीरे-धीरे यह सामान्य व्यवहार विशिष्टता *(Specificity)* की ओर बढ़ता है। उदाहरणार्थ, सबसे पहले बच्चा किसी वस्तु को पकड़ने का प्रयास करता है तो वह अपने हाथ इधर-उधर मारने का प्रयास करता है। लेकिन धीरे-धीरे वह समय के साथ विशिष्टता की ओर बढ़ता है। इसके परिणामस्वरूप वह उसी वस्तु पर हाथ डालता है, जिसे वह उठाना चाहता है। इसी प्रकार बालक पहले सामान्य शब्द सीखता है, फिर विशिष्ट अक्षरों को। पहले बच्चा सभी पक्षियों को चिड़िया कहकर ही सम्बोधित करता है, लेकिन समय के साथ-साथ वह विभिन्न पक्षियों के नाम सीख लेता है तथा उनके नामों से उन्हें पुकारना शुरू कर देता है।

(11) एकीकरण का सिद्धान्त (Principle of Integration)–इस सिद्धान्त के अनुसार पहले बच्चा सम्पूर्ण अंग को और फिर उसके विशिष्ट भागों को प्रयोग करना या चलाना सीखता है। फिर उन भागों का एकीकरण करना सीखता है। उदाहरणार्थ, पहले बच्चे पूरे हाथ को हिलाता है, फिर धीरे-धीरे हाथ को और उसकी उँगलियों को हिलाने का प्रयास करता है।

(12) विकास की संचिता और पुनरावृत्ति का सिद्धान्त (Principle of Cumulation and Recapitulation)–विकास अनुभवों का कुल योग होता है, न कि केवल किसी एक ही अनुभव पर आधारित। विकास पुनरावृत्ति वाला इसलिए होता है, क्योंकि विकास की प्रत्येक अवस्था की विशेषताओं की आवृत्ति दूसरी अवस्था में भी देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ, बचपन का प्रेम किशोरावस्था में भी देखा जा सकता है।

(13) मूर्त से अमूर्त की ओर सोचने का सिद्धान्त (Principle to think from Concrete to Abstract)–मानसिक विकास भौतिक रूप से उपस्थित वस्तुओं के बारे में चिन्तन करने की योग्यता से उन वस्तुओं को देखने के सिद्धान्त का अनुकरण करता है, जो अमूर्त रूप में होती हैं। बालक प्रभाव और कारण *(Cause and effect)* को समझने का प्रयास करता है।

(14) बाहरी नियंत्रण से आन्तरिक नियंत्रण का सिद्धान्त (Principle of outer Control to Inner Control)–छोटे बच्चे मूल्यों और सिद्धान्तों के लिए दूसरों पर निर्भर करते हैं, जैसे ही वे बड़े होते हैं, उनकी स्वयं की मूल्य प्रणाली, स्वयं की आत्मा तथा उनका स्वयं का आन्तरिक नियंत्रण का समूह या सैट विकसित हो जाता है।

(15) विकास में विभेदीकरण तथा एकीकरण की प्रक्रिया होती है (Process of Differentiation and Integration in Development)–शिशु के रूप में व्यक्ति की क्रियाएँ ठोस अर्थात् एकीकृत होती हैं। इन क्रियाओं द्वारा व्यवहार के सामान्य, विशिष्ट एवं समन्वित प्रतिमान उत्पन्न होते हैं। विशिष्ट प्रतिमान नए और जटिल व्यवहार को सीखने के लिए पुनः एकीकृत होते हैं। विकास के दो सामान्य नियम होते हैं–प्रथम, विभेदीकरण *(Differentiation)* तथा द्वितीय, श्रेणीबद्ध एकीकरण *(Hierarchic Integration)* ये दोनों, नियम परस्पर निकट सम्बन्ध रखते हैं। बच्चों का शारीरिक विकास उनके नियन्त्रण की मात्रा में सुधार होना तथा क्रियात्मक कार्यों में विशिष्टता को दर्शाता है। शिशु शीघ्र क्रियात्मक समन्वय की अभिव्यक्ति करना शुरू कर देते हैं। पहले वे भुजाओं की क्रियाओं पर नियन्त्रण दिखाते हैं, फिर हाथ की क्रियाओं तथा अन्त में अंगुलियों की क्रियाओं का पूर्ण नियन्त्रण दिखाते हैं।यह नियन्त्रण बच्चों की शारीरिक क्रियाओं

Scanned with OKEN Scanner

में विभेदीकरण कहलाता है। अनेक व्यक्तिगत क्रियाएँ जिनमें, बच्चा प्रवीणता प्राप्त कर लेता है, व्यवहार के अधिक जटिल एवं परिष्कृत प्रतिमानों के रूप में एकीकृत कर ली जाती है। वरनर *(Werner)* ने इस प्रक्रिया को श्रेणीवद्ध-एकीकरण *(Hierarchic Integration)* इस प्रक्रिया का अर्थ है कि बच्चे के नए सीखे गए क्रियात्मक कौशल के अलग-अलग भागों को क्रियात्मक व्यवहार की पूर्ण इकाई के रूप में अधिकाधिक संगत *(Coherent)* ढंग से एकीकृत किया जाता है। उदाहरणार्थ, बच्चे द्वारा भुजाओं, टांगों एवं गर्दन की गति-विधियों पर पूर्णरूपेण नियन्त्रण करने (विभेदीकरण) के पश्चात् व इन विभेदी क्रियाओं में एकत्रित करता है, जिसके फलस्वरूप अधिक जटिल एकीकृत व्यवहार उत्पन्न होता है, जैसे बच्चे द्वारा बिना सहारे के बैठना (श्रेणीवद्ध एकीकरण)। इसी प्रकार हम देखते हैं कि बच्चा प्रारम्भ में खसना खाते समय हाथों तथा चम्मच का अभद्र रूप से प्रयोग करता है तथा खाने का कुछ भाग नीचे भी डाल देता है (विभेदीकरण)। परन्तु धीरे-धीरे वह पूर्ण दक्षता के साथ अंगुलियों या चम्मच की सहायता के बिना नीचे बिखेरते हुए खाना शुरू करता है तथा साथ-साथ बातें भी करता है या समाचार-पत्र पढ़ सकता है। यह 'एकीकरण' कहलाता है यह प्रक्रिया विकास के प्रत्येक पहलू में देखी जा सकती है, जैसे अंकों व अक्षरों को सीखा जाना, फिर साधारण प्रश्न एवं पंक्ति याद की जाती है तथा पूर्ण विकास के बाद जटिलतम समस्याओं का भी समाधान कर लिया जाता है। इस प्रकार, विकास प्रक्रिया में 'विभेदीकरण' एवं 'एकीकरण' की प्रक्रिया निरन्तर बनी रहती है।

विकास प्रतिमानों की भविष्यवाणी भी की जा सकती है। मुख्य रूप से वृद्धि, स्मृति तथा शारीरिक विकास की गति के आधार पर बच्चों की लम्बाई व आकार एवं बौद्धिक कार्यों के विकास का पूर्व कथन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक विकास अवस्था के कुछ स्वभाविक अथवा कुछ विशिष्ट गुण होते हैं जो अन्य आयु स्तर के विकास प्रतिमानों में नहीं पाए जाते हैं; उदाहरणार्थ; बाल्यावस्था में यही बच्चे विपरीत यौन के व्यक्तियों में अधिक रुचि प्रदर्शित करते हैं–

विकास के सिद्धान्त

1. → निरन्तरता का सिद्धान्त
2. → एकरूपता का सिद्धान्त
3. → वैयक्तिक भिन्नताओं का सिद्धान्त
4. → वंशानुक्रम और वातावरण का सिद्धान्त
5. → समग्र विकास का सिद्धान्त
6. → परिपक्वता और अधिगम का सिद्धान्त
7. → विकास की दिशा का सिद्धान्त
8. → वृद्धि-विकास गति दर में भिन्नता का सिद्धान्त
9. → विकास की भविष्यवाणी का सिद्धान्त
10. → सामान्य से विशिष्ट की ओर विकास का सिद्धान्त
11. → एकीकरण का सिद्धान्त
12. → विकास की संचित और पुनरावृत्ति का सिद्धान्त
13. → मूर्त से अमूर्त की ओर सोचने का सिद्धान्त
14. → बाहरी से आन्तरिक नियंत्रण का सिद्धान्त
15. → विकास में एकीकरण तथा विभेदीकरण की प्रक्रिया

चित्र : विकास के सिद्धान्त

वृद्धि तथा विकास के नियमों का शिक्षा में महत्त्व (Educational Significance of the Principles of Growth and Development)—विकास के सिद्धान्तों का शिक्षा में बहुत महत्त्व है। ये सिद्धान्त शिक्षकों के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

ये सिद्धान्त एक अध्यापक को अपने विद्यार्थियों को समझने में बहुत सहायता करते हैं। इन सिद्धान्तों का शैक्षणिक दृष्टि से उपयोग निम्नलिखित प्रकार से है–

1. विकास के सिद्धान्तों के ज्ञान से एक अध्यापक यह जान सकता है कि बच्चे को कब तथा किस तरह से उत्साहित करें, ताकि उसका सर्वांगीण विकास हो सके।
2. इन नियमों की सहायता से अध्यापक को बालक के स्तर के बारे में भी ज्ञान प्राप्त होता है।
3. इन सिद्धान्तों के माध्यम से अध्यापक बालकों के व्यक्तिगत-अन्तरों को पहचान उनको उसी ढंग से शिक्षा प्रदान कर उसके विकास को बढ़ाता है।
4. विकास के सिद्धान्तों के आधार पर एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों की शैक्षणिक जरूरतों *(Needs)* को समझ सकता है।
5. ये नियम अध्यापक को पाठ योजना *(Lesson Plan)* बनाने में भी सहायता करते हैं।
6. वृद्धि तथा विकास के नियम अध्यापक को ज्ञान प्रदान करते हैं कि किस स्तर पर बच्चे से क्या आशा की जा सकती है।
7. वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों मिलकर बालक की वृद्धि और विकास का आधार बनते हैं। वंशानुक्रम को नियंत्रण में नहीं रख सकते, परन्तु ठीक वातावरण प्रदान कर सकते हैं। इस बात का ज्ञान हमें वातावरण में आवश्यक सुधार लाकर बालक को उनका अधिक कल्याण करने के लिए प्रेरित करता है।
8. वृद्धि और विकास के सिद्धान्तों का ज्ञान यह बताता है कि बच्चे को कब तथा किस प्रकार से उत्साहित करें ताकि उसका पूर्ण विकास हो सके।
9. वृद्धि तथा विकास के सिद्धान्त अध्यापक को पाठ्यक्रम।
10. इन सिद्धान्तों का ज्ञान अध्यापक को यह बताता है कि बालक को पूर्ण रूप से अध्ययन करना चाहिए न कि भागों में।
11. ये अध्यापक को बालकों के व्यक्तिगत अन्तरों को समझकर उचित कार्यक्रम देने में सहायता करते हैं।
12. वृद्धि और विकास की सभी दिशाएँ एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। विकास की किसी एक दिशा पर ध्यान न देने से दूसरे सभी पहलुओं में हो रहे विकास में रुकावट पड़ सकती है।

इस बात का ज्ञान हमें बच्चों के सर्वांगीण विकास पर बल देने के लिए प्रेरित करता है।

◆◆◆

विकास की अवस्थाएँ
(Stages of Development)

1. विकास से आपका क्या अभिप्राय है? बाल विकास की विभिन्न अवस्थाएँ कौन-कौन सी हैं? विवेचना कीजिये।

अथवा

विकास का क्या अर्थ है? बाल-विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिये।

अथवा

विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुये बालकों के विकास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं का वर्णन कीजिये।

उत्तर–विभिन्न मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि विकास भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को लांघने वाली एक प्रक्रिया है। बच्चों के सम्बन्ध में किये गये विभिन्न प्रकार के अध्ययनों से भी यह स्पष्ट होता है कि भिन्न-भिन्न आयु में बच्चों में विशिष्ट प्रकार के विकास होते हैं। यही कारण है कि एक विशेष अवस्था में होने वाले विकास को हम इस अवस्था से पहले और बाद की अवस्थाओं में होने वाले विकास से अलग

Scanned with OKEN Scanner

कर सकते हैं। विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशिष्ट व्यवहार शैली होती है। हालांकि यह सत्य है कि विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं के बीच कोई ऐसी निश्चित रेखा नहीं है, जो इनको एक-दूसरे से अलग कर सकती है। फिर भी बच्चों के बारे में किये गये विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह पता चलता है कि बच्चों की विकास प्रणाली को विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं में बांटा जा सकता है। विकासात्मक अवस्थाओं की शुरूआत गर्भधारण के समय से शुरू होती है तथा व्यक्ति जब तक परिवक्वावस्था को प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक चलती रहती है तथा विकास की गति इन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में मन्द या तीव्र बनी रहती है। मुख्य रूप से बच्चों की विकासात्मक प्रणाली की **निम्नलिखित बहुत सी अवस्थायें** पाई जाती हैं, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार का विकास बच्चे की उम्र विशेष में दिखाई देता है।

विकास की विभिन्न अवस्थायें (Different Stages of Development)–व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। अलग-अलग विद्वानों ने विकास की विभिन्न अवस्थाओं के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार प्रकट किये हैं। विकास की विभिन्न अवस्थाओं के वर्गीकरण के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण विद्वानों के विचार इस प्रकार से हैं–

(1) **रॉस** ने विकास की प्रमुख रूप से चार **निम्नलिखित अवस्थायें** बतलायी हैं–
- *(i)* शैशवास्था–1 से 3 वर्ष तक
- *(ii)* प्रारंभिक बाल्यवस्था–3 से 6 वर्ष तक
- *(iii)* उत्तर बाल्यावस्था–6 से 12 वर्ष तक
- *(iv)* किशोरावस्था–12 से 18 वर्ष तक

(2) **शैले (Shelly)** ने विकास की प्रक्रिया को **निम्नलिखित अवस्थाओं** में बांटा है–
- *(i)* शैशवास्था *(Infancy)*–जन्म से लेकर 5 वर्ष तक
- *(ii)* बाल्यावस्था *(Child hood)*–6 से लेकर 12 वर्ष तक
- *(iii)* किशोरावस्था *(Adolescence)*–12 से लेकर 18 वर्ष तक

(3) **कालसनिक (Kolosnic)** ने विकास की प्रक्रिया का निम्नलिखित प्रकार से **वर्गीकरण** किया
- *(i)* गर्भाधान से लेकर जन्म समय तक–पूर्व जन्म काल *(Prenatel Period)*
- *(ii)* नवशैशव *(Neonatal)*–जन्म से लेकर 3 या 4 सप्ताह तक।
- *(iii)* आरंभिक शैशव *(Early infancy)*–1 से लेकर 15 महीने तक।
- *(iv)* अंतर शैशव *(Late infancy)*–15 से लेकर 30 महीने तक।
- *(v)* पूर्व बाल्यावस्था *(Early childhood)*–2 से लेकर 5 वर्ष तक।
- *(vi)* मध्य बाल्यावस्था *(Middle childhood)*–6 से लेकर 12 वर्ष तक।
- *(vii)*किशोरावस्था *(Adolescence)*–12 से लेकर 21 वर्ष तक।

(4) **ई. बी हरलॉक (E.B. Hurlock)** ने विकास की अवस्थाएँ निम्न प्रकार से दी हैं–
- *(i)* **जन्म-पूर्व की अवस्था (Pre-natal stage)**–गर्भाधान से जन्म तक का समय अर्थात् 280 दिन।
- *(ii)* **शैशवावस्था (Infancy stage)**–जन्म से लेकर 2 सप्ताह।
- *(iii)* **शिशुकाल (Babyhood)**–2 वर्ष तक।
- *(iv)* **बाल्यकाल (Childhood)**–2 से 11 या 12 वर्ष तक।
  - *(a)* पूर्व बाल्यकाल *(Early Childhood)*–6 वर्ष तक।
  - *(b)* उत्तर बाल्यकाल *(Later Childhood)*–7 से 12 वर्ष तक।
- *(v)* **किशोरावस्था (Adolescence)**–11 से 13 वर्ष से लेकर 20-21 वर्ष तक की अवधि।
  - *(a)* **प्राक्किशोरावस्था (Pre-adolescence)**–लड़कियों में 11-13 वर्ष तक। लड़कों में एक वर्ष पश्चात्।

Scanned with OKEN Scanner

(b) पूर्व-किशोरावस्था (Early Adolescence)–16-17 वर्ष तक।

(c) उत्तर-किशोरावस्था (Later Adolescence)–20-21 वर्ष तक।

(5) रूच (Ruch) ने जन्म से पूर्व *(Pre-natal)* की अवस्था में निम्नलिखित विकासों के क्रम की चर्चा की है–

(a) भ्रूणिक काल (Germinal Period)–इसका समय 0 से दो सप्ताह तक का होता है। इस काल में निषेचित अंड *(Fertilized Ovum)* कोष-विभाजन *(Cell-Division)* द्वारा विकसित होता है।

(b) भ्रूणीय अवस्था (Ebryonic Stage)–2 से 10 सप्ताह तक वह अवस्था होती है। इस अवस्था में शरीर के विभिन्न अंग अपना स्वरूप ग्रहण करना शुरू कर देते हैं।

(c) भ्रूण अवस्था (Foetal Stage)–10 सप्ताह से जन्म तक का समय इस अवस्था के अन्तर्गत जाता है।

(6) डा. सी. एल कुंडु एवं डॉ. एन. टुटु (Dr. C. L. Kundu and D.N. Tutoo)–ने अपनी पुस्तक शिक्षा-मनोविज्ञान में विकास की अवस्थाएँ निम्न प्रकार से दी हैं–

(1) जन्म से पूर्व की अवस्था *(Pre-natal)*–0 से 250 या 300 दिनों तक अंड *(Ovum)* –0 से 2 सप्ताह।
भ्रूणीय *(Ebryo)*–2 से 10 सप्ताह।
भ्रूण *(Foetus)*–10 सप्ताह से जन्म तक।

(2) नवजात अवस्था *(Neonate Stage)*–जन्म के बाद के प्रथम दो सप्ताह तक का जीवन काल।

(3) शैशव *(Infancy)*–जन्म के बाद प्रथम दो वर्ष।

(4) पूर्व-बाल्यकाल *(Early Childhood)*–2 से 6 वर्ष।

(5) मध्य-बाल्यकाल *(Middle Childhood)*–6 से 10 वर्ष।

(6) उत्तर-बाल्यकाल *(Late Childhood)*–10 से 13 वर्ष तक।

(7) यौवानांरभ *(Puberty)*–लड़कियों में 12 वर्ष से लड़कों में 14 वर्ष से।

(8) पूर्व-किशोरावस्था *(Early Adolescence)*–13 से 15 वर्ष।

(9) उत्तर-किशोरावस्था *(Later Adolescence)*–15 से 20 वर्ष।

(10) प्रौढ़ावस्था *(Adult hood)* और वृद्धावस्था *(Old age)*–20 वर्ष से अन्त तक।

उपरोक्त वर्गीकरणों को ध्यान में रखते हुए विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

(1) जन्म से पहले की अवस्था *(Prenatal Period)*

(2) शैशवावस्था *(Infancy)*

(3) पूर्व बाल्यावस्था *(Early childood)*

(4) उत्तर बाल्यावस्था *(Late childhood)*

(5) किशोरावस्था *(Adolescence)*

(6) प्रौढ़ावस्था *(Adulthood)*

(1) जन्म से पूर्व की अवस्था (Prenatal Period)–विकास की यह अवस्था गर्भधारण से लेकर बालक के जन्म लेने तक की अवस्था है। माता के रजकण डिम्ब *(Ovum)* तथा पिता के शुक्राणु *(Sperm)* की जैसे ही निषेचन क्रिया होती है वैसे ही भ्रूण का विकास प्रारंभ हो जाता है। इस अवस्था में भ्रूण नौ महीने तक तेज गति से माता के गर्भ में विकसित होता रहता है। इस अवस्था के सूक्ष्म निषेचित कोष को नंगी आंखों से नहीं देखा जा सकता। बाद में यह सूक्ष्म निषेचित कोष पूर्ण विकसित बच्चे का रूप धारण कर लेता है।

Scanned with OKEN Scanner

विकास की इस अवस्था को मुख्य रूप में **तीन निम्नलिखित श्रेणियों** में बांटा जा सकता है–

(i) **डिम्ब-अवस्था (The Period of ovum)**–इस अवस्था को 'बीजावस्था' भी कहते हैं। डिम्ब अवस्था की अवधि गर्भधारण से लेकर दो सप्ताह तक होती है।

(ii) **भ्रूण-अवस्था (The Period of embryo)**–यह अवस्था दो से लेकर आठ महीने तक होती है। इस अवस्था में जीव भ्रूण कहलाता है। इस अवधि में भ्रूण में अनेक प्रकार के वाह्य तथा आंतरिक अंगों का विकास होता है। दो महीने के अंत तक भ्रूण की आकृति मानव का रूप धारण कर लेती है।

(iii) **गर्भस्थ-शिशु अवस्था (The Period fo foctus)**–विकास की यह अवस्था आठ सप्ताह से लेकर जन्म काल तक की होती है। इस अवस्था के अंतर्गत भ्रूण अवस्था में जिन वाह्य व आंतरिक अंगों का विकास होता है, वह निरंतर चलता रहता है तथा जीव की सभी ज्ञानेन्द्रियों का विकास भी इसी अवस्था में शुरू हो जाता है।

(2) **शैशवावस्था (Infancy)**–शैशवास्था भावी जीवन-संरचना की आधारशिला होती है। व्यक्ति की अभिवृद्धि तथा विकास में शैशवावस्था का निर्णायक महत्त्व होता है।

गुडेनफ के शब्दों में–**"व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है, उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है।"**

ऐडलर के मत से–**"बालक के जन्म के कुछ माह बाद ही यह निश्चित किया जा सकता है कि जीवन में उसका क्या स्थान है।"**

स्ट्रांग के अनुसार–**"जीवन के प्रथम दो वर्षों में बालक अपने भावी जीवन का शिलान्यास करता है। यद्यपि किसी आयु में उसमें परिवर्तन हो सकता है, पर प्रारम्भिक प्रवृत्तियाँ एवं प्रतिमान सदैव बने रहते हैं।"**

यह अवस्था बालक के जन्म से लेकर दो वर्ष तक चलती है। जन्म के बाद पहले दो सप्ताह तक शिशु अपने बाहरी वातावरण के साथ पूर्ण रूप से समायोजन स्थापित कर लेता है। इस अवधि के अंतर्गत विकास की गति बहुत कम होती है। दो सप्ताह के पश्चात् शिशु के विकास की प्रक्रिया बहुत अधिक तीव्र हो जाती है। इस अवधि में बालकों में संवेदी तथा मांसपेशीय कौशलों का विकास होता जाता है। दूसरे वर्ष के अंत तक बच्चों में पर्याप्त मात्रा में क्रियात्मक कौशलों का विकास होता जाता है। इस अवस्था के दौरान बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित रहता है। परिणामस्वरूप वह स्वयं उठने, बैठने, खेलने, चलने जैसी क्रियायें करना शुरू कर देता है।

(3) **पूर्व-बाल्यावस्था (Early childhood)**–विकास की यह अवस्था 2 वर्ष से लेकर 6 या 7 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में बालक का विकास शैशवावस्था की भांति तीव्रता से नहीं होता है। पूर्व बाल्यवस्था में बालक बोलने सम्बन्धी कौशलों तथा अन्य क्रियात्मक कौशलों जैसे–गेंद फेंकना, चलना, दौड़ना और ठोकर मारना आदि क्रियायें सीख जाता है। तीन वर्ष की आयु में बालक वयस्कों की भाषा का प्रयोग करना सीख जाता है व लगभग समायोजन करना भी सीख जाता है। इस अवस्था में बालक प्रश्न पूछना एवं उत्तर देना भी सीख जाता है।

(4) **उत्तर-बाल्यावस्था (Late childhood)**–यह अवस्था 6-7 वर्ष से लेकर 10-11 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में बालकों में पूर्ण आत्मविश्वास व विभिन्न कौशलों का विकास होता है। विकास के इस अवस्था की मुख्य विशेषता बालक का समाजीकरण है। इस अवस्था में बालक विद्यालय जाना प्रारंभ कर देता है और अपने संगी साथियों के साथ रहकर जीवन की वास्तविकताओं से परिचित होने लगता है। बालक की संगी साथियों के साथ विशेष लगाव होने के कारण इस अवस्था में बालक में सुझाव ग्रहणशीलता, अधिक पाई जाती है। इस अवस्था के अंतर्गत बालक पढ़ना, लिखना तथा अपने साथियों के साथ प्यार व प्रतियोगिता की भावना को ग्रहण करना सीख लेता है।

Scanned with OKEN Scanner

(5) किशोरावस्था (Adolescence)–किशोरावस्था अर्थात् *'Adolescence'* का अर्थ है *(To grow maturity)* अर्थात् "परिपक्वता की ओर बढ़ना।" यह अवस्था 11-12 वर्ष से लेकर 21 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था की शुरूआत वयःसन्धि अवस्था *(Puberty Period)* से आरंभ हो जाती है। विकास की इस अवस्था में बालकों में विकास बहुत तीव्र गति से होता है। लड़कों की आवाज भारी हो जाती है एवं प्रजनन संस्थान *(Reproductive system)* में भी तेजी से परिपक्वता आ जाती है। विकास की इस अवस्था में किशोर एवं किशोरियों में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण बढ़ जाता है। तथा तीव्र परिवर्तनों के कारण उनके मन में काफी तनाव उत्पन्न हो जाता है और उनमें संवेदनशीलता काफी बढ़ जाती है। इस अवस्था में माता-पिता का सफल व सही निर्देशन किशोर के भावी जीवन के निर्धारण की नींव का काम करता है। किशोरावस्था की मुख्य विशेषता किशोरों में पहचान पाने की इच्छा *(Identity crists)* का उत्पन्न होना। विकास की यह अवस्था किशोरों की सबसे नाजुक अवस्था है। इसं अवस्था के दौरान किशोरों में तर्कशक्ति तथा चिंतन शक्ति का विकास हो जाता है।

(6) प्रौढ़ावस्था (Adulthood)–विकास की यह अवस्था 12 वर्ष से लेकर 40 वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था तक पहुंचते-पहुंचते व्यक्ति पूर्ण रूप से परिपक्वता को प्राप्त कर लेता है। व्यक्तियों में परिपक्वता को प्राप्त करने में वैयक्तिक विभन्नता पाई जाती है अर्थात् कुछ व्यक्ति पूर्ण रूप से परिपक्वता को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं कुछ देर से। प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति पर भिन्न प्रकार की जिम्मेदारियों, कर्तव्यों तथा उपलब्धियों को प्राप्त करने का भार बढ़ जाता है। जिन व्यक्तियों को अपने माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्यों से संपूर्ण स्नेह व प्रेम मिलता है, वे विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्वों व कर्तव्यों का निर्वाह अच्छी प्रकार से कर पाते हैं। जबकि पर्याप्त स्नेह व प्रेम से वंचित रहने वाले व्यक्तियों का अपने जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो जाता है।

अतः उपरोक्त अवस्थाओं के वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विकास एक निरंतर व सतत् चलने वाली प्रक्रिया जो जीवन भर चलती रहती है।

नैतिक व्यवहार की प्रकृति हमेशा स्थिर नहीं होती है, बल्कि परिवर्तित होती रहती है। नैतिकता का सम्बन्ध एक समय विशेष की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों से होता है। उदाहरण के लिए–यदि कोई व्यक्ति किसी निर्दोष व्यक्ति को बचाने के लिये झूठ का सहारा लेता है तो उसका यह व्यवहार अनैतिक नहीं है, बल्कि परिस्थिति को देखते हुए व्यहार उचित और व्यावहारिक है। इसीलिए जार्ज गुरविच ने नैतिकता के सम्बन्ध में कहा है कि–"नैतिकता अत्यधिक गतिशील, रचनात्मक तथा रूढ़िवादी तत्त्वों का विरोध करने वाली होती है।"

नैतिक मूल्यों के आधार पर ही व्यक्ति समाज के साथ अपने सम्बन्धों को समझ पाता है। अन्य शब्दों में नैतिक मूल्य सामान्यीकृत निर्देशक के समान हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति मानवता के आधार पर अपने सम्बन्धों की परख व स्वायत्तता के बारे में विचार करता है। नैतिक मूल्यों के अंतर्गत कुछ मौलिक नैतिक गुण जैसे–सत्यता, ईमानदारी, निष्ठा, दयालुता, आदरपूर्ण व्यवहार के प्रतिपादन नियम तथा अन्य संस्कृति व उप संस्कृतियों से सम्बन्धित सामुदायिक मूल्य सम्मिलित होते हैं। अपने दैनिक जीवन में व्यक्ति जिस तरह से इन नैतिक मूल्यों को व्यवहार में लाता है, उसी के आधार पर उसके चरित्र के बारे में अनुमान लगाया जाता है कि व्यक्ति का चरित्र अच्छा है या बुरा।

Scanned with OKEN Scanner

बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक विभिन्न चरणों में वृद्धि तथा विकास (Growth and Development Across Various Stages from Infancy to Adolescence)

I. शारीरिक विकास (Physical Development)

1. शारीरिक विकास का क्या अर्थ है? शारीरिक विकास की मुख्य विशेषताओं तथा विकास की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान होने वाले शारीरिक विकास की विवेचना कीजिये।

अथवा

शारीरिक विकास किसे कहते हैं? शारीरिक विकास की मुख्य विशेषताओं तथा विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालकों के होने वाले शारीरिक-विकास का उल्लेख कीजिये।

अथवा

शारीरिक विकास से आप क्या समझते हैं? शारीरिक विकास की मुख्य विशेषताओं तथा विकास की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान बालकों का शारीरिक विकास कैसे होता है? स्पष्ट करें।

उत्तर–शारीरिक विकास का अर्थ (Meaning of Physical Development)–नवजात शिशु पर्याप्त पोषण व उपयुक्त देखभाल के फलस्वरूप ऊँचाई व भार में उस समय तक बढ़ता रहता है, जब तक शारीरिक विकास परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त नहीं हो जाता। शारीरिक विकास जन्म से पूर्व गर्भधारण काल से ही प्रारंभ हो जाता है। गर्भकालीन अवस्था में शारीरिक विकास अत्यधिक तीव्र गति से होता है। एक सूक्ष्म जीव कोष नौ महीने के अंदर (जन्म के समय) एक मानव शिशु बन जाता है। जन्म के पश्चात् भी विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं के अंतर्गत शारीरिक विकास निरंतर होता रहता है। लगभग बीस साल में बालक पूर्ण वयस्क शरीर प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् केवल शारीरिक भार में अंतर होता रहता है।

शारीरिक विकास से तात्पर्य, सामान्य शारीरिक रचना, शरीर की ऊंचाई, भार, शारीरिक अवयवों का अनुपात, आंतरिक अंगों, हड्डियों तथा मांसपेशियों का विकास, स्नायु मंडल तथा मस्तिष्क तथा अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ के विकास से है। इनमें से किसी भी एक अंग के विकास के कुंठित हो जाने से बालक के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही प्रभाव नहीं पड़ता, वरन् उसका मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, क्रियात्मक विकास आदि भी प्रभावित होता है, क्योंकि बालक का शारीरिक विकास उसके अन्य सभी प्रकार के विकासों के साथ किसी न किसी रूप में सम्बन्धित होता है और इसी पर बालक का बौद्धिक, व्यावहारिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक समायोजन निर्भर करता है।

बालक का शारीरिक विकास शरीर के निम्नलिखित चार क्षेत्रों को प्रभावित करता है–

(1) स्नायुमंडल का विकास (Growth of Nervous System)–स्नायु मंडल के विकास के साथ संवेगों तथा बुद्धि का विकास होता है। बालक के व्यवहार संवेगों अथवा बुद्धि द्वारा संचालित होते हैं। संवेगात्मक स्थिरता तथा बौद्धिक प्रगति के कारण बालक के व्यवहार संयत तथा संतुलित होने लगते हैं।

(2) मांसपेशियों में अभिवृद्धि (Growth in Muscles)–मांसपेशियों में अभिवृद्धि के साथ बालक में अपने अंगों पर नियंत्रण करने की शक्ति आ जाती है। गामक विकास *(Motor Development)* के साथ बालक की क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है तथा उसके कार्यकाल व्यवस्थित होने लगते हैं।

(3) अंतःस्रावी-ग्रंथियों का विकास (Growth of Endocrine Glands)–अंतःस्रावी ग्रंथियों के उचित विकास तथा उनकी सक्रियता द्वारा बालक का शारीरिक विकास प्रभावित होता है।

(4) शारीरिक ढांचे में विकास (Growth in Physical Structure)–शारीरिक ढांचे में विकास का अर्थ बालक के शरीर की रचना, भार, लम्बाई तथा अंगों के अनुपात में स्थायित्व आने से है। शारीरिक विकास उत्तम स्वास्थ्य पर निर्भर करता है तथा स्वस्थ व्यक्ति में ही संतुलित व्यक्तित्व का विकास संभव हो पाता है।

Scanned with OKEN Scanner

शारीरिक विकास की विशेषतायें
(Characteristics of Physical Development)

शारीरिक विकास की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो भिन्न-भिन्न आयु स्तर पर अलग-अलग होती हैं। बचपन तथा किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास की मुख्य विशेषताएँ **निम्न प्रकार से हैं–**

(1) शारीरिक-विकास सामान्यतः बाल्यकाल तथा किशोरावस्था में समान गति से नहीं होता–छह से ग्यारह वर्ष *(6-11 Years)* की आयु बचपन काल तथा 12 साल से लेकर 20 साल की आयु किशोरावस्था कहलाती है। इन अवस्थाओं में शारीरिक विकास में काफी उतार-चढ़ाव आते हैं। बाल्यकाल में वृद्धि की गति बहुत धीमी होती है, परंतु किशोरावस्था में वृद्धि की यह गति तीव्र हो जाती है। बालकों और बालिकाओं में विकास का स्वभाव प्रायः एक सा होता है। परंतु 12, 13 वर्षों में यानी किशोरावस्था में लड़कियों की औसत लम्बाई लड़कों की औसत लम्बाई से अधिक होती है, क्योंकि किशोरावस्था के अन्त तक जब बालक में लगभग परिपक्वता आ चुकी होती है, उसकी अनेक हड्डियाँ परस्पर संयुक्त हो जाती हैं।

परिणामस्वरूप हड्डियों में कड़ापन पर्याप्त मात्रा में आ चुका होता है। 5 से 6 वर्ष की अवधि तक मांसपेशियों का विकास तीव्र गति से बढ़ता है। किशोरावस्था में मांसपेशियों का विकास जन्म से बीस गुणा हो जाता है। किशोरावस्था में पहुंचते-पहुंचते बालक का सिर उसके शरीर की लम्बाई के दसवें भाग के बराबर हो जाता है। हाथ-पैरों की वृद्धि भी इस काल में अन्त तक तीव्र गति से पूरी हो जाती है।

बाल्यकाल में दूध के दांत झड़कर नये दांत निकल आते हैं। दांतों के विकास में भी व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा अस्थायी दांत शीघ्र निकलते गिरते हैं। किशोरावस्था तक 27, 28 दांत निकल आते हैं।

(2) बाल्यकाल तथा किशोरावस्था में विकास शिरोपुच्छीय तथा समीपो-दूरस्थ होता है–इन अवस्थाओं में विकास निम्न दो तरीकों से होता है–

(1) सिर से पैर तक (शिरोपुच्छ क्रम)

(2) शरीर के मध्य से दूर दिशा तक (समीपो-दूरस्थ क्रम)

(1) शिरोपुच्छ क्रम–शिरोपुच्छ क्रम में सिर के पास वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता मिलती है। छोटे बच्चों के सिर का भाग उसके नीचे के भाग से ज्यादा विकसित होता है, परिणामस्वरूप बच्चे का सिर ज्यादा बड़ा दिखाई देता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है उसके नीचे का भाग विकसित होता जाता है।

(2) समीपो-दूरस्थ क्रम–यह क्रम शरीर के मध्य भाग से दूर दिशा में होता है। शरीर के मध्य से पास वाले भागों को अभिवृद्धि में प्राथमिकता मिलती है। जैसे कुहनी, उंगलियों का विकास, पूरे हाथ या पैर के बाद होता है।

(3) बाल्यकाल व किशोरावस्था में वृद्धि व विकास में अंतर होता है–यद्यपि बाल्यकाल व किशोरावस्था में शारीरिक विकास का क्रम-सा होता है, फिर भी इन अवस्थाओं में व्यक्तिगत भिन्नता, जो कि शारीरिक ऊंचाई, भार तथा शारीरिक अंगों के अनुपात में पाई जा सकती है। उदाहरण के लिए, यदि हम एक ही आयु वर्ग के बालकों की लम्बाई व भार का अध्ययन करें तो पायेंगे कि उनकी लम्बाई व भार में बहुत व्यक्तिगत भिन्नता है। इसी तरह एक ही आयु वर्ग के किशोरों की लम्बाई व भार का अध्ययन करें, तो हम पायेंगे कि उनमें भी व्यक्तिगत भिन्नताएँ हैं।

(4) शारीरिक विकास में बाल्यकाल तथा किशोरावस्था में लैंगिक अंतर भी पाया जाता है–शारीरिक विकास में इन दोनों अवस्थाओं में लैंगिक अंतर भी पाया जाता है। लड़कियों के कद में वृद्धि 9 वर्ष की आयु से शुरू होती है और 12 या 13 वर्ष की आयु तक यह वृद्धि अधिकतम सीमा तक पहुंच चुकी होती है, जबकि लड़कों में यह वृद्धि 11 वर्ष से प्रारंभ हो 14 से 15 साल तक की आयु के बीच अधिकतम सीमा तक पहुंचती है। लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा लैंगिक परिपक्वता भी लगभग दो वर्ष पहले आ जाती है। लैंगिक परिपक्वता ग्रहण करने से ढाई से साढ़े तीन वर्ष की अवधि में लड़कियों के कद में सबसे अधिक वृद्धि होती है।

Scanned with OKEN Scanner

लड़कियाँ 12 वर्ष की आयु तथा लड़के 14 वर्ष की आयु तक अपना अधिकतम भार ग्रहण कर लेते हैं। बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा दूध के दांत जल्दी निकलते हैं और जल्दी गिरते हैं। जब तक सारे दांत नहीं निकल आते, बालिकायें दांतों के विकास में हर आयु पर बालकों से आगे होती हैं। बालकों में बालिकाओं की अपेक्षा पेशीय शक्ति अधिक होती है। बालिकाओं का पाचन तंत्र बालकों की अपेक्षा कम विकसित होता है।

शरीर के विभिन्न भागों में विकास का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि लड़कों में वक्षीय परिधि तथा कलाई लड़कियों की अपेक्षा अधिक चौड़ी होती है, जबकि लड़कियों की जांघ ज्यादा चौड़ी होती है। बालक के फेफड़े लगभग 20 वर्ष की आयु तथा बालिकाओं के फेफड़े लगभग 17 वर्ष की आयु में पूर्ण विकसित होते हैं।

(5) विभिन्न शारीरिक गुण एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, न कि प्रतिलोभी–प्रायः यह देखा जाता है कि लोगों की धारणा होती है कि यदि बालक विकास के एक पक्ष में अधिक अच्छा है तो वह विकास के अन्य पक्ष में पिछड़ा हुआ होगा। उदाहरणार्थ पहलवान बालकों व किशोरों के बारे में धारणा बना ली जाती है कि ये अधिक बुद्धिमान नहीं होते हैं, परंतु इस तथ्य के कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं। अमेरिका के एक मनोवैज्ञानिक हरमन ने यह सिद्ध किया है कि एक व्यक्ति में बहुत से वांछित गुण पाये जाते हैं। एक ही व्यक्ति में उसकी लम्बाई, भार, चालक, कुशलताओं, बीमारियों से लड़ने की शक्ति, लम्बी आयु आदि में काफी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि विकास समान गति से नहीं होता। बाल्यकाल में यह धीमी गति से होता है, परंतु किशोरावस्था में इसकी गति तीव्र हो जाती है। यह विकास शिरोपुच्छीय तथा समीपोदूरस्थ नियमों पर आधारित होता है, जिसमें लैंगिक व व्यक्तिगत भिन्नताएँ भी पाई जाती हैं।

(6) बालों का विकास–बाल्य काल की अंतिम अवस्था तथा पूर्व किशोरावस्था में पेट के निचले वाले क्षेत्र, बगलों, टांगों आदि पर बाल उग आते हैं। लड़कियों की छाती विकसित अवस्था में होती है। लड़कों में दाढ़ी, मूंछ आदि विकसित अवस्था में होती है।

(7) आवाज में परिवर्तन–पूर्व किशोरावस्था में लड़के व लड़कियों की आवाज में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे लड़कियों की आवाज पतली व लड़कों की आवाज मोटी होनी शुरू हो जाती है।

(8) वीर्यपात और महावारी का आरंभ–पूर्व किशोरावस्था में काम ग्रंथियाँ काम करना आरंभ कर देती हैं। लड़कों में वीर्य ग्रंथियाँ तथा लड़कियों में महावारी का चक्र शुरू हो जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विभिन्न शारीरिक गुण एक-दूसरे के प्रतिलोमी नहीं होते, बल्कि एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

अतः शारीरिक विकास की उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शारीरिक विकास की गति स्थिर नहीं होती, वरन् पृथक् आयु अंतराल में भिन्न होती है।

हरलॉक के अनुसार–"अभिवृद्धि लयात्मक होती है, नियमित नहीं।" विकास प्रक्रिया में तीव्रता तथा मन्दता का एक क्रम होता है तथा सभी व्यक्तियों में विकास चक्र निश्चित समय पर नहीं प्रकट होते। व्यक्तिगत विभेद के कारण विकास चक्र की गति तथा अंतराल में भिन्नता होती है। विभिन्न अंगों के विकास की गति भी अलग-अलग अवस्थाओं में समानता नहीं होती। **टॉमसन** का कथन है, "मानव शरीर समग्र के रूप में अभिवृद्धि नहीं करता, न ही यह सभी दिशाओं में एक साथ विकसित होता है।

शरीर के सभी अंगों के आकार का विकास अलग-अलग नियमों के अंतर्गत होता है। शरीर के कुछ अवयवों का विकास एक निश्चित अवस्था में ही होता है।

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक का शारीरिक-विकास (Physical Development at the Various Stages of Development)

(1) शैशवावस्था में बालक का शारीरिक-विकास–शैशव के शारीरिक विकास के दो सोपान होते हैं–

(क) जन्म से तीन वर्ष की आयु तक–'संचय अवस्था', जब विकास की गति बहुत तेज होती है।

(ख) तीन से पांच-छह वर्ष तक–'परिपाक अवस्था' जब विकास की गति धीमी हो जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

शैशव अवस्था में बालक का शारीरिक विकास निम्नलिखित ढंग से होता है–

(i) **स्वरूप (Form)**–जन्म के समय बालक का शरीर अनाकर्षक होता है। उसकी त्वचा में झुर्रियाँ होती हैं, चेहरा फूला हुआ तथा लाल होता है एवं शरीर का ढांचा असंतुलित होता है।

(ii) **भार (Weight)**–जन्म के समय तथा संपूर्ण शैशवावस्था में बालिका का भार बालक के भार से कम होता है। जन्म के समय शिशु का भार पांच से आठ पौंड के बीच होता है। जन्म के प्रथम सप्ताह में शिशु का भार लगभग 150 से 200 ग्राम तक कम होता है। प्रथम छह माह में शिशु का भार दुगुना तथा एक वर्ष में तिगुना हो जाता है। प्रथम वर्ष में भार बहुत तेजी से बढ़ता है। इस भांति चार महीने में शिशु का भार चौदह पौंड, आठ माह में अट्ठारह पौंड, एक वर्ष में इक्कीस पौंड तथा पांच-छह वर्ष में लगभग चालीस पौंड होता है। द्वितीय वर्ष में शिशु का भार केवल आधा पौंड प्रतिमास की दर से प्रथम तीन वर्षों में शिशु का भार तीव्र गति से बढ़ता है तथा इसके बाद विकास की गति धीमी पड़ जाती है। तीन से छह वर्ष के बीच की आयु शारीरिक विकास की दृष्टि से 'परिपाक अवस्था' का काल है।

(iii) **आकार तथा लम्बाई (Size and Length)**–धीरे-धीरे शिशु के आकार में वृद्धि होती जाती है। शैशव में बालक की लम्बाई बालिका से अधिक होती है। जन्म के समय बालक तथा बालिका की लम्बाई क्रमशः 20.5 तथा 20.3 इंच होती है। अगले तीन-चार वर्षों में बालिकाओं की लम्बाई बालकों की लम्बाई से अधिक हो जाती है तथा बाद में बालकों की लम्बाई बालिकाओं की लम्बाई से आगे निकलने लगती है।

प्रथम वर्ष में शिशु की लम्बाई लगभग दस इंच तथा दूसरे वर्ष में चार-पांच इंच बढ़ती है। तीसरे, चौथे तथा पांचवें वर्ष में उसकी लम्बाई में कम वृद्धि होती है। सामान्यतः एक वर्ष में शिशु सत्ताइस अथवा अट्ठाइस इंच, दो वर्ष में इकतीस इंच से तैंतीस इंच तथा पांच वर्ष में अड़तीस से चालीस इंच तक लम्बा हो जाता है।

(iv) **सिर तथा मस्तिष्क (Head and Brain)**–नवजात शिशु के सिर की लम्बाई उसके संपूर्ण शरीर की लम्बाई का एक चौथाई होती है। धीरे-धीरे सिर तथा धड़ का अनुपात 1:3 हो जाता है। प्रथम दो वर्षों में सिर के अभिवृद्धि की गति बहुत तेज होती है, परंतु बाद में यह धीमी हो जाती है।

जन्म के समय शिशु के मस्तिष्क का भार लगभग 350 ग्राम होता है तथा शरीर के भार के अनुपात में अधिक होता है। यह भार दो वर्षों में दोगुना हो जाता है। चार वर्ष की आयु में भार की दृष्टि से इसका लगभग 800 ग्राम हो जाता है।

(v) **हड्डियाँ (Bones)**–नवजात शिशु की हड्डियाँ कोमल तथा संख्या में 270 होती हैं। संपूर्ण शैशव में ये छोटी लचीली होती हैं तथा ठीक से जुड़ी हुई नहीं होतीं। कैल्शियम फॉस्फेट तथा अन्य खनिज लवणों *(Mineral Salts)* की सहायता से धीरे-धीरे कड़ी होती जाती है। इसे 'अस्थीकरण' अथवा 'दृढ़ीकरण' *(Ossification)* कहते हैं। बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में अस्थीकरण तीव्र गति से होता है।

(vi) **दांत (Teeth)**–छठे मास से शिशु के दूध के दांत निकलने लगते हैं, जो अस्थायी होते हैं। सर्वप्रथम नीचे के दांत निकलते हैं तथ एक वर्ष की आयु तक उनकी संख्या आठ हो जाती है। चार वर्ष की आयु तक शिशु के लगभग सभी दांत निकल आते हैं।

(vii) **मांसपेशियाँ तथा अन्य अवयव (Muscles and other Organs)**–जन्म के बाद से आंतरिक अंगों का निरंतर विकास होने लगता है। इसमें पाचक अंग, फुफ्फुस, मांसपेशियां, स्नायु मंडल, नाड़ियों, उत्पादक अंग तथा ग्रंथियों आदि का विकास सम्मिलित है। इस भांति विकास में क्रमशः आंतरिक अंगों का संतुलन होता है।

मांसपेशियों का अधिकतम विकास शैशवावस्था में होता है। नवजात शिशु की मांसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का 23-24% होता है, जो धीरे-धीरे बढ़ता चला जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

जन्म लेते ही शिशु श्वास लेने लगता है तथा उसके भीतर रक्त का संचार चलता रहता है। भ्रूणवस्था में हृदय की धड़कन अत्यंत धीमी होती है, परंतु जन्म लेते ही वह कभी बहुत तेज, कभी धीमी हो जाती है। जैसे-जैसे हृदय बड़ा होता जाता है, वैसे-वैसे वह दृढ़ होता जाता है तथा हृदय की धड़कन तथा नाड़ियों में रक्त के प्रवाह की गति मन्द होकर स्थायी हो जाती है। प्रथम माह में शिशु के हृदय की धड़कन एक मिनट में एक से चालीस बार होती है, लगभग छह वर्ष की आयु में यह घटकर सौ रह जाती है।

छह वर्ष की आयु तक शिशु के शरीर के ऊपरी भाग का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है। टांगों तथा भुजाओं का विकास अति तीव्र गति से होता है। प्रथम दो वर्षों में टांगें ड्योढ़ी तथा भुजाएँ दुगुनी हो जाती हैं।

यौनेन्द्रिय का विकास मस्तिष्क के विकास से उल्टी गति से होता है। शैशवावस्था में इसके विकास की गति अत्यंत धीमी होती है।

शैशवावस्था में शरीर से दूषित पदार्थ के विसर्जन तथा रोगाणुओं से लड़ने की व्यवस्था निरंतर बढ़ती जाती है।

तीन वर्ष की आयु में शिशु के शरीर तक मस्तिष्क में संतुलन आने लगता है। उसके शरीर के सभी अंग कार्य करने लगते हैं तथा उसके हाथ-पैर मजबूत होने लगते हैं। शिशु अपने दैनिक गृह-कार्यों में लगभग आत्मनिर्भर हो जाते हैं। पांच वर्ष के अंत तक अनेक शिशु पर्याप्त स्वतंत्रता तथा कुशलता प्राप्त कर लेते हैं।

(2) बाल्यकाल या बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक-विकास–बाल्यावस्था में शारीरिक विकास निम्नलिखित रूप में होता है–

(i) **भार (Weight)**–बाल्यकाल में बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है। बारह वर्ष के अंत में उसका भार अस्सी तथा पिचानवे पौंड के बीच होता है। नौ-दस वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं के भार से अधिक होता है। उसके बाद बालिकाओं का भार अधिक होना आरंभ हो जाता हैं।

(ii) **ऊंचाई (Height)**–बाल्यकाल में शरीर की लम्बाई मन्द गति से बढ़ती है। इन अवस्था में कुल लम्बाई लगभग दस-बारह इंच और बढ़ जाती है। ग्यारह वर्ष की आयु में बालक लगभग पचपन इंच लम्बा हो जाता है। बाल्यावस्था के अंतिम वर्ष में बालिकाएँ बालकों से लगभग एक इंच अधिक लम्बी हो जाती है।

(iii) **सिर व मस्तिष्क (Head and Brain)**–बाल्यावस्था में सिर के आकार में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है। आठ वर्ष की आयु में सिर प्रौढ़ आकार का 90% तथा दस वर्ष की आयु में 95% होता है। बालक के मस्तिष्क के भार में भी परिवर्तन होता रहता है।

(iv) **हड्डियाँ (Bones)**–बाल्यकाल में हड्डियाँ की संख्या तथा अस्थि निर्माण में वृद्धि होती रहती है। इस अवस्था में हड्डियाँ की संख्या बढ़कर 350 हो जाती है।

(v) **दांत (Teeth)**–लगभग छह वर्ष की आयु में दूध के दांत टूटने लगते हैं। बारह अथवा तेरह वर्ष तक उसके लगभग सभी स्थायी दांत निकल आते हैं, जिनकी संख्या अट्ठाइस होती है। बालकों के स्थायी दांत बालिकाओं की अपेक्षा देर से निकलते हैं।

(vi) **मांसपेशियाँ तथा अन्य अंग (Muscles and other Organs)**–इस काल में मांसपेशियों का विकास धीमी गति से होता है। नौ वर्ष की आयु में बालक की मांसपेशियों का भार उसके शरीर के भार का लगभग 27% होता है।

हृदय की धड़कन की गति में निरंतर कमी आती जाती है। बारह वर्ष की आयु में धड़कन एक मिनट में पिचासी बार होती है।

बालक के कन्धे चौड़े, कूल्हे पतले एवं पैर सीधे तथा लम्बे होते हैं। बालिकाओं के कन्धे पतले, कूल्हे चौड़े तथा पैर कुछ अंदर की ओर झुके हुए होते हैं।

ग्यारह-बारह वर्ष की आयु में बालकों तथा बालिकाओं के यौनांगों का विकास बड़ी तीव्र गति से होता है।

Scanned with OKEN Scanner

बाल्यावस्था में शरीर के लगभग सभी अंगों का विकास हो जाता है। फलतः वह अपनी शारीरिक गति पर नियत्रण करना जान लेता है। वह अपने समस्त कार्य स्वयं करने लगता है तथा दूसरों पर आश्रित नहीं रह जाता।

(3) किशोरावस्था में बालक का शारीरिक-विकास–किशोरावस्था में बालक के शारीरिक विकास के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं–

(i) **भार (Weight)**–किशोरावस्था में किशोरों का भार किशोरियों से अधिक बढ़ता है। इस काल के अंत में बालकों का भार बालिकाओं से लगभग पच्चीस पौंड अधिक रहता है।

(ii) **ऊंचाई (Height)**–इस अवस्था में किशोरों तथा किशोरियों की ऊंचाई तीव्र गति से बढ़ती है। पंद्रह वर्ष की आयु में किशोर एवं किशोरियों की ऊंचाई लगभग समान होती है। अट्ठारह वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते किशोरों की लम्बाई किशोरियों से लगभग छह-सात सेंटीमीटर अधिक हो जाती है। (वयस्कावस्था में तरुण तरुणियों से लगभग बारह-तेरह सेंटीमीटर अधिक लम्बे होते हैं)। किशोर की ऊंचाई अट्ठारह वर्ष के बाद भी बढ़ती रहती है, जबकि किशोरी सोलह वर्ष की आयु में अपनी अधिकतम ऊंचाई प्राप्त कर लेती है।

(iii) **सिर तथा मस्तिष्क (Head and Brain)**–इस काल में भी सिर तथा मस्तिष्क का विकास होता रहता है। पंद्रह अथवा सोलह वर्ष की आयु में सिर का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है तथा मस्तिष्क का भार 1200 से 1400 ग्राम के बीच होता है।

(iv) **हड्डियाँ (Bones)**–इस अवस्था में अस्थि निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है तथा कुछ छोटी हड्डियाँ परस्पर जुड़ जाती हैं।

(v) **दांत (Teeth)**–किशोरावस्था के प्रारंभ में लगभग सभी स्थायी दांत निकल आते हैं। प्रज्ञा दन्त *(Wisdom-Tooth)* इस अवस्था के अन्त अथवा वयस्कावस्था के प्रारंभ में निकलते हैं।

(vi) **मांसपेशियाँ तथा अन्य अंग (Muscles and other Organs)**–किशोरावस्था के शारीरिक विकास में लिंगगत भिन्नता आ जाती है। किशोरावस्था में मांसपेशियों का भार कुल शरीर के भार का लगभग 33% तथा सोलह वर्ष की आयु में लगभग 44% होता है। हृदय की धड़कन में निरंतर कमी आने लगती है तथा वयस्कावस्था में प्रवेश करने पर यह एक मिनट में बहत्तर बार होती है।

किशोरों के सीने एवं कंधे तथा बालिकाओं के वक्षस्थल एवं कूल्हे में वृद्धि होती है। बालकों में स्वप्नदोष तथा बालिकाओं में मासिक धर्म आरंभ हो जाता है। दोनों की ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्णतः विकसित हो जाती हैं।

इस अवस्था के अंत तक किशोरों तथा किशोरियों की ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का पूर्ण विकास हो जाता है। अब वे युवावस्था में प्रवेश करते हैं। स्ट्रॉंग के अनुसार–"किशोरावस्था व्यक्ति के विकास का महत्त्वपूर्ण काल है। इस काल में अधिकांश बालकों तथा बालिकाओं में शारीरिक परिपक्वता आ जाती है अर्थात् वे संतानोत्पत्ति करने योग्य हो जाते हैं तथा शारीरिक आकृति में प्रौढ़ों के समान हो जाते हैं।

◆◆◆

2. शारीरिक विकास का क्या अर्थ है? शारीरिक विकास के विभिन्न प्रतिमानों तथा पक्षों या पहलुओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

अथवा

शारीरिक विकास के अर्थ तथा प्रकृति को स्पष्ट करते हुए शारीरिक विकास के विभिन्न प्रतिमानों तथा पक्षों या पहलुओं की विवेचना कीजिए।

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

शारीरिक विकास के आपका क्या अभिप्राय है? बालक के शारीरिक विकास के विभिन्न प्रतिमान तथा पहलू कौन-कौन से हैं? व्याख्या कीजिये।

उत्तर–शारीरिक विकास का अर्थ एवम् स्वरूप (Meaning and Nature of Physical Development)–गर्भधारण से ही शारीरिक विकास प्रारम्भ हो जाता है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास भिन्न-भिन्न गति से होता रहता है। गर्भकालीन अवस्था में शारीरिक विकास की गति अन्य विकासावस्थाओं की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है।

बच्चों का अस्तित्व माता के डिम्ब *(Ovum)* तथा पिता के शुक्राणु *(Sperm)* के संयोजन एवं निषेचन *(Fertilization)* होने पर नए कोष युग्मनज *(Zygote)* के निर्माण से शुरू होता है। युग्मनज की वृद्धि तीव्र होती है और कुछ सप्ताह में ही यह मानव की आकृति का भ्रूण बन जाता है। इस अवस्था में शरीर के अंगों का विकास शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे शरीर की सभी ज्ञानेन्द्रियाँ, नाड़ी संस्थान एवं हृदय की धड़कन का विकास हो जाता है। सातवें माह के अन्त तक गर्भस्थ शिशु का शारीरिक, मानसिक और आन्तरिक अंगों का विकास हो जाता है। आठवें और नौवें माह में सामान्यतः शिशु का जन्म हो जाता है।

मानव-प्राणी का केन्द्रिय नाड़ी संस्थान जन्म के समय पूर्ण विकसित नहीं होता है, परन्तु उसमें सीखने की अति क्षमता होती है। जीवन के प्रथम चार सप्ताह में बच्चा श्वास, लय, सोना, खाना-पीना, माता-पिता के साथ अनुकूलन आदि क्रियाएँ करने के योग्य हो जाता है। लगभग 18 महिलों में उसमें संवेदी क्रियात्मक योग्यताएँ *(Sensory motor abilities)* तथा प्रारम्भिक समाजीकरण का प्रारम्भ हो जाता है। जैसे-जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है उसकी अन्य गतिविधियाँ बढ़ती जाती हैं। एक बच्चा एक निश्चित आयु में क्या कर सकता है और क्या नहीं, यह उसके शारीरिक विकास पर निर्भर करता है। बच्चा आकार और शक्ति से जैसे-जैसे बढ़ता है उसके अनुभव तथा क्रियाएँ भी अधिक होती जाती है। उदाहरण के लिए, वह पड़ोस व विद्यालय में जाने लगता है तथा आयु के अनुसार खेलों में भी भाग लेता है। इस प्रकार, बच्चे का शारीरिक विकास उसके सामाजिक व्यवहार को काफी सीमा तक निर्धारित करता है। इसके अतिरिक्त, शारीरिक विकास अप्रत्यक्ष रूप से उसके आत्म-प्रत्यय तथा दूसरों के प्रति अभिवृत्तियों को भी प्रभावित करता है। जैसे यदि एक बच्चा किसी भी प्रकार से दूसरे बच्चों से शरीर रचना में भिन्न है अर्थात् अत्यधिक मोटा, पतला, लम्बा या विकलांग है तो यह भिन्नता दूसरे बच्चों को ही उसके समूह की गतिविधियों में भाग लेने के लिये निरुत्साहित कर सकती है। इस प्रकार के अनुभव बच्चों में हीन भावना या दूसरों के प्रति द्वेष उत्पन्न करते हैं।

शारीरिक विकास की प्रकृति एवं अनुक्रम का प्रभाव बच्चे की भिन्न-भिन्न विकास अवस्थाओं में उसके व्यवहार पर भी पड़ता है। शारीरिक विकास की प्रक्रिया नियमित व निरन्तर नहीं होती बल्कि इसमें उतार-चढ़ाव आते रहते हैं अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता है कि एक बच्चा प्रति मास इतने ग्राम वजन व इतने इंच ऊंचाई की दर से बढ़ेगा। शारीरिक विकास की चार मुख्य अवस्थाएँ *(Phases)* हैं जिनमें से दो अवस्थाओं में वृद्धि मन्द गति से होती है तथा अन्य दो में तीव्र गति से। जन्म से लेकर 2 वर्षों तक (बचपन अवस्था) शारीरिक विकास सबसे तीव्र गति से होता है। उसके पश्चात् 3 से 11 वर्ष की आयु तक (बाल्यावस्था) यह विकास मन्द गति से होता है। वयःसन्धि के किशोरावस्था के प्रारम्भ तक शारीरिक विकास की गति में पुनःस्फुरण *(Spurt)* आता है; किशोरावस्था के बाद विकास की गति निरन्तर घटती जाती है। लड़कों तथा लड़कियों में विकास की प्रकृति लगभग एक समान होती है, परन्तु उनके स्फुरण काल में अन्तर होता है। शारीरिक परिपक्वता प्राप्त होने पर वयस्क अवस्था में जो ऊंचाई *(Height)* होती है वह बनी रहती है, परन्तु वजन *(Weight)* की वृद्धि अस्थिर होती है। यद्यपि ये वृद्धि अवस्थाएँ सार्वभौमिक होती हैं परन्तु बच्चों के शारीरिक विकास में व्यक्तिगत भिन्नताएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक बच्चा अपने विकास प्रतिमानों में शीघ्र या देर से समानुरूपता दर्शाता है।

यद्यपि शारीरिक विकास में शरीर के कार्य न्यूनाधिक एक संगठित इकाई के रूप में होते हैं फिर भी शरीर के विभिन्न अंगों का अपने समय के अनुसार मन्द और तीव्र गति से विकास होता रहता है। विभिन्न अवस्थाओं में विकास की गति भी भिन्न-भिन्न होती है। प्रारम्भ में विकास शरीर के शीर्ष भाग से सिर तक

Scanned with OKEN Scanner

की वृद्धि मन्द व अन्य अंगों की तीव्र तथा धड़ की वृद्धि मध्यम होती है। मासिक एवं चेहरे की परिपक्वता, आकार व विकास की दृष्टि से, दूसरे अंकों की अपेक्षा पहले अनुभव होती है। अध्ययनों में यह देखा गया है कि शारीरिक तथा मानसिक विकास का परस्पर गहरा सम्बन्ध है अर्थात् जब शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है तो मानसिक वृद्धि की तीव्र गति से होती है। इसी प्रकार शरीर का मन्द विकास मानसिक विकास की गति को मन्द करता है। स्वास्थ्य एवं पोषण शारीरिक तथा मानसिक विकास दोनों को प्रभावित करते हैं।

शारीरिक-विकास के प्रतिमान
(Patterns of Physical Development)

भिन्न-भिन्न विकास की अवस्थाओं में शारीरिक विकास की गति समान एवं एकरूप नहीं होती है। शारीरिक विकास व्यक्तियों में लगभग प्रारम्भिक 20 वर्षों की अवधि में पूर्ण हो जाता है। सामान्यतः सम्पूर्ण शारीरिक विकास की अवधि को निम्नलिखित चार मुख्य उप भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(1) शैशवावस्था और पूर्व-बाल्यावस्था (Infancy and Pre-childhood Stage)–(5 वर्ष की आयु तक)

इस अवस्था में मानव वृद्धि के विकासात्मक कार्यों में निम्न स्तर की गति विधियों का विकास होता है, जैसे चलना, ठोस आहार खाना, बातें करना, शौच आदि का नियन्त्रण, यौन भिन्नताओं की समझ, शारीरिक संतुलन प्राप्त करना, साधारण सामाजिक तथा भौतिक वास्तविकताओं के प्रत्यय का निर्माण तथा परिवार के सदस्यों के साथ संवेगात्मक सम्बन्ध द्वारा उचित-अनुचित का अन्तर स्पष्ट करना, सीखना आदि।

(2) मध्य एवं पश्चात्-बाल्यावस्था (Post-childhood Stage)–(12 वर्ष की आयु तक)

शारीरिक कौशलों को सीखना, स्वावलम्बन एवं साथी-समूह में साधारण कार्यों को सीखना, वृद्धि का आत्म-प्रत्यय, उचित यौन-भूमिका को सीखना, लिखने-पढ़ने में मूल कौशलों का विकास, सामाजिक एवम् नैतिक अभिवृत्तियों का विकास इस अवस्था में होता है।

(3) किशोरावस्था (Adoloscence Stage)–विकास की इस अवस्था में व्यक्ति अपने शरीर गठन *(Physique)* को स्वीकार करना और पुरुषत्व या स्त्रीत्व की भूमिकाओं को स्वीकार करना सीखता है। वह हम-उम्र एवं विपरीत यौन वाले वाले व्यक्तियों के साथ नए सम्बन्ध स्थापित करना, माता-पिता व अन्य वयस्कों के संवेगात्मक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना, व्यवसाय चुनना, बौद्धिक कौशलों का विकास और सामाजिक स्वीकृत व्यवहार को दर्शना आदि व्यवहार प्रदर्शित करता है।

(4) व्यस्क एवं वृद्धावस्था (Adult hood and old-age Stage)–(20 वर्ष से मृत्यु तक)

सबसे लम्बे एवं स्थिर जीवन का विस्तार अनुमानतः 20 वर्ष से 65 वर्ष तक होता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने जीवन को दिशा प्रदान करते हैं तथा उन पर बच्चों के आश्रित होने से उत्तरदायित्व होते हैं। शारीरिक परिवर्तन बहुत ही मन्द गति से होते हैं। 25 से 30 वर्ष तक मांसपेशीय शक्ति *(Muscular Power)* चरम सीमा पर होती है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है क्रियात्मक सक्रियता में कमी होती जाती है, सीखने की क्षमता तथा स्मृति का ह्रास होना शुरू हो जाता है तथा नैतिक, बौद्धिक एवं सृजनात्मक शक्तियाँ मन्द होनी प्रारम्भ हो जाती हैं। वृद्धावस्था में बाल सफेद होना, दांतों का टूटना, त्वचा में शुष्कता एवं झुर्रियाँ पड़ना, संवेदनाओं का ह्रास देखने को मिलता है। वृद्धि का यह प्रतिमान सभी बच्चों में होता है, परंतु इसमें वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है। लड़के एवं लड़कियों के विकास प्रतिमान में भिन्नता होती है। शारीरिक विकास को सदैव भिन्न अंगों के अनुपात में परिवर्तन द्वारा जाना जाता है। शरीर के विभिन्न अंग अपने-अपने ढंग से विकसित होते हैं। जन्म के समय, बच्चों के शीर्ष भाग भारी होते हैं। बाल्यावस्था में, शरीर के दूसरे अंगों की अपेक्षा उनका सिर मन्द गति से बढ़ता है। जबकि धड़ एवं दूसरे अंग इस अवस्था में तीव्र गति से बढ़ते हैं। शारीरिक विकास की यह तीव्र गति धीरे-धीरे मन्द हो जाती है तथा बच्चा एक निश्चित आकार प्राप्त कर लेता है।

Scanned with OKEN Scanner

एक बच्चे की शारीरिक वृद्धि पूर्व बाल्यावस्था (3 से 7 वर्ष) के दौरान उसकी बचपनावस्था (प्रथम 2 वर्ष) की वृद्धि से भिन्न होती है। बच्चे की एक वर्ष की आयु के बाद वृद्धि मन्द होनी शुरू हो जाती है तथा सम्पूर्ण बाल्यावस्था में मन्द बनी रहती है। इस अवस्था में वाह्य वृद्धि की अपेक्षा बच्चे के आन्तरिक अंग-हृदय, फेफड़े तथा पाचन संस्थान तीव्र गति से बढ़ते हैं, परन्तु ऊंचाई तथा वजन मन्द गति से बढ़ते हैं। शारीरिक वृद्धि की अपेक्षा शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। फलस्वरूप बच्चों के शरीर 5-6 वर्ष की आयु तक शिशुओं के अनुपात में सुडौल एवं सुगठित दिखाई देते हैं।. शरीर, आकार की ऊंचाई तथा वजन द्वारा मापा जाता है। शरीर वृद्धि *(Body growth)* को पीयूष ग्रन्थि द्वारा तथा स्रावित वृद्धि *(Somatotrophic)* को हारमोन द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। इस 'वृद्धि-हारमोन' की न्यूनता व अधिकता शरीर वृद्धि को प्रभावित करती है।

शारीरिक-विकास के विभिन्न पहलू
(Various Aspects of Physical Development)

(1) ऊंचाई एवं वजन (Height and weight)–बच्चे पूर्व बाल्यावस्था में सामान्यतः अपनी व्यस्क अवस्था की ऊंचाई से आधी ऊंचाई तथा वयस्क अवस्था के वजन का लगभग 1/5 भाग होते हैं। पूर्व बाल्यावस्था में बच्चे प्रति वर्ष 8 से. मी. 13 से. मी. ऊंचाई तथा 1 कि. ग्रा. से 2 कि. कि. ग्रा. वजन की दर से बढ़ते हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् *(Indian council of Medical Research* 1972) द्व ारा किये गये अध्ययन के अनुसार भारतीय शिशु जन्म के समय सामान्यतः 47 से. मी. से 52 से.मी. ऊंचाई का होता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा थोड़ी छोटी होती हैं। इसी प्रकार सामान्यतः प्रथम शिशु की ऊंचाई भी बाद वाले शिशुओं की अपेक्षा कम होती है। 4-5 वर्ष में बच्चा अपने जन्म की ऊंचाई से दो गुणा हो जाता है। लड़कियों की ऊंचाई वयःसन्धि अवस्था में तीव्र गति से बढ़ती है।

नवजात शिशु का औसतन वजन 2.4 किलोग्राम से 3.2 किलोग्राम होता है, परन्तु कभी-कभी शिशु बहुत कम वजन के भी होते हैं। फिर भी सभी बच्चों में वृद्धि का समान प्रतिमान दिखाई देता है। बचपनावस्था की अपेक्षा पूर्व बाल्यावस्था में वजन वृद्धि कुछ कम होती है। वे बच्चे जिनका वजन जन्म के वर्ष पश्चात् जन्म से तीन गुणा या वे 5 वर्ष पश्चात् जन्म से छः गुणा वजन रखते हैं। इतना वजन प्राप्त कर लेने पर भी बच्चे बचपनावस्था की अपेक्षा पूर्व बाल्यावस्था में पतले दिखाई देते हैं, क्योंकि उनकी ऊंचाई वृद्धि की गति वजन वृद्धि की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। पूर्व बाल्यावस्था में लड़के-लड़कियों से वजन में भारी होते हैं, परन्तु 11 से 14 वर्ष की आयु में लड़कियाँ वयःसन्धि अवस्था के परिवर्तनों के कारण वजन में लड़कों की तुलना में अधिक भारी प्रतीत होती हैं। 21 वर्ष की आयु के बाद वयस्क लड़कों का औसत वजन 49.5 किलोग्राम होता है, जबकि लड़कियों में 21 वर्ष की आयु में औसत वजन 44 किलोग्राम होता है।

विभिन्न आयु में लड़के तथा लड़कियों के औसत वजन तथा औसत ऊंचाई को तालिका नं1 में दर्शाया गया है।

Pattern of Height and Weight Increases for Average Children

	ऊंचाई (Height)		वजन (Weight)	
आयु	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
जन्म के समय	51.0 से.मी.	49.0 से.मी.	3.0 कि. ग्रा.	2.6 कि. ग्रा.
9 मास	69.5''	66.7"	7.4"	6.6"
2 वर्ष	81.86''	80.84"	10.1"	9.5"
10 वर्ष	124.4''	128.4"	23.5"	23.6"

Scanned with OKEN Scanner

	ऊंचाई (Height)		वजन (Weight)	
आयु	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
12 वर्ष	138.3"	139.2"	28.5"	29.8"
16 वर्ष	159.5"	151.0"	43.2"	41.1"
18 वर्ष	163.1"	151.7"	47.4"	42.4"
21 वर्ष	164.2"	153.0"	49.5"	44.0"

(2) वृद्धि में व्यक्तिगत भिन्नता (Individual Differences in Growth)–यद्यपि सभी बच्चों में वृद्धि के मूल प्रतिमान समान होते हैं, फिर भी, प्रत्येक आयु स्तर पर में वृद्धि में भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता ऊंचाई की अपेक्षा वजन में अधिक पाई जाती है। इनके अन्तर का मुख्य कारण वंशानुक्रम होता है, क्योंकि ऊंचाई अधिकतर वंशानुक्रम द्वारा निर्धारित होती है तथा वजन वातावरण द्वारा अधिक प्रभावित होता है। पालन-पोषण, बीमारियों, तनावपूर्ण वातावरण आदि का बच्चे के वजन व स्वास्थ्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है। बच्चे का यौन, शरीर रचना, दांत निकलने की अवस्था, अति-भोजन *(Over-eating)* का भी वजन एवं ऊंचाई वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है।

(3) शरीर-अनुपात में परिवर्तन (Changes in Body Proportion)–शरीर रचना के आधार पर सभी नवजात शिशु अलग-अलग होते हैं। कुछ लम्बे व लमछड़ *(Spindly)* तथा कुछ छोटे, मोटे-ताजे व गोल-मटोल *(Chubby)* प्रतीत होते हैं। बचपन अवस्था के दौरान शरीर अनुपात में परिवर्तन होते हैं, क्योंकि नवजात शिशु का शरीर अनुपात वयस्क से बिल्कुल भिन्न होता है। पूर्व बाल्यावस्था के दौरान बच्चों के शरीर के सभी अंग भिन्न-भिन्न गति से बढ़ते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बच्चे अपने विशिष्ट शरीर प्रकार *(Specific body type)* को प्राप्त करते हैं। बच्चे का शारीरिक अनुपात उसके शारीरिक विकास पर व्यापक प्रभाव डालता है। उदाहरणार्थ जब तक बच्चे का शीर्ष भाग होता है वह बैठने, खड़ा होने या चलने में असहाय एवं अदक्ष *(Clumsy)* होता है तथा उसके हाथ-पैर छोटे एवं कम बलशाली होने के कारण वह भोजन करने, खिलौनों को उठाने आदि में भी अदक्ष होता है। शीर्ष भाग में चेहरे के निचले अंगों की अपेक्षा ललाट क्षेत्र तीव्र गति से विकसित होता है। सिर से आकार की तुलना में नाक व मुख छोटे बने रहते हैं और आंखें तथा कान अधिक बड़े प्रतीत होते हैं। स्थायी दांत निकल आने पर बच्चे के जबड़े को आकृति प्रदान होती है। बाल्यावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में धड़ की लम्बाई तथा चौड़ाई बढ़ती हैं तथा कन्धे गोल एवं विस्तृत होने पर गर्दन भी लम्बी प्रतीत होती है। धड़ के निचले भाग के कारण कमर का घेरा भी दिखाई देना शुरू हो जाता है, छोटे बच्चों की भुजाएँ बचपन अवस्था के 6 वर्ष की आयु के बीच लम्बाई में बढ़ती है तथा भुजाएँ पतली एवं सीधी होती हैं। बच्चों की हथेली तथा हाथ बढ़ने पर भी अंगुलियां छोटी एवं गोल-मटोल बनी रहती है। बच्चों की टांगें, जो बचपनावस्था में शरीर के अनुपात में अधिक छोटी होती हैं, बाल्यावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में अधिक बढ़ती हैं परन्तु भुजाओं की अपेक्षा मन्द गति से बढ़ती हैं। ये पतली एवं अविकसित मांस-पेशियों के कारण अपेक्षाकृत लम्बी प्रतीत होती हैं शेष पैर की अपेक्षा पैर की अंगुलियां छोटी रहती हैं।

शरीर के अनुपात में परिवर्तन के कारण बच्चे का शरीर यदि एक वयस्क जैसा नहीं बनता है तो उसके प्रति व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ सामान्य नहीं होतीं। आस-पास के लोगों की ये प्रतिक्रियाएँ बच्चों के आत्मविश्वास तथा आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाने से अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होती हैं। उदाहरणार्थ वयस्कों द्वारा बच्चों के दांत टूटने पर हंसी करने से उसके आत्म विश्वास एवं आत्म सम्मान को चोट पहुंचाते हैं। इस प्रकार वयस्कों एवं बच्चों के परस्पर सम्बन्धों पर कुप्रभाव पड़ता है।

(4) हड्डियाँ एवं दाँत (Bones & Teeth)–नवजात शिशुओं की हड्डियाँ नरम होती हैं। सम्पूर्ण बाल्यावस्था के दौरान हड्डियाँ मन्दगति से सुदृढ़ होती हैं। दृढ़ीकरण *(Hardening)*, 'अस्थि परिणति' *(Ossification)* अर्थात् हड्डियों का सुदृढ़ होना कहलाता है। यह क्रिया जन्म के बाद से शुरू होती है तथा बच्चे की वयःसन्धि

Scanned with OKEN Scanner

अवस्था अर्थात् लगभग 11 या 12 वर्ष की आयु तक चलती है। जन्म के समय बच्चे में 270 हड्डियां होती हैं तथा धीरे-धीरे वयःसन्धि अवस्था तक ये हड्डियाँ 350 हो जाती हैं। छोटे बच्चों की हड्डियों में कालान्तराल *(Fontanel)* होते हैं। कालान्तराल मस्तिष्क की रक्षा के लिए प्राकृतिक उपाय होता है। धीरे-धीरे उपस्थित *(Cartilage)* बच्चों की हड्डियों के विकास के साथ हड्डियों के अन्तिम छोरों को मिलाने का काम करती हैं। हड्डियों का दृढ़ीकरण गल-ग्रन्थि *(Thyroid gland)* के हारमोन थाइरोक्सिन *(Thyroxin)* तथा पोषक तत्वों पर निर्भर करता है। बच्चों की हड्डियाँ टूट जाने पर तुरन्त एवं सरलता से ठीक हो जाती हैं। दूसरी तरफ बच्चों की हड्डियों में शीघ्रता से विकृत होने की प्रवृत्ति भी होती है। उदाहरण के लिए, जो बच्चे अधिकतर समय पीठ की ओर लेटे रहते हैं उनके सिर पीछे से चपटे हो जाते हैं।

प्रत्येक मानव प्राणी के साधारणतया दांतों के दो समूह 'अस्थाई दांत' *(Temporary of 'baby' teeth)* तथा 'स्थाई दांत' होते हैं। छोटे बच्चों के अस्थाई दांतों की संख्या 20 होती है। जबकि स्थाई दांतों की संख्या 32 होती हैं। अस्थाई दांत आकार में स्थायी दांतों की अपेक्षा छोटे एवं नरम होते हैं। प्रसव काल के तीसरे या चौथे मास से बच्चे के जबड़े में दांतों का विकास शुरू हो जाता है। सामान्यतः अस्थाई दांत बच्चे की 4-5 मास की आयु से निकलने शुरू होते हैं। 9 मास की आयु तक औसत 4 दांत निकल आते हैं, निचले जबड़े के दांत, सामान्यतः, ऊपर वाले दांतों को अपेक्षा पहले दिखाई देते हैं। लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा दांत जल्दी दिखाई देते हैं 2 से 2½ वर्ष की आयु तक बच्चों में सभी अस्थाई दांत पूरे हो जाते हैं। यह क्रिया दांत निकलने *(Teething)* की क्रिया कहलाती है। स्थाई दांत 6-7 वर्ष की आयु में निकलने प्रारम्भ होते हैं तथा अन्तिम स्थाई दांतों का क्रम प्रायः 17 से 27 वर्ष की आयु तक चलता है। अस्थाई दांत निकलने में बच्चे को बहुत कठिनाई होती है, परन्तु स्थाई दांत निकलने में बहुत कम दर्द होता है। दांत निकलने की आयु कुछ सीमा तक वंशानुक्रम पर निर्भर करती है तथा कुछ सीमा तक बच्चे का स्वास्थ्य एवं आहार भी उत्तरदायी है। विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दांत किस आयु में निकलते हैं, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना दांत निकलने का क्रम, कभी-कभी ऊपर वाले दांत पहले निकलते हैं, जिससे निचले जबड़े की आकृति में बिगाड़ एवम् स्थाई दांतों का अभद्र क्रम देखा जाता है।

कभी-कभी दांत निकलते समय ज्वर, दस्त (पेचिश), भूख लगाना, निद्राभंग, कान दर्द एवं सर्दी के लक्षण दिखाई देते हैं, जिसमें बच्चा थोड़ी कठिनाई का अनुभव करता है। बच्चे के दांत निकलते समय निम्नलिखित बातों को याद रखना चाहिये। प्रथम, दांत निकलने की क्रिया का स्वभाव पर प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव अस्थाई होता है, परन्तु बच्चों में चिड़चिड़ापन एवं असहमति की आदत विकसित हो जाती है। दूसरा, यह क्रिया *(Teething)* बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती है। तीसरा, बच्चे दांतों का दर्द कम करने के लिए अंगूठा चूसना एवं प्रत्येक वस्तु को मुंह में डालना तथा चबाना शुरू कर देते हैं। अंगूठा चूसना मुखाकृति पर कोई विशेष कुप्रभाव नहीं डालता है, परन्तु यह एक आदत न बने इसलिये चिकित्सक बच्चों के मसूढ़ों *(Gums)* की मसलन के लिये दांत रगड़ने के छल्ले *(Teething rings)* का प्रयोग करने की भी सलाह देते हैं। चौथी बात जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि बच्चों का आहार उनके स्वास्थ्य के लिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि स्वस्थ स्थाई दांतों के लिये भी आवश्यक है। 6 से 18 वर्ष की आयु में प्रायः बच्चों के दांतों को कीड़ा लग जाता है। यह अधिकतर आहार पोषक न होने या शारीरिक विकास गति तीव्र होने के कारण होता है। यह भी देखा गया है कि अधिक बुद्धिमान बच्चों के दांत कम बुद्धि बच्चों की अपेक्षा जल्दी निकलते हैं।

(5) वसा एवं मांसपेशियाँ (Fats and Muscles)–शरीर का वजन हड्डियों के अतिरिक्त मांसपेशियों और वसा ऊतकों *(Adipose Tissu)* पर निर्भर करता है। पूर्व बाल्यावस्था में वसा ऊतक मांसपेशी ऊतकों की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ते हैं। जो बच्चे कार्बोहाइड्रेट अधिक तथा प्रोटीन कम मात्रा में खाते हैं उनमें वसा की मात्रा अधिक हो जाती है। वयःसन्धि अवस्था में लड़के तथा लड़कियों दोनों में मांसपेशी विकास तीव्र होता है। वसा तथा मांसपेशी दोनों का अनुपात ही शरीर प्रकार को निर्धारित करता है। शरीर रचना के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकार भी दिए गए हैं। व्यापक एवं मोटी मांसपेशियों वाला बच्चा इकहरी मांसपेशियों

Scanned with OKEN Scanner

वाले बच्चों की अपेक्षा बलशाली होता है। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः बच्चे की मांसपेशियाँ जितनी सुदृढ़ होंगी, बच्चा उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा।

(6) नाड़ी-संस्थान का विकास (Development of the Nervous System)–गर्भधारण के तुरन्त बाद नाड़ी संस्थान का विकास शुरू हो जाता है, परन्तु जन्म के समय यह पूर्ण विकसित नहीं होता है। जन्म के बाद नाड़ी संस्थान का अति तीव्र गति से विकास होता है। छः वर्ष बाद इसके विकास की गति मन्द पड़ जाती है। जन्म के समय बच्चे के मस्तिष्क का वजन उसके पूर्ण वजन का 1/8वाँ भाग होता है तथा परिपक्वता पर यह उसके पूर्ण वजन का 1/40 वाँ भाग होता है। नाड़ी संस्थान का आन्तरिक विकास जन्म के बाद शुरू हो जाता है तथा 8 वर्ष की आयु में मस्तिष्क परिपक्व आकार प्राप्त कर लेता है। मस्तिष्क का मुख्य भाग प्रमस्तिष्क *(Cerburm)* होता है। यह संवेदी अनुभवों, शारीरिक गतिविधियों, स्मृत्ति तथा सीखने का नियन्त्रण करता है। प्रमस्तिष्क का वह भाग जो शारीरिक गतिविधियों पर नियन्त्रण करता है उस भाग की अपेक्षा शीघ्र विकसित होता है, जो सीखने का नियन्त्रण करता है। उदाहरणार्थ, बच्चा प्रथम वर्ष में पहले रेंगना एवं चलना सीखता है और बाद में बोलना सीखता है। अनुमस्तिष्क *(Cerbellum)* मस्तिष्क का एक गौण भाग है, जो शरीर की मुद्रा स्थिति *(Posture)* एवं संतुलन का नियन्त्रण करता है। यह भाग भी बच्चों के प्रथम वर्ष के विकसित होता है तथा उनके बैठने, खड़े होने तथा चलते समय संतुलन बनाने में सहायक होता है।

यद्यपि जन्म के समय में सभी संवेदी अंग उपस्थित होते हैं, परन्तु वे पूर्ण विकसित नहीं होते हैं तथा उस समय पूरी क्षमता से कार्य भी नहीं करते हैं। तथापि वे जीवन के प्रारम्भिक मांसों में तीव्र गति से विकसित होते हैं। बच्चों के संवेदी अनुभव इसीलिए वयस्कों से भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे की आंखें जन्म के समय पूर्ण विकसित होती हैं। परन्तु मांसपेशियाँ कमजोर होने के कारण 2-3 मास तक बच्चे की दृष्टि संवेदना स्पष्ट नहीं होती है तथा रंग संवेदना भी बाद में स्पष्ट होती है। बच्चे की त्वचा पर वयस्कों की भांति स्पर्श, दबाव तथा ताप संबन्धी संवेदी कोष होते हैं, परन्तु त्वचा पतली होने के कारण बच्चा वयस्क की अपेक्षा अधिक तीव्रता से स्पर्श, दबाव व ताप का अनुभव करता है। इसी प्रकार "गन्ध संवेदना" तथा 'स्वाद संवेदना' में भी बच्चा के रक्तचाप, नाड़ी गति, शरीर तापमान आदि को प्रभावित करते हैं। आयु के बढ़ने के साथ-साथ हृदय का वजन भी बढ़ता है। लगभग 6-7 वर्ष की आयु में हृदय जन्म की अपेक्षा 5-7 गुण बड़ा हो जाता है तथा परिपक्वता पर जन्म की अपेक्षा हृदय का वजन 12 गुण हो जाता है। शैशवावस्था में रक्तचाप कम होता है, परन्तु किशोरावस्था में रक्तचाप बढ़ जाता है। वयःसन्धि अवस्था में लड़कियों का रक्तचाप व तापमान कुछ अधिक होता है।

(7) यौन-परिपक्वता (Sexual Maturity)–सामान्य मानव प्राणियों में बाल्यावस्था से वयस्कावस्था में पदार्पण पर तीव्र गति से शारीरिक परिवर्तन होते हैं। किशोरावस्था का प्रारम्भ वयःसन्धि अवस्था में होता है और प्रौढ़ावस्था के आरम्भ को इसका अन्त माना जाता है। इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन अत्यधिक तीव्र गति से होते हैं तथा यौन-परिपक्वता देखने में आती है। यह वयःसन्धि अवस्था किशोरावस्था की प्रथम पहचान है। प्रारम्भिक परिवर्तन सरलता से दिखाई नहीं देते हैं। ये परिवर्तन मुख्य यौन-विशेषताओं *(Primary Sex Characteristics)* के विकास द्वारा धीरे-धीरे जनन अंगों के विकास को जारी रखते हैं। लड़कियों में डिम्ब ग्रन्थि *(Ovaries)* तथा गर्भाशय *(Uterus)* तथा लड़कों में शिश्न *(Penis)*, पुरुष ग्रन्थि *(Prostate gland)* तथा प्रजनक-कोष *(Seminal vesicles)* का विकास हो जाता है। लड़कियों में वयःसन्धि सामान्यतः मासिक धर्म चक्र *(Menarche the on set of menstruation)* के प्रारम्भ होने की अवस्था के रूप में जानी जाती है। लड़कियों में वयःसन्धि की औसत आयु 11 से 13 वर्ष होती है। लड़कों में यह अवस्था रंजित *(Public hairs)* के विकास तथा प्रथम रात्रि स्वप्न दोष उत्पन्न होने से मानी जाती है। सामान्यतः यह 13 और 14 वर्ष की आयु होती है। लड़के तथा लड़कियों दोनों में वयःसन्धि अवस्था के दौरान अनेक शारीरिक परिवर्तन होते हैं। जनत ग्रन्थियाँ व यौन अंग बड़े होने शुरू हो जाते हैं। गौण-यौन विशेषताएँ *(Secondary Sex Characteristies)* जैसे लड़की में शरीर बुद्धि, चेहरे पर बाल और आवाज में भारीपन तथा लड़कियों

Scanned with OKEN Scanner

के स्तनों तथा नितम्बों *(Breasts & hips)* का विकास आदि दिखाई देने शुरू हो जाते हैं। परिपक्वता की सम्पूर्ण प्रक्रिया 2 से 4 वर्ष में पूर्ण होती है। ये परिवर्तन यौन-परिपक्वता के प्रारम्भ के चिह्न नहीं हैं, परन्तु प्रक्रिया के मध्य बिन्दु कहे जा सकते हैं। जैसे कि पहले बताया जा चुका है, वयःसन्धि के प्रारम्भ होने की आयु एवं इसकी अवधि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती है। मुख्य यौन विशेषताओं में होने वाले परिवर्तनों एवं विभिन्नताओं के लिए उग्र पीयूष ग्रन्थि *(Anterior Pitutary gland)* के यौन हारमोन *(Gonadotroph Hormon)* की क्रियाशीलता उत्तरदायी है। इस हारमोन की न्यूनता एवं अधिकता सामान्य विकास प्रतिमान को अस्तव्यस्त कर सकती है।

वयःसन्धि अवस्था के साथ कुछ मनोवैज्ञानिक समस्यायें भी हैं। इस अवस्था में शारीरिक परिवर्तन किशोर तथा किशोरियों में असुरक्षा की भावना एवं आत्म-चेतना उत्पन्न करते हैं, विशेषतः जब इनकी पूर्ण जानकारी नहीं होती है। इससे आन्तरिक संतुलन भी अस्तव्यस्त हो जाता है। बच्चों के सामाजिक संबंधों का स्तर बढ़ जाता है। इस अवस्था के बाद विपरीत यौन में रुचि भी बढ़ जाती है। अगर किशोर युवतियाँ वयःसन्धि अवस्था पूरी होने से पूर्व ही मादक द्रव्यों का प्रयोग आरम्भ कर दें तो इनका द्रव्यों का उनकी ग्रन्थियों पर कुप्रभाव पड़ने के कारण उनका कद छोटा रह जाने की सम्भावना होती है। उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास ठीक से नहीं हो पाता है। मनोचिकित्सकों का मत है कि ऐसी व्यसनी युवतियों को मासिक रजस्राव में कठिनाई होती है तथा उनकी शिशु जनन की क्षमता में भी कमी हो जाती है। हालांकि व्यसनी युवतियाँ सामान्य युवतियों की अपेक्षा यौन क्रियाओं में अधिक रुचि लेती हैं फिर भी उनके गर्भाधारण के अवसर कम होते हैं। शिशु को जन्म देने में उनको अपेक्षाकृत अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

(8) शारीरिक अभाव या कमी (Physical Defects)–कोई भी व्यक्ति शारीरिक रूप से पूर्ण नहीं होता है। कुछ शारीरिक दोष वंशानुक्रम से सम्बन्धित होते हैं। कुछ प्रसव काल में त्रुटिपूर्ण वातावरण के परिणामस्वरूप होते हैं तथा कुछ जन्म के दौरान या बाद में दुर्घटना या बीमारी के कारण उत्पन्न होते हैं। किसी प्रकार का शारीरिक दोष बच्चे के व्यवहार एवं विकास पर काफी प्रभाव डालता है। इन दोषों के कारण बच्चों की गतिविधियों एवं शरीर आकार पर प्रभाव पड़ता है, जो उसकी सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक दोष अभिजात समूह *(Peer groups)* में बच्चे की खेलने की क्षमता में अभाव का कारण बनते हैं और साथी खिलाड़ियों के टकराव के कारण बच्चों में हीन भावना उत्पन्न करते हैं।

◆◆◆

3. शारीरिक विकास के महत्त्व या उपयोगिता तथा बालक के उचित शारीरिक विकास में अध्यापक की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

अथवा

शारीरिक विकास का क्या महत्त्व या उपयोगिता है? बालकों के उचित शारीरिक विकास में अध्यापक की भूमिका की विवेचना करें।

उत्तर–शारीरिक विकास का महत्त्व या उपयोगिता (Utility or importance of Physical Development)–बच्चों के अंदर स्वस्थ मानसिक विकास के समान ही स्वस्थ एवं सामान्य शारीरिक विकास का होना भी आवश्यक है। उत्तम शारीरिक विकास बालक के संपूर्ण व्यवहार, व्यक्तित्व एवं समायोजन को प्रभावित करता है।

उत्तम शारीरिक विकास से तात्पर्य है कि बालक में केन्द्रीय नाड़ी संस्थान *(Central Nerous System)* तथा मस्तिष्क *(Brain)*, स्वतंत्र नाड़ी संस्थान *(Autonomic Nervous System)* तथा मांसपेशियों *(Muscles)* आदि का समुचित विकास। किसी एक संस्थान या अंग का कुंठित होना बालक के स्वास्थ्य यहाँ तक कि उसकी मानसिक क्रियाओं के विकास के लिए भी घातक हो सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

हरलॉक का कथन है कि प्रत्येक आयु पर बालक की लम्बाई की अपेक्षा उसका वजन वातावरण के द्वारा अधिक प्रभावित होता है। उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हरलॉक ने बालक के शारीरिक विकास के महत्त्व को निम्न तरीके से समझाया है–

(1) उपयुक्त शारीरिक विकास के कारण बालक के भीतर नये-नये व्यवहारों की क्षमता विकसित हो जाती है। यदि बालक के भीतर नाड़ी मंडल तथा मस्तिष्क का समुचित विकास हुआ हो तो वह उच्चस्तरीय संवेगात्मक, सामाजिक और बौद्धिक व्यवहार प्रदर्शित कर सकता है।

(2) बालक के भीतर विविध प्रकार की शारीरिक क्रियाओं का विकास भी उसकी मांसपेशियों की वृद्धि पर निर्भर करता है। समुचित मांसपेशीय वृद्धि *(Hand Skills)* को विकसित कर पाता है।

(3) बालक के संतुलित व्यवहार को कायम रखने तथा संपूर्ण आंतरिक संतुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि उसके विभिन्न शारीरिक अवयव संतुलित ढंग से कार्य करें। अतः प्रत्येक बालक के भीतर सामान्य कोटि का शारीरिक विकास होना आवश्यक है।

बालक के उचित शारीरिक विकास में शिक्षक की भूमिका *(Role of teacher in proper physical development of child)*

पुराना कहावत है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। अतः बालक के उचित शारीरिक विकास की ओर ध्यान देना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। अतः बालक की शिक्षा में निम्न विशेष सावधानी तथा प्रयत्न किए जाने की आवश्यकता है–

(1) शिशु का शरीर अत्यंत कोमल होता है, अतः बहुत यत्न से उसकी देखभाल तथा पालन-पोषण करने की आवश्यकता होती है। साधारण शब्दों में शारीरिक विकास से अभिप्राय शरीर में होने वाले विकास से है। शारीरिक विकास जन्म से पूर्व गर्भधारण अवस्था से ही प्रारंभ हो जाता है। गर्भकालीन अवस्था में शारीरिक विकास अत्यधिक तीव्र गति से होता है। एक सूक्ष्म जीव कोश नौ महीने के अंदर एक मानव शिशु का रूप ले लेता है। जन्म के पश्चात् भी विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं के अंतर्गत शारीरिक विकास लगातार होता रहता है। शारीरिक विकास से तात्पर्य बालक की सामान्य शारीरिक संरचना, शरीर का भार, ऊंचाई, आंतरिक अंगों, शारीरिक अवयवों का विकास, स्नायुमंडल तथा मस्तिष्क का विकास, हड्डियों तथा मांसपेशियों का विकास तथा अन्तःस्रावी ग्रंथियों के विकास से है। इनमें से भी एक अंग के विकास के कुंठित हो जाने से बालक के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही प्रभाव नहीं पड़ता, वरन् उसका मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, क्रियात्मक विकास आदि भी प्रभावित होता है, क्योंकि बालक का शारीरिक विकास उसके अन्य सभी प्रकार के विकासों के साथ किसी न किसी रूप में सम्बन्धित होता है।

अन्य शब्दों में मनुष्य एक मनो-शारीरिक प्राणी है। जन्म के समय वह शारीरिक तथा मानसिक रूप से अविकसित होता है। आयु बढ़ने पर उसमें दोनों दृष्टियों से परिपक्वता आने लगती है। शारीरिक तथा मानसिक विकास अन्तःसम्बन्धित होते हैं।

कोलेस्निक के अनुसार–"अभिवृद्धि, विकास, परिपक्वता तथा अधिगम शब्द शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक परिवर्तनों का संकेत देते हैं, जिन्हें व्यक्ति जीवन में अग्रसर होने पर अनुभव करता है।"

सौरन्सन का कथन–"नवजात शिशु का शरीर तब तक अभिवृद्धि तथा विकास करता है जब तक वह एक वयस्क शरीर नहीं हो जाता।"

क्रो तथा क्रो के विचार से–"बालक पहले मुख्यतः एक शारीरिक प्राणी है। उसका शारीरिक गठन उसकी मनोवृत्तियों तथा व्यवहार के विकास का आधार है। अस्तु उसके शारीरिक वृद्धि के प्रतिमानों का अध्ययन करना आवश्यक है।

शारीरिक विकास को कल्पना के **निम्नलिखित दो अंग हैं**–

(i) शरीर रचना में विकास तथा

(ii) शरीर क्रिया का विकास।

Scanned with OKEN Scanner

प्रथम के अंतर्गत शरीर का आकार, भार, ऊंचाई, अवयवों का शरीर से अनुपात, हड्डियों, दांत आदि का अध्ययन होता है, जबकि द्वितीय में स्नायु तंत्र, हृदय तथा रक्त संचार तंत्र, श्वसन प्रणाली, पाचन संस्थान, मांसपेशियों तथ अन्तस्रावी ग्रंथियों का अध्ययन होता है।

बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Physical Development of the Child)

बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक निम्नलिखित हैं–

(1) वंशानुक्रम–माता-पिता की शारीरिक रचना तथा स्वास्थ्य का प्रभाव संतान पर भी पड़ता है। रुग्ण तथा निर्बल माता-पिता के बच्चे भी वैसे ही होते हैं। स्वस्थ माता-पिता की संतान का ही स्वस्थ शारीरिक विकास होता है।

(2) वातावरण–बालक के स्वाभाविक विकास में वातावरण के तत्त्व सहायक अथवा बाधक होते हैं। शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप तथा स्वच्छता ऐसे ही तत्त्व हैं। संकरी गलियों तथा भवनों में निवास करने वाले किसी न किसी रोग से ग्रस्त होते हैं तथा अस्वस्थ रहते हैं। पर्याप्त धूप का सेवन करने वाले बालकों को सर्दी, जुकाम, खांसी तथा आंखों की कमजोरी जैसे रोग नहीं होते। स्वच्छता उत्तम स्वास्थ्य का आधार होती है।

(3) बुद्धि (Intelligence) –विभिन्न अध्ययनों के अनुसार बुद्धि एक ऐसा महत्त्वपूर्ण कारक है, जो बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करता है। चलना, उठना, बैठना, दौड़ना, कूदना आदि सभी व्यवहार बुद्धि से सम्बन्धित होते हैं। अत्यधिक बुद्धिमान बालकों में यह गत्यात्मक व्यवहार जल्दी ही विकसित हो जाता है। यह भी देखा गया है कि अधिक बुद्धि वाले बालकों का स्वास्थ्य और लम्बाई अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक होती है।

(4) भोजन (Food)–बालक के सामान्य विकास या वृद्धि के लिये भोजन एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। संतुलित भोजन बालक को प्रारंभिक विकास की अवस्थाओं में आवश्यक होता है। यदि भोजन दोषपूर्ण या असंतुलित होगा तो बालकों को विभिन्न प्रकार के रोगों का सामना करना पड़ता है। इन रोगों में दांतों के रोग, चर्म रोग *(Skin Disease)*, दृष्टि रोग *(Eye Sight Defects)* आदि सम्मिलित हैं। अतः बच्चों के विकास की अवस्थाओं के अनुसार उन्हें संतुलित भोजन देना अनिवार्य होता है। संतुलित भोजन में कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, चिकनाई, विटामिन तथा अन्य खनिज पदार्थ आदि होने चाहिए, विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है, इसके लिए चिकित्सकों से परामर्श भी लिया जा सकता है।

(5) ग्रंथियों की क्रियायें (Activities of Glands)–आंतरिक ग्रंथियों की क्रियायें भी बालक के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। बच्चों की थाइराइड ग्रंथियों और पाइनियल ग्रंथियों की अति सक्रियता या निष्क्रियता बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास को प्रभावित करती है। पाइनियल ग्रंथियों को मुख्य ग्रंथियाँ भी कहते हैं। ये ग्रंथियाँ शरीर के आकार को बढ़ाने में योगदान देती हैं। इनकी निष्क्रियता से बच्चा छोटे कद का रह जाता है। थाइराइड ग्रंथियों में सक्रियता न होने से मानसिक स्तर पर प्रभावित होता है। इसी प्रकार लिंग ग्रंथि के देर से सक्रिय होने के कारण युवावस्था के आने में देरी हो सकती है और इनके शीघ्र सक्रिय होने से युवावस्था जल्दी आ सकती है।

(6) यौन (Sex)–नवजात शिशु का यौन भी उसके शारीरिक विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। जन्म के समय लड़का-लड़की की अपेक्षा प्रायः कुछ अधिक विकसित होता है। हमारी संस्कृति में भी लड़के को लड़की की अपेक्षा खाने-पीने आदि में वरीयता दी जाती है, जिससे उसका शारीरिक व व्यक्तित्व विकास लड़कियों की अपेक्षा भिन्न होता है। दूसरे, लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक शक्ति लगने वाले कार्य करते हैं, जिससे उनका शरीर लड़कियों से अधिक विकसित हो जाता है। परन्तु वयःसन्धि अवस्था जल्दी प्रारम्भ होने से लड़कियों का शारीरिक विकास इस अवस्था में लड़कों से बढ़ोत्तरी प्राप्त कर लेता है। किशोरावस्था के लिए अपेक्षित परिवर्तन लड़कों में लड़कियों की अपेक्षा देरी से होते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि बच्चों के शारीरिक विकास पर यौन का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

Scanned with OKEN Scanner

(7) शारीरिक व्यायाम (Physical Exercise)–बच्चों के शारीरिक विकास और वृद्धि के लिये शारीरिक व्यायाम और क्रियायें अति आवश्यक होती हैं। इनसे उनकी मांसपेशियों का अधिक विकास होता है तथा वे अधिक मजबूत होती हैं। स्कूल कार्यक्रमों में शारीरिक व्यायाम और क्रियाओं को व्यवस्थित करना अध्यापक का कर्तव्य बन जाता है। इन क्रियाओं में खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि शामिल किये जा सकते हैं।

(8) गर्भकाल एवं जन्म दशाएँ (Prenatal and Birth Condition)–औरत के गर्भावस्था *(Pregnancy)* के दौरान बच्चे के शारीरिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं, जिनके कभी-कभी गर्भस्थ शिशु की रचना पर भी प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरणार्थ, माता के आहार में पौष्टिक तत्वों की कमी के कारण भ्रूण *(Foetus)* निश्चित रूप से माता की रक्त धारा से मिलने वाले भोजन तत्वों से वंचित रह जाता है। परिणामस्वरूप उसका विकास अवरूद्ध हो जाता है। माता द्वारा रोग संचार *(Infection)* विशेषतः सिफ्लिस *(Syphills)* बीमारी भ्रूण के नाड़ी संस्थान को प्रभावित कर सकती है। इसी प्रकार अन्य बीमारियाँ भी गर्भावस्था के प्रारम्भिक सप्ताहों में प्रायः भ्रूण को प्रभावित करती हैं। कभी-कभी जन्म प्रक्रिया के दौरान संयोग से बच्चे के सिर आदि से चोट लग जाने के कारण भी नवजात शिशु के विकास में क्षति *(Impairment)* पाई जाती है। गर्भवती माताओं द्वारा नशीले द्रव्यों *(Abured drugs)*, हीरोईन, गांजा व सिगरेट तथा पीड़ा नाशक *(Analgesics)* दवाओं आदि का सेवन बच्चे पर अवशिष्ट प्रभाव छोड़ जाता है। चिकित्सकों का मत है कि सिगरेट तथा धूम्रपान का उपयोग करने वाली युवतियों की संतान का वजन कम होता है। बौद्धिक स्नायविक विकास भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। बच्चों को प्रायः दस्त लगे रहते हैं। बार-बार उल्टी आती है तथा बच्चे सुस्त रहते हैं। क्योंकि स्तन पान से निकोटिन का कुछ अंश दूध के द्वारा बच्चों में प्रवेश कर जाता है, जिससे बच्चों का शारीरिक तथा मानसिक विकास प्रभावित होता है।

(9) खुली हवा तथा धूप (Fresh air and Sunlight)–कक्षा और घर में बच्चों को खुली हवा और धूप की अत्यंत आवश्यकता होती है। इनसे बच्चों के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अच्छे और दोषपूर्ण वातावरण में पले बालकों में अंतर स्पष्ट रूप से झलकता है।

(10) लैंगिक-अन्तर (Sex-difference)–विकास की विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन करने से यह मालूम पड़ता है कि विकास की गति में लड़कियां, लड़कों से कई बार आगे निकल जाती हैं। वयस्कता प्राप्त करने में लड़कियाँ लड़कों को पीछे छोड़ देती हैं अर्थात् लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा जल्दी वयस्क होती हैं। इसी प्रकार लड़कियाँ शारीरिक रूप से अपना पूर्ण आकार लड़कों से पहले अर्जित कर लेती हैं।

(11) विकास के प्रारम्भिक-वर्षों में स्वास्थ्य के निवारक एवं रोगनाशक पक्ष (Preventive and Curtive Aspects of Health in the Early Years)–बच्चे के वाह्य व्यवहार से ही उसके स्वास्थ्य की झलक मिलती है। यदि बच्चा हँसमुख, उसकी आंखें चमकीली, मांसपेशियाँ स्वस्थ, कन्धे गोल व सीना तना हुआ तथा वह सक्रिय एवं अनुक्रियाशील *(Active and responsive)* है तो हमें समझना चाहिए कि बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा है। हरलॉक *(Hurlock, 1978)* ने भी स्वस्थ बच्चे के इन लक्षणों का समर्थन किया है। परन्तु बच्चे को इस प्रकार स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए हमें बच्चों के स्वास्थ्य की क्षति एवं अभाव के निवारण के लिए प्रयास भी करने चाहिए। एक स्वस्थ शारीरिक विकास के लिए हम तभी विश्वस्त हो सकते हैं, यदि हम गर्भ धारण की अवस्था से ही बच्चे की देख-भाल आरम्भ करते हैं।

क्योंकि भ्रूण अपना पोषक मुख्यतः गर्भवती माता से ही प्राप्त करता है, अतः यह अत्यावश्यक है कि माता का आहार पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक एवं संतुलित होना चाहिए। यदि माता का आहार, मात्रा व गुणों में अनुपयुक्त है तो भ्रूण में विटामिन-ए, लोहा व अन्य पौष्टिक रसायनों की कमी हो जाती है। भारतीय नारियों में सामान्यतः रक्तक्षीणता *(Anaemia)* की शिकायत होती है और यह गर्भवती शिशु पर कुप्रभाव डालती है। गर्भवती तथा बच्चे को दूध पिलाने वाली माताओं *(Nursing mother)* को उनकें आहार में दूध, अण्डा, दालें, हरे पत्तों वाली सब्जियाँ और रेशे वाला अन्न लेना चाहिए, जिससे उनके शरीर में ऊर्जा की पर्याप्त मात्रा *(calories)* प्रोटीन तथा विटामिन की कमी नहीं होने पाए। अतः गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली माताओं के लिए पर्याप्त पौष्टिक आहार एवं उपयुक्त चिकित्सा की सुविधाएँ जुटाई जानी चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

बच्चों की सामान्य शारीरिक वृद्धि के लिए विशेष रूप से उनके प्रारम्भिक वर्षों में उन्हें पौष्टिक व संतुलित भोजन मिलना चाहिए। क्योंकि इन्हीं दिनों में विकास तीव्र गति से होता है। भोजन से बच्चे की वृद्धि व विभिन्न क्रियाओं के लिए अपेक्षित ऊर्जा प्राप्त होती है। बच्चे को उसके वजन के अनुसार ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा को कैलॉरी के रूप में मापा जाता है। जैसे शरीर के प्रति 1 किलो वजन के लिये 120 कैलॉरीज अथवा 1-2 वर्ष के बच्चे को प्रतिदिन 100 कैलॉरीज ऊर्जा की आवश्यकता होती है। भोजन में आवश्यक पौष्टिक तत्वों जैसे प्रोटीन, वसा, खनिज लवण एवं विटामिन की उचित मात्रा पर ही वह संतुलित आहार कहलाता है। सभी पौष्टिक तत्व हमारी शरीर में कैलॉरीज की कमी को पूरा करने में सहायता प्रदान करते हैं। प्रोटीन हमें दूध, अण्डे, मांस, दालों-मटर, विशेषतः सोयाबीन आदि के सही अनुपात से प्राप्त होती है। ऊर्जा का ठोस स्रोत वसा होती है। वसा की प्रचुर मात्रा हमें मांस, अण्डे, दूध, घी तथा तिलहन बीजों से मिलती है। विकासशील बच्चों के लिए कैल्शियम *(Calcium)* तथा लोहा *(Iron)* उनकी हड्डियों एवं दांतों की बनावट तथा धारा में हीमोग्लोबिन *(Heamoglobin)* के लिए अत्यावश्यक होते हैं। बच्चे को दूध, मछली, हरे पत्तों वाली सब्जियों एवं अन्न से पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम तथा लोहा उपलब्ध हो सकता है। विटामिन बच्चों के अच्छे स्वास्थ्य एवं नियमित शारीरिक क्रियाओं के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनकी कमी के कारण अनेक बीमारियाँ देखने में आती हैं, जैसे विटामिन ए, बी काम्पलेक्स, विटामिन सी, डी इत्यादि की कमी के कारण क्रमशः दृष्टि आन्तरिक वातावरण का संतुलन, दांतों व हड्डियों का विकास प्रभावित होता है।

(12) परिवार एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर (Family and Socio-Economic Status)–पारिवारिक वातावरण से सम्बन्धित कारकों की अन्तःक्रियाएँ बच्चे के शारीरिक व मानसिक विकास को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। निम्न आर्थिक स्तर एवं परिवार में बच्चों की संख्या का भी विकास के साथ सम्बन्ध है। एक ही समुदाय में जिन परिवारों का सामाजिक आर्थिक स्तर उच्च है, उनके बच्चों का शारीरिक विकास अपेक्षाकृत जल्दी एवं ज्यादा होता है। जैसे उच्च सामाजिक एवं आर्थिक स्तर वाले समूह के बच्चों में वयःसन्धि अवस्था पहले प्रारम्भ होती है। अधिक पौष्टिक आहार, अनुकूल वातावरण, रोग-रोकथाम जैसी सुविधाएँ इत्यादि अनेक ऐसे कारक हैं जो उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवार के बच्चों में उचित एवं स्वस्थ विकास के लिये सहायक सिद्ध होते हैं।

(13) व्याधियाँ या बीमारियाँ (Diseases)–बच्चों को कुछ रोग जहाँ माता-पिता से प्राप्त होते हैं वहाँ जन्म के बाद भी उन्हें अनेक शारीरिक बीमारियाँ लग सकती हैं। अनेक प्रकार के रोग हैं जो बच्चों के विकास को मन्द या अवरुद्ध करने के लिए उत्तरदायी होते हैं, जैसे सूखा रोग, पोलियो इत्यादि। इनके उपचार की दोषपूर्ण प्रविधियों व औषधियों का भी बच्चे के विकास पर कुप्रभाव पड़ता है।

(14) नियमित दिनचर्या (Regular Routine)–उत्तम स्वास्थ्य के लिए नियमित दिनचर्या आवश्यक होती है। बालक के खाने, पीने, पढ़ने-खेलने तथा सोने आदि के लिए समय निश्चित होना चाहिए। इन सब कार्यों के नियमित समय पर होने से बालक के स्वस्थ शारीरिक विकास में बड़ी सहायता मिलती है।

(15) निद्रा तथा विश्राम (Sleep and Rest)–शरीर के स्वस्थ विकास के लिए निद्रा तथा विश्राम आवश्यक होते हैं। तीन-चार वर्ष की आयु में शिशु के लिए बारह घंटे की निंद्रा आवश्यक होती है। बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में क्रमशः दस तथा आठ घंटे की निद्रा पर्याप्त होती है। बालक को इतना विश्राम अवश्य मिलना चाहिए जिससे उसकी थकान पूर्ण रूप से दूर हो जाये।

(16) प्रेम (Love)–बालक के उचित शारीरिक विकास पर माता-पिता के प्यार का बहुत प्रभाव पड़ता है। परिवार का स्नेह न मिलने पर वह दुखी रहने लगता है तथा उसके शरीर का संतुलित विकास नहीं हो पाता।

(17) सुरक्षा (Security)–सुरक्षा की भावना बालक के सम्यक् शारीरिक विकास को गति देती है। इस भावना के अभाव में बालक भयग्रस्त एवं चिंतित रहता है तथा उसका आत्मविश्वास जाता रहता है। ये सब बातें उसके विकास में बाधक होती हैं।

(18) संवेगात्मक-व्यवधान (Emotional Disturbances)–संवेगात्मक व्यवधान भी बालक के शारीरिक विकास को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ–हरलॉक *(Hurlock)* का कथन कि

Scanned with OKEN Scanner

यदि कुछ समय तक संवेगात्मक व्यवधान में रहता है तो यह व्यवधान पिट्यूटरी ग्रंथि *(Pituitary gland)* से निकलने वाले हारमोन को अवरूद्ध कर देता है, जिससे बालकों की लम्बाई अवरूद्ध हो जाती है।

(19) अन्य कारक (Other Factors)–शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले अन्य घटक अथवा तत्त्व निम्नलिखित हैं–

(i) गर्भिणी माँ का स्वास्थ्य।
(ii) रोग अथवा दुर्घटना के कारण उत्पन्न शारीरिक न्यूनताएं, विकृतियाँ अथवा अयोग्यताएं।
(iii) जलवायु
(iv) सामाजिक परंपराएं
(v) परिवार का रहन-सहन तथा
(vi) आर्थिक स्थिति।

◆◆◆

II. बौद्धिक या मानसिक विकास (Intellectual or Mental Development)

1. मानसिक या बौद्धिक विकास से आपका क्या अभिप्राय है? बाल्यावस्था के दौरान बालकों के विभिन्न मानसिक या बौद्धिक पक्षों या पहलुओं का विकास कैसे होता है? विवेचना कीजिये।

अथवा

मानसिक या बौद्धिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुये बाल्यावस्था के दौरान होने वाले बालकों के विभिन्न मानसिक या बौद्धिक पक्षों या पहलुओं के विकास का वर्णन करें।

उत्तर–मानसिक विकास को बौद्धिक विकास या ज्ञानात्मक विकास *(Intellectual or Cognitive Development)* भी कहते हैं। व्यापक दृष्टिकोण से मानसिक विकास में निम्नलिखित पक्ष शामिल किए जाते हैं–1. स्मृति की योग्यताएँ *(Abilities in memory)*, 2. कल्पना *(Imagination)*, 3. भाषा का विकास *(Language development)*, 4. प्रत्यक्षीकरण *(Perception)*, 5. प्रत्यय *(Concepts)*, 6. समस्या समाधान की योग्यता *(Problem solving ability)*। मानसिक विकास की जटिलता ने बौद्धिक विकास के मापन को भी कठिन बना दिया है।

मानसिक या बौद्धिक विकास का अर्थ (Meaning of Intellectual or Mental Development) –मानसिक अथवा बौद्धिक विकास से तात्पर्य व्यक्ति की उन सभी मानसिक योग्यताओं और क्षमताओं में वृद्धि और विकास से है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बदलते हुए परिवेश के साथ ठीक प्रकार समायोजन करता है और समस्त कठिनाइयों का हल ढूँढ़ने में अपनी मानसिक शक्तियों को समर्थ पाता है। जन्म के समय बच्चे का केवल शरीर ही होता है और उस शरीर में अर्थहीन भावनाएँ होती हैं, लेकिन समय के साथ-साथ, धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन आते हैं और इन्हीं परिवर्तनों को मानसिक विकास कहते हैं।

लॉक *(Locke)* ने जन्म के समय बच्चे के मस्तिष्क को एक 'कोरी स्लेट' *(Tabula Rasa)* का नाम दिया है और अनुभव द्वारा ही मस्तिष्क में विचारों और अर्थ की उत्पत्ति होती है। प्रथम अनुभव किसी अर्थ के बिना होता है, परन्तु किसी अनुभव को दोहराते रहने से वह अनुभव मस्तिष्क के लिए महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। ये अनुभव महत्त्वपूर्ण तभी बनते हैं जब विचार *(Ideas)*, स्मृतियाँ *(Memories)* और संवेगात्मक दृष्टिकोण *(Emotional Attitudes)* में सम्बन्ध स्थापित होता है। लेकिन **कोफ्का** *(Koffka)* का कहना है कि, पहला-पहला अनुभव भी अर्थ-विहीन नहीं होता। प्रत्येक अनुभव में किसी न किसी प्रकार का अर्थ विद्यमान रहता है। एक प्रकार के अर्थ से दूसरे प्रकार के अर्थ का ज्ञान होता है। *(No experience—not even a first experience is devoid of meaning. Some kind of meaning is present in every experience.)*

Scanned with OKEN Scanner

मानसिक विकास का दो दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है। प्रथम, परिमाणात्मक मानसिक परीक्षण *(Quantitative Mental Testing)*; द्वितीय, गुणात्मक विकासात्मक मनोविज्ञान *(Quantitative or Normative Developmental Psychology)*, प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार इस बात का अध्ययन किया जाता है कि किसी विशेष आयु-वर्ग के शिशुओं की तुलना में किसी विशेष शिशु की मानसिक योग्यताएँ कितनी हैं? दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार इस बात का पता लगाया जाता है कि शिशु किस तरह की योग्यताओं और प्रत्ययों *(Concepts)* का प्रदर्शन करता है।

परिमाणात्मक मानसिक अभिवृद्धि *(Quantitative Mental Growth)* के अन्तर्गत व्यक्ति की बुद्धि शामिल है। गुणात्मक मानसिक वृद्धि *(Qualtitative mental growth)* के अन्तर्गत मानसिक प्रक्रियाओं *(Development of mental processes)* का विकास सम्मिलित करते हैं।

बाल्यावस्था के दौरान विभिन्न मानसिक या बौद्धिक पक्षों का विकास *(Development of various aspects of Mental or Intellectual Development during Childhood)*

मानसिक विकास में विभिन्न प्रक्रियाओं का समावेश होता है। इन प्रक्रियाओं द्वारा बच्चा विभिन्न मानसिक क्षेत्रों में समय के साथ-साथ धीरे-धीरे विकसित होता रहता है। परिणामस्वरूप बच्चे की विभिन्न मानसिक योग्यताएँ और शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। मानसिक विकास के क्षेत्रों या पहलुओं का ज्ञान अध्यापक को कक्षा में अत्यधिक समझदार बना देता है। अतः इनका अध्ययन अति आवश्यक है। मानसिक विकास की प्रक्रिया में निम्नलिखित पक्ष या क्षेत्र या पहलू शामिल होते हैं–

(A) संवेदन और प्रत्यक्षीकरण (Sensation and Perception)–प्रत्यक्षीकरण में वे सभी प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जिनके द्वारा हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रदान किए गए सभी सन्देशों को प्राप्त करते हैं। *(A perception pertains to the processes by which we read messages that are conveyed by our senses. — David Elkind & Irving B, Weiner)*

लेकिन बालक की प्रत्यक्ष-ज्ञान योग्यता *(Perceptual Ability)* उसकी संवेदन क्षमता में वृद्धि होने से बढ़ती है और उसकी संवेदन क्षमता *(Sensation)* उसकी ज्ञानेन्द्रियों अर्थात् कान, नाक, जीभ आदि के विकास द्वारा बढ़ती है। जीवन के प्रथम वर्षों में प्रत्यक्षीकरण का विकास ही अत्यधिक होता है। प्रारम्भ में तो बच्चे की संवेदन क्षमता और प्रत्यक्षीकरण अविकसित होते हैं। साधारण भाषा में हम यह कह सकते हैं कि प्रारम्भ में बच्चों में वस्तुओं को पहचानने या अर्थ जानने का योग्यता विकसित नहीं होती।

प्रत्यक्षीकरण और संवेदन का आपस में गहरा सम्बन्ध है। क्योंकि सबसे पहले संवेदन द्वारा ही ज्ञानेन्द्रियों से हमें सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, और फिर हम उसका अर्थ निकालते हैं। यह अर्थ निकालने की प्रक्रिया ही प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* कहलाती है। प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत कुछ प्रत्यक्ष-ज्ञान योग्यताएँ *(Perceptual abilities)* प्रमुख होती हैं, जैसे–दृश्य *(Visual)*, श्रव्य *(Auditory)*, स्वाद *(Taste)*, सूँघना *(Smell)* और स्पर्श *(Touch)* इत्यादि।

इन्द्रियाँ जन्म के समय से ही विकसित होती हैं और जन्म के पश्चात् उनमें परिपक्वता आने लगती है। इन इन्द्रियों को साधारण माना गया है, लेकिन **गिबसन** *(Gibson)* के अनुसार यही इन्द्रियाँ बच्चे का 'संवेदी तंत्र' *(Sensory System)* बनाती है, क्योंकि ये इन्द्रियाँ दूसरी संवेदी प्रक्रियाओं *(Sensory Processes)* के साथ अन्तःक्रिया *(Interaction)* करती है। उदाहरणार्थ, सूँघना *(Smell)* और स्वाद *(Taste)* दोनों ही दृश्य-संवेदन *(Visual Sensation)* से सम्बन्धित होते हैं।

विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में तो बच्चे की दृष्टि स्थिर नहीं होती। वह अपने आसपास की वस्तुओं पर नज़र नहीं टिका सकता, लेकिन वह नज़र टिकाने का प्रयास अवश्य करता है। यह संवेदन *(Sensation)* की पहली अवस्था होती है।

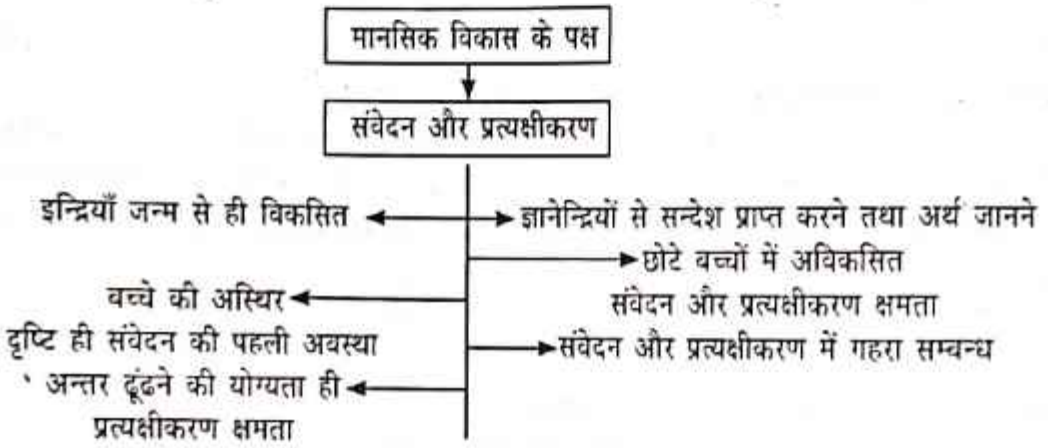
व्यक्तियों में, वस्तुओं में विभेदीकरण करना, ध्वनि को पहचानना आदि प्रत्यक्षीकरण की क्षमता के विकास की ओर संकेत करते हैं। धीरे-धीरे वह सभी ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग शुरू कर देता है। उसमें अपने आसपास के वातावरण को जानने की आकांक्षा पैदा होती है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया इस उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट की जा सकती है—बच्चा किसी वस्तु को एक कोने पर रखने का प्रयत्न करता है तो वह उसे मेज़ पर न रखकर मेज़ की ऊँचाई से कम या ज़्यादा रखकर या इधर-उधर करके छोड़ देता है और वह समझता है कि उसने उस वस्तु को मेज पर रख दिया है। विकास की अवस्थाओं के साथ-साथ उसकी प्रत्यक्ष ज्ञान की योग्यता *(Perceptual Ability)* भी बढ़ती रहती है। परिपक्वता ग्रहण करने के पश्चात् वह उस वस्तु को नीचे या इधर-उधर कदापि नहीं गिरने देगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसिक विकास की प्रक्रिया में संवेदन और प्रत्यक्षीकरण के विकास का कितना महत्त्व है। संक्षेप में, संवेदन और प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी तथ्य निम्नलिखित हैं—

1. समस्त ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संदेश प्राप्त करने की प्रक्रिया ही अर्थ जानने की प्रक्रिया ही क्रमशः संवेदन और प्रत्यक्षीकरण हैं।
2. बहुत छोटे बच्चों में संवेदन और प्रत्यक्षीकरण अविकसित होते हैं।
3. संवेदन और प्रत्यक्षीकरण में गहरा सम्बन्ध होता है।
4. इन्द्रियाँ जन्म के समय से ही विकसित होती हैं तथा जन्म के पश्चात् वे और परिपक्व हो जाती हैं।
5. प्रारम्भिक संवेदन की अवस्था है—बच्चे की दृष्टि का अस्थिर होना।
6. अन्तर ढूँढ़ने की योग्यता का अर्थ है—प्रत्यक्षीकरण क्षमता में वृद्धि का होना।



चित्र : मानसिक विकास का पक्ष

(B) भाषा का विकास (Language Development)—मानसिक विकास भाषा के विकास के साथ भी जुड़ा हुआ है। इस आयु में भाषा का विकास अधिकतर 'क्यों' *(Why)* और 'कैसे' *(How)* पर ही आश्रित होता है। 'क्यों' और 'कैसे' दोनों ही परस्पर सम्बन्धित हैं। बच्चे में बयस्कों की भाषा का अनुकरण ही होता है। जैसे—विकास भी विकास की अवस्थाओं के अनुसार ही होता है। जैसे—

1. प्रारम्भ में बालक चिल्लाता है या किलकारी जैसी ध्वनियाँ निकालता रहता है।
2. यही किलकारियाँ बच्चों की इच्छाओं की संकेतक होती हैं।
3. जन्म के बाद प्रथम वर्ष में बच्चा कुछ शब्द सीख जाता है तथा फिर उसका शब्द भंडार बढ़ने लगता हैं।
4. भाषा के विकास में अनुकरण *(Imitation)* का बहुत महत्त्व होता है।
5. कई बार बच्चों में भाषा सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे—तुतलाना, हकलाना आदि।
6. शब्द-कोष में वृद्धि होने से उनमें वाक्य-निर्माण और अपने भावों को व्यक्त करने की क्षमता में भी वृद्धि होती रहती है।
7. बचपन में कुछ शब्दों के विकास से लेकर किशोरावस्था तक भाषा विकास में परिपक्वता आ जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

8. किशोरों का वातावरण भी भाषाई-कौशलों के विकास का उत्तरदायी है। बच्चे जो बेहतर सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखते हैं, उनमें भाषा की योग्यताओं का उत्तम विकास होता है।
9. परिवार में अकेला बच्चा हो तो उसका भाषाई विकास अधिक देखा गया है, क्योंकि बच्चा वयस्कों की भाषा का अनुकरण करता है। जुड़वा बच्चे एक-दूसरे की भाषा का अनुकरण करते हैं।
10. बुद्धि *(Intelligence)* और भाषाई कौशल *(Linguistic skills)* भी आपस में सम्बन्धित होते हैं। उच्च-बुद्धि स्तर वाले बालकों में भाषाई-कौशलों का स्तर भी उच्च ही होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों की भाषा के विकास में घर के वातावरण का बहुत हाथ होता है। अध्यापक भी परिवार की सहायता से बच्चों को भाषा विकास के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान कर सकता है।

(C) बोध शक्ति का विकास (Development of Power of Understanding)—बोध शक्ति के अन्तर्गत विभिन्न सप्रत्ययों या धारणाओं *(Concepts)* का विकास सम्मिलित है, जैसे स्वयं का प्रत्यय, स्थान का प्रत्यय, भार, संख्या, आकार, स्वरूप तथा सौन्दर्यात्मक अनुभूति *(Concepts of time, space, weight, number, size, form and aesthetic sense)*। इस प्रकार के प्रत्ययों का विकास बच्चों में धीरे-धीरे होता है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है—

1. स्वयं की धारणा या प्रत्यय (Self-concept)—जब बच्चा यह समझने लगे कि उसका किन-किन चीजों से सम्बन्ध है तो इसका अर्थ है वह स्वयं ही धारणा यह प्रत्यय प्रस्तुत कर रहा है। उसे भूख-प्यास लगती है और वह खाना और पानी माँगता है। वह अपने कपड़े माँगता है। वह अपने उन खिलौनों को माँगता है जिन्हें उसे दूर छुपा कर रख दिया गया होता है। ऐसा वह 2-3 वर्ष की आयु तक करना शुरू कर देता है और धीरे-धीरे वह स्वयं को और वस्तुओं से जोड़ लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसमें स्वयं के बारे में धारणा का विकास हो गया है।

2. समय की धारणा या प्रत्यय (Time Concept)—4-5 वर्षों की आयु तक तो बच्चा 2-3 दिन पहले हुई घटनाओं को जोड़ने का प्रयास करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसमें समय सम्बन्धी धारणा विकसित हो गई है। वह कल, आज, परसों, सप्ताह, महीने, वर्ष आदि का अर्थ समझने लगता है। दिन, सप्ताह, महीने, वर्ष, घंटे, मिनट आदि की अवधि का ज्ञान भी धीरे-धीरे उसे होने लगता है।

3. स्थान की धारणा या संप्रत्यय (Space Concept)—जब बालक यह समझना शुरू कर दे कि उसे किसी वस्तु को कहाँ रखना है या उसे कहाँ बैठना है और कहाँ नहीं बैठना, तब उसका अर्थ है कि उसमें 'स्थान' सम्बन्धी धारणा विकसित हो गई है। उसे 2-3 वर्ष की आयु के पश्चात् शुरू हो जाता है।

4. भार की धारणा या प्रत्यय (Weight Concept)—आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चों को यह स्पष्ट होने लगता है कि कौन-सी चीज़ भारी है और कौन-सी हल्की। 4-5 वर्ष की आयु तक बच्चा यह बताने लगता है कि वह क्या-क्या नहीं उठा सकता।

5. संख्याओं का प्रत्यय या धारणा (Number Concept)—शुरू में बच्चा संख्याओं से अनभिज्ञ होता है, लेकिन 2-3 वर्षों की आयु तक अपनी ऊँगलियों को गिनने के योग्य हो जाता है। वह गिनने के प्रयास में गलती भी कर सकता है। इस प्रकार बच्चों में संख्याओं सम्बन्धी धारणा का विकास होता है।

6. आकार का प्रत्यय धारणा (Size Concept)—मानसिक विकास का एक आवश्यक पक्ष है, बालक में आकार सम्बन्धी धारणा का विकास होना। इसका अनुभव तब लगता है जब बच्चा विभिन्न चीज़ों को उनके आकार के अनुसार व्यवस्थित करता है, जैसे किसी खिलौने के विभिन्न भागों को।

7. स्वरूप का प्रत्यय या धारणा (Form Concept)—जब बच्चा किसी त्रिकोण, वृत्त या सीधी लाईन को समझने लगता है, तब हम कहते हैं कि उसमें 'स्वरूप' सम्बन्धी धारणा का विकास हो गया है। इस विकास के समय वह त्रिभुज, वृत्त, रेखा इत्यादि शब्दों का प्रयोग करने लगता है।

Scanned with OKEN Scanner

8. सौन्दर्यात्मक अनुभूति (Aesthetic Sense)—बच्चे अक्सर सुन्दर वस्तुओं से प्रेम करते हैं। वे रंगों को अधिक पसंद करते हैं। बच्चे कागज़ पर चित्रों की ड्राईंग करते हैं तथा उन्हें वे अपने माता-पिता को दिखाते हैं। वे सुन्दर कपड़े पहन कर ही बाहर जाना पसंद करते हैं। बच्चों के इस प्रकार के विकास से यह स्पष्ट होता है कि मानसिक विकास का सम्बन्ध सौन्दर्यात्मक अनुभूति से भी है।

ये सभी प्रत्यय या धारणाएँ एक-दूसरे पर आश्रित हैं तथा बच्चों में एक साथ ही विकसित होती हैं। अतः यह कहना बहुत कठिन है कि बच्चे में किस धारणा का विकास किस धारणा के पश्चात् होता है।

(D) तर्क-शक्ति और निर्णय लेना (Power of Reasoning and Judgement)—बच्चों में तर्क-शक्ति और निर्णय लेने की शक्ति का संकेत हमें तब मिलता है जब वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से करने लगे। 2 वर्ष की आयु तक वह प्रवाह सहित बोलने लगता है। जब वह 'क्यों' का प्रयोग अधिक करने लगता है तो उसका अर्थ यह है कि उसमें तर्क-शक्ति का विकास हो चुका है। जब वह यह कहने लगता है कि वह 'यह पुस्तक पढ़ेगा' और 'यह पुस्तक नहीं पढ़ेगा' तो इसका अर्थ हुआ कि उसमें निर्णय लेने की क्षमता का विकास हुआ है। तर्क-शक्ति और निर्णय लेने की शक्ति का सम्बन्ध भाषा के विकास के साथ होता है।

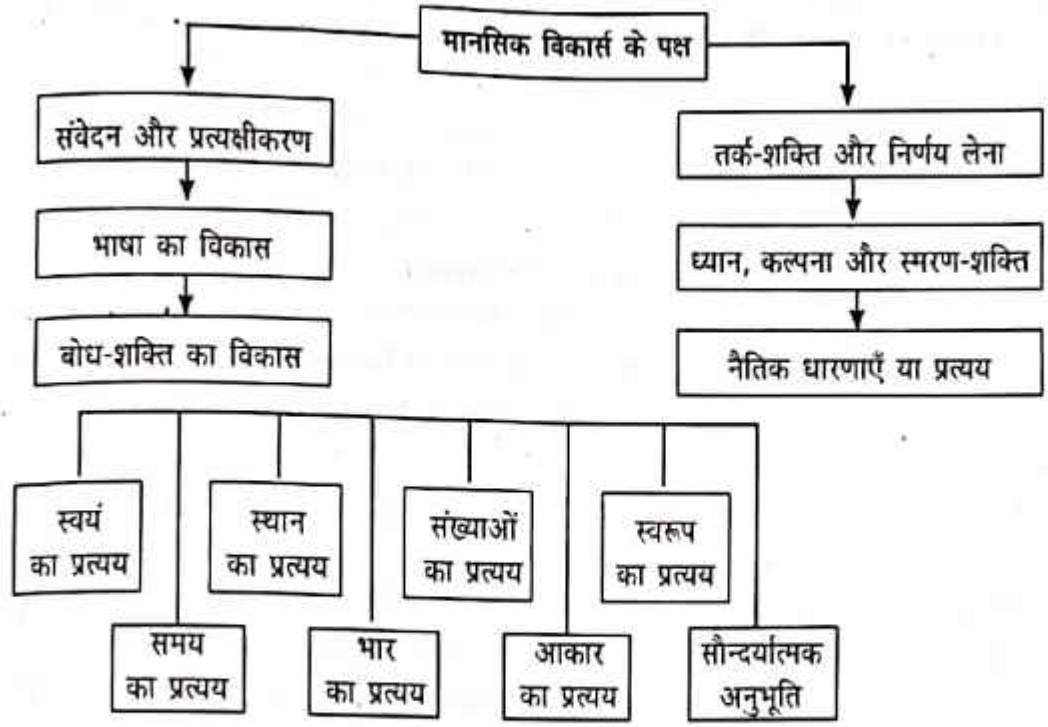
(E) ध्यान, कल्पना और स्मरण-शक्ति का विकास (Development of Attention, Imagination and Memory)—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि बच्चे में ध्यान की शक्ति कब उत्पन्न होती है। लेकिन वह इस शक्ति का प्रदर्शन 1 या 2 वर्ष की आयु से करने लगता है। 4-5 वर्ष की आयु तक वह रंगीन खिलौनों की ओर अधिक ध्यान देता है। कई बार बच्चा किसी एक ही प्रकार के खिलौने की ओर ध्यान केन्द्रित करता है। इसी को ध्यान कहते हैं। कोई भी बच्चा अपनी रुचि की चीज़ों की ओर ध्यान देता है।

इसी प्रकार भाषा के विकास के साथ ही बच्चे में कल्पना-शक्ति का विकास होता है, क्योंकि कल्पना के दौरान बच्चा अपने मन से बातें करता है। किसी बच्चे की क्रियाओं में कल्पना के चिह्न देखने कठिन नहीं होते। उसके द्वारा स्वप्न देखना ही कल्पना करना है तथा उसके द्वारा नाटकीय रूप देना भी कल्पना-शक्ति का संकेतक है। वह सिपाही, चोर, अध्यापक, ड्राईवर आदि का अभिनय करता है। कल्पना-शक्ति में वैयक्तिक भिन्नता होती है।

स्मरण-शक्ति भी मानसिक विकास का महत्त्वपूर्ण पक्ष माना जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में बालक की स्मरण-शक्ति के बारे में अनुमान लगाना कठिन है। लेकिन आयु में वृद्धि, परिपक्वता और अनुभवों के माध्यम से धीरे-धीरे इसका विकास होता रहता है। भाषा के विकास के साथ तो स्मरण-शक्ति और भी बढ़ जाती है। दो वर्ष की आयु तक बच्चे काफी कुछ याद रख सकते हैं। व्यक्ति और वस्तुओं के बारे में स्मरण-शक्ति प्रथम दो वर्षों में अत्यधिक विकसित हो जाती है। इससे आगे की अवस्था में परिस्थितियों और घटनाओं के बारे में स्मरण-शक्ति का विकास होना शुरू हो जाता है। प्रारम्भिक अवस्थाओं में स्मरण-शक्ति रटने पर आधारित होती है। किसी प्रकार का तर्क या सूझ-बूझ बच्चों में देखने को नहीं मिलती। किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था में पहुँच कर व्यक्ति में तर्क और सूझ-बूझ का विकास हो जाता है। प्रौढ़ावस्था के अन्त में स्मरण-शक्ति क्षीण होनी शुरू हो जाती है।

(E) नैतिक धारणाएँ या प्रत्यय (Moral Concepts)—नैतिक प्रत्ययों या धारणाओं के विकास से हमें मानसिक विकास का संकेत मिलता है। बच्चा कुछ समय लेता है, नैतिकता की भावना का प्रदर्शन करने के लिए प्रारम्भ में बच्चा अनैतिक *(Non-moral)* होता है। बच्चा जब आस-पास की चीज़ों को समझना शुरू करता है तो वह अच्छे और बुरे के बारे में भी समझना शुरू कर देता है। वह यह सोचना शुरू कर देता है कि दूसरों को हानि नहीं पहुँचाई जानी चाहिए। बच्चों में नैतिक धारणाओं या प्रत्ययों के विकास के लिए माता-पिता तथा अन्य पारिवारिक सदस्य उत्तरदायी होते हैं। अतः हमें बच्चों के चारों ओर एक उत्तम नैतिक वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner



चित्र : मानसिक विकास के पक्ष

◆◆◆

2. किशोरावस्था के दौरान होने वाले मानसिक या बौद्धिक विकास का उल्लेख कीजिये।

अथवा

किशोरावस्था के दौरान बालकों में बौद्धिक तथा मानसिक विकास कैसे होता है? विवेचना कीजिये।

अथवा

किशोरावस्था में होने वाले मानसिक या बौद्धिक विकास का वर्णन कीजिये।

उत्तर–किशोरावस्था में मानसिक विकास (Mental Development during Adolescence)– बाल्यावस्था में बालक का विकास शैशवावस्था की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है। इस काल के दौरान भी शैशवावस्था में होने वाले मानसिक विकासों का दायरा और अधिक विस्तृत होता चला जाता है। **मीयर** *(Meyer, 1960)* के अनुसार बाल्यकाल से किशोरावस्था में भी मानसिक योग्यताएँ अधिक स्थिर हो जाती हैं। किशोरावस्था में भी मानसिक विकास बहुत शीघ्र और अधिक मात्रा में होता है। इस अवस्था में बुद्धि अपने विकास की चरम सीमा पर होती है। किशोरावस्था की अवधि में निम्नलिखित मानसिक विकास होते हैं–

(i) अमूर्त चिन्तन (Abstract Thinking)–इस अवधि में बालक अमूर्त चिन्तन कर सकता है। बालक के बाल्यकाल की चंचलता लगभग समाप्त हो जाती है।

(ii) कल्पना-शक्ति का विकास (Development of Imagination)–इस अवधि के दौरान कल्पना-शक्ति का व्यापक विस्तार होता है और इसी विकास के आधार पर वह अपनी अन्य आन्तरिक शक्तियों का विकास करने में सक्षम होता है। लेखक, कवि, दार्शनिक तथा संगीतकार इसी अवस्था का परिणाम होता है। किशोर किसी भी बात को लेकर काल्पनिक संसार में जा सकता है।

(iii) ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता (Capacity to Concentrate)–इस अवस्था में किशोर किसी वस्तु या विषय के प्रति बाल्यकाल की अपेक्षा अपना ध्यान अधिक केन्द्रित करने की क्षमता रखता है। अतः किशोरों में ध्यान-विस्तार *(Span of attention)* की क्षमता बहुत बढ़ जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) स्थाई स्मृति का विकास (Development of Permanent Memory)—किशोरावस्था में विकसित हुई स्मृति स्थाई होती है। रटन स्मृति का स्थान स्थाई स्मृति धीरे-धीरे लेती रहती है।

(v) तर्क-शक्ति का विकास (Development of Logic)—किशोरावस्था में बालक जल्दी से किसी के साथ सहमत नहीं होते। इसका कारण है कि उनमें तर्क-शक्ति का व्यापक विकास हो जाता है। साथ में उनमें प्रश्न पूछने की प्रवृति भी प्रबल हो जाती है, जो उनकी तर्क-शक्ति का विकास करती है।

(vi) रुचियों का विकास (Development of Interests)—रुचियों का विकास किशोरावस्था में बड़ी तीव्रता के साथ होता है। इनमें विभिन्न प्रकार की रुचियों का समावेश होता है। आत्म-प्रदर्शन *(Self-assertion)* की रुचि बड़ी प्रबल होती है। लड़के समूह-खेलों *(Group Games)* में बड़ी रुचि लेते हैं, जबकि लड़कियाँ संगीत, नृत्य आदि में। इन रुचियों के साथ-साथ किशोरों में शारीरिक प्रदर्शन की रुचि भी अत्यधिक विकसित हो जाती है। समय व्यतीत करने के लिए वे पुस्तकें पढ़ते हैं, फिल्में देखते हैं तथा संगीत सुनते हैं। अपने शरीर को सुन्दर बनाने के लिए वेश-भूषा, बालों, नाखूनों आदि की सजावट में वे विशेष रुचि लेते हैं।

(vii) निर्णय करने की योग्यता (Ability of Decision Making)—किशोरावस्था में किशोर बाल्यकाल से कुछ अलग प्रकार के विकास का प्रदर्शन करते हैं। जैसे-जैसे उनमें स्वतन्त्र निर्णय लेने की योग्यता विकसित होती जाती है। वे अब अच्छे और बुरे के बारे में तथा ठीक या गलत के बारे में निर्णय लेने में सक्षम हो जाते हैं। इस योग्यता के विकास के परिणामस्वरूप किशोरों में आत्म-विश्वास पैदा होने लगता है, जो उसे भविष्य में समायोजन में सहायता करता है।

(viii) समस्या-समाधान की योग्यता (Problem Solving Ability)—किशोरावस्था के दौरान किशोरों में समस्या समाधान की योग्यता देखने को मिलती है। किशोरों में सूझ-बूझ की योग्यता का इतना विकास हो जाता है कि दिन-प्रतिदिन की छोटी-मोटी समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने के वे योग्य हो जाते हैं। समस्याओं के समाधान में किशोरों को खुशी का अहसास होने लगता है। **थार्नडाईक** *(Thorndike)* ने समस्याओं को दो वर्गों में बाँटा है—

(a) वे व्यावहारिक समस्याएँ या कुछ प्राप्त करने की आवश्यकता *(Practical problem or the need to achieve something)*।

(b) बौद्धिक समस्याएँ या कुछ समझने की आवश्यकता *(Intellectual problems or the need for understanding)*।

बड़े बच्चों में समस्या-समाधान की योग्यता अधिक विकसित होती है। किसी समस्या के समाधान को सामान्यीकृत करने की योग्यता किशोरावस्था में अधिक होती है।

(ix) स्वतंत्र पठन का विकास (Development of Independent Reading)—किशोरावस्था ही एक ऐसी अवस्था है जहाँ से बालकों में स्वतंत्र पठन की रुचि का विकास शुरू होता है। लड़के अधिकतर रोमांचकारी साहित्य पढ़ने में रुचि रखते हैं और लड़कियाँ अधिकतर प्रेम कहानियाँ पढ़ने में रुचि लेती हैं।

(x) भविष्य के प्रति जागरुकता (Consciousness about Future)—किशोरावस्था में प्रवेश पाने के पश्चात् किशोर अपने भविष्य के बारे में अधिक जागरूक होते हैं और भविष्य से सम्बन्धित योजनाओं का निर्माण करते हैं। इस कार्य में लड़के अधिक सक्रिय एवं जागरूक होते हैं।

(xi) बुद्धि का अधिकतम विकास (Maximum Development of Intelligence)—किशोरावस्था में बुद्धि का अधिकतम विकास माना गया है। लगभग 14 से 16 वर्ष की आयु तक बुद्धि का अधिकतम विकास जारी रहता है। टर्मन *(Terman)* के अनुसार स्कूल के विद्यार्थी और वयस्क 16 वर्ष तक बुद्धि के विकास के शिखर पर होते हैं। वह बुद्धि का विकास कर सकता है? इसका उत्तर पूरे विश्वास के साथ देना बहुत ही कठिन है। 16 वर्ष की आयु के पश्चात् यह अर्थ नहीं कि बालक बौद्धिक रूप से और विकसित नहीं होता।

Scanned with OKEN Scanner

(xii) सामाजिक कार्यों में रुचि (Interest in Social Works)—किशोरावस्था की अवधि में बालक एवं बालिकाएँ विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगते हैं। इस दृष्टि से वह अधिक 'सामाजिक' *(Social)* हो जाता है। समाज में उसका कुछ रुतबा बनता है।

(xiii) भाषा ज्ञान और शब्द-भण्डार में वृद्धि (Increase in Knowledge of Language and Vocabulary)—इस अवधि में बालक की भाषा का विकास अधिकतम होता है और शब्दों के भण्डार में भी पर्याप्त वृद्धि होती है। इस अवस्था में बालक स्वयं को भाषा के माध्यम से प्रस्तुत कर सकता है।

(xiv) यौन विषयों में रुचि (Interest in Sexual Matters)—किशोरावस्था से ही यौवनारम्भ *(Puberty)* होता है तथा बालक एवं बालिकाओं में यौन सम्बन्धी भावनाओं की उत्पत्ति होनी शुरू हो जाती है। परिणामस्वरूप इस अवस्था में लड़के-लड़कियाँ यौन विषयों में रुचि लेना शुरू कर देते हैं।

(xv) प्रत्ययों का निर्माण (Concept Formation)—बाल्यकाल में प्रत्ययों का विकास उतनी स्पष्टता से बच्चों में नहीं हो पाता जितना कि किशोरावस्था में हो जाता है। उदाहरणार्थ—ईमानदारी या दूसरे की भावनाओं को ठीक प्रकार से समझ सकना। वह विश्व में अन्य पहलुओं के बारे में स्वयं की रुचि रखता है तथा अपने ही तरीके से सोचता है। इससे उसमें विभिन्न प्रत्यय निर्मित होते हैं, जो उसे भविष्य में भी खोजबीन के कार्य में सहायता देते हैं।

(xvi) नायक पूजा (Hero Worship)—किशोरावस्था के दौरान हीरो-पूजा प्रमुख हो जाती है। किशोर किसी एक को अपना नायक बना लेते हैं चाहे वह फिल्मी कलाकार हो, राजनीतिज्ञ हो, शिक्षाशास्त्री हो, कवि हो, कलाकार हो, आदर्श अध्यापक हो या धार्मिक व्यक्ति हो। किशोर अपने हीरो अर्थात् आदर्श मनुष्य की पूजा करने लगते हैं तथा स्वयं को उन्हीं के अनुसार ढालने का प्रयास करते हैं। कभी-कभी वह नायक पूजा प्रेम में भी बदल जाती है। अतः शैक्षिक दृष्टि से अध्यापक स्वयं को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करें ताकि किशोर उसका अनुसरण करें।

(xvii) संवेगात्मक रूप में अस्थिर (Emotionally Unstable)—संवेगात्मक रूप से किशोर बहुत ही अस्थिर होते हैं। वे दूसरों से अपनी प्रशंसा और आत्म-सम्मान की बहुत अधिक अपेक्षा करते हैं। ऐसा न होने पर वे मानसिक रूप से अशांत हो जाते हैं। अतः संवेगात्मक रूप से अस्थिरता मानसिक विकास की ओर संकेत करता है।



चित्र : 11 से 18 वर्ष तक या किशोरावस्था में मानसिक विकास

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3. मानसिक या बौद्धिक विकास को कौन-कौन-से मुख्य कारक प्रभावित करते हैं? विवेचना कीजिये।

अथवा

मानसिक या बौद्धिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का उल्लेख कीजिये।

उत्तर–मानव के विकास के हर पहलू को किसी न किसी कारक ने अवश्य ही प्रभावित किया है। इन कारकों का सम्बन्ध या तो वंशानुक्रम *(Heredity)* से होता है या वातावरण *(Environment)* से होता है। दोनों ही मानसिक विकास में अपना-अपना योगदान देते हैं। इनके अतिरिक्त स्कूल, पौष्टिक भोजन, पारिवारिक सदस्यों का व्यवहार आदि भी प्रभावित करते हैं। इन कारकों के नकारात्मक प्रभाव के फलस्वरूप बालक की समस्त मानसिक शक्तियाँ प्रभावित होती हैं। यही कारण है कि विद्यालय, परिवार और समुदायों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना पर निरन्तर बल देता है।

अतः बालक की हर विकास की अवस्था के दौरान मानसिक विकास की प्रक्रिया को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं–

1. शिशुकाल में अपर्याप्त भोजन (Under-nutrition During Infancy)μअध्ययनों से यह बात साफ हो चुकी है कि जन्म के बाद पहले वर्ष तक शिशुओं को यदि कम भोजन दिया जाए तो इसका प्रभाव मस्तिष्क के बाद में होने वाले विकास पर अवश्य पड़ता है। भ्रूणावस्था *(Fetal Period)* में मस्तिष्क की वृद्धि स्फुरण *(Growth spurt for the Brain)* सबसे अधिक होती है। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त तक मस्तिष्क प्रौढ़ावस्था के मस्तिष्क के भार का 70 प्रतिशत भार ग्रहण कर लेता है। दो वर्ष की आयु तक मस्तिष्क का विकास लगभग पूर्ण हो जाता है। मस्तिष्क के तीव्र विकास के समय यदि उन्हें असंतुलित तथा अल्प आहार दिया जाए तो इससे उनमें मानसिक विकृतियाँ पैदा हो जाएंगी।

चेस और मार्टिन *(Chase and Martin, 1970)* ने 19 बच्चों का अध्ययन किया। यह अध्ययन 1962 से 1967 के बीच किया गया। इन बच्चों के प्रारम्भिक कम भोजन *(Early under nutrition)* और शारीरिक विकास में मंदन *(Retardation)* में धनात्मक सहसम्बन्ध *(Positive correlation)* पाया गया है। केवल एक ही बालक ऐसा था जिसका शारीरिक विकास कुछ ठीक हुआ, लेकिन उसके सिर की वृद्धि और मस्तिष्क का कार्य दोषपूर्ण ही पाये गए।

स्टाक और स्मिथ *(Stock and Smyth, 1963)* ने भी एक अध्ययन में मानसिक बुद्धि और विकास पर कम भोजन या अल्प-आहार के प्रभावों को सिद्ध किया है। उन्होंने 20 ऐसे शिशु *(Infants)* लिए जिनको बहुत ही कम भोजन मिलता था। उन्होंने उन शिशुओं की आयु और लिंग के अनुसार संतुलित और उपयुक्त भोजन लेने वाले शिशुओं का एक नियंत्रित समूह के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के पूरे समय तक उपयुक्त भोजन वाले समूह की अपेक्षा कम भोजन वाले शिशुओं के समूह के सदस्यों के छोटे सिर, कम ऊँचाई और भार तथा कम बुद्धि-लब्धि *(I.Q.)* पाये गए।

क्रैविओटो और **रोब्लस** *(Cravioto and Robles, 1965)* ने भी 20 शिशुओं का इसी प्रकार का अध्ययन किया था। इन शिशुओं को प्रोटीन बहुत ही कम मिलता था। ऐसे शिशुओं के गमन *(Motor)*, भाषा और व्यक्तिगत सामाजिक व्यवहार *(personal-social behaviour)* आदि में त्रुटियाँ पाई गईं।

इस प्रकार मस्तिष्क की तीव्र वृद्धि के समय और कोशिका विभाजन के समय अल्प-आहार या असंतुलित भोजन के कारण कई प्रकार के स्थाई मानसिक दोष बच्चों में आ जाते हैं।

2. माता-पिता व बालक में अन्तःक्रिया का प्रभाव (Influence of Parent-Child Interaction)–माता-पिता के मानसिक गुणों पर उसके माता-पिता का प्रभाव पड़ता है। अपने परिवार के सदस्यों का अनुकरण करके वह अनेक बातें सीखता है। घर का पर्यावरण बालक में आत्म-विश्वास की भावना पैदा करता है।

वुल्फ *(Wolf 1964)* ने बुद्धि से सम्बद्ध पर्यावरण की प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है। इस अध्ययन में उसने 13 प्रक्रियाओं के चरों *(Variables)* का उल्लेख किया है। ये चर बुद्धि के विकास में, अभिभावक व बालक के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया की व्याख्या करते हैं। इन चरों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है–उपलब्धि अभिप्रेरणा का दबाव *(Press for achievement Motivation)*, भाषा विकास का दबाव *(Press*

Scanned with OKEN Scanner

for language development), सामान्य अधिगम की व्यवस्थाएँ *(Provisions for General learning)* माता-पिता और बच्चे में अन्तःक्रिया इसलिए भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि इसमें बच्चे की बुद्धि-लब्धि *(I.Q.)* का निर्धारण होता है।

3. वंशानुक्रम (Heredity)–बालक वंशानुक्रम के माध्यम से मानसिक योग्यताएँ अर्जित करता है। इन योग्यताओं में वातावरण किसी भी प्रकार से परिवर्तन नहीं कर सकता है। **गेट्स एवं साथियों** *(Gates & Associates)* के अनुसार 'किसी बालक का उससे अधिक विकास नहीं हो सकताए जितना उसका वंशानुक्रम संभव बनाता है।'

4. लिंग-भेद (Sex Differences)–जन्म के पश्चात् सांस्कृतिक शक्तियाँ मानसिक विकास पर प्रभाव डालती हैं। यह सांस्कृतिक प्रभाव भी लिंग *(Sex)* पर आधारित होता है। लिंग के आधार पर प्रशिक्षण में भी संस्कृतियों के कारण अन्तर हो सकता है। निम्न श्रेणियों के लड़के और लड़कियों को मध्यम और उच्च श्रेणी के लड़के-लड़कियों की अपेक्षा शीघ्र लिंग भूमिका के व्यवहार *(Sex Role Behaviour)* से परिचित करवा दिया जाता है। **लिन** *(Lynn)* के अनुसार औरतों का बौद्धिक विकास इनकी अन्तःक्रिया पर आधारित होता है–

(i) औरतों को मिली हुई जन्मजात कुछ शक्तियाँ जो उन्हें दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक भूमिकाएँ करने के लिए प्रेरित करती हैं।

(ii) माता-पिता और बच्चे का सम्बन्ध *(Parent-child relationship)*।

यही शक्तियाँ पुरुषों के बौद्धिक विकास में भी सहायक होती हैं। माता-पिता और बच्चे की अन्तःक्रिया विशिष्ट मानसिक योग्यताओं और विशेषताओं के विकास के लिए अति महत्त्वपूर्ण होती है।

5. उपलब्धि अभिप्रेरणा की आवश्यकता और बौद्धिक विकास (Need of Achievement Motivation and Intellectual Development)–मैक्कलैंड और एटकिन्सन *(McClelland and Atkinson, 1963)* व अन्यों के अध्ययनों के अनुसार प्रारम्भिक वर्षों में विकसित उपलब्धि-अभिप्रेरक *(Achievement Motive)* का सम्बन्ध माता-पिता की आकांक्षाओं से होता है।

सोन्टेग व अन्यों *(Sontag and others, 1958)* के अनुसार सीखने की उत्सुकता या 'सीखने के लिए सीखना' *(Learning to learn)* बाल्यकाल और किशोरावस्था में बुद्धिलब्धि में वृद्धि से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार की रुचि में कमी या कम उपलब्धि-आवश्यकता *(Achievement Need)* कम बुद्धि-लब्धि *(I.Q.)* के साथ सम्बन्धित पाई गई है। किशोरों की उपलब्धि आवश्यक या अधिगम-अभिप्रेरणा *(Motivation to learn)* बहुत से कारकों पर आश्रित है, जैसे कि माता-पिता और बच्चे के प्रारम्भिक सम्बन्ध, स्वयं का प्रत्यय *(Self-Concept)*, आकांक्षा स्तर *(Aspiration Level)* और पिछले अधिगम अनुभव *(Past Learning Experience)* आदि।

रोसैन्थल और जैकोबसन *(Rosenthal and Jacobson, 1968)* के शोध के अनुसार अध्यापकों की अपेक्षाओं का महत्त्वपूर्ण प्रभाव विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास पर पड़ता है, क्योंकि अध्यापक ऐसे विद्यार्थियों, जिनके बारे में उनकी अपेक्षाएँ ऊँची होती हैं की ओर अधिक ध्यान देते हैं।

6. स्कूल (School)–बच्चे के मानसिक विकास में स्कूल का योगदान अति महत्त्वपूर्ण होता है। अध्यापक का व्यक्तित्व, शिक्षण-विधियाँ, पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ *(Co-curricular Activities)* आदि सभी स्कूल के आवश्यक तत्त्व हैं। इन तत्त्वों का प्रभाव बालक के मानसिक विकास पर पड़ना स्वाभाविक ही है। **कुप्पू स्वामी** के अनुसार, **"उत्तम स्कूल ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है, जो विद्यार्थियों की रुचियों तथा आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु अनेक क्रियाओं से युक्त होता है। ऐसा स्कूल स्वस्थ मानसिक विकास का एक वास्तविक कारक है।"**

7. परिवार की सामाजिक व आर्थिक दशा (Socio-economic Status of the Family)–मानसिक विकास को प्रभावित करने वाला एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है–परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक दशा। जिन परिवारों की सामाजिक दशा उत्तम होती है, उन परिवार के बालकों का मानसिक विकास अपेक्षाकृत

Scanned with OKEN Scanner

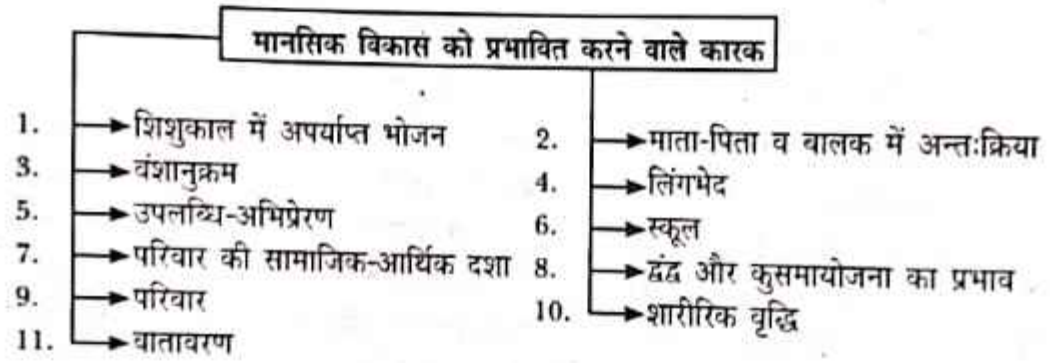
अधिक होता है, क्योंकि उच्च सामाजिक दशा के परिवार के बालकों को मानसिक विकास के समस्त साधन उपलब्ध होते हैं। इसके विपरीत निम्न सामाजिक स्थिति के परिवार के बालकों का मानसिक विकास नहीं हो पाता क्योंकि उन्हें साधन प्राप्त नहीं होते हैं। सामाजिक स्थिति के साथ ही परिवार की उत्तम आर्थिक दशा के परिणामस्वरूप भी बालक के मस्तिष्क का विकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है।

8. द्वन्द्व और कुसमायोजनाओं का प्रभाव (Effect of Conflicts and Maladjustments)—स्कूल और घर के द्वन्द्वों का बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ये बच्चों में तनाव तथा अन्य नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, जिससे उनके विकास की प्रक्रिया में बाधा पड़ती है।

9. परिवार (Family)—बालक का मानसिक विकास, परिवार के विभिन्न चीजों के प्रति दृष्टिकोणों पर परिवार के सदस्यों के ज्ञानात्मक स्तर पर निर्भर करता है। परिवार में किस प्रकार की चर्चाएँ होती हैं, किस प्रकार की पुस्तकें या पत्रिकाएँ पढ़ी जाती हैं, इत्यादि मानसिक विकास के लिए उत्तरदायी हैं।

10. शारीरिक वृद्धि (Physical Growth)—शारीरिक वृद्धि और बौद्धिक विकास में बहुत सशक्त सह-सम्बन्ध होता है। एक सशक्त व्यक्ति में बुद्धि स्तर प्रायः उत्तम होता है।

11. वातावरण (Environment)—व्यक्ति के बौद्धिक विकास के लिए वातावरण का भी बहुत योगदान होता है। व्यक्ति को उसकी बौद्धिक योग्यताओं के प्रदर्शन के लिए पर्याप्त अवसर दिये जाने चाहिए। भौतिक वातावरण भी बुद्धि को प्रभावित करता है।



चित्र : मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

◆◆◆

4. एक शिक्षक के लिए बौद्धिक या मानसिक विकास की जानकारी का क्या महत्त्व है? स्पष्ट करें।

अथवा

बच्चे के मानसिक या बौद्धिक विकास से संबंधित ज्ञान एक अध्यापक किस प्रकार सहायक या महत्त्वपूर्ण है? बताएँ।

उत्तर—एक प्रभावशाली अध्यापक बनने के लिए बालकों के मानसिक विकास का ज्ञान होना अति आवश्यक होता है, क्योंकि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में बालक का मानसिक विकास भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। अतः बालक को उसके मानसिक विकास में सहायता करने हेतु शिक्षक निम्नलिखित प्रयास कर सकता है—

1. शिक्षा में विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रयोग (Use of Various Instincts in Education)—बच्चे की शिक्षा के दौरान उसकी प्रवृत्तियों को अनदेखा न करके उसे आधार मानना चाहिए। बच्चों में मानसिक विकास के कारण निम्नलिखित प्रवृत्तियों का विकास देखा गया है—

(a) संग्रह करने की प्रवृत्ति *(Instinct of collection)*

Scanned with OKEN Scanner

(b) जिज्ञासा की प्रवृत्ति

(c) रचना की प्रवृत्ति

(d) सामाजिक प्रवृत्ति या समुदायों में रहने की प्रवृत्ति।

अतः शिक्षक उनके मानसिक विकास के लिए उन्हें विभिन्न वस्तुओं का संग्रह करने की प्रेरणा प्रदान करने में पहल कर सकता है। बालकों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का विकास करने के लिए वह उनके मध्य वाद-विवाद करा सकता है। इस प्रकार बालकों में सामाजिक एवं रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास करने हेतु उनमें विभिन्न गुणों तथा सहयोग, सेवा, सहनशीलता, बड़ों का आदर करना इत्यादि गुणों तथा शिल्पकला का विस्तार कर सकता है। इस प्रकार अध्यापक बालक का विकास करने में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग कर सकता है।

2. पाठ्यक्रम और सहगामी क्रियाओं के चयन में सहायक (Helpful in selection of Curriculum and Co-curricular Activities)—अलग-अलग स्तरों पर मानसिक विकास जान लेने के पश्चात् अध्यापकों के लिए पाठ्यक्रम और सहगामी क्रियाओं का चयन करना आसान हो जाता है। अध्यापक को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि छोटे बच्चों को उनके मानसिक विकास के अनुसार किस प्रकार का पाठ्यक्रम और सहगामी क्रियाएँ निर्धारित की जाएं।

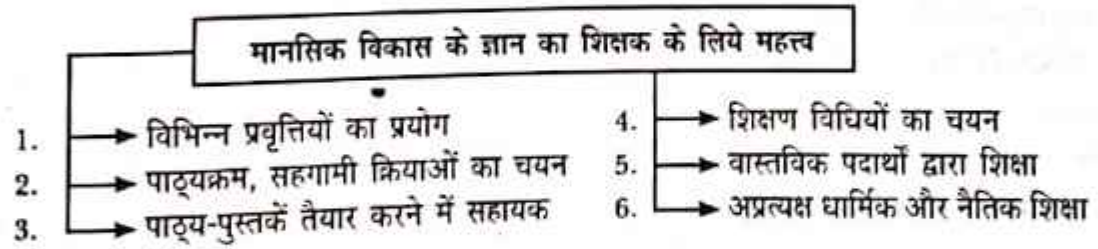
3. पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने में सुविधा (Convenience in Preparing Text-books)—इसी प्रकार मानसिक विकास की अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तरों के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करने में सहायता मिलती है।

4. शिक्षण-विधियों के चयन में सहायक (Helpful in Selecting Teaching Methods)—बालक के मानसिक विकास के स्तर को देखते हुए शिक्षक बड़ी सुविधा के अपने शिक्षण की विधियों का चयन कर सकता है। शिक्षण-विधियों के चयन के साथ-साथ शैक्षणिक वातावरण के निर्माण में भी मानसिक विकास के ज्ञान का पर्याप्त योगदान रहता है।

5. वास्तविक पदार्थों द्वारा शिक्षा (Teaching Through Real Objects)—शिक्षक मानसिक विकास को देखकर बच्चों के आगामी मानसिक विकास के लिए वास्तविक पदार्थों का प्रयोग करके उन्हें शिक्षण दे सकता है। यह विधि छोटे बच्चों और विज्ञान के विषयों में बहुत सफल रहती है।

6. अप्रत्यक्ष धार्मिक और नैतिक शिक्षा (Indirect Moral and Religious Education)—मानसिक विकास के लिए अध्यापक बालक को धार्मिक और नैतिक शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से न देकर अप्रत्यक्ष रूप से भी देकर बच्चों के मानसिक स्तर को ऊँचा उठा सकने में सफल हो सकते हैं।

इस प्रकार शिक्षक बच्चों के मानसिक विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपना पूर्ण सहयोग दे सकता है। उसके साथ ही बच्चों के मानसिक विकास के स्तर का ज्ञान शिक्षक को अपने कर्तव्य निभाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।



चित्र : मानसिक विकास के ज्ञान का महत्त्व

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

Nurture

III. सामाजिक विकास
(Social Development)

1. सामाजिक विकास से आप क्या समझते हैं? सामाजिक विकास के प्रतिमानों तथा बालकों के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले सामाजिक विकास का वर्णन करें।

अथवा

सामाजिक विकास या समाजीकरण किसे कहते हैं? बालक का विभिन्न अवस्थाओं के दौरान सामाजिक विकास किस प्रकार से होता है? विवेचना कीजिये।

अथवा

सामाजिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए विभिन्न अवस्थाओं के अन्तर्गत बालकों के सामाजिक विकास का वर्णन करें।

उत्तर–जन्म के समय बच्चा न सामाजिक होता है, न असामाजिक। समाज के संपर्क में आने के बाद ही उसमें सामाजिकता या असामाजिकता आती है। दूसरे शब्दों में जब बच्चा संसार में आता है, तो वह समाज की परंपराओं, रीति-रिवाजों तथा जातीय क्रियाकलापों आदि सामाजिक प्रतिमानों से अनभिज्ञ होता है, परंतु जन्म के साथ ही उस पर सामाजिक प्रतिमानों का प्रभाव पड़ना प्रारंभ हो जाता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चा सामाजिक परंपराओं का अनुकरण करने लगता है और कुछ समय बाद वह एक सामाजिक प्राणी बन जाता है। अतः सामाजिक विकास का अभिप्राय सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करना है।

नवजात शिशु जब इस संसार में आता है तो वह समाज की परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा जातीय क्रियाकलापों आदि सामाजिक प्रतिमानों से अनभिज्ञ होता है। परन्तु जन्म काल से ही शिशु के अनुभवों और व्यवहार पर इन सामाजिक प्रतिमानों का प्रभाव पड़ना आरम्भ हो जाता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चा इन सामाजिक प्रतिमानों एवं मानदण्डों का अनुसरण करना आरम्भ कर देता है और कुछ ही वर्षों में सामाजिक प्राणी के रूप में उभरकर सामने आता है। बच्चे के सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में सामाजिक प्रतिमानों का प्रभाव भिन्न-भिन्न होता है। प्रत्येक समाज के अपने सामाजिक नियम होते हैं। समाजिक विकास प्रक्रिया में व्यक्ति अपने सांस्कृतिक सामाजिक मानदण्ड समूह की प्रत्याशाओं *(Expectation)* के अनुसार व्यवहार करना सीखता है। सामाजिक व्यवहार सीखने की प्रक्रिया समाजीकरण कहलाती है।

सामाजिक विकास एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में होने वाली निरन्तर समाजीकरण की प्रक्रिया है। सामाजिक विकास व्यक्ति में विशिष्ट सामाजिक कौशलों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक होता है, जिससे प्रभावपूर्ण सामाजिक सम्बन्धों व विकास में सहायता मिलती है। सामाजिक विकास स्वतः *(automatically)* या संयोग से नहीं होता है, बल्कि यह एक काल व्यय *(Time Consuming)* प्रक्रिया है, जिसमें चेतन प्रयासों, पर्याप्त अभिप्रेरणा तथा उपयुक्त अवसरों की आवश्यकता होती है। **चाइल्ड (Child, 1954)** के अनुसार–"सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति में उसके समूह मानदण्डों के अनुसार वास्तविक व्यवहार का विकास होता है।" *(Social development is the process by which an individual is led to develop actual bahaviour according to the standards or his group.)* **हरलॉक** *(Hurlock, 1978)* के अनुसार–"सामाजिक विकास का अर्थ सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार करने की योग्यता को अर्जित करना है। *(Social development means acquisition of the ability to behave in accordance with social expectations.)* सामाजिक प्रत्याशाओं से अभिप्राय उन आशाओं से है, जो प्रत्येक समूह द्वारा अपने विशिष्ट सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में अपने बच्चों से उनकी आयु विशेष को ध्यान में रखते हुए करता है, जैसे बच्चे अपने माता-पिता से स्नेह करें, उनकी आज्ञा का पालन करें, निश्चित आयु में स्कूल जाना प्रारम्भ कर दें आदि। जैसे-जैसे बच्चा विकसित होता है वह अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों, माता-पिता, परिवार के सदस्यों, सहपाठियों आदि के विचारों तथा भावों को ग्रहण करता है। इस प्रकार बच्चे के अनुभवों पर, उसकी प्रत्यक्ष क्रियाओं तथा उसके समाजीकरण पर उसकी संस्कृति विशेष का प्रभाव पड़ता है।

Scanned with OKEN Scanner

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी होने के कारण अकेले सम्पूर्ण जीवन का निर्वाह नहीं कर सकता है। वह केवल भौतिक सम्बन्धों के लिए ही एक दूसरे पर निर्भर नहीं होता है, बल्कि अपनी मानसिक तथा संवेगात्मक इच्छाओं की पूर्ति के लिए भी दूसरों से अन्तःक्रिया करता है। समाज में होने वाली परस्पर प्रतिक्रियाओं में कुछ दुःखद तथा मन-मुटाव (वैमनस्य) उत्पन्न करने वाली अन्तःक्रियाएँ भी हो सकती हैं, परन्तु व्यक्ति सामाजिक स्वीकृति तथा आत्म-पहचान के लिए अपने अप्रिय अनुभवों की चोट को कम करके सामाजिक अन्तःक्रियाओं के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति विकसित कर लेता है। एक व्यक्ति जिसमें पर्याप्त सामाजिक कौशलों का विकास नहीं हुआ है अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में दुखी एवं अवांछित अनुभव करता है। इस प्रकार सामाजिक विकास का व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन पर प्रभाव पड़ता है। अतः एक व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि वह दूसरे व्यक्तियों के साथ मिल-जुल कर रहना सीखे। बच्चा सामाजिक व्यवहार प्रतिमानों को जीवन के प्रारम्भिक काल में ही ग्रहण कर लेता है। बच्चे के विकास के प्रारम्भिक काल में यदि उसका वातावरण सामाजिक प्रत्याशाओं के अनूकूल रहा है तो बहुत सीमा तक यह सम्भावना है कि बड़ा होकर बच्चा एक अपेक्षित सामाजिक व्यक्ति बनेगा। दोषपूर्ण सामाजिक विकास के कारण बच्चे का व्यवहार अन्तःमुखी प्रकार का हो सकता है। वह सामाजिक प्रत्याशाओं के प्रतिकूल व्यवहार सीख सकता है। **कागन एवं मॉस** *(Kagan & Moss, 1962)* के अनुसार बच्चे के प्रारम्भिक सामाजिक अनुभव बाल्यावस्था एवं अन्य विकास अवस्थाओं में उसकी सामाजिक सहभागिता *(Social Participation)* को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। व्यक्ति की सामाजिक स्वीकृति का उनकी सामाजिक क्रियाओं तथा सहभागिता तथा मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करना सामाजिक परिपक्वता समाज के मूल्यों प्रत्याशाओं तथा सामाजिक भूमिकाओं आदि में किसी प्रकार की कठिनाइयों के कारण द्वन्द्वों की स्थिति उत्पन्न होने पर द्वन्द्वों पर काबू पा लेने की योग्यता तथा सामाजिक समायोजन अच्छे सामाजिक विकास के माप दण्ड हैं। बच्चे का सामजिक विकास जितना अच्छा होगा उसका विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों और व्यक्तियों के साथ समायोजन भी उतना ही अच्छा होगा। सामाजिक समायोजन अच्छा होने पर उसकी सामाजिक स्वीकृति *(Social acceptance)* भी अधिक होती है, जिससे व्यक्ति में सामाजिक अनुरूपता एवं परिपक्वता अधिक पाई जाती है।

सामाजिक-विकास के प्रतिमान (Patterns of Social Development)–विकास के अन्य पहलुओं की भाँति सामाजिक विकास का भी एक प्रतिमान *(Pattern)* होता है। यह विकास क्रमबद्ध अनुक्रम में उत्पन्न होने वाले सामजिक व्यवहार में स्वतः व्यक्त होता है अर्थात् विभिन्न अवस्थाओं में सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवहार के प्रकट होने में ही सामाजिक विकास के प्रतिमान व्यक्त होते हैं। प्रतिमानों का क्रम सभी बच्चों में समान रूप से होता है। शारीरिक मानसिक और संवेगात्मक विकास से प्रभावित होता हुआ सामाजिक विकास का क्रम विशेष संस्कृति समूह की आवश्यकताओं के प्रत्युतर में विकसित हो जाता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक आयु स्तर पर सभी संस्कृतियों के बच्चों में सामाजिक विकास लगभग एक निश्चित मात्रा में तथा समान रूप से होता है। सामाजिक समूह का दबाव अर्थात् माता-पिता तथा अन्य सामाजिक अभिकर्ताओं *(Social agents)* का दबाव बच्चों के व्यवहार में विद्यमान सामाजिक मानदण्डों के अनुसार विकास की ओर अग्रसर करता है। माता-पिता समाजीकरण की कुछ प्रतिविधियों को अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व देते हैं जो किसी विशेष संस्कृति में सामाजिक विकास के प्रतिमानों का निर्धारण करती है। इन विकास प्रतिमानों के ज्ञान के आधार पर बच्चों के प्रशिक्षण की योजना बनाई जा सकती है। जैसा पहले वर्णन किया गया है कि बच्चे के विकास के लिए परिपक्वता आवश्यक है। वह कब अपेक्षित प्रत्युतर देने लगता है वह अवस्था उसके वास्तविक सामाजिक विकास का प्रारम्भ है। सामान्यतया यह अवस्था लगभग 3 वर्ष से 4 वर्ष की आयु में प्रारम्भ होती है। जो बच्चे स्वस्थ एवं तीव्र बुद्धि वाले होते हैं वे सामान्यतः अपनी आयु के सामान्य बुद्धि वाले दूसरे बच्चों की अपेक्षा सामाजिक सम्बन्धों के विकास में तीव्र होते हैं। बच्चों में सामाजिक कौशलों का क्रमबद्ध विकास अपने सहोदरों, अभिजात समूह एवं वयस्कों के साथ अन्तःक्रिया करने के पर्याप्त अवसरों पर निर्भर होता है।

Scanned with OKEN Scanner

सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थायें
(Different Stages of Social Development)

यद्यपि बालक के सामाजिक विकास में व्यक्तिगत भिन्नतायें वंशानुक्रम एवं वातावरण के कारण होती हैं। फिर भी उसमें सामाजिक विकास की दशायें एक समान होती हैं। बालक का सामाजिक विकास अधिगम एवं परिपक्वता के अनुसार होता है। बालकों में सामाजिक विकास **निम्न अवस्थाओं के अनुसार होता है–**

1. शैशवकाल में सामाजिक-विकास (Social Development During Infancy)– शैशवकाल में बालक अपने सामाजिक विकास को आंखों के द्वारा एवं मुस्कराकर व्यक्त करते हैं। किसी व्यक्ति अथवा वस्तु को देखकर शिशुओं में जो प्रतिक्रिया होती है, वह उनके सामाजिक विकास का प्रारंभिक रूप है।

वोल्फ ने अपने अध्ययन में बताया कि बालक जब छह महीने का होता है तब उसकी आंखें इतनी परिपक्व हो चुकी होती हैं कि वह अपनी माँ को देखने के साथ-साथ अपनी पूरी आंखों को खोलकर अपने चारों ओर भी देख लेता है। जब बच्चा पहली बार अपनी माँ को देखता है तब बालक के इस विकास का माँ को पता नहीं लग पाता, किन्तु उसका विकास एक-दूसरे की अनुक्रिया के फलस्वरूप होता है–जैसे–शिशु के साथ बातें करके, उसकी ओर ध्यान देकर, उसके साथ खेलकर आदि। इस प्रकार का विकास बालक के सामाजिक विकास का सूचक होता है। तीन माह की अवस्था में शिशु अपनी माँ एवं परिचितों की गोद में आनंद का अनुभव करने लगता है। वह अकेले रहने पर रोने लगता है तथा अन्य लोगों के संपर्क में रहना चाहता है।

छह-सात मास की अवस्था में शिशु हाथ-पैर हिलाकर तथा तरह-तरह के उच्चारण करके दूसरे व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। इस सम्बन्ध में ब्रूनर के अध्ययन के अनुसार एक छह महीने का बच्चा उस समय तेज उच्चारण करता है जब वह किसी खिलौने से खेलता है या अपनी माँ उसके समीप आ जाती है ओर उसकी ओर देखने लगती है कि बच्चा क्या चाहता है। बच्चे का चिल्लाना उस समय भी हो सकता है जब वह अपनी मनचाही वस्तु को चाहता है तथा उस वस्तु के मिलने पर उसकी आवाज में परिवर्तन आ जाता है। अन्त में उन्होंने कहा कि शैशवावस्था में बच्चों की आवाज का तात्पर्य है कि या तो वह अपनी माँ को अपने पास बुलाना चाहता है अथवा दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है। पांच-छह महीने का बालक सामान्यतः उस समय रोता है जब उसे भूख लगी होती है अथवा वह थक गया हो और अपनी परिस्थिति में परिवर्तन चाहता है। बच्चे अपनी माँ एवं परिचितों के पास खुश रहते हैं।

रॉबिन एण्ड टेलर ने अपने अध्ययनों में बताया कि यदि बच्चे के पास कोई अनजान व्यक्ति आ जाये और उन्हें जबरदस्ती उठाये तो बच्चा रोने लग जाता है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि शैशवावस्था में बच्चा अपने परिचितों को पहचानने लगता है।

माता-पिता का व्यवहार शैशवावस्था में बच्चों के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित है। जो माँ मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ, शक्तिशाली, आत्म विश्वासी, अधिक प्यार करने वाली होती हैं तथा हर परिस्थिति में बच्चे में सोचने-समझने एवं लड़ने की क्षमता प्रदान करती है वह वास्तव में अपने बच्चे के लिए माँ के साथ-साथ योग्य मित्र एवं सलाहकार का कार्य भी करती है।

2. पूर्व-बाल्यावस्था में सामाजिक-विकास (Social development during Early Childhood) –बच्चे द्वारा केवल स्वयं में रुचि दर्शाना शैशवावस्था की विशेषता होती है। सभी वस्तुएँ एवं व्यक्ति बच्चे द्वारा आत्म सन्तुष्टि के साधन के रूप में जाने जाते हैं। सभी क्रियाओं का आत्मनिष्ठता के रूप में चरित्र-चित्रण किया जाता है। इस अवस्था में बच्चे की सामाजिक उत्तेजनाओं के प्रति अनुक्रियाएँ मुस्कुराकर, हंसकर, रोकर तथा मुखाकृति एवं हाथों की गतिविधियों द्वारा प्रकट होती हैं। जैसे लगभग दो वर्ष की आयु तक बच्चा अनेक सामाजिक प्रतिक्रियायें करने लगता है, जैसे माँ की आवाज पहचानना, गर्दन घुमा कर पीछे देखना, मुस्कराना, अपरिचित व्यक्तियों का भयभीत होना, शिशुओं तथा वयस्कों में रुचि लेना, भाषा का अनुकरण करना, हंसकर व शारीरिक क्रियाओं द्वारा भावनाओं की अभिव्यक्ति करना तथा खिलौनों की छीना-झपटी व सहयोग द्वारा ध्यान आकर्षित करना आदि। इस अवस्था में बच्चा घर से बाहर के व्यक्तियों तथा वस्तुओं में

Scanned with OKEN Scanner

भी रुचि दर्शाने लगता है। पूर्व बचपनावस्था में बच्चे प्रायः खेल द्वारा ही दूसरों के साथ सम्बन्ध बनाते हैं। वे खेल द्वारा ही सहभाग एवं सहयोग, आक्रामकता, अनुकरण, आश्रितता तथा ध्यानकर्षित करना इत्यादि सामाजिक व्यवहार सीखते हैं।

खेलते समय बच्चा बड़े बच्चों का अनुकरण करता है। अनुकरण द्वारा मुखाकृतियों, भावनाओं एवं संवेगों, भाषा तथा अन्त में सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है। अनुकरण की प्रक्रिया समाजीकरण का मुख्य कारक है। प्रारम्भ में बच्चा वयस्कों या एक दो बच्चों के साथ थोड़े समय के लिए खेलता है, परन्तु अधिकतर समय में वह दूसरे बच्चों को खेलते हुए देख कर या उनकी क्रियाओं का अनुकरण करके बहुत खुश होता है। परिवार या अभिजात समूह की ये अन्तःक्रियाएँ बच्चे की उचित-अनुचित का अन्तर सिखाती हैं, जो सामाजिक चेतना के विकास में सहायक होती हैं। यद्यपि सामाजिक व्यवहार के उग्र पक्ष नकारवाद *(Negativisom)* आक्रमण *(Aggression)*, ईर्ष्या झगड़ा एवं छेड़ना *(Teasing)* इत्यादि असामाजिक व्यवहार हैं फिर भी वह समाजीकरण प्रक्रिया के लिए अपरिहार्य *(Unavoidable)* एवं आवश्यक है। 9 से 12 मास की अवधि में आक्रमण, ईर्ष्या व अवरोधी व्यवहार उत्पन्न होते हैं। बच्चा बाल्यकाल में अकेला नहीं रहना चाहता। परन्तु बच्चे का जितना अति संरक्षण होता है उसमें अधिकता का गुण उत्पन्न होता जाता है। लगभग 1½ से 2 वर्ष की आयु में बच्चों में दूसरे बच्चों के प्रति सहभाग एवं सहयोग के लक्षण दिखाई देते हैं। 2 वर्ष की आयु से ही बच्चा अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए रोता है। कपड़े व बालों को खींचता है या वर्जित कार्य करता है। इसके अतिरिक्त इस अवस्था में बच्चा सहानुभूति एवं उदारता को भी अभिव्यक्त करता है।

3. उत्तर या पश्चात् बाल्यावस्था में सामाजिक विकास (Social development during late childood)–इस अवस्था में बच्चा व्यक्तिगत खेलों की अपेक्षा समूह खेलों में अधिक रुचि लेता है। घर से बाहर साथी खिलाड़ियों के साथ वह खुश रहता है, क्योंकि अचेतन रूप से वह घर से बाहर अपनी सामाजिक स्वीकृति चाहता है। इस अवस्था में मुख्यतः पूर्व बाल्यावस्था के गुणों एवं विशेषताओं का ही विकास होता है। शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक और विचारात्मक प्रक्रियाओं की भाषा द्वारा अभिव्यक्ति अच्छी प्रकार से विकसित हो जाने के कारण, इस अवस्था में बच्चे समूह खेलों एवं गतिविधियों में भाग लेने लगते हैं। अतः इस अवस्था को गिरोह आयु *(Long Age)* भी कहते हैं। बच्चे अपनी पसंद के अनुकूल समूहों की ओर अग्रसर होते हैं जो मुख्यतया सामूहिक क्रीड़ा-क्रियाओं में रुचि लेते हैं। ये क्रियाऐं सामाजिक तथा असामाजिक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। इस अवस्था में विभिन्न गिरोहों की परस्पर लड़ाई सामान्य विशेषता होती है। लड़के-लड़कियों की अपेक्षा गिरोहों में अधिक सम्मिलित होते हैं। लड़कों के गिरोह का नेता आयु से बड़ा, शारीरिक रूप से सबल और अधिक उत्साही लड़का होता है। जबकि लड़कियों की नेता प्रायः सुन्दर, कोमल या बुद्धिमान लड़की होती है। सामान्यतः गिरोह अपनी क्रीड़ा क्रियाएँ तथा व्यवहार के प्रतिमान स्वयं निर्धारित करते हैं। बच्चा कभी एक गिरोह का सदस्य होता है तो कभी दूसरे का ओर कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से भी व्यवहार करता है। 8 वर्ष की आयु तक वह सामूहिक खेलों में अधिक रुचि रखता है।

उत्तर-बाल्यावस्था में बच्चे सामाजिक व्यवहार के कुछ प्रतीकात्मक प्रतिमानों को सीखते हैं। इस अवस्था में बच्चे सामाजिक अनुमोदन चाहते हैं। सुझाव-ग्रहण शीलता इस अवस्था में सर्वाधिक पाई जाती है। 7-8 वर्ष की आयु में बच्चा अपने गिरोह के नेता से सर्वाधिक प्रभावित होता है, अतः उनके सुझाव ग्रहण करता है। इस अवस्था में निषेधात्मक व्यवहार (सुझाव के विपरीत कार्य) भी देखा जाता है। गिरोह आयु के समूह में अपनी पहचान या वयस्क एवं समूह सदस्यों में द्वन्द्व के कारण प्रतिस्पर्धा भी पाई जाती है। समूह की सदस्यता से सम्बन्धित ये अन्तःक्रियाएँ अन्त में बच्चों को कुछ सामाजिक मूल्यों जैसे निष्ठा *(Loyalty)* एवं सहानुभूति *(Sympathy)* आदि के विकास में सहायता देती हैं। भिन्न-भिन्न समूहों के प्रति निष्ठा होने कारण बच्चों में सामाजिक विभेदीकरण विकसित हो जाता है। उत्तर बाल्यावस्था में धर्म, जाति सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा यौन के आधार पर तीव्र पूर्वाग्रह *(Prejudices)* विकसित हो जाते हैं। 3-4 वर्ष की आयु के बच्चे ये पूर्वाग्रह घर तथा बाहर की अन्तःक्रियाओं से सीखते हैं। विशेषतः वयस्कों द्वारा यह सामाजिक विभेदीकरण

Scanned with OKEN Scanner

बच्चों को सिखाया जाता है। इस अवस्था में प्रत्येक बच्चा अपनी आयु के अनुसार कार्य करना, नियमों का पालन करना आदि सीख जाता है। 3 से 3½ वर्ष की आयु में कुछ सीमा तक अपना उत्तरदायित्व समझने लग जाता है। वह अपना कार्य स्वयं करने लग जाता है। तथा प्रायः अपने से छोटे बच्चों को सम्भालने का उत्तरदायित्व भी लेने लगता है। उत्तर बाल्यावस्था में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में उत्तरदायित्व की भावना अधिक पाई जाती है इस अवस्था में बच्चों में सामाजिक सूझ *(Social Insight)* भी काफी मात्रा में पाई जाती है। जिसमें अपेक्षित सामाजिक मानदण्डों के अनुसार अपना व्यवहार परिवर्तित कर सकते हैं। सामाजिक सूझ का विकास आयु के साथ-साथ होता है। सामाजिक सूझ सामाजिक प्रत्यक्षीकरण पर आधारित होती है। सामाजिक सूझ का समायोजन पर भी प्रभाव पड़ता है। पूर्व बाल्यवस्था में लड़के-लड़कियों में परस्पर अन्तर नहीं समझते हैं तथा विपरीत यौन के बच्चों की क्रियाओं में 6-7 वर्ष की अवस्था से लड़के और लड़कियों में कुछ मात्रा में विरोधी भाव उत्पन्न हो जाते हैं। वे परस्पर एक दूसरे की रुचियों, कौशलों और क्रीड़ा क्रियाओं को पसन्द नहीं करते हैं। यौन विरोधी भावना की अधिकता के कारण लड़के तथा लड़कियों में उच्चता एवं हीनता की भावना, उनके व्यवहार पर कुप्रभाव डालती है।

पूर्व-किशोरावस्था की सामाजिक विशेषताएँ (Social Characteristics of Pre-adolescents)

(1) **सामाजिक-चेतना**–पूर्व किशोरावस्था में लड़के और लड़कियाँ समाज में अपना स्थान ढूंढने का प्रयास करते हैं। उनमें यह इच्छा होती है कि माता-पिता, मित्र व अध्यापक उनकी प्रशंसा करें।

(2) **समाज-सेवा की भावना का विकास**–पूर्व किशोरावस्था में किशोर समाज सेवा की भावना से ओत-प्रोत होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो समाज सेवा उनमें कूट-कूट कर भरी है।

(3) **सामाजिक-परिपक्वता**–इस अवस्था में किशोर सामाजिक उत्तरदायित्व को समझने लगते हैं। उनके अंदर सामाजिक गुण जैसे–सहानुभूति, सद्भावना, सहयोग, नेतृत्व आदि परिपक्वता की ओर अग्रसर होते हैं।

(4) **धार्मिक रुचियों का विकास**–शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में बालकों को धार्मिक रुचियों के बारे में पता नहीं होता, परंतु पूर्व किशोरावस्था में किशोरों में भक्ति भावना विकसित होनी शुरू हो जाती है।

(5) **लिंग-चेतना**–इस अवस्था में लड़के व लड़कियों में सैक्स के प्रति चेतना पैदा हो जाती है। वे एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होने लगते हैं, अतः वे अपनी वेशभूषा तथा शृंगार के प्रति अधिक ध्यान देते हैं।

(6) **जीवन-दर्शन का निर्माण**–इस अवस्था में किशोरों में नैतिकता और आदर्शों के विकास में कुछ विशेषताएँ आ जाती हैं–

(i) इस अवस्था में किशोरों में साहित्य पढ़ने की रुचि उत्पन्न हो जाती है।

(ii) शब्द कोष भी इस अवस्था तक लगभग विस्तृत हो चुका होता है।

(iii) इस अवस्था में किशोर गुप्त भाषा भी विकसित करते हैं, ऐसी भाषा को वे कोड भाषा भी कहते हैं।

(iv) इस अवस्था में किशोरों की संकल्पनाओं का भाषा के माध्यम से विकास हो जाता है।

(v) किशोरों के चिन्तन भी भाषा को प्रभावित करते हैं।

(vi) इस अवस्था में तर्क-वितर्क में भी वे भाषा का प्रयोग करता है।

(vii) पूर्व किशोरावस्था में बालक भाषा के प्रयोग के बारे में अधिकतर ज्ञान प्राप्त कर चुका होता है।

4. किशोरावस्था में सामाजिक विकास (Social Development during Adolescence)–किशोरावस्था में होने वाला सामाजिक विकास बालक को सामाजिक परिपक्वता अर्जित करने में सहायक होता है। किशोरावस्था में होने वाला हर प्रकार का विकास बालक के व्यक्तित्व समायोजन की दृष्टि बहुत महत्वपूर्ण होता है। अतः इस अवधि में होने वाले सामाजिक विकास से अध्यापक को परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के विकास का विवरण निम्न दिया गया है–

Scanned with OKEN Scanner

(1) लिंग सम्बन्धी चेतना (Sex-consciousness)–किशोरावस्था की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है इसकी लिंग सम्बन्धी चेतना। किशोर तथा किशोरियाँ एक दूसरे के प्रति आकर्षण महसूस करना शुरू कर देते हैं। वे एक-दूसरे को आकर्षित करने का प्रयास भी करते हैं। एक दूसरे के समीप आने लगते हैं। यौन-संबंध स्थापित करने की लालसा रहती है। किशोर युवक और युवतियाँ बन-सँवर कर रहते हैं। वे अपनी वेशभूषा और शृंगार के प्रति अत्यधिक जागरूक हो जाते हैं। एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हुए भी एक दूसरे से संकोच करते हैं।

(2) तीव्र संवेगों की अवधि (Period of Intense Emotions)–किशोरावस्था में सामाजिक विकास के साथ-साथ संवेगों का विकास भी बहुत तीव्रता से होता है। संवेगों के विकास का सामाजिक विकास के साथ गहरा सम्बन्ध होता है। संवेग बालक के सामाजिक व्यवहार पर हावी होते हैं। इस अवधि के दौरान किशोरों में गरीबों, दुखियों व कमज़ोरों के लिये अत्यधिक सहानुभूति होती है। इनके लिये वे कोई समाज सेवा करने की इच्छा रखते हैं। वे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की योग्यता भी ग्रहण कर लेते हैं।

(3) भविष्य के लिये चिन्तन (Think about Future)–किशोरावस्था के दौरान युवक-युवतियाँ अपने भविष्य के प्रति बहुत ही चिन्तित होते हैं। उनकी यह चिन्ता धन, शिक्षा, शादी, तथा नौकरी के बारे में होती है।

(4) नेतृत्व का विकास (Development of Leadership)–किशोरावस्था में नेतृत्व की भावना बहुत प्रबल रूप धारण कर लेती है। किशोर अपने समूहों में कई बातों के बारे में बहस करते हैं तथा समस्याओं का हल ढूँढते हैं। वे अपने समूह के प्रति वफादार होते हैं।

(5) समूह के प्रति वफादारी (Loyalty towards Groups)–किशोरावस्था के दौरान होने वाले सामाजिक विकास की और प्रमुख विशेषता यह है कि किशोर इस आयु-वर्ग में अपने समूह के प्रति वफादारी का प्रदर्शन करते हैं। वे समूह के अन्य लोगों के विचारों, आदतों और व्यवहार का अनुकरण करते हैं। समूह के प्रति किशोरों की श्रद्धा इतनी अधिक होती है कि वे अपने माता-पिता और अध्यापकों को भी पीछे छोड़ देते हैं। देश-भक्ति और शहीद होने की भावना इसी वफादारी का परिणाम होता है। दूसरे लोगों के लिये अपनी रुचियों का परित्याग किशोरावस्था में ही पनपता है।

(6) मैत्री सम्बन्धों में वृद्धि (Increase in Friendly Relationships)–किशोरावस्था के दौरान मैत्री सम्बन्धों की संख्या में वृद्धि होती है। यही मित्रता कभी आयु भर के सम्बन्धों में भी बदल जाती है। इस अवधि में मित्रों के चुनाव में उनका मानसिक स्तर और आयु का भी ध्यान रखा जाता है। लगभग सभी किशोर युवक और युवतियों अपनी ही आयु, सामाजिक स्तर, रुचियों और प्रिय कार्यों *(Hobbies)*–वाले किशोर युवक-युवतियों के साथ ही मित्रता करना पसंद करते हैं।

(7) विशिष्ट रुचियों और सामाजिक सम्बन्धों का विकास (Development of Specific Interests and Social Contacts)–इस अवस्था में सांस्कृतिक सामाजिक स्तर, परिवार तथा स्कूल आदि का प्रभाव पड़ने से किशोरों की रुचियों में विशिष्टता आनी शुरू हो जाती है और उनका सामाजिक सम्पर्कों का क्षेत्र भी फैलना शुरू हो जाता है। इसी अवस्था में किशोरों की रुचियों में अत्यधिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। कुछ किशोर बहुत ही मिलनसार होते है तथा कुछ स्वयं तक ही केन्द्रित रहते हैं।

(8) सामाजिक परिपक्वता (Social Maturity)–इस आयु वर्ग के सदस्य सामाजिक परिपक्वता ग्रहण कर लेते हैं। अर्थात् उनमें सामाजिक समायोजन की योग्यता, सहयोग के आधार पर कार्य करने की योग्यता एवं इच्छा, दूसरों के लिये अपनी रुचियों का बलिदान, सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार कार्य करने की लालसा, सामाजिक उत्तरदायित्वों की क्षमता तथा मैत्री की भावना आदि विकसित हो जाती हैं।

(9) सामाजिक चेतन (Social Awareness)–इस अवधि की प्रमुख विशेषता है कि किशोर युवक और युवतियाँ सामाजिक रूप से चेतना ग्रहण कर लेते हैं। समाज में वे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं तथा ऐसा प्रयास भी करते हैं। वे माता-पिता व अन्य लोगों की ओर से प्रशंसा एवं स्वीकृति की अपेक्षा करते हैं। सामाजिक कार्यों में भी भाग लेना शुरू कर देते हैं। किशोरों को सामाजिक तरीकों का ज्ञान होने लगता है।

Scanned with OKEN Scanner

(10) स्वतंत्रता की भावना (Feeling of Independence)–किशोरावस्था में बालक स्वयं को स्वतंत्र पसंद करते हैं। उनकी हर गतिविधि में स्वतंत्रता की भावना प्रदर्शित होती है। बड़ों के नियंत्रण से स्वयं को मुक्त रखना चाहता है। दूसरे शब्दों में वह स्वयं को बड़ा समझने लगता है।

(11) समाज सेवा की भावना (Feeling of Social Service)–किशोरावस्था के दौरान बालक में समाज सेवा बड़ी प्रबल होती है। वे आदर्श समाज की कल्पना में डूबे रहते हैं तथा वे यह लक्ष्य समाज की कुरीतियों को दूर करके प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहते हैं।

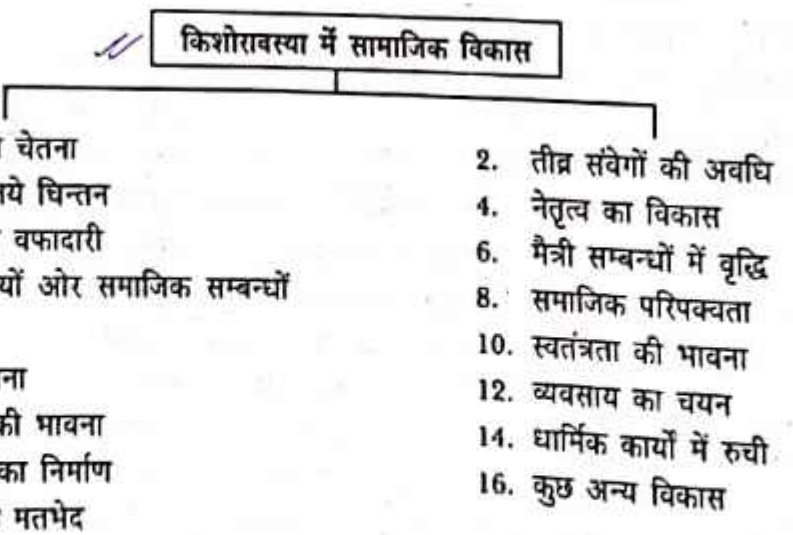
(12) व्यवसाय का चयन (Selection of a Vocation)–किशोर अधिकतर अपने भविष्य के प्रति अधिक सजग और चिन्तित रहते हैं। अपने भविष्य को ध्यान में रखकर वे किसी व्यवसाय का चयन करने की सोचते हैं। क्योंकि उचित व्यवहार के चयन पर ही उनका भविष्य और समाज में स्थान निर्भर करता है। उनका सामाजिक सम्मान भी इसी व्यवसाय पर निर्भर करता है।

(13) जीवन दर्शन का निर्माण (Develops Philosophy of Life)–किशोरावस्था का बालक एवं बालिका बहुत आदर्श होते हैं। वे अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित के प्रति अधिक सजग होते हैं। इसीलिये वे आदर्शवादी कहलाते हैं। इन आदर्शों के आधार पर वे जीवन-दर्शन का निर्माण करते हैं तथा उसी दर्शन के सहारे वे अपना जीवन बिताते हैं।

(14) धार्मिक कार्यों में रुचि (Inclination towards Religious Affairs)–किशोरावस्था में पहुंचते-पहुंचते किशोरों का धार्मिक कार्यों के प्रति झुकाव होने लगता है। उनकी धर्म के प्रति आस्था निर्मित होने लगती है। वे ईश्वर के अस्तित्व के बारे में पूछताछ आरम्भ कर देते हैं। मोक्ष के बारे में उनकी जिज्ञासा तीव्र होने लगती है।

(15) माता-पिता से मतभेद (Conflict with Parents)–इस आयु में किशोरों में अपने माता-पिता से मतभेद उभरने लगते हैं। ये मतभेद किसी न किसी रूप में उभरते हैं। ऐसे में यदि अभिभावक उनकी स्वतंत्रता का हनन करके उन्हें अपने दृष्टिकोण के अनुसार चलने के लिये कहते हैं तो वे विद्रोही बन जाते हैं।

(16) कुछ अन्य विकास (Some other Developments)–उपरोक्त विकास के अतिरिक्त किशोरों ने कुछ और भी सामाजिक विकास होते हैं, जैसे–ये अपने दृष्टिकोणों के अनुसार, रुचियों के अनुसार तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर के अनुसार स्थाई मित्रता स्थापित करने का प्रयास करते हैं, उनकी रुचि पार्टियों और उत्सवों में अधिक होने लगती है, वे अधिक बातूनी *(Talkative)* हो जाते हैं तथा उनके कई प्रकार के प्रिय-कार्य *(Hobbies)* विकसित हो जाते हैं।



चित्र : किशोरावस्था में सामाजिक विकास

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

2. सामाजिक विकास से आपका क्या अभिप्राय है? सामाजिक विकास के विभिन्न पक्षों तथा बालकों के सामाजिक विकास में अध्यापक की भूमिका की विवेचना करें।

अथवा

सामाजिक विकास को परिभाषित कीजिये तथा सामाजिक विकास के विभिन्न पक्षों तथा बालक के सामाजिक विकास में अध्यापक की भूमिका पर प्रकाश डालिये।

अथवा

सामाजिक विकास का क्या अर्थ है? सामाजिक विकास के विभिन्न पक्षों तथा बालकों के सामाजिक विकास में अध्यापक की भूमिका का वर्णन करें।

उत्तर–जन्म के समय बच्चा एक माँस का टुकड़ा होता है, लेकिन जन्म के पश्चात् उसके आकार में वृद्धि होने लगती है और मानसिक योग्यताओं का दायरा बड़ा होने लगता है। इस विकास के अतिरिक्त उसमें संवेगात्मक स्थिरता, संवेगात्मक नियंत्रण तथा सामाजिक कार्य कुशलता का विकास होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि माँस के टुकड़े के रूप में जन्म लेने के पश्चात् बालक कुशल मानव में परिवर्तित होता रहता है। अर्थात् बालक का सम्बन्ध बाहरी समाज से भी जुड़ने लगता है। तकनीकी दृष्टि से समाजीकरण की प्रक्रिया में से वह गुजरने लगता है। परिपक्वता ग्रहण करने के कगार पर पहुँच जाता है। इस प्रक्रिया में विभिन्न कारक सक्रिय हो उठते हैं। अतः अध्यापक के लिये समाजीकरण की इस प्रक्रिया को समझना अति आवश्यक है। लेकिन इससे पहले विद्यार्थी को सामाजिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करना महत्त्वपूर्ण है।

सामाजिक विकास का अर्थ
(Meaning of Social Development)

कुंडू एवं टूटू के अनुसार सामाजिक विकास से अभिप्राय है 'सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार व्यवहार करने की योग्यता को ग्रहण करना।' *(Social development means acquisition of the ability to behave in accordance with social expectations.)–C. L. Kundu & D. N. Tutoo*

हरलॉक *(Hurlock)* के अनुसार सामाजिक विकास का अर्थ है–"सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता ग्रहण करना" *(Social development means the attaining of maturity in social relationship.)*

एलकिन्ड और वेनर *(Elkind and Weiner)* के अनुसार "समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बच्चे उन सामाजिक निर्णयों और आत्म-नियंत्रण को प्राप्त करते हैं जो उनके समाज के जिम्मेदार प्रौढ़ सदस्यों के लिये अवश्यक होते हैं।" *(Socialization is the process through which children acquire the social judgement and self-control necessary for them to be come responsible adult members of their society.)*

सोरेनसन *(Sorenson)* ने सामाजिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है–"सामाजिक वृद्धि और विकास से हमारा तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।" *(By social development we mean increasing ability to get along well with oneself and others.)*

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि केवल समाज ही मनुष्य को सभ्य बनाता है। सामाजिक अपेक्षाओं के अनुसार व्यवहार करने की योग्यता, सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता ग्रहण करना, दूसरों के साथ सहयोग करने की योग्यता ग्रहण करना, समाज की परम्पराओं और रीति-रिवाजों के अनुकूल, स्वयं को ढालने की योग्यता व आत्म-नियंत्रण प्राप्त करने की योग्यता आदि सामाजिक विकास के विभिन्न पक्ष हैं।

सामाजिक विकास के पक्ष (Aspects of Social Development)–सामाजिक विकास की प्रक्रिया बहुत विस्तृत प्रक्रिया है। इनमें विभिन्न पक्षों को शामिल किया जाता है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया में भाग लेने वाले पदों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है, जो कि निम्नलिखित हैं–

Scanned with OKEN Scanner

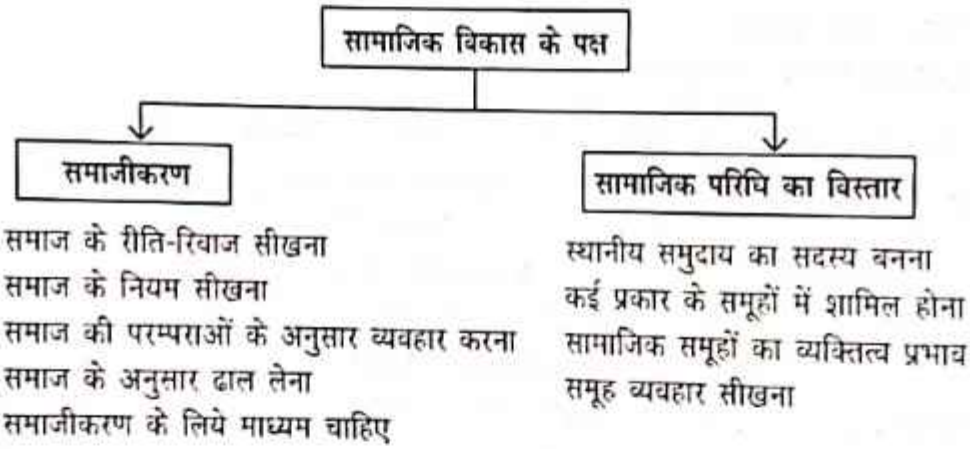
(1) समाजीकरण *(Socialization)*

(2) सामाजिक परीधि का विस्तार *(Expansion of Social Horizon)*

(1) समाजीकरण (Socialization)–समाजीकरण प्रक्रिया के अन्तर्गत बालक निम्नलिखित बातें सीखता है–*(a)* समाज के रीति-रिवाज, *(b)* समाज के नियम, *(c)* समाज की परम्पराओं के अनुसार व्यवहार करना *(d)* समाज के अनुसार स्वयं को ढ़ालना।

बच्चों के सामाजिक सम्बन्धों की संख्या की अपेक्षा सामाजिक सम्बन्धों के प्रकार अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं *(The kind of social contancts in more important than the number of social contacts.)*

(2) सामाजिक परिधि का प्रसार (Expansion of Social Horizon)–सामाजिक विकास की प्रक्रिया के दौरान सामाजिक परिधि का भी विस्तार होता है अर्थात् इस प्रक्रिया के दौरान बालक सामाजिक रीति-रिवाजों को सीखने के साथ-साथ अपनी सामाजिक परिधि *(Social Horizon)* का भी विस्तार करता रहता है। बालक पर स्थानीय समुदाय का सदस्य बनकर कई प्रकार के समूहों का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। बालक के सामाजिक विकास के इस पक्ष के अन्तर्गत बालक समूह-व्यवहार करना सीखता है। बालक के समूह के सदस्यों के साथ सहानुभूति, सहयोग तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार करने की योग्यता ग्रहण करता है। **गैरट (Garrett) के अनुसार**–"बच्चे का जैविक व्यक्ति से मनुष्य के रूप में परिवर्तित होना ही समाजीकरण या सामाजिक विकास की प्रक्रिया है।" *(Socialization or social development is the process where by the biological and vidual is converted into a human person.)* एक अध्ययन के अनुसार प्रतिभावान् बच्चे तीव्रता से सामाजिक परिपक्वता ग्रहण करते हैं तथा मंद *(Dull)* बालक धीमी गति से।



बालक के सामाजिक विकास या समाजीकरण में अध्यापक की भूमिका (Role of Teacher in Social development and Socialization of a Child)–शिक्षक का बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षक के स्नेह, पक्षपात, अच्छे बुरे व्यवहार आदि का सभी बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। वह कक्षा और खेल के मैदान में, साहित्यिक और सांस्कृतिक क्रियाओं में बालकों के सामने सामाजिक व्यवहार के आदर्श प्रस्तुत करता है। बालक अपनी अनुकरण की मूल प्रवृत्ति के कारण शिक्षक के ढंगों, कार्यों, आदतों और रीतियों का अनुकरण करता है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षक सदैव सतर्क रहे। उसके कथनों तथा कार्यों की छाप छात्र पर लग जाती है।

अध्यापक भी बच्चे के व्यक्तिगत व सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्कूल शिक्षा का एक औपचारिक साधन *(Formal Agency)* है तथा क्रमबद्ध रूप से बच्चे के समाजीकरण की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान करता है। वास्तव में स्कूल बच्चे को वहाँ से उठाता है जहाँ से उसका परिवार उसे छोड़ता है। अध्यापक शिक्षा के द्वारा बच्चे में वह सांस्कृतिक मूल्य पैदा करता है, जो इस समाज व संस्कृति में मान्य होते हैं। स्कूल में खेल में खेल प्रक्रिया द्वारा बच्चे सहयोग, अनुशासन, सामूहिक कार्य आदि सीखते हैं। इस प्रकार स्कूल बच्चे में आधरभूत सामाजिक व्यवहार तथा व्यवहार के सिद्धान्तों की नींव डालता है।

Scanned with OKEN Scanner

इसके साथ शिक्षक के स्नेह, पक्षपात, अच्छे और बुरे व्यवहार आदि का बच्चों पर प्रभाव पड़ता है। वह कक्षा और खेल के मैदान में, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक क्रियाओं में बालकों के सामने सामाजिक व्यवहार के आदर्श प्रस्तुत करता है। बालक अपने अनुकरण की मूल प्रवृत्ति के कारण शिक्षकों के कार्यों, आदतों और रीतियों का अनुकरण करता है। अतः यह अध्यापक का कर्तव्य बन जाता है कि वह बच्चों के सामने आदर्श प्रस्तुत करें क्योंकि अध्यापक के कथनों तथा कार्यों की छाप छात्र पर लग जाती है।

बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया की तीव्र गति प्रदान करने के लिए शिक्षक को **निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ–**

(1) अभिभावकों से समय-समय पर सम्पर्क स्थापित करना और छात्र के विकास के सम्बन्ध में सोचना तथा कार्य करना।
(2) अपने समाज की संस्कृति का छात्र को ज्ञान देना।
(3) छात्रों के सामने सामाजिक आदर्श उपस्थित करना।
(4) छात्रों को स्कूल की परम्पराओं से परिचित करना।
(5) विभिन्न सामाजिक योजनाओं तथा सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करना।
(6) स्कूल में विभिन्न परिवारों से आए हुए बालकों में अन्दर सांस्कृतिक भावना का विकास करना।
(7) उसे समय-समय पर अभिभावाकों से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए तथा मिल-जुल कर बच्चे के विकास के सम्बन्ध में सोचना चाहिए तथा कार्य करना चाहिए।
(8) बच्चे को सामाजिक संस्कृति व समाज में प्रचलित मान्यताओं का ज्ञान देना चाहिये।
(9) छात्रों के सामने सामाजिक आदर्श स्थापित करना चाहिए।
(10) छात्रों को स्कूल की परम्पराओं से परिचित करवाना चाहिए।
(11) अध्यापक को छात्रों के साथ स्नेह तथा सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।
(12) अध्यापक के द्वारा बालकों को विभिन्न सामाजिक योजनाओं तथा सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये।
(13) अध्यापक को छात्रों तथा प्रधानाचार्य आदि के साथ मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने चाहिये।

अतः सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि अध्यापक उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर बालकों में उचित व्यक्तिगत और सामूहिक सम्बन्धों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

◆◆◆

3. सामाजिक विकास या समाजीकरण से आप क्या समझते हैं? बालक के सामाजिक विकास या समाजीकरण में परिवार तथा वियालय की भूमिका का वर्णन करें।

अथवा

सामाजिक विकास या समाजीकरण का क्या अर्थ है? बालक का समाजीकरण करने में परिवार तथा वियालय की भूमिका का वर्णन कीजिये।

उत्तर–जन्म के समय बच्चा एक पशु के समान होता है, लेकिन धीरे-धीरे उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों में वृद्धि होने से वह एक सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित हो जाता है। आयु के साथ-साथ बच्चा कुशल मानव के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया में बच्चे का समाजीकरण भी प्रमुख प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में सामाजिक विकास की विभिन्नता को समझने के लिए सर्वप्रथम सामाजिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करना अति आवश्यक है।

सामाजिक विकास का अर्थ (Meaning of Social Development)–सामाजिक अपेक्षाओं *(Social Expectations)* के अनुसार व्यवहार करने की योग्यता को ग्रहण कर लेना ही सामाजिक विकास कहलाता है।

Scanned with OKEN Scanner

हरलॉक *(Hurlock)* के अनुसार सामाजिक विकास सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता ग्रहण करना है।

सोरेनसन *(Sorenson)* ने सामाजिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है–'सामाजिक वृद्धि और विकास से हमारा तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।'

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि केवल समाज ही मनुष्य को एक सभ्य प्राणी बनाता है। सामाजिक और मानसिक विकास के अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मानसिक विकास के अतिरिक्त सामाजिक विकास का सम्बन्ध संवेगात्मक विकास के साथ भी होता है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि बहुत सी सामाजिक समस्याओं का मूल कारण ही संवेगात्मक समस्याएँ होती हैं और संवेगात्मक समस्याओं का मूल कारण सामाजिक समस्याएँ होती हैं।

सामाजिक गुण जन्मजात नहीं होते। विकास के सभी पक्ष अपना-अपना प्रभाव बालक पर डालते हैं। इस प्रक्रिया में सामाजिक गुण भी बालक में धीरे-धीरे विकसित होते रहते हैं। सामाजिक विकास वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सामाजिक विकास के दो पक्ष होते है–समाजीकरण *(Socialization)* और सामाजिक परिधि का विस्तार *(Expansion of Social Horizon)* समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्य अपने समाज के रीति-रिवाज सीखता है, समाज के नियम सीखता है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया के मध्य बालक सामाजिक रीति-रिवाजों के साथ-साथ अपनी सामाजिक परिधि का भी विस्तार करता है। अपने समुदाय का सदस्य बनकर कई प्रकार के समूहों में शामिल होता है। इन समूहों के सदस्यों के साथ सहानुभूति, सहयोग तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार करने की योग्यता ग्रहण करता है।

सामाजिक विकास की कसौटियाँ (Criteria of Social Development)–सामाजिक विकास की **निम्नलिखित कसौटियाँ हैं–**

(1) सामाजिक प्रौढ़ता *(Social Maturity)*
(2) सामाजिक अनुरूपता *(Social Conformity)*
(3) सामाजिक समायोजन *(Social Adjustment)*
(4) सामाजिक अन्तःक्रियाएँ *(Social Interaction)*
(5) सामाजिक कार्यों में भाग लेना *(Social Participation)*

बालक के सामाजिक विकास या समाजीकरण में परिवार की भूमिका *(Role of Family in Social Development Or Socialization of Child)*

वह घर सचमुच स्वर्ग के समान होता है जहाँ परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे के साथ मिलकर रहते हैं। जहाँ सभी के मन में एक-दूसरे के लिए प्रेम, आदर एवं भक्ति की भावना होती है। जहाँ सब अपने सुख के साथ दूसरे के सुख का भी ध्यान रखते हैं। यही हैं अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने के मूल सिद्धान्त। जिस घर में रहने वालों के आपसी सम्बन्ध अच्छे होते हैं वहाँ पलने वाले बच्चों की प्रवृत्तियाँ एवं व्यक्तित्व भी इन अच्छी बातों से अछूते नहीं रहते। जब बच्चा अपने अभिभावाकों में प्यार, दुलार, समझदारी, नम्रता, निःस्वार्थ, विश्वास आदि गुणों का अनुभव करता है तो उसमें यह सारे गुण स्वयं ही आ जाते हैं। घर में अन्य सदस्यों के साथ मिल-जुल कर रहने की शिक्षा, बच्चे को अभिभावकों से ही मिलती है। बच्चा जब अपने परिवार के साथ मिलकर रहना सीखता है तभी उसे समाज के नियमों तथा रीति-रिवाजों को मानने का महत्त्व भी समझ में आता है। माता-पिता के सामाजिक व्यवहार के ढांचे पर ही बच्चे का सामाजिक विकास होता है। इस प्रकार परिवार में रह कर बच्चा उस व्यवहार को सीखता है, जो समाज को मान्य है तथा समाज में रहने के लिए आवश्यक है।

ऋषि जैमिनी ने ब्रह्मसूत्र में कहा है–"बच्चा नागरिकता का सर्वोत्तम पाठ माँ के चुम्बनों और पिता की देखभाल में सीखता है।" सांस्कृतिक और सामाजिक आदर्श माता-पिता द्वारा ही सन्तान तक पहुंचते हैं। माता-पिता बच्चे के प्रथम शिक्षक होते हैं। वही उसकी शिक्षा की नींव रखते हैं। बच्चे का अधिकांश शिक्षण

Scanned with OKEN Scanner

सहज रीति से ही सम्पन्न होता है। बच्चे के व्यवहार और अन्तःक्रिया करते हुए माता-पिता उसे ज्ञान प्रदान करते हैं। माता-पिता के बच्चे से बातचीत और व्यवहार करने के तरीके की बच्चे के व्यक्तित्व पर अमिट छाप पड़ती है।

बिगड़े हुए प्रतिकूल पारिवारिक सम्बन्धों का बच्चे के विकास पर बहुत घातक प्रभाव पड़ता है। जो बच्चा अपने कठोर माता-पिता के प्रति क्रोध का मनोभाव रखने लगता है, वह घर से बाहर सभी वयस्कों के प्रति विरोध का रवैया अपना लेता है। इसी प्रकार लाड़-प्यार से वंचित रह जाने पर बच्चे में हीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है।

परिवार में बालक पर प्रभाव डालने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण कारक
(Factors Affecting the Child in the Family)

(1) माता-पिता की अभिवृत्तियों का बालक के सामाजिक विकास पर प्रभाव (Effect of Parents attitudes on the Social development of Child)–बालक का विकास बहुत कुछ अभिभावकों की अभिवृत्तियों से प्रभावित और निर्धारित होता है। कई बार यह देखा गया है कि अभिवृत्तियों का निर्माण बालकों के उत्पन्न होने से पहले ही हो जाता है। कम आयु वाले अभिभावक अपने बालकों के प्रति उत्तरादायित्व का निर्वाह उस प्रकार और इतना अच्छी तरह नहीं करते हैं, जितना कि अधिक आयु वाले अभिभावक करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि अभिभावक अपने नये उत्तरदायित्व के साथ समायोजन नहीं कर पाते हैं।

कुछ अभिभावकों में अपने बालकों के प्रति अति-संरक्षण *(over-protection)* की अभिवृत्ति होती है। यदि यह अभिवृत्ति अभिभावकों में अधिक दिनों तक चलती है तो बालक में अनेक प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे शीघ्र परेशान होने की प्रवृत्ति, ध्यान लगाने की कम योग्यता, दूसरों पर आश्रित होना, दूसरों से शीघ्र प्रभावित होना, अपनी योग्यताओं पर विश्वास न होना आदि।

कुछ अभिभावकों में अपने बच्चों के प्रति तिरस्कार की अभिवृत्ति होती है। अभिभावकों का तिरस्कार बालकों के आत्म-सम्मान को चोट पहुंचाने वाला होता है। अभिभावकों का तिरस्कार बालकों में अनेक विशिष्ट लक्षण उत्पन्न कर सकता है, जैसे–आक्रामकता, निर्दयता, झूठ, बोलने की प्रवृत्ति, समाज विरोधी व्यवहार, असहायता की भावना आदि।

कुछ भी अभिभावकों में प्रभुत्वशाली अभिवृत्ति होती है। इस अभिवृत्ति के अभिभावक प्रायः कठोर स्वभाव वाले होते हैं। ये अपने बालकों के साथ प्रभुत्वशाली अभिवृत्ति अपनाते हैं और अपने बच्चों को अधिक नियन्त्रण में रखते हैं। अभिभावकों की प्रभुत्वशाली अभिवृत्ति के कारण बालकों में अनेक विशिष्ट लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे–अति-संवेदनशीलता, अधिक शर्मीलापन, हीनता की भावना। उस प्रकार के विशिष्ट लक्षणों वाले बच्चों और अभिभावकों में मधुर सम्बन्ध नहीं होते हैं। कुछ अभिभावक जब अपने बच्चों पर बिल्कुल नियन्त्रण नहीं रखते हैं तो बालक कहना नहीं मानता है, बालकों का व्यवहार उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं होता है, वे लापरवाह हो जाते हैं।

(2) परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर (Socio-Economic Status of the Family)–अभिभावक और बालक सम्बन्ध को परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर भी महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है।

(3) माता-पिता का व्यवसाय (Parent's Occupation)–अभिभावक और बालक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाला यह एक महत्त्वपूर्ण कारक है। पिता के व्यवसाय का परिवार के बच्चों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अधिक आयु के बच्चों की सामाजिक प्रतिष्ठा बहुत कुछ पिता के व्यवसाय से निर्धारित होती है। माँ का व्यवसाय भी बालकों के व्यवहार के महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। यदि माँ किसी व्यवसाय में होती है तो छोटे बच्चों को अकेले रहना पड़ता है, जिससे उनमें अकेलेपन और अप्रसन्नता की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। ये भावनाएँ उस समय और तीव्र हो जाती है जब बालक के दूसरे साथियों की माँ घर में रहकर उनका पालन-पोषण करती हैं और उन्हें स्नेह देती हैं। इस अवस्था में बालक अभिभावक सम्बन्ध मधुर नहीं होते हैं

Scanned with OKEN Scanner

(4) माता-पिता का बच्चों के प्रति पक्षपात (Biased attitude towards Children)– अधिकांश अभिभावक बालकों के साथ बहुत समानता का व्यवहार नहीं कर पाते हैं। होता यह है कि वह अपने कुछ बच्चों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं तथा कुछ बालकों पर अधिक ध्यान और स्नेह नहीं दे पाते हैं। प्रायः माँ अपने बेटे का बेटियों की अपेक्षा अधिक पक्ष लेती हैं तथा पिता अपनी बेटी का बेटों की अपेक्षा अधिक पक्ष लेते हैं। कई बार माता-पिता अपने उस बच्चे का भी अधिक पक्ष लेते हैं, जिसमें कोई शारीरिक दोष या मानसिक दुर्बलता होती है। जब माता-पिता अपने कई बच्चों में से केवल एक या कुछ का मान करते हैं तो इस अवस्था में अन्य बालकों के साथ सम्बन्ध बिगड़ने की पूर्ण सम्भावना रहती है।

(5) बच्चे का जन्म क्रम (Birth order of the Child)–अभिभावक बालक सम्बन्ध जन्म के क्रम से भी प्रभावित होते हैं। माता-पिता पहले बालक के प्रति अच्छी अभिवृत्ति रखते हैं और उसे वरीयता अधिक देते हैं। पहले बालक में परिपक्वता, अनुरूपता और आश्रितता अधिक होती है। बाद के बच्चे पहले बच्चे की अपेक्षा अपने आपको तिरस्कृत समझते हैं। अतः बालक-अभिभावक सम्बन्ध तिरस्कार की भावना से बिगड़ सकते हैं।

(6) भाई-बहनों के आपसी सम्बन्ध (Mutual relations of Brother and Sisters)– भाई-बहनों में सर्वाधिक अच्छे सम्बन्ध उस समय होते हैं जब भाई-बहनों में आयु सम्बन्धी कोई विशेष अन्तर नहीं होता है। जुड़वाँ बच्चों में आपसी सम्बन्ध अन्य भाई-बहनों की अपेक्षा अच्छे होते हैं। भाई-बहनों में आयु सम्बन्धी अन्तर जितना अधिक होता है, उनके आपसी सम्बन्धों के खराब होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। दो बहनों में जितनी ईर्ष्या होती है उतनी दो भाइयों या एक भाई-बहन में नहीं होती। लड़के अपनी बहनों की अपेक्षा अपने भाइयों से अधिक लड़ाई करते हैं। भाई-बहनों में यदि स्नेह है, तो वे एक-दूसरे के साथ खेलते हैं, वे एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हैं और सहायता करते हैं। इस अवस्था में पारिवारिक सम्बन्ध अच्छे होते हैं। भाई-बहनों में जब भी मनमुटाव वाले सम्बन्ध होंगे, पारिवारिक सम्बन्ध तब अवश्य खराब होंगे। बालकों के बीच ईर्ष्या और मन-मुटाव को प्रारम्भ में ही समझा कर समाप्त कर देना चाहिए, जिससे कि पारिवारिक सम्बन्धों में ह्रास न हो।

(7) परिवार का आकार (Size of the Family)–बड़े परिवारों की अपेक्षा छोटे परिवारों में पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे होते हैं। यदि अभिभावक बड़ा परिवार चाहते हैं और यदि परिवार बड़ा होता है तो अभिभावक-बालक सम्बन्ध मधुर होते हैं। परन्तु यदि अभिभावक छोटा परिवार पसन्द करते हैं और किसी कारण वश उनका परिवार बड़ा हो जाता है तो अभिभावक बालक सम्बन्ध बिगड़ने की सम्भावना अधिक होती है।

परिवार में नए बच्चों के उत्पन्न होने का अन्तर भी अभिभावक-बालक सम्बन्धों को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है।

छोटे परिवार में अभिभावक अपने बच्चों के साथ अधिक समय देते हैं। बच्चों को समान और अधिक सुविधाएँ मिलने की सम्भावना होती है, अतः इस बात की भी अधिक सम्भावना होती है कि अभिभावक-बालक सम्बन्ध मधुर रहें। छोटे परिवारों में बहुधा दो या तीन बच्चे होते हैं। इन परिवारों में बहुधा प्रजातांत्रिक वातावरण होता है। अनुशासन भी इन परिवारों में अधिक होता है। इन परिवारों में अभिभावक-बालक सम्बन्ध बहुत अच्छे होते हैं।

बालक के समाजीकरण या सामाजिक विकास में विद्यालय की भूमिका
(Role of School in Socialization of Social Development of Child)

परिवार के बाद पाठशाला का बच्चे के व्यक्तित्व पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। पाठशाला में बच्चे के व्यक्तित्व के बौद्धिक, भावात्मक, शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पक्षों का विकास होता है। बच्चे के जीवन के जो वर्ष पाठशाला में बीतते हैं, उनमें जीवन के प्रति सही मूल्य, कौशल और अभिवृत्तियों की नींव रखी जाती है। बच्चे के जीवन के स्कूल के कुछ वर्ष ही वह काल खण्ड है, जिसमें ज्ञान प्राप्त करने

Scanned with OKEN Scanner

तथा जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए ज्ञान का उपयोग करने के विषय में बच्चे की अभिवृत्ति और कौशल की नींव रखी जाती है।

(1) विद्यालय की बालक के व्यक्तित्व विकास में भूमिका (Role of School in the development of Child's Personality)–स्कूल से सम्बन्धित अनेक कारकों का प्रभाव बालक के विकास पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, कक्षा का वातावरण, अध्यापक, अनुशासन, स्कूल में पक्षपात, शैक्षिक उपलब्धि, सामाजिक उपलब्धि आदि कारक बालक के व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं। स्कूल में बच्चा अपने सहपाठियों तथा शिक्षकों आदि के व्यवहार से ही प्रभावित नहीं होता है, बल्कि विद्यालय का सामान्य वातावरण भी बालक के व्यवहार को प्रभावित करता है। उसे विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के बच्चों के साथ मिलने का अवसर मिलता है। वह इन तमाम प्रकार के बच्चों की आदतों, विचारों और चरित्र आदि से प्रभावित होता है।

संरक्षकों के बाद बालक के व्यक्तित्व विकास पर स्कूल का प्रभाव उसी प्रकार पड़ता है, जिस प्रकार से जैसे पहला प्रभाव घर या परिवार का पड़ता है और दूसरा प्रभाव उस कक्षा का पड़ता है जहाँ बालक पढ़ता है।

(2) विद्यालय और बालक का चरित्र (School and character of Child)–परिवार के बाद स्कूल का बालक के नैतिक और चारित्रिक विकास पर महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव पड़ता है। स्कूल के शिक्षक, सहपाठी और वातावरण आदि सभी बालक के नैतिक विकास में कुछ योगदान अवश्य देते हैं। स्कूल में बालक के पाठ्यक्रम और अनुशासन का भी उसके नैतिक मूल्यों के विकास पर महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव पड़ता है। जिस स्कूल का सामान्य अनुशासन और व्यवस्था ठीक होती है, वहाँ पढ़ने वाले बालकों को चारित्रिक विकास के लिए सुन्दर वातावरण मिलता है। स्कूल में बालकों के नैतिक विकास पर उसके साथी समूह का भी महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, बालक के साथी दुराचारी हैं तो निश्चय ही बालक में भी इसी प्रकार के व्यवहार प्रतिमान विकसित होंगे।

(3) विद्यालय और सामाजिक विकास (School and Social Development)–स्कूल में शिक्षक और बालक के मित्र भी बालक के सामाजिक विकास में योगदान देते हैं। स्कूल में बालक को अपनी आयु के अनेक बालकों के साथ बैठने और सीखने का अवसर ही नहीं मिलता है, बल्कि उसे बड़े बच्चों के सामाजिक अनुभव सुनने और सामाजिक व्यवहार देखने का अवसर भी मिलता है। इन अवसरों से उसकी सामाजिक सूझ तथा सामाजिक प्रत्यक्षीकरण बढ़ता है। फलस्वरूप वह समाज के विभिन्न मूल्यों से सम्बन्धित व्यवहार को सीखता है। स्कूल के अनेक कार्यक्रमों में भाग लेकर वह अनेक सामाजिक व्यवहार प्रतिमानों को सीखता है। स्कूल में वह सहयोग, मित्रता और आत्मनिर्भरता आदि सीखता है।

◆◆◆

4. सामाजिक विकास को परिभाषित करें तथा बालकों के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न महत्त्वपूर्ण तत्त्वों या कारकों का वर्णन करें।

अथवा

सामाजिक विकास से आप क्या समझते हैं? बालकों के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक कौन-कौन से हैं? वर्णन करें।

अथवा

सामाजिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुये बालकों के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों की व्याख्या करें।

उत्तर–हरलॉक (Hurlock)–के मतानुसार–"सामाजिक विकास का अर्थ उस योग्यता को अर्जित करना है, जिसके द्वारा सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार किया जा सके।"

चाइल्ड (Child) ने विकास को परिभाषित करते हुए कहा है–"सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति में उसके समूह मानकों के अनुसार वास्तविक व्यवहार का विकास होता है।"

Scanned with OKEN Scanner

ऊपर लिखित परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्ति अपने सांस्कृतिक व सामाजिक मानदण्डों तथा समूह की प्रत्याशाओं *(Expectations)* के अनुसार व्यवहार करना सीखता है। दूसरे शब्दों में सामाजिक विकास का अर्थ सामाजिक समायोजन से है।

सामाजिक प्रत्याशा से तात्पर्य है कि प्रत्येक समूह अपने समूह के व्यक्तियों से उनकी आयु के अनुसार कुछ विशेष सामान्य व्यवहार किये जाने की आशा करता है, जैसे–एक बालक से यह आशा की जाती है कि वह अपने माता-पिता का आदर करेगा, उनकी आज्ञा का पालन करेगा, अपने भाई-बहनों के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करेगा तथा अपनी आयु के अनुसार अन्य कार्य करेगा। इस प्रकार की आशायें समाज में विभिन्न समूहों के सदस्यों से की जाती हैं।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्वों में परिवार-समुदाय, प्राथमिक एवं द्वितीयक समूह, समाज, राष्ट्र आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। बाल विकास में सामाजिक विकास के अध्ययन से अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की खोज हुई है। सोरेनसन ने सामाजिक विकास की व्याख्या करते हुए कहा है–"सामाजिक वृद्धि और विकास से हमारा तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार से चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।"

समाज में जन्म लेने, विकसित होने एवं समाज में जीवनयापन करने के लिए सामाजिक आदर्शों तथा प्रतिमानों का अनुसरण करना ही सामाजिक विकास की ओर कदम बढ़ाना है। सामाजिकता के विकास से ही बालक में समायोजन की क्षमता उत्पन्न होती है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक *(Factors Affecting Social Development)*

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि बालक के विकास का हर पक्ष महत्त्वपूर्ण होता है। हर प्रकार का विकास किसी न किसी कारक से प्रभावित होता है। कारकों का अध्ययन एक अध्यापक के लिये अति आवश्यक है। बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं–

(1) परिवार (Family)–गर्भ से बाहर आते ही शिशु परिवार का सदस्य बनता है तथा तभी से उसका समाजीकरण शुरू हो जाता है। अतः परिवार इस समाजीकरण की प्रक्रिया को किसी न किसी रूप में प्रभावित करता है। परिवार का आकार, माता-पिता का आपसी सम्बन्ध, उनका दृष्टिकोण, परिवार का आर्थिक स्तर, परिवार की सामाजिक दशा, सामाजिक परम्पराएं, रीति-रिवाज आदि परिवार से सम्बन्धित कारक के विभिन्न पक्ष हैं।

अच्छे परिवार सुसमायोजित व्यक्तित्व उत्पन्न करते हैं। पारिवारिक क्लेश, परिवारों का बच्चों में रुचि न लेना, तलाक, अप्रसन्नता, मृत्यु आदि कुसमायोजित व्यक्तित्व को जन्म देते हैं।

साईमांड *(Symonds)* के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के स्वस्थ, स्थाई, उत्साही और स्नेहमयी माता-पिता हैं तो वह एक अच्छा नागरिक, अच्छा कार्यकर्ता, अच्छा पति, अच्छी पत्नी और एक अच्छा अध्यापक होगा।

परिवार सामाजिक जीवन में तीन कार्य करता है–

(1) परिवार बच्चे के समाजीकरण का मुख्य साधन है।

(2) परिवार संस्कृति के संचारण *(Transmission)* में सहायक होता है।

(3) परिवार व्यक्तित्व के प्रदर्शन का साधन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार के निम्न पक्ष बच्चों के सामाजिक विकास को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं–*(a)* परिवार का आकार, *(b)* परिवार के अन्दर सम्बन्ध, *(c)* परिवार की परम्पराएं, *(d)* सामाजिक तथा आर्थिक स्तर, *(e)* परिवार के अन्य सदस्यों के दृष्टिकोण इत्यादि।

(2) स्कूल (School)–परिवार के प्रभाव के पश्चात् स्कूल का प्रभाव भी बच्चों के व्यक्तित्व पर बहुत गहरा पड़ता है। क्योंकि परिवार से निकल कर वे अधिकतर समय स्कूल में ही व्यतीत करते हैं। माता-पिता का स्थान स्कूल में अध्यापक ग्रहण कर लेता है। होश संभालने के पश्चात् बच्चे अधिकतर समय तक

Scanned with OKEN Scanner

अध्यापकों के सम्पर्क में ही रहते हैं। इस दृष्टि से बच्चों के प्रति अध्यापकों का दृष्टिकोण बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसके अतिरिक्त स्कूल बच्चों का सांस्कृतिक ज्ञान और विषयों का ज्ञान प्रदान करता है। यह सफल जीवन के लिये आवश्यक है। एक जिम्मेदार नागरिक को तैयार करने में स्कूल की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। स्कूलों में निरंकुश *(Autocratic)* वातावरण सामाजिक विकास को प्रभावित करता है तथा जनतन्त्रीय वातावरण *(Democratic)* सामाजिक विकास में सहयोग करता है। संक्षेप में, स्कूल में चलाये जा रहे कार्यक्रम, अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामाजिक गुणों व उनके सामाजिक व्यवहारों आदि का प्रभाव बच्चे के सामाजिक विकास पर अत्यधिक होता है।

(3) संवेगात्मक विकास (Emotional Development)–सामाजिक विकास का आधार संवेगात्मक विकास होता है। सामाजिक और संवेगात्मक विकास दोनों ही साथ-साथ चलते हैं। संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति सामाजिक रूप से परिपक्व होता है। अतः सामाजिक विकास के लिये बच्चों को संवेगों के नियंत्रण के बारे में प्रशिक्षण देना अति आवश्यक होता है।

(4) शारीरिक-स्वास्थ्य (Physical Health)–शारीरिक विकास भी सामाजिक विकास पर अपना प्रभाव छोड़ता है। अस्वस्थ बच्चा कभी भी समाज में स्वयं को समायोजित नहीं कर सकता लेकिन एक स्वस्थ बालक समायोजन में अग्रसर रहता है। अस्वस्थ बच्चों में कई प्रकार की हीन-भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो कि उनके सामाजिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

(5) समुदाय का प्रभाव (Community Influences)–बालक के सामाजिक विकास पर समुदाय का भी प्रभाव पड़ता है। पार्क, खेल का मैदान, अजायबघर, पुस्तकालय आदि बच्चों की स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत सुरक्षा आदि को प्राप्त करने के लिये अत्यधिक सहायक होते हैं। समुदाय के ये साधन बच्चों में आज्ञा पालन, ईमानदारी, नम्रता जैसे गुणों का विकास करने में सहायक होते हैं।

(6) खेल के साथी और मित्रों का प्रभाव (Influences of Playmates)–प्रारम्भ में बच्चा अपने माता-पिता की स्वीकृति के बारे में चिन्तित होता है। लेकिन स्कूल में प्रवेश के पश्चात् वह अपने मित्रों और खेल के साथियों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। वह अपने व्यक्तित्व के उन्हीं पक्षों को अधिक विकसित करने का प्रयास करेगा, जिनकी प्रशंसा उनके मित्र या खेल के साथी करते हों। स्कूल में वह दूसरे साथियों के सम्पर्क में आता है और स्वयं के व्यक्तित्व का अनुमान लगाना सीखता है। यह उसके व्यक्तित्व की आधारशिला होती है। वह जितने अनुभव प्राप्त करेगा उतना ही उसका व्यक्तित्व निखरेगा तथा उतना ही अच्छा उसका सामाजिक समायोजन होगा। इसी प्रकार बच्चे की लोकप्रियता उसके व्यक्तित्व को निखारने में बहुत सहायक होती है।

(7) बौद्धिक विकास (Intellectual Development)–जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सामाजिक विकास और बौद्धिक विकास में गहरा सम्बन्ध होता है। बौद्धिक विकास के अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं को समाज में ठीक प्रकार से समायोजित कर सकता है। इस प्रकार का विकास बच्चे के सामाजिक विकास का एक आवश्यक तत्त्व है। अतः बौद्धिक रूप से विकसित बालक सामाजिक रूप में भी विकसित होगा।

(8) धार्मिक संस्थाओं का प्रभाव (Influence of Religious Institutions)–बालकों का सामाजिक विकास विभिन्न धार्मिक संस्थानों द्वारा भी प्रभावित होते हैं। जैसे मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरजाघर आदि। धार्मिक संस्थाओं के बच्चों में नैतिक मूल्यों का विकास संभव हो पाता है। अतः धार्मिक संस्थाओं का महत्त्व भी कभी नहीं आंका जाना चाहिए।

(9) मनोरंजन एवं सूचना करने वाले साधन (Means of Entertainment and Information)–व्यक्ति के जीवन में मनोरंजन और विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का भी बहुत अधिक महत्त्व होता है। अतः मनोरंजन और सूचनाएँ प्रदान करने वाले साधनों पर नजर रखना अनिवार्य है, क्योंकि वे साधन व्यक्ति के व्यक्तित्व को किसी न किसी रूप में प्रकाशित करते रहते हैं। इन साधनों में शामिल हैं–समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, पत्रिकाएं, पुस्तकें, सिनेमा इत्यादि। बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है। सिनेमा, टेलीविजन इत्यादि का अनुकरण बच्चे अत्याधिक करते हैं। अतः इन साधनों का चयन बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

(10) आस-पड़ोस का प्रभाव (Locality Influences)–सामाजिक विकास पर बच्चों का आस-पड़ोस भी हावी रहता है। आस-पड़ोस के वातावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। आस-पड़ोस द्वारा बच्चों को जीवन के स्तर का ज्ञान होता है। दोषपूर्ण आस-पड़ोस से बच्चों का समायोजन भी दोषपूर्ण ही होगा तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी कई समस्याएँ उभरेंगी।

(11) सामाजिक-आर्थिक स्तर (Socio-economic Status)–सामाजिक विकास पर परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव भी आसानी से देखा जा सकता है। विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तरों के बच्चों के व्यवहारों में भी भिन्नता देखने को मिलती है। यह भिन्नता धन-व्यय करने, बच्चे को प्रशिक्षण देने, अनुशासन तथा माता-पिता के प्रति दृष्टिकोण आदि में पाई जाती है।

(12) माता-पिता का व्यवसाय (Parental Occupation)–माता-पिता का व्यवसाय बच्चों के सामाजिक विकास को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। बाल्यकाल से प्रारम्भिक वर्षों में यह प्रभाव अधिक होता है, क्योंकि बालक के पालन-पोषण के व्यवसाय का सीधा सम्बन्ध होता है, जैसे उसका भोजन, कपड़े, खेल का सामान इत्यादि। माता-पिता का व्यवसाय बच्चों को सामाजिक सम्मान भी प्रदान करता है।

(13) भाई-बहनों का प्रभाव (Sibling Influences)–परिवार में रहते भाई-बहनों का उनके माता-पिता के साथ सम्बन्धों का प्रभाव परिवार में रह रहे बालक पर पड़ता है। जैसे–परिवार का पहला बच्चा माता-पिता को बहुत प्यारा लगता है तथा वह उन पर बहुत आश्रित रहता है। घर से बाहर रहकर बच्चा स्वयं को समायोजित नहीं कर पाता। वह स्वार्थी हो जाता है। लेकिन जब परिवार में दूसरा बच्चा जन्म लेता है तो वह स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगता है।

(14) परिवार का आकार (Size of the Family)–बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का आकार बहुत ही महत्त्पूर्ण योगदान करता है। बड़े-बड़े परिवारों के बच्चों का व्यक्तित्व छोटे परिवारों के बच्चों से भिन्न होता है तथा बेहतर होता है। प्रत्येक परिवार में बच्चा अपनी विशिष्ट भूमिका ग्रहण कर लेता है।

(15) वशांनुक्रम (Heredity)–वशांनुक्रम बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण कारक है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि वशांनुक्रम का बालक के सामाजिक विकास पर एक निर्धारित सीमा तक प्रभाव पड़ता है।

(16) समूह का प्रभाव (Group Influences)– बालक किसी न किसी समूह का सदस्य होता है। समूह का सदस्य होने के कारण वह व्यवहार में दक्ष हो जाता है। इस दक्षता के परिणामस्वरूप उन्हें समाज में समायोजन करने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। अतः टोली के प्रभावों में रहकर बालक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है।

(17) माता-पिता एवं बच्चों का सम्बन्ध (Relation between Children and Parents)–अध्ययनों के आधार पर देखा गया है कि माता-पिता द्वारा किए गए अधिक लाड़-प्यार या जरूरत से कम लाड़-प्यार से बच्चा स्वार्थी एवं अंतर्मुखी स्वभाव का हो जाता है। आगे चलकर ऐसे बच्चे का जीवन बड़ा कष्टमय हो जाता है। वह हमेशा दूसरों पर निर्भर करने लगता है। अधिक प्यार से बच्चे बिगड़ जाते हैं। कहा गया है कि माता-पिता का अधिक प्यार बच्चों को बरबाद कर देता है।

इसके विपरीत, जिन बच्चों को माता-पिता का प्यार कम मिलता है वे बच्चे बाल अपराधी हो जाते हैं। वे सोचने लगते हैं कि जब समाज के लोग उनकी परवाह नहीं करते तो वे ही क्यों समाज की परवाह करें। इस तरह वे समाजद्रोही बन जाते हैं। कम प्यार मिलने से बच्चा खिन्न, ईर्ष्यालु, चिन्तित इत्यादि हो जाता है, जिससे उसका सामाजिक विकास ठीक से नहीं हो पाता।

इतना ही नहीं, कभी-कभी यह देखा जाता है कि माता किसी काम के लिए प्रंशसा करती है, किन्तु पिता उसी के लिए सजा देता है। ऐसी अवस्था में बच्चा यह समझ नहीं पाता कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। अतः बच्चे में उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं हो पाता और वह समाजद्रोही हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

माता-पिता को सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को न अधिक प्यार करें, न कम, बल्कि जरूरत के अनुसार प्यार करें। बच्चों के सामने कभी ऐसी परिस्थिति उपस्थित न की जाए, जिससे उसमें उचित-अनुचित का ज्ञान न हो।

(18) माता-पिता का परस्पर सम्बन्ध (Relation of Mother and Father)–माता-पिता के आपसी सम्बन्ध का भी बच्चों के सामाजिक विकास में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। अगर माता-पिता के सम्बन्ध अच्छा हैं तो बच्चे का सामाजिक विकास भी सुचारू ढंग का होगा, अन्यथा नहीं। देखा गया कि झगड़ालू माता-पिता के बच्चे के बच्चे भी झगड़ालू ही होते हैं। अतः सामाजिक विकास सुचारू ढंग से हो, इसके लिए आवश्यक है कि माता-पिता के सम्बन्ध भी सुख-शान्ति से परिपूर्ण हों।

(19) जन्मक्रम तथा भाई बहन का आपस में सम्बन्ध (Birth order and relations of Brother and Sister)–इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बच्चों का 'जन्मक्रम' तथा 'भाई-बहन के आपसी 'सम्बन्ध' का निश्चित रूप से सामाजिक विकास पर असर पड़ता है। इस संबंध में एडलर का कहना है कि परिवार का सबसे बड़ा लड़का जब अकेले रहता है, तब उसका सामाजिक विकास बहुत तेजी एवं सुचारू ढंग से होता है। इसका कारण यह है कि उसके माता-पिता उसकी ओर काफी ध्यान देते हैं। किन्तु दूसरे बच्चे के आगमन से परिवार के लोगों का ध्यान बड़े बच्चे से हटकर छोटे बच्चे पर चला जाता है। बड़ा बच्चा परिवार के लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ऐसे बहुत सारे गुणों का विकास अपने में कर लेता है, जो सामाजिक विकास के लिए बाधक होते हैं। उसमें अपने छोटे भाई-बहन के प्रति ईर्ष्या की भावना हो जाती है। परिवार के 'सबसे छोटे बच्चे को' भ्रष्ट बच्चा कहते हैं। बीच वाले बच्चे का वातावरण ऐसा होता है, जो उसके सामाजिक विकास के लिए कम अनुकूल होता है।

माता-पिता के लिए आवश्यक है कि अपने बच्चों के समक्ष एक उचित पारिवारिक वातावरण उपस्थित करें, जिससे उनके बच्चों में उपेक्षित होने की भावना का विकास न हो। यह ध्यान में रहे कि उनके बच्चे न आपस में झगड़ें, न एक-दूसरे से डाह करें। इस तरह के उचित पारिवारिक वातावरण के अभाव में बच्चे का सामाजिक विकास सुचारू ढंग से नहीं हो पाता। बच्चे इसके अभाव में बाल अपराधी हो जाते हैं, अतएव पारिवारिक वातावरण पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

(20) संघ, संस्था और कैम्प (Union, Institution and Camp)–संघ, संस्था और कैम्प का भी सामाजिक विकास पर कम प्रभाव नहीं पड़ता। इनसे भी बच्चों में बहुत सारे ऐसे गुणों का आविर्भाव होता है, जो आगे चलकर सामाजिक विकास में काफी सहायक होते हैं, जैसे–सहकारिता, प्रतियोगिता, अनुशासन का पालन, भौतिकता, निःस्वार्थता इत्यादि। यही कारण है कि हर स्कूल में एन. सी. सी., स्काउट आदि की शिक्षा लड़कों को दी जाती है। इस तरह कैंप, संस्था, संघ इत्यादि में रहकर बच्चा उसके नियमों का पालन करना, नेता की बातों को मानना आदि सीखता है, जिनका उपयोग आगे के सामाजिक जीवन में अधिक होता है।

(21) सामाजिक-व्यवस्था (Social System)–देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक इत्यादि व्यवस्थाओं का प्रभाव भी बच्चों के सामाजिक विकास पर पड़ता है।

(22) दल (Group)–बालकों में अपने दल के प्रति आस्था देखी जाती है। यह आस्था कभी-कभी बड़ी प्रबल होती है। दल के नेता का आदेश हर बालक मानता है। दल समायोजन, आज्ञा पालन, नवीन मूल्यों आदि भावनाओं को विकसित करता है। दल में रहकर वह अनेक गुणों तथा दुर्गुणों को भी सीखता है।

(23) नेतृत्व (Leadership)–जहाँ कहीं कुछ बालक एक साथ खेलते हैं, उनका सामाजिक व्यवहार एक सा प्रतीत नहीं होता। बालकों के समूह में उनका एक नेता अवश्य बन जाता है। वह बालक अपने समूह की आवश्यकता को समझता है और उसके अनुसार कार्य करता है। नेतृत्व का गुण समाज में परिस्थितियों के कारण विकसित होता है। नेता बालक कई परिस्थितियों में नेतृत्व कर सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य, भाषा, कार्यकुशलता, वीर-पूजा आदि गुणों से नेतृत्व का विकास होता है।

(24) संवेग (Emotions)–बालक का संवेगात्मक व्यवहार उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। जिद्दी, नाराज होने वाला, क्रोध करने वाला बालक समूह में ठीक प्रकार से समायोजित नहीं हो पाता। यदि यह कहा जाये कि संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास एक-दूसरे के पूरक हैं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

Scanned with OKEN Scanner

(25) शारीरिक-बनावट (Physique)–केवल स्वास्थ्य ही बच्चों के सामाजिक विकास को प्रभावित नहीं करता, बल्कि 'शारीरिक बनावट' का हाथ भी इसमें अत्यधिक है। यह पाया गया है कि कुरूप, काने या अंग-भंग वाले बच्चों का सामाजिक विकास सुंदर एवं सभी अंगों से परिपूर्ण बच्चों के सामाजिक विकास की अपेक्षा सुचारू रूप से नहीं होता। काने, लंगड़े आदि बच्चे 'हीनता की भावना' से पीड़ित रहते हैं, जिससे वे दूसरे बच्चों से मिलते-जुलते नहीं। दूसरे बच्चे भी शारीरिक दोष वाले बच्चों को अपने साथ खेलने नहीं देते तथा तरह-तरह के उपनाम देकर उन्हें चिढ़ाते हैं, जिसके फलस्वरूप उनमें ईर्ष्या आदि की भावना का विकास होता है।

अन्य बच्चों के चिढ़ाने से शारीरिक दोष वाले बच्चे चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं, जिससे उनका अभियोजन कठिन हो जाता है। इस तरह जब समाज के अन्य लोग उस पर ध्यान नहीं देते हैं तब वह समाज के नियमों का उल्लंघन कर अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है। शारीरिक दोष से पीड़ित बच्चे बाल अपराधी हो जाते हैं और समाज के नियम तोड़ने लगते हैं। इससे बच्चे डरपोक, अन्तमुर्खी, स्वार्थी इत्यादि हो जाते हैं, जिसका उनके सामाजिक जीवन पर काफी प्रभाव पड़ता है।

(26) अन्य-कारक (Other Factors)–कुछ लोगों का विचार है कि लैंगिक भेद *(Sex Differences)* भी सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। टी. एम. ग्रीन *(T. N. Green)* के अनुसार लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक सहनशील, सहयोगी, त्याग की भावना वाली तथा सहानुभूतिपूर्ण होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया इतनी सहज, सरल नहीं। यह बहुत ही विस्तृत और जटिल होती है। सामाजिक विकास का सम्बन्ध विकास के अन्य पक्षों के साथ किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष रूप से होता है।

◆◆◆

5. बच्चों के सामाजिक विकास के लिये अभिभावकों तथा शिक्षकों की क्या महत्त्वपूर्ण भूमिका हैं? वर्णन कीजिये।

अथवा

बच्चों के सामाजिक विकास में माता-पिता तथा अध्यापकों की भूमिका की विवेचना कीजिये।

अथवा

बच्चों के उचित सामाजिक विकास में माता-पिता तथा अध्यापक क्या भूमिका निभा सकते हैं? स्पष्ट कीजिये।

अथवा

बच्चों के उचित सामाजिक विकास में माता-पिता तथा अध्यापक की भूमिका एवं कर्तव्यों पर एक नोट लिखें।

उत्तर–बच्चे अकसर समूहों में खेलना अधिक पसन्द करते हैं तथा समूह के द्वारा ही उनमें सहयोग और आपसी लगाव की भावना का उदय होता है।

समूह-जीवन *(Group-life)* ही सामाजिक विकास को प्रेरित *(Motivate)* करता है, अतः परिवार एवं विद्यालय में रहने का अवसर देना चाहिए। अस्तु घर पर बालकों को साथियों के बीच रहने-खेलने की छूट तथा विद्यालय में सामूहिक शिक्षण *(Group teaching)* को महत्त्वपूर्ण मानना चाहिए।

उत्तरदायित्व का भाव, सहयोग की प्रवृत्ति तथा समायोजन की क्षमता का विकास करने के लिए बच्चों को घर अथवा परिवार के छोटे-मोटे कामों में भाई-बहनों (अथवा माता-पिता) का हाथ बँटाने का अवसर देना चाहिए। आत्मानुभूति *(Self-realisation)*, आत्माभिव्यक्ति *(Self-expression)*, आत्मानुभव *(Self-experience)* सामाजिक विकास के प्रबल यन्त्र सिद्ध होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

विद्यालयों में योजना-पद्धति *(Project Method)* से शिक्षण, बालचर योजनाओं के अन्तर्गत चुने गए कार्य, खेल-कूद *(Games and sports)* तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन द्वारा सामाजिक विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है। स्किनर तथा हैरिमन *(Skinner and Hariman)* के अनुसार—"खेल का मैदान बालक का निर्माण-स्थल है। यहाँ उसे प्रदान किये जाने वाले सामाजिक तथा यान्त्रिक उपकरण उसके सामाजिक विकास को निश्चित करने में सहायता देते हैं।"

"विद्यालय सामुदायिक जीवन का केन्द्र है" *(School is the centre of community life)* तथा डीवी *(Dewey)* के शब्दों में—"इसे समाज का सच्चा प्रतिनिधि होना चाहिए" *(School should be true representative of society.)*

'व्यक्ति समाज की इकाई है' *(Individual is the unit of society.)* शिक्षा का प्रयोजन बालक को उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का ज्ञान कराना होना चाहिए; साथ ही यह भी आवश्यक है कि उसमें सामाजिक कल्याण *(Social welfare)* की चेतना जागृत की जाये। अतः बालकों के बीच ऐसे संगठनों के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिनका उद्देश्य सामाजिक हित तथा व्यवस्था की स्थापना हो।

विद्यालय प्रशासन में छात्रों को सम्मिलित *(Involve)* कर उनके सामाजिक विकास में योगदान किया जा सकता है। ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों को लेकर स्वशासन-समिति की स्थापना की जा सकती है, जिस पर व्यवस्था, संगठन तथा अनुशासन-सम्बन्धी छुट-फुट समस्याओं के समाधान खोजने के अतिरिक्त अनेक 'नैत्यिक कार्यों' *(Routine works)* के संचालन का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है।

विद्यालयीय पाठ्यक्रम में भी ऐसे प्रकरणों को भी सम्मिलित किया जा सकता है जिनके द्वारा 'सामाजिक चेतना' का अधिकाधिक विकास हो, सामाजिक सामंजस्य में सहायता मिले, सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों, मान्यताओं, आदर्शों, वर्जनाओं, कुरीतियों, अन्धविश्वासों तथा समस्याओं का ज्ञान हो तथा समाज-कल्याण, परस्पर सौहार्द, राष्ट्रीय एवं संवेगात्मक एकता *(National and emotional integration)* तथा सांस्कृतिक व मानव मूल्यों *(Cultural and human values)* को अपनाने की प्रेरणा मिले।

यह भी आवश्यक है कि अध्यापक में 'सामाजिक परिपक्वता' हो तथा वह सामाजिक कार्यों में कुशल हो; क्योंकि तभी वह अपने विद्यार्थियों के सामाजिक विकास में सक्षम हो सकेगा। **स्टांग** *(Strong)* के अनुसार—"वास्तविक सामाजिक ग्रहणशीलता तथा योग्यता वाले शिक्षकों से दैनिक सम्पर्क बालक के सामाजिक विकास में अतिशय योग देता है।"

पाठ्यक्रम 'जीवन-केन्द्रित' *(Life centred)* अर्थात् जीवन की परिस्थितियों से सम्बन्धित होना चाहिए, जिससे वह बालक के लिये उपयोगी बन सके। सामाजिक दृष्टिकोण से ऐसी ही शिक्षा सार्थक होती है, जो उसे उत्तम व्यक्ति, कुशल नागरिक तथा सजग देशवासी बना सके।

शिक्षा द्वारा बालक को स्वानुभवजनित ऐसा व्यावहारिक ज्ञान *(Practical knowledge)* मिलना चाहिए जो उसे पारिवारिक, सामुदायिक एवं सामाजिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में सहायक हो सके। केवल सैद्धान्तिक *(Theoritical)* तथा पुस्तकीय *(Bookish)* ज्ञान बालक के लिए प्रयोजन-विहीन *(Purposeless)* होता है।

शिक्षालयों में व्यवसायपरक शिक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है। बालक को ऐसी तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा भी मिलनी चाहिए जो उसके जीविकोपार्जन में सहायक हो सके तथा इस भांति भावीष्यत् जीवन के लिए सुरक्षा की भावना विकसित कर उन्हें आश्वस्त कर सके।

विद्यालय को समाज के समरूप होना चाहिए। सामाजिक जीवन के सभी कार्यकलापों को विद्यालयीय जीवन में स्थान मिलना चाहिए तथा शिक्षालय में बालक को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि अध्ययन समाप्त कर समाज में आने पर उसे कोई परिस्थिति नवीन अथवा अपरिचित न लगे तथा विद्यालय जीवन के अनुभव एवं अभ्यास उसके सामाजिक जीवन का मार्गदर्शन करते रहें।

विद्यार्थियों में मैत्री, नेतृत्व, समूह-नैतिकता, कर्तव्य-पालन, समाज-सेवा, सजगता, मौलिकता, पहल, अनुशासन तथा दूरदृष्टि विकसित करने के उद्देश्य से पाठ्य-सहगामी क्रियाओं में रूप के एन. सी. सी., स्काउटिंग तथा गाइडिंग का भी आयोजन होना चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

अध्यापकों व शिक्षार्थियों के बीच यथासम्भव पिता-पुत्र का सम्बन्ध होना चाहिए, तभी एक सुसम्बद्ध *(Well-correlated)*, सुगठित, *(Well-integrated)* एवं सुसंतुलित *(Well-balanced)* विद्यालयीय परिवार की रचना सम्भव है। विद्यालय में प्राप्त सम्पूर्ण शिक्षा, प्रशिक्षण, विनय *(Discipline)* तथा अधिगम अन्ततः सामाजिक क्षेत्र में हस्तान्तरित हो जाता है।

सामाजिक विकास के लिए स्वतन्त्र वातावरण में स्वेच्छा से मिल-जुल कर कार्य करने का बड़ा महत्त्व होता है। अभिभावकों तथा अध्यापकों के लिए अपेक्षित है कि वे बालकों को स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेने तथा पारस्परिक सहयोग द्वारा कार्यों को सम्पन्न करने के अवसर प्रदान करते रहें।

◆◆◆

IV. नैतिक विकास
(Moral Development)

1. नैतिक विकास से आप क्या समझते हैं? बालक के नैतिक विकास के विभिन्न चरणों या पदों तथा विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

अथवा

नैतिक विकास से आपका क्या अभिप्राय है? बालकों में होने वाले नैतिक विकास के विभिन्न चरणों या पदों (Steps) तथा अवस्थाओं की विवेचना कीजिए।

अथवा

नैतिक विकास का क्या अर्थ है? बालकों के नैतिक विकास के विभिन्न चरण तथा अवस्थायें कौन-कौन सी हैं? व्याख्या करें।

उत्तर–नैतिक अर्थात् *"Moral"* शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द *"Mores"* से हुई है, जिसका अर्थ है 'रीति-रिवाज' अथवा लोक-रीति। वास्तव में नैतिकता का संप्रत्यय एक सापेक्षिक संप्रत्यय है, जिसकी व्याख्या समाज या संस्कृति के संदर्भ में ही की जा सकती है। प्रत्येक समाज में कानून व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये कुछ विशेष नियम व कानून बनाये जाते हैं तथा समाज के प्रत्येक नागरिक को इन नियमों व कानूनों का पालन करना उसका नैतिक दायित्व होता है। जो व्यक्ति समाज के द्वारा बनाये गये नियमों व मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करता है, उसका व्यवहार नैतिक माना जाता है और जो व्यक्ति सामाजिक नियमों एवं मान्यताओं का पालन नहीं करता है, उसका व्यवहार अनैतिक माना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि नैतिकता पूर्ण रूप से एक सामाजिक तथ्य *(Social Phenomenon)* है।

नैतिक विकास का अर्थ
(Meaning of Moral Development)

साधारण शब्दों में नैतिक व्यवहार से तात्पर्य सामाजिक मान्यताओं व आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने से है। **हरलॉक के मतानुसार**–"समूह के कोड के अनुसार व्यवहार करना ही नैतिक व्यवहार कहलाता है।" नैतिक व्यवहार से संबंधित नियमों व मान्यताओं का पालन करना व्यक्ति के चरित्र की दृढ़ता व पवित्रता से संबंधित होता है।

अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति नैतिक मूल्यों व आदर्शों को इसलिये नहीं अपनाता है कि वे परंपरागत हैं या समाज के सारे लोग इनका अनुसरण करते हैं, बल्कि वह इन मूल्यों और आदर्शों को अपनी तर्क व विवेकशक्ति के आधार पर ग्रहण करता है, क्योंकि नैतिकता से संबंधित सभी नियम धार्मिक विश्वासों, नियमों, पवित्रता, आस्था, न्याय तथा सच्चाई पर आधारित होते हैं और सदैव बुद्धि से संबंधित तथा तार्किक होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

नैतिकता से संबंधित व्यवहार जन्मजात नहीं होता, अपितु नैतिकता का विकास बालक के वातावरण के संपर्क में आने के पश्चात् होता है। प्रारंभ में बालक नैतिकता से संबंधित व्यवहार को पुरस्कार, दंड या प्रशंसा और निंदा आदि के आधार पर सीखता है। आरंभ में बालक को उचित और अनुचित का ज्ञान नहीं होता है। वह केवल प्रलोभन के कारण ही उचित व्यवहार प्रदर्शित करता है। इस अवस्था में बालक को पूर्णतः नैतिक नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में बालक में नैतिकता का विकास उसकी ज्ञान, शक्ति व विवेक के विकास पर निर्भर करता है।

किशोरावस्था में जाकर बालक में विवेक का उदय होता है। अतः तब वह प्रलोभनों को त्यागकर अपनी अंतःप्रेरणा और अंतरात्मा के आधार पर शुद्ध आचरण अपना सकता है। अतः उचित-अनुचित का ज्ञान व नैतिक-प्रत्यय *(Moral Concept)* के विकसित हो जाने पर जब बालक स्वयं अपनी बुद्धि एवं विवेक के आधार पर उचित निर्णय देना आरंभ कर देता है, तभी हम कह सकते हैं कि बालक में स्वस्थ रूप से नैतिक-व्यवहार का विकास हो रहा है। अतः विवेक एवं बुद्धि के द्वारा निर्देशित होकर अपनी इच्छानुसार नैतिक व्यवहार करना नैतिकता को प्रदर्शित करता है।

इस संदर्भ में नैतिकता को एक आंतरिक तथ्य *(Internal fact)* की संज्ञा दी जा सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि नैतिकता या नैतिक व्यवहार का संबंध ऐसी मानसिक वृत्ति से है, जो मनुष्य को उचित-अनुचित का ज्ञान कराती है तथा उसे मानवीय-मूल्यों को बनाये रखने और चारित्रिक-नियमों के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार से नैतिकता आत्म-चेतना के आधार पर व्यक्ति को उचित-अनुचित, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय और भलाई-बुराई में अंतर करना सिखलाती है। यह सभी प्रकार के अंतर व्यक्ति अपने सामाजिक-अनुभवों के आधार पर ही सीख पाता है। यदि बालक में नैतिक मूल्य दृढ़ व स्थायी रूप धारण कर लेते हैं तो बालक कठिन परिस्थितियों में भी अनुचित व्यवहार नहीं करता है, अपितु वह अपनी बुद्धि एवं तर्क के आधार पर उचित निर्णय लेकर ही सही व उचित व्यवहार करता है।

नैतिक-भावना बच्चे में शैशव-अवस्था से ही पैदा होने लगती है। नैतिकता की पहली सीढ़ी परिणाम पर आधारित होती है। यह सात वर्ष से पूर्व की आयु होती है, जब बच्चा किए गए कार्य के अनुकूल प्रभाव को अच्छा और प्रतिकूल प्रभाव को बुरे की संज्ञा देता है। यह विधि वस्तुनिष्ठ नैतिक प्रदर्शन कहलाती है।

सात वर्ष की आयु के बाद बच्चा काम के पीछे की भावना पर ध्यान देने लगता है। यह विधि व्यक्ति नैतिक प्रदर्शन कहलाती है और यह स्तर लगभग 10 वर्ष की आयु तक विकसित होता है।

यह भी एक तथ्य है कि बालक अपना स्वयं का नैतिक आचरण विकसित नहीं कर सकता। सामाजिक आचरण का अनुपालन एकदम नहीं हो पाता। इसके लिए सतत् नैतिक शिक्षा और समय की आवश्यकता होती है।

बारह वर्ष की अवस्था में बालक स्थायी-व्यवहार के योग्य हो पाता है। जिन घरों में दोहरे मानदण्ड अपनाए जाते हैं, वहां बालक के नैतिक-विकास में संघर्ष पाया जाता है।

नैतिकता का विचार या नैतिक-विकास (Moral Development)—नैतिक-विकास के निम्नलिखित दो चरण होते हैं—

1. नैतिक-व्यवहार का विकास
2. नैतिक-अवधारणा का विकास

1. नैतिक-व्यवहार का विकास (Development of Moral Behaviour)—समाज के समस्त व्यवहारों को ग्रहण करने में व्यक्ति को अनेक वर्ष लगते हैं। इसमें कुछ नैतिक व्यवहारों को वह दण्ड एवं पुरस्कार के कारण सीखता है, कुछ को अनुकरण द्वारा सीखता है और कुछ को प्रतिबिम्बित चिंतन के माध्यम से सीखता है। समस्त नैतिक व्यवहारों को सिखाने का उद्देश्य बालकों में अनुशासन की भावना विकसित करना है। यदि अनुशासन की धारण स्पष्ट है तो बालक नैतिक-व्यवहार को सरलतापूर्वक सीख लेता है। बालक को सही-गलत सिखाना मात्र ही नैतिक-व्यवहार का सीखना नहीं है। 'ईमानदारी' के गुण के बारे में अध्ययन करके यह परिणाम निकाला गया कि विशिष्ट परिस्थितियों में ऐसे गुणों का विकास किया जा सकता है। कभी-कभी ऐसी भी परिस्थिति आती है कि बालक सही निर्णय लेने में संघर्ष की स्थिति से गुजरता है।

Scanned with OKEN Scanner

नैतिक-व्यवहार को उचित रूप में सीखने के लिये बालकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये–

1. बालक को विशिष्ट परिशिष्ट में सही कार्य करने की कुशलता अर्जित करनी चाहिए।
2. बालक में सही/गलत की शुद्ध अवधारणाओं का विकास होना चाहिए।
3. विभिन्न परिस्थितियों में समान विशेषताओं वाले व्यवहार का अर्जन करना चाहिए।

2. नैतिक-अवधारणा का विकास (Development of Moral Assumption)–नैतिक-विकास की प्रक्रिया में नैतिक अवधारणा का विकास भी एक आवश्यक पहलू है। जब हम सही/गलत की बात करते हैं तो हम यह मान लेते हैं कि यह भावात्मक विचार है। भावात्मक अवधारणाओं को ग्रहण करने तथा समझने के लिए यह आवश्यक है कि मानसिक तथा शारीरिक परिपक्वता में संतुलन हो। अवधारणा के विकास पर बालक की बुद्धि, उसके सामाजिक सांवेगिक-विकास, सांस्कृतिक वातावरण एवं उसकी प्रक्रिया से उत्पन्न गुणों का प्रभाव पड़ता है। बालक में निःस्वार्थ भावना का विकास स्वार्थ की भावना-युक्त आत्म-केंद्रीयता, सामाजिक-केंद्रीयता, आज्ञा-पालन, धर्म तथा नैतिकता के नियमों का अनुपालन, सामाजिक अस्वीकृति का भय तथा पारस्परिक-अनुक्रिया द्वारा होता है।

बालकों के नैतिक विकास की विभिन्न अवस्थायें
(Different Stages of Children's Moral Development)

प्रारंभ से ही नवजात-शिशु अपने आसपास के वातावरण के प्रति विभिन्न क्रियायें करना शुरू कर देता है, परंतु वह जो भी क्रियायें करता है उनके स्वरूप के बारे में उसे कोई ज्ञान नहीं होता है। उसकी सभी क्रियायें मूल-प्रवृत्यात्मक *(Instinctive)* प्रकार की होती हैं। अतः विकास-क्रम के अंतर्गत बालक अपने वातावरण के द्वारा ही नैतिक आचरण करना सीखता है। प्रारंभिक अवस्था के दौरान बालक का नैतिक विकास उसके परिवार के सदस्यों, पड़ोस, संगी-साथी तथा उसे स्कूल के द्वारा प्रदान की गई औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा के आधार पर होता है।

जैसे-जैसे बालक के सामाजिक क्षेत्र के दायरे में वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे बहुत से सामाजिक कारक उसे विशेष ढंग से आचरण और नैतिक व्यवहार करने के लिये बाध्य करते हैं। बालक बड़ा हो जाने के उपरांत अपनी बुद्धि एवं विवेक के आधार पर निर्णय लेकर सामाजिक नियमों, मानदण्डों *(Norms)* एवं आदर्शों के अनुसार नैतिक-व्यवहार व आचरण करना प्रारंभ कर देता है। अतः हम कह सकते हैं कि नैतिक-विकास एक लंबी व जटिल प्रक्रिया है। कोई भी बालक एक दिन में ही नैतिक प्राणी का रूप धारण नहीं कर लेता बल्कि वह नैतिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं को पार करने के बाद नैतिक प्राणी बनता है।

बालक के नैतिक-विकास की मुख्य अवस्थायें निम्नलिखित हैं–

1. शैशवावस्था में बालकों का नैतिक-विकास (Child's Moral Development during Infancy)–सामान्य रूप से दो वर्ष तक के बालक में सही-गलत तथा उचित-अनुचित में अंतर करने की क्षमता नहीं होती है। प्रारंभ में बालक अपने सुखद और दुखद अनुभवों के आधार पर ही किसी आचरण को अच्छा या बुरा समझता है। वह उसी कार्य को अच्छा समझता है, जिससे उसको सुख प्राप्त हो। वह किसी दूसरे बालक की किसी वस्तु को लेना अथवा किसी दूसरे बालक से खिलौना आदि छीन लेने को बुरा नहीं मानता है। वह केवल यही सोचता है और समझता है कि मुझे क्या अच्छा लग रहा है अथवा मैं क्या पाना चाहता हूं? क्योंकि शैशवावस्था में बालक स्व-प्रेम करने वाला तथा स्व-केंद्रित *(Self cultured)* ही होता है। उसमें यह सोचने की क्षमता नहीं होती कि उसके व्यवहार से किसी को कष्ट पहुँचेगा या उसको किस स्थिति में कौन-सा व्यवहार करना चाहिये। जब बालक को दो वर्ष का हो जाता है तो उसके बाद वह बड़ों या परिवार के अन्य सदस्यों की इच्छानुसार आचरण करना सीखने लगता है।

2. पूर्व-बाल्यावस्था में नैतिक विकास (Moral development in Pre-Childhood)–तीन से छः वर्ष की आयु नैतिक-व्यवहार की आधारशिला है। इस समय तक बालक यह नहीं जान पाता कि कोई

Scanned with OKEN Scanner

कार्य क्यों अच्छा अथवा बुरा है। उसे केवल कार्य करने के लिये कहा जाता है। इस अवस्था में उसके नैतिक-व्यवहार के लक्षण **इस प्रकार** विकसित होते हैं–

(i) औचित्य-अनौचित्य के कारण को न समझना

(ii) समूह का अनुकरण करना

(iii) न्याय तथा आदर को समझना

अन्य शब्दों में पूर्व-बाल्यावस्था *(Early Childhood)* की अवस्था में बालक का नैतिक विकास बाहरी प्रोत्साहनों जैसे–प्रशंसा तथा बच्चे की पसंद की वस्तु आदि के आधार पर होता है। इस अवस्था में बालक के माता-पिता उसे जिस कार्य को करने पर उसे पुरस्कार देते हैं अथवा उसकी प्रशंसा करते हैं, वह उसी कार्य को उचित समझता है तथा जिस कार्य के लिए माता-पिता उसे दण्ड देते हैं बालक उसे अनुचित समझता है। इसी कारण से बालक इस अवस्था में दण्ड से बचने तथा पुरस्कार प्राप्त करने के लिये अनुचित व्यवहार को छोड़कर उचित व्यवहार को करना सीख लेता है। बालक जब स्कूल में जाने लगता है तब वह अपने शिक्षकों के द्वारा नैतिकता से संबंधित विभिन्न प्रकार के व्यवहार को सीखता है तथा स्कूल में रहकर उसे नैतिक-मूल्यों को व्यवहार में लाने के अनेक अवसर मिलते हैं। बालक अपने जिन नैतिक-व्यवहारों के लिए अपने शिक्षकों तथा परिवार के सदस्यों से प्रशंसा प्राप्त करता है, उन्हीं व्यवहारों को नैतिक मानकर वह अपने जीवन में अपना लेता है। लेकिन जब बालक को परिवार के सदस्य उसके द्वारा किसी विशेष कार्य करने पर उसे पुरस्कार देते हैं और विद्यालय में उसे दण्ड दिया जाता है तो ऐसी स्थिति में बालक को नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित के संबंध में निर्णय लेने में दिक्कत होती है तथा वह यह निर्णय नहीं ले पाता कि वह किस व्यवहार को अपनाये और किसे छोड़े। अतः बालक के समुचित ढंग से नैतिक-विकास के लिये यह जरूरी है कि उसके माता-पिता तथा शिक्षक उसे उचित रूप में सही कार्य करने पर उसे पुरस्कार प्रदान करें या प्रशंसा करें तथा गलत कार्य करने पर उसे दण्ड भी दें। इस अवस्था के दौरान बालक के विभिन्न प्रकार के नैतिक मूल्य दृढ़ अथवा मजबूत नहीं हो पाते हैं और बालक अपने द्वारा किये गये विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को तब तक उचित अथवा अनुचित या सही अथवा गलत नहीं मानता है जब तक कि उसको किसी परिवार के समझदार या बड़े व्यक्ति के द्वारा समझाया न जाये।

3. पश्चात्-बाल्यावस्था में नैतिक-विकास (Moral Development in late childhood)–यह अवस्था लगभग 6 से लेकर 12 वर्ष तक चलती है। इस अवस्था के दौरान बालक का नैतिक विकास समूह के द्वारा प्रभावित होता है। इस अवस्था में वह नैतिक व्यवहार का सामान्यीकरण करने लगता है तथा साथ ही साथ वह झूठ से संबंधित बात का भी सामान्यीकरण करने लगता है अर्थात् वह इस अवस्था में यह भलीभांति समझ जाता है कि बड़ों से, माता-पिता, अध्यापक या मित्रों आदि से झूँठ बोलना बुरी बात है। इस अवस्था के समाप्त होने तक बालक का नैतिक व्यवहार लगभग वयस्क व्यक्तियों की तरह का हो जाता है। इस अवस्था में बालकों को समय-समय पर नैतिकता से संबंधित शिक्षा देनी चाहिये। **कुछ अध्ययनों में यह पाया गया है** कि जिन बालकों की बुद्धि-लब्ध *(I.Q.)* उच्च या अधिक होती है, उनका नैतिक व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व होता है।

4. किशोरावस्था में बालकों का नैतिक-विकास (Child's Moral Development during Adolescence)–समाज व्यवहार की दृष्टि से नैतिक क्षेत्र में भी किशोर बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के दौर से गुजरता है। नैतिकता के बारे में वह अपने ज्ञान को अधिक दृढ़ बनाने का प्रयास करने लगता है। वह क्या सही है, क्या गलत है आदि को भली प्रकार समझना चाहता है। इसमें वह केवल माता-पिता द्व ारा सिखाए गए निर्देशों के अतिरिक्त अपने अनुभव को भी सामने रखकर अपनी विचार दृष्टि का विकास करने लगता है।

वह समाज के रूढ़ियों, नैतिक मानकों तथा सामाजिक नियमों आदि के बारे में भी सवाल खड़े करने लगता है और केवल उन्हीं को स्वीकार करता है, जिनसे वह संतुष्ट होता है और जिन्हें वह अपनी तार्किक दृष्टि से उचित समझता है।

Scanned with OKEN Scanner

अच्छा बालक या बालिका बनने की उत्सुकता की जगह उसमें विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होने लगती है तथा अपने वर्ग के प्रति प्रतिबद्धता का अनुभव करने लगता है।

किशोरावस्था में बालक समाज के संदर्भ में समाज व्यवस्था के लिए वह कानून व नियम का महत्त्व समझने लगता है। वह साथ ही साथ व्यक्तिगत-मूल्यों का एक समुच्चय विकसित करता है।

वस्तुतः किशोरावस्था मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पहचान के संकट की अवस्था है, जब व्यक्ति न बच्चा होता है, न प्रौढ़ हो पाता है। वह अपने वजूद को पहचानने की कोशिश में अपने को महत्त्व के स्तर पर देखता है। बाल्यावस्था की सी अपेक्षा उसे सहन नहीं होती है। वह चीजों को अपने तरीके से करना चाहता है। इसी कारण कभी-कभी उसमें उद्दण्डता या शरारत भी आ जाती है। इसलिए बच्चे की किशोर अवस्था बड़ी नाजुक अवस्था कही गई है।

◆◆◆

2. नैतिक-विकास तथा नैतिकता से आप क्या समझते हैं? बालक के नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों या तत्त्वों की विवेचना कीजिए।

अथवा

नैतिक विकास या नैतिकता का क्या अर्थ है? बालक के नैतिक-विकास को कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण कारक प्रभावित करते हैं? स्पष्ट कीजिए।

अथवा

नैतिकता या नैतिक-विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुये नैतिक-विकास को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों का वर्णन करें।

उत्तर–व्यवहार में हम प्रतिदिन ही सही या गलत का निर्णय करते रहते हैं। हालांकि विभिन्न संस्कृतियों के परस्पर व्यवहारों एवं विशिष्ट मूल्यों में अंतर होता ही है। प्रत्येक संस्कृति विशेष में विधि-निषेध के अपने अलग मानदण्ड और मूल्य होते हैं, जो लोगों के व्यवहार को निर्दिष्ट करते हैं। अतः समाजीकरण की प्रक्रिया में ये आस्थावादी विश्वास शामिल होते हैं और इस प्रकार नैतिक विकास की आधारशिला रखी जाती है।

नैतिकता का अर्थ
(Meaning of Morality)

नैतिकता से अभिप्राय सामाजिक समूह के नैतिक नियमों को स्वीकार करने से है। नैतिक अर्थात् *'Moral'* शब्द लैटिन भाषा के मोरेले शब्द से निकला है, जिसका अर्थ रीति-रिवाज अथवा लोकरीति है। नैतिक रूप से कार्य करने का अर्थ है–समूह के आचरण के प्रति आस्था होना। अनैतिकता से अभिप्राय है–सामाजिक आदर्शों का पालन करने में असमर्थ होना। अनैतिक व्यवहार, समूह के अनुरूप नहीं होता। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि उससे व्यक्ति को हानि होती है अथवा व्यक्ति जानबूझकर अनैतिक-कार्य करता है, अपितु व्यक्ति को सामाजिक मर्यादाओं का ज्ञान न होना भी इसका कारण है।

प्रत्येक समाज की नैतिक-मान्यताओं तथा नैतिक-स्तरों में भिन्नता पाई जाती है। यह भी देखा गया है कि किसी एक समुदाय में रहने वाले विभिन्न समूहों में भी नैतिक भिन्नता पाई जाती है। धर्म की मान्यतायें भी नैतिक व्यवहार को निर्धारित करती हैं। बच्चों में विकसित होने वाला नैतिक व्यवहार उनके माता-पिता तथा पारिवारिक परिवेश की देन है। किन्से के अनुसार, **"ऐसा देखा गया है कि विभिन्न सामाजिक समूहों में वैयक्तिक यौन व्यवहार में भी अनेक स्तर पाये जाते हैं।"**

वस्तुतः नैतिक व्यवहार अर्जित किया जाता है या समाज में रहकर सीखा जाता है। बालक में ऐसे व्यवहार के प्रति चेतना या जागरूकता परिवार में रहकर ही विकसित होती है। यही कारण है कि यदि कोई बालक विपरीत आचरण करता है, तो यह समझा जाता है कि परिवार ही इसके उत्तरदायी है और ऐसी धारण

Scanned with OKEN Scanner

ा रखने वालों का यह विश्वास भी पक्का होता है कि ऐसे बालकों को सुधारा नहीं जा सकता। लेकिन यह धारणा पूरी तरह सही नहीं है, क्योंकि बालक में अच्छे-बुरे के ज्ञान का विकास आयु-विकास के साथ-साथ होता है। इसमें सामाजिक संपर्क की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

बालक के नैतिक-विकास को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक *(Factors affecting the moral development of child)*

बालक का नैतिक-विकास किसी एक कारण से नहीं, अपितु अनेक कारणों से प्रभावित होता है। ये कुछ प्रमुख कारण हैं, जिनसे बालक का नैतिक व्यवहार प्रभावित होता है–

1. लिंग अथवा सैक्स (Sex)–यौन अथवा सैक्स का नैतिक व्यवहार से गहरा संबंध है। हमारी संस्कृति में लड़के या लड़कियों के व्यवहार में भिन्न प्रतिमान पाये जाते हैं। एक निश्चित अवस्था आने पर यदि दोनों में से कोई भी उन प्रतिमानों को तोड़ता है, तो वह दोषी तथा अनैतिक माना जाता है।

इसके अतिरिक्त लड़के एवं लड़कियों के नैतिक-गुणों में भी पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है। लड़के व लड़कियों की शारीरिक-संरचना एवं ग्रंथियों में अंतर होने के कारण उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार का नैतिक विकास होता है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में प्रत्येक आयु स्तर पर दुराचार अधिक मात्रा में व अधिक आवृत्ति में पाया जाता है। वयः-संधि अवस्था और किशोरावस्था में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में नैतिक विकास अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है।

2. आयु (Age)–आयु बढ़ने के साथ-साथ जैसे-जैसे बालक में बौद्धिक प्रखरता, संवेगात्मक-संतुलन तथा सामाजिक समायोजन की क्षमता बढ़ती जाती है। वैसे-वैसे उसमें उचित-अनुचित तथा अच्छे-बुरे का ज्ञान भी बढ़ता जाता है। बालक में केवल आयु-वृद्धि के साथ ही नैतिक गुणों का विकास होता है ऐसा नहीं कहा जा सकता, बल्कि बालक की आयु बढ़ने के साथ-साथ वातावरण, के विभिन्न तत्त्व या कारक व्यापक रूप से उनके नैतिक-व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

साधारणतः यह माना जाता है कि छोटे बच्चों की अपेक्षा किशोर कम झूठ बोलते हैं व दूसरों को धोखा देना पसंद नहीं करते हैं, क्योंकि उनमें उचित-अनुचित, ईमानदारी, बेईमानी, सत्य-असत्य में अंतर करने की क्षमता विकसित हो जाती है।

3. बुद्धि (Intelligence)–नैतिक व्यवहार तथा बुद्धि का पारस्परिक संबंध है। हाटशोन तथा में ने अपने एक अध्ययन से परिणाम निकाला कि बुद्धि तथा नैतिकता का सह-संबंध 0.50 है। उन्होंने यह भी पाया कि बुद्धिमान बालक सही/गलत का निर्णय शीघ्र लेते हैं।

यह देखा गया है कि साधारणतः तीव्र बुद्धि वाले बालकों में परिस्थिति को समझने की तथा उसके अनुकूल उचित निर्णय लेने की अधिक क्षमता होती है। वह नैतिक-मूल्यों के महत्त्व को समझता है। अतः विषम परिस्थितियों में उसकी प्रबल नैतिक-भावना उसे अनुचित व्यवहार अपनाने से रोकती है और वह बौद्धिक क्षमता के आधार पर उचित तरीके से परिस्थितियों का सामना करने में सफल रहता है। विद्यालय में पढ़ने वाले बालकों में भी सामान्यतः यह देखा जाता है कि तीव्र बुद्धि वाले बालक परीक्षा में नकल नहीं करते, जबकि मंदबुद्धि बालक नकल करके सफल होने की चेष्टा करते हैं।

4. खेल के साथी (Peer Groups)–बालक के नैतिक व्यवहार पर खेल के साथियों *(Playmates)* का भी प्रभाव पड़ता है। खेल में अनेक नियमों का पालन करना आवश्यक होता है, इसलिये खेल के मैदान में बालक खेल के साथियों के बीच-जाने-अनजाने में अनेक प्रकार के नैतिक व्यवहारों तथा अवधारणाओं का विकास करता है।

5. परिवार (Family)–परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है। इसमें रहकर वह अनेक प्रकार के व्यवहार सीखता है। परिवार के सदस्यों के व्यवहार को बालक आदर्श मानकर चलता है। परिवार के सदस्यों में आपसी संबंध किस प्रकार के हैं, इस पर बालक का नैतिक व्यवहार निर्भर करता है। परिवार की सामाजिक, आर्थिक स्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी होती है। परिवार नैतिक-विकास पर **निम्न प्रकार से** प्रभाव डालता है–

(i) बालक परिवार के व्यवहार को आदर्श मानकर तदानुकूल अनुकरण करता है।

Scanned with OKEN Scanner

(ii) दण्ड एवं पुरस्कार, प्रशंसा तथा प्रताड़ना बालक को नैतिक व्यवहार सिखाते हैं।

(iii) दण्ड तथा प्रताड़ना द्वारा बालक को अवांछित कार्य करने से रोका जाता है।

(iv) अच्छे कार्यों को करने की प्रेरणा देकर बालक को नैतिक रूप से विकसित किया जाता है।

6. विद्यालय (School)–बालक के नैतिक-विकास पर परिवार के बाद विद्यालय के वातावरण का प्रभाव सबसे अधिक दिखायी पड़ता है। विद्यालय के शिक्षक, सहपाठी, पुस्तकें तथा वातावरण आदि बालक के नैतिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। विद्यालय के पाठ्यक्रम और अनुशासन का भी बालक के नैतिक-मूल्यों के विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि विद्यालय की सामान्य-अवस्था व अनुशासन ठीक होता है तो वहां पढ़ने वाले बालकों का नैतिक विकास भी उच्च-स्तर का होता है। विद्यालय में सबसे अधिक प्रभाव बालक की मित्रमंडली का पड़ता है। **उदाहरणार्थ**–यदि बालक किसी एक ऐसे समूह का सदस्य है, जिसमें अधिकांशतः बुरे कार्यों में शामिल रहते हैं तो अच्छे वातावरण एवं परिवार के बालक का नैतिक विकास भी प्रभावित होगा।

एण्डरसन के अनुसार, जब छात्र-अध्यापक के मध्य मधुर संबंध होते हैं तो बालक के नैतिक व्यवहार का आदर्श अध्यापक हो जाता है तथा संपूर्ण कक्षा पर इस बात का प्रभाव पड़ता है। विद्यालय में प्रतियोगितात्मक खेल, छात्र-परिषद् तथा अन्य सांस्कृतिक-संगठनों के माध्यम से बालक में नैतिक व्यवहार का विकास होता है।

7. धर्म (Religion)–बालक जितने स्वस्थ एवं धार्मिक वातावरण में पला होगा वह उतना ही कम अनैतिक व दुराचारी होगा। धर्म का प्रभाव इस बात पर भी निर्भर करता है कि बालक के माता-पिता धर्म पर कितना विश्वास करते हैं।

इसके अतिरिक्त बालक के माता-पिता किस धर्म में आस्था रखते हैं और उसका समूह किस धर्म को मानता है, यह तथ्य भी बालक के विकास को प्रभावित करता है। प्रायः देखा गया है कि माता-पिता के धर्म के नियमों को बालक शीघ्र ग्रहण करता है। परिवार के धार्मिक मूल्यों तथा आस्थाओं का प्रभाव स्थायी होता है।

8. मनोरंजनात्मक क्रियायें (Recreational Activities)–खाली समय में बालक अपना समय किस प्रकार व्यतीत करता है, इससे भी उसका नैतिक-व्यवहार निर्धारित होता है। बालक के पढ़ने की पुस्तकों, खेल, कहानियों तथा अन्य प्रकार की मनोरंजनात्मक क्रियाओं का प्रभाव उसके नैतिक व्यवहार को किसी-न-किसी प्रकार से प्रभावित करता है। जो बच्चे सिनेमा आदि देखते हैं उनके नैतिक व्यवहार में शीघ्र परिवर्तन दिखलाई देता है।

इसके अतिरिक्त सिनेमा या चलचित्र जिसने पूर्व-किशोरावस्था तथा बड़ी आयु के बच्चों का ध्यान सबसे अधिक अपनी ओर आकर्षित किया है, केवल मनोरंजन का साधन मात्र नहीं वरन् अपराधों की प्रवृत्ति को बढ़ाने वाला माध्यम *(Media)* हो गया है। बालकों एवं किशारों की मानसिक योग्यता सीमित होने के कारण वह सिनेमा या कहानी के मूल उद्देश्यों को न समझकर उसमें प्रदर्शित मार-धाड़, नारी सौंदर्य, चोरी तथा अपराध, जैसी प्रवृत्तियों की ओर अधिक आकृष्ट होते हैं। सिनेमा की तरह टेलीविजन, रेडियो पर भी अनेक प्रकार के मनोरंजक प्रोग्राम तथा नाटक आदि आते हैं। इनका भी बालकों तथा किशोरों के नैतिक-व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

◆◆◆

3. नैतिकता का विकास या नैतिक-विकास से आपका क्या अभिप्राय है? नैतिक विकास से संबंधित विभिन्न स्तरों तथा सिद्धांतों की विवेचना कीजिये।

अथवा

नैतिक विकास या नैतिकता के विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुये नैतिक-विकास के विभिन्न स्तरों एवं सिद्धांतों की व्याख्या कीजिये।

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

नैतिकता के विकास का क्या अर्थ है? बालक के नैतिक-विकास के विभिन्न स्तरों एवं सिद्धांतों का वर्णन कीजिये।

उत्तर–नैतिकता का विकास या नैतिक-विकास को जीने की कला *(Art of Living)* भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत ईमानदारी, मित्रता, सद्भावना, परोपकार, आज्ञा-पालना, सत्यता आदि विभिन्न गुण आते हैं।

नैतिक व्यवहार के अर्थ को स्पष्ट करते हुये हरलॉक ने लिखा है–**"सामाजिक समूह के नैतिक कोड के अनुरूप व्यवहार करना ही नैतिक व्यवहार कहलाता है।"**

श्री प्रकाश कमेटी (1959-60) ने नैतिकता के अर्थ के सम्बन्ध में कहा है–**"नैतिकता से अभिप्राय मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति उन व्यवहार परिस्थितियों से है, जिनमें मानव प्रायः सम्पर्क में आते हैं।"**

नैतिक-विकास के विभिन्न स्तर
(Different Levels of Moral Development)

किसी भी बालक में नैतिकता जन्म से ही विद्यमान नहीं होती है, बल्कि वह परिवार, समाज तथा विद्यालय में रहकर ही नैतिकता से सम्बन्धित गुणों को सीखता है। अतः बालक की नैतिकता को विकसित करने में परिवार, विद्यालय, शिक्षकों, साथियों तथा पुस्तकों आदि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त बालक के नैतिक-विकास को वंशानुगत तथा वातावरण से सम्बन्धित कारक ही प्रभावित नहीं करते, बल्कि वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता हुआ आत्म-विश्लेषण व आत्म-विश्वास की भावनाओं के द्वारा भी नैतिक रूप से विकसित हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि बालक में भिन्न-भिन्न स्तर की नैतिकता विभिन्न आयु स्तरों पर दृष्टिगोचर होती है या देखने को मिलती है।

मुख्य रूप से बालक के नैतिक-विकास के महत्त्वपूर्ण स्तर निम्नलिखित प्रकार के हैं

1. प्रयास एवं भूल का स्तर (Level of Trial and Error)–प्रारम्भ में बालक में नैतिकता के गुण अर्थात् उचित-अनुचित, सही-गलत तथा अच्छे एवं बुरे का ज्ञान प्रयत्न एवं भूल सिद्धात के अनुसार होता है। प्रयास एवं भूल की यह अवस्था बालक में दो वर्ष की आयु तक होती है। बालक में इस अवस्था में मुख्य रूप से मूल प्रवृत्तियों का नियंत्रण होता है। अतः वह भूख लगने पर कोई भी वस्तु चाहे वह अच्छी है या बुरी खा लेना चाहता है। इस अवस्था में माँ-बाप द्वारा बालकों को दिये जाने वाले प्रशिक्षण *(Training)* का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, क्योंकि इस अवस्था में बालक के ज्ञान की शक्ति बहुत ही सीमित होती है। अतः शुरू में बालक में नैतिकता के जो गुण पाये जाते हैं वे मुख्य रूप से प्रकृति *(Nature)* द्वारा प्रदत्त ही होते हैं।

2. पुरस्कार एवं दण्ड से सम्बन्धित स्तर (Level of Reward and Punishment)–बालक की इस स्तर की नैतिकता का विकास मुख्यतः बाल्यावस्था में होता है। जब बालक के माँ-बाप, परिवार के सदस्य तथा अध्यापक उसको शिक्षा प्रदान करते हैं तथा उसे अच्छे एवं बुरे या उचित एवं अनुचित के बारे में बताते हैं तो उसका नैतिक विकास होता है। शिक्षण के माध्यम से बालक इस प्रकार की आदतों को सीख लेता है। जैसे–बालक का दण्ड से बचने के लिए झूठ बोलना, चोरी करना, आज्ञा का पालन न करना तथा धोखा देना आदि आदतों को छोड़ देता है तथा पुरस्कार मिलने पर नैतिकता की ओर अग्रसर होता जाता है। अतः इस अवस्था में बालक सुख-दुख के आधार पर नैतिकता से सम्बन्धित गुणों को सीखता है।

3. मानवीय-चेतना का स्तर (Level of Human Conciousness)–बालक की आयु बढ़ने के साथ-साथ जैसे-जैसे उसमें विभिन्न प्रकार की मानवीय-भावनायें जैसे–दया की भावना, प्रेम भावना, सहिष्णुता और त्याग आदि भावनाओं का विकास होता जाता है, वैसे-वैसे बालक सामाजिक दायित्वों के प्रति अपने नैतिक मूल्यों को अनुभव करने लगता है। वह दूसरों के हित का ध्यान रखता है। अतः बालक अपनी आंतरिक प्रेरण ा के आधार पर ही बिना किसी भय या प्रलोभन के सामाजिक एवं नैतिक-आदर्शों का अनुसरण करता है।

4. सामाजिक चेतना से सम्बन्धित स्तर (Level Related to Social Conciousness)–जैसे-जैसे बालक की आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उनमें सामाजिक चेतना की भावना पर्याप्त मात्रा में जाग्रत होती

Scanned with OKEN Scanner

जाती है। इस अवस्था में आकर बालक दण्ड एवं पुरस्कार के आधार पर ही नहीं, बल्कि प्रशंसा एवं निंदा के आधार पर उचित आचरण करता है। बालक इस अवस्था में किसी भी आचरण को करने से पहले यह भी सोचता है कि समाज के अन्य लोग उसके विषय में क्या सोचते हैं अथवा क्या सोचेंगे। जिस सीमा तक बालक को सामाजिक समर्थन प्राप्त होता है, उसी मात्रा के अनुरूप उसमें सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का विकास होता है। बालक में आयु बढ़ने के साथ-साथ घृणा और शर्म *(feeling of guilt and shame)* की भावना के सम्बन्ध में चेतना आ जाती है तथा जिस कार्य को या व्यवहार को करने से उसमें घृणा या शर्म की भावना महसूस होती है, उस कार्य या व्यवहार को वह दोबारा नहीं करना चाहता।

नैतिक-विकास का प्रतिमान (Pattern of Moral Development)–नैतिक-विकास के मुख्य रूप से निम्नलिखित दो पक्ष होते हैं–

1. नैतिक-प्रत्ययों का विकास *(Development of Moral Concept)*
2. नैतिक-व्यवहार का विकास *(Development of Moral Behaviour)*

नैतिक-विकास से संबंधित महत्त्वपूर्ण सिद्धांत *(Important theories related to Moral Development)*

जन्म के समय से ही बालक न तो नैतिक होता है और न ही अनैतिक। उसका व्यवहार और आचरण उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों एवं संवेदनाओं के द्वारा प्रभावित होते हैं। समाज के द्वारा बनाये गये नैतिक और अनैतिक नियमों के बारे में उसे कोई ज्ञान नहीं होता है। सुख-दुख, प्रशंसा एवं निंदा तथा दंड और पुरस्कार के आधार पर वह किसी कार्य के उचित और अनुचित होने के बारे में निर्णय लेता है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के विचारों में इस बात को लेकर आपस में मतभेद है कि बालक में उचित और अनुचित, नैतिक प्रत्यय तथा सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास किस प्रकार से होता है। इस सम्बन्ध में अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने कुछ सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं, जिनका **संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है–**

1. जीन-पियाजे का सिद्धांत (Jean Piaget Theory)–**पियाजे** ने बालक के नैतिक विकास से सम्बन्धित चार अवस्थायें मानी हैं। पियाजे के अनुसार **प्रथम अवस्था** में नैतिक विकास अहम् केन्द्रित रहता है। **दूसरी अवस्था** में बालक की नैतिकता में सत्ता में संपूर्ण समर्पण की भावना रहती है। विकास की **तीसरी अवस्था** परस्परता तथा व्युत्क्रम की अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक द्वारा जो नैतिक नियम स्वीकार करने योग्य होते हैं वे स्वीकार कर लिये जाते हैं तथा जो अस्वीकार करने योग्य होते हैं, वे उसके द्वारा अस्वीकार कर दिये जाते हैं। **चौथी अवस्था** साम्य की अवस्था होती है। इस अवस्था में बालक में परहित–कामना व सामाजिक प्रेम की भावना का उदय होता है।

2. समाजीकरण का सिद्धांत (Socialization Theory)–**वाल्टर्स, (Walters), स्किनर (Skinner) तथा सीयर्स (Sears)** के सिद्धांत के अनुसार बालक का नैतिक विकास समाजीकरण का परिणाम होता है। इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत विचारधाराएँ बालक द्वारा प्रदर्शित व्यवहार को ही उसके नैतिक विकास का प्रमाण मानती हैं। लेकिन किसी एक परिस्थिति में बालक द्वारा प्रदर्शित व्यवहार को नैतिक या अनैतिक व्यवहार की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

3. सिगमण्ड-फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धांत (Sigmund Freud Physcho analytic Theory) –**फ्रायड** के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत को मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत *(Physchoanalytical Theory)* के नाम से जाना जाता है। **फ्रायड का मानना है** कि बालक शुरू में अनुकरण के द्वारा नैतिक-व्यवहार को सीखता है। अनुकरण के द्वारा ही बालक अपने माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-दादा एवं परिवार के अन्य सदस्यों के नैतिक व्यवहार को अपनाता है। बचपनावस्था में बालक अपने माता-पिता द्वारा बताये गये सही कार्य को सही व गलत को गलत ही समझता है और बालक माता-पिता के विचारों, इच्छाओं, रुचियों और धारणाओं के अनुरूप ही व्यवहार करने में प्रसन्नता अनुभव करता है। वह माता-पिता की अवहेलना करने या बात न मानने पर उनको दुख पहुंचाने पर मानसिक पीड़ा का अनुभव करता है। इस अपराध भावना या कष्टदायक

Scanned with OKEN Scanner

अनुभूति से बचने के लिए बालक परिवार से सम्बन्धित नैतिक नियमों व व्यवहार को अवचेतन रूप से ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार से बालक के द्वारा अपने माता-पिता के विचारों व दृष्टिकोणों का अन्तःकरण *(Internalization)* या आत्मसात् कर लिया जाता है। बालक द्वारा इस आधार पर विकसित की गई नैतिकता या नैतिक व्यवहार ही आगे चलकर विवेक का रूप धारण कर लेता है, जिसके कारण यह बालक विवेक के द्वारा निर्देशित होकर सामाजिक समायोजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

4. गैसेल का नैतिक विकास का सिद्धांत (Gassels' Theory)—गैसेल के अनुसार बालक के नैतिक विकास की तीन अवस्थायें होती हैं। बालक के नैतिक विकास की **पहली अवस्था** जन्म से लेकर 5 वर्ष तक के मध्य की अवस्था होती है, जिसके अन्तर्गत बालक मुख्य रूप से आत्म-केन्द्रित *(Self Centered)* होता है। **दूसरी अवस्था** 6 वर्ष से लेकर 10 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में बालक स्वयं अच्छे-बुरे का निर्णय न लेकर अपने माता-पिता के आधार पर ही निर्णय लेता है। **तीसरी अवस्था** 11 से 16 वर्ष के बीच की अवस्था है। इस अवस्था में आकर बालक माता-पिता पर आश्रित न रहकर समाज में अपनी स्वतंत्र सत्ता बना लेता है तथा वह दूसरों की भलाई का भी अत्यधिक ध्यान रखता है।

5. हार्टशान एण्ड में का सिद्धांत (Hartshone and May Theory)—इन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बालकों के नैतिक व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है। बालक एक परिस्थिति में ईमानदार व दूसरी परिस्थिति में बेईमान हो सकता है, जैसे—कक्षा में नकल करना बालक का एक विशिष्ट प्रकार का व्यवहार हो सकता है। **उदाहरण के तौर पर**—बालक अंग्रेजी व विज्ञान के जैसे विषयों में नकल कर सकता है, जबकि अन्य विषयों में वह ऐसा नहीं करता। अतः बालक को इस आधार पर नैतिक और अनैतिक की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

6. स्किनर का सिद्धांत (Skinners Theory)—**स्किनर के अनुसार** बालक के नैतिक विकास में पुरस्कार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बालक को उचित-अनुचित, सही-गलत तथा अच्छे-बुरे का ज्ञान कराने के लिये यह जरूरी है कि उसको दण्ड व पुरस्कार के द्वारा समझाया जाये। स्किनर के अनुसार बालक दण्ड एवं पुरस्कार के आधार पर सही-गलत, उचित-अनुचित और अच्छे-बुरे तथा नैतिक-अनैतिक व्यवहारों में अंतर करना सीख लेता है।

◆◆◆

4. नैतिक-विकास किसे कहते हैं? बालकों में उचित नैतिक-विकास हेतु कौन-कौन से सुझाव या कदम उठाये जा सकते हैं? स्पष्ट कीजिये।

अथवा

नैतिक-विकास का क्या अर्थ है? बालकों में उचित नैतिक-विकास करने के लिये महत्त्वपूर्ण सुझावों या कदमों की विवेचना कीजिये।

उत्तर—नैतिक-व्यवहार को परिभाषित करते हुए **हरलॉक** (1974) में लिखा है—**"सामाजिक समूह के नैतिक कोड के अनुरूप व्यवहार ही नैतिक व्यवहार है।"**

नैतिक-विकास का अर्थ नैतिक मूल्यों तथा आदतों से है। नैतिक-विकास में मुख्यतः ये मूल्य अथवा तत्त्व आते हैं—1. ईमानदारी, 2. परोपकारी, 3. विश्वास, 4. त्याग, 5. आज्ञापालन, 6. सेवा भावना, 7. साहस, 8. धैर्य, 9. दया, 10. क्षमा, 11. स्नेह, 12. सहानुभूति, 13. देश प्रेम, 14. कर्तव्य-निष्ठा, 15. सत्यता।

बालकों में उचित नैतिक-विकास हेतु सुझाव—बालकों में उचित नैतिक-विकास हेतु निम्नलिखित सुझाव व कदम उठाये जा सकते हैं—

1. बालकों में उचित आदर्शों का विकास (To develop proper values in the children's)—प्रत्येक बालक की अपनी मान्यतायें, मूल्य और आदर्श उसके चरित्र को प्रतिबिम्बित करते हैं। किसी एक परिस्थिति में वह जैसा व्यवहार करता है उसके पीछे उसके जीवन के लक्ष्य और आदर्शों की छाप होती है।

Scanned with OKEN Scanner

जितने ऊंचे और अच्छे जीवन-मूल्य और आदर्श होंगे, उसका चरित्र उतना ही सशक्त और उत्तम होगा। इसलिए बालकों को उचित आदर्श एवं जीवन मूल्य अपनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिये।

2. उचित स्थायी-भावों का विकास एवं संगठन (Organisation and development of proper sentiments)—चरित्र को स्थायी-भावों की एक व्यवस्था एवं संगठन का नाम दिया जाता है। इसलिए बच्चों में स्वरूप और सुन्दर स्थायी भावों के निर्माण और उसके स्थायी संगठन के बारे में प्रयत्न किये जाने चाहिएं। इसके लिए सबसे पहले अच्छे स्थायी-भावों जैसे—देशभक्ति का स्थायीभाव, नैतिक स्थायीभाव, सामाजिक स्थायीभाव, बौद्धिक स्थायीभाव, सौन्दर्यात्मक स्थायीभाव और आत्म-सम्मान के स्थायीभाव आदि के विकास के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिएं।

3. नैतिक और धार्मिक शिक्षा प्रदान करना (To give moral and religious education)—चरित्र निर्माण में नैतिक और धार्मिक शिक्षा की उपयोगिता भी अत्यावश्यक है। अतः विद्यालय पाठ्यक्रम में इसे आवश्यक स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। ऐसी शिक्षा द्वारा "सभी धर्म अच्छे हैं तथा हम एक ही ईश्वर चाहे वह राम हो या रहीम, ईसा या मुहम्मद की संतान हैं" आदि भावनायें बच्चों के अन्दर भरी जानी चाहिएं।

रोचक कहानी और कथानकों के माध्यम से बच्चों को नैतिक शिक्षा सरलतापूर्वक दी जा सकती है। इस दिशा में हितोपदेश और पंचतन्त्र की कहानियां बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। महान व्यक्तियों की जीवनगाथा और संस्मरणों को भी उपयोग में लाया जा सकता है। इतिहास साहित्य और सामाजिक विषयों की पुस्तकों में नैतिक विचार उत्पन्न करने वाले पाठ शामिल किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्रार्थना सभा, महान पुरुषों के प्रवचन एवं नैतिकता सम्बन्धी व्याख्यानों तथा अन्य पाठान्तर-क्रियाओं के माध्यम से बच्चों में नैतिक और धार्मिक भाव उत्पन्न करके उनके चरित्र को ऊंचा उठाया जा सकता है।

4. सुझाव और चरित्र निर्माण (Suggestions and character formation)— चारित्रिक-विकास में सुझावों का भी बहुत महत्त्व है। बच्चे भोले होते हैं और उन पर सुझावों का गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः सुझावों को चरित्र निर्माण के कार्य में भली-भांति प्रयोग में लाया जा सकता है, लेकिन जहां तक संभव हो बच्चों के व्यवहार में अनुकूल परिवर्तन लाने के लिए सकारात्मक सुझाव *(Positive Suggestions)* की ही सहायता ली जानी चाहिए। इसके लिए बच्चों को सुन्दर एवं स्वस्थ कहानियां सुनाई जा सकती हैं तथा महान व्यक्तियों के संस्मरण और जीवन-वृत्तान्तों से उन्हें परिचित कराया जा सकता है। अध्यापक और माता-पिता को स्वयं अपने रहन-सहन और व्यवहार के द्वारा जीते-जागते उदाहरण बच्चों के सम्मुख रखने चाहिएं।

चरित्र-निर्माण की दिशा में कदम रखने के पश्चात् बच्चों को बराबर यह बताते रहना कि वे यथेष्ट रूप में उन्नति कर रहे हैं, उनका चारित्रिक-स्तर ऊंचा उठ रहा है, वे उत्तम और अति उत्तम बनते जा रहे हैं, बहुत ही लाभदायक सिद्ध होता है। इस प्रकार आत्म सुझावों द्वारा वे चारित्रिक विकास की सीढ़ियां सफलतापूर्वक चढ़ सकते हैं।

5. अनुकरण और चारित्रिक-विकास (Imitation and character development)—बच्चा स्वभाव से ही अनुकरण या नकल अवश्य करता है। उसके लिए माता-पिता, अन्य बड़े लोग तथा अध्यापक आदर्श होते हैं। वह जाने-अनजाने उनका अनुकरण या नकल करता रहता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि अध्यापक, माता-पिता और समाज के अन्य उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा अपने व्यवहार और चरित्र को लेकर अच्छे उदाहरण बच्चों के सामने रखे जायें। उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी तरह की कोई भी अवांछित बात बच्चे अनुकरण द्वारा न सीखें। अपने घर और विद्यालय में उन्हें स्वस्थ और प्रेरक वातावरण मिलना चाहिए तथा उन्हें बुरी संगत और बुरी बातों के दुष्प्रभाव से बचाया जाना चाहिए।

6. मूल-प्रवृत्तियों एवं संवेगों की भूमिका (Role of instincts and emotions)—मूल-प्रवृत्तियां और संवेग दोनों मिलकर मानव चरित्र को अच्छा और बुरा मोड़ प्रदान करने की सामर्थ्य रखते हैं। इसलिए सुन्दर और स्वस्थ चरित्र के लिए बच्चे की मूल-प्रवृत्तियों और उसके संवेगों के उचित शोधन और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। **उदाहरण के लिए**—युद्धप्रियता नामक मूल-प्रवृत्तियों और क्रोध के संवेग को शोधन और

Scanned with OKEN Scanner

प्रशिक्षण के फलस्वरूप देशभक्ति तथा पीड़ितों एवं शोषित पर दया दिखलाने जैसे उपयोगी कार्यों की ओर मोड़ा जा सकता है और इस तरह बालकों के चरित्र-निर्माण का कार्य भली-भांति संपन्न किया जा सकता है।

7. इच्छा या संकल्प-शक्ति का प्रशिक्षण (To gave training about determination)—निर्णय लेने की दृढ़ता और उचित समय पर उचित निर्णय लेने की क्षमता दोनों सशक्त चरित्र के बहुमूल्य तत्त्व हैं और इन दोनों तत्त्वों को इच्छा और संकल्प शक्ति द्वारा ही जीवन मिलता है। अतः बालकों की इच्छाओं तथा संकल्प-शक्ति को दृढ़ बनाने के लिए हर संभव उपाय किये जाने चाहिएं। दृढ़ संकल्प के अभाव में बच्चे की चारित्रिक कमजोरियां व्यक्तित्व पर हावी हो जाती हैं और वह उन्हें छोड़ देने का झूठा वायदा करता रहता है, जबकि इच्छा या संकल्प शक्ति की दृढ़ता उसे चारित्रिक बुराइयों को छोड़कर अच्छाइयों को ग्रहण करने में पूरी-पूरी सहायता कर सकती है।

8. बालकों में अच्छी आदतों का विकास (Development of good habits in the children's)—चरित्र को आदतों का पुंज कहा गया है। अच्छी और बुरी आदतें व्यक्ति को अच्छे और बुरे रास्ते पर ले जाकर उसके चरित्र को सामाजिक रूप में वांछित और अवांछित बनाने का कार्य करती हैं। अतः बालकों में शुरू से ही अच्छी-अच्छी आदतें डालने का प्रयास किया जाना चाहिए। बुरी आदतें चरित्र के लिए घुन का कार्य करती हैं, अतः बच्चों को यथासंभव इनसे छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये।

9. चारित्रिक-विकास में विद्यालय, परिवार और समाज की भूमिका (Role of school, family and society in character development)—बच्चों के चरित्र-निर्माण में वातावरण सम्बन्धी शक्तियां महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। घर, विद्यालय और सामाजिक परिवेश में जो कुछ भी घटित होता है, उसका प्रभाव बच्चे के चरित्र पर अवश्य पड़ता है। सबसे पहले चरित्र सम्बन्धी प्रथम पाठ बच्चा अपने पारिवारिक परिवेश में अपने माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों से सीखता है। घर के अतिरिक्त पास-पड़ोस, समुदाय तथा सामाजिक परिवेश की अन्य शक्तियां भी बच्चे के चरित्र को प्रभावित करती हैं। जब वह विद्यालय जाता है तब विद्यालय के वातावरण तथा साथ पढ़ने वाले विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के व्यवहार एवं चरित्र की छाप उस पर अवश्य पड़ती है। अतः यह आवश्यक है कि परिवार, विद्यालय तथा सामाजिक परिवेश की अन्य इकाइयों द्वारा बालकों को स्वस्थ एवं खुशहाल होना चाहिए।

10. बच्चे का उचित मानसिक विकास (Good Mental Development of Child)—चारित्रिक विकास और मानसिक विकास में भी गहरा सम्बन्ध है। चरित्र में निहित विभिन्न तत्त्वों के संयोजन में बुद्धि एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक व्यक्ति किसी एक विशेष परिस्थिति में किस प्रकार का व्यवहार करेगा और किस प्रकार जीवन की वास्तविकताओं का सामना करेगा, यह बहुत कुछ उसकी मानसिक योग्यताओं और क्षमताओं पर निर्भर करता है। अतः बच्चों की सोचने-विचारने की शक्ति, कल्पना-शक्ति, स्मरण शक्ति, एकाग्रता आदि विभिन्न मानसिक शक्तियों के विकास के लिए समुचित कदम उठाये जाने चाहिएं।

11. बच्चों का सामाजिक-विकास (Social development of the children)—सामाजिक विकास और चारित्रिक विकास में धनात्मक सहसम्बन्ध है। सामाजिक रूप से विकसित एक बच्चा सदैव ही समाज के आदर्शों और मूल्यों के अनुकूल व्यवहार करने का प्रयत्न करता है और इसलिए वह अपने चरित्र पर कोई भी धब्बा नहीं लगने देना चाहता। इस प्रकार से सामाजिकता का विकास बच्चों के चरित्र निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कदम माना जा सकता है। इस दृष्टिकोण से बच्चों के सामाजिक विकास की ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि उनमें आवश्यक सामाजिक गुणों का समावेश हो सके तथा वे सामाजिक सम्बन्धों का अच्छी तरह निर्वाह कर समाज के उत्तरदायित्वपूर्ण सदस्यों की भांति व्यवहार कर सकें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए माता-पिता तथा अध्यापकों द्वारा उन्हें पूरा-पूरा सहयोग दिया जाना चाहिये।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

1.2. पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का संप्रत्यय (Piaget's concept of cognitive development)

1. संज्ञानात्मक या बोधात्मक विकास से आपका क्या अभिप्राय है? पियाजे के संज्ञानात्मक विकास से सम्बन्धित सिद्धांत के महत्त्व या उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

अथवा

संज्ञानात्मक या बोधात्मक विकास का क्या अर्थ है? पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्त्व या उपयोगिता का वर्णन कीजिये।

अथवा

ज्ञानात्मक या बोधात्मक विकास का क्या अर्थ है? पियाजे के महत्त्व के बारे में बतायें।

उत्तर–ज्ञानात्मक या बोधात्मक विकास का तात्पर्य ऐसी क्रियाओं से है जिनमें चिन्तन, प्रत्यक्षीकरण और समस्या समाधान निहित है। साधारण भाषा में ज्ञानात्मक क्रियायें बौद्धिक क्रियाएँ भी कहलाती हैं। अतः ज्ञानात्मक विकास का **सरल शब्दों में अर्थ** है–समझने की शक्ति, स्मृति, तर्कशक्ति तथा बुद्धि का विकास। बालक जन्म के कुछ घंटों बाद ही ज्ञानात्मक क्रियाएँ करना प्रारम्भ कर देता है, जब बालक तीस घण्टे का ही होता है तो तेज रोशनी पड़ने पर अपनी आँखें को मचकाने लगता है। उसकी ज्ञानात्मक प्रतिक्रियाएँ आरम्भ हो जाती हैं। धीरे-धीरे तेज आवाज उसे चौंका देती है। बालक की पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ–आँख, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा धीरे-धीरे सचेष्ट तथा क्रियाशील हो जाती हैं। अतः इन समस्त शक्तियों के सामूहिक संतुलित एवं पूर्ण विकास को ही हम ज्ञानात्मक विकास कहते हैं।

संज्ञान का अर्थ (Meaning of Cognition)–संज्ञान वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जीव को किसी वस्तु, घटना या परिस्थिति का बोध होता है अथवा ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण पहचान है–तर्क, निर्णय तथा अवधारणा जैसी मानसिक क्रियाएं सहित होती हैं। तीन कोटियाँ जिनमें समस्त मानसिक क्रियाएँ वर्गीकृत की जाती हैं वे हैं संज्ञान *(Cognition)*, भावबोध *(Affection)* और क्रियावृत्ति *(Connation)*, **उदाहरणार्थ**–अचानक सामने भूमि पर रेंगते हुए जीव को देखकर सर्प का बोध होता है। (संज्ञान) फलस्वरूप भय की संवेगात्मक अनुभूति होती है, (भावबोध) तदुपरान्त भागने की तत्परता या क्रिया होती है। (क्रियावृत्ति)। आजकल यह माना जाता है कि यदि बालक किसी पारिवारिक या सामाजिक परिस्थिति के सब पार्श्वों को संज्ञान समझ लेता है तो सर्वोत्तम होता है।

मनोवैज्ञानिक काफी लम्बे समय तक संज्ञान *(Cognition)* को बालकों की जन्मजात विशेषता मानते रहे जिसके कारण संज्ञानात्मक अनुभवों से सम्बन्धित विशेषताओं की वैज्ञानिक खोज करना संभव नहीं हो सका। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने तो संज्ञान के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं किया, परंतु संज्ञानवादी मनोवैज्ञानिक ने व्यक्ति की विभिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताओं जैसे–प्रत्यक्षीकरण, तर्क, समस्या, समाधान तथा चिन्तन आदि प्रक्रियाओं से सम्बन्धित विस्तृत विश्लेषण के आधार पर उन विभिन्न मानसिक तत्त्वों का भी पता लगा लिया, जो व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसके अतिरिक्त संज्ञानवादी मनोवैज्ञानिक ने संज्ञान *(Cognition)* को विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के क्रियान्वयन *(Processing of information)* की एक विधि के रूप में स्वीकार किया। सूचनाओं के क्रियान्वयन की विधि *(Processing of information method)* का अर्थ है कि जब बालक वातावरण में उपस्थित विभिन्न तत्त्वों का प्रत्यक्षीकरण करता है। इसके बाद विभिन्न प्रकार के प्रतीकों *(Symbols)* के आधार पर उन तत्त्वों को समझने की कोशिश करता है तथा साथ ही उनके सम्बन्ध में अमूर्त चिन्तन *(Astract thinking)* करता है तो उपरोक्त सभी प्रक्रियाओं से मिलकर उसके अन्दर एक ज्ञान-भण्डार अर्थात् एक प्रकार की संज्ञानात्मक संरचना का निर्माण होता है। यही ज्ञान-भण्डार अथवा संज्ञानात्मक संरचना बालक या प्राणी के व्यवहार को निर्देशित करने में भूमिका निभाती है। अतः इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि कोई भी बालक या

Scanned with OKEN Scanner

व्यक्ति वातावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों *(Stimulus)* के द्वारा प्रभावित होकर सीधे तौर पर प्रतिक्रिया को व्यक्त नहीं करता बल्कि पहले वह उन उद्दीपकों को ग्रहण या प्राप्त करता है तथा उनकी व्याख्या *(Interpretation)* करता है। इसकी व्याख्या के पश्चात् वातावरण में उपस्थित बाहरी उद्दीपक व्यक्ति की संज्ञानात्मक संरचना *(Cognitive sturucture)* में अव्यवस्थित हो जाते हैं। अतः इस प्रकार से व्यक्ति के अन्दर विकसित हुई संज्ञानात्मक संरचना वातावरण से सम्बन्धित उद्दीपकों और व्यक्ति के व्यवहार के बीच मध्यस्थता *(Mediator)* की भूमिका निभाती है। संज्ञानात्मक संरचना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए स्टॉट ने कहा है कि–"संज्ञानात्मक क्षमता बाहरी वातावरण में विचारपूर्वक प्रभावपूर्ण ढंग से तथा सुविधा के साथ कार्य करने की क्षमता को कहते हैं।"

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का महत्त्व या उपयोगिता *(Importance or Utility of Piaget's Cognitive Development Theory)*

ज्ञानात्मक योग्यताओं *(Congnitive-abilities)* की विकास प्रक्रिया को जानने के पश्चात् उनके बौद्धिक विकास में सहायता मिलती है। पियाजे का मानना है कि बच्चे के लिये माता-पिता का प्यार और अन्तःक्रिया दोनों ही जीवन के प्रथम दो वर्षों के लिये आवश्यक होते हैं। पियाजे ने उद्दीपन *(Stimulus)* की अधिक मात्रा प्रदान करने के महत्त्व पर अधिक बल दिया है। इन उद्दीपनों में दोनों प्रकार के उद्दीपन अर्थात् भौतिक और बौद्धिक उद्दीपन शामिल हैं। इन उद्दीपनों के रंग, आकार, स्वरूप और उनकी गति आदि में परिवर्तन भी आवश्यक होता है।

शोध कार्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि वे बच्चे और जानवर जिन्हें संवेदानात्मक उद्दीपन *(Sensory Stimulation)* प्रदान किया जाता है और ऐसे उद्दीपन जन्म से जीवन के प्रथम वर्षों तक दिये जाते हों, वे बच्चे और जानवर बौद्धिक और सामाजिक रूप से उन बच्चों और जानवरों से अधिक विकसित होते हैं, जिन्हें इस प्रकार के उद्दीपन प्रदान नहीं किये जाते हैं। लेकिन यह जानकर कि इस प्रकार के विकास को तीव्र किया जा सकता है, पियाजे ने इस बात पर भी बल दिया है कि बच्चों पर इस विकास का बोझ अधिक नहीं डालना चाहिए। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **डेविड एलकिंड** *(Mavid Elikind 1981)* ने अपनी पुस्तक 'दा हरीड चाईल्ड' में इस तथ्य से सहमति प्रदर्शित की है। इस पुस्तक में विकास की इस अधिक तीव्रता का दुष्प्रभाव बताया गया है, माता-पिता बच्चों को बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करके बच्चों की सहायता करते हैं और यह सहायता उनके वर्तमान विकास-स्तर के अनुरूप होती है। बच्चों को उनके स्तर से अधिक कार्य करने के लिये कहना समय की व्यर्थता है।

बच्चों के विकास के बारे में अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिकों पर पियाजे के विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। छोटे बच्चों के अध्ययनों में बच्चों के विकास का मापन विभिन्न आयु स्तर के बच्चों को एक ही कार्य देकर किया जाता है। जो बच्चे उस कार्य को नहीं कर पाते वे ज्ञानात्मक रूप से दुर्बल *(Congnitively Deficient)* माने जाते हैं। **जैलमन व अन्यों** *(Gelman and others 1972)* के अनुसंधानों द्वारा यह पता चला है कि बच्चों के ज्ञानात्मक विकास को समझने के लिये मनोवैज्ञानिकों को विभिन्न आयु-स्तरों के बच्चों से भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछने चाहिए। **शाज और जैलमन** *(Shatz and Gelman 1973)* ने यह बाताया है कि दो-वर्षीय बालक अपने वाक्यों की लम्बाई बदल लेते हैं, यह जानकर कि वे किससे बात कर रहे हैं। ऐसे बच्चे छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं जब वे छोटे बच्चों से बात करते हैं। **लैम्परस, फ्लेवैल और फ्लेवैल** *(Lampers, Flavell and Flavell 1977)* ने अपने अध्ययन में यह पाया कि दो वर्षीय बच्चे अपनी पुस्तक में चित्रों एवं उदाहरणों को अपनी माँ को दिखाने के लिये पुस्तक को घुमा सकते हैं।

पियाजे के विचारों को **निम्न रूप में** संक्षिप्त स्वरूप प्रदान कर सकते हैं–

(i) जीवन के प्रथम दो वर्षों में बच्चों के बौद्धिक विकास के लिये माता-पिता का प्यार और अन्तःक्रिया आवश्यक है।

(ii) उद्दीपन की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

(iii) बच्चों को भौतिक और बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करने चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) संवेदनात्मक उद्दीपन *(Sensory Stimulus)* प्राप्त करने वाले बच्चों का बौद्धिक विकास तीव्र होता है।

(v) पियाजे के अनुसार इस विकास का बोझ बच्चों पर अधिक नहीं पड़ना चाहिए।

(vi) बच्चों का बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करने चाहिए और ये उद्दीपन उनकी आयु-स्तर के अनुसार हों।

(vii) बच्चों को उनके आयु-स्तर से अधिक का कार्य करवाना समय व्यर्थ गंवाना होगा।

(viii) बच्चों के ज्ञानात्मक विकास को समझने के लिये भिन्न आयु-स्तर के बच्चों से भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछे जाएँ।

(ix) पियाजे के अनुसार बुद्धि वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है *(Process of adaptation to environment)*।

(x) पियाजे के अनुसार ही बौद्धिक-विकास में इस सामंजस्य को स्थापित करने से उत्पन्न परिवर्तनों को शामिल किया जाता है।

(xi) प्रत्येक बालक को बौद्धिक विकास कई स्तरों की शृंखला से गुजरता है।

(xii) प्रत्येक स्तर पर विभिन्न प्रकार की ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं द्वारा यह तय किया जाता है कि बालक किस प्रकार का बौद्धिक कार्य सम्पन्न कर सकता है।

◆◆◆

34 जीन-पियाजे के बौद्धिक या संज्ञानात्मक सिद्धान्त से आपका क्या अभिप्राय है? पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त की महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं का वर्णन कीजिये।

अथवा

पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त से आपका क्या अभिप्राय है? पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करते हुए इस सिद्धान्त के शैक्षिक महत्त्व की विवेचना कीजिये।

अथवा

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करते हुये इन अवस्थाओं की कक्षा-शिक्षण में महत्त्व की विवेचना कीजिये।

अथवा

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का क्या अर्थ है? पियाजे द्वारा दिये गये सिद्धान्त की विभिन्न अवस्थाओं की विवेचना कीजिये।

अथवा

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की अवस्था के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें।

उत्तर–जीन-पियाजे *(Jean Piaget)* जेनेवा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। उन्होंने अपने ही तीन बच्चों का अध्ययन किया। इन बच्चों के अध्ययन से पियाजे ने जो कुछ भी सीखा उससे उन्हें मानसिक-विकास के सिद्धान्त के निर्माण का एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ। अपने बच्चों के विस्तृत अध्ययन और अन्य प्रयोगशाला अध्ययनों से पियाजे ने बदलते हुए स्वरूपों *(Changing structures)* की प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाले, जिससे बच्चों के प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* और विचारों *(Thoughts)* के बारे में पता चलता है। जैसे-जैसे बच्चा शैशवावस्था *(Infancy)* से किशोरावस्था *(Adolexcence)* तक पहुंचता है, वैसे-वैसे बच्चे के प्रत्यक्षीकरणों *(Perceptions)* और उसके विचारों के बारे में पता चलता है।

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करते हुये संज्ञान के अर्थ के सम्बन्ध में कहा है कि संज्ञान प्राणी का वह ज्ञान है, जिसे वह वातावरण के सम्पर्क में आकर प्राप्त करता है और इसमें अनेक मानसिक

Scanned with OKEN Scanner

क्रियाओं जैसे-चिन्तन, तर्क, प्रत्यक्षीकरण, समस्या, समाधान आदि शामिल होती हैं जो निरन्तर रूप से चलती रहती हैं। विकास को किसी अवस्था विशेष में उनमें बदलती नहीं हैं। पियाजे का यह भी मानना है कि बालक द्वारा प्राप्त या अर्जित किये गये ज्ञान-भण्डार का स्वरूप और बनावट *(Structure)* विकास की प्रत्येक अवस्था के दौरान बदलता रहता है तथा साथ ही परिमार्जित या संशोधित होता रहता है। पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त को विकासात्मक सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि पियाजे का मानना है कि बालक के अन्दर संज्ञान का विकास अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। इसके अतिरिक्त पियाजे के सिद्धान्त को 'अवस्था सिद्धान्त' *(Stage theory)* भी कहा जाता है, क्योंकि बालक के संज्ञान की संरचना और स्वरूप अलग-अलग अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न होता है। पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की प्रत्येक अवस्था के दौरान बालक द्वारा अर्जित या प्राप्त किये गये ज्ञान-भण्डार को स्कीमा *(Schema)* का नाम दिया है।

पियाजे के बौद्धिक-विकास के सिद्धान्त में विभिन्न क्रियाओं की विस्तृत शृंखला को शामिल किया गया है। पियाजे का सिद्धान्त इस बात पर भी केन्द्रित है कि लोग कैसे सोचते हैं, बजाय इसके लोग क्या सोचते हैं। पियाजे का सिद्धान्त सभी समाजों और संस्कृतियों पर लागू होता है। इनके सिद्धान्त की सबसे प्रमुख शक्ति यह है कि यह सिद्धान्त हमें यह बताता है कि व्यक्ति की वंशानुक्रमित *(Inherited Capacities)* क्षमतायें वातावरण के साथ अन्तःक्रिया करती हैं और बौद्धिक रूप में क्रियाशील बालक या व्यक्ति उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार पियाजे के सिद्धान्त में दोनों वंशानुक्रम *(Nature)* और वातावरण *(Environment)* को महत्त्व मिला है।

पियाजे के सिद्धान्त में 'अवस्था' या 'स्तर' *(Stage)* भी केन्द्रीय है। पियाजे का विचार है कि जिस प्रकार 'खड़े' होने के पश्चात् चलने की अवस्था आती है, उसी प्रकार बौद्धिक विकास की कुछ अवस्थाओं के पश्चात् इसकी अन्य अवस्थायें आती हैं। एक व्यक्ति को एक अवस्था पूर्ण रूप से ग्रहण करने के पश्चात् ही अगली अवस्था में प्रवेश मिलता है। बच्चे की बौद्धिक उपलब्धि उसकी वर्तमान विकास अवस्था पर निर्भर करती है। इस प्रकार यदि कोई अभिभावक बच्चों के सामने एक अत्यन्त जटिल संप्रत्यय *(Advanced Concept)* प्रस्तुत करता है तो वह बच्चा उसे समझने में असमर्थ होगा। इसमें वास्तविक अधिगम *(Real Learning)* नहीं होगा। पियाजे द्वारा निर्धारित की गई अवस्थायें केवल अनुमानित आयु पर आधारित हैं।

अब तक के मनोवैज्ञानिक ने मानव विकास के तीन पक्ष बतलाये थे–

(1) जैविकीय परिपक्वता *(Biological Maturation),*

(2) भौतिक वातावरण के साथ अनुभव *(Experience with Physical Environment),*

(3) सामाजिक वातावरण के साथ अनुभव *(Experience with Social Environment)*

जीन पियाजे ने कहा कि मानव विकास के उक्त तीन पक्षों के अलावा सन्तुलनीकरण *(Equilibrium)* नामक एक पक्ष और होता है।

जीन पियाजे के अनुसार सन्तुलनीकरण मानव विकास की एक अनिवार्य शर्त है। सन्तुलनीकरण मानव विकास के अन्य तीनों पक्षों के मध्य सन्तुलन एवं समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है। इस सन्तुलन के अभाव में किसी भी प्राणी का विकास सम्भव नहीं है। जीन पियाजे के अनुसार सन्तुलनीकरण एक स्वचालित उन्नतोन्मुखी *(Progressive Self-regulating)* प्रक्रिया है।

पियाजे ने अपने विचारों में संज्ञान *(Cognition)* के विकास को सबसे अधिक प्रधानता दी है। यदि हम कहें कि पियाजे का सम्पूर्ण कार्य संज्ञान तथा तर्क के विकास से ही सम्बन्धित है तो अतिशयोक्ति नहीं है। पियाजे ने तर्क तथा मनोविज्ञान को परस्पर पास लाने का प्रयास किया। वे अपने अधिकांश कार्यों में तर्क-विकास के मनोवैज्ञानिक पक्ष का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन कर विभिन्न नियमों का निरूपण करते हैं।

जीन पियाजे ने मानव-विकास के सामान्य तथ्यों की चर्चा के मध्य ही सन्तुलनीकरण को स्पष्ट करने के लिए दो अन्य प्रत्यय भी दिये जिन्हें पियाजे ने आत्मीकरण *(Assimilation)* तथा संधानीकरण *(Accomodation)* नाम दिया।

बालक ज्ञान प्राप्त करने के लिए न केवल वातावरण का ही ज्ञान प्राप्त करता है, अपितु वह वातावरण के साथ समायोजन भी स्थापित करता है। जब तक वह वातावरण के साथ समायोजन व संधानीकरण नहीं कर लेता है वह वातावरण (दोनों ही भौतिक एवं सामाजिक) का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है और न अपने

Scanned with OKEN Scanner

व्यक्तित्व का ही समन्वित विकास कर सकता है। बाह्य वास्तविकताओं *(Realities)* और वातावरण का समायोजन वर्तमान संरचनात्मक संगठन के साथ अनिवार्य है। यह समायोजन ही सन्तुलनीकरण *(Equilibrium)* है। यह समायोजन प्रक्रिया या सन्तुलनीकरण मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास के लिए अनिवार्य है। बालक ज्यों-ज्यों वातावरण के साथ एकीकरण करते चलते हैं, उनका संज्ञानात्मक विकास आगे बढ़ता चलता है।

बच्चे जन्म से लेकर किशोरावस्था तक किस तरीके से सोचते हैं, इस पक्ष पर पर्याप्त खोज करने के बाद **पियाजे** ने बच्चों के विभिन्न आयु वर्ग के बीच उनके मानसिक विकास की क्रमिकता को देखा-परखा और उसे चार चरणों में विभक्त किया।

अन्य शब्दों में पियाजे ने व्यक्ति को एक क्रियाशील जैविक जीव की तरह माना है कि जो स्थिर रूप से वातावरण के साथ अन्तःक्रिया करता है तथा इस अन्तःक्रिया के द्वारा वह अपने ज्ञान को **तीन रूपों** में प्राप्त करता है–

(i) बाह्य पदार्थ के बारे में।

(ii) स्वयं के बारे में और

(iii) अपने तथा पदार्थ के सम्बन्ध के बारे में।

पियाजे के अनुसार बालकों के संज्ञानात्मक या मानसिक विकास की **निम्नलिखित चार मुख्य अवस्थायें होती हैं–**

(1) संवेदीपेशीय या गतिवाही अवस्था *(Sensory motor Period)*

(2) पूर्व-प्रक्रिया या प्री ऑप्रेशन अवस्था *(Pre-Operational Period)*

(3) स्थूल-प्रक्रिया या कॉन्क्रीट ऑप्रेशन अवस्था *(Concerete Operational Stage)*

(4) औपचारिक प्रक्रियाओं की अवस्था या फॉरमल ऑप्रेशन अवस्था *(Formal Operation Stage)*

पियाजे द्वारा बताई गई चारों विकास की अवस्थाओं में आत्मसात् *(Assimilation)* और समंजन *(Accomodation)* प्रक्रियायें होती हैं, जिससे बच्चा एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करने के योग्य हो जाता है। पियाजे द्वारा बौद्धिक या संज्ञानात्मक विकास की **चार अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार है–**

(1) संवेदी पेशीय या गतिवाही अवस्था (Sensory-motor Stage)–पियाजे ने इस अवस्था को बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा है। इसी अवस्था में बच्चे के बौद्धिक विकास का आधार बनता है। संज्ञानात्मक विकास की यह अवस्था जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक होती है, जिसमें बच्चा इन्द्रियों के जरिये वस्तुओं, ध्वनियों, स्पर्श, रसों एवं गन्ध का अनुभव प्राप्त करता है। अतः बाहरी वातावरण और उसकी इन्द्रियों के मध्य पारस्परिक आदान-प्रदान होने से इस चरण में मानसिक क्रियायें घटित होती हैं। भाषा के बिना वह अपने अनुभवों को इन्द्रियों द्वारा व्यक्त करता है, जैसे वस्तुओं को टकटकी लगाकर देखना, भूख लगने पर रोना आदि। ये सभी क्रियायें उसकी बौद्धिक क्रियायें कहलाती हैं।

जीवन के इन दो प्रथम वर्षों में पर्याप्त परिवर्तन होते हैं। एक शिशु *(Infant)* असमन्वित *(Uncoordinated)*, प्रतिवर्त जैसा संस्थान *(Reflex like Organism)* तथा जटिल संसार की आवश्यकताओं के प्रति अनुक्रिया *(Respond)*–करने में असमर्थ होता है। जन्म के कुछ सप्ताहों में वह कुछ साधारण आदतें निर्मित कर लेता है। वह अपनी माँ को देखकर मुस्कराता है, वह बाहर निकलता है और वातावरण की घटनाओं का पूर्वानुमान लगाता है। जब वह दूध की बोतल देखता है तो वह समझ जाता है। कि उसका भोजन आ रहा है। दो महीनों तक वह पिछली दृश्य *(Visual)*और श्रव्य *(Auditory)*घटनाओं की स्मृति का विकास कर लेता हैं। पियाजे के अनुसार, इस प्रकार की स्मृत्ति को प्राप्त करना भविष्य के बौद्धिक विकास की आधारशिला होती है।

छः या आठ महीने की आयु तक, बच्चा नये और अधिक रुचिकर उद्दीपन *(Stimulus)* ढूंढता है। वह बैठना और रेंगना *(Crawling))* सीखता है। वह कमरे के दूसरे किनारे तक पहुँचने के लिए रेंगता है। लगभग नौवें महीने से बच्चा 'वस्तुओं के स्थाईपन' *(Oject permanence)* के विचार का विकास करता है अर्थात ऐसी योग्यता जो बच्चे को यह अनुभव कराये कि कोई वस्तु दृष्टि से बाहर होने पर भी विद्यमान होती है

Scanned with OKEN Scanner

(The ability to realize that objects continue to exist even when they are out of sight)–Lefton.

बारह से चौबीसवें महीने तक अर्थात् इस अवस्था के दूसरे मध्य भाग में बच्चा चलना, बोलना और तर्क का प्रारम्भिक रूप *(Rudimentary forms of logic)* सीखता है। इस अवस्था में वह अपनी माँ को ढूँढता फिरता है और रेंगती हुई गेंद का पीछा करता है। बच्चा दुनिया का प्रतिनिधित्व करने के लिये भाषा का प्रयोग करना प्रारम्भ कर देता है। दो वर्ष की आयु तक बच्चा अपनी दादी, माता-पिता, मित्रों, टी.वी. कार्यक्रमों तथा अन्य घटनाओं के बारे में बातें करने लगता है। बेशक वह अमन्वित होता है, लेकिन वह चिन्तनशील, चलने वाला, बोलने वाला मानव हो जाता है।

इस सारी अवस्था में बच्चे की मांगें बहुत कम होती हैं। वह स्वयं केन्द्रीयकरण *(Self centeredness of Ego centrism)* बच्चे के व्यवहारों को स्वरूप प्रदान करता है। अगले कुछ वर्षों तक बच्चा संसार या विशिष्ट परिस्थितियों को समझने के अयोग्य होता है। **एलकिंड के अनुसार** इसी मानसिक अपरिपक्वता के कारण बच्चा अपनी माँ से तब भी चिपका रहता है, जबकि उसे यह बता दिया जायें कि उसकी माँ के सिर में दर्द है तथा वह अकेला रहना चाहती है। बच्चा स्वयं को अपनी माँ की स्थिति में रखने के अयोग्य होता है।

पियाजे की इस पहली अवस्था के अन्त तक बच्चे उसकी रुचियों और विश्व की रुचियों में अन्तर महसूस करना शुरू कर देते हैं। इस अवस्था में बच्चे की भाषा और विचार-प्रक्रिया का विकास प्रारम्भ हो जाता है।

(2) पूर्व-प्रक्रिया अवस्था या प्री-ऑपरेशन अवस्था (The Pre-operational Stage)– संज्ञानात्मक विकास की दूसरी अवस्था दो से छह वर्षों तक मानी जाती है। इस अवस्था में बालक स्वकेन्द्रित न रहकर दूसरों के संपर्क से ज्ञान अर्जित करता है। बच्चे की पहचान-क्षमता में परिवर्तन आने लगता है। शब्द ज्ञान में वृद्धि हो जाती है। अब वह स्वयं भी शब्दों का प्रयोग करने लगता है, परंतु उसे कार्य-कारण सम्बन्ध तथा तार्किक-चिन्तन का ज्ञान नहीं होता। **उदाहरण के लिए**, एक बालक विद्यालय में होने वाले उत्सव जैसे स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त को मनाया जाता है, यह तो जानता है, किन्तु यह किस लिए मनाया जाता है, इस बात का ज्ञान उसे नहीं होता है। इस उम्र के बालक खिलौनों को वास्तविक मानते हैं। तरह-तरह की बिना सिर-पैर की बातें बनाते हैं, अकेले बैठे घंटों अपने से बातें करते रहते हैं। पियाजे ने इसे कलेक्टिव 'मोनोलाग' कहा है। इस अवस्था में बालक ख्याली दुनिया में खोये रहते हैं। यथार्थ का उनके लिए विशेष महत्त्व नहीं रहता। इसी कारण नाटे व चौड़े गिलास की बजाय, पतले व लम्बे गिलास में उन्हें दूध ज्यादा नजर आता है, इसीलिए वे उसी को चुनते हैं।

इस अवस्था में बच्चे अधिक समाजीकृत *(Socialized)* होना प्रारम्भ कर देते हैं। पूर्व-स्थूल विद्यार्थियों *(Pre schcolers)* के रूप में वे वस्तुओं से नये ढंग से खेलते हैं तथा वे वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास करते हैं। लेकिन वे अहं केन्द्रित *(Egocentric)* होते हैं। वे ठोस रूप से सोचते हैं। वे दुनिया के बारे में उस ढंग से नहीं सोचते जिस ढंग से वयस्क व्यक्ति सोचते हैं। वे अपनी बात को तर्क संगत बनाने का बहुत कम प्रयास करते हैं। इस अवस्था में वयस्कों का कार्य है–बच्चों को यह सिखाना कि वे दूसरों के साथ अन्तःक्रिया कैसे करें। विकास की अगली अवस्था से पहले मुख्य सामाजिक और बौद्धिक परिवर्तन पूर्ण रूप से स्पष्ट दिखाई नहीं देते।

(3) स्थूल-संक्रिया की अवस्था या कॉन्क्रीट ऑपरेशन अवस्था (Concrete perational Stage) –संज्ञानात्मक विकास की तीसरी अवस्था सात से बारह साल तक होती है। इस अवस्था में बच्चे अधिक व्यवहारशील एवं यथार्थवादी होते हैं। वे सत्य को समझ सकते हैं। वे अब दो घटनाओं या वस्तुओं के बीच समानता या भिन्नता समझ सकते हैं। दो भिन्न आकार एवं रंगों की वस्तुओं को रंग एवं आकार के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं।

सात से बारह वर्ष की अवस्था में बालक के भीतर जिन प्रमुख क्षमताओं का विकास होता है, इसका विश्लेषण पियाजे ने किया, जिसका वर्णन **निम्न प्रकार से है**–

(i) कंजर्वेशन (Conservation)–उस ज्ञान को जो कि कोई पदार्थ, रूप में परिवर्तित हो जाने के बाद भी मात्रा, संख्या, भार तथा आयतन की दृष्टियों से समान अथवा अपरिवर्तित हो, कंजर्वेशन कहा

Scanned with OKEN Scanner

जाता है। वस्तुओं के सम्बन्ध में जानकारी संज्ञान विकास की किस अवस्था में अधिक होती है, इसके लिए पियाजे ने एक प्रयोग किया। पियाजे ने विभिन्न अवस्थाओं के बालकों को बिठा उनके सामने दो शीशे के जार लिये। एक जार पतला, किन्तु लम्बा और दूसरा चौड़ा था। पहले पतले जार में पानी भर दिया, फिर उस पानी को चौड़े जार में डाल दिया। दूसरे जार में पानी कम ऊंचाई तक पहुंच पाया, क्योंकि वह अधिक चौड़ा था। पियाजे ने अलग आयु के बालकों से जार में पानी की मात्रा के बारे में पूछा। पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के बच्चों ने बतलाया कि पहले जार में पानी अधिक है। परंतु स्थूल संक्रियात्मक अवस्था वाले बालकों ने बतलाया कि दोनों जारों में पानी की मात्रा बराबर है। इस प्रयोग द्वारा पियाजे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कंजर्वेशन की क्षमता सात से बारह वर्ष के अधिकांश बालकों में पायी जाती है, उनके पहले की अवस्था के बालकों में नहीं।

(ii) संख्या-बोध (Numeration)–इस अवस्था में बालकों में संख्या का बोध भी पर्याप्त मात्रा में विकसित हो जाता है। वे एक जगह रखी वस्तुओं, अपने कपड़ों व पुस्तकों आदि को गिन सकते हैं।

(ii) क्रमानुसार-व्यवस्था (Seriation)–पियाजे के अनुसार इस अवस्था के बालक वस्तुओं को क्रमानुसार लगा सकते हैं।

(iv) वर्गीकरण Classification)–7 से 12 वर्ष की आयु के बालक विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को अनेक दृष्टियों से वर्गीकृत कर सकते हैं। जैसे वे विभिन्न आकृतियों और आकारों के आधार पर वस्तुओं को पृथक्-पृथक् वर्ग में रख सकते हैं।

(v) पारस्परिक-सम्बन्ध (Relationship)–विभिन्न उद्दीपकों के पारस्परिक सम्बन्धों को भी इस अवस्था के बालक अच्छी तरह समझ लेते हैं।

उदाहरण के लिए, दो रेखाओं में कौन-सी छोटी है तथा कौन-सी बड़ी, इसकी पहचान सरलता से बालक कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त बालक दो प्रकार के प्रकाशों में अन्तर *(Difference in light)* करना भी सीख लेते हैं तथा साथ ही विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध सूचक शब्दों का प्रयोग करना भी सीख लेते हैं।

(4) औपचारिक प्रक्रिया अवस्था या फॉरमल ऑपरेशन अवस्था (Formal Operation Stage) –यह अवस्था किशोरावस्था के आसपास यानी 12 वर्ष के बाद शुरू होती है। संज्ञान विकास की इस अन्तिम अवस्था में बालक के भीतर जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता विकसित होती है वह है, तार्किक चिन्तन की क्षमता। अब वह सभी समस्याओं का तर्कपूर्ण समाधान कर सकता है तथा इस अवस्था में बालक अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त विचारों के सम्बन्ध में चिन्तन करना सीख जाता है। इस अवस्था में बालक सामान्यतः अपने वास्तविक अनुभवों को काल्पनिक स्थितियों *(Imaginative situations)* में आरोपित *(Project)* करता है और विभिन्न प्रकार की घटनाओं के सम्बन्ध में नई-नई परिकल्पनायें *(Hypothsses)* बनाकर उन्हें सत्य सिद्ध करने की कोशिश करता है। इसके साथ-साथ बालक इस अवस्था में किसी भी नियम, सिद्धान्त तथा व्यवहार आदि में किसी प्रकार की कोई विसंगति या अनियमितता *(Inconsistancy)* उत्पन्न होती है तो उसे इस अवस्था का बालक आसानी से समझने के योग्य हो जाता है। इसी कारण से इस अवस्था के अन्तर्गत बालकों में वास्तविकताओं और अवास्तविकताओं को समझने की योग्यता भी विकसित हो जाती है।

पियाजे के अनुसार–किशोर उस चरण में से गुजरता है, जिसमें वह स्वयं के विचारों पर पूरी शक्ति खर्च कर देता है तथा शानदार भविष्य की कल्पना करने लगता है। जीवन की विभिन्न चुनौतियों का सामना करने के साथ-साथ उसका अहं केन्द्रीकरण *(Ego-centrism)* तथा नई आशाएँ लुप्त होने लगती हैं। इसके अतिरिक्त इस अवस्था में बालक विभिन्न स्थितियों का प्रतिनिधित्व विभिन्न तरीकों से करना सीख जाते हैं, उन तरीकों को विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों में संगठित कर सकते हैं तथा उन्हें परिणामों में बदल सकते हैं। फॉरमल ऑपरेशन अवस्था की मुख्य विशेषताएँ **निम्नलिखित हैं**–

(1) तार्किक चिन्तन की क्षमता का विकास।

(2) समस्या-समाधान की क्षमता का विकास।

(3) वास्तविक तथा अवास्तविक में अन्तर समझने की क्षमता।

Scanned with OKEN Scanner

(4) वास्तविक अनुभवों को काल्पनिक परिस्थितियों में प्रक्षेपित करने की क्षमता।
(5) परिकल्पनाओं को विकसित करने की क्षमता।
(6) विसंगतियों को समझने की क्षमता।
(7) विचार के सम्बन्ध में विचार करने या अमूर्त चिन्तन की क्षमता।

अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बच्चे की तार्किक-चिन्तन की क्षमता उसमें नये-नये विचारों का उदय, तकनीकों को समझने की लगन एवं कर्म को समझकर करने की दृढ़ इच्छा उत्पन्न करती है। इस प्रकार बालक का विकास एक दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले तथा प्रत्येक कार्य को समझ कर करने वाले नागरिक के रूप में होता है।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन
(Evaluation of Piaget's Cognitive Development Theory)

उपरोक्त विवरण के अध्ययन के पश्चात् पियाजे महोदय के बौद्धिक विकास के सिद्धांत के बारे में हम निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों पर पहुंचते हैं–

(i) पियाजे के अनुसार–ज्ञानात्मक-विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें पिछली अवस्था के आधार पर ही अगली अवस्था का निर्माण या विकास होता है।

(ii) अहं-केन्द्रीकरण *(Ego centrism)* विकास का बहुत ही गम्भीर पक्ष *(Criticial Aspect)* है, जिसे विकेन्द्रीकरण *(Decentralisation)* द्वारा अवश्य ही परिवर्तित किया जाना चाहिए।

(iii) वह उपयुक्त या सही आयु जिस पर विकास की वही अवस्थाएँ आयें, इतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि सभी बच्चे सभी समाजों में इन विकास की अवस्थाओं से गुजरें।

(iv) बच्चे के सोचने की विषय-वस्तु से अधिक महत्त्वपूर्ण है उनके चिन्तन की प्रकृति। **पियाजे** का मुख्य लक्ष्य था यह जानना कि लोग कैसे सोचते हैं न कि वे क्या सोचते हैं। बच्चों के सोचने के ढंग को जान लेने के पश्चात् मनोवैज्ञानिक चिन्तन का विकास करना सीख सकते हैं।

(v) जैलमन व अन्यों *(Gelman and others 1972)* के अनुसंधानों द्वारा यह पता चलता है कि बच्चों के ज्ञानात्मक विकास को समझने के लिये मनोवैज्ञानिकों को विभिन्न आयु स्तरों के बच्चों से भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछने चाहिए। शाज और जैलमेन *(Shatz and Gelman 1973)* ने यह बताया है कि दो वर्षीय बालक अपने वाक्यों की लम्बाई बदल लेते हैं, यह जानकर कि वे किससे बात कर रहे हैं। ऐसे बच्चे छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं, जब वे छोटे बच्चों से बात करते हैं। लैम्परस, फलैवल *(Lampers and Flavell and Flavell 1977)* ने अपने अध्ययन में यह पाया कि दो वर्षीय बच्चे अपनी पुस्तक में चित्रों एवं उदाहरणों को अपनी माँ को दिखाने के लिए पुस्तक को घुमा सकते हैं।

(vi) बच्चों को बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करने चाहिए और ये उद्दीपन उनकी आयु स्तर के अनुसार हों।

(vii) बच्चों को उनके आयु स्तर से अधिक कार्य करवाना समय व्यर्थ गंवाना होगा।

(viii) बच्चों के ज्ञानात्मक विकास को समझने के लिए भिन्न आयु स्तर के बच्चों से भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछे जाएँ।

(ix) जीवन के प्रथम दो वर्षों में बच्चे के बौद्धिक विकास के लिये माता-पिता का प्यार और अन्तःक्रिया आवश्यक है।

(x) उद्दीपन की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

(xi) बच्चों को भौतिक और बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करने चाहिए।

(xii) संवेदनात्मक उद्दीपन *(Sensory Stimulus)* प्राप्त करने वाले बच्चों का बौद्धिक विकास तीव्र होता है।

(xiii) पियाजे के अनुसार इस विकास का बोझ बच्चों पर अधिक नहीं पड़ना चाहिए।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास से सम्बन्धित आधारभूत प्रत्ययों का वर्णन करते हुए बतायें कि इस सिद्धान्त की नर्सरी तथा प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिये क्या उपयोगिता है?

शैक्षिक महत्व

अथवा

पियाजे के संज्ञानात्मक-सिद्धान्त के मुख्य आधार प्रत्ययों तथा इस सिद्धान्त की नर्सरी तथा प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिये क्या उपयोगिता या महत्त्व है? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर–पियाजे के सिद्धान्त से सम्बन्धित कुछ आधारभूत प्रत्यय निम्नलिखित हैं–

(1) निर्माण और खोज–बच्चे उन व्यवहारों और विचारों की समय-समय पर खोज और निर्माण करते रहते हैं, जिन व्यवहारों और विचारों का उन्होंने कभी पहले प्रत्यय नहीं किया होता है। पियाजे का विचार है कि ज्ञानात्मक विकास केवल नकल *(copying)* न होकर खोज पर आधारित है। नवीनता या खोज की उद्दीपक अनुक्रिया को सामान्यीकरण के आधार पर नहीं समझाया जा सकता है। उदाहरणार्थ–एक चार साल का बालक विभिन्न आकार के बालकों को क्रमानुसार लगा देता है तो यह उसके बौद्धिक वृद्धि की खोज और निर्माण से सम्बन्धित है।

(2) **कार्य-क्रिया का अर्जन या प्राप्त करना (Acquisition)**–कार्य-क्रिया का तात्पर्य उस विशिष्ट प्रकार के मानसिक क्रम से है, जिसकी मुख्य विशेषता उत्क्रमणीयता है। प्रत्येक कार्य क्रिया का एक तर्कपूर्ण उद्देश्य होता है। उदाहरणार्थ, एक मिट्टी के चक्र को दो भागों में तोड़ना तथा दो टूटे हुए भागों को पुनः एक पूर्ण चक्र के रूप में जोड़ना एक कार्य क्रिया है। पियाजे का विचार है कि जब तक बालक किशोरावस्था तक नहीं पहुंच जाता है, तब तक वह भिन्न-भिन्न विकास अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न वर्गों में कार्य क्रियाओं का अर्जन करता रहता है। उसकी एक विकास अवस्था से दूसरी में पदार्पण के लिए निम्न दो तथ्य आवश्यक हैं–

(i) सात्मीकरण (Assimilation)–सात्मीकरण का अर्थ है बालक से उपस्थित एक विचार या वस्तु में किसी नये विचार या वस्तु का समावेश हो जाना। पियाजे के विचार से तात्पर्य बालक के प्रत्यक्षात्मक गत्यात्मक समन्वय से है।

(ii) व्यवस्थापन तथा संतुलन स्थापित करना–व्यवस्थापन का अर्थ नई वस्तु या विचार के साथ समायोजन करना है या अपने विचारों एवं क्रियाओं को नये विचारों एवं वस्तुओं में विद्यमान करना है। मानसिक वृद्धि में सात्मीकरण और व्यवस्थापन में उपस्थित उत्पन्न तनाव का हल निहित होता है। यह तनाव नई परिस्थितियों में पुरानी अनुक्रियाओं के समय उत्पन्न होते हैं या उस समय उत्पन्न होते हैं, जब बालक नयी अनुक्रियाओं को नवीन समस्याओं के समाधान में फिट करता है, जिससे उसका बौद्धिक विकास परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार का व्यवस्थापन संतुलित कहलाता है।

यद्यपि पियाजे बाल विकास में रुचि रखते थे, तथापि उन्होंने अपने विकास की अवस्थाओं के शैक्षिक उपयोग को विशेष रूप से नहीं बतलाया। अब बहुत से मनोवैज्ञानिक और शिक्षा-शास्त्रियों ने उनके संज्ञानात्मक-विकास के सिद्धांत के उपयोग के सम्बन्ध में बताया है कि सभी नर्सरी स्कूल बच्चों के शीघ्र तथ्यात्मक प्रशिक्षण पर अधिक बल देते हैं तथा आधारभूत प्रशिक्षण के लिए उचित मानसिक संरचना का निर्माण होना आवश्यक है। आनुवांशिक या परिपक्वता से सम्बन्धी कारक अकेले मानसिक-विकास की अवस्था का वर्णन करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। वे न तो विषय जैसे (बालक) और न ही उद्देश्य जैसे (पदार्थ) पर ही अस्तित्व रखते हैं बल्कि निर्माण या हस्तादिकरण द्वारा बने होते हैं। कार्य क्रिया ज्ञान का सार है, जो क्रिया से उत्पन्न होता है।

पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त की नर्सरी तथा प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिये उपयोगिता या महत्त्व (Utility or Importance of Piaget's theory Nursery and Primary School Teachers)–**विपर्ड** ने पियाजे के सिद्धांत की नर्सरी और प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों के लिए **निम्नलिखित उपयोगिता बताई है–**

(1) वे अवकाश के समय की अवधि में कहानियां, कवितायें और स्वतंत्र क्रियायें प्रदान कर सकते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(2) अध्यापक शब्दावली के विकास और सभी प्रकार के प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण को स्वीकृत कर सकते हैं।

(3) विद्यालय को अधिक खिलौनों के साथ खेल का मैदान करना चाहिए, जिसमें कि बच्चे अपनी क्रियाओं को नियंत्रित करना सीख सकते हैं और वस्तुनिष्ठ सम्बन्धों के बारे में कार्यात्मक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

(4) विद्यालय को कल्पनाशील खेल में उपयोग के लिए या निर्माण के लिए अधिक संख्या में खिलौने एवं उपकरण प्रदान करने चाहिए।

(5) अधिक उन्नति करने वाले बच्चों को छांटने, वर्गीकृत करने तथा गिनने के पदार्थ प्रदान करवाने चाहिए।

(6) पानी, बालू, ईंट, ड्राइंग मैटीरियल ओर पेंट्स जो कि निर्माण और प्रस्तुतीकरण की भिन्नता के लिए साधन प्रदान करते हैं, भी उपयोगी होते हैं।

(7) घरेलू खिलौने जो कि कल्पना और नाटक के पात्र के अभिनय के खेल को उत्साहित करते हैं, वो भी प्रदान करने चाहिए।

(8) बियर्ड के अनुसार तथ्य निर्माण और योग्यताओं की प्राप्ति उस समय सरल हो जाती है, जबकि अधिक परिपक्व बच्चों को अधिक संरचनात्मक खेल और क्रियायें प्रदान की जाती है। अधिक उन्नतशील बच्चों को तथ्य और उपयोगिताओं के उपयोग में अभ्यास की आवश्यकता होती है।

(9) जब बच्चा किसी क्रिया से जल्दी परिचित हो जाता है तो उसके जल्दी व्याकुल होने की संभावना और परेशानी बढ़ जाती है। माता-पिता को भी शीघ्र पढ़ने के लिए उत्साहित नहीं करना चाहिए, बल्कि अधिक से अधिक क्रियायें प्रदान करनी चाहिएँ।

◆◆◆

4. बालकों के मानसिक-विकास से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की ज्ञानात्मक-प्रयोग्यताओं का विकास किस प्रकार से होता है? विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिये।

अथवा

बालकों में संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, बोध शक्ति, तर्क-शक्ति ध्यान, कल्पना तथा स्मरण शक्ति का विकास कैसे होता है? उल्लेख कीजिये।

अथवा

बच्चों में विभिन्न प्रकार की संज्ञानात्मक या ज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास किस-किस प्रकार से होता है? वर्णन कीजिये।

उत्तर–बालकों में विभिन्न प्रकार की ज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास **निम्नलिखित प्रकार से होता है**–

(a) संवेदन और प्रत्यक्षीकरण (Sensation and Perception)–प्रत्यक्षीकरण में ये सभी प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जिनके द्वारा हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रदान किये गये सभी सन्देशों को प्राप्त करते हैं। *(A perception pertains to the processes by which we read meassages that are conveyed by our senses.–David Elkind & Irving B, weiner)*

लेकिन बालक की प्रत्यक्ष-ज्ञान योग्यता *(Perceptual Ability)* उसकी संवेदन क्षमता में वृद्धि होने से बढ़ती है और उसकी संवेदन क्षमता *(Sensation)* उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात् कान, नाक, जीभ आदि के विकास द्वारा बढ़ती हैं। जीवन के प्रथम वर्षों में प्रत्यक्षीकरण का विकास ही अत्यधिक होता है। प्रारम्भ में तो बच्चे की संवेदन क्षमता और प्रत्यक्षीकरण अविकसित होते हैं। साधारण भाषा में हम यह कह सकते हैं कि प्रारम्भ में बच्चों में वस्तुओं को पहचानने या अर्थ जानने की योग्यता विकसित नहीं होती।

प्रत्यक्षीकरण और संवेदन का आपस में गहरा सम्बन्ध है। क्योंकि सबसे पहले संवेदन द्वारा ही ज्ञानेन्द्रियों से हमें सूचनाएँ प्राप्त होती हैं और फिर हम उसका अर्थ निकालते हैं। यह अर्थ निकालने की प्रक्रिया ही

Scanned with OKEN Scanner

प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* कहलाती है। प्रत्यक्षीकरण के अन्तर्गत कुछ प्रत्यक्ष-ज्ञान योग्यताएँ *(Perceptual abilities)* प्रमुख होती हैं, जैसे दृश्य *(Visual)*, श्रव्य *(Auditory)*, स्वाद *(Taste)*, सूँघना *(Smell)* और स्पर्श *(Touch)* इत्यादि।

इन्द्रियाँ जन्म के समय से ही विकसित होती हैं और जन्म के पश्चात् उनमें परिपक्वता आने लगती है। इन इन्द्रियों को साधारण माना गया है, लेकिन **गिबसन (Gibson)** के अनुसार यही इन्द्रियाँ बच्चे का 'संवेदी तंत्र' *(Sensory System)* बनाती हैं, क्योंकि ये इन्द्रियाँ दूसरी संवेदी प्रक्रियाओं *(Sensory Proceuses)* के साथ अन्त-क्रिया *(Interaction)* करती हैं। **उदाहरणार्थ,** सूंघना *(Smell)* और स्वाद *(Taste)* दोनों ही दृश्य-संवेदन *(Visual Sensation)* से सम्बन्धित होते हैं।

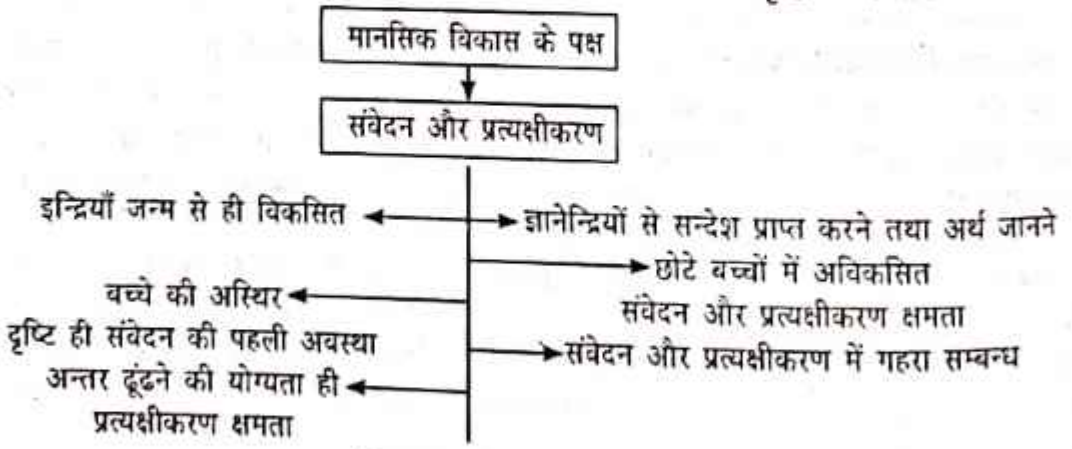
विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में तो बच्चे कि दृष्टि स्थिर नहीं होती है। वह अपने आसपास की वस्तुओं पर नजर नहीं टिका सकता, लेकिन वह नजर टिकाने का प्रयास अवश्य करता है। यह संवेदन *(Sensation)* की पहली अवस्था होती है।

व्यक्तियों में, वस्तुओं में विभेदीकरण करना, ध्वनि की पहचानना आदि प्रत्यक्षीकरण की क्षमता के विकास की ओर संकेत करते हैं। धीरे-धीरे वह सभी ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग शुरू कर देता है। उसमें अपने आसपास के वातावरण को जानने की आकांक्षा पैदा होती है।

प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया इस उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट की जा सकती है। बच्चा किसी वस्तु को एक कोने पर रखने का प्रयत्न करता है तो वह उसे मेज पर न रख कर मेज की ऊँचाई से कम या ज्यादा रखकर या इधर-उधर करके छोड़ देता है और वह समझता है कि उसने उस वस्तु को मेज पर रख दिया है। विकास की अवस्थाओं के साथ-साथ उसकी प्रत्यक्ष ज्ञान की योग्यता *(Perceptual Ability)* भी बढ़ती रहती है। परिपक्वता ग्रहण करने के पश्चात् वह उस वस्तु को नीचे या इधर-उधर कदापि नहीं गिरने देगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानसिक विकास की प्रक्रिया में संवेदन और प्रत्यक्षीकरण के विकास का कितना महत्त्व है। संक्षेप में, संवेदन और प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी तथ्य निम्नलिखित हैं–

(1) समस्त ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संदेश प्राप्त करने की प्रक्रिया, अर्थ जानने की प्रक्रिया ही क्रमशः संवेदन और प्रत्यक्षीकरण है।
(2) बहुत छोटे बच्चों में संवेदन और प्रत्यक्षीकरण अविकसित होते हैं।
(3) संवेदन और प्रत्यक्षीकरण में गहरा सम्बन्ध होता है।
(4) इन्द्रियाँ जन्म के समय से ही विकसित होती हैं तथा जन्म के पश्चात् वे और परिपक्व हो जाती हैं।
(5) प्रारम्भिक संवेदन की अवस्था है–बच्चे की दृष्टि का अस्थिर होना।
(6) अन्तर ढूँढ़ने की योग्यता का अर्थ है–प्रत्यक्षीकरण क्षमता में वृद्धि का होना।



चित्र : मानसिक विकास का पक्ष

Scanned with OKEN Scanner

(b) भाषा का विकास (Language Development)–मानसिक विकास भाषा के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। इस आयु में भाषा का विकास अधिकतर 'क्यों' *(Why)* और 'कैसे' *(How)* पर ही आश्रित होता है। 'क्यों' और 'कैसे' दोनों ही परस्पर सम्बन्धित हैं। बच्चे वयस्कों की भाषा का अनुकरण ही होता है। जैसे–विकास भी विकास की अवस्थाओं के अनुसार ही होता है। जैसे–

(1) प्रारम्भ में बालक चिल्लाता है या किलकारी जैसी ध्वनियाँ निकालता रहता है।

(2) यही किलकारियाँ बच्चों की इच्छाओं की संकेतक होती हैं।

(3) जन्म के बाद प्रथम वर्ष में बच्चा कुछ सीख जाता है तथा फिर उसका शब्द भंडार बढ़ने लगता है।

(4) भाषा के विकास में अनुकरण *(Imitation)* का बहुत महत्त्व होता है।

(5) कई बार बच्चों में भाषा सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं जैसे तुतलाना, हकलाना आदि।

(6) शब्द कोष में वृद्धि होने से उनमें वाक्य-निर्माण और अपने भावों को व्यक्त करने की क्षमता में भी वृद्धि होती रहती है।

(7) बचपन में कुछ शब्दों के विकास से लेकर किशोरावस्था तक भाषा विकास में परिपक्वता आ जाती है।

(8) किशोरों का वातावरण भी भाषाई-कौशलों के विकास का उत्तरदायी है। बच्चे जो बेहतर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखते हैं, उनमें भाषा की योग्यताओं का उत्तम विकास होता है।

(9) परिवार में अकेला बच्चा हो तो उसका भाषाई विकास अधिक देखा गया है। क्योंकि बच्चा वयस्कों की भाषा का अनुकरण करता है। जुड़वा बच्चे एक दूसरे की भाषा का अनुकरण करते हैं।

(10) बुद्धि *(Intelligence)* और भाषाई कौशल *(Linguistic skills)* भी आपस में सम्बन्धित होते हैं। उच्च-बुद्धि स्तर वाले बालकों में भाषाई-कौशलों का स्तर भी उच्च ही होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों की भाषा के विकास में घर का वातावरण का बहुत हाथ होता है। अध्यापक भी परिवार की सहायता से बच्चों को भाषा विकास के लिये आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान कर सकता है।

(c) बोध शक्ति का विकास (Development of Power of Understanding)–बोध शक्ति के अन्तर्गत विभिन्न संप्रत्ययों या धारणाओं *(Concepts)* का विकास सम्मिलित है, जैसे स्वयं का प्रत्यय, स्थान का प्रत्यय, भार, संख्या, आकार, स्वरूप तथा सौन्दर्यात्मक अनुभूति *(Concepts of time, space, weight, number, size form and aesthetic sense)*। इस प्रकार के प्रत्ययों का विकास बच्चों में धीरे-धीरे होता है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है–

(1) स्वयं की धारणा या प्रत्यय (Self Concept)–जब बच्चा यह समझने लगे कि उसका किन-किन चीजों से सम्बन्ध है तो इसका अर्थ है वह स्वयं की धारणा का प्रत्यय प्रस्तुत कर रहा है। उसे भूख-प्यास लगती है और वह खाना और पानी मांगता है। वह अपने कपड़े माँगता है। वह अपने उन खिलौनों को माँगता है जिन्हें उससे दूर छुपा कर रख दिया गया होता है। ऐसा वह 2-3 वर्ष की आयु तक करना शुरू कर देता है और धीरे-धीरे वह स्वयं को और वस्तुओं से जोड़ लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसमें स्वयं के बारे में धारणा का विकास हो गया है।

(2) समय की धारणा या प्रत्यय (Time Concept)–4-5 वर्षों की आयु तक तो बच्चा 2-3 दिन पहले हुई घटनाओं को जोड़ने का प्रयास करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसमें समय सम्बन्धी धारणा विकसित हो गई है। वह कल, आज, परसों, सप्ताह, महीने, वर्ष आदि का अर्थ समझने लगता है। दिन, सप्ताह, महीने, वर्ष, घंटे, मिनट आदि की अवधि का ज्ञान भी धीरे-धीरे होने लगता है।

(3) स्थान की धारणा या संप्रत्यय (Space Concept)–जब बालक यह समझना शुरू कर दे कि उसे किसी वस्तु को कहाँ रखना है या उसे कहाँ बैठना है और कहाँ नहीं बैठना, तब उसका अर्थ है कि उसमें 'स्थान' सम्बन्धी धारणा विकसित हो गई है। यह 2-3 वर्ष की आयु के पश्चात् शुरू हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

(4) भार की धारणा या प्रत्यय (Weight Concept)–आयु के बढ़ने के की साथ-साथ बच्चों को यह स्पष्ट होने लगता है कि कौन सी चीज भारी है और कौन सी हल्की। 4-5 वर्ष की आयु तक बच्चा यह बताने लगता है कि वह क्या-क्या नहीं उठा सकता।

(5) संख्याओं का प्रत्यय या धारणा (Number Concept)–शुरू में बच्चा संख्याओं से अनभिज्ञ होता है, लेकिन 2-3 वर्षों की आयु तक वह अपनी ऊँगलियों को गिनने के योग्य हो जाता है। वह गिनने के प्रयास में गलती भी कर सकता है। इस प्रकार बच्चों में संख्याओं सम्बन्धी धारणा का विकास होता है।

(6) आकार का प्रत्यय (Size Concept)–मानसिक विकास का एक आवश्यक पक्ष है, बालक में आकार सम्बन्धी धारणा का विकास होना। इसके अनुभव का पता चलता तब है जब बच्चा विभिन्न चीजों को उनके आकार के अनुसार व्यवस्थित करता है, जैसे किसी खिलौने के विभिन्न भागों को।

(7) स्वरूप का प्रत्यय या धारणा (Form Concept)–जब बच्चा किसी त्रिकोण, वृत्त या सीधी लाईन को समझने लगता है, तब हम कहते हैं कि उसमें 'स्वरूप' सम्बन्धी धारणा का विकास हो गया है। इस विकास के समय वह त्रिभुज, वृत्त, रेखा इत्यादि शब्दों का प्रयोग करने लगता है।

(8) सौन्दर्यात्मक अनुभूति (Aesthetic Sense)–बच्चे अवसर सुन्दर वस्तुओं से प्रेम करते हैं। वे रंगों को अधिक पसंद करते हैं। बच्चे कागज पर चित्रों की ड्राईंग करते हैं तथा उन्हें वे अपने माता-पिता को दिखाते हैं। वे सुन्दर कपड़े पहन कर ही बाहर जाना पसंद करते हैं। बच्चों के इस प्रकार के विकास से यह स्पष्ट होता है कि मानसिक विकास का सम्बन्ध सौन्दर्यात्मक अनुभूति से भी है।

ये सभी प्रत्यय या धारणाएँ एक-दूसरे पर आश्रित हैं तथा बच्चों में एक साथ ही विकसित होती हैं। अतः यह कहना बहुत कठिन है कि बच्चे में किस धारणा का विकास किस धारणा के पश्चात् होता है।

(d) तर्क-शक्ति और निर्णय लेना (Power of Reasoning and Judgement)–बच्चों में तर्क-शक्ति और निर्णय लेने की शक्ति का संकेत हमें तब मिलता है जब वह अपने विचारों की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से करने लगे। 2 वर्ष की आयु तक वह प्रवाह सहित बोलने लगता है जब वह 'क्यों' का प्रयोग अधिक करने लगता है तो उसका अर्थ यह है कि उसमें तर्क शक्ति का विकास हो चुका है। जब वह यह कहने लगता है कि वह 'यह पुस्तक पढ़ेगा' और 'यह पुस्तक नहीं पढ़ेगा' तो इसका अर्थ हुआ कि उसमें निर्णय लेने की क्षमता की विकास हुआ है। तर्क-शक्ति और निर्णय लेने की शक्ति का सम्बन्ध भाषा के विकास के साथ होता है।

(e) ध्यान, कल्पना और स्मरण शक्ति विकास (Development of Attention, Imagination and Memory)–यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि बच्चे में ध्यान की शक्ति कब उत्पन्न होती है। लेकिन वह इस शक्ति का प्रदर्शन 1 या 2 वर्ष की आयु से करने लगता है। 4-5 वर्ष की आयु तक वह रंगीन खिलौनों की ओर अधिक ध्यान देता है। कई बार बच्चा किसी एक ही प्रकार के खिलौने की ओर ध्यान केन्द्रित करता है। इसी को ध्यान कहते हैं। कोई भी बच्चा अपनी रुचि की चीजों की ओर ही ध्यान देता है।

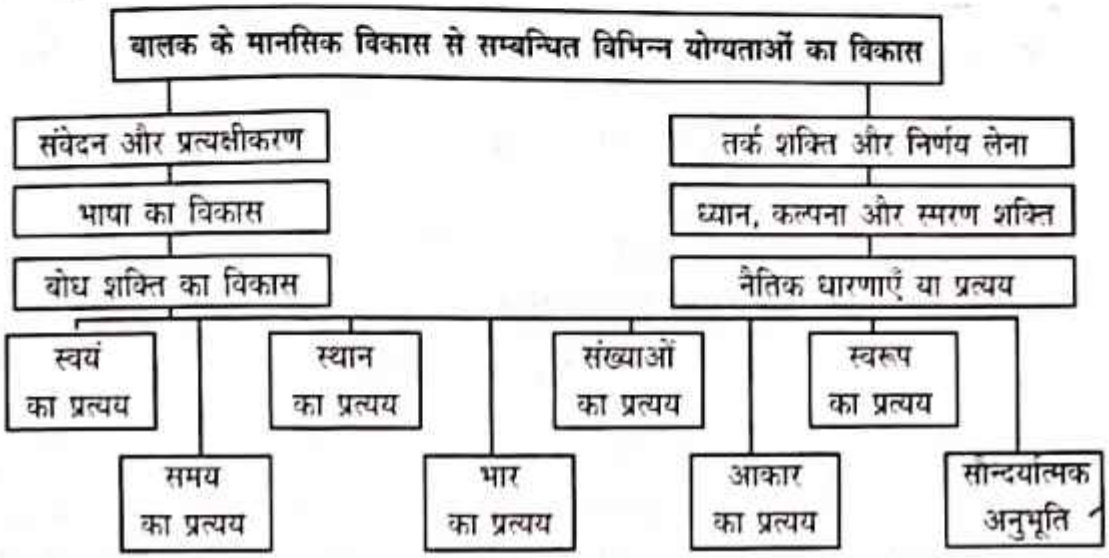
इसी प्रकार भाषा के विकास के साथ ही बच्चे में कल्पना शक्ति का विकास होता है, क्योंकि कल्पना के दौरान बच्चा अपने मन से बातें करता है। किसी बच्चे की क्रियाओं में कल्पना के चिह्न देखने कठिन नहीं होते। उसके द्वारा स्वप्न देखना ही कल्पना करना है तथा उसके द्वारा नाटकीय रूप देना भी कल्पना शक्ति का संकेत है। वह सिपाही, चोर, अध्यापक, ड्राईवर आदि का अभिनय करता है। कल्पना-शक्ति में वैयक्तिक भिन्नता होती है।

स्मरण शक्ति भी मानसिक विकास का महत्त्वपूर्ण पक्ष माना जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में बालक की स्मरण शक्ति के बारे में अनुमान लगाना कठिन है। लेकिन आयु में वृद्धि, परिपक्वता और अनुभवों के माध्यम से धीरे-धीरे इसका विकास होता रहता है। भाषा के विकास के साथ तो स्मरण शक्ति और भी बढ़ जाती है। दो वर्ष की आयु तक बच्चे काफी कुछ याद रख सकते हैं। व्यक्ति और वस्तुओं के बारे में स्मरण शक्ति प्रथम दो वर्षों में अत्यधिक विकसित हो जाती है। इससे आगे की अवस्था में परिस्थितियों और घटनाओं के बारे में स्मरण शक्ति का विकास होना शुरू हो जाता है। प्रारम्भिक अवस्थाओं में स्मरण

Scanned with OKEN Scanner

शक्ति रटने पर आधारित होती है। किसी प्रकार का तर्क या सूझ-बूझ बच्चों में देखने को नहीं मिलती। किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था में पहुंच कर व्यक्ति में तर्क और सूझ-बूझ का विकास हो जाता है। प्रौढ़ावस्था के अन्त में स्मरण शक्ति क्षीण होनी शुरू हो जाती है।

(f) नैतिक धारणाएँ या प्रत्यय (Moral Concepts)–नैतिक प्रत्ययों या धारणाओं के विकास से हमें मानसिक विकास का संकेत मिलता है। नैतिकता की भावना का प्रदर्शन करने के लिए प्रारम्भ में बच्चा अनैतिक *(Non-moral)* होता है। बच्चा जब आस-पास की चीजों को समझना शुरू करता है तो वह अच्छे और बुरे के बारे में भी समझना शुरू कर देता है। वह यह सोचना शुरू कर देता है कि दूसरों को हानि नहीं पहुँचाई जानी चाहिए। बच्चों में नैतिक धारणाओं या प्रत्ययों के विकास के लिये माता-पिता तथा अन्य पारिवारिक सदस्य उत्तरदायी होते हैं। अतः हमें बच्चों के चारों ओर एक उत्तम नैतिक वातावरण का निर्माण करना चाहिए।



चित्र : बालकों में विभिन्न प्रकार की ज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास

◆◆◆

1. 3 कोलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धान्त (Kohlberg's Theory of moral development)

1. कोलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत का वर्णन करें।
(Describe KOHLBERG'S Theory of Moral Development.)

अथवा

नैतिक विकास क्या है? द्वारा प्रतिपादित नैतिक अवस्थाओं का विवेचन करें।
(What is moral development? Explain stages of moral development as given by Kohlberg.)

उत्तर–प्रारंभिक आयु में बच्चा नैतिकता के सम्प्रत्यय (Concept) से अपरिचित होता है। उसका व्यवहार स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा नियंत्रित होता है। उसकी वृत्तियों पर नियंत्रण के लिए समाज पुरस्कार एवं दंड, प्रशंसा एवं निन्दा की व्यवस्था करता है। इसके अतिरिक्त स्वयं बालक भी विभिन्न क्रियाओं से सम्पन्न होने वाले सुख एवं दुःख का अनुभव करता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस बात के अध्ययन के प्रयत्न किए हैं कि किस प्रकार स्वाभाविक वृत्तियों से नियंत्रित होने वाला बालक सामाजिक नियमों व मर्यादाओं के अनुसार आचरण करके नैतिक व्यवहार को प्रदर्शित करने लगता है। नैतिक क्षमता के विकास के सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिक एक

Scanned with OKEN Scanner

मत के नहीं हैं। नैतिक विकास के विभिन्न सिद्धांत हैं। इस पुस्तक में केवल दो सिद्धांतों का ही वर्णन किया गया है। इस प्रश्न में कोलवर्ग (Kohlberg's Theory) के सिद्धांत का वर्णन किया गया है।

फ्रॉयड के अनुसार जब बच्चा माता-पिता की भावनाओं और अभिवृत्तियों को उनसे ग्रहण करता है तथा उनसे ग्रहण की हुई नैतिकता ही आगे चलकर उसके लिए विवेक (Conscience) का रूप धारण कर लेती है। बालक नैतिक आचरण के लिए भीतर से निर्देशित होता है। इसे फ्रॉयड ने नैतिक विकास में व्यक्ति की बाल्यकालीन अनुभूतियों का महत्त्वपूर्ण स्थान बताया है।

सियर्स (Sears, 1957) ने बालकों के नैतिक विकास पर समाजीकरण और शिशुपालन विधियों (Child Rearing Practices) की भूमिका को महत्त्वपूर्ण बताया। **बैन्डूरा और वाल्टर्स (Bandura and Walters, 1963)** ने बताया कि बच्चे में नैतिक विकास सामाजिक अधिगम (Social Learning) का परिणाम होता है। बच्चा अपने परिवेश में नित्य नमूनों (Models) के व्यवहार का अनुसरण कर नैतिक आचरण ग्रहण करता है। यहाँ नमूनों से अभिप्राय है माता-पिता, बड़े भाई-बहन या अध्यापक आदि जिन्हें बच्चा अनुकरणीय समझता है। स्किनर (Skinner) ने अधिकतर प्रबलन (Reinforcement) का प्रभाव प्रदर्शित करते हुए बतलाया है कि नैतिक व्यवहार का विकास, दंड एवं पुरस्कार पर निर्भर होता है।

लेकिन **कोलबर्ग (Kohlberg, 1963)** का सिद्धांत इन सभी सिद्धांतों से भिन्न है। उसके सिद्धांत का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है–

कोलबर्ग के सिद्धांत की मूलभूत मान्यताएँ
(Basic Assumptions of Kohlberg's Theory)

(i) बालक के नैतिक विकास के स्वरूप को समझने के लिए उनके तर्क और सिद्धांत के स्वरूप (Structure of Rearing and Thinking) का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। बच्चे द्वारा प्रदर्शित प्रतिक्रियाओं के आधार पर इसकी नैतिकता का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अधिकतर परिस्थितियों में बच्चा भय या पुरस्कार के प्रलोभन में वांछनीय व्यवहार प्रदर्शित करता है, नैतिक चिंतन या नैतिक निर्णय के कारण नहीं। कोलबर्ग ने बालक को किसी धर्मसंकट की स्थिति (Dilemma) में रखकर यह देखा है कि बालक उस परिस्थिति में क्या सोचता है तथा किस तर्क के आधार पर उचित व्यवहार के लिए निर्णय लेता है। कोलबर्ग के इस उपागम को प्राणीगत उपागम (Organismic Approach) भी कहा गया है।

(ii) कोलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धांत को 'अवस्था सिद्धांत' (Stage Theory) भी कहा गया है। उन्होंने सम्पूर्ण नैतिक विकास को छः अवस्थाओं में बाँटा है तथा इन्हें सार्वभौमिक (Universal) माना है। उनके अनुसार सभी बच्चे इन अवस्थाओं में से गुजरते हैं। नैतिक विकास की ये अवस्थाएँ एक निश्चित क्रम में आती हैं और यह क्रम बदला नहीं जा सकता। नैतिक विकास की प्रत्येक अवस्था में पाई जाने वाली नैतिकता का गुण अन्य अवस्थाओं की नैतिकता से भिन्न होता है। प्रत्येक अवस्था में बालक की तर्क शक्ति (Reasoning) नए प्रकार की होती है।

(iii) जब बच्चा एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है तो उस बच्चे के भीतर नैतिक व्यवहार गुणात्मक परिवर्तन (Quantitative Changes) कब और कैसे उत्पन्न होते हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। कोलबर्ग के अनुसार नैतिक व्यवहार में गुणात्मक परिवर्तन क्रमिक रूप से ही आते हैं। अचानक ही पैदा नहीं हो जाते। किसी अवस्था विशेष में पहुँचने पर बालक केवल उसी अवस्था की विशेषताओं का ही प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि उसमें कई अवस्थाओं के व्यवहार मिश्रित रूप से दिखाई पड़ते हैं। उसमें अधिकांश व्यवहार जिस अवस्था के अनुरूप होते हैं। बच्चे को उसी अवस्था का मान लिया जाता है।

(iv) कोलबर्ग के एक सहयोगी इलियट टूरियल (Elliot Turiel, 1969) के अनुसार प्रायः सभी बच्चे नैतिक विकास की एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था में प्रविष्ट होता है, परन्तु सभी बालक छः अवस्थाओं तक नहीं पहुँच पाते। नैतिक विकास की अन्तिम अवस्था तक पहुँचने वाले बालकों की संख्या बहुत कम होती है। अतः नैतिक तर्कशक्ति या नैतिक चिन्तन की दृष्टि से बच्चों में व्यक्तिगत भिन्नताएँ (Individual Differences) देखने को मिलते हैं। ये भिन्नताएं विकास की गति तथा विकास की सीमाओं दोनों ही कारणों से पैदा होती हैं।

Scanned with OKEN Scanner

नैतिक विकास की अवस्थाएँ
(Stages of Moral Development)

कोलबर्ग ने नैतिक विकास की कुल छः अवस्थाओं का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने दो-दो अवस्थाओं को एक साथ रखकर उनके तीन स्तर बना दिये हैं। ये तीन स्तर हैं–

1. प्री-कन्वेंशनल (Pre-conventional)
2. कन्वेंशनल (Conventional)
3. पोस्ट कन्वेंशनल (Post Conventional)

1. प्री-कन्वेंशनल (Pre-conventional)–जब बालक किसी बाहरी तत्त्व या किसी भौतिक घटना के संदर्भ में किसी आचरण को नैतिक अथवा अनैतिक मानता है तो उसकी नैतिक तर्कशक्ति (Moral Reasoning) प्री-कन्वेंशनल स्तर की (Pre-conventional Level) की कही जाती है। इस स्तर के अन्तर्गत निम्नलिखित दो अवस्थाएँ आती हैं–

1. **आज्ञा एवं दंड की अवस्था (Stage of Order and Punishment)**
2. **अहंकार की अवस्था (Stage of Ego)**

1. आज्ञा एवं दंड की अवस्था (Stage of Order and Punishment) –कोलबर्ग के अनुसार, इस अवस्था में बच्चे का चिन्तन दंड से प्रभावित होता है। परिवार में परिवार के बड़े सदस्य बच्चे को कुछ कार्य करने के आदेश देते रहते हैं। इन आदेशों का उल्लंघन करने पर उसे दंडित किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में बच्चा यह सोचता है कि दंड से बचने के लिए आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है। छोटी आयु में और अपरिपक्व होने के कारण बच्चा किसी कार्य को करने या न करने का निर्णय इसलिये लेता है, क्योंकि उसे दंड का भय होता है। आज्ञाओं का पालन इसलिए करता है कि लोग उसे दंडित न करें। इस प्रकार नैतिक विकास की शुरू की अवस्था में दंड (Punishment) को ही बच्चों की नैतिकता का मुख्य आधार माना जाता है।

2. अहंकार की अवस्था (Stage of Ego)–इस उप-अवस्था में बालक के चिन्तन का स्वरूप बदल जाता है। आयु में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप बच्चा अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को भली प्रकार से समझने लगता है। उसके द्वारा किये जाने वाले अधिकांश कार्यों से उसकी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। यदि उसकी कोई इच्छा झूठ बोलने से पूरी होती है तो वह झूठ बोलना उचित मानेगी। भूखे रहने पर किसी वस्तु को चुरा कर खाने को वह नैतिक आचरण ही समझेगा। नैतिक विकास की इस अवस्था का आधार बालक का अहंकार (Ego) अर्थात् उसकी अपनी इच्छाएँ और आवश्यकताएं उसकी नैतिक तर्क शक्ति का आधार बन जाती हैं।

2. कन्वेंशनल स्तर (Conventional Level)–इस स्तर के अन्तर्गत निम्नलिखित अवस्थाएं आती हैं–

1. **प्रशंसा की अवस्था (Stage of Appreciation)**
2. **सामाजिक व्यवस्था के प्रति सम्मान की अवस्था (Stage of Respect for Social System)**

1. प्रशंसा की अवस्था (Stage of Appreciation)–इस अवस्था के अन्तर्गत बच्चा किसी कार्य को इसलिए करता है, क्योंकि दूसरे लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। इस अवस्था में बच्चा सामाजिक प्रशंसा और निंदा के महत्त्व को समझने लगते हैं। बच्चे इस अवस्था में निन्दनीय आचरण से बचने के प्रयास में रहते हैं। दूसरी ओर समाज के सदस्य बच्चों से विशिष्ट भूमिकाओं (Roles) की अपेक्षा करते हैं। जब बच्चे इन भूमिकाओं का निर्वाह उचित प्रकार से करते हैं तो समाज के सदस्यों की ओर से उन्हें स्वीकृति (Approval) मिलने लगती है। इस अवस्था के दौरान उन्हीं व्यवहारों को बच्चे उचित और नैतिक मानते हैं, जिनके लिये वे परिवार, स्कूल, पड़ोस, मित्र मंडली से प्रशंसा या मान्यता प्राप्त करते हैं। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि अवस्था में बच्चे के चिन्तन का स्वरूप (Structure of Thought) समाज या उसका परिवेश होता है, न कि कोई भौतिक घटना।

Scanned with OKEN Scanner

2. सामाजिक व्यवस्था के प्रति सम्मान की अवस्था (Stage of Respect for Social System) –नैतिक विकास की यह अवस्था बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। **कोलबर्ग** के अनुसार, समाज के अधिकांश सदस्य नैतिक विकास की इस अवस्था तक पहुँच जाते हैं। इस अवस्था में प्रवेश करने से पहले बच्चा समाज को इसलिये महत्त्वपूर्ण मानता था कि समाज से उसके स्वीकृति या प्रशंसा मिलती थी, अब वह समाज को स्वयं में एक लक्ष्य मानने लगता है। वह समाज की प्रथाओं, परम्पराओं और नियमों में आस्था विकसित करके सम्पूर्ण समाज व्यवस्था के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करता है। बच्चा यह चाहने लगता है कि उसे कोई अच्छा कार्य इसलिये करना चाहिये क्योंकि यह उसका कर्तव्य है। सामाजिक नियमों के विरुद्ध हर कार्य अनैतिक होगा।

3. पोस्ट कन्वेंशनल स्तर (Post Conventional Level)–

1. **सामाजिक समझौते की अवस्था (Stage of Social Contract)**
2. **विवेक की अवस्था (State of Conscience)**

1. सामाजिक समझौते की अवस्था (Stage of Social Contract)–इस अवस्था में प्रवेश करने पर व्यक्ति के नैतिक चिन्तन की दशा में पर्याप्त परिवर्तन आ जाते हैं। व्यक्ति पारम्परिक लेन-देन में विश्वास करने लगता है। व्यक्ति यह स्वीकार करके चलता है कि व्यक्ति और समाज के बीच एक समझौते (Contract) का सम्बन्ध है। व्यक्ति को सामाजिक नियम इसलिये स्वीकार करने चाहिए और उनका सम्मान इसलिये करना चाहिए क्योंकि समाज व्यक्ति के हितों की रक्षा करता है। क्योंकि व्यक्ति अब यह सोचने लगता है कि चोरी आदि अनैतिक कार्य होते हैं। ऐसा करने से समाज और व्यक्ति के बीच का समझौता टूट जाता है। अतः अपने नियमों, प्रथाओं, कानूनों के द्वारा समाज व्यक्ति को स्वतंत्रता, अधिकार (Rights) और सुरक्षा प्रदान करता है। अतः ऐसे नियमों का उल्लंघन अनैतिक माना जाता है।

2. विवेक की अवस्था (State of Conscience)–नैतिक विकास की यह अन्तिम अवस्था होती है, क्योंकि इस अवस्था में पहुँचने पर व्यक्ति नैतिकता के बारे में आत्मनिष्ठ (Subjective) दृष्टिकोण भी विकसित करने में सफल हो जाता है। व्यक्ति में विवेक (Conscience) जाग जाता है। व्यक्ति के अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित आदि के बारे में अपने व्यक्तिगत विचार विकसित हो जाते हैं। व्यक्ति के नैतिक निर्णय का एकमात्र आधार उसका विवेक (Conscience) ही बन जाता है। अतः इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति सामाजिक और सरकारी नियमों की व्याख्या अपने स्वयं के दृष्टिकोण के अनुसार करने में सक्षम हो जाता है। वह इस अवस्था में नियमों की वैधता को भी चुनौती देने लगता है, क्योंकि वे नियम उसके विवेक से मेल नहीं खाते। अतः परिणामस्वरूप व्यक्ति अब अपने विवेक के सहारे ही जीवित रहने का आदि हो जाता है। अब व्यक्ति के लिये वही आचरण नैतिक होंगे जो उसके अपने स्वयं के विवेक (Conscience) से समर्थन पा जाते हैं।

◆◆◆

1.4 एरिक्सन का मनो-सामाजिक विकास सिद्धान्त (Erikson's Psycho-social Development theory)

1. एरिक्सन के मनो-सामाजिक सिद्धान्त का वर्णन करें। (Describe Erickson's Psycho-social Theory of Development.)

उत्तर–एरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के प्रतिमान (Model) का बहुत महत्त्व है। यह सिद्धान्त बाल विकास के साथ प्रौढ़ों के विकास में भी सहायक है।

एरिक एरिक्सन (Erick Erickson) ने सर्वप्रथम आठ-स्तरीय मानव विकास का सिद्धान्त 1950 में अपनी पुस्तक 'बाल्यकाल और समाज' (Childhood and Society) नामक पुस्तक में प्रकाशित किया। इस

Scanned with OKEN Scanner

अध्याय का नाम था—'मनुष्य की आठ आयु' इसके पश्चात् उसने अपनी बाद की पुस्तकों में इसमें और सुधार कर लिया। एरिक्सन के इस मॉडल के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया, जैसे जीव-मनो-सामाजिक सिद्धान्त (Bio-psychosocial theory); एरिक्सन का मानव-विकास का चक्र (Erickson's Human Development Cycle)। इन सभी का सम्बन्ध इसी मनो-सामाजिक सिद्धान्त की आठ अवस्थाओं से है। 'मनो-सामाजिक' शब्द एरिक्सन का प्रयोग किया शब्द हैं, जिसमें मनोविज्ञान का अर्थ है 'मन' और 'समाज' (Social) से अभिप्राय है 'सम्बन्ध' (Relationship)।

ऐरिक्सन का विचार था कि मनो-सामाजिक सिद्धान्त विकास में मनुष्य की जैविकीय रूप से (Genetically) स्वरूप प्रदान करता है। यह सभी व्यक्तियों में होता है। फ्रायड की भाँति एरिक्सन ने भी इस बात पर बल दिया कि व्यक्तित्त्व और व्यवहार जन्म के बाद न कि जन्म से पहले किस प्रकार प्रभावित होते हैं।

ऐरिक्सन के सिद्धान्त का केन्द्रीय बिन्दु यह है कि मानव के व्यक्तित्त्व का विकास कई पूर्वनिश्चित अवस्थाएँ जो सार्वभौमिक (Universal) होती हैं, से होकर होता है। जिस प्रक्रिया द्वारा ये अवस्थाएँ विकसित होती हैं, वह विशेष नियम द्वारा नियंत्रित होती हैं। इस नियम को 'पश्चजात नियम' (Epigenetic Principle) कहा जाता है।

मनोसामाजिक अवस्थाओं की विशेषताएँ
(Characteristics of Psycho Social Stages)

(i) प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में एक संक्रान्ति (Crisis) होती है, जिससे अभिप्राय है—जीवनकाल का एक ऐसा वर्तन बिन्दु (Turning Point) होता है, जो उस अवस्था में जैविक परिपक्वता तथा सामाजिक माँग (Social Demand) दोनों में अन्तक्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति में उत्पन्न होता है।

(ii) प्रत्यक मनोसामाजिक संक्रान्ति (Psycho-social Crisis) में धनात्मक और ऋणात्मक दोनों ही तत्त्व (Components) होते हैं। प्रत्येक अवस्था में उसके जैविक परिपक्वता तथा नये-नये सामाजिक माँग के कारण संघर्ष (Conflict) का होना एरिक्सन आवश्यक मानते हैं। यदि इस संघर्ष का व्यक्ति संतोषजनक ढंग से समाधान कर लेता है तो इससे उसके विकसित अंह (Ego) में ऋणात्मक तत्त्व (Negative Component) अवशोषित (Eliminate) हो जाते हैं तथा व्यक्तित्त्व विकास में बाधा पैदा होने की सम्भावना कम रह जाती है।

(iii) प्रत्येक मनो-सामाजिक अवस्था के संक्रान्ति (Crisis) को व्यक्ति को दूर करना होता है या उसका समाधान करना होता है। ऐसा न करने से मनोसामाजिक विकास की अगली अवस्था में उसका विकास नहीं हो पाता है। मनोविकास की प्रत्येक अवस्था में संक्रान्ति (Crisis) का समाधान कर लेने से व्यक्ति में एक विशेष मनो-सामाजिक शक्ति (Psycho social strength) की उत्पत्ति होती है। इस शक्ति को एरिक्सन ने 'सदाचार' (Virtue) का नाम दिया है।

(iv) हर मनो-सामाजिक अवस्था में 'कर्म कांडता' (Ritualization), कर्मकांड (Ritual) तथा कर्मकांडवाद (Ritualism) होते हैं। इसे एरिक्सन ने 'तीन आर' (Erikson's Three R's) का नाम दिया है। कर्मकांडता (Ritualisation) से अभिप्राय है—समाज के दूसरे व्यक्ति के साथ सांस्कृतिक रूप से स्वीकृत ढंग से अन्तर्क्रिया करना। ऐसे व्यवहार थोड़े-थोड़े समय के बाद अर्थपूर्ण संदर्भ में दोहराये भी जाते हैं।

कर्मकांड (Ritual) से तात्पर्य है—वस्यक समुदाय द्वारा आवर्ती स्वरूप के महत्त्वपूर्ण घटनाओं को दर्शाने के लिए किये गये कार्यों से होता है।

कर्मकांडवाद (Ritualism) से तात्पर्य कर्मकांडता (Ritualization) में उत्पन्न विकृति (Distortion) से होता है। इससे व्यक्ति का ध्यान स्वयं अपने ऊपर ही केन्द्रित होता है।

(v) प्रत्येक मनो-सामाजिक अवस्था का निर्माण उससे पहले कि अवस्था में हुए विकासों से सम्बन्धित होता है।

Scanned with OKEN Scanner

एरिक्सन द्वारा प्रतिपादित मनोसामाजिक अवस्थाएँ
(Erikson's Psycho-social Stages)

1. विश्वास बनाम अविश्वास (Trust Versus Mistrust)–यह अवस्था जन्म से लेकर 1 वर्ष तक की आयु की होती है। यह फ्रॉयड द्वारा बताई मनोलैंगिक विकास (Psycho-sexual Development) की 'मुखावास्था' (Oreal Stage) से मिलती जुलती है। इस अवस्था में भिन्न गुणों का विकास होता है।

(i) दूसरों तथा अपनों में विश्वास या आस्था (Trust) की भावना का विकास। इस भावना का विकास बच्चों में माता-पिता द्वारा उत्तम देख-रेख के परिणाम स्वरूप होता है।

(ii) दूसरों के प्रति आस्था के साथ-साथ बच्चे में यह भी विश्वास पैदा हो जाता है कि उनके शरीर के अंग जैविक आवश्यकताओं (Biological Needs) को पूरा करने में सक्षम हैं।

(iii) बच्चों में स्वस्थ व्यक्तित्त्व के निर्माण की नींव पड़ती है।

(iv) कई बार कई कारणों से माताएं उत्तम देख-रेख नहीं कर पातीं, जिससे बच्चे में अविश्वास (Mistrust) पैदा होता है।

(v) अविश्वास के कारण बच्चा दूसरों से डर (Fear), संदेह (Suspecion) एवं आशंकाएँ (Apprehensions) आदि विकसित कर लेता है, जिससे अस्वस्थ व्यक्तित्त्व का जन्म होता है।

(vi) एरिक्सन के मतानुसार, शिशुओं के व्यक्तित्त्व के विकास में विश्वास और अविश्वास में एक अनुकूल अनुपात (Favourable ratio) का होना अनिवार्य है।

(vii) अनुकूल अनुपात होना इसलिए आवश्यक होता है, क्योंकि वातावरण के साथ प्रभावकारी समायोजन के लिए किसी चीज या व्यक्ति पर विश्वास न करना सीखना उतना ही आवश्यक है जितना किसी चीज पर व्यक्ति पर विश्वास करना सीखना।

(viii) जब बच्चा विश्वास-बनाम-अविश्वास (Trust vs. Mistrust) के संघर्ष या द्वंद्व (Conflict) का समाधान सफलतापूर्वक कर लेता है तो उसमें एक विशेष 'मनोसामाजिक शक्ति' (Psychosocial Strength) की उत्पत्ति होती है। जिसे 'आशा' (Hope) का नाम दिया गया है।

(ix) 'आशा' (Hope) से अभिप्राय है–एक ऐसी मनोसामाजिक शक्ति जिनकी सहायता से बच्चा अपने सांस्कृतिक वातावरण तथा अपने अस्तित्त्व को अर्थपूर्ण ढंग से समझने लगता है।

2. स्वतंत्रता बनाम लज्जाशीलता और संदेह (Autonomy Versus Shame and Doubt)–स्वतन्त्रता (Autonomy) बनाम लज्जाशीलता (Shame) की यह अवस्था दो वर्ष से तीन वर्ष तक की होती है। स्वतन्त्रता (Autonomy) से अभिप्राय है (Self Reliance)। इसमें विचारों, स्वयं क्रिया करने आदि की स्वतन्त्रता शामिल है। लज्जाशीलता और सन्देह से अभिप्राय है–वे क्या कहते हैं, स्व-अभिव्यक्ति में रुकावट (Inhibition in Self Expression) तथा स्वयं के विचार विकसित करना इत्यादि।

एरिक्सन की यह अवस्था फ्रायड की मनोलैंगिक विकास की गुदा अवस्था (Anal Stage) से मिलती जुलती है। इस अवस्था में निम्न गुणों का विकास हो जाता है–

(i) जब बच्चा आस्था या विश्वास का भाव विकसित कर लेता है तो उसमें स्वतन्त्रता (Autonomy) एवं आत्म-नियंत्रण (Self-Control) जैसे शीलगुण (Traits) इस दूसरी अवस्था में पैदा हो जाते हैं। इससे पहले की अवस्था में बच्चे दूसरों पर निर्भर करते हैं।

(ii) इस अवस्था में बच्चों में न्यूरोपेशीय परिपक्वता (Neuro-muscular Maturity), सामाजिक विभेद (Social Discrimination) तथा शाब्दिक अभिव्यक्ति (Verbalization) की क्षमता विकसित हो जाती है। यह क्षमता वातावरण का स्वतंत्रता से अन्वेषण (Explore) करना शुरू कर देती है।

(iii) बच्चा अपने नये गति कौशलों (Locomotor Skills) से बहुत प्रोत्साहित रहता है।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) स्वतन्त्रता का यह अर्थ भी नहीं कि बच्चे को प्रत्येक कार्य के लिए अप्रतिबंधित स्वतन्त्रता (Unrestricted Freedom) दी जाये। यहाँ स्वतन्त्रता से अभिप्राय है—माता-पिता अपना नियंत्रण कायम रखते हुए बच्चे को स्वतंत्र रूप से कार्यों को करने दें।

(v) बच्चे को अत्यन्त छोटा मानकर जब माता-पिता उसे कोई कार्य नहीं करने देते या माता-पिता स्वयं वह कार्य कर देते हैं या माता-पिता बच्चों से कुछ ऐसी उम्मीदें (Expectations) रखते हैं जो बच्चे की क्षमता (Ability) से बाहर हैं, तब इन सभी परिस्थितियों में बच्चों में लज्जाशीलता (Shame) की भावना पैदा होती है।

(vi) उपरोक्त लज्जाशीलता के परिणामस्वरूप बच्चों में अन्य मनोसामाजिक मनोवृत्तियाँ (Psychosocial Attitudes) विकसित होती हैं जैसे—स्वयं पर शक (Self-Doubt), शक्तिहीनता (Powerlessness) आदि।

(vii) लज्जाशीलता की तुलना में स्वतन्त्रता का अनुकूल अनुपात कायम हो जाने पर बच्चे में एक नयी मनोसामाजिक शक्ति की उत्पत्ति होती है, जिसे 'इच्छा शक्ति' (Will Power) कहा जाता है। यह एक ऐसी शक्ति होती है, जो बच्चों को स्वतन्त्र होकर अपनी रुचि या पसंद के अनुसार कार्य करने में सक्षम बनाती है।

3. पहल शक्ति बनाम दोषिता (Initiative Versus Guilt)–यह अवस्था लगभग 4 से 6 वर्ष तक होती हैं यह अवस्था फ्रॉयड के मनोलैंगिक विकास (Psychosexual development) की लिंग प्रधानावस्था (Phallic Stage) से मिलती जुलती है। इस अवस्था में निम्नलिखित गुणों का विकास होता है—

(i) बच्चों को दूसरों के कार्यों में आनन्द आता है।

(ii) बच्चों की सामाजिक दुनिया (Social World) उन्हें सक्रियता एवं पहल-शक्ति (Initiative) दिखलाने की चुनौती प्रदान करती है।

(iii) बच्चे घर के बाहर के वातावरण के बच्चों के साथ सामाजिक खेल-कूद में भाग लेना पंसद करने लगते हैं, क्योंकि बच्चों की भाषा एवं पेशीय कौशलों का विकास इस अवस्था तक हो चुका होता है।

(iv) बच्चे इस अवस्था में पहली बार महसूस करते हैं कि उनकी गिनती भी एक आदमी के रूप में की जाती है तथा उनकी जिन्दगी का भी एक उद्देश्य है।

(v) जब माता-पिता द्वारा बच्चों को इस अवस्था में घर से बाहर के सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाने से रोका जाता है या जब माता-पिता द्वारा बच्चों के इस तरह की इच्छा पर शाब्दिक या शारीरिक दंड दिया जाता है, तब बच्चों में दोषिता (Guilt) का भाव उत्पन्न होता है।

(vi) ऐसे बच्चे कभी भी स्वयं को खुलकर अभिव्यक्ति (Express) नहीं करते।

(vii) बच्चों में किसी वास्तविक लक्ष्य (Tangible Goal) को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहने की क्षमता समाप्त हो जाती है

(viii) एरिक्सन (Erikson) के अनुसार जब बच्चों में दोषिता (Guilt) का भाव सतत् बना रहता है तो उनमें निष्क्रियता, लैंगिक नपुंसकता एवं अन्य मनोविकारी क्रिया करने की प्रवृत्तियाँ तीव्र हो जाती हैं।

(ix) जब बच्चा पहल-शक्ति बनाम दोषिता (Initiative Vs. Guilt) से पैदा संघर्ष (Conflict) का समाधान सफलतापूर्वक कर लेता है तब जिस मनोसामाजिक शक्ति (Psychosocial Strength) की उत्पत्ति होती है उसे उद्देश्य (Purpose) कहा जाता है। 'उद्देश्य' (Purpose) से तात्पर्य एक ऐसी मनोसामाजिक शक्ति से है, जो बच्चों में कोई लक्ष्य निश्चित करने एवं उसे विश्वास के साथ बिना किसी दंड के भय के ही प्राप्त करने की क्षमता विकसित करने से होता है।

Scanned with OKEN Scanner

4. परिश्रम बनाम हीनता (Industry Versus Inferiority)–यह चाथी अवस्था 6 वर्ष की आयु से शुरू होकर लगभग 11-12 वर्ष तक की होती है तथा यह फ्रॉयड के मनोलैंगिक विकास (Psychosexual Development) के अव्यक्तावस्था (Latency Period) से मिलती-जुलती है। इस अवस्था में निम्नलिखित मुख्य गुण विकसित होते हैं–

(i) इस अवस्था में पहली बार बच्चे औपचारिक शिक्षा (Formal Education) के माध्यम से संस्कृति के प्रारंभिक कौशलों को सीखता है।

(ii) इस अवस्था में बच्चों का सम्बन्ध निगमनात्मक तर्कणा (Deductive Reasoning), आत्म-अनुशासन तथा अनुमोदित नियमों के अनुरूप अपना सम्बन्ध साथियों के साथ बनाये रखने की क्षमता से अधिक होता है।

(iii) जब बच्चे स्कूलों में अपनी संस्कृति के प्रारम्भिक कौशलों को सफलतापूर्वक सीखते हैं तो उनमें परिश्रम (Industry) का भाव उत्पन्न होता है।

(iv) परिश्रम के ऐसे भावों को स्कूलों में अध्यापकों तथा आस-पड़ोस के सदस्यों से अधिक प्रोत्साहन मिलता है।

(v) जब बच्चों को अपने कौशल पर शक हो जाता है या इन कौशल को अर्जित करने में असफल हो जाता है तब इससे बच्चों में 'हीनता' या 'असामर्थ्यता (Inferiority or Incompetence) की भावना विकसित होती है।

(vi) यह भावना बच्चों में तब भी विकसित होती हे। जब वह यह देखता है कि उसकी निपुणता का माप उसकी योग्यता एवं कौशल न होकर उसकी प्रजाति, धर्म, यौन आदि हैं।

(vii) हीनता के भाव के अन्तर्गत बच्चे को अपनी क्षमता पर विश्वास समाप्त हो जाता है।

(viii) जब बच्चा परिश्रम बनाम हीनता (Industry Vs Inferiority) के संघर्ष (Conflict) का समाधान सही तरीके से कर लेता है तब उसमें 'सामर्थ्यता' (Competency) कहा जाता है। 'सामर्थ्यता' (Competency) से अभिप्राय है–किसी कार्य को पूरा करने में शारीरिक एवं बौद्धिक क्षमताओं का उचित प्रयोग करना।

5. अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्राति (Ego Indentity Versus Role Confusion)–मनोसामाजिक विकास की यह पाँचवी अवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। यह अवस्था 12 वर्ष से लेकर 19 या 20 वर्ष की आयु तक होती है। इस अवस्था में निम्नलिखित गुणों का विकास होता है–

(i) इस अवस्था में किशोरों के बीच अहं पहचान का भाव धनात्मक मनोसामाजिक पहलू (Positive Psychosocial Aspect) तथा भूमिका संभ्रांति (Role Confusion) या जिसे पहचान संभ्रांति (Identity Crisis) भी कहा जाता है, एक ऋणात्मक मनोसामाजिक पहलू (Negative Psychosocial Aspect) के रूप में विकसित होता है।

(ii) इस अवस्था में किशोर अपनी आत्म-पहचान बनाये रखने का प्रयास करता है।

(iii) यहाँ 'पहचान' (Identify) से अभिप्राय है–कि व्यक्ति अपने संसार के सम्बन्ध में स्वयं को किस प्रकार देखते हैं। यह जीवन के संदर्भ में स्वयं का बोध (Sense of Self) या वैयक्तिता (Individuality) है।

(iv) भूमिका संभ्रांति (Role Confusion) ऋणात्मक परिक्षप्रेक्ष्य (Negative Perspective) में–पहचान की अनुपस्थिति या अभाव है अर्थात् व्यक्ति यह स्पष्ट से नहीं देख पाता कि वे कौन हैं और वे अपने पर्यावरण के साथ सकारात्मक रूप से किस प्रकार जुड़ सकते हैं।

(v) यह अवस्था किशोरावस्था या प्यूबर्टी (Puberty) के समान है। इसमें लैगिंक शक्ति (Sexul Urge) पुनः जाग्रत हो जाती है।

(vi) भूमिका संभ्राति की पहचान संक्रान्ति (Role Confusion or Indentity Crisis) उत्पन्न होने पर किशोर ठीक ढंग से अपनी जीविका (Career) का मार्गदर्शन नहीं कर पाते। वे अपनी शिक्षा आदि को जारी रखने में असमर्थ होने लगते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(vii) इस अवस्था में, किशोरों में उद्देश्यहीनता (Aimlessness), व्यक्तिगत विघटन (Personal Disorganisation) तथा व्यर्थता (Futility) की भावना प्रधान होती है।

(viii) ऐसे किशोरों में कभी-कभी ऋणात्मक पहचान (Negative Identity) विकसित हो जाती है अर्थात् एक ऐसी पहचान जो उनके माता-पिता (Parents) तथा मित्र मंडली द्वारा बताये गये पहचान के विपरीत होता है।

(ix) ऐरिक्सन के अनुसार, इस अवस्था में कुछ किशोर ऐसे होते हैं जो अपनी पहचान संक्रान्ति (Indentity Crisis) का समाधान नहीं करना चाहते बल्कि वे इसे कुछ समय तक बनाये रखना चाहते हैं। इसे मनोसामाजिक विलम्बन (Psychosocial moratorium) कहा गया है।

(x) जब किशोर अंह पहचान (Ego identity) बनाम भूमिका संभ्रान्ति से उत्पन्न समस्या का सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तब जो उसमें विशेष मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है उसे ऐरिक्सन ने 'कर्तव्यनिष्ठता' (Fidelity) कहा है। कर्तव्यनिष्ठता (Fidelity) से तात्पर्य है–किशोरों में समाज की विचारधाराओं, शिष्टाचार (Mores) एवं मानकों (Norms) के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता का होना।

(xi) मारकिया (Marcia, 1994) के अनुसार व्यक्ति पहचान विकास या निर्माण की प्रक्रिया में एक दूसरे से भिन्न होते हैं तथा इस प्रकार की विभिन्नता चिन्तन-प्रक्रियाओं एवं अपने आत्मन (Self) के प्रति विशिष्ट भाव में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित (Reflect) होता है।

6. घनिष्ट बनाम विलगन (Intimacy versus Isolation)–यह छटी अवस्था 20 वर्ष से लेकर 30 वर्ष की आयु तक होती है। इस अवस्था में निम्न गुण एवं व्यवहार विकसित होते हैं–

(i) इस अवस्था में व्यक्ति शादी ब्याह कर प्रारम्भिक पारिवारिक जिन्दगी (Early Family Life) में प्रवेश करता है।

(ii) युवक किसी न किसी व्यवसाय में अपने को लगाकर अपना स्वतन्त्र जीविकोपार्जन शुरू कर देता है।

(iii) इस अवस्था में व्यक्ति सही अर्थों में दूसरों के साथ सामाजिक एवं लैगिंक (Social and Sexual) घनिष्ठता (Intimacy) स्थापित करने के लिए तत्पर रहता है।

(iv) इस अवस्था में व्यक्ति अपने भाई-बहनों, माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध विकसित करता है तथा अपने पति-पत्नी के साथ घनिष्ठ लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

(v) व्यक्ति स्वयं के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध विकसित कर एक स्वस्थ व्यक्तित्त्व का विकास करता है।

(vi) इस अवस्था का खतरा यह रहता है कि व्यक्ति दूसरों के साथ कुछ कारणों से संतोषजनक एवं घनिष्ठ वैयक्तिक सम्बन्ध विकसित नहीं कर पाता तथा अपने आप में ही खोया रहता है। इसे 'विलगन' (Isolation) की संज्ञा दी गई है।

(vii) ऐसे व्यक्ति जो अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित भी करते हैं, अन्दर से खोखले होते हैं। ऐसे लोगों में अपने कार्य के प्रति नीरसता एवं व्यर्थता की मनोवृत्ति होती है।

(viii) विलगान (Isolation) की जब मात्रा अधिक हो जाती है तो व्यक्ति में समाजविरोधी व्यवहार (Antisocial behaviour) या मनोविकारी व्यवहार (Psychopathic behaviour) की प्रबलता बढ़ जाती है।

(ix) जब व्यक्ति घनिष्ठता बनाम विलगन से उत्पन्न संघर्ष का समाधान सफलतापूर्वक कर लेता है तो उसमें जो विशेष मनो-सामाजिक शक्ति (Psychosocial Strength) पैदा होती है, उसे 'स्नेह' (Love) की संज्ञा दी गई है। स्नेह (Love) से तात्पर्य है–किसी सम्बन्ध को कायम रखने में पारस्परिक समर्पण (Mutual Devotion) की क्षमता का होना। ऐसे स्नेह की अभिव्यक्ति तब होती है जब व्यक्ति दूसरों के प्रति आदर, उत्तरदायित्व आदि की मनोवृत्ति का प्रदर्शन करता है।

Scanned with OKEN Scanner

7. जननात्मकता बनाम स्थिरता (Generativity Versus Stagnation)–यह अवस्था 30 वर्ष से 65 वर्ष की आयु तक मानी गई है। इस अवस्था में निम्नलिखित गुणों का विकास होता है–

(i) इस अवस्था में व्यक्ति में जननात्मकता (Generativity) का भाव उत्पन्न होता है। जननात्मकता (Generativity) से अभिप्राय है–व्यक्ति द्वारा अपने अगली पीढ़ी (Generation) के लोगों के कल्याण तथा साथ ही साथ उस समाज के लिए जिसमें वे लोग रहेंगे, को उन्नत बनाने की चिन्ता से होता है। संक्षेप में, जननात्मकता का अर्थ बूढ़े व्यक्तियों में उन व्यक्तियों के कल्याण के बारे में प्रदर्शित सोच-समझ एवं चिन्ता जो उनकी जगह लेने वाले होते हैं।

(ii) जननात्मकता (Generativity) में उत्पादकता (Productivity) तथा सर्जनात्मकता (Creativity) से भी होता है। जब व्यक्ति में जननात्मकता की चिन्ता उत्पन्न नहीं होती तो उसमें स्थिरता (Stagnation) पैदा होने का खतरा बढ़ जाता है। ऐसे व्यक्ति के लिए अपनी स्वयं की वैयक्तिक आवश्यकताएँ एवं सुख-सुविधा (Comfort) ही सर्वोपरि होता है। ऐसे व्यक्ति को किसी दूसरे की चिन्ता नहीं होती।

(iii) जो व्यक्ति ऐसी संक्रान्ति (Crisis) का सफलतापूर्वक समाधान कर लेते हैं, उनमें जो विशेष ग्नोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है उसे 'देखभाल' (Care) का नाम दिया गया है।

(iv) देखभाल का गुण उदासीनता (Apathy) के गुण का एक विपरीत गुण है। इनमें दूसरों के कल्याण की चिन्ता अधिक होती है।

8. अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा (Ego-integrity versus Despair)-एरिक्सन के मनोसामाजिक विकास की यह अन्तिम अवस्था है, जो कि परिपक्वता की अवस्था होती है। जो लगभग 65 वर्ष तथा उससे अधिक की आयु अर्थात् मृत्यु तक की अवधि को अपने में शामिल करती है। हर संस्कृति में इसको 'बुढ़ापा' की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में निम्नलिखित गुण या व्यवहार विकसित होते हैं–

(i) इन अवस्थाओं में गिरते हुए शारीरिक स्वास्थ्य एवं शक्ति के साथ उचित समायोजन, अवकाश प्राप्ति से आय में उत्पन्न कमी, अपने किसी प्रिय की मृत्यु तथा अपने आयु-समूह के साथ सम्बन्धों की आवश्यकता मुख्य होती है।

(ii) इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हटकर अपने बीते दिनों पर तथा उनमें प्राप्त सफलताओं और असफलताओं की ओर अधिक होता है।

(iii) एरिक्सन के अनुसार इस अवस्था में किसी स्पष्ट नए मनोसामाजिक संक्रान्ति (Psychosocial Crisis) की उत्पत्ति नहीं होती।

(iv) व्यक्ति अपने सभी पिछले मनोसामाजिक अवस्थाओं की घटनाओं का समन्वय एवं मूल्यांकन करता है। इससे उनमें अहं सम्पूर्णता (Ego Integrity) का भाव उत्पन्न होता है।

(v) इस अवस्था में व्यक्ति को मृत्यु से डर नहीं लगता, क्योंकि ऐसे व्यक्ति अपनी संतान और सृजनात्मक उपलब्धियों के माध्यम से अपने अस्तित्व को जारी समझते हैं।

(vi) एरिक्सन के अनुसार यह वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति में परिपक्वता अपने वास्तविक अर्थ में पैदा होती है तथा बुद्धिमत्ता का व्यावहारिक ज्ञान (Practical Sense of Wisdom) व्यक्ति में उत्पन्न होता है।

(vii) इस अवस्था की प्रमुख मनोसामाजिक शक्ति (Psychosocial Strength) परिपक्वता है

(viii) इस अवस्था में कोई व्यक्ति अपने बीते मनो-सामाजिक अवस्थाओं में उत्पन्न असफलताओं से चिन्तित भी रहता है। इससे उनमें निराशा (Despair) उत्पन्न होती है और वे अपने को निसहाय और निर्बल समझने लगते हैं। यदि ऐसी भावना तीव्र हो जाती है तो उनमें मानसिक विषाद (Mental Depression) भी उत्पन्न हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

एरिक्सन के सिद्धांत के गुण
(Merits of Erikson's Theory)

(i) इस सिद्धांत में व्यक्तित्त्व के विकास एवं संगठन की व्याख्या करने के लिए समाज एवं स्वयं व्यक्ति की भूमिकाओं पर समान रूप से बल डाला गया है।

(ii) एरिक्सन ने इस सिद्धांत में किशोरावस्था को बहुत महत्त्वपूर्ण माना है।

(iii) एरिक्सन ने अपने इस सिद्धांत में आशावादी दृष्टिकोण अपनाया है। किसी एक अवस्था में असफल होने पर दूसरी अवस्था में भी असफलता ही होगी, यह आवश्यक नहीं है।

(iv) एरिक्सन के इस सिद्धांत में जन्म से लेकर मृत्यु तक की मनो-सामाजिक घटनाओं को यक्तित्त्व के विकास एवं समन्वय (Integration) की व्याख्या में शामिल किया गया है, जो अपने आप में एक विशिष्टता है।

एरिक्सन के सिद्धांत के अवगुण
(Demerits of Erikson's Theory)

(i) एरिक्सन ने आवश्यकता से अधिक आशावादी दृष्टिकोण अपनाया है—ऐसा आलोचकों का मत है। इससे उनके सिद्धांत में अव्यावहारिक्ता झलकती है। लेकिन एरिक्सन ने इस आलोचना का खंडन किया है तथा उन्होंने अपने सिद्धांत में आशावादी दृष्टिकोण के साथ-साथ वैसे दृष्टिकोण को भी अपनाया है, जिससे व्यक्ति में चिन्ता आदि उत्पन्न होते हैं।

(ii) कुछ आलोचकों के अनुसार, एरिक्सन ने अपने सिद्धांत में फ्रॉयड के व्यक्तित्त्व सिद्धांत का सरलीकरण ही किया है और कुछ नहीं किया।

(iii) कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि एरिक्सन के सिद्धांत में जितने तथ्यों, उपकल्पनाओं की व्याख्या की गई है उनका कोई प्रयोगात्मक समर्थन भी नहीं है। उनके सारे तथ्य तथा सम्प्रत्यय (Concepts) उनके व्यक्तिगत प्रेक्षणों (Personal Observations) पर आधारित हैं, जो बहुत आत्मनिष्ठ (Subjective) हैं।

(iv) कुछ आलोचकों का एरिक्सन का यह कथन मान्य नहीं कि बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार समायोजन करके ही एक उत्तम एवं स्वस्थ व्यक्तित्त्व का निर्माण किया जा सकता है। जैसे आलोचकों का मानना है कि कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो समाज की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना ही स्वयं समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लेकर आये हैं और वे एक स्वस्थ व्यक्तित्त्व का निर्माण करने में सफल हुए हैं।

(v) शुल्ज (Schultz, 1990) के अनुसार अन्तिम मनोसामाजिक अवस्था की व्यवस्था अधूरी और असंतोषजनक (Unsatisfactroy) है। कुछ आलोचकों का मानना है कि अन्तिम अवस्था में व्यक्ति में विकास उतना संतोषजनक नहीं होता जितना कि एरिक्सन के अंह सम्पूर्ण (Ego-integrity) के सम्प्रत्यय से संकेत मिलता है।

◆◆◆

1. 5 वृद्धि तथा विकास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Growth and development)

1. विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले आनुवंशिक तथा वातावरण से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण कारक कौन-कौन से हैं? उल्लेख कीजिए।

अथवा

बाल-विकास को प्रभावित करने वाले वंशानुक्रम तथा वातावरण से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण कारकों की विवेचना कीजिये।

Scanned with OKEN Scanner

अथवा

वंशानुक्रमिक या आनुवंशिक तथा वातावरण से सम्बन्धित विभिन्न कारक विकास की प्रक्रिया को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं? व्याख्या कीजिये।

अथवा

विकास की प्रक्रिया को कौन-कौन से वंशानुक्रम तथा वातावरण से सम्बन्धित कारक प्रभावित करते हैं? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

उत्तर–जैविकी दृष्टिकोण से प्रत्येक प्राणी का जीवन गर्भधारण के क्षण से प्रारम्भ होता है। मानव प्राणी का अस्तित्व स्त्री-पुरुष की दो जनन कोशिकाओं *(Germ-cells)* डिम्ब *(Ovum)* तथा शुक्राणु *(Sperm)* के संयोजन एवं निषेचन *(Fertilization)* से प्रारम्भ होता है। निषेचित कोशिका' *(Fertilized cell)* थोड़े समय बाद दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाती है। इनमें से प्रत्येक कोशिका पुनः इसी प्रकार विभाजित हो जाती है। यह प्रक्रम गुणात्मक चलता रहता है तथा पूर्ण गर्भावस्था *(Gestation)* में वह निषेचित कोशिका *(Zygote)*, जो नंगी आंखों से दिखाई नहीं देती है, एक मानव आकृति के रूप में विकसित हो जाती है। गर्भधारण के लगभग 280 दिन (265 दिनों से 290 दिन औसत अधिक होती है।) बाद यह गर्भस्थ शिशु बाह्य संसार में पदार्पण करता है।

गर्भधारण से ही बच्चे की वृद्धि एवं विकास प्रारम्भ हो जाता है। सामान्यतः बच्चे का विकास माता-पिता से प्राप्त जनन-कोशिकाओं की अन्तर्निहित विशेषताओं पर निर्भर माना जाता है अर्थात् शिशु के वंशानुक्रम को महत्त्व दिया जाता है। प्राचीन काल में इसी विचार को कहावत में इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता था– *'As the twig is bent, so the tree will grow'* अर्थात् माता-पिता के अनुसार ही उनकी संतान होती है। परन्तु आजकल, विशेषतः व्यवहारवादियों ने वातावरण को अधिक महत्त्व दिया है। विकास प्रक्रिया अधिकतर प्राकृतिक प्रक्रिया होती है, जिस पर किसी एक का नियन्त्रण सम्भव नहीं है। व्यक्ति का विकास, जैसा हम देख चुके हैं, कुछ अवस्थाओं में होता है, जैसे गर्भावस्था, शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था आदि जिनमें विविध प्रकार के विकासात्मक प्रक्रम सुस्पष्ट रहते हैं। आज यह अतिशयोक्ति नहीं है कि बाल्यावस्था *(Childhood)* वास्तव में जीवन की आधार अवधि *(Foundation period of life)* होती है। बच्चे की मूल अभिवृत्तियों एवं व्यवहार प्रतिमानों बच्चे की अनुभूति एवं क्रिया करने के ढंगों का विकास प्रारम्भिक पांच या छः वर्षों तक हो जाता है। ये अभिवृत्तियाँ एवं व्यवहार प्रतिमान ही यह निर्धारित करते हैं कि बच्चा वयस्क के रूप में किस प्रकार का व्यक्ति *(Person)* बनेगा। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक विकास की दृष्टि से असमान होता है। इन असमानताओं का कारण कुछ मनोवैज्ञानिक वंशानुक्रम *(Heredity)* को मानते हैं तथा कुछ के अनुसार वातावरण अधिक महत्त्वपूर्ण कारक है। यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो बच्चे के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर दोनों सामूहिक रूप से प्रभाव डालते हैं। अकेला वंशानुक्रम तथा वातावरण सम्पूर्ण विकास के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। अतः हम विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को मुख्यतः निम्नलिखित श्रेणियों में रख सकते हैं–

(1) विकास के आनुवंशिक या वंशानुक्रमित कारक *(Genetic Factors in Development)*

(2) वातावरण सम्बन्धी कारक *(Environmental Factors)*

इनके अतिरिक्त बच्चे के शारीरिक विकास, व्यवहार तथा अभिवृत्तियों के निर्माण में दो पृथक् परन्तु परस्पर सम्बन्धी प्रक्रियाएँ (अ) परिपक्वता *(Maturation)* तथा (ब) सीखना *(Learning)* भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

(1) विकास में आनुवंशिक कारक
(Genetic Factors in Development)

प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक बनावट, रंग-रूप आदि गुणों से अद्वितीय होता है। यह वंशानुक्रम के नियमों पर निर्भर रहता है, जो गर्भधारण से क्रियाशील हो जाते हैं। इसी समय से वैयक्तिक भिन्नता प्रारम्भ हो जाती

Scanned with OKEN Scanner

है। आनुवंशिक कारकों में बच्चे अपने पूर्वजों से वंशानुक्रम द्वारा क्या प्राप्त करते हैं तथा ये कारक विकास को कैसे प्रभावित करते हैं आदि का वर्णन किया जाता है। वंशानुक्रम एक अचर तत्व है, जो गर्भधारण के समय स्थापित होता है। व्यक्ति के आनुवंशिक गठन में निहित आंतरिक शक्तियाँ उसका वंशानुक्रम बनाती हैं। व्यक्ति को उसके माता-पिता के द्वारा उसके पूर्वजों का जो अन्तर्निहित वंश (प्रभव) प्राप्त होता है, वही उसका वंशानुक्रम *(Heredity)* है। वंशानुक्रम में गर्भाधान के समय से उपस्थित सभी आन्तरिक कारक आ जाते हैं। वंशानुगत विशेषताएँ अपेक्षाकृत अपरिवर्तनशील होती हैं तथा व्यक्ति के विकास एवं मूल स्वभाव को निर्धारित करती हैं। इन्हीं तत्वों द्वारा व्यक्ति की संरचना, कद, रंग, रूप और मानसिक योग्यताओं, बुद्धि, स्मृति व चिन्तन तथा अन्य योग्यताओं का निर्माण होता है। वंशानुक्रम का प्रभाव गर्भाधान के क्षण से जीवन-पर्यन्त बना रहता है। माता के रजकण तथा पिता के वीर्य कणों का अति सूक्ष्म भाग पित्र्यैक *(Genes)*, गर्भाधान के समय भिन्न-भिन्न प्रकार से संयुक्त होते हैं। अतः एक ही माता-पिता के बच्चों में भी विभिन्नता दिखाई देती है।

प्रत्येक कोशिका की नाभि में डोरों जैसे कण पाए जाते हैं, जिनको गुण सूत्र *(Chromosomes)* कहा जाता है जिनमें असंख्य पित्र्यैक पाए जाते हैं। ये पित्र्यैक ही वंशानुगत गुणों के लिए उत्तरदायी होते हैं। गर्भधारण के समय स्त्री तथा पुरुष के सहवास में दो जनन कोशिकाएँ मिलती हैं। एक स्त्री की रजकण कोशिका जो 'डिम्ब' *(Ovum)* कहलाती है तथा दूसरी पुरुष की वीर्यकण कोशिका जो 'शुक्राणु' *(Sperm)* कहलाती है। इनके मिलने से एक नयी कोशिका 'निषेचित' कोशिका का निर्माण होता है, जिसे 'युग्मनज *(Zygote)* के नाम से जाना जाता है, जिसके विकास से नये शिशु का निर्माण होता है। यह लगभग 280 दिन बाद जन्म लेता है।

प्रत्येक सामान्य यौन कोशिका *(Sex cell)* में 23 जोड़े गुणसूत्र होते हैं, जो पतले डोरे जैसे *(Thread-like)* होते हैं। गुणसूत्रों में पाए जाने वाले अति सूक्ष्म कण ही पित्र्यैक कहलाते हैं। ये पित्र्यैक ही वंशानुगत शील गुणों के वाहक होते हैं। *(A chromosome is a thread like structure that has strings of tiny particles called genes. The genes are the true carrier of hereditary traits.)* पित्र्यैक की वास्तविक आनुवांशिक इकाइयाँ *(Genetic units)* होती हैं। ये भौतिक तत्वों का निर्माण करती हैं जो माता-पिता से संतान में पहुंचते हैं। माता-पिता को पित्र्यैक उनके पूर्वजों से प्राप्त होते हैं। पित्र्यैक सदैव जोड़ों *(Pairs)* में कार्य करते हैं। गुणसूत्र इस प्रकार जोड़े बनाते हैं कि पिता की ओर से एक विशिष्ट प्रकार के कार्य करने वाला पित्र्यैक माता की ओर से उसी प्रकार के कार्य करने वाले पित्र्यैक के सामने होता है। प्रत्येक यौन कोशिका में लगभग 80,000 से 1,20,000 पित्र्यैकों का अनुमान लगाया जाता है और प्रत्येक पित्र्यैक में कोई न कोई संभाव्य शारीरिक-मानसिक गुण होते हैं। कुछ पित्र्यैक शारीरिक शीलगुणों जैसे लम्बाई, बालों तथा आंखों का रंग, नाक-नक्श इत्यादि के लिए उत्तरदायी होते हैं तथा दूसरे मानसिक शीलगुणों जैसे बुद्धि, कलात्मक क्षमता और स्वभाव आदि का निर्धारण करते हैं। कुछ पित्र्यैक प्रबल *(Dominat)* होते हैं जो अपने अनुरूप गुण प्रत्येक प्रजनन में पैदा करते हैं तथा दूसरे पित्र्यैक 'अप्रबल' *(Recessive)* होते हैं, जिनके गुण सुप्त रहते हैं। इस प्रकार, एक शिशु अपने माता-पिता से पित्र्यैक का एक नया युग्म प्राप्त करता है। गर्भधारण पर प्रत्येक मानव प्राणी 23-23 गुणसूत्र प्रत्येक माता-पिता दोनों से अलग-अलग प्राप्त करता है। ये 46 गुणसूत्र बच्चे के वंशानुक्रम शील गुणों का निर्धारण करते हैं। माता और पिता बच्चे की आनुवंशिकता के लिए समान योगदान देते हैं।

गर्भाधान के समय दोनों कोशिकाएँ पूर्ण परिपक्व होती हैं। अतः पुरुष की जनन-कोशिका-शुक्राणु स्त्री जनन कोशिका-डिम्ब को निषेचित करती है। गर्भाधान की क्रिया व्यक्ति के जीवन में अति महत्त्वपूर्ण होती है। गर्भधारण होते ही बच्चे की तीन विशेषताएँ निर्धारित हो जाती हैं—*(i)* वंशानुगत स्थायी गुण-कोष *(Hereditary endowment)*, *(ii)* बच्चे का यौन *(Sex of the Body)* तथा *(iii)* बच्चों की संख्या *(Number of the Babies)*

Scanned with OKEN Scanner

(1) वंशानुगत स्थायी गुणकोष (Hereditary endowment)–शुक्राणु तथा डिम्ब के निषेचित होने पर गर्भस्थ प्राणी को अपने माता-पिता तथा पूर्वजों से वंशानुगत शीलगुण प्राप्त होते हैं। माता तथा पिता की ओर से अलग-अलग 23-23 गुणसूत्र प्राप्त होते हैं, जिनमें असंख्य पित्र्यैक होते हैं। इन पित्र्यैकों के संयोजन में दोनों में से किसी में भी पित्र्यैक कम अथवा अधिक प्रबल हो सकते हैं। गर्भस्थ शिशु में माता या पिता में जिसके पित्र्यैक वंशानुकम में अधिक प्रबल होंगे, बच्चे में उसी के शीलगुण और विशेषताएँ अधिक होंगी। यह पूर्णतः संयोग पर निर्भर करता है कि बच्चे को माता या पिता की ओर से कितने पित्र्यैक प्रबल प्रकृति के मिलेंगे। एक परिपक्व यौन कोशिका डिम्ब में विभाजन के समय केवल 23 एकल गुणसूत्र होते हैं तथा इतनी ही संख्या के गुणसूत्र यौन कोशिका शुक्राणु में पाए जाते हैं। प्रत्येक पित्र्यैक किसी न किसी शीलगुण का वाहक होता है। ये सभी मिलकर व्यक्ति का पूर्ण वंशानुगत स्थाई गुण कोष तैयार करते हैं। हरलॉक *(Hurlock 1978)* के अनुसार गर्भधारण के पश्चात्, वंशानुगत स्थायी गुणकोष में न तो कुछ जोड़ा जा सकता है और न ही घटाया जा सकता है अर्थात् *'After conception, genes (Combination) can not be changed.'* परन्तु इस अवस्था में गर्भवती माता का स्वास्थ्य, आहार तथा जन्म पूर्ण वातावरण आदि के अच्छा होने पर गर्भस्थ शिशु के शारीरिक तथा मानसिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः यह स्पष्ट है कि एक बार गर्भधारण हो जाता है तो उस गर्भस्थ शिशु की कोई भी विशेषता जैसे यौन *(Sex)* रंग-रूप आदि नहीं बदली जा सकती है।

(2) बच्चे का यौन (Sex of Baby)–गर्भवती युवती के सामने प्रश्न यह होता है कि गर्भस्थ शिशु का यौन क्या है? यह कैसे जाना जाए कि वह लड़का होगा या लड़की? जीव वैज्ञानिकों ने यह तो पता लगा लिया है कि बच्चे का यौन निर्धारण कैसे होता है, परन्तु यौन निर्धारण पर नियन्त्रण करना बहुत सीमा तक असम्भव है। बच्चे का यौन भी दूसरे शीलगुणों की तरह पूर्णतः संयोग पर निर्भर करता है। गर्भस्थ शिशु का यौन क्या होगा? यह डिम्ब तथा शुक्राणु के निषेचन के क्षण ही निर्धारित हो जाता है। यह पहले बताया जा चुका है कि माता-पिता के गुणों को संतान तक पहुंचाने का कार्य गुणसूत्र करते हैं। ये गुणसूत्र महीन धागे या रेशे जैसी भौतिक रचना हैं, जो प्रत्येक यौन कोशिका के केन्द्रक *(Nucleus)* में पाए जाते हैं। ये सदैव जोड़ों में रहते हैं तथा प्रत्येक प्राणी में इन गुणसूत्रों की एक निश्चित संख्या होती है। मानव शरीर की प्रत्येक यौन कोशिका में 23 जोड़े यानी 46 गुणसूत्र होते हैं। इन 23 युग्म गुणसूत्रों में, पुरुष तथा स्त्री के 22 जोड़े गुणसूत्र समान होते हैं तथा एक जोड़ा जो 'लिंग गुणसूत्र' *(Sex chromosome)* कहलाता है, पुरुष तथा स्त्री में पूर्णतः भिन्न होता है। यही वह गुणसूत्र है, जो निर्धारित करता है कि गर्भस्थ शिशु लड़का होगा या लड़की। स्त्री के 23 जोड़ों के दोनों गुणसूत्र समान होते हैं, जिन्हें *'XX'* कहा जाता है, परन्तु पुरुष के इस लिंग गुणसूत्र जोड़े में दो प्रकार के *'X'* तथा *''Y* गुणसूत्र होते हैं।

यौन कोशिकाओं की परिपक्व की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पुरुषों में एक परिपक्व शुक्राणु एवं स्त्रियों में एक परिपक्व डिम्ब उत्पन्न होते हैं। परिपक्व की इस प्रक्रिया में गुणसूत्रों के जोड़े टूट जाते हैं। एक परिपक्व शुक्राणु एवं डिम्ब में 23-23 एकल गुणसूत्र रह जाते हैं। स्त्री की यौन कोशिका में सभी (23) गुणसूत्र समान अर्थात् *'X-X'* ही रहते हैं। परन्तु पुरुषों की यौन कोशिका में तेईसवाँ गुणसूत्र या *'Y'* हो सकता है। गर्भाधारण प्रक्रिया के समय जब डिम्ब तथा शुक्राणु का मिलन होता है तो अगर पुरुष का 23वें जोडे में *'X'* गुणसूत्रों वाला स्त्री के डिम्ब (*X* गुणसूत्र) के साथ निषेचन करता है तो नवी कोशिका युग्मनज *(Zygote)* के अन्दर दोनों गुणसूत्र *'X'* आ जाएंगे। यह भ्रूण विकसित होकर लड़की के रूप में जन्म लेता है और यदि स्त्री के डिम्ब से पुरुष का *Y* गुणसूत्र वाला शुक्राणु मिलता है तो भ्रूण विकसित होकर लड़के के रूप में जन्म लेता है। निषेचन के समय पुरुष तथा स्त्री के गुणसूत्र युग्मित हो जाते हैं और नवीन कोशिका पुनः 23 जोड़े गुणसूत्र पा लेती है, आधे गुणसूत्र पिता से तथा आधे गुणसूत्र अपनी माता से। अब यह स्पष्ट है कि यदि कोई *X* गुणसूत्र शुक्राणु डिम्ब से मिलता हो तो लड़की तथा *Y* गुणसूत्र शुक्राणु डिम्ब से निषेचन करता है तो वह नवीन कोशिका विकसित होकर लड़के के रूप में जन्म लेती है।

Scanned with OKEN Scanner

अत्याधुनिक अनुसंधान में सफलतापूर्वक परीक्षणों द्वारा गुणसूत्र क्रियान्वयन प्रविधि *(Chromosome-manipulation technique)* की सहायता से यह सम्भव है कि माता-पिता अपनी इच्छा अनुसार उनके बच्चे के यौन का चयन कर सकते हैं। *Prof. Rihachi Hzuka and Prof. Hideo Mori (Tokyo university, Japan)* के अनुसार यौन निर्धारक - X कक्षा Y गुणसूत्रों को अपकेन्द्र बल प्रयोग *(Using Centrifugal force)* द्वारा पृथक् कर यौन चयन सम्भव है। उनका कहना है कि उन्होंने पिता के शुक्राणुओं के X-Y गुणसूत्रों को अलग-अलग किया तथा वांछित गुणसूत्रों द्वारा उनकी पत्नियों की जनन कोशिकाओं *(Ova)* का कृत्रिम गर्भाधान थी सहायता से निषेचित् कराया गया। इस प्रकार से वंशानुगत विकारों को रोकना भी सम्भव है। इसी प्रकार पेरिस विश्वविद्यालय के जीव-रसायन शास्त्री प्रोफेसर जोसेफ स्तोल्कोवस्की के अनुसार गर्भाधान से पहले तीन महीने से छः महीने पहले तक यदि स्त्री द्वारा ऐसा भोजन लिया जए जिसमें सोडियम तथा पोटैशियम की अधिकता हो या ऐसा भोजन खाया जाए जिसमें कैल्शियम तथा मैग्नीशियम की मात्रा कम हो तो लड़का पैदा होता है। डॉ. माधवेन्द्र नाथपाल ने आयुर्वेदिक ढंग से बच्चे के यौन के चयन के बारे में कोयम्बटूर में स्थित *'International Institute of Ayurveda'* द्वारा प्रकाशित आयुर्वेद की एक शोध पत्रिका *'Ancient Science of Life'* में वर्णन किया है। उनके अनुसार *'A woman can conceive a son by capulating only on even nights during. The first 12 days commencing at the on set of her monthly periods and have a girl by having sex on oddnights.'* तथा इसी रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि गर्भवती माता 8 सप्ताह के प्रसव के पश्चात् कुछ विशिष्ट चिह्नों द्वारा यह बता सकती है कि गर्भस्थ शिशु लड़का है या लड़की। जैसे दाहिने अंगों में वृद्धि, दायी आंख बड़ी होना, दायी जांघ भारी होना तथा दाएँ स्तन में दूध पहले उत्पन्न होना और गर्भाशय में गोलाकार वस्तु की संवेदना होती है तो लड़के का चिह्न है। यदि इनके विपरीत अंगों की ये विशेषताएँ तथा गर्भाशय में लम्बाकार की मांसपेशी में समान अनुभूति होती है तो लड़की पैदा होने के लक्षण हैं।

(3) बच्चों की संख्या (Number of Babies)–बच्चों की संख्या भी गर्भधारण के समय ही निर्धारित हो जाती है। सामान्यतः, युवतियाँ एक समय में एक ही बच्चे को जन्म देती हैं, जो 'अकेला' अथवा *(Singletion)* कहलाता है। कभी-कभी ये दो या दो से अधिक को भी जन्म देती है, जिनके मध्य अवधि कुछ ही घण्टे होती है। ये बहुजन्म अथवा *Multiple birth* कहलाता है। बहुजन्म युग्म *(Triplets three babies)* तथा चतुष्क *(Quadruplets four babies)* यह पचक *(Quintuplets five babies)* के रूप में भी हो सकता है। बहुजन्म आजकल पहले की अपेक्षा अधिक होता है तथा इसमें मृत्यु दर सामान्य जन्म की अपेक्षा अधिक होती है। बहुजन्म मुख्यतः दो प्रकार का होता है–(अ) समरूप *(Identical)* तथा (ब) असमरूप *(Fraternal)*। युग्म जन्म में समरूपी जुड़वा बच्चों का जन्म स्त्री के डिम्ब का पुरुष शुक्राणु के निषेचन से उत्पन्न *Zygote* के टूटने से होता है। फलस्वरूप दो अलग-थलग भ्रूण विकसित होने पर दो समान रूप-गुणों वाले बच्चे पैदा होते हैं। अधिकतर ये दोनों ही बच्चादानी *(Foetal sec)* में पलते हैं। दोनों का एक ही यौन, दोनों लड़के या लड़की होती हैं। कभी-कभी एक ही मासिक रजस्राव चक्र में माता की ओर से दो परिपक्व कोशिकाएँ डिम्ब *(Ova)* आती हैं तथा दो भिन्न शुक्राणुओं द्वारा निषेचित होती हैं तथा अलग-अलग भ्रूण के रूप में विकसित होकर दो बच्चे जन्म लेते हैं, ये असमरूप जुड़वा बच्चे *(Fraternal Twing)* कहलाते हैं, इन जुड़वाँ बच्चों के शारीरिक तथा मानसिक गुणों, रूप-रंग आदि में अधिक समानता नहीं होती है। विभिन्न योग्यताएँ समरूप जुड़वा *(Identical Twins)* में अधिक समान होती है। क्योंकि दोनों की आनुवंशिक बनावट एक होती है। जुड़वाँ बच्चों में भाषा योग्यता एकल *(Singleton)* बच्चे की अपेक्षा दुर्बल होती है। सामाजिक व्यवहार में जुड़वाँ बच्चे अधिकतर साथ रहते हैं। उनकी रुचियाँ समान होती हैं। दूसरे सहोदरों की अपेक्षा अधिक आत्म-सन्तुष्ट होते हैं, एक-दूसरे का अनुकरण करते हैं तथा दूसरों के प्रति समान अनुभूति दर्शाते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

वंशानुक्रम के प्रभाव से सम्बन्धित अनेक अध्ययनों में यह देखा गया है कि व्यक्ति के शारीरिक गुण-रंग कद, बालों व आंखों का रंग तथा अन्य शील गुण पूर्ण रूप से वंशानुक्रम से प्रभावित होते हैं। इसी प्रकार बुद्धि और मानसिक योग्यताएँ भी वंशानुक्रम से प्रभावित होती हैं। इसके अतिरिक्त मानसिक दुर्बलता, मानसिक विकार तथा अन्य व्यवहार जैसे मनोविदलता *(Schizophrenia)* आदि के लिए भी वंशानुक्रम बहुत सीमा तक उत्तरदायी है।

जो गुणसूत्र यौन निर्धारित करते हैं वे अन्य सहलग्नी लक्षणों के विकास का संचालन करते हैं, जैसे वर्णान्धता, अंगुलियों का असामान्य विकास (आकार में छोटा होना या संख्या में पांच से अधिक होना) व गंजापन आदि। मधुमेह की बीमारी भी वंशानुगत होती है। ये सभी लक्षण यौन सहलग्नी *(Sex-linked)* विशेषताएँ कहलाती हैं, क्योंकि ये उसी गुणसूत्र द्वारा निर्धारित होती हैं, जिस गुणसूत्र से बच्चे का यौन निर्धारित होता है।

(2) विकास को प्रभावित करने वाले वातावरण सम्बन्धी कारक *(Environmental Factors)*

व्यक्ति के शारीरिक मानसिक विकास को वंशानुक्रम के अतिरिक्त वातावरण भी प्रभावित करता है। वातावरण मुख्यतः दो प्रकार का होता है—भौतिक वातावरण तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण। गर्भधारण के समय से ही बच्चे की वृद्धि एवं विकास प्रारम्भ हो जाता है। कुछ कारक बच्चे के शारीरिक तथा मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं, जिन पर कुछ सीमा तक नियन्त्रण सम्भव है।

(1) जन्म से पूर्व वातावरण (The Prenatel Environment)—गर्भधारण तथा जन्म के मध्य काल में गर्भस्थ शिशु की वृद्धि तथा विकास को जो अनेक कारक प्रभावित करते हैं, वह जन्म पूर्व वातावरण की रचना करते हैं। माता का स्वास्थ्य, पोषक आहार आदि का बच्चे के सामान्य विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। गर्भवती महिलाओं द्वारा धूम्रपान व अन्य मादक द्रव्यों का सेवन भी बच्चे की वृद्धि पर कुप्रभाव डालता है। यह प्रभाव बच्चे के जन्म के बाद वयस्कावस्था तक भी बना रहता है। गर्भवती माता की बीमारियों के कारण बच्चों के शारीरिक अंगों की बनावट का असामान्य विकास भी देखा गया है। कुपोषण तथा तीव्र संवेगात्मक तनाव बच्चे में शारीरिक या मानसिक विकार अथवा नाड़ी संस्थान में क्षति का महत्त्वपूर्ण कारण बनते हैं।

(2) जन्म का प्रकार (Kind of Birth)—सामान्य जन्म *(Normal delivery)* बच्चे के समायोजन के लिए सबसे ज्यादा अनुकूल माना जाता है। गर्भाशय में बच्चे की असामान्य स्थिति कई बार जन्म में बाधा डालती है, जिससे उन्हें गर्भ से बाहर लाने के लिए यन्त्रों तथा दवाइयों का प्रयोग करना पड़ता है तथा कभी-कभी माता का पेट चीर कर बच्चे को बाहर निकाला जाता है। सामान्य रूप से जन्म लेने वाले बच्चों की अपेक्षा इन बच्चों में समायोजन संबंधी समस्याओं की सम्भावना अधिक होती है। इसी प्रकार प्रसव के समय माता में ऑक्सीजन की कमी होने जाने पर मस्तिष्क आघात की सम्भावना हो सकती है।

(3) माता-पिता से सम्बन्धित प्रभाव (Effect related to Parents)—घर के सदस्यों की संख्या तथा बच्चे के लालन-पालन के ढंग का प्रभाव बच्चे के सामान्य, मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक विकास पर स्पष्ट दिखाई देता है। परिवार के सदस्यों की संख्या, बच्चे के पालन में आन्तरिक द्वन्द्वों, माता-पिता का प्रजातान्त्रिक व तानाशाह व्यवहार, उनकी आयु, शहर या गांव में निवास तथा उनका सामाजिक एवम् आर्थिक स्तर आदि सभी बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में यह देखा गया है कि जिन माता-पिता का व्यवहार प्रभुत्वपूर्ण, अधिक सजा देने वाला व कुण्ठाग्रस्त होता है, उनके बच्चों में आक्रमण, रूठना, संवेगात्मक अस्थिरता तथा क्रियात्मक व्यवहार में अस्थिरता आदि लक्षण पाए जाते हैं। अति संरक्षण *(Over protection)* भी बच्चों में आवश्यकता से अधिक आश्रितता तथा भीरूपन का कारण बनता है। अधिक कड़ा अनुशासन बच्चों में अपराध भावना को बढ़ावा देता है। इसके विपरीतप्रजातान्त्रिक घरानों के बच्चों का विकास संवेगात्मक रूप से स्थिर सामाजिक मानदण्डों के अनुरूप एवं बहिर्मुखी व्यक्तित्व के रूप

Scanned with OKEN Scanner

में होता है। इसी प्रकार अगर माता-पिता घरेलू कार्यों में सहभागिता को तिरस्कारपूर्ण ढंग से नकार देते हैं तो बच्चों में अनेक मानसिक विकार, बदले की भावना एवं आक्रमण आदि व्यवहार देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार भग्न-परिवार जहाँ पति-पत्नी में तलाक, किन्हीं अन्य कारणों से अलगाव या किसी एक की मृत्यु आदि का बच्चों के नैतिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा अधिकतर इन बच्चों में असुरक्षा, बाल अपराध एवम् समाज विरोधी व्यवहार देखा जाता है।

परिवार का आकार भी बच्चों के सर्वांगीण विकास को प्रभावित करता है। छोटे परिवार में जहाँ आर्थिक लाभ अधिक होते हैं, वहाँ माता-पिता द्वारा अति संरक्षण तथा संवेगात्मक लगाव के कारण बच्चों में समायोजन सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। बड़े परिवार में जहाँ आर्थिक कठिनाई अधिक होती है, वहाँ सामाजिक अन्तःक्रिया, स्वावलम्बन तथा सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा आदि का विकास अधिक होता है। फिर भी बड़ा परिवार, प्रेम की कमी व द्वेष आदि अस्वस्थ गुणों का कारण बनता है। घर में बच्चों, सहोदरों की संख्या तथा जन्म का क्रम भी बच्चे के विकास पर प्रभाव डालता है।

माता-पिता का व्यवसाय व उनका शिक्षा स्तर भी बच्चों के विकास पर प्रभाव डालता है। बच्चों के अनेक कौशलों को सीखने में बौद्धिक उत्साह आदि में शिक्षित माता-पिता बच्चे की अधिक सहायता कर सकते हैं। बच्चों को उपयुक्त समय पर उचित प्रशिक्षण देने का भी उनके विकास पर प्रभाव पड़ता है। पिता के व्यवसाय का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे के विकास पर उसके साथी-वर्ग में उसकी स्वीकृति पर भी पड़ता है। ऐसे व्यवसाय जिनमें परिवार का बार-बार स्थानान्तरण रहता है, वहाँ भी बच्चों के समायोजन की समस्याएँ आती हैं।

(4) संस्थागत लालन-पालन से सम्बन्धित प्रभाव (Effect related to institution and child Rearing)—कई बार माता-पिता की मृत्यु, माता-पिता से बिछुड़ने या किन्हीं अन्य कारणों से लावारिस बच्चों को बाल गृहों या अनाथालयों में भेज दिया जाता है। इन संस्थाओं के वातावरण, साथी बच्चों तथा संस्था के प्रबन्धकों एवं शिक्षकों का प्रभाव बच्चे के सम्पूर्ण विकास पर पड़ता है। जैसे अनाथालयों में बच्चे का संवेगात्मक, बौद्धिक तथा सामाजिक व्यवहार प्रभावित होता है। बच्चों का मनोवैज्ञानिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धी तत्व व्यक्तिगत सम्बन्ध स्वस्थ रूप से विकसित नहीं होते हैं।

(5) सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव (Effect of Cultural Factors)—किसी सामाजिक समूह के जीने का ढंग, रीति-रिवाज, सामाजिक मापदण्ड एवं मूल्य उस समूह विशेष की संस्कृति कहलाती है। संस्कृति द्वारा व्यक्तियों के अन्य अवैयक्तिक सम्बन्धों को निर्धारित किया जाता है। बच्चों की अभिवृत्तियां, समाजीकरण की प्रक्रिया आदि संस्कृति द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं। बच्चों के सामाजिक व्यवहार पर भी संस्कृति प्रभाव डालती है। प्रत्येक संस्कृतियों से बच्चों को विभिन्न समस्याओं आक्रामकता, यौन सम्बन्धी समस्याओं आदि के समाधान का प्रशिक्षण दिया जाता है और ये सभी उनको प्रभावित करते हैं। परिवर्तनशील संस्कृति में औद्योगीकरण, शहरीकरण आदि का वयस्कों के विकास पर भी प्रभाव पड़ता है। अप्रत्यक्ष रूप से पारिवारिक सम्बन्धों तथा परिवार की पहचान पर भी इनका प्रभाव पड़ता है।

◆◆◆

2. शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
(Describe the factors affecting physical development.)

अथवा

विकास को प्रभावित करने वाले कौन से कारक हैं?
(What are the factors that influence development?)

उत्तर–शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Physical Development)—इसमें कोई सन्देह नहीं कि शारीरिक विकास का व्यक्ति के मानसिक विकास से भी

Scanned with OKEN Scanner

गहरा सम्बन्ध होता है। अतः शारीरिक विकास के लिये आवश्यक कारकों की ओर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। स्वस्थ विकास का उचित अथवा अनुचित प्रकाश व्यवस्था, उपयुक्त अथवा अनुपयुक्त भोजन, मनोरंजन, विश्राम आदि से सापेक्षिक सम्बन्ध होता है। ये सभी कारक विकास के स्वरूप एवं गति का निर्धारण करने में सहायक होते हैं। अतः शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन निम्न प्रकार से हैं–

1. वातावरण (Environment)–वातावरण बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक है। स्वच्छ एवं उत्तम वातावरण में रहने वाले बालकों का शारीरिक विकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है। इसके विपरीत गन्दी गलियों एवं छोटे बन्द मकानों में रहने के कारण बालक अस्वस्थ रहते हैं। उन्हें वहाँ शुद्ध वायु तथा धूप नहीं मिल पाती। अतः उनके शारीरिक विकास की गति मन्द होती है। **क्रो एवं क्रो** (Crow & Crow) के अनुसार, 'बालक के स्वाभाविक विकास में पर्यावरण के तत्त्व सहायक अथवा बाधक होते हैं।'

2. स्नेह एवं प्रेम (Love and Affection)–बालकों के समुचित शारीरिक विकास हेतु स्नेह एवं प्रेम एक आधार का काम करते हैं। परिवार में अपने अभिभावकों, भाई-बहनों तथा अन्य सदस्यों से स्नेह न मिलने के कारण वह दुःखी रहता है, जिससे उसके शरीर का विकास असंतुलित रूप में नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त, छोटी आयु में माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण बालक को अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं, जिससे उसका समुचित शारीरिक विकास होने में बाधा उत्पन्न होती है।

3. खेल एवं व्यायाम (Play and Exercise)–किशोरों के समुचित विकास के लिये खेल एवं व्यायाम की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि इनका प्रभाव भी बालक के शारीरिक विकास पर पड़ता है।

4. निद्रा एवं विश्राम (Sleep and Rest)–निद्रा एवं विश्राम भी बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण कारक है। निद्रा एवं विश्राम के अभाव में बालक कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। इसलिये छोटे बालकों को अधिकाधिक समय तक सोने दिया जाना चाहिए। विश्राम से बालक की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। यदि बालक थका हुआ होता है तो उसके शारीरिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

5. भोजन (Food)–किशोरों के समुचित शारीरिक विकास हेतु स्वास्थ्यवर्धक भोजन मिलना अति आवश्यक होता है। **सोरनसन (Sorenson)** के शब्दों में, **'स्वास्थ्यवर्धक भोजन थकान का शत्रु तथा शारीरिक विकास का गहरा मित्र है।'**

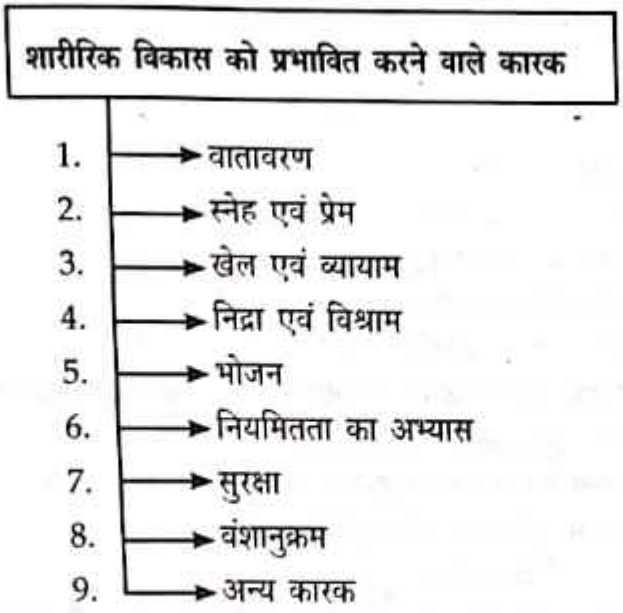
6. नियमितता का अभ्यास (Practice of Regularity)–उत्तम स्वास्थ्य की आधारशिला नियमितता (Regularity) का अभ्यास होता है। अतः किशोर के सोने, खेलने, खाने, पढ़ने इत्यादि का समय निर्धारित रहना चाहिए।

7. सुरक्षा (Security)–किशोरों के समुचित विकास के लिये सुरक्षा की भावना का अत्यन्त महत्त्व होता है। इसलिये बालक में इस भावना का होना अति आवश्यक है। सुरक्षा की भावना के अभाव में वह भयभीत रहता है तथा उसमें आत्मविश्वास की कमी दिखाई देती है। सुरक्षा की भावना तथा आत्मविश्वास के अभाव में बालक का विकास रुक जाता है।

8. वंशानुक्रम (Heredity)–बालक के शारीरिक विकास पर वंशानुक्रम का भी प्रभाव पड़ता है। बालक के माता-पिता यदि अस्वस्थ हैं तो बालक भी अस्वस्थ ही होंगे। यदि माता-पिता स्वस्थ होंगे तो बालक भी स्वस्थ होंगे।

9. अन्य कारक (Other Factors)–उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य कारक हैं– दोषपूर्ण सामाजिक रीतिरिवाज़, परिवार की आर्थिक दशा, जलवायु, किसी दुर्घटना अथवा रोग के कारण होने वाली विकृतियाँ ग्रन्थियों से पैदा होने वाले रस इत्यादि।

Scanned with OKEN Scanner



चित्र : शारीरिक विकास को प्रभावित करते कारक

◆◆◆

3. मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
(Describe factors influencing mental development.)

उत्तर–मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting Mental Development)–मानव के विकास के हर पहलू को किसी न किसी कारक ने अवश्य ही प्रभावित किया है। इन कारकों का सम्बन्ध या तो वंशानुक्रम (Heredity) से होता है या वातावरण (Environment) से होता है। दोनों ही मानसिक विकास में अपना-अपना योगदान देते हैं। इनके अतिरिक्त स्कूल, पौष्टिक भोजन, पारिवारिक सदस्यों का व्यवहार आदि भी प्रभावित करते हैं। इन कारकों के नकारात्मक प्रभाव के फलस्वरूप बालक की समस्त मानसिक शक्तियां प्रभावित होती हैं। यही कारण है कि विद्यालय, परिवार और समुदायों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना पर निरन्तर बल देता है। अतः बालक की हर विकास की अवस्था के दौरान मानसिक विकास की प्रक्रिया को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं–

1. शिशुकाल में अपर्याप्त भोजन (Under-nutrition During Infancy) –अध्ययनों से यह बात साफ हो चुकी है कि जन्म के बाद पहले वर्ष तक शिशुओं को यदि कम भोजन दिया जाये तो इसका प्रभाव मस्तिष्क के बाद में होने वाले विकास पर अवश्य पड़ता है। भ्रूणावस्था (Fetal Period) में मस्तिष्क की वृद्धि स्फुरण (Growth spurt for the Brain) सबसे अधिक होती है। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अन्त तक मस्तिष्क प्रौढ़ावस्था के मस्तिष्क के भार का 70 प्रतिशत भार ग्रहण कर लेता है। दो वर्ष की आयु तक मस्तिष्क का विकास लगभग पूर्ण हो जाता है। मस्तिष्क के तीव्र विकास के समय यदि उन्हें असंतुलित तथा अल्प आहार दिया जाये तो इससे उनमें मानसिक विकृतियां पैदा हो जायेंगी।

चेस और मार्टिन (Chase and Martin, 1970) ने 19 बच्चों का अध्ययन किया। यह अध्ययन 1962 से 1967 के बीच किया गया। इन बच्चों के प्रारम्भिक कम-भोजन (Early under nutrition) और शारीरिक विकास में मंदन (Retardation) में धनात्मक सहसम्बन्ध (Positive correlation) पाया गया है। केवल एक ही बालक ऐसा था जिसका शारीरिक विकास कुछ ठीक हुआ लेकिन उसके सिर की वृद्धि और मस्तिष्क का कार्य दोषपूर्ण ही पाये गये।

स्टाक और स्मिथ (Stock and Smyth, 1963) ने भी एक अध्ययन में मानसिक बुद्धि और विकास पर कम-भोजन या अल्प-आहार के प्रभावों को सिद्ध किया है। उन्होंने 20 ऐसे शिशु (Infants) लिये जिनको बहुत ही कम भोजन मिलता था। उन्होंने उन शिशुओं की आयु और लिंग के अनुसार संतुलित और उपयुक्त

Scanned with OKEN Scanner

भोजन लेने वाले शिशुओं का एक नियंत्रित समूह के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन के पूरे समय तक उपयुक्त भोजन वाले समूह की अपेक्षा कम भोजन वाले शिशुओं के समूह के सदस्यों के छोटे सिर, कम ऊँचाई और भार तथा कम बुद्धि-लब्धि (I.Q.) पाये गये।

क्रैविओटो और रोब्लस (Cravioto and Robles, 1965) ने भी 20 शिशुओं का इसी प्रकार का अध्ययन किया था। इन शिशुओं को प्रोटीन बहुत ही कम मिलता था। ऐसे शिशुओं के गमन (Motor), भाषा और व्यक्तिगत सामाजिक व्यवहार (personal-social behaviour) आदि में त्रुटियां पाई गई।

इस प्रकार मस्तिष्क की तीव्र वृद्धि के समय और कोशिका विभाजन के समय अल्प-आहार या असंतुलित भोजन के कारण कई प्रकार के स्थाई मानसिक दोष बच्चों में आ जाते हैं।

2. माता-पिता व बालक में अन्तःक्रिया का प्रभाव (Influence of parent-child interaction)–बालक के मानसिक गुणों पर उसके माता-पिता का प्रभाव पड़ता है। अपने परिवार के सदस्यों का अनुकरण करके वह अनेक बातें सीखता है। घर का पर्यावरण बालक में आत्म-विश्वास की भावना पैदा करता है।

वुल्फ (Wolf 1964) ने बुद्धि से सम्बद्ध पर्यावरण की प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है। इस अध्ययन में उसने 13 प्रक्रियाओं के चरों (Variables) का उल्लेख किया है। ये चर बुद्धि के विकास में, अभिभावक व बालक के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया की व्याख्या करते हैं। इन चरों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है–उपलब्धि अभिप्रेरणा का दबाव (Press for achievement Motivation) भाषा विकास का दबाव (Press for language development), सामान्य अधिगम की व्यवस्थाएं (Provisions for General learning) माता-पिता और बच्चे में अन्तःक्रिया इसलिये भी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि इसमें बच्चे की बुद्धि-लब्धि (I.Q.) का निर्धारण होता है।

3. वंशानुक्रम (Heredity)–बालक वंशानुक्रम के माध्यम से मानसिक योग्यताएँ अर्जित करता है। इन योग्यताओं में वातावरण किसी भी प्रकार से परिवर्तन नहीं कर सकता है। **गेट्स एवं साथियों** (Gates & Associates) के अनुसार 'किसी बालक का उससे अधिक विकास नहीं हो सकता, जितना उसका वंशानुक्रम संभव बनाता है।

4. लिंग-भेद (Sex Differences)–जन्म के पश्चात् सांस्कृतिक शक्तियां मानसिक विकास पर प्रभाव डालती हैं। यह सांस्कृतिक प्रभाव भी लिंग (Sex) पर आधारित होता है। लिंग के आधार पर प्रशिक्षण में भी संस्कृतियों के कारण अन्तर हो सकता है। निम्न श्रेणियों के लड़के और लड़कियों को मध्यम और उच्च श्रेणी के लड़के-लड़कियों की अपेक्षा शीघ्र लिंग भूमिका के व्यवहार (Sex Role Behaviour) से परिचित करवा दिया जाता है। **लिन (Lynn)** के अनुसार औरतों का बौद्धिक विकास इनकी अन्तःक्रिया पर आधारित होता है–

(i) औरतों को मिली हुई जन्मजात् कुछ शक्तियां जो उन्हें दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक भूमिकाएं करने के लिए प्रेरित करती हैं।

(ii) माता-पिता और बच्चे का सम्बन्ध (Parent-child relationship)।

यही शक्तियां पुरुषों के बौद्धिक विकास में भी सहायक होती हैं। माता-पिता और बच्चे की अन्तःक्रिया विशिष्ट मानसिक योग्यताओं और विशेषताओं के विकास के लिये अति महत्त्वपूर्ण होती है।

5. उपलब्धि अभिप्रेरणा की आवश्यकता और बौद्धिक विकास (Need of Achievement Motivation and Intellectual Development)–मैक्कलैंड और एटकिन्सन (McClelland and Atkinson, 1963) व अन्यों के अध्ययनों के अनुसार प्रारम्भिक वर्षों में विकसित उपलब्धि- अभिप्रेरक (Achievement Motive) का सम्बन्ध माता-पिता की आकांक्षाओं से होता है।

सोन्टेग व अन्यों (Sontag and others, 1958) के अनुसार सीखने की उत्सुकता या 'सीखने के लिये सीखना' (Learning to learn) बाल्यकाल और किशोरावस्था में बुद्धिलब्धि में वृद्धि से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार की रुचि में कमी या कम उपलब्धि-आवश्यकता (Achievement Need) कम बुद्धि-लब्धि (I.Q.) के साथ सम्बन्धित पाई गई है। किशोरों की उपलब्धि आवश्यक या अधिगम-अभिप्रेरण (Motivation to learn) बहुत से कारकों पर आश्रित है, जैसे कि माता-पिता और बच्चे के प्रारम्भिक सम्बन्ध, स्वयं का प्रत्यय (Self-Concept), आकांक्षा स्तर (Aspiration Level) और पिछले अधिगम अनुभव (Past Learning Experience) आदि।

Scanned with OKEN Scanner

रोसैन्थल और जैकोबसन (Rosenthal and Jacobson, 1968) के शोध के अनुसार अध्यापकों की अपेक्षाओं का महत्त्वपूर्ण प्रभाव विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास पर पड़ता है, क्योंकि अध्यापक ऐसे विद्यार्थियों, जिनके बारे में उनकी अपेक्षाएं ऊँची होती हैं की ओर अधिक ध्यान देते हैं।

6. स्कूल (School)–बच्चे के मानसिक विकास में स्कूल का योगदान अति महत्त्वपूर्ण होता है। अध्यापक का व्यक्तित्त्व, शिक्षण विधियाँ, पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular Activities) आदि सभी स्कूल के आवश्यक तत्त्व हैं। इन तत्त्वों का प्रभाव बालक के मानसिक विकास पर पड़ना स्वाभाविक ही है। **कुप्पू स्वामी** के अनुसार, **"उत्तम स्कूल ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है, जो विद्यार्थियों की रुचियों तथा आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु अनेक क्रियाओं से युक्त होता है। ऐसा स्कूल स्वस्थ मानसिक विकास का एक वास्तविक कारक है।"**

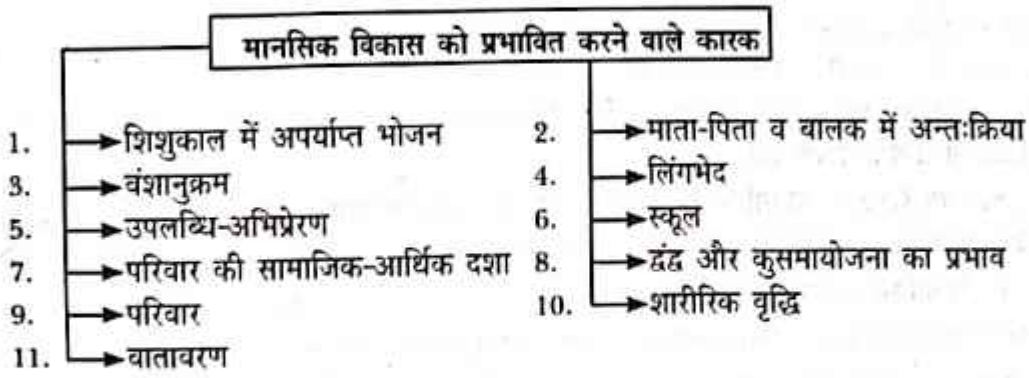
7. परिवार की सामाजिक व आर्थिक दशा (Socio-economic status of the family)– मानसिक विकास को प्रभावित करने वाला एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है–परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक दशा। जिन परिवारों की सामाजिक दशा उत्तम होती है, उन परिवार के बालकों का मानसिक विकास अपेक्षाकृत अधिक होता है, क्योंकि उच्च सामाजिक दशा के परिवार के बालकों को मानसिक विकास के समस्त साधन उपलब्ध होते हैं। इसके विपरीत निम्न सामाजिक स्थिति के परिवार के बालकों का मानसिक विकास नहीं हो पाता क्योंकि उन्हें साधन प्राप्त नहीं होते हैं। सामाजिक स्थिति के साथ ही परिवार की उत्तम आर्थिक दशा के परिणामस्वरूप भी बालक के मस्तिष्क का विकास अत्यन्त तीव्र गति से होता है।

8. द्वन्द्व और कुसमायोजना का प्रभाव (Effect of Conflicts and Maladjustment)–स्कूल और घर के द्वन्द्वों का बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ये बच्चों में तनाव तथा अन्य नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं, जिससे उनके विकास की प्रक्रिया में बाधा पड़ती है।

9. परिवार (Family)–बालक का मानसिक विकास, परिवार के विभिन्न चीजों के प्रति दृष्टिकोणों पर तथा परिवार के सदस्यों के ज्ञानात्मक स्तर पर निर्भर करता है। परिवार में किस प्रकार की चर्चाएं होती हैं, किस प्रकार की पुस्तकें या पत्रिकाएं पढ़ी जाती हैं, इत्यादि मानसिक विकास के लिये उत्तरदायी हैं।

10. शारीरिक वृद्धि (Physical Growth)–शारीरिक वृद्धि और बौद्धिक विकास में बहुत सशक्त सह-सम्बन्ध होता है। एक सशक्त व्यक्ति में बुद्धि स्तर प्रायः उत्तम होता है।

11. वातावरण (Environment)–व्यक्ति के बौद्धिक विकास के लिये वातावरण का भी बहुत योगदान होता है। व्यक्ति को उसकी बौद्धिक योग्यताओं के प्रदर्शन के लिये पर्याप्त अवसर दिये जाने चाहिए। भौतिक वातावरण भी बुद्धि को प्रभावित करता है।



चित्र : मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

4. संवेगों के विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक कौन-कौन से हैं? व्याख्या करें। (Explain the main factors influencing the development of emotions.)

उत्तर–संवेगों को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Emotions)–विकास के प्रत्येक स्तर पर बालक का भावात्मक विकास महत्त्वपूर्ण होता है। विकास की हर अवस्था में संवेगों को प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान अध्यापकों के लिये अति आवश्यक है। संवेगों को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन निम्नलिखित है–

1. स्कूल वातावरण (School Environment)–स्कूल का वातावरण बच्चे के संवेगात्मक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सर्वप्रथम जब बच्चा स्कूल में नया-नया प्रवेश लेता है तो वह वहाँ के वातावरण से बिल्कुल भी परिचित नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप वह स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं करता। अतः स्कूल में असफलताएँ अर्जित करने से संवेगात्मक असंतोष पैदा होता है। इस असंतोष के कारण बालक स्कूल से भागने लगता है। स्कूल में अन्य सुविधाओं का अभाव, अध्यापकों की शिक्षण-विधि व सहगामी क्रियाएँ आदि बालक के संवेगों को दिशा प्रदान करती हैं। इसी प्रकार स्कूल के मुख्याध्यापक और स्टाफ तथा विद्यार्थियों के आपसी सम्बन्ध भी संवेगों को किसी न किसी प्रकार से प्रभावित करते हैं।

2. परिवार तथा पड़ोस का वातावरण (Family and Neighbourhood Environment)–संवेगों के विकास में पारिवारिक और पड़ोस का वातावरण बहुत महत्त्व रखता है। प्रायः देखा गया है कि बच्चों में अनुकरण (Imitation) की प्रवृत्ति बहुत ही प्रबल होती है। वे परिवार के सदस्यों और पड़ोस के व्यक्तियों का अनुकरण करते हैं। यदि परिवार व पड़ोस में वातावरण अच्छा होगा तो बच्चे भी वैसा ही व्यवहार करेंगे। अतः परिवार के वातावरण के अन्य घटक हैं–परिवार की आर्थिक दशा, सामाजिक स्थिति, आकार आदि। कई बार परिवार के सदस्यों का नकारात्मक दृष्टिकोण बच्चे के संवेगात्मक विकास के संतुलन को बिगाड़ देते हैं। अतः यह आवश्यक है कि परिवार के वातावरण को उत्तम बनाये रखा जाये।

3. स्वास्थ्य और शारीरिक विकास (Health and Physical Development)–अक्सर ऐसा देखा गया है कि बच्चों के स्वास्थ्य और शारीरिक विकास में गहरा सम्बन्ध होता है। कई बार बाहरी और आन्तरिक शारीरिक त्रुटियाँ कई प्रकार की संवेगात्मक कठिनाइयाँ पैदा कर देती हैं। क्योंकि कई बच्चे अपनी बीमारी या ख़राब स्वास्थ्य के कारण संवेगात्मक रूप से अस्थिर हो जाते हैं। कई बार ग्रन्थियों की सामान्य कार्यकुशलता में कमी आने से संवेगात्मक विकास रुक जाता है या कम होता है। अतः बच्चे के सामान्य संवेगात्मक विकास के लिये ग्रन्थियों की सामान्य कार्यकुशलता अति आवश्यक है।

4. बौद्धिक दक्षता (Intellectual Efficiency)–शोध द्वारा संवेगों के विकास और बुद्धि में भी सह-सम्बन्ध पाया गया है। संवेगात्मक कष्ट (Emotional Distress) और कुंठाएँ (Frustrations) बौद्धिक दक्षता में रुकावट डालती हैं। अप्रसन्न व्यक्ति या बालक का किसी कार्य में मन नहीं लगता। दुर्बल कुंठाएँ (Mild Frustrations) भी बौद्धिक दक्षता को प्रभावित करती हैं और थोड़ी सी सफलता भी प्रभाव में वृद्धि करती है। कुंठा या सफलता कार्य को गुणात्मक दृष्टि से भी प्रभावित करती है। एक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी तर्क-शक्ति और सोचने की शक्ति द्वारा परिस्थितियों पर नियंत्रण सकता है तथा अपने संवेगों का सही दिशा में प्रयोग सकता है।

5. आयु (Age)–संवेगों के विकास पर आयु का प्रभाव भी पर्याप्त रूप से पड़ता है। आयु के बढ़ने से संवेगों में परिवर्तन आते रहते हैं। आयु में वृद्धि से संवेगात्मक परिपक्वता आने लगती है।

6. सामाजिक विकास (Social Development)– बच्चों के सामाजिक और संवेगात्मक विकास में गहरा सम्बन्ध होता है। दोनों पक्षों का विकास एक-दूसरे पर आश्रित रहता है। जैसे, यदि कोई बच्चा सामाजिक रूप से विकसित है तो वह संवेगात्मक रूप से भी अवश्य ही विकसित होगा। सामाजिक रूप से कुसमायोजित या सामाजिक रूप से अविकसित व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के संवेगों से जुड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। एक-दूसरे के अभाव में विकास पूर्ण नहीं हो सकता।

7. अभिभावकों का दृष्टिकोण (Attitude of Parents)–बच्चों की उपेक्षा करना, ज्यादा देर तक घर में न रहना, बच्चों के सम्बन्ध में अधिक चिन्ताग्रस्त रहना, बच्चों के समक्ष रोगों के बारे में बात करना,

Scanned with OKEN Scanner

बच्चों को आवश्यकता से अधिक सुरक्षा देना, उनकी इच्छानुसार कार्य करने की अनुमति प्रदान न करना, नये अनुभव प्रदान न करने देना इत्यादि अभिभावकों की ये सभी बातें बालकों के अवांछनीय संवेगात्मक व्यवहार को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं।

8. थकान (Fatigue)—अन्य कारकों की तरह संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाला अन्य मुख्य कारण है—थकान। थका हुआ व्यक्ति अक्सर चिड़चिड़ाने लगता है। इसलिये वह क्रोध में शीघ्र आने लगता है। परिणामस्वरूप बच्चों में अवांछनीय संवेगात्मक व्यवहार की पुनरावृत्ति होती है।

9. अन्य कारक (Other Factors)—उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी हैं जो संवेगों को प्रभावित करते हैं जैसे— आकांक्षा स्तर, बालक की सामाजिक स्थिति, कार्य की अधिकता, कार्य में बाधाएँ ग़रीबी इत्यादि।

10. व्यावहारिक समस्याएँ (Behavioural Problems)—कई परिस्थितियों में किशोर अपनी इच्छा से और मनपसंद व्यवसाय ग्रहण नहीं कर पाते और वे अप्रसन्न रहते हैं। इसी प्रकार, कई बार युवकों और उनके माता-पिता में व्यवसाय सम्बन्धी टकराव पैदा हो जाते हैं। इस कार्य को बीच में छोड़कर दूसरा कार्य शुरू कर लिया जाता है। ये सभी परिस्थितियाँ संवेग पैदा करती हैं।

◆◆◆

5. बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक कौन-कौन से हैं? (What are the main factors influencing the social development of children?)

उत्तर—सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Social Development)—जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि बालक के विकास का हर पक्ष महत्त्वपूर्ण होता है। हर प्रकार का विकास किसी न किसी कारक से प्रभावित होता है। इन कारकों का अध्ययन एक अध्यापक के लिये अति आवश्यक है। बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं —

1. परिवार (Family)—गर्भ से बाहर आते ही शिशु परिवार का सदस्य बनता है तथा तभी से उसका समाजीकरण शुरू हो जाता है। अतः परिवार इस समाजीकरण की प्रक्रिया को किसी न किसी रूप से प्रभावित करता है। परिवार का आकार, माता-पिता का आपसी सम्बन्ध, उनका दृष्टिकोण, परिवार का आर्थिक स्तर, परिवार की सामाजिक दशा, सामाजिक परम्पराएँ, रीति-रिवाज़ आदि परिवार से सम्बन्धित कारक के विभिन्न पक्ष हैं।

अच्छे परिवार सुसमायोजित व्यक्तित्त्व उत्पन्न करते हैं। पारिवारिक क्लेश, परिवारों का बच्चों में रुचि न लेना, तलाक, अप्रसन्नता, मृत्यु आदि कुसमायोजित व्यक्तित्त्व को जन्म देते हैं।

साईमांड (Symonds) के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के स्वस्थ, स्थाई, उत्साही और स्नेहमयी माता-पिता हैं तो वह एक अच्छा नागरिक, अच्छा कार्यकर्ता, अच्छा पति, अच्छी पत्नी और एक अच्छा अध्यापक होगा।

परिवार सामाजिक जीवन में तीन कार्य करता है—

1. परिवार बच्चे के समाजीकरण का मुख्य साधन है।
2. परिवार संस्कृति के संचारण (Transmission) में सहायक होता है।
3. परिवार व्यक्तित्त्व के प्रदर्शन का साधन है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार के निम्न पक्ष बच्चों के सामाजिक विकास को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते हैं—

(a) परिवार का आकार,
(b) परिवार के अन्दर सम्बन्ध,
(c) परिवार की परम्पराएँ,
(d) सामाजिक तथा आर्थिक स्तर,
(e) परिवार के अन्य सदस्यों के दृष्टिकोण, इत्यादि।

2. स्कूल (School)—परिवार के प्रभाव के पश्चात् स्कूल का प्रभाव भी बच्चों के व्यक्तित्त्व पर बहुत गहरा पड़ता है, क्योंकि परिवार से निकल कर वे अधिकतर समय स्कूल में ही व्यतीत करते हैं। माता-पिता का स्थान स्कूल में अध्यापक ग्रहण कर लेता है। होश संभालने के पश्चात् बच्चे अधिकतर समय तक

Scanned with OKEN Scanner

अध्यापकों के सम्पर्क में ही रहते हैं। इस दृष्टि से बच्चों के प्रति अध्यापकों का दृष्टिकोण बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसके अतिरिक्त स्कूल बच्चों को सांस्कृतिक ज्ञान और विषयों का ज्ञान प्रदान करता है। यह सफल जीवन के लिये आवश्यक है। एक जिम्मेदार नागरिक को तैयार करने में स्कूल की भूमिका महत्त्वपूण f होती है। स्कूलों में निरंकुश (Autocratic) वातावरण सामाजिक विकास को प्रभावित करता है तथा जन्तन्त्रीय वातावरण (Democratic) सामाजिक विकास में सहयोग करता है। संक्षेप में, स्कूल में चलाये जा रहे कार्यक्रम, अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामाजिक गुणों व उनके सामाजिक व्यवहारों आदि का प्रभाव बच्चे के सामाजिक विकास पर अत्यधिक होता है।

3. संवेगात्मक विकास (Emotional Development)—सामाजिक विकास का आधार संवेगात्मक विकास होता है। सामाजिक और संवेगात्मक विकास दोनों ही साथ-साथ चलते हैं। संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति सामाजिक रूप से पारेपक्व होता है। अतः सामाजिक विकास के लिये बच्चों को संवेगों के नियंत्रण के बारे में प्रशिक्षण देना अति आवश्यक होता है।

4. शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)—शारीरिक विकास भी सामाजिक विकास पर अपना प्रभाव छोड़ता है। अस्वस्थ बच्चा कभी भी समाज में स्वयं को समायोजित नहीं कर सकता, लेकिन एक स्वस्थ बालक समायोजन में अग्रसर रहता है। अस्वस्थ बच्चों में कई प्रकार की हीन-भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो कि उनके सामाजिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

5. समुदाय का प्रभाव (Community Influences)—बालक के सामाजिक विकास पर समुदाय का भी प्रभाव पड़ता है। पार्क, खेल के मैदान, अजायबघर, पुस्तकालय आदि बच्चों की स्वतन्त्रता, व्यक्तिगत सुरक्षा आदि को प्राप्त करने के लिये अत्यधिक सहायक होते हैं। समुदाय के ये साधन बच्चों में आज्ञा पालन, ईमानदारी, नम्रता जैसे गुणों का विकास करने में सहायक होते हैं।

6. खेल के साथी और मित्रों का प्रभाव (Influences of Playmates)—प्रारम्भ में बच्चा अपने माता-पिता की स्वीकृति के बारे में चिन्तित होता है, लेकिन स्कूल में प्रवेश के पश्चात् वह अपने मित्रों और खेल के साथियों की स्वीकृति को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। वह अपने व्यक्तित्त्व के उन्हीं पक्षों को अधिक विकसित करने का प्रयास करेगा, जिनकी प्रशंसा उनके मित्र या खेल के साथी करते हों। स्कूल में वह दूसरे साथियों के सम्पर्क में आता है और स्वयं के व्यक्तित्त्व का अनुमान लगाना सीखता है। यह उसके व्यक्तित्त्व की आधारशिला होती है। वह जितने सुखद अनुभव प्राप्त करेगा, उतना ही उसका व्यक्तित्त्व निखरेगा तथा उतना ही अच्छा उसका सामाजिक समायोजन होगा। इसी प्रकार बच्चे की लोकप्रियता उसके व्यक्तित्त्व को निखारने में बहुत सहायक होती है।

7. बौद्धिक विकास (Intellectual Development)—जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि सामाजिक विकास और बौद्धिक विकास में गहरा सम्बन्ध होता है। बौद्धिक विकास के अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं को समाज में ठीक प्रकार से समायोजित कर सकता है। इस प्रकार का विकास बच्चे के सामाजिक विकास का एक आवश्यक तत्त्व है। अतः बौद्धिक रूप से विकसित बालक सामाजिक रूप से भी विकसित होगा।

8. धार्मिक संस्थाओं का प्रभाव (Influence of Religious Institutions)—बालकों का सामाजिक विकास विभिन्न धार्मिक संस्थानों द्वारा भी प्रभावित होते हैं। जैसे मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, गिरिजाघर आदि। धार्मिक संस्थाओं से बच्चों में नैतिक मूल्यों का विकास संभव हो पाता है। अतः धार्मिक संस्थाओं का महत्त्व भी कम नहीं आंका जाना चाहिए।

9. मनोरंजन एवं सूचना करने वाले साधन (Means of Entertainment and Information)—व्यक्ति के जीवन में मनोरंजन और विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का भी बहुत अधिक महत्त्व होता है। अतः मनोरंजन और सूचनाएँ प्रदान करने वाले साधनों पर नज़र रखना अनिवार्य है, क्योंकि ये साधन व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को भी किसी न किसी रूप में प्रकाशित करते रहते हैं। इन साधनों में शामिल हैं—समाचार-पत्र, रेडियो, टेलीविज़न, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, सिनेमा इत्यादि। बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है। सिनेमा, टेलीविज़न इत्यादि का अनुकरण बच्चे अत्यधिक करते हैं। अतः इन साधनों का चयन बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए।

10. आस-पड़ोस का प्रभाव (Locality Influences)—सामाजिक विकास पर बच्चों का आस-पड़ौस भी हावी रहता है। आस-पड़ौस के वातावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। आस-पड़ौस

Scanned with OKEN Scanner

द्वारा बच्चों के जीवन के स्तर का ज्ञान होता है। दोषपूर्ण आस-पड़ोस से बच्चों का समायोजन भी दोषपूर्ण ही होगा। व्यक्तित्त्व सम्बन्धी कई समस्याएँ उभरेंगी।

11. सामाजिक आर्थिक स्तर (Socio-economic Status)—सामाजिक विकास पर परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर का प्रभाव भी आसानी से देखा जा सकता है। विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तरों के बच्चों के व्यवहारों में भी भिन्नता देखने को मिलती है। यह विभिन्नता धन-व्यय करने, बच्चे को प्रशिक्षण देने, अनुशासन तथा माता-पिता के प्रति दृष्टिकोण आदि में पाई जाती है।

12. माता-पिता का व्यवसाय (Parental Occupation)—माता-पिता का व्यवसाय बच्चों के सामाजिक विकास को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। बाल्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में यह प्रभाव अधिक होता है, क्योंकि बालक के पालन-पोषण के व्यवसाय का सीधा सम्बन्ध होता है, जैसे उसका भोजन, कपड़े, खेल का सामान इत्यादि। माता-पिता का व्यवसाय बच्चों को सामाजिक सम्मान भी प्रदान करता है।

13. भाई-बहनों का प्रभाव (Sibling Influences)—परिवार में रहते भाई-बहनों का उनके माता-पिता के साथ सम्बन्धों का प्रभाव परिवार में रह रहे बालक पर बहुत पड़ता है। जैसे, परिवार का पहला बच्चा माता-पिता को बहुत प्यारा लगता है तथा वह उन पर बहुत आश्रित रहता है। घर से बाहर रहकर बच्चा स्वयं को समायोजित नहीं कर पाता। वह स्वार्थी हो जाता है। लेकिन जब परिवार में दूसरा बच्चा जन्म लेता है तो वह स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगता है।

14. परिवार का आकार (Size of the Family)—बच्चे के व्यक्तित्त्व के विकास में परिवार का आकार बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान करता है। बड़े-बड़े परिवारों के बच्चों का व्यक्तित्त्व छोटे परिवारों के बच्चों से भिन्न होता है तथा बेहतर होता है। प्रत्येक परिवार में बच्चा अपनी विशिष्ट भूमिका ग्रहण कर लेता है।

15. वंशानुक्रम (Heredity)—वंशानुक्रम बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण कारक है। मनोवैज्ञानिकों का का कहना है कि वंशानुक्रम का बालक के सामाजिक विकास पर एक निर्धारित सीमा तक प्रभाव पड़ता है।

16. समूह का प्रभाव (Group Influences)—बालक किसी न किसी समूह का सदस्य होता है। समूह का सदस्य होने के कारण वह व्यवहार में दक्ष हो जाता है। इस दक्षता के परिणामस्वरूप उसे समाज में समायोजन करने में किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। अतः टोली के प्रभावों में रहकर बालक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेता है।

17. अन्य कारक (Other Factors)—कुछ लोगों का विचार है कि लैंगिक भेद (Sex Differences) भी सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। **टी. एन. ग्रीन (T.N. Green)** के अनुसार लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक सहनशील, सहयोगी, त्याग की भावना वाली तथा सहानुभूतिपूर्ण होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक विकास की प्रक्रिया इतनी सहज, सरल नहीं। यह बहुत ही विस्तृत और जटिल होती है। सामाजिक विकास का सम्बन्ध विकास के अन्य पक्षों के साथ किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से होता है।

◆◆◆

1. 6 विकास में वंशानुक्रम तथा वातावरण का सापेक्षिक महत्त्व (Relative Role of Heredity and Environment in Development)

1. वंशानुक्रम और वातावरण से आप क्या समझते हैं? बालक के विकास में इन दोनों कारकों की क्या भूमिका है? विस्तार से बताए।

अथवा

वंशानुक्रम तथा वातावरण को परिभाषित करें। वंशानुक्रम और वातावरण के महत्त्व को विभिन्न अध्ययनों की सहायता से स्पष्ट करें।

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

"विकास वंशानुक्रम और वातावरण दोनों का ही विषय है।" इस कथन को स्पष्ट करते हुए वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम तथा वातावरण के सापेक्षिक महत्त्व की चर्चा करें।

अथवा

वंशानुक्रम और वातावरण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वंशानुक्रम और वातावरण के सापेक्षिक महत्त्व पर प्रकाश डालें।

अथवा

बालक के विकास में वंशानुक्रम और वातावरण का क्या महत्त्व है? अध्यापक को इस सम्बन्ध की जानकारी क्यों आवश्यक है? वह इस जानकारी का बालक के विकास में कैसे लाभ उठा सकता है?

उत्तर–वंशानुक्रम का अर्थ (Meaning of Heredity)–यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है जब बच्चे माता-पिता जैसे ही होते हैं, जैसे बुद्धि-स्तर पर समानता, रंग-रूप में समानता, शारीरिक रचना में समानता, कद में समानता आदि। कई बार माता-पिता और सन्तान में यह समानता अनुपस्थित भी होती है। कई बार बुद्धिमान माता-पिता की सन्तान मूर्ख ही रह जाती है। गोरे माता-पिता की सन्तान काली होती है। इस प्रकार इन अन्तरों में वंशानुक्रम की मुख्य भूमिका होती है।

साधारण शब्दों में वंशानुक्रम का अर्थ है–जैसे माता-पिता, वैसी सन्तान। इस दृष्टि से यदि माता-पिता बुद्धिमान है तो उनकी सन्तान भी बुद्धिमान होगी। इसी प्रकार एक कुत्ता 'कुत्ते' को ही पैदा करता है, बिल्ली 'बिल्ली' को ही पैदा करती है तथा मानव से 'मानव' ही पैदा होता है। 'समान से समान' जीवन पैदा करने वाली धारणा वंशानुक्रम की 'संकीर्ण धारणा' *(Narrow Concept)* कहलाती है तथा जैसे 'माता-पिता, वैसी सन्तान' वाली धारणा को 'विस्तृत धारणा' *(Broader Concept)* माना गया है। इस प्रकार वंशानुक्रम के अर्थ को निम्नलिखित दो प्रकार की धारणाओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

(1) संकीर्ण धारण *(Narrow Concept)*
(2) विस्तृत धारणा *(Broader Concept)*

(1) संकीर्ण धारणा (Narrow Concept)–इस धारणा के अनुसार शारीरिक समानताएँ वंशानुक्रम कहलाती हैं। लेकिन यह अर्थ बहुत ही संकीर्ण है तथा एक अशिक्षित व्यक्ति की जिज्ञासा शांत करने के लिए पर्याप्त है। यह धारणा समानता और शारीरिक विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। जैसे–शारीरिक अंगों, रंग-रूप, आकार, सूरत इत्यादि में समानता का होना ही वंशानुक्रम है।

(2) विस्तृत धारणा (Broder Concept)–इस धारणा के अनुसार इन समानताओं के अतिरिक्त असमानताओं को भी वंशानुक्रम के अर्थ से शामिल किया जाता है। विस्तृत धारणा के अनुसार वंशानुक्रम वे सभी कारक तत्व हैं, जो बच्चे के जन्म के साथ नहीं, बल्कि गर्भाधान के समय उसमें उपस्थित होते हैं। वंशानुक्रम की इस धारणा के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक और व्यक्तित्व लक्षण शामिल होते हैं। शारीरिक लक्षणों में जैसे–चेहरा, आंखों का रंग, त्वचा, हाथों का आकार, टांगों का आकार तथा ग्रन्थियाँ आदि। मानसिक लक्षणों के अन्तर्गत प्रवृत्तियाँ, बुद्धि, स्मरण शक्ति, सूक्ष्म विचार, तर्क शक्ति, निर्णय क्षमता तथा ध्यान आदि आते हैं। व्यक्तित्व के दूसरे लक्षणों में व्यवहार, स्वभाव, आदतें, संवेग, सूंघने की शक्ति आदि शामिल हैं। विस्तृत धारणा के अनुसार 'ये सभी लक्षण बच्चे अपने माता-पिता से प्राप्त करते हैं तथा इसे ही वंशानुक्रम कहा जाता है। इस प्रकार वंशानुक्रम 'जन्मजात वैयक्तिक गुणों का योगफल' *(Sumtotal of inborn individual traits)* है। जीव शास्त्रियों *(Biologists)* के अनुसार "निषेचित अंड में सम्भाव्यतः उपस्थित विशिष्ट गुणों का योग ही वंशानुक्रम है।" *(The sum-total of the traits potentially present in the fertilized ovum.)*

वुडवर्थ *(Woodworth)* के अनुसार–"वंशानुक्रम में वे सभी कारक शामिल हैं जो जीवन शुरू करते समय बालक में विद्यमान थे, जन्म के समय नहीं, बल्कि गर्भ धारण करते समय अर्थात् जन्म से लगभग नौ मास पहले।" *(Heredity covers all the factors that were present in the individual when the began life, not of birth but at the time of conception about nine months before birth.–Woodworth)*

डग्ल्स और हॉलैंड के अनुसार–'वंशानुक्रम के अन्तर्गत सभी रचनाएँ, भौतिक विशेषताएँ, कार्य या क्षमताएँ जो उन्होंने अपने माता-पिता से तथा पूर्वजों से अर्जित किये होते हैं, शामिल हैं।' *(Heredity*

Scanned with OKEN Scanner

consists of all the structures, physical characteristics, functions or copacities derived from parents and to other ancesstry, or species.–Douglas and Holland)

फलायड एल. रुच के अनुसार–'वंशानुक्रम उन कारकों के जैवकीय हस्तान्तरण का कुल योग है, जो शरीर की रचना को प्रभावित करते हैं।' *(Heredity is the totality of biologically transmitted factors that influence the structure of the body.–Floyd L. Ruch)*

जिस्बर्ट के अनुसार–"वंशानुक्रम माता-पिता द्वारा सन्तानों को जैवकीय या मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के हस्तान्तरण को सूचित करता है।" *(Heredity refers to the transmission by the parents to their offspring of certain characteristics, biological or psychological. —Gisbert)*

पीटरसन के अनुसार–"एक व्यक्ति अपने माता-पिता द्वारा पूर्वजों के वंश से जो कुछ भी अर्जित करता है, वंशानुक्रम के रूप में परिभाषित किया सकता है।" *(Heredity may be defined as what one gets from his ancesstral stock through his parents. —Peterson)*

रूथ बेनेडिक्ट के अनुसार–"माता-पिता से सन्तान को हस्तान्तरित होने वाले गुणों को वंशानुक्रम कहते हैं।" *(Heredity is the tranmmission of trains from parents to offspring. —Ruth Benedict)*

वंशानुक्रम अंग्रेजी भाषा के शब्द *(Heredity)* का हिन्दी अनुवाद है तथा अंग्रेजी का यह *(Heredity)* शब्द लेटिन भाषा के शब्द *(Hereditas)* से बना है, जिसका अर्थ है 'वह पूँजी जो बालक को अपने माता-पिता से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती है।'

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि प्रजनन प्रक्रिया द्वारा हस्तांतरित होने वाले जैवकीय एवं अन्य गुणों को वंशानुक्रम कहते हैं।

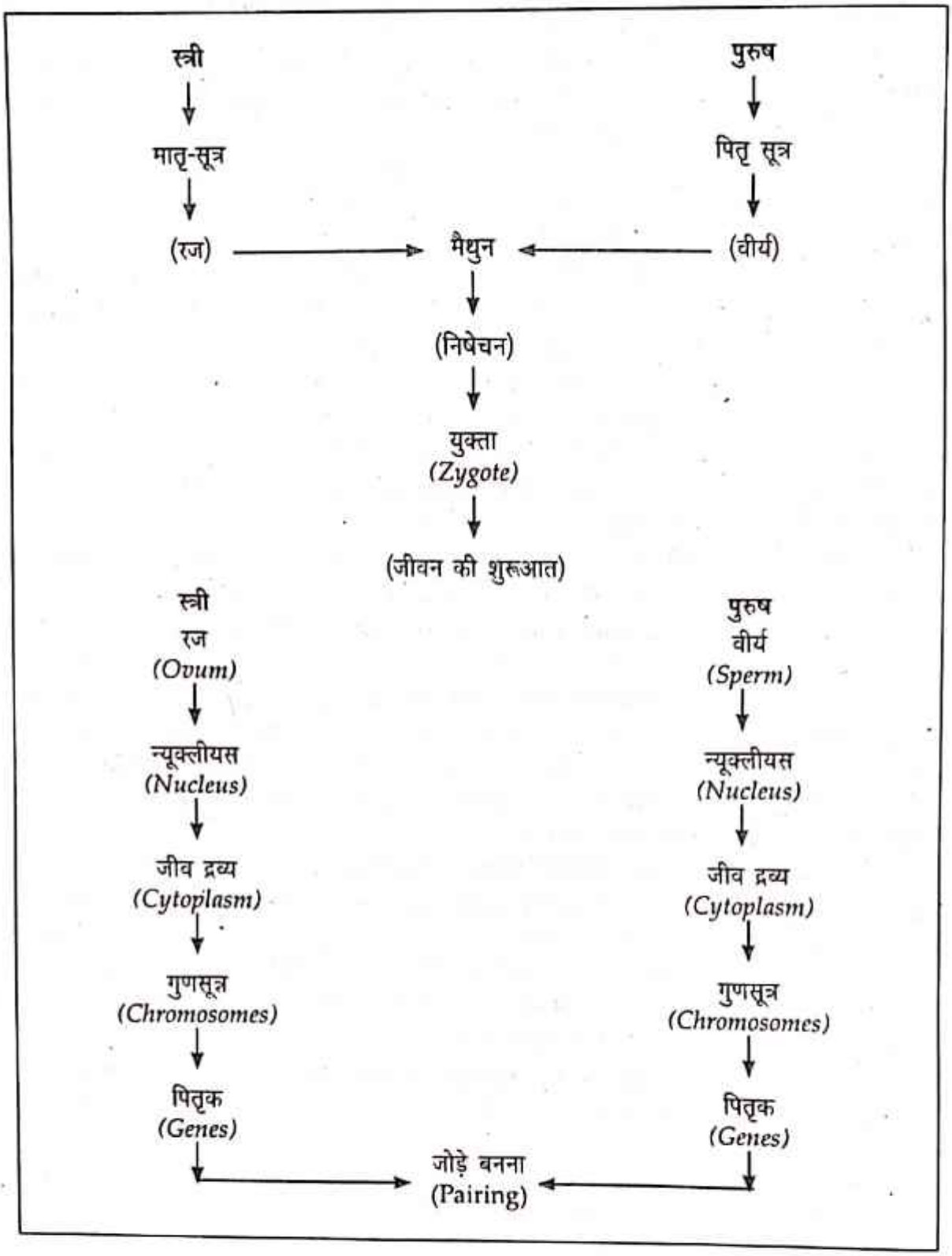
वंशानुक्रम की प्रक्रिया (Process of Heredity)–वंशानुक्रम की प्रक्रिया का सम्बन्ध जनन *(Reproduction)* से होता है। यह प्रक्रिया स्त्री और पुरुष के मिलन अर्थात् मैथुन *(Mating)* की प्रक्रिया से शुरू होती है। इस क्रिया में स्त्री और पुरुष के जनन अंग *(Reproductive Organs)* आपस में मिलते हैं और उत्पादक-कोशिकाएँ *(Reproductive Cells)* बनती हैं। स्त्री की उत्पादक कोशिका को रज *(Ova)* कहते हैं तथा पुरुष की उत्पादक कोशिकाओं को पितृ या वीर्य *(Sperms)* कहते हैं। पितृ-सूत्रों की संख्या हजारों में होती है, जबकि रजों की संख्या एक माहवारी चक्र *(Menstrual Cycle)* में एक ही होती है। कभी-कभी एक से अधिक रज भी हो सकते हैं।

मैथुन क्रिया के दौरान जनन-इन्द्रियों के मिलन से गर्भाशय *(Uterus)* के द्वार पर हजारों पितृ-सूत्र इकट्ठे हो जाते हैं तथा रज या मातृसूत्र *(Ovum)* तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया में केवल एक ही पितृसूत्र रज या मातृसूत्र तक पहुँचने में सफल हो पाता है तथा मातृ-सूत्र या रज को निषेचित *(Fertilize)* करता है। यह निषेचित रज युक्ता *(Zygote)* कहलाता है। रज या मातृसूत्र *(Ovum)* का निषेचित होना भी गर्भाधान कहलाता है तथा मानव जीवन की शुरूआत होती है। युक्ता *(Zygote)* का विकास कोशिका के निरन्तर विभाजन के परिणामस्वरूप होने लगता है।

यदि हम पितृसूत्र और मातृसूत्र या रज *(Sperm and Ovum)* की रचना का अध्ययन करें तो उनमें एक केन्द्रीय वस्तु न्यूक्लीयस *(Nucleus)* होती है, जो जीव-द्रव्य *(Proto plasm)* से घिरे होते हैं। न्यूक्लीयस के भीतर भी जीव-द्रव्य होता है, जिसे साईट्रोप्लास्म *(Cytoplasm)* कहते हैं। वीर्य और स्त्री रज के न्यूक्लीयस के जीव-द्रव्यों *(Cytoplasm)* में धागे जैसे गुणसत्र *(Chromosomes)* होते हैं। ये गुणसूत्र जोड़ों *(Pairs)* में होते हैं। गुणसूत्रों को वंश सूत्र भी कहते हैं। इन्हीं गुणसूत्रों पर छोटी-छोटी दानों जैसी गोल वस्तुएँ होती हैं जिन्हें 'पैतृक' *(Genes)* कहते हैं और ये पैतृक वंशानुक्रम के लिये उत्तरदायी होते हैं। हर गुणसूत्र पर 40 से 1000 या अधिक पैतृक होते हैं तथा यही पैतृक वंशावाहक *(Carriers)* का कार्य करते हैं। इन्हीं पैतृकों के द्वारा माता-पिता की विशेषताओं का स्थानान्तरण उनकी संतान में होता है।

एक निषेचित अंड *(Fertilized Ovum)* में गुणसूत्रों के 23 जोड़े *(Pairs)* होते हैं, जिनमें आधे पिता के तथा आधे माता के होते हैं। गुणसूत्रों पर उपस्थित पैतृक *(Genes)* बालकों के विशेष गुणों का कारण बनते हैं। यदि पिता के अच्छे पैतृक माता के अच्छे पैतृकों से मिल जायें तो बच्चा भी अच्छे गुणों वाला होगा। इस प्रकार बालक की व्यक्तिगत की सम्पूर्ण रचना गर्भाधान के समय गुणसूत्रों के जोड़े बनने वाला माता-पिता के पैतृकों *(Genes)* के असंख्य संयोजनों *(Combinations)* पर आधारित होती है।

Scanned with OKEN Scanner



वंशानुक्रम के नियम
(Laws of Heredity)

वंशानुक्रम के कुछ नियम हैं, जिनका अध्ययन आवश्यक है। इन नियमों को मैंडल *(Mendal)* ने विभिन्न प्रयोगों के बाद प्रतिपादित किया। वे नियम निम्नलिखित हैं–

(1) समान-समान को जन्म देता है (Like Begets Like)–इस नियम से अभिप्राय यह है कि जैसे माता-पिता होते हैं, सन्तान भी उसी प्रकार की होगी, जैसे–बुद्धिमान माता-पिता के बच्चे बुद्धिमान और

Scanned with OKEN Scanner

सामान्य माँ-बाप के बच्चे सामान्य बुद्धि के ही होंगे। इसी प्रकार सुन्दर माता-पिता के बच्चे भी सुन्दर होंगे। लेकिन इस नियम का हम सामान्यीकरण *(Generalization)* नहीं कर सकते। कभी-कभी सुन्दर माता-पिता के बच्चे कुरूप होते हैं तथा तीव्र बुद्धि माता-पिता के बच्चे मंद बुद्धि के होते हैं।

(2) भिन्नता का नियम (Law of Variation)–कई बार बच्चे अपने माता-पिता की सच्ची नकल नहीं होते। उनमें कई तरह की भिन्नताएँ होती हैं। इन अन्तरों का कारण माता-पिता के पैतृकों *(Gemes)* के संयोजनों *(Combinations)* से होता है। व्यक्ति के पैतृक ही विशेषताओं को निर्धारण करते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि पहले दोनों नियम एक-दूसरे के विरोधी हैं।

(3) प्रत्यागम का नियम (Law of Regression)–सौरेन्सन *(Sorenson)* ने प्रत्यागम के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा कि–"तीव्र बुद्धि वाले माँ-बाप के बच्चे कम तीव्र बुद्धि के भी हो सकते हैं। प्रतिभाशाली माता-पिता से कम प्रतिभाशाली सन्तान होने की प्रवृत्ति और निम्न कोटि के माता-पिता से कम निम्न कोटि की सन्तान होने की प्रवृत्ति ही प्रत्यागमन कहलाती है।"

अतः अध्यापक के लिये यह आवश्यक है कि बालक या विद्यार्थी की प्रकृति और उसका स्तर जानने के लिये वंशानुक्रम के इन तीनों नियमों का ज्ञान प्राप्त करें और इनके आधार पर बालक के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें ताकि उस विश्लेषण के परिणामों के आधार पर वह बालक के लिये अपनी शिक्षण नीति निर्धारित कर सकें।

वातावरण का अर्थ
(Meaning of Environment)

यह तो निश्चित ही है कि गर्भाधान के समय विशेषताओं का हस्तान्तरण पैतृकों *(Genes)* द्वारा हो जाता है। गर्भाधान के पश्चात् इन विशेषताओं का पालन-पोषण या विकास करने के लिये उचित वातावरण की अति आवश्यकता पड़ती है। उचित वातावरण के अभाव में इन विशेषताओं या गुणों का विकास संभव नहीं। गर्भाधान के पश्चात् सम्बन्धित शक्तियाँ सक्रिय हो उठती हैं। वातावरण किसे कहा गया है–यह निम्नलिखित परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है–

रॉस *(Ross)* के अनुसार–"वातावरण वह हर वस्तु हैं जो किसी अन्य वस्तु को घेरे हुए और उस पर सीधे अपना प्रभाव डालता है।" *(The environment, as anything immediately surrounding as object exerting a direct or influence on it.)*

एनास्टसी *(Anastasi)* के अनुसार–"वातावरण वह हर वस्तु है, जो व्यक्ति के पैतृकों के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को प्रभावित करता है।" *(The environment is everything that affects the individual except the genes.)*

वुडवर्थ और मार्क्विस *(Woodworth and Marquis)* के शब्दों में, "वातावरण में वे सभी बाहरी तत्व आ जाते हैं, जिन्होंने व्यक्ति को अपनी जीवन-लीला प्रारम्भ करने के समय से प्रभावित किया हो।" *(Environment covers all the outside factors that acted on the individual since he began life.)*

डुगलस और हालैंड *(Douglas and Holland)* के अनुसार–"वातावरण वह शब्द है, जिसका प्रयोग समस्त बाहरी शक्तियों, प्रभावों और परिस्थितियों का सामूहिक रूप से वर्णन करने के लिए किया जाता है तथा जो जीवधारियों के जीवन, स्वभाव, व्यवहार और अभिवृद्धि, विकास तथा परिपक्वता पर प्रभाव डालता है।" *(The term environment is used to describe, in the aggregate, all the external forces, influences and conditions, which affect the life, nature, behaviour and the growth, development and maturity of living organisms.)*

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि वातावरण में वे सभी वस्तुएँ शामिल हैं जो दूसरी वस्तुओं को घेर कर प्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव छोड़ें। वातावरण गर्भाधान के समय से ही रचित हो जाता है तथा अंत तक अपना प्रभाव प्रदर्शित करता है। वंशानुक्रम के तत्वों का विकास करने में वातावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

Scanned with OKEN Scanner

वातादरण के प्रकार
(Types of Environment)

वातावरण निम्न प्रकार का हो सकता है–

(i) प्राकृतिक वातावरण *(Natural Environment)*

(ii) सामाजिक या सांस्कृतिक वातावरण *(Social or Cultural Environment)*

(iii) बौद्धिक या मानसिक वातावरण *(Intellectual or Mental Environment)*

(iv) संवेगात्मक वातावरण *(Emotional Environment)*

(i) प्राकृतिक वातावरण (Natural Environment)–प्राकृतिक वातावरण में सारी प्रकृति शामिल है, जैसे–मनुष्य के सम्पर्क में आने वाले इस धरती के सभी जीव-जन्तु तथा विभिन्न शक्तियाँ। प्राकृतिक वातावरण से मनुष्य का आम रहन-सहन उसी वातावरण के अनुसार ही बदलता है। जैसे गर्म देशों की जलवायु के अनुसार व्यक्ति उसी प्रकार स्वयं में परिवर्तन महसूस करता है। इसी प्रकार ठंडे देशों की जलवायु के अनुसार भी व्यक्ति में परिवर्तन आ जाते हैं। इन्हीं जलवायु के कारण खाने-पीने तथा कपड़ों आदि में परिवर्तन आ जाते हैं।

(ii) सामाजिक या सांस्कृतिक वातावरण (Social or Cultural Environment)–इस प्रकार के वातावरण में समाज को बनाने वाले तत्व शामिल हैं। सामाजिक वातावरण परिवार, स्कूल तथा सामाजिक सम्बन्धों से निर्मित होता है। परिवार में उपस्थित भाई-बहन, माता-पिता तथा सम्बन्धी बालक के व्यक्तित्व पर अपनी छाप छोड़ते हैं। स्कूल में स्कूल के अध्यापक, सहपाठी तथा उनके व्यवहार आदि बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। सामाजिक सम्बन्धों से अभिप्राय है–किसी विशेष प्रकार का खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल आदि का प्रभाव। सामाजिक वातावरण को सामाजिक वंशानुक्रम *(Social Heredity)* या सामाजिक दाय *(Social Hertiage)* भी कहते हैं तथा यही किसी देश की संस्कृति होती है।

(iii) बौद्धिक या मानसिक वातावरण (Intellectual or Mental Environment)– मानसिक वातावरण से तात्पर्य उन सभी मानसिक परिस्थितियों से है, जो मन अथवा मस्तिष्क पर अनुकूल प्रभाव डाल सकें। इस दृष्टिकोण से पुस्तकें, पुस्तकालय, रेडियो, रुचियाँ, मनोरंजन के साधन, गोष्ठियाँ, प्रयोगशालाएँ आदि सभी मानसिक वातावरण के आवश्यक तत्त्व हैं। उन तत्त्वों के सक्रिय होने से बालक की अधिगम प्रक्रिया *(Learing Process)* सक्रिय रहती है।

(iv) संवेगात्मक वातावरण (Emotional Environment)–संवेगों पर नियंत्रण पाना अति आवश्यक होता है। यह नियंत्रण उनके उपयुक्त प्रशिक्षण से ही संभव हो सकता है। संवेगों की दिशा पर नजर रखना अति आवश्यक होता है। इसके लिये बालक के मित्रों, सम्बन्धियों तथा अध्यापकों का संवेगात्मक स्वभाव ही बालक के संवेगात्मक वातावरण का निर्माण करता है।

वंशानुक्रम और वातावरण का बालक के विकास पर प्रभाव (Effect of Heredity and Environment on Child's Development)–(A) वंशानुक्रम का प्रभाव (Effect of Heredity) –वंशानुक्रम का प्रभाव व्यक्तियों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर निश्चित रूप से पड़ता है। वंशानुक्रम व्यक्तित्व के सभी पक्षों को प्रभावित करता है, जैसे शारीरिक, मानसिक, व्यावसायिक, सामाजिक, संवेगात्मक पक्ष इत्यादि। उदाहरणार्थ, लम्बे कद के माता-पिता की संतान भी लम्बी होती है। बुद्धिमान माता-पिता की संतान भी बुद्धिमान होती है। कैटल *(Cattel)* के अनुसार–"व्यावसायिक कुशलता भी वंशानुक्रम पर ही निर्भर करती है।" इसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित माता-पिता की संतान भी सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठित होती है। गाल्टन *(Galton)* ने भी कहा है कि मानव की महानता उसके वंशानुक्रम पर आधारित है। महान् पुरुषों की जीवन गाथाएँ इस बात को सिद्ध करती हैं।

वंशानुक्रम के प्रभाव के पक्ष में तर्क (Arguments in favour of Hereditary Influences) – वंशानुक्रम के प्रभाव को जानने के लिये कई विधियों का प्रयोग किया गया है, जैसे–

(1) परिवारों का अध्ययन(2) जुड़वाँ बच्चों का अध्ययन

(3) रक्त का अध्ययन(4) निम्न श्रेणी के जानवरों का प्रयोग।

Scanned with OKEN Scanner

(1) परिवारों का अध्ययन (Study of Families)–परिवारों के अध्ययन में गाल्टन द्वारा किये अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। उसने 971 सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन की कथाओं का अध्ययन किया। इन व्यक्तियों में जज, कलाकार एवं मंत्री आदि शामिल थे। दूसरी ओर उसने 977 अन्य सामान्य और गरीब व्यक्तियों के जीवन की कथाओं का अध्ययन किया। 977 सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के समूह में 535 व्यक्ति बुद्धिमान निकले। इसी प्रकार 977 सामान्य और गरीब व्यक्तियों के समूह में केवल 5 व्यक्ति ही बुद्धिमान निकले, शेष सभी कम बुद्धि के थे। इससे यह निषकर्ष निकाला गया कि बुद्धि का हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अवश्य होता है।

इसी प्रकार गोडार्ड *(Goddard, 1916)* ने पार्टिन कालीकार्क व्यक्ति के परिवार का अध्ययन किया। कालीकार्क एक सिपाही था और उसने दो स्त्रियों से विवाह किया। एक स्त्री मन्द बुद्धि तथा दूसरी स्त्री तीव्र बुद्धि वाली थी। मन्दबुद्धि वाली स्त्री से 480 व्यक्ति उत्पन्न हुए तथा तीव्र बुद्धि थी, 32 वेश्याएँ, 24 शराबी, 46 सामान्य और 36 अवैध सन्तान, 3 मिरगी के रोगी और शेष अपराधी से केवल 5 मन्द बुद्धि तथा चरित्रहीन निकले। शेष सभी सफल व्यापारी, डाक्टर, अध्यापक आदि निकले। इससे भी वह सिद्ध होता है कि बुद्धि का हस्तांतरण होता है।

इसी प्रकार डगडेल *(Dugdale 1877)* ने ज्यूक *(Guke)* नामक व्यक्ति के परिवार का अध्ययन किया। वह एक दुराचारी मछेरा था। उसने अपनी तरह की एक स्त्री से विवाह किया। सन् 1720 से 1877 ई. तक उसकी पांच पीढ़ियों तक 1000 व्यक्ति उत्पन्न हुए। इनमें 300 बचपन में ही मर गये, 440 रोग ग्रस्त थे, 310 व्यक्ति अनाथालय में पहुँचे, 130 अपराधी निकले। केवल 110 ही ऐसे व्यक्ति निकले जो सामान्य रूप से जीवन बिताने के योग्य हुए। डगडेल न्यूयार्क में जेल कमिश्नर था। उसे अपने जेल के रिकार्ड में कई व्यक्तियों के न्याय लगातार आते रहने पर आश्चर्य हुआ। इस पर उसने उनके परिवारों का अध्ययन किया और उसने उन्हीं नकली नाम 'ड्यूक' दिया। डगडोल के इस अध्ययन का रिकार्ड उसकी मृत्यु के पश्चात् ऐस्ट्रा *(Estra Brook, 1916)* के हाथों में पड़ गया। उसने 1877 से 1915 तक उस परिवार को ढूंढा तथा और भी अध्ययन सम्बद्ध साहित्य में आते हैं जैसे नेमस, जीरोस, डैक्स, हिलफाक। ये सभी नकली ही पाये गये हैं।

प्रो. ट्राईओन *(Prof Tryon, 1940)* ने चूहों, कुत्तों और बन्दरों पर भी प्रयोग किये। उसने तीव्र और मन्द बुद्धि वाले चूहों की 8 पीढ़ियों का अध्ययन किया और पाया कि मन्द बुद्धि चूहों ने मन्द बुद्धि चूहे ही पैदा किये तथा तीव्र बुद्धि चूहों ने तीव्र बुद्धि चूहे।

(2) जुड़वाँ बच्चों का अध्ययन (Study of Twins)–वंशानुक्रम का प्रभाव देखने के लिये जुड़वाँ बच्चों पर भी अध्ययन किये गये। जुड़वाँ बच्चे भी दो प्रकार के होते हैं–समरूप जुड़वाँ बच्चे *(Identical twins)* और बन्धु यमज *(Fraternal Twins)*

श्वेसिंगर *(Schwesinger)* ने सम-यमज या समरूप जुड़वाँ बच्चों *(Identical Twins)* का अध्ययन किया। उसने 10 जोड़े सम-यमजों पर अध्ययन किया। प्रत्येक जोड़े के एक सदस्य को एक तरह के तथा दूसरे सदस्य को दूसरी तरह के वातावरण में पाला गया। बड़े होने पर दोनों बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन किया। अधिकतर जोड़ों के सदस्य बच्चों की बुद्धिलब्धि में कोई अन्तर नहीं था, यदि था भी तो बहुत ही कम था।

इसी प्रकार आईसैनक *(Eysenck, 1956)* ने भी सम-यमजों और बन्धु-यमजों पर प्रयोग किया था। बुद्धिलब्धि के आधार पर यमजों में सह-सम्बन्ध 0.82 और बन्धु-यमजों में सह-सम्बन्ध 0.38 पाया गया। इस प्रकार जुड़वाँ बच्चों का अध्ययन भी वंशानुक्रम के महत्त्व को बल प्रदान करता है।

(3) रक्त सम्बन्धों का अध्ययन (Study of Blood Relationships)–जैसे-जैसे खून के सम्बन्धों की डिग्री बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उनमें समानताएँ भी बढ़ती जाती हैं तथा असमानताएँ कम होती चली जाती हैं। बच्चों और माता-पिता का खूनी रिश्ता सबसे निकट होता है। जुड़वाँ बच्चों में माता-पिता के सबसे अधिक निकट समय-यमज *(Identical Twins)* होते हैं। क्योंकि उनकी वृद्धि का आकार एक ही संयुक्त कोष *(Zygote)* होता है। इसके पश्चात् बन्धु यमज *(Fraternal Twins)* का स्थान आता है, क्योंकि इनका

Scanned with OKEN Scanner

आधार एक ही स्त्री होती है। इसके पश्चात् अन्य रिश्ते आते हैं। बुद्धिलब्धि पर आधारित खूनी-रिश्तों में सह-सम्बन्धों की निम्नलिखित तालिका से वंशानुक्रम का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है–

सम्बन्ध (Relationship)	सह-सम्बन्ध (Correlation)
(1) सम यमज *(Identical Twins)*	.85 – .90
(2) बन्धु यमज *(Fraternal Twins)*	.55 – .65
(3) सगे भाई-बहन *(Siblings i.e.*	.50 – .60
other brothers & Sisters)	
(4) माता-पिता तथा बच्चा *(Parents-child)*	.40 – .50
(5) चचेरे भाई-बहन *(Cousins)*	.25 – .35
(6) दादा-पोता	.25 – .35

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि समीप के खूनी रिश्तों में वंशानुक्रम का प्रभाव अत्यधिक होगा। बहुत ही निकटता के रिश्ते में बुद्धि के स्तरों में अधिक समानता होगी।

(4) निम्न श्रेणी के जानवरों पर प्रयोग (Experiments on Lower Animals)–टालमैन *(Tolman)* और उसके विद्यार्थियों ने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में चूहों पर एक प्रयोग किया। उन्होंने चुस्त और स्वस्थ *(Bright rats)* चूहों को चुस्त और स्वस्थ चूहों के साथ तथा नीरस और ढीले-ढाले चूहों को इसी प्रकार के चूहों के साथ प्रसावन *(Breeding)* किया। स्वस्थ और नीरस चूहों का निर्धारण मेज *(Maze)* अथवा भूल-भुलैया में सीखने का क्रियाओं पर आधारित था। प्रत्येक पीढ़ी में पुस्तक के साथ चुस्त और नीरस के साथ नीरस चूहों का अन्तः प्रसावन *(In breeding)* किया गया। सातवीं पीढ़ी तक दोनों समूहों के सीखने के अंकों में किसी प्रकार का आपसी सम्मिश्रण *(Overlaping)* नहीं था। इस अध्ययन से भी यही बात सामने आती है कि विशेषताओं का हस्तांतरण वंशानुक्रम द्वारा अवश्य होता है।

वातावरण का प्रभाव (Effect of Environment)–वातावरणवादी *(Environmentalists)* इस बात पर बल देते हैं कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का अनुमान वंशानुक्रम से कम, उसके वातावरण से अधिक लगाया जा सकता है। सन् 1873 में एक स्विस लेखक डीकैन डोले *(De condolle)* ने यह दिखाने का प्रयास किया कि वंशानुक्रम नहीं बल्कि वातावरण ही वह मुख्य कारक है, जिससे बहुत ही विद्वान *(Genius)* व्यक्ति पैदा होते हैं। वातावरण का प्रभाव जानने के लिये निम्न प्रयोगों के परिणामों का तर्क दिया जा सकता है।

वातावरण के प्रभाव के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Environment)

(1) जंगलों से मिले बच्चों पर प्रयोग (Experiments on children traced from forests)–जंगलों से कई मानव मिले जिनका समाजीकरण बिल्कुल शून्य था। ऐसे मानवों का व्यवहार भी जंगली जानवरों की तरह ही था। ऐसा ही एक रामू नाम का बालक जंगलों से मिला। उसे भेड़िया बालक भी कहा गया। छोटी आयु में ही उसे भेड़िये ने उठा लिया था तथा वह जंगली वातावरण में ही पला। वह भेड़ियों के बीच रहकर भेड़ियों जैसा ही व्यवहार करने लगा।

इसी प्रकार जिंग *(Zingg)* ने 30 ऐसे ही व्यक्तियों का अध्ययन किया जो प्रारम्भिक जीवन काल में जंगलों में रहे तथा असभ्य जीवन बिताया। लेकिन जब उन्हें समाज में लाया गया तो सामाजिक परम्पराओं को सीखने के लिये बहुत समय लगा। ऐसी ही घटना दो बहनों अमला और कमला की है। उन्हें भी छोटी आयु में भेड़िया उठा ले गया तथा उन्हें बंगाल के जंगलों में पाया गया। एक की आयु 2 वर्ष की तथा दूसरी की 9 वर्ष की थी। इनका व्यवहार भी जानवरों जैसा ही था। शहर में लाकर इनका समाजीकरण करने का प्रयास किया गया। अमला की तो मृत्यु हो गई लेकिन कमला कुछ सीमा तक समायोजित होने में सफल हुई।

Scanned with OKEN Scanner

(2) कैलोग का प्रयोग (Kellog,s Experiment)–कैलोग ने दस मास के एक चिम्पैंजी और अपने लड़के के साथ प्रयोग किया। उसके लड़के की आयु 7 माह की थी। दोनों को एक ही वातावरण में रखा गया था और एक जैसा ही पालन-पोषण किया गया था। परिणाम यह हुआ कि चिम्पैंजी को भी चम्मच के साथ खाना और गिलास से पानी पीना आ गया। वह कुछ शब्दों का अर्थ भी समझने लगा था। यह प्रयोग वातावरण के प्रभाव को सिद्ध करता है।

(3) मुरे टापू के लोग (People of Murray Island)–मुरे टापू के लोगों को 6 अंक से आगे गिनती आती ही नहीं थी और न ही उनकी भाषा में 6 से आगे कोई शब्द ही था। स्काटलैंड ने इस टापू पर अधिकार करके उन्हें शिक्षा दी। कुछ ही समय में उस टापू के लोगों में भी सभ्य लोगों जैसी योग्यताएँ आ गई।

(4) महान व्यक्तियों का अध्ययन (Study of Gerat Men)–फैंडोले, जो फ्राँस का रहने वाला था, ने इंग्लैंड और फ्रांस के 552 प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन इतिहासों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में उसने स्वास्थ्य और अनुकूल वातावरण का योगदान अधिक किया।

(5) फे और ऐडिथ का अध्ययन (Study of Fay and Edith)–फे *(Fay)* और ऐडिथ *(Edith)* दो जुड़वाँ बच्चियाँ थीं जिन्हें बचपन में ही अलग कर दिया गया था; बड़े होने पर एक का विवाह एक व्यापारी से और दूसरी का विवाह एक किसान से हुआ। दोनों के व्यवहारों में अत्यधिक अन्तर पाया गया। यह अन्तर दोनों बहनों के ससुराल में वातावरण की भिन्नताओं के कारण ही समझे जाते हैं।

(6) बुद्धि पर किये गये प्रयोग (Experiments or Intelligence)–जेम्स और रीस *(James and Rece)* नामक जुड़वाँ बच्चों पर भी प्रयोग किया गया। इनमें एक को पहाड़ पर तथा दूसरे को गाँव में पाला गया। जब इनका बुद्धिलब्धि का परीक्षण किया गया तो उन दोनों की बुद्धिलब्धि में 19 अंकों का अन्तर पाया गया। इसी प्रकार फ्रीमैन *(Freeman, 1927)* ने 70 बच्चों को दूषित वातावरण से निकाल कर अच्छे वातावरण में रखा। फिर उनकी बुद्धिलब्धि के अंकों में 10 अंकों की वृद्धि पाई गई। टर्मन और मैरिल *(Terman and Merril)* ने भी बच्चों के सामाजिक-आर्थिक स्तर और बुद्धिलब्धि पर प्रयोग किया।

(7) गोर्डन द्वारा किया प्रयोग (Experiment by Gordon)–गोर्डन ने समाज से दूर, नदियों के किनारे पर रहने वाले व्यक्तियों के बच्चों का अध्ययन किया। उनकी बुद्धिलब्धि कम पाई गई, क्योंकि उन्हें मानसिक विकास के लिये उपयुक्त वातावरण नहीं मिल सका।

(8) न्यूमैन, फ्रीमेन और होजिंगर द्वारा अध्ययन (A study by Newman, Freeman and Holzinger)–इन लोगों ने 20 सम-यमजों *(Identical Twins)* के जोड़ों का अध्ययन किया। इन जोड़ों के सदस्यों को जन्म के समय ही अलग कर दिया गया। उनके स्वास्थ्य, शारीरिक विकास, बुद्धि और उनकी विषय-वस्तु सम्बन्धी योग्यताओं का शैक्षिक प्रशिक्षणों द्वारा परीक्षण किया गया। इनमें से एक जुड़वाँ बालिका के, जिसका पालन-पोषण खेत में हुआ, मजबूत शरीर का विकास हुआ। उसका भार भी उसकी बहन, जिसका पालन-पोषण शहर में हुआ था और उसने थोड़ी कड़ी मेहनत भी की थी, का भार उसकी जुड़वाँ बहन से 10 पौंड कम था। उसकी यह जुड़वाँ बहन आरामदायक विवाहित जीवन बिता रही थी।

उपरोक्त अध्ययनों के आधार पर वंशानुक्रम और वातावरण का बालक के विकास पर प्रभाव स्पष्ट हो होता है। इन्हीं अध्ययनों द्वारा वंशानुक्रम और वातावरण के महत्त्व का ज्ञान होता है।

वंशानुक्रम का महत्त्व (Importance of Heredity)–

(1) वंशानुक्रम के परिणामस्वरूप अनेक व्यक्तियों में अनेक भिन्नताएँ होती हैं। विकास-प्रक्रिया के साथ-साथ ये भिन्नताएँ स्पष्ट होती चली जाती हैं। इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर अध्यापक शिक्षा की योजना बना सकता है।

(2) वंशानुक्रम द्वारा बालकों की जन्मजात क्षमताओं का पता चलता है, जो अध्यापक को उनके शिक्षा कार्य में सहायक हो सकता है।

(3) वंशानुक्रम के कारण बच्चों की सीखने की योग्यता में अन्तरों का ज्ञान होता है।

(4) वंशानुक्रम से कुल मूल-प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिनसे वांछनीय प्रवृत्तियों की ओर ध्यान देकर अध्यापक अवांछनीय प्रवृत्तियों का दमन कर सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

(5) वंशानुक्रम के कारण ही लड़कों और लड़कियों में लिंगीय भेद होता है, जिसके कारण विभिन्न विषयों में उनकी योग्यता कम या अधिक होती है। अध्यापक उनके अनुसार ही शिक्षा की व्यवस्था कर सकता है।

(6) वंशानुक्रम के परिणामस्वरूप ही शारीरिक विभिन्नता होती है। अध्यापक इस ज्ञान के आधार पर उनके शारीरिक विकास में योगदान प्रदान कर सकता है।

वातावरण का महत्त्व
(Importance of Environment)

(1) बालक के विकास की दिशा को निश्चित करने में वातावरण सक्रिय होता है। वातावरण से बालक के विकास की गुणवत्ता भी निर्धारित की जा सकती है, जैसे बालक का अच्छा या बुरा होना, चरित्रवान होना, देश-भक्त या देशद्रोही होना।

(2) यदि कोई अध्यापक वातावरण को समझ लेता है तो वह अपने छात्रों के लिये ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकता है, जिसमें उनकी अभिव्यक्ति संभव हो सके।

(3) निहित सांस्कृतिक वातावरण से बालकों में आदर्शों का अनुकरण करने वाला व्यवहार विकसित होता है। अतः अत्यधिक अध्यापक अपने छात्रों के सम्मुख सांस्कृतिक वातावरण को बनाए रखें ताकि छात्र उनको आदर्शों का अनुकरण करते रहें।

(4) एक अध्यापक अपने विद्यार्थियों की रुचियों, प्रवृत्तियों तथा अनुकूल वातावरण की व्यवस्था कर सकता है यदि वह बालकों के वातावरण को समझ लें।

(5) बालक का काफी समय परिवार, आस-पड़ोस, खेल के मैदान में ही बीतता है। उसका व्यक्तित्व इनसे अत्याधिक प्रभावित होता है। अध्यापक इन संस्थानों या स्थानों के पर्यावरण की ओर विशेष ध्यान देकर बालकों को रास्ता दिखा सकता है।

(6) बालकों की भावनाएँ भी स्कूल के वातावरण से अत्यन्त प्रभावित रहती हैं। वातावरण पर नियंत्रण करके उनकी संतुलित भावनाओं का विकास किया जा सकता है। भावनाओं के संतुलित विकास होने का अर्थ है—उसके चरित्र निर्माण की प्रक्रिया।

उपरोक्त विवरण से यह बात सत्य सिद्ध होती है कि वंशानुक्रम और वातावरण का बालक की शिक्षा में बहुत महत्त्व है। अध्यापक के लिए इन दोनों का ज्ञान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

◆◆◆

2. संक्षिप्त टिप्पणी अथवा नोट लिखें—वंशानुक्रम तथा वातावरण का बालक की शिक्षा में या अध्यापक के लिये महत्त्व या आवश्यकता या अध्यापक की भूमिका।

अथवा

नोट लिखें—वंशानुक्रम और वातावरण का बालक की शिक्षा में महत्त्व या आवश्यकता ।

अथवा

बालकों को वंशानुक्रम और वातावरण से सम्बन्धित ज्ञान प्रदान करने में अध्यापक की भूमिका को स्पष्ट करें।

अथवा

शिक्षा के क्षेत्र में वंशानुक्रम और वातावरण से सम्बन्धित ज्ञान का क्या महत्त्व या आवश्यकता है? स्पष्ट करें।

उत्तर—अध्यापक की भूमिका (Role of a Teacher)—शिक्षा जगत में वंशानुक्रम और वातावरण की मुख्य भूमिका होती है। अध्यापक को इन दोनों का ज्ञान अति आवश्यक है। अध्यापक को भी वंशानुक्रम और वातावरण का ज्ञान होना जरूरी है। शिक्षा के क्षेत्र में वंशानुक्रम और वातावरण का महत्त्व या आवश्यकता निम्नलिखित है—

Scanned with OKEN Scanner

(i) अध्यापक विशेष रूप से स्कूलों में अनुकूल वातावरण बना सकते हैं ताकि विद्यार्थियों का अधिगम प्रभावशाली ढंग से हो सके। इस प्रकार के वातावरण में पुस्तकालय का प्रबन्ध, सहगामी क्रियाओं का उचित प्रबन्ध, पढ़ाई में उचित निर्देशन, प्रयोगशालाओं का उचित प्रबन्ध, खेल के मैदानों की क्रियाओं का उचित प्रबन्ध, पढ़ाई में उचित निर्देशन, खेल मैदानों का, शैक्षिक दृष्टि से उचित कमरों का प्रबन्ध आदि शामिल हैं।

(ii) इनका ज्ञान उचित सामाजिक वातावरण के प्रबन्ध में सहायक सिद्ध हो सकता है। जैसा कि हम जानते हैं कि आस-पड़ोस का वातावरण, स्कूल तथा समाज का वातावरण मानव के व्यक्तित्व को निखारने में सहायक होता है। अतः सामाजिक वातावरण उत्पन्न करने में माता-पिता और अध्यापक अपना योगदान दे सकते हैं।

(iii) वर्तमान युग में बाल-केन्द्रित शिक्षा प्रचलन बहुत अधिक है। इस बाल-केन्द्रित शिक्षा के युग में बालकों का शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत निर्देशन भी अति आवश्यक है। इसलिये वंशानुक्रम और वातावरण का ज्ञान परम आवश्यक है।

(iv) मनोवैज्ञानिक बालकों के व्यक्तिगत अन्तरों के समझने के लिये वंशानुक्रम और वातावरण के ज्ञान को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। इन व्यक्तिगत अन्तरों के ज्ञान के आधार पर ही अध्यापक अपनी शिक्षण पद्धति तय कर पायेगा। अतः वंशानुक्रम और वातावरण इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

(v) कक्षा में अध्यापक बच्चों को अभिवृद्धि *(Growth)* और विकास *(Development)* के बारे में अपनी सलाह दे सकता है, लेकिन ऐसा वह तभी कर सकेगा यदि उसे वंशानुक्रम और वातावरण का ज्ञान होगा। उदाहरणार्थ—यदि कोई बच्चा शरारती है तो अध्यापक वंशानुक्रम और वातावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रयोग करते हुए यह जानने का प्रयास करेगा कि कहीं उसका वातावरण जहाँ वह अधिकतर समय बिताता है, दूषित तो नहीं? बालक के सीखने की गति का मंद होना उसके दूषित वातावरण का परिणाम भी हो सकता है। सीखने के लिये उद्दीपन *(Stimulation)* की आवश्यकता होती है। इसके बिना बालक के व्यवहार में परिवर्तन संभव नहीं होता। वातावरण इस उद्दीपन का कार्य करता है।

(vi) पारिवारिक वातावरण अनुकूल बनाने के लिये माता-पिता का सहयोग भी अपेक्षित है, क्योंकि अनौपचारिक शिक्षा का आरम्भ तो घर से ही होता है। अतः माता-पिता अध्यापक की सहायता से या अध्यापक माता-पिता की सहायता से बच्चों की रुचियों, क्षमताओं, आवश्यकताओं, अभिरुचियों *(Aptitudes)* तथा व्यक्तित्व के अन्य तत्त्वों का अध्ययन करे तथा उसके अनुसार ही अनुकूल वातावरण तैयार करे।

(vii) वंशानुक्रम के नियम के अनुसार, कभी-कभी योग्य माता-पिता की सन्तान अयोग्य और अयोग्य माता-पिता की सन्तान योग्य हो सकती है। शिक्षक को इन नियमों की जानकारी होने पर वह छात्रों के साथ समुचित प्रकार का व्यवहार कर सकता है।

(viii) वुडवर्थ *(Woodworth)* ने कहा है कि देहाती बालकों की अपेक्षा शहरी बालकों के मानसिक स्तर की श्रेष्ठता का कारण वंशानुक्रम है। शिक्षक के लिए यह ज्ञान उनके मानसिक स्तरों के अनुरूप बना सकता है।

(ix) वंशानुक्रम के कारण बालक-बालिकाओं में लिंग-भेद होता है, जिनके कारण विभिन्न विषयों में उनकी योग्यता कम या अधिक होती है। शिक्षक को उनके लिंग उपयुक्त विषयों के अध्ययन की व्यवस्था करनी चाहिए।

(x) न्यूमैन *(Newman)* के अनुसार—"वातावरण द्वारा शारीरिक लक्षण सबसे कम प्रभावित होते हैं, बुद्धि उससे अधिक, शिक्षा तथा ज्ञान-प्राप्ति उससे भी अधिक तथा व्यक्तित्व एवं स्वभाव सबसे अधिक।"

Scanned with OKEN Scanner

(xi) आधुनिक शिक्षालयों में बालक के विकास हेतु वातावरण और वंशानुक्रम दोनों की ओर ध्यान दिया जाता है। विभिन्न परीक्षणों द्वारा बालकों की योग्यता-परीक्षा करके उन्हें सर्वोत्तम विकास के अनुकूल वातावरण दिया जाता है।

(xii) फ्रोबेल का कथन है—"विद्यालय बालक के विकास का वातावरणीय साधन है" अतः पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं, पुस्तकालय, खेलकूद, व्यायाम आदि के द्वारा अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए।

सारांश (Conclusion)—अन्त में उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शिक्षक को वातावरण तथा वंशानुक्रम दोनों का ज्ञान होना परमावश्यक है। बाल-विकास की दृष्टि से दोनों तत्वों का एक समान महत्त्व है। वुडवर्थ के अनुसार—"जिस प्रकार एक मोटर-कार के लिए इंजन और पेट्रोल दोनों आवश्यक हैं, उसी प्रकार बालक के विकास हेतु वंशानुक्रम तथा वातावरण का समान महत्त्व है।" मानव-व्यवहार को निर्धारित करने में वंशानुक्रम तथा वातावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सोरेन्सन के अनुसार, "शिक्षक के लिए मानव-विकास पर वंशानुक्रम और वातावरण के सापेक्षिक प्रभाव और पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान विशेष महत्त्व रखता है।" इसीलिए विद्यालय के समस्त कार्यक्रम बालक के वंशानुक्रम और वातावरण के अनुकूल होने चाहिएँ।

◆◆◆

1.7 वृद्धि तथा परिपक्वता का सम्प्रत्यय (Concept of Growth and Maturation)

वृद्धि का संप्रत्यय (Concept of growth)

1. वृद्धि और विकास से आपका क्या अभिप्राय है? वृद्धि और विकास का ज्ञान अध्यापक के लिए क्यों आवश्यक है?

(What do you mean by growth and development ? Why the knowledge of growth and development is essential for a teacher ?)

अथवा

वृद्धि क्या है? वृद्धि तथा विकास में क्या अंतर है?

(What is Growth? What is difference between Growth and Development?)

अथवा

अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर स्थापित कीजिए।

(Establish difference between growth and development.)

उत्तर—व्यक्ति की वृद्धि और विकास की प्रक्रिया का अध्ययन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि वृद्धि और विकास के स्वरूप को जाने बिना एक अध्यापक विद्यार्थियों की सहायता नहीं कर सकता और न ही सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली निर्धारित कर सकता है। शिक्षा के मुख्य उद्देश्य 'सर्वांगीण विकास' (All Round Development) को प्राप्त करना भी वृद्धि और विकास के अध्ययन के अभाव में असंभव हो जायेगा। शिक्षा के इस सर्वमान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये बालक की वृद्धि और उसके विकास को जानना एक अध्यापक के लिये अति आवश्यक है। अतः वृद्धि और विकास के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना अति आवश्यक है।

Scanned with OKEN Scanner

वृद्धि का अर्थ
(Meaning of Growth)

वृद्धि का अर्थ आमतौर पर मानव के शरीर के विभिन्न अंगों के विकास तथा उन अंगों की कार्य करने की क्षमता का विकास माना जाता है। व्यक्ति के इन शारीरिक अंगों के विकास के परिणामस्वरूप उसका व्यवहार किसी न किसी रूप से प्रभावित होता है। इस प्रभाव के परिणामस्वरूप ही उस व्यक्ति के अंगों में परिवर्तन होता है। इस तरह वृद्धि से अभिप्राय है—शरीर, आकार और भार में वृद्धि। इस प्रकार की वृद्धि में व्यक्ति की माँसपेशियों की वृद्धि भी शामिल है।

हरबर्ट सोरेन्सन (Herbert Sorenson) ने तो शारीरिक वृद्धि को 'बड़ा और भारी होना' बताया है, जो वृद्धि और परिवर्तनों की ओर संकेत करते हैं।

एच. वी. मैरीडिथ (H.V. Meredith) के अनुसार, **"वृद्धि और विकास का पहला प्रमाण मानव के आकार में परिवर्तनों का आना है। दूसरा प्रमाण संख्या है। दो कोशिकाओं के मिलने से कई कोशिकाओं वाला मानव जन्म लेता है। तीसरा प्रमाण है– मानव की हड्डियों में परिवर्तन होना। चौथा प्रमाण है– हृदय, आँतड़ियों और अन्य अंगों के कोणों और स्थिति में परिवर्तन का होना। पाँचवां प्रमाण है– सापेक्षिक आकार में परिवर्तन, अर्थात् सिर टाँगों की अपेक्षा छोटा हो जाता है।"** संक्षेप में, वृद्धि और विकास के पाँच प्रमाण हुए– आकार, संख्या, प्रकार, स्थिति तथा सापेक्षिक आकार (Size, Number, Kind, Position and Relative size)।

जैसा कि हमें मालूम है कि मानव की वृद्धि निषेचित अंड (Fertilized Ovum) में विभाजन के परिणामस्वरूप होती है। विभाजित निषेचित अंड ही भ्रूण (Embryo) बनता है तथा उसकी कोशिकाओं (Cells) में वृद्धि से ही मानव शरीर में वृद्धि होती है। वृद्धि तथा शारीरिक वृद्धि निरन्तर नहीं होती। इसकी गति एक जैसी नहीं होती। वृद्धि की गति में परिवर्तन आते रहते हैं। किसी विशेष समय तक वृद्धि होती रहती है तथा उसके पश्चात् यह रुक जाती है।

वृद्धि एक विशेष पद्धति (Pattern) पर तथा आन्तरिक रूप से होती रहती है। शिशुकाल में वृद्धि की गति बहुत तीव्र होती है, लेकिन बाद में यह धीमी हो जाती है। वृद्धि वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया से होती है।

फ्रैंक (Frank) ने वृद्धि को इस प्रकार परिभाषित किया है– **'शरीर के किसी विशेष पक्ष में जो परिवर्तन आता है उसे वृद्धि कहते हैं।'**

उपरोक्त विवरण से वृद्धि के अर्थ एवं प्रकृति को निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट कर देते हैं–

1. वृद्धि से व्यक्ति बड़ा और भारी होता है।
2. वृद्धि को मात्रा (Quantity) के रूप में माना जा सकता है।
3. वृद्धि की सामान्य पद्धति (General Pattern) होती है, न कि अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग।
4. वृद्धि निषेचित अंड में विभाजन के परिणामस्वरूप होती है।
5. वृद्धि निरन्तर नहीं होती।
6. वृद्धि की गति एक समान नहीं रहती। इसमें (गति में) परिवर्तन आते रहते हैं।
7. वृद्धि एक विशेष समय तक होती रहती है। फिर उसके बाद रुक जाती है।
8. वृद्धि आन्तरिक रूप से होती है।
9. स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा वृद्धि तीव्र होती है।
10. वृद्धि वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया से होती है।
11. शिशुकाल में वृद्धि तीव्र गति से होती है, लेकिन बाद में धीमी हो जाती है।
12. शारीरिक और मानसिक वृद्धि का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है।

Scanned with OKEN Scanner

13. जब कद में वृद्धि होती है तो भार कम हो जाता है।
14. स्वास्थ्य और भोजन शारीरिक और मानसिक वृद्धि को प्रभावित करते हैं।
15. शारीरिक वृद्धि को देखना मानसिक वृद्धि की अपेक्षा सरल होता है।

वृद्धि और विकास में अन्तर
(Difference between Growth and Development)

प्रायः यह देखा गया है कि वृद्धि और विकास शब्दों को एक-दूसरे का पर्यायवाची समझ लिया जाता है, जबकि यह सत्य नहीं है। दोनों शब्दों के अर्थ, प्रयोग, सिद्धान्तों, प्रकृति आदि में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य दिखाई देता है। इन अन्तरों का अध्ययन करना अध्यापक के लिये अति आवश्यक है। वृद्धि और विकास में मुख्य अन्तर निम्नलिखित है–

(i) अर्थ में अन्तर (Difference in meanings)–वृद्धि का अर्थ है– शारीरिक परिवर्तन। इन शारीरिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप ही व्यवहारों में परिवर्तन आने प्रारम्भ हो जाते हैं। लेकिन विकास शब्द का प्रयोग शरीर के विभिन्न अंगों की विभिन्न दिशाओं में गुणात्मक उन्नति के बारे में किया जाता है।

(ii) वृद्धि और विकास की निरन्तरता (Continuity of Growth and Develop- ment)–वृद्धि लगातार नहीं होती रहती और न ही यह जीवन भर चलती है। एक विशेष आयु सीमा के पश्चात् वृद्धि रुक जाती है या धीमी हो जाती है। ऐसी अवस्था को प्रौढ़ावस्था कहा जाता है। दूसरी ओर विकास की प्रक्रिया में निरन्तरता रहती है। विकास जन्म से लेकर मृत्यु तक निरन्तर चलता ही रहता है चाहे इसकी गति कैसी भी रहे। अतः विकास की प्रक्रिया कभी थमती नहीं। मनुष्य में गुणात्मक परिवर्तन आयु भर होते ही रहते हैं।

(iii) वृद्धि तथा विकास में सम्बन्ध (Relationship between Growth & Develop ment)–वृद्धि और विकास शब्दों के एक-दूसरे का पर्यायवाची समझा जाता है। बढ़ते हुए शरीर के साथ उसकी कार्य-कुशलता भी बढ़ती है। लेकिन कई बार विकास की प्रक्रिया वृद्धि के बिना भी हो जाती है। शारीरिक रूप में कई लोग विकसित नहीं होते या 'वृद्धि' पक्ष दुर्बल रह जाता है। लेकिन विकास के अन्य पक्षों में वे समृद्ध होते हैं, जैसे बौद्धिक पक्ष, सामाजिक पक्ष या संवेगात्मक पक्ष। दूसरे शब्दों में विकास का पक्ष हावी हो जाता है। इसी प्रकार जब वृद्धि के पक्ष रुक जाते हैं तो विकास के अन्य पक्ष सक्रिया हो जाते हैं।

(iv) विस्तृत और संकीर्ण शब्द (Broader and Narrow terms)–वृद्धि शब्द का संकीर्ण माना गया है, जबकि विकास एक व्यापक शब्द है। विकास शब्द में 'वृद्धि' शब्द को भी शामिल किया जाता है अर्थात् विकास के अर्थ में वृद्धि का पक्ष भी शामिल होता है। विकास के विभिन्न तत्वों में से एक तत्व 'वृद्धि' भी है।

(v) परिमाणात्मक और गुणात्मक (Quantitative and Qualitative)–'वृद्धि' परिमाणात्मक परिवर्तनों से जुड़ी हुई है, जबकि विकास का सम्बन्ध गुणात्मक परिवर्तनों से होता है।

(vi) वृद्धि और विकास को मापना (Measurement of Growth and Development)–वृद्धि का सम्बन्ध आकार, भार, ऊँचाई आदि में परिवर्तनों से होता है। इस प्रकार के परिवर्तनों को मापा जा सकता है। ऐसे परिवर्तनों को आंखों से देखा जा सकता है। लेकिन दूसरी ओर विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों को मापना बहुत ही कठिन है, बल्कि असंभव है। इन्हें मापने के लिये ऐसा कोई तरीका विकसित नहीं हुआ। विकास के परिवर्तनों को तो केवल देखा या महसूस ही किया जा सकता है।

◆◆◆

3. 'परिपक्वता' के सम्प्रत्यय की व्याख्या करें। परिपक्वता तथा सीखने में क्या अन्तर है?

अथवा

परिपक्वता तथा सीखने के अर्थ को स्पष्ट करते हुये इन दोनों के सम्बन्धों तथा अन्तरों को स्पष्ट कीजिये।

Scanned with OKEN Scanner

अथवा

परिपक्वता तथा सीखने का क्या अर्थ है? ये एक-दूसरे को किस प्रकार से प्रभावित करते हैं? व्याख्या करें।

अथवा

सीखना और परिपक्वता किस प्रकार सम्बन्धित हैं? वे किस प्रकार एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं?

उत्तर–वंशानुक्रम और वातावरण की तरह परिपक्वता और सीखना भी एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। परिपक्वता और सीखने के अभाव में बालक का सामान्य विकास संभव नहीं हो सकता।

परिपक्वता तथा सीखने का आपस में चोली-दामन का सम्बन्ध है। परिपक्वता तथा अधिगम के बिना बालक का विकास संभव नहीं है। यह एक विवाद का विषय बना हुआ है कि परिपक्वता और अधिगम के कौन-कौन से कारक अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

हरलॉक का मत है–"जहां तक परिपक्वता और अधिगम की प्रभाविकता का प्रश्न है तो कहा जा सकता है कि अधिगम की प्रभाविकता उपयुक्त समय पर निर्भर करती है। एक बालक तब तक नहीं सीख सकता जब तक कि बालक शारीरिक और मानसिक रूप से सीखने के लिए तैयार या परिपक्व न हो।"

परिपक्वता का अर्थ (Meaning of Maturation)–बाल-विकास के क्षेत्र में सर्वप्रथम गैसेल ने 1919 में परिपक्वता शब्द का प्रयोग किया। गैसेल ने परिपक्वता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि परिपक्वता शरीर की आंतरिक व्यवस्था के कारण उत्पन्न स्नायुओं और मांसपेशियों की प्रौढ़ता और दृढ़ता है, जिस पर बाह्य वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता है। गैसेल का यह भी विचार है कि विकास की निश्चित अवस्थाओं में कुछ निश्चित स्नायुविक और मांसपेशीय परिवर्तन होते हैं। परिपक्वता सम्बन्धी परिवर्तन इन निश्चित अवस्थाओं से पूर्व नहीं हो सकते हैं।

दूसरे शब्दों में, परिपक्वता का अर्थ अंग-प्रत्यंग का स्वाभाविक विकास है, जो स्नायुमंडल की क्षमता पर निर्भर है। अंग-प्रत्यंगों के विकास के कारण प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन होता है और सीखने के कारण भी। अतः सीखने तथा परिपक्वता में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

जीव की अन्तर्निहित सम्भाव्य-क्षमताएं, कार्यात्मक तत्परता की अवस्था में पहुँच जाती हैं, इस प्रक्रिया में संरचना में होने वाले वह परिवर्तन भी सम्मिलित हैं जो वृद्धि को जाते हैं। कार्य निष्पादन के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण करने वाला संरचना का प्रगतिपूर्ण अभ्यास भी इस प्रक्रिया में सम्मिलित है। परिपक्वता की आधुनिक परिभाषाएं इस प्रकार से हैं–

(1) गैसेल का विचार–"आत्मसीमित जीवन-चक्र में कार्यरत जीवाणु के समूचे प्रभाव को परिपक्वता कहते हैं।"

(2) बोरिंग, लैंगफील्ड और वैल्ड का विचार–"परिपक्वता का अर्थ वृद्धि और विकास है, जो किसी अनमोल व्यवहार के अस्तित्व में आने या किसी विशिष्ट व्यवहार के अस्तित्व में आने से पहले अत्यंत आवश्यक होता है।"

(3) गैरी और किंग्सले का विचार–"परिपक्वता एक ऐसी क्रिया है, जिसमें शारीरिक ढाँचे की वृद्धि और विकास के परिणामस्वरूप व्यवहार में सुधार होता है।"

(4) सिस्टर बारबिश का विचार–सिस्टर बारबिश ने अपनी पुस्तक में कहा है, "परिपक्वता का अर्थ किसी स्वार्थ के विकास की पूर्ण उपलब्धि है।"

एज. जे. आइजनेक और उनके साथियों के विचारानुसार–"परिपक्वता शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और मानसिक विभेदीकरण और एकता की वह स्वतंत्र प्रक्रिया है, जो विकासात्मक अवस्थाओं में फैली होती है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से जीव की वृद्धि पूर्ण और सुदृढ़ होती है तथा इस प्रकार वह जीव अपने जीवन में अनुकूलन करता है।"

सीखना अभिप्रेरणा से प्रभावित होता है। सीखना वातावरण पर निर्भर करता है। सीखना बालक की शारीरिक और मानसिक परिपक्वता पर आधारित है, परन्तु परिपक्वता सीखने पर आधारित नहीं है।

Scanned with OKEN Scanner

ए. गोयल के मतानुसार बालकों में जिन गुणों का विकास होता है, वे निम्न दो प्रकार के हैं–

(1) वे गुण जो परिपक्वता के कारण उत्पन्न होते हैं वे विशुद्ध शारीरिक गुण होते हैं।

(2) वे गुण जो बालक अनुभवों या अधिगम के द्वारा अर्जित करता है, जिन्हें सामाजिक गुण भी कहा जा सकता है।

शारीरिक और मानसिक परिपक्वता के बढ़ने के साथ-साथ संवेगों का विकास होता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए गैसेल ने एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में उन्होंने तीन बालकों को चुना। पहले प्रकार के बालक दस सप्ताह के थे, दूसरे बीस सप्ताह और तीसरे तीस सप्ताह की आयु के थे। इन तीनों आयु के बालकों को एक हवादार कमरे में रखा गया। उस कमरे में उत्पन्न भय का अध्ययन किया गया।

गैसेल ने देखा कि दस सप्ताह के बालकों में किसी प्रकार का भय नहीं था, जबकि बीस सप्ताह के बालकों ने बेचैनी और घबराहट का अनुभव किया। तीस सप्ताह के बालकों को जब भय की परिस्थिति में रखा गया तो उन्होंने व्याकुलता और रोने-चिल्लाने जैसे व्यवहार का प्रदर्शन किया। अब गैसेल ने यह निष्कर्ष निकाला कि शारीरिक और मानसिक परिपक्वता के बढ़ने के साथ-साथ संवेगों का भी विकास होता है।

सीखने का अर्थ (Meaning of Learning)–सीखना आधुनिक बाल मनोविज्ञान की एक अति महत्त्वपूर्ण समस्या है। इसका क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत है। इसमें बालकों के अनुबंधन से लेकर समस्या समाधान तक की सभी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। सीखने की क्रिया बालकों एवं वयस्कों के व्यवहार और मानसिक क्रियाओं के अनेक पहलुओं को प्रभावित करती है।

मैक्ग्रा के अनुसार–"अभ्यास के कारण स्वार्थ निष्पादन में परिवर्तन ही अधिगम है (हिलगार्ड तथा एटकिन्सन) के अनुसार–"सीखने को अभ्यास के व्यवहार में सापेक्ष स्थायी परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।" क्रो एवं क्रो के अनुसार–"ज्ञान, आदतें और अभिवृत्तियों को प्राप्त करना सिखाता है।" गेटस के अनुसार–"अनुभव और प्रशिक्षण से व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है।"

सीखना जीवनपर्यन्त चलता रहता है। सीखना प्रेरणा से प्रभावित होता है। सीखना वातावरण पर आधारित है। सीखना बालक की शारीरिक और मानसिक परिपक्वता पर आधारित है, परंतु परिपक्वता सीखने पर आधारित नहीं है।

ए. गैसेल के विचार में बालकों में जिन गुणों का विकास होता है, वे दो प्रकार के हैं–पहला वे गुण जो परिपक्वता के कारण उत्पन्न होते हैं, वे विशुद्ध शारीरिक गुण होते हैं। दूसरे वे गुण जो बालक अनुभवों या अधिगम के द्वारा अर्जित करता है, उन्हें सामाजिक गुण भी कहा जा सकता है।

गैसेल ने अपने अध्ययन में तीन प्रकार के बालक चुने। पहले प्रकार के बालक दस सप्ताह के थे, दूसरे बीस सप्ताह और तीसरे तीस सप्ताह की आयु के थे। इन तीनों आयु के बालकों को क्रमशः एक हवादार कमरे में रखकर उनमें उत्पन्न भय का अध्ययन किया गया। गैसेल ने अपने अध्ययन में देखा कि दस सप्ताह के बालकों में किसी प्रकार का भय नहीं था जबकि बीस सप्ताह के बालकों ने बेचैनी और घबराहट का अनुभव किया। तीस सप्ताह के बालकों को जब भय की परिस्थिति में रखा तो उन्होंने व्याकुलता और रोने-चिल्लाने जैसे व्यवहार का प्रदर्शन किया।

इस अध्ययन से गैसेल ने निष्कर्ष निकाला कि शारीरिक और मानसिक परिपक्वता के बढ़ने के साथ-साथ संवेगों का विकास होता है।

अधिगम की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला गया कि अधिगम व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी प्रगतिपूर्ण रूपान्तरण या परिवर्तन है। सीखने के द्वारा जीवन नई प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करता है अथवा पुरानी प्रतिक्रियाओं की क्रियाशीलता को बढ़ाता है। व्यवहार में यह प्रगतिपूर्ण परिवर्तन अभ्यास प्रशिक्षण या पूर्व अनुभवों के कारण होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

परिपक्वता व सीखने में अंतर
(Difference between Learning and Maturation)

परिपक्वता तथा सीखने में घनिष्ठ सम्बन्ध है, तथापि इन दोनों के माध्यम से लाये गये व्यवहार में अंतर होता है, जो निम्न प्रकार से होता है–

(1) परिपक्वता के कारण सभी प्राणियों में एक ही प्रकार की 'प्रजातीय प्रतिक्रियाओं' *(Racial responses)* का विकास होता है, जबकि सीखने के कारण विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग प्रतिक्रियाओं का विकास होता है। उदाहरणतः परिपक्वता के कारण सभी बच्चों में भाषा विकास सामान्यतया एक ही अवस्था में होता है, किन्तु सीखने के फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रीयता के बालक भिन्न-भिन्न भाषाएं सीखते हैं।

(2) परिपक्वता से शरीर में केवल रासायनिक परिवर्तन होते हैं, जबकि सीखना शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं का विकास करता है।

(3) परिपक्वता अभ्यास से प्रभावित नहीं है, किन्तु सीखने पर अभ्यास का प्रभाव पड़ता है।

(4) परिपक्वता एक स्वाभाविक क्रिया है। अतः इस पर प्रेरणा का प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु सीखना एक प्रतिक्रिया है।

(5) परिपक्वता अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों प्रकार के वातावरण में संभव है। स्वाभाविक क्रिया होने के नाते इसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु सीखने की क्रिया तभी समुचित ढंग से संभव है जब इस पर ध्यान दिया जाए।

(6) परिपक्वता एक निश्चित अवधि तक व्यक्ति को उसकी वंश परंपरा से परिपक्वता की क्षमता प्रदान करती है। परिपक्वता जन्मजात भी होती है, क्योंकि यह प्रक्रिया गर्भधारण के तुरंत बाद प्रारंभ हो जाती है। दूसरी ओर अधिगम जन्मजात और वंशानुगत न होकर पूर्णतः अर्जित है तथा वातावरण से प्रभावित एक क्रिया है किन्तु सीखने की क्रिया जीवन भर चलती रहती है।

(7) परिपक्वता के कारण व्यवहार परिवर्तन प्राकृतिक या स्वाभाविक होते हैं, जबकि सीखने के लिए व्यक्ति को कई तरह की क्रियायें करनी पड़ती हैं तब व्यवहार का संशोधन होता है।

(8) परिपक्वता के कारण व्यवहार में परिवर्तन प्रजातीय *(Racial)* होते हैं, जबकि सीखने के कारण व्यवहार में परिवर्तन केवल उसी व्यक्ति में होते हैं, जो सीखता है।

(9) परिपक्वता के लिए अभ्यास आवश्यक नहीं है, जबकि सीखने के लिए अभ्यास आवश्यक है।

(10) समाज में व्यक्ति जीवनपर्यन्त सीखता रहता है, जबकि परिपक्वता की प्रक्रिया लगभग 25 वर्ष की अवस्था तक पूर्ण हो जाती है।

(11) परिपक्वता अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में निरंतर चलती रहती है। दूसरी ओर सीखना केवल अनुकूल परिस्थितियों में ही होता है, प्रतिकूल परिस्थितियों में नहीं।

(12) बालक के सीखने का सम्बन्ध उसके विभिन्न अंगों की क्रियाओं और बालक के अनुभवों से होता है, जबकि दूसरी ओर परिपक्वता का सम्बन्ध बालक की प्रौढ़ता, उसके विभिन्न अंगों की संरचना एवं शक्ति आदि से होता है।

(13) सीखना बालक की शारीरिक और मानसिक परिपक्वता पर आधारित है, परंतु परिपक्वता अधिगम पर आधारित नहीं है।

इन अंतरों के बावजूद भी ये दोनों क्रियाएं एक ही क्रिया के दो पहलू हैं। बिना आवश्यक परिपक्वता के सीखने की क्रिया संभव नहीं है। उदाहरणार्थ अत्यंत अल्प अवस्था के बालक को यानी दो साल या 2½ साल के बालक को मनोविज्ञान नहीं सीखा सकते।

सीखने और परिपक्वता के उपरोक्त अंतरों में सम्बन्ध (Relationship between Learning and Maturation)—परिपक्वता और अधिगम दो परस्पर भिन्न प्रक्रियाएं नहीं हैं, ये केवल विकास की मौलिक प्रक्रिया के ही पक्ष हैं। परिपक्वता और अधिगम दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए

Scanned with OKEN Scanner

हिलगार्ड ने लिखा है कि–"प्रभावशाली विकास के लिए अधिगम एवं परिपक्वता दोनों ही एक विवाहित जोड़े के समान साथ-साथ चलने वाले कारक हैं, यह दोनों ही एक-दूसरे को अपना सहयोग प्रदान करते रहते हैं। बालक के शारीरिक और मानसिक विकास पर अधिगम और परिपक्वता का प्रभाव न ही सरल ढंग से पड़ता है और न ही ये दोनों अलग-अलग बालक के विकास को प्रभावित करते हैं, बल्कि ये दोनों ही कारक विकास को एक जटिल ढंग से प्रभावित करते हैं जो इन दोनों कारकों के मध्य अथवा इन दो कारकों और अन्य कारकों के मध्य होती है।"

परिपक्वता और सीखना के अंतर्गत **निम्नलिखित तथ्यों** पर प्रकाश डाला जाता है–

(1) व्यक्तिगत व्यवहारों, रुचियों,ख आकांक्षाओं तथा दृष्टिकोणों की विभिन्नता का कारण केवल परिपक्वता नहीं होता, परन्तु परिपक्वता और सीखना दोनों होते हैं। यदि विकास केवल परिपक्वता का ही परिणाम है तो इतनी व्यक्तिगत विभिन्नता न होती।

(2) परिपक्वता उन सीमाओं का निर्धारण करती है, जिनके परे अत्यंत अनुकूल शिक्षण विधियों तथा विद्यार्थी की सशक्त उत्तेजना होने पर भी विकास नहीं हो सकता। अन्य लेखकों ने भी कहा है कि शरीर के जन्मजात तथ्यों द्वारा ही समूचे सीखने तथा समूची अनुकूलन की सीमा निर्धारित हो जाती है।

(3) परिपक्वता तथा सीखने का परस्पर सम्बन्ध है, जो सीखने के समय को निश्चित करता है। जब तक व्यक्ति किसी कार्य को सीखने के लिए तैयार नहीं है, तब तक वह उसे नहीं सीख सकता। विकासशील तत्परता ही वह क्षण प्रदान करती है जब सीखने का काम आरंभ हो सकता है। **स्काउट** ने कहा है कि किसी बच्चे को किशोरावस्था से बहुत पहले सिखाने का प्रयास उसे बुरी आदतें सिखाने के कारण सिद्ध हो सकता है और उसके आने वाले जीवन में बाधक साबित होता है। उदाहरण के लिए, बच्चे के स्वाभाविक स्वर सन्धान से पहले उसे पढ़ना सिखाना, पढ़ने के प्रति उसके मन में अरुचि पैदा करना है। इसके अतिरिक्त जो विद्यार्थी स्कूलों और कॉलेजों में बहुत निम्न स्तर की उपलब्धियां प्राप्त करते हैं। वह सब उनके अत्यधिक उत्साही माता-पिता की अनुभवपूर्ण सीख के कारण होता है।

(4) परिपक्वता एवं शिक्षण दोनों का प्रभाव बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर पड़ता है। अंतर सिर्फ इतना है कि परिपक्वता बालक पर भीतर से निरंतर प्रभाव डालती रहती है, जबकि शिक्षण का प्रभाव उस पर उसी समय पड़ता है जब वह वातावरण के साथ समन्वय स्थापित करता है।

(5) परिपक्वता एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसके बाह्य उत्तेजनाओं की आवश्यकता नहीं पड़ती, जबकि शिक्षण में बाह्य उत्तेजनाओं की आवश्यकता होती है एवं व्यक्ति को प्रयत्न भी करने पड़ते हैं।

(6) परिपक्वता लगभग 21 वर्ष की अवस्था में अपनी पूर्णता को पहुँच जाती है, जबकि शिक्षण का प्रभाव व्यक्ति पर जीवनपर्यन्त पड़ता है।

(7) परिपक्वता की क्षमता वंश परंपरा से प्राप्त होती है, क्योंकि इसका प्रारंभ गर्भाधान के समय ही हो जाता है, इसलिए इसे जन्मजात कहा जाता है, परंतु इसके विपरीत, शिक्षण का सम्बन्ध वातावरण से होता है, अतः इसे अर्जित प्रक्रिया कहा जाता है।

(8) परिपक्वता का सम्बन्ध व्यक्ति के शारीरिक अवयवों की रचना, उनकी शक्ति एवं प्रौढ़ता से होता है, जबकि सीखने का सम्बन्ध व्यक्ति के अनुभवों से होता है।

(9) परिपक्वता पर अभ्यास का प्रभाव नहीं पड़ता जबकि शिक्षण की क्रिया का विकास मुख्यतः अभ्यास पर ही निर्भर करता है।

(10) शिक्षण के लिए परिपक्वता अनिवार्य है, जबकि परिपक्वता के लिए शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।

Scanned with OKEN Scanner

बालक के विकास के संदर्भ में परिपक्वता एवं शिक्षण का विषय एक विवादग्रस्त विषय है। इन दोनों का ही प्रभाव बालक के सामान्य विकास पर इतने जटिल ढंग से पड़ता है कि इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इनमें से किसी एक के अभाव में बालक का पूर्ण विकास संभव नहीं है।

मैक्ग्रा के अनुसार–"परिपक्वता एवं शिक्षण दो परस्पर भिन्न प्रक्रियाएं नहीं हैं वरन् ये विकास की मौलिक प्रक्रिया के ही दो भिन्न पक्ष हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अधिगम एवं परिपक्वता एक ही प्रक्रिया अर्थात् व्यवहार संशोधन के दो अलग-अलग पहलू हैं। एक के अभाव में दूसरा अर्थहीन है।

यद्यपि बालक के विकास को मुख्य रूप से वंशानुक्रम, वातावरण, सीखना एवं परिपक्वता के कारक प्रभावित करते हैं, लेकिन इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं जो बालक के विकास को प्रभावित करते हैं।

परिपक्वता एवं सीखने का शिक्षा में महत्त्व (Importance of Maturation and Learning in Education)–

शिक्षा सम्बन्धी महत्त्व–किसी बच्चे को किस समय क्या सिखाया जाए इस ज्ञान को प्राप्त करने में परिपक्वता और सीखना माता-पिता तथा अध्यापक को सहायता प्रदान करते हैं। परिपक्वता का ज्ञान यह बताता है कि यदि बच्चे में सीखने की परिपक्वता नहीं है तो सीखने का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं है और उसके लिये किये गये सभी प्रयास व्यर्थ जाएंगे। इसलिए परिपक्वता से पहले सिखाना तो सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि इससे समय और शक्ति दोनों ही नष्ट होंगे। जब एक बच्चा पूर्ण रूप से सीखने के लिए तैयार हो जाता है तो उसे सिखाना चाहिए। इसके विपरीत, यदि बच्चा सीखने के लिए तैयार है और उसे उचित मार्गदर्शन एवं निर्देशन नहीं मिलता तो हो सकता है कि उस बच्चे की रुचि समाप्त हो जाए। इसलिए किसी भी बच्चे को कुछ भी सिखाने से पहले परिपक्वता को ध्यान में रखना चाहिए और बच्चे के पूर्ण रूप से परिपक्व होने पर ही उसे सिखाने का प्रयत्न करना चाहिए।

◆◆◆

1.8 परवरिश शैलियाँ (Parenting style) / संस्कृति (Nurture)

1. 'परवरिश' से क्या अभिप्राय है? परवरिश और पालन-पोषण में क्या अंतर है? परवरिश के कौन-कौन से पक्ष होते हैं?
(What do you mean by parenting? What is the difference between parenting and child rearing practices? What are the various aspects of parenting?)

उत्तर–'परवरिश' से अभिप्राय (Meaning of Parenting)–परवरिश शब्द को विभिन्न संदर्भों में प्रयोग किया जाता है। मानव के संदर्भ में 'परवरिश' शब्द बालक के जैविकीय माता-पिता (Biological Parents) के द्वारा की जाती है। इस परवरिश में सरकार और समाज भी योगदान करते हैं।

परवरिश (Parenting) किसी बालक को जन्म से प्रौढ़ावस्था या वयस्कावस्था तक खड़ा करने और उसे शिक्षित करने की एक प्रक्रिया है। यह सामान्यतः परिवार में माता या पिता द्वारा की जाती है। जब माता-पिता ऐसी देखभाल करने के योग्य नहीं होते या इच्छुक नहीं होते, वहां पर यह देखभाल या परवरिश निकट के संबंधी, दादा-दादी, नाना-नानी या अनाथालयों द्वारा की जाती है।

परवरिश का मुख्य लक्ष्य होता है–

(i) माता-पिता द्वारा बच्चों की शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना।

(ii) बच्चों की खतरों से सुरक्षा करना,

(iii) बच्चों के सांस्कृतिक मूल्यों, कौशलों आदि को प्रदान करते रहना होता है और यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक वे वैधानिक (Legally) तरीके से वयस्कावस्था अर्जित नहीं कर लेते।

Scanned with OKEN Scanner

इस प्रकार परवरिश को हम ऐसे भी परिभाषित कर सकते हैं—प्राकृतिक माता-पिता द्वारा बच्चे का ध्यान रखकर, पालन-पोषण और सुरक्षा करते हुए माता-पिता की भूमिका निभाना 'परवरिश' कहलाती है।

(Performing the role of a parents by care-giving nurturance and protection of the child by a natural parents in called parenting.)

परिवेश और पालन-पोषण में अंतर (Difference Between Parenting and Child Rearing Practices)—बालक की परवरिश और पालन-पोषण में भी अंतर होता है। परवरिश के अन्तर्गत माता-पिता के उदाहरणीय व्यवहारों की विशेषताओं और उत्तरदायित्वों पर बल दिया जाता है। दूसरी ओर पालन-पोषण क्रियाओं (Child Rearing Practices) में बालकों को प्रशिक्षण क्रिया या उनके पालन-पोषण तथा माता-पिता के साथ अन्तर्क्रिया पर बल दिया जाता है।

परवरिश के पक्ष (Aspects of Parenting)—परवरिश की सम्पूर्ण प्रक्रिया में हम निम्नलिखित पक्षों को सम्मिलित कर सकते हैं—

(i) सामाजिक विकास और संवेगात्मक समर्थन।
(ii) शारीरिक देखभाल।
(iii) सामाजिक कौशल और शिष्टाचार।
(iv) नैतिक और आध्यात्मिक विकास।
(v) आर्थिक सहायता।
(vi) शिक्षा पर खर्चा और बीमा करना।
(vii) चिकित्सीय देखभाल करना, सुरक्षा और आश्रय (Shelter) प्रदान करना।
(viii) आदर्श और मूल्य-प्रणाली से अवगत कराना।

इस प्रकार उपरोक्त क्षेत्रों या पक्षों में माता-पिता बच्चों की सहायता करके उन्हें पालते हैं तथा वैधानिक रूप से समाज के वयस्क सदस्य के रूप में विकसित होने में सहायता प्रदान करते हैं।

◆◆◆

2. बोमरिन्द द्वारा बताई परवरिश शैलियों का वर्णन करें। (Describe the parenting styles as developed by Baumrind.)

उत्तर—परवरिश शैली माता-पिता और बच्चों के स्वभाव से प्रभावित होती है। अधिकतर यह किसी बच्चे के स्वयं के माता-पिता और संस्कृति पर आधारित होते हैं। अधिकतर माता-पिता अपने ही माता-पिता से परवरिश की विधियां (Parenting Practices) सीखते हैं। इनमें से कुछ विधियों को वे अस्वीकृत कर देते हैं और कुछ को स्वीकृत कर लेते हैं। परवरिश शैलियां (Parenting Styles) बहुत समय के बाद विकसित हो पाती हैं।

बोमरिन्द (Baumrind) ने सफल परवरिश के लिए चार मूल तत्त्वों की चर्चा की है। ये चार मूल तत्त्व हैं—

(i) प्रतिक्रियात्मकता बनाम अप्रतिक्रियात्मकता (Responsiveness vs Unresponsiveness)
(ii) रौब जमाने वाले बनाम कम अपेक्षा रखने वाले (Demanding vs Undemanding)

उपरोक्त चार तत्त्वों के आधार पर बोमरिन्द (Baumrind) ने निम्नलिखित तीन सामान्य परवरिश शैलियों (Parenting Styles) की पहचान की है—

1. साधिकारात्मक शैली (Authoritative Style)
2. सत्तावादी शैली (Authoritarian Style)
3. अनुज्ञात्मक शैली (Permissive Style)

Scanned with OKEN Scanner

1. साधिकारात्मक शैली (Authoritative Style)–यह शैली बाल-केन्द्रित उपागम (Child-centred approach) पर आधारित है। इस शैली के अन्तर्गत 'परिपक्वता' (Maturity) से अधिक अपेक्षाएं होती हैं। इस शैली की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(i) इस शैली के अन्तर्गत माता-पिता बच्चे के प्रति बहुत उत्साहित (Warm) और पोषण प्रदान करने वाले (Nurturant) होते हैं।

(ii) इस शैली के अन्तर्गत व्यापक शाब्दिक आदान-प्रदान की आज्ञा होती है।

(iii) इसमें माता-पिता बच्चों को अधिक स्वतंत्र बनाने के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं।

(iv) इस शैली को अपनाने वाले माता-पिता अपने बच्चों की भावनाओं को समझते हैं तथा उन्हें उनकी भावनाओं को नियंत्रित करने में सहायता करते हैं।

(v) इस शैली के अनुयायी माता-पिता बच्चों को उनकी समस्याएं सुलझाने के तरीके तलाशने में सहायता करते हैं।

(vi) इसमें माता-पिता अपने बच्चों को स्वयं निर्णय लेने के योग्य बनाते हैं।

(vii) ऐसे माता-पिता दृढ़ (Firm) तो होते हैं, लेकिन वे कठोर (Rigid) नहीं होते।

(viii) इस प्रकार की शैली बच्चों में उच्च आत्म-सम्मान को विकसित कर देते हैं। सभी मनोवैज्ञानिक इसी शैली की अधिक सिफारिश करते हैं।

(ix) इस शैली में विश्वास रखने वाले माता-पिता अपने बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति सजग रहते हैं।

(x) इस शैली के अन्तर्गत माता-पिता अपने बच्चों के लिए स्पष्ट मापदंड (Standards) निर्धारित कर देते हैं तथा इन सीमाओं पर नजर भी रखते हैं।

2. सत्तावादी शैली (Authoritarian Style)–इस शैली से अभिप्राय होता है–परवरिश की यह वह शैली है, जो दंडात्मक शैली होती है, जिसमें माता-पिता बच्चे को उनके निर्देशों का पालन करने और उनके कार्यों और प्रयासों का सम्मान करने की सलाह दी जाती है।

इस शैली की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित होती हैं–

(i) इस शैली के अनुसार, यदि अपेक्षाएं बच्चे पर बलपूर्वक थोंपी जाती हैं तब बच्चा विद्रोह पर उतर आएगा।

(ii) इस प्रकार की शैली में उच्च-अपेक्षाएं और निम्न प्रतिक्रियात्मकता (High Demandingness and Low Responsiveness) होती है।

(iii) सत्तावादी अभिभावक अपने बच्चों से बहुत अधिक अपेक्षा रखते हैं।

(iv) इस प्रकार की परवरिश के अन्तर्गत बच्चों में सामाजिक योग्यता (Social Competence) कम होती है।

(v) ऐसे माता-पिता अपने बच्चों की आवश्यकताओं के लिए कम प्रतिक्रियात्मक (Responsive) होते हैं। कई बार माता-पिता इस 'आवश्यकता' के लिए बच्चों को थप्पड़ मार देते हैं।

3. अनुज्ञात्मक परवरिश शैली (Permissive Parenting Style)–इस शैली को अपनाने वाले माता-पिता बहुत ही नर्म (Soft) होते हैं। इस शैली के माता-पिता के बच्चे अक्सर बिगड़े हुए होते हैं। इस परवरिश शैली की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

(i) इस शैली के माता-पिता बच्चों की आवश्यकताओं और इच्छाओं के प्रति बहुत ही प्रतिक्रियात्मक (Responsive) होते हैं।

(ii) इस शैली के माता-पिता अपने बच्चों के साथ अत्यधिक मस्त या व्यस्त (Involved) रहते हैं, लेकिन उनकी अपेक्षाएं बहुत कम होती हैं।

(iii) इनमें बच्चे से बहुत कम व्यवहारात्मक अपेक्षाएं (Behavioural Expectations) होती हैं।

(iv) यह अनिर्देशित (Non-directive) और नर्म (Lenient) शैली होती है।

Scanned with OKEN Scanner

(v) इसके अन्तर्गत माता-पिता बच्चों को नियंत्रित नहीं करना चाहते। परिणामस्वरूप बच्चे बिगड़ जाते हैं।

(vi) ऐसे बालक शीघ्रता से परिपक्व हो जाते हैं तथा स्वतंत्र रूप से जीने के योग्य हो जाते हैं।

(vii) ऐसे बालक संवेगात्मक रूप से स्वतंत्र होते हैं तथा वे कुछ सीखने की इच्छा रखते हैं।

(viii) इस शैली में पले बच्चे अधिक आवेगशील (Impulsive) होते हैं तथा वे किशोरों की भांति स्वयं को दुर्व्यवहार में संलिप्त कर लेते हैं।

मैक्काबी और मार्टिन की परवरिश की शैलियां
(Parenting Styles by Maccoby and Martin)

मैक्काबी और मार्टिन ने बोमरिन्द की परवरिश शैलियों में चौथी शैली और जोड़ दी जिसे 'असावधानीपूर्ण' या 'लापरवाही वाली शैली' (Neglectful Style) कहा गया है।

इस चौथी शैली अर्थात् 'असावधानीपूर्ण या लापरवाहीपूर्ण शैली' (Neglectful Style) की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(i) इस शैली को अपनाने वाले माता-पिता का उत्साह (Warmth) कम और नियंत्रण भी कम होता है।

(ii) वे बच्चों के लिए कोई सीमा निश्चित नहीं करते।

(iii) वे अपने बच्चों के जीवन में शामिल (Involve) नहीं होते।

(iv) ऐसे माता-पिता अपने बच्चों के संवेगों और विचारों को अस्वीकार कर देते हैं।

(v) ऐसे माता-पिता के बच्चों में भी यह विचार घर कर जाता है कि उनके माता-पिता के लिए बच्चों की अपेक्षा अन्य पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण लगते हैं।

(vi) बच्चे स्वतंत्रता की भावना विकसित कर माता-पिता पर निर्भर रहना बंद कर देते हैं।

(vii) किशोरावस्था में बच्चे भगौड़े जैसे व्यवहार और अपराध प्रवृत्ति का प्रदर्शन करने लगते हैं।

(viii) इस प्रकार के बच्चे सामाजिक परिस्थितियों से मुंह मोड़ लेते हैं।

◆◆◆

1.9. ~~माल्टीयम~~ मिडिया का बढ़ते हुए बच्चों तथा किशोरों पर प्रभाव
(Impact o Media on growing children and adolescents)

1. मिडिया या माध्यम से आप क्या समझते हैं? माध्यम का बालकों तथा किशोरों पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन कीजिए। ऐसी महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन कीजिए जो मीडिया द्वारा प्रकाश में लाई जाती है?
(What do you mean by media? Describe impact of media on growing children and adolescents describe the significant events that media highlights and creates.)

उत्तर–अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Media' का अर्थ होता है–जनसंचार के साधन (Means of Mass Communication.)

हिन्दी भाषा में इसके लिए संचार शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा के शब्द "Mass Communication" के लिए हिन्दी में जिस 'जनसंचार' शब्द का प्रयोग होता है उसका अर्थ है–जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान करना। चूँकि अंग्रेजी भाषा में मास (Mass) शब्द के अर्थ में मीन्स y अर्थात् साधन शब्द का भी प्रयोग हुआ है। अतः मीडिया (Media) शब्द का अर्थ है–वे साधन, जिसके माध्यम से जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान की जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

अंग्रेजी भाषा के 'मॉस मीडिया' (Mass Media) शब्द का सही रूपान्तर होगा–जनसंचार माध्यम या सामूहिक माध्यम। जब किसी सूचना, समाचार, विचार आदि को दूर-दूर रहने वाले सभी व्यक्तियों तक पहुँचाने के लिए जिस माध्यम का प्रयोग किया जाता है, उसे जनसंचार माध्यम कहा जाता है।

जन-संचार माध्यम एवं सूचना-प्रौद्योगिकी–अनेकानेक सूचना-संसाधनों के प्रचलन से विश्व एक 'गाँव' के रूप में सिमट रहा है। इसके कारण प्रत्येक क्षेत्र में संक्रमण हुआ है। नई सूचना-तकनीक ने मानव के समय और परिश्रम को बिल्कुल कम कर दिया है। आजकल मीडिया पर सूचना प्रौद्योगिकी का वर्चस्व स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। इसे निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत सुविधाजनक ढंग से समझा जा सकता है–

(क) पिंट मीडिया

(ख) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

(क) प्रिंट मीडिया–समाचार-संकलन जनसंचार माध्यमों की कार्य-शृंखला का पहला कदम होता है। वर्तमान समय में समाचार संकलन हेतु मोबाइल फोन से लेकर लैपटॉप तक जैसे तकनीकी साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। आज पिंट मीडिया पूरी तरह से तकनीकी साधनों व उपकरणों से सज्जित है। समाचार संकलन से लेकर छपाई तक का समस्त कार्य तकनीकी सुविधाओं से अत्यन्त कम समय में पूर्ण गुणवत्ता के साथ हो रहा है।

समाचार-पत्र का पूरा कार्यालय और उसका सम्पूर्ण कार्य कम्प्यूटर पर आधारित है। संवाददाता, ब्यूरोचीफ, समाचार सम्पादक आदि अपने-अपने डेस्क पर लगे कम्प्यूटर सेट पर समाचार को भाषायी, तकनीकी तथा संस्थान की नीति के आधार पर अन्तिम रूप देते हैं। सम्पादकीय विभाग, प्रोसेस यूनिट, विज्ञापन के बीच तालमेल बैठाने एवं फोटोग्राफी के सन्दर्भ में सूचना प्रौद्योगिकी की प्रभावकारी भूमिका है।

कुछ दिन पहले समाचार इकट्ठा करने के लिए संवाददाता इधर-उधर दौड़ते थे। गाँव-गाँव, तहसील तथा कस्बों से डाक द्वारा, समाचार भेजे जाते थे। सम्पादकीय विभाग एक पोस्ट ऑफिस बना रहता था जहाँ पत्रों की छँटनी होती थी। समाचार संकलन के बाद सम्पादक समूह कलम घिसकर समाचार तैयार करता था। आज के तकनीकी युग में संचार के त्वरित साधनों, मुद्रण, सम्पादन, साज-सज्जा ने एक अप्रत्याशित रोमांचक यात्रा पूरी कर ली है। आज का पत्रकार मोबाइल, फैक्स, लैपटॉप, पेजर, इंटरनेट, ई-मेल से जुड़ चुका है। वह चाहे विश्व के किसी भी कोने में क्यों न हो, कुछ क्षणों में ही वहाँ के समाचार अपने कार्यालय या सम्पादक तक प्रेषित कर देता है। विशेषकर दूरदर्शन पर दिखाए जाने वाले समाचारों में देश-विदेश में नियुक्त प्रतिनिधि इस प्रौद्योगिकी के बल पर ही वहाँ की घटनाओं व घटना स्थलों के दृश्य हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं।

(ख) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया–डॉ. अर्जुन तिवारी के शब्दों में–**"प्रिंट मीडिया के साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी आई टी. (इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी अर्थात् सूचना प्रौद्योगिकी) से उपकृत है। समाचार संकलन से लेकर समाचार प्रसारण तक के विविध सोपानों की सफलता आई टी पर आश्रित है। न्यूज वेबसाइट और पोर्टल भी आई. टी. पर निर्भर है। वर्तमान मीडिया की पूरी कार्यप्रणाली में आई. टी. की भूमिका मानव शरीर में रीढ़ की हड्डी जैसी हो गई है।"**

आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का बड़ा स्पष्ट प्रभाव टी. वी. तथा फिल्मों में देखा जा सकता है। कैमरा ही इन दोनों माध्यमों का आधार है। कैमरा की गुणवत्ता में नई तकनीक के द्वारा क्रान्ति आई है। दूरदर्शन पर दिखाए जाने वाले समाचारों में इतना व्यापक परिवर्तन आया है कि देखने वाला आश्चर्यचकित रह जाता है। विश्व के किसी भी कोने में घटना घटित होने की देर नहीं होती कि वहाँ की वीडियो-ओडियो क्लिपिंग तुरन्त समाचारों में स्थान पा जाती है। वीडियो कान्फ्रेसिंग के द्वारा कहीं पर भी बैठकर व्यक्ति स्टूडियो के सम्पर्क में आ जाता है। ऑन लाइन तकनीक के द्वारा टी. वी. कार्यक्रम देखते समय वह अपने विचारों को भी कार्यक्रम के अन्तर्गत शामिल कर सकता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में मल्टीमीडिया की भूमिका भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती जा रही है।

मल्टीमीडिया से टी.वी. कार्यक्रमों में नई क्रान्ति आई है। इस तकनीक के द्वारा आज टी. वी. में निम्न सुविधाएँ देखने को मिलती हैं–

1. **टैक्स्ट**–घटना या किसी वस्तु के बारे में सूचना जैसे–नोट्स, कान्टेन्ट्स।

Scanned with OKEN Scanner

2. **डाटा**–टेबल, चार्ट, ग्राफ, स्टेटिसिटक्स।
3. **एनीमेशन**–कम्प्यूटर द्वारा बनाए वीडियो।
4. **ऑडियो**–स्पीच, संगीत जैसे–कैसेट्स, टेप, सी. डी.।
5. **वीडियो**–फिल्म।

सूचना प्रौद्योगिकी के प्राप्त नए महत्त्व को देखते हुए भारत सरकार ने 15 अक्टूबर, 1999 में एक नये सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय का गठन किया। इस मंत्रालय का उद्देश्य भारत को सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व के अन्य अग्रणी देशों की गिनती में शामिल करना है। सरकार इसी लक्ष्य को लेकर सॉफ्टवेयर निर्यात को बढ़ावा देने के साथ-साथ हार्डवेयर निर्माण और निर्यात को बढ़ाने का भी प्रयास कर रही है।

आज इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में जिन सूचना तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है, वे निम्नलिखित हैं–

1. मल्टीमीडिया
2. कंवर्जेंस
3. कृत्रिम उपग्रह
4. कम्प्यूटर
5. इंटरनेट
6. इंटरानेट

1. **मल्टीमीडिया**–मल्टीमीडिया टैक्स्ट, डाटा, चित्र, ऐनीमेशन, ओडियो एवं वीडियो का समन्वय है जिससे विभिन्न रूपों को एक डिजिटल माध्यम में बदलना और फिर उसे कम्प्यूटर द्वारा प्रेषण संभव होता है।

मल्टीमीडिया के जन-संचार के क्षेत्र में कई उपयोग हैं; यथा–

(क) मल्टीमीडिया के द्वारा ई-मेल, वीडियोफोन, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग आदि।
(ख) पुस्तकालयों, संग्रहालयों, अस्पतालों एवं मान्यूमेण्ट्स आदि के सन्दर्भ में।
(ग) मनोरंजन सम्बन्धी सुविधा।
(घ) मल्टीमीडिया सूचना बैंक।
(ड) मल्टीमीडिया सूचना संसाधन।
(च) रिफरेन्स टूल्स जैसे–इनसाइक्लोपीडिया, शब्द-कोश।
(छ) प्रदर्शनियों में कान्फ्रेंस एवं ट्रेड शो।
(ज) उत्पाद सूचना कैटलॉग।
(झ) इलेक्ट्रॉनिक पब्लिशिंग।
(ञ) तकनीकी डाक्यूमेन्टेशन जैसे–अभियान्त्रिकीय ड्राइंग, स्पेसीफिकेशन।
(ट) पर्यटन उपयोग हेतु सूचना सिस्टम डिजाइन।

मल्टीमीडिया ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा पाठ्य-पुस्तक, रंग, चित्र, फोटो, आवाज, जीव-संचारण और वीडियो के मिश्रण से कुछ नई रचना सामने आती है।

2. **कन्वर्जेन्स(Convergence)**–आधुनिक विभिन्न तकनीकों का एक सम्मिश्रण कन्वर्जेन्स कहलाता है। आजकल इसका प्रचलन जनसंचार के नये रूप में किया जा रहा है। प्रसारण, केबल, कम्प्यूटरिंग, मल्टीमीडिया, नेटवर्क, उपग्रह, दूर संचार का संगम ही अत्याधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी का वरदान है। इसने सारी दुनिया को एक समान धरातल पर खड़ा कर दिया है।

कन्वर्जेन्स टेलीकम्यूनिकेशन, ब्रॉडकास्टिंग तथा कम्प्यूटर नेटवर्किंग को सम्मिलित कर एक ऐसे एकल डिजिटल नेटवर्क का निर्माण करता है जिसके द्वारा टेलीफोन टी. वी. फैक्स, इंटरनेट, वीडियोफोन, मूवी, संगीत, मनोरंजन आदि सुविधा एक ही माध्यम से प्राप्त हो जाते हैं।

3. **कृत्रिम, उपग्रह**–अन्तरिक्ष देवताओं का वास है, जैसी कल्पनाओं में प्राचीनकाल में मानव विचरण करता था। आधुनिक युग में मानव की पहुँच अन्तरिक्ष तक हो गयी है। अन्तरिक्ष तक पहुँच बनाए रखने के लिए उपग्रह निर्मित करना मनुष्य की एक महानतम उपलब्धि है। भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य भारत के विकास के लिए अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी का उपयोग करना रहा है। इस दिशा में भारत ने विशेष प्रकार की अन्तरिक्ष प्रणाली की स्थापना की है अर्थात् आपदा चेतावनी प्रणाली के साथ दूरसंचार, दूरदर्शन प्रसारण तथा मौसम सम्बन्धी सेवाएँ देने के लिए भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली (इनसैट) तथा संसाधनों के प्रबन्ध के लिए भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह (आर. एस. एसव प्रणाली)। अतः कृत्रिम उपग्रह भी सूचना प्रौद्योगिकी का अहम हिस्सा है।

Scanned with OKEN Scanner

4. कम्प्यूटर—आज कम्प्यूटर मानव का सबसे बड़ा मास्टर है। कम्प्यूटर अपनी असीम संग्रह क्षमता, तेजगति और आश्चर्यजनक परिणाम देने की क्षमता के कारण अपनी पृथक् पहचान बनने में सफल हुआ है। आज हम उच्च तकनीकी, सुपर कम्प्यूटरों और इंटरनेट की दुनिया में है। रेडियो, टी. वी. तथा फिल्म जैसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यम आज पूरी तरह कम्प्यूटर के प्रभाव में है।

5. इंटरनेट—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संचार साधन इंटरनेटर इलेक्ट्रॉनिक कनेक्शनों की एक विशाल प्रणाली है जो बिजली की भाँति आधुनिक जीवन का एक अंग है। आज घर पर बैठकर युवा वर्ग को On Line Education प्राप्त हो रही है। अब वह दिन दूर नहीं है जब इस नित बदलती तकनीक में रोबोट समाचार लिखते दिखेंगे।

आज से तीन दशक पहले 'गाजिर्यन' अखबार के कॉलम लेखक माइकल फ्रेन अपने उपन्यास में लिखा था—"वह दिन आएगा जब संवाददाता की जगह मशीन ले लेगी।" तब यह बात कपोल कल्पना ही प्रतीत हुई होगी पर आज यह शत-प्रतिशत सत्य दीख रही है।

6. इंटरानेट (Internet)—वस्तुतः यह किसी कम्पनी या संस्था का निजी कम्यूटर नेटवर्क होता है जो किसी सार्वजनिक नेटवर्क की तरह कार्य करता है, परन्तु यह कम्पनी के आन्तरिक प्रयोग तक सीमित रहता है। दृश्य-श्रव्य तथा श्रव्य जनसंचार माध्यमों में इस इंटरानेट प्रौद्योगिकी का भी विशेष महत्त्व है। कभी-कभी समाचार वादक समाचार वाचन के दौरान ही प्राप्त किसी नवीन व महत्त्वपूर्ण समाचार के संदर्भ में 'अभी-अभी प्राप्त सूचना के अनुसार.....' कहकर उसे उद्घोषित करता है। उसे यह सूचना इंटरानेट के माध्यम से ही मिलती है। इसके अतिरिक्त कम्पनी या संस्था की विभिन्न शाखाओं के बीच सूचनाओं के तीव्र गामी आदान-प्रदान के लिए इंटरानेट उपयोगी सिद्ध हुआ है।

बच्चों तथा किशोरों पर मीडिया का प्रभाव—जब भी कोई बदलाव जीवन में आता है अथवा लाया जाता है तो वह परिवर्तन अपने संग स्याह-सफेद अर्थात् गुण-दोष भी लेकर आता है। आज हम यदि जनसंचार के क्षेत्र में विकास के नवीन आयाम देख रहे हैं तो स्पष्ट रूप से यह भी देख रहे हैं कि जीवन में बहुत कुछ उपलब्ध हो रहा है तो बहुत कुछ ऐसा भी है जो हमारे हाथों से अनायास फिसलता जा रहा है।

मशीन जब तक व्यक्ति की सहयोगी बनी रहती है और तकनीक मौलिकता को प्रभावित नहीं करती या उस पर हावी नहीं होती तब तक उसका सदुपयोग होता है। सूचना प्रौद्योगिकी के जन-संचार माध्यमों के क्षेत्र में बढ़ते कदमों ने सबसे पहले वही प्रभाव उत्पन्न किए थे जिसे हम जीवन के लिए उपयोगी, हितकर समझते हैं।

श्री अर्जुन तिवारी ने अपनी 'ई-जर्नलिज्म' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है—"दुनिया में पहले भुजा की शक्ति थी, बाद में भाप की शक्ति आई, तत्पश्चात् तेल की शक्ति का आगमन हुआ। आज तो आणविक उपग्रह की शक्ति है।"

मुद्रण मशीन, टेलीग्राम, टेलीग्राफ, थल-ट्रांसमीशन, जलमग्न-केबल, भूमिगत केबल, उपग्रह व्यवस्था ने संचार जगत को नित नूतन आयाम दिए। मीडिया के प्रभावों को निम्न वर्गों के अन्तर्गत बाँटा जा सकता है—

(i) ई-जर्नलिज्म : विकास के नये क्षितिज—कम्प्यूटर इंटरनेट, ई-मेल, मल्टीमीडिया, कन्वर्जेंस के अलावा इनसेट ने पूरी पत्रकारिता को ई-जर्नलिज्म में परिवर्तित कर दिया है। इसका बच्चों तथा किशोरों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

जन सम्प्रेषण, जन शिक्षण एवं जन-हित, मनोरंजन के लक्ष्य को लेकर सूचना क्रान्ति के कर्णधारों के नियमन, संयोजन सम्पादन, प्रकाशन तथा प्रसारण ही आज की पत्रकारिता है। आज की पत्रकारिता कला, शिल्प तथा विज्ञान की संयुक्त परिकल्पना है। आज पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रभावकारी परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं।

(ii) उत्पादन वृद्धि—जीवन और जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन तकनीकी विकास तथा उससे प्रभावित संचार जगत् ने विस्मयकारी कार्य किया है। प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन की क्षमता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ी है। संचार के आधुनिक रूप की जन्मदात्री इलेक्ट्रॉनिकी है। उद्योग के प्रत्येक क्षेत्र की जानकारी पूरे संसार

Scanned with OKEN Scanner

से एकत्र कर हमारी संचार प्रक्रिया भी उत्पादन वृद्धि में सहायक हो रही है। जनसंचार माध्यमों के नित नये मॉडल नई सुविधाओं के साथ आ रहे हैं।

(iii) गुणवत्ता–हमारे संचार माध्यमों की गुणवत्ता में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। चाहे प्रिंट मीडिया हो अथवा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, नई साज-सज्जा व नई तकनीक लेकर प्रतिदिन उपभोक्ता को लुभा रहा है। कनवर्जेंस टेलीकम्यूनिकेशन ब्रॉडकास्टिंग तथा नेटवर्किंग को सम्मिलित कर एक ऐसे एकल डिजिटल नेटवर्क का निर्माण करता है, जिसके द्वारा उपभोक्ता की सभी आवश्यकताएँ - टेलीफोन फैक्स, टी. वी. इंटरनेट, वीडियाफोन, मूवी, संगीत मनोरंजन आदि एक ही स्रोत से पूरी हो जाती हैं। आधुनिक सूचना तकनीक से युक्त हमारे जनसंचार माध्यमों ने सरकारी कार्य क्षेत्र को प्रभावित किया है। जनता की शिकायतें दूर करने और देखते-देखते आवश्यकताओं को पूरा करने वाली अति विचित्र पद्धति का प्रभुत्व बढ़ रहा है। यह 'ई-शासन' (ई-गवर्नेंस) एक सरल तथा पारदर्शी व्यवस्था है। बाबू-संस्कृति से जनता को छुटकारा मिल रहा है। व्यर्थ की भागदौड़ से त्रस्त जनता को राहत की साँस लेने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

(iv) समय की बचत–मानव के व्यस्ततम जीवन में नई सूचना प्रणाली ने आराम के अवसर प्रदान किए हैं। काम की कोई आपा-धापी नहीं है। काम के बोझ के तले रहने वाला व्यक्ति आज अपने लिए समय निकाल पा रहा है। पत्रकारिता के क्षेत्र में साइकिलों पर या पैदल दौड़ लगाने वाले संवाददाता को अपने मोबाइल अथवा लैपटॉप पर सारी दुनिया की जानकारी प्राप्त हो रही है। हाथ से समाचार लिखने की परम्परा समाप्ति पर है। इंटरनेट की इलेक्ट्रॉनिक लाइब्रेरी ने ज्ञान और सूचनाओं का अक्षय भंडार एक कमरे में ही व्यक्ति को उपलब्ध करा दिया है। अब उसे लाइब्रेरियों की खाक छानने की आवश्यकता नहीं है। इलेक्ट्रॉनिक रिपोर्टिंग, इलेक्ट्रॉनिक एडिटिंग, इलेक्ट्रॉनिक डिजायनिंग, इलेक्ट्रॉनिक टाइप सेटिंग, इलेक्ट्रॉनिक प्रिंटिंग वाली पत्रकारिता ने मनुष्य का मूल्यवान समय बचा दिया है। पलक झपकते ही यह सब उपलब्ध हो जाता है। पहले कहा जाता हया–**"जहाँ कुछ भी घटता है, हम वहाँ होते हैं"** पर आज यह अवधारणा बदल गयी है। आज का इलेक्ट्रॉनिक पत्रकार कहता है–**"जहाँ कुछ भी घटता है, हम आपको वहाँ ले चलते हैं।"** आज खबरें आँखों से पढ़ी कम आँखों से देखी अधिक लाती हैं। बच्चों तथा किशोरों को इसका अत्यधिक लाभ होता है।

(v) मनोरंजन–आज आधुनिक जनसंचार माध्यमों के आधुनिक विकसित तकनीक से युक्त होने के कारण मनोरंजन की दुनिया में भी अभूतपूर्व क्रान्ति आई है। रेडियो, टी. वी. और फिल्मों में नित नई तकनीक का विकास हो रहा है। कम्प्यूटर ग्राफिक्स, एनीमिटिड पिक्चर्स ने फिल्मों को नया बाना पहनाया है। हॉलीवुड की फिल्में जिस चमत्कार को दिखाकर शिक्षित समाज को अपनी तरफ आकर्षित कर रही थीं, वही तकनीक आजकल हिन्दी फिल्मों में दिखायी पड़ने लगी है। डिजिटल फोटोग्राफी, डिजिटल साउंड ने टी. वी. व फिल्मों को नई सजधज दी है।

दूसरी तरफ संगीत अथवा फिल्मों के लिए व्यक्ति को सिनेमाघर तक जाने की भी आवश्यकता नहीं रह गयी है। घर के पी. सी. या केवल टी. वी. पर मनचाहा संगीत व मनचाही फिल्म उपलब्ध है।

कन्वर्जेंस की तकनीक से होम थियेटर अपने कम्प्यूटर पर ही उपलब्ध हो गया है।

महत्वपूर्ण घटनाओं का विश्लेषण जो मीडिया द्वारा प्रकाश में लाई जाती है तथा पैदा की जाती है (Deconstruction of significant events that media highlights and creates) –

1. जब मीडिया द्वारा बाल शोषण की घटनाओं पर से पर्दा उठाया जाता है तो बच्चे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते हैं। मीडिया द्वारा ही शोषण करने वाले लोगों को उजागर किया जाता है।
2. जहाँ पर बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन किया जाता है वहाँ मीडिया द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है। मीडिया के द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है। मीडिया के हस्तक्षेप का भय जब लोगों में होता है तो बच्चों के अधिकारों के उल्लघंन पर काफी रोक लगती है।
3. मीडिया द्वारा बच्चों तथा किशोरों के सन्दर्भ में समाज में एक प्रवृत्ति का निर्माण किया जाता है जिसका प्रभाव प्रौढ़ों पर भी पड़ता है कि उन्हें बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

4. मीडिया बच्चों के अधिकारों के संरक्षण के लिए सरकार द्वारा, बनाए गए कानूनों को सख्ती से लागू करने के लिए दबाव बनाता है और उसकी कमियों को लोगों के सामने उजागर करता है। यदि उन कानूनों में कोई खामियाँ होती है तो उन्हें दूर करने का संकेत भी देता है।
5. मीडिया की मदद से बालक तथा किशोर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए उन्मुख होते हैं।
6. ऐसी बहुत सी संस्थाएँ है जो बच्चों के अधिकारों के संरक्षण के लिए कार्य करती है उन संस्थाओं के बारे में मीडिया द्वारा मदद की जाती है।
7. बच्चों के कल्याण के लिए सरकार तथा प्रशासन द्वारा अनेक कार्यक्रम तथा नीतियाँ बनाई जाती है। इन कार्यक्रमों तथा नीतियों को जन-जन तक पहुँचाने में मीडिया की मुख्य भूमिका होती है।
8. समाज में अनेक स्थितियों व परिस्थितियाँ होती है जहाँ बच्चे आसानी से शोषण के शिकार हो सकते हैं। मीडिया माता-पिता को उन परिस्थितियों से अवगत कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

◆◆◆

लघु-उत्तरात्मक प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

प्रश्न 1. वृद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर— **वृद्धि का अर्थ (Meaning of Growth)**—वृद्धि का अर्थ आमतौर पर मानव के शरीर के विभिन्न अंगों के विकास तथा उन अंगों की कार्य करने की क्षमता का विकास माना जाता है। व्यक्ति के इन शारीरिक अंगों के विकास के परिणामस्वरूप उसका व्यवहार किसी न किसी रूप से प्रभावित होता है। इस प्रभाव के परिणामस्वरूप ही उस व्यक्ति के अंगों में परिवर्तन होता है। इस तरह वृद्धि से अभिप्राय है—शरीर, आकार और भार में वृद्धि। इस प्रकार की वृद्धि में व्यक्ति की माँसपेशियों की वृद्धि भी शामिल है। मनोविज्ञान में आमतौर पर 'वृद्धि' के संदर्भ में इस्तेमाल किया जाता है।

हरबर्ट सोरेन्सन *(Herbert Sorenson)* ने तो शारीरिक वृद्धि को 'बड़ा और भारी होना' बताया है। जो वृद्धि और परिवर्तनों की ओर संकेत करते हैं।

एच. वी. मैरीडिथ *(H.V. Meredith)* के अनुसार, **"वृद्धि और विकास का पहला प्रमाण मानव के आकार में परिवर्तनों का आना है। दूसरा प्रमाण संख्या है। दो कोशिकाओं के मिलने से कई कोशिकाओं वाला मानव जन्म लेता है। तीसरा प्रमाण है—मानव की हड्डियों में परिवर्तन होना। चौथा प्रमाण है—हृदय, आँतड़ियों और अन्य अंगों के कोणों और स्थिति में परिवर्तन का होना। पाँचवां प्रमाण है—सापेक्षिक आकार में परिवर्तन, अर्थात् सिर टाँगों की अपेक्षा छोटा हो जाता है।"** संक्षेप में, वृद्धि और विकास के पाँच प्रमाण हुए—आकार, संख्या, प्रकार, स्थिति तथा सापेक्षिक आकार *(Size, Number, Kind, Position and Relative size)*।

जैसा कि हमें मालूम है कि मानव की वृद्धि निषेचित अंड *(Fertilized Orum)* में विभाजन के परिणामस्वरूप होती है। विभाजित निषेचित अंड ही भ्रूण *(Embryo)* बनता है तथा उसकी कोशिकाओं *(Cells)* में वृद्धि से ही मानव शरीर में वृद्धि होती है। वृद्धि तथा शारीरिक वृद्धि निरन्तर नहीं होती। इसकी गति एक जैसी नहीं होती। वृद्धि की गति में परिवर्तन आते रहते हैं। किसी विशेष समय तक वृद्धि होती रहती है तथा उसके पश्चात् यह रुक जाती है।

वृद्धि एक विशेष पद्धति *(Pattern)* पर तथा आन्तरिक रूप से होती रहती है। शिशुकाल में वृद्धि की गति बहुत तीव्र होती है, लेकिन बाद में यह धीमी हो जाती है। वृद्धि वंशानुक्रम और वातावरण की अन्तःक्रिया से होती है।

Scanned with OKEN Scanner

फ्रैंक (Frank) ने वृद्धि को इस प्रकार परिभाषित किया है—'शरीर के किसी विशेष पक्ष में जो परिवर्तन आता है उसे वृद्धि कहते हैं।'

प्रश्न 2. विकास का क्या अर्थ है?

उत्तर— **विकास का अर्थ (Meaning of Development)**—विकास *(Development)* शब्द उन्नति से सम्बन्धित परिवर्तनों की ओर संकेत करता है और परिपक्वता *(Maturity)* की ओर अग्रसर करता है। मानव के आकार और उसकी रचना में गुणात्मक और मात्रात्मक *(Qualitative and Quantitative)* परिवर्तनों के कारण उसमें कार्य सम्बन्धी सुधार आ जाते हैं। अतः विकास परिपक्वता की ही एक प्रक्रिया है। अधिकतर शारीरिक विकास शारीरिक वृद्धि पर निर्भर करता है। वृद्धि और विकास के इस बुनियादी सम्बन्ध के कारण वृद्धि और विकास शब्दों को एक-दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है।

जर्सिल्ड, टेलफोर्ड और सॉरी (Jersild, Telford and Sawrey) के अनुसार, "विकास शब्द का अर्थ उन जटिल प्रक्रियाओं का समूह है जिनसे निषेचित अंड से एक परिपक्व व्यक्ति का उदय होता है।" *(Development refers to the complex set of processes involved in the emergence of a mature functioning organism from a fertilized ovum.)*

प्रश्न 3. किशोरावस्था से आपका क्या अभिप्राय है?

उत्तर— **किशोरावस्था (Adolescence)**—किशोरावस्था अर्थात् *'Adolescence'* का अर्थ है *(To grow maturity)* अर्थात् "परिपक्वता की ओर बढ़ना।" यह अवस्था 11-12 वर्ष से लेकर 21 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था की शुरूआत वयःसन्धि अवस्था *(Puberty Period)* से आरंभ हो जाती है। विकास की इस अवस्था में बालकों में विकास बहुत तीव्र गति से होता है। लड़कों की आवाज भारी हो जाती है एवं प्रजनन संस्थान *(Reproductive system)* में भी तेजी से परिपक्वता आ जाती है। विकास की इस अवस्था में किशोर एवं किशोरियों में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण बढ़ जाता है। तथा तीव्र परिवर्तनों के कारण उनके मन में काफी तनाव उत्पन्न हो जाता है और उनमें संवेदनशीलता काफी बढ़ जाती है। इस अवस्था में माता-पिता का सफल व सही निर्देशन किशोर के भावी जीवन के निर्धारण की नींव का काम करता है। किशोरावस्था की मुख्य विशेषता किशोरों में पहचान पाने की इच्छा *(Identity crists)* का उत्पन्न होना। विकास की यह अवस्था किशोरों की सबसे नाजुक अवस्था है। इस अवस्था के दौरान किशोरों में तर्कशक्ति तथा चिंतन शक्ति का विकास हो जाता है।

प्रश्न 4. शारीरिक विकास का क्या अर्थ है?

उत्तर— **शारीरिक विकास का अर्थ (Meaning of Physical Development)**—नवजात शिशु पर्याप्त पोषण व उपयुक्त देखभाल के फलस्वरूप ऊँचाई व भार में उस समय तक बढ़ता रहता है, जब तक शारीरिक विकास परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त नहीं हो जाता। शारीरिक विकास जन्म से पूर्व गर्भधारण काल से ही प्रारंभ हो जाता है। गर्भकालीन अवस्था में शारीरिक विकास अत्यधिक तीव्र गति से होता है। एक सूक्ष्म जीव कोष नौ महीने के अंदर (जन्म के समय) एक मानव शिशु बन जाता है। जन्म के पश्चात् भी विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं के अंतर्गत शारीरिक विकास निरंतर होता रहता है। लगभग बीस साल में बालक पूर्ण वयस्क शरीर प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् केवल शारीरिक भार में अंतर होता रहता है।

शारीरिक विकास से तात्पर्य, सामान्य शारीरिक रचना, शरीर की ऊंचाई, भार, शारीरिक अवयवों का अनुपात, आंतरिक अंगों, हड्डियों तथा मांसपेशियों का विकास, स्नायु मंडल तथा मस्तिष्क तथा अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ के विकास से है। इनमें से किसी भी एक अंग के विकास के कुंठित हो जाने से बालक के शारीरिक स्वास्थ्य पर ही प्रभाव नहीं पड़ता, वरन् उसका मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, क्रियात्मक विकास आदि भी प्रभावित होता है, क्योंकि बालक का शारीरिक विकास

Scanned with OKEN Scanner

उसके अन्य सभी प्रकार के विकासों के साथ किसी न किसी रूप में सम्बन्धित होता है और इसी पर बालक का बौद्धिक, व्यावहारिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक समायोजन निर्भर करता है।

प्रश्न 5. मानसिक या बौद्धिक विकास क्या अर्थ है?

उत्तर– मानसिक या बौद्धिक विकास का अर्थ (Meaning of Intellectual or Mental Development)–मानसिक अथवा बौद्धिक विकास से तात्पर्य व्यक्ति की उन सभी मानसिक योग्यताओं और क्षमताओं में वृद्धि और विकास से है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति बदलते हुए परिवेश के साथ ठीक प्रकार समायोजन करता है और समस्त कठिनाइयों का हल ढूँढ़ने में अपनी मानसिक शक्तियों को समर्थ पाता है। जन्म के समय बच्चे का केवल शरीर ही होता है और उस शरीर में अर्थहीन भावनाएँ होती हैं, लेकिन समय के साथ-साथ, धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन आते हैं और इन्हीं परिवर्तनों को मानसिक विकास कहते हैं।

लॉक *(Locke)* ने जन्म के समय बच्चे के मस्तिष्क को एक 'कोरी स्लेट' *(Tabula Rasa)* का नाम दिया है और अनुभव द्वारा ही मस्तिष्क में विचारों और अर्थ की उत्पत्ति होती है। प्रथम अनुभव किसी अर्थ के बिना होता है, परन्तु किसी अनुभव को दोहराते रहने से वह अनुभव मस्तिष्क के लिए महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। ये अनुभव महत्त्वपूर्ण तभी बनते हैं जब विचार *(Ideas)*, स्मृतियाँ *(Memories)* और संवेगात्मक दृष्टिकोण *(Emotional Attitudes)* में सम्बन्ध स्थापित होता है। लेकिन **कोफ्का** *(Koffka)* का कहना है कि, पहला-पहला अनुभव भी अर्थ-विहीन नहीं होता। प्रत्येक अनुभव में किसी न किसी प्रकार का अर्थ विद्यमान रहता है। एक प्रकार के अर्थ से दूसरे प्रकार के अर्थ का ज्ञान होता है। *(No experience—not even a first experience is devoid of meaning. Some kind of meaning is present in every experience.)*

मानसिक विकास का दो दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जाता है। प्रथम, परिमाणात्मक मानसिक परीक्षण *(Quantitative Mental Testing)*; द्वितीय, गुणात्मक विकासात्मक मनोविज्ञान *(Quantitative or Normative Developmental Psychology)*. प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार इस बात का अध्ययन किया जाता है कि किसी विशेष आयु-वर्ग के शिशुओं की तुलना में किसी विशेष शिशु की मानसिक योग्यताएँ कितनी हैं? दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार इस बात का पता लगाया जाता है कि शिशु किस तरह की योग्यताओं और प्रत्ययों *(Concepts)* का प्रदर्शन करता है।

प्रश्न 6. सामाजिक विकास का क्या अर्थ है?

उत्तर– सामाजिक विकास का अर्थ (Meaning of Social Development)–सामाजिक अपेक्षाओं *(Social Expectations)* के अनुसार व्यवहार करने की योग्यता को ग्रहण कर लेना ही सामाजिक विकास कहलाता है।

हरलॉक *(Hurlock)* के अनुसार सामाजिक विकास सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता ग्रहण करना है।

सोरेनसन *(Sorenson)* ने सामाजिक विकास के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है–'सामाजिक वृद्धि और विकास से हमारा तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।'

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि केवल समाज ही मनुष्य को एक सभ्य प्राणी बनाता है। सामाजिक और मानसिक विकास के अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मानसिक विकास के अतिरिक्त सामाजिक विकास का सम्बन्ध संवेगात्मक विकास के साथ भी होता है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि बहुत सी सामाजिक समस्याओं का मूल कारण ही संवेगात्मक समस्याएँ होती हैं और संवेगात्मक समस्याओं का मूल कारण सामाजिक समस्याएँ होती हैं।

Scanned with OKEN Scanner

सामाजिक गुण जन्मजात नहीं होते। विकास के सभी पक्ष अपना-अपना प्रभाव बालक पर डालते हैं। इस प्रक्रिया में सामाजिक गुण भी बालक में धीरे-धीरे विकसित होते रहते हैं। सामाजिक विकास वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सामाजिक विकास के दो पक्ष होते है—समाजीकरण *(Socialization)* और सामाजिक परिधि का विस्तार *(Expansion of Social Horizon)* समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य अपने समाज के रीति-रिवाज सीखता है, समाज के नियम सीखता है। सामाजिक विकास की प्रक्रिया के मध्य बालक सामाजिक रीति-रिवाजों के साथ-साथ अपनी सामाजिक परिधि का भी विस्तार करता है। अपने समुदाय का सदस्य बनकर कई प्रकार के समूहों में शामिल होता है। इन समूहों के सदस्यों के साथ सहानुभूति, सहयोग तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार करने की योग्यता ग्रहण करता है।

प्रश्न 7. नैतिक विकास क्या अर्थ है?

उत्तर– साधारण शब्दों में नैतिक व्यवहार से तात्पर्य सामाजिक मान्यताओं व आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने से है। **हरलॉक के मतानुसार**–"समूह के कोड के अनुसार व्यवहार करना ही नैतिक व्यवहार कहलाता है।" नैतिक व्यवहार से संबंधित नियमों व मान्यताओं का पालन करना व्यक्ति के चरित्र की दृढ़ता व पवित्रता से संबंधित होता है।

अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति नैतिक मूल्यों व आदर्शों को इसलिये नहीं अपनाता है कि वे परंपरागत हैं या समाज के सारे लोग इनका अनुसरण करते हैं, बल्कि वह इन मूल्यों और आदर्शों को अपनी तर्क व विवकेशक्ति के आधार पर ग्रहण करता है, क्योंकि नैतिकता से संबंधित सभी नियम धार्मिक विश्वासों, नियमों, पवित्रता, आस्था, न्याय तथा सच्चाई पर आधारित होते हैं और सदैव बुद्धि से संबंधित तथा तार्किक होते हैं।

नैतिकता से संबंधित व्यवहार जन्मजात नहीं होता अपितु नैतिकता का विकास बालक के वातावरण के संपर्क में आने के पश्चात् होता है। प्रारंभ में बालक नैतिकता से संबंधित व्यवहार को पुरस्कार, दंड या प्रशंसा और निंदा आदि के आधार पर सीखता है। आरंभ में बालक को उचित और अनुचित का ज्ञान नहीं होता है। वह केवल प्रलोभन के कारण ही उचित व्यवहार प्रदर्शित करता है। इस अवस्था में बालक को पूर्णतः नैतिक नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में बालक में नैतिकता का विकास उसकी ज्ञान, शक्ति व विवेक के विकास पर निर्भर करता है।

किशोरावस्था में जाकर बालक में विवेक का उदय होता है। अतः तब वह प्रलोभनों को त्यागकर अपनी अंतःप्रेरणा और अंतरात्मा के आधार पर शुद्ध आचरण अपना सकता है। अतः उचित-अनुचित का ज्ञान व नैतिक-प्रत्यय *(Moral Concept)* के विकसित हो जाने पर जब बालक स्वयं अपनी बुद्धि एवं विवेक के आधार पर उचित निर्णय देना आरंभ कर देता है तभी हम कह सकते हैं कि बालक में स्वस्थ रूप से नैतिक-व्यवहार का विकास हो रहा है। अतः विवेक एवं बुद्धि के द्वारा निर्देशित होकर अपनी इच्छानुसार नैतिक व्यवहार करना नैतिकता को प्रदर्शित करता है।

प्रश्न 8. जीन-पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त क्या है?

उत्तर– **जीन-पियाजे** *(Jean Piaget)* जैनेवा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। उन्होंने अपने ही तीन बच्चों का अध्ययन किया। इन बच्चों के अध्ययन से पियाजे ने जो कुछ भी सीखा उससे उन्हें मानसिक-विकास के सिद्धान्त के निर्माण का एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ। अपने बच्चों के विस्तृत अध्ययन और अन्य प्रयोगशाला अध्ययनों से पियाजे ने बदलते हुए स्वरूपों *(Changing structures)* की प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाले जिससे बच्चों के प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* और विचारों *(Thoughts)* के बारे में पता चलता है। जैसे-जैसे बच्चा शैशवावस्था *(Infancy)* से किशोरावस्था *(Adolexcence)* तक पहुंचता है, वैसे-वैसे बच्चे के प्रत्यक्षीकरणों *(Perceptions)* और उसके विचारों के बारे में पता चलता है।

Scanned with OKEN Scanner

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या करते हुये संज्ञान के अर्थ के सम्बन्ध में कहा है कि संज्ञान प्राणी का वह ज्ञान है जिसे वह वातावरण के सम्पर्क में आकर प्राप्त करता है और इसमें अनेक मानसिक क्रियाओं जैसे-चिन्तन, तर्क, प्रत्यक्षीकरण, समस्या, समाधान आदि शामिल होती हैं जो निरन्तर रूप से चलती रहती हैं। विकास को किसी अवस्था विशेष में उनमें बदलती नहीं हैं। पियाजे का यह भी मानना है कि बालक द्वारा प्राप्त या अर्जित किये गये ज्ञान-भण्डार का स्वरूप और बनावट *(Structure)* विकास की प्रत्येक अवस्था के दौरान बदलता रहता है तथा साथ ही परिमार्जित या संशोधित होता रहता है। पियाजे के संज्ञानात्मक सिद्धान्त को विकासात्मक सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि पियाजे का मानना है कि बालक के अन्दर संज्ञान का विकास अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। इसके अतिरिक्त पियाजे के सिद्धान्त को 'अवस्था सिद्धान्त' *(Stage theory)* भी कहा जाता है क्योंकि बालक के संज्ञान की संरचना और स्वरूप अलग-अलग अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न होता है। पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की प्रत्येक अवस्था के दौरान बालक द्वारा अर्जित या प्राप्त किये गये ज्ञान-भण्डार को स्कीमा *(Schema)* का नाम दिया है।

पियाजे के बौद्धिक-विकास के सिद्धान्त में विभिन्न क्रियाओं की विस्तृत शृंखला को शामिल किया गया है। पियाजे का सिद्धान्त इस बात पर भी केन्द्रित है कि लोग कैसे सोचते हैं, बजाय इसके लोग क्या सोचते हैं। पियाजे का सिद्धान्त सभी समाजों और संस्कृतियों पर लागू होता है। इनके सिद्धान्त की सबसे प्रमुख शक्ति यह है कि यह सिद्धान्त हमें यह बताता है कि व्यक्ति की वंशानुक्रमित *(Inherited Capacities)* क्षमतायें वातावरण के साथ अन्तःक्रिया करती हैं और बौद्धिक रूप में क्रियाशील बालक या व्यक्ति उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार पियाजे के सिद्धान्त में दोनों वंशानुक्रम *(Nature)* और वातावरण *(Environment)* को महत्त्व मिला है।

प्रश्न 9. कोलबर्ग की मूलभूत आवश्यकताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– कोलबर्ग की मूलभूत आवश्यकताएँ (Basic Assumptions of Kohlberg's Theory)–

(i) बालक के नैतिक विकास के स्वरूप को समझने के लिए उनके तर्क और सिद्धांत के स्वरूप (Structure of Rearing and Thinking) का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। बच्चे द्वारा प्रदर्शित प्रतिक्रियाओं के आधार पर इसकी नैतिकता का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अधिकतर परिस्थितियों में बच्चा भय या पुरस्कार के प्रलोभन में वांछनीय व्यवहार प्रदर्शित करता है, नैतिक चिंतन या नैतिक निर्णय के कारण नहीं। कोलबर्ग ने बालक को किसी धर्मसंकट की स्थिति (Dilemma) में रखकर यह देखा है कि बालक उस परिस्थिति में क्या सोचता है तथा किस तर्क के आधार पर उचित व्यवहार के लिए निर्णय लेता है। कोलबर्ग के इस उपागम को प्राणीगत उपागम (Organismic Approach) भी कहा गया है।

(ii) कोलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धांत को 'अवस्था सिद्धांत' (Stage Theory) भी कहा गया है। उन्होंने सम्पूर्ण नैतिक विकास को छः अवस्थाओं में बाँटा है तथा इन्हें सार्वभौमिक (Universal) माना है। उनके अनुसार सभी बच्चे इन अवस्थाओं में से गुजरते हैं। नैतिक विकास की ये अवस्थाएँ एक निश्चित क्रम में आती हैं और वह क्रम बदला नहीं जा सकता। नैतिक विकास की प्रत्येक अवस्था में पाई जाने वाली नैतिकता का गुण अन्य अवस्थाओं की नैतिकता से भिन्न होता है। प्रत्येक अवस्था में बालक की तर्क शक्ति (Reasoning) नए प्रकार की होती है।

(iii) जब बच्चा एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है तो उस बच्चे के भीतर नैतिक व्यवहार गुणात्मक परिवर्तन (Quantitative Changes) कब और कैसे उत्पन्न होते हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। कोलबर्ग के अनुसार नैतिक व्यवहार में गुणात्मक परिवर्तन

Scanned with OKEN Scanner

क्रमिक रूप से ही आते हैं। अचानक ही पैदा नहीं हो जाते। किसी अवस्था विशेष में पहुँचने पर बालक केवल उसी अवस्था की विशेषताओं का ही प्रदर्शन नहीं करता बल्कि उसमें कई अवस्थाओं के व्यवहार मिश्रित रूप से दिखाई पड़ते हैं। उसमें अधिकांश व्यवहार जिस अवस्था के अनुरूप होते हैं। बच्चे को उसी अवस्था का मान लिया जाता है।

(iv) कोलबर्ग के एक सहयोगी इलियट टूरियल (Elliot Turiel, 1969) के अनुसार प्रायः सभी बच्चे नैतिक विकास की एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था में प्रविष्ट होता है परन्तु सभी बालक छः अवस्थाओं तक नहीं पहुँच पाते। नैतिक विकास की अन्तिम अवस्था तक पहुँचने वाले बालकों की संख्या बहुत कम होती है। अतः नैतिक तर्कशक्ति या नैतिक चिन्तन की दृष्टि से बच्चों में व्यक्तिगत भिन्नताएँ (Individual Differences) देखने को मिलते हैं। ये भिन्नताएं विकास की गति तथा विकास की सीमाओं दोनों ही कारणों से पैदा होती है।

प्रश्न 10. एरिक्सन का मनो-सामाजिक विकास का सिद्धान्त क्या है?

उत्तर– एरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के प्रतिमान (Model) का बहुत महत्त्व है। यह सिद्धान्त बाल विकास के साथ प्रौढ़ों के विकास में भी सहायक है।

एरिक एरिक्सन (Erick Erickson) ने सर्वप्रथम आठ-स्तरीय मानव विकास का सिद्धान्त 1950 में अपनी पुस्तक 'बाल्यकाल और समाज' (Childhood and Society) नामक पुस्तक में प्रकाशित किया। इस अध्याय का नाम था–'मनुष्य की आठ आयु' इसके पश्चात् उसने अपनी बाद की पुस्तकों में इसमें और सुधार कर लिया। एरिक्सन के इस मॉडल के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया, जैसे जीव-मनो-सामाजिक सिद्धान्त (Bio-psychosocial theory); एरिक्सन का मानव-विकास का चक्र (Erickson's Human Development Cycle)। इन सभी का सम्बन्ध इसी मनो-सामाजिक सिद्धान्त की आठ अवस्थाओं से है। 'मनो-सामाजिक' शब्द एरिक्सन का प्रयोग किया शब्द हैं जिसमें मनोविज्ञान का अर्थ है 'मन' और 'समाज' (Social) से अभिप्राय है 'सम्बन्ध' (Relationship)।

ऐरिक्सन का विचार था कि मनो-सामाजिक सिद्धान्त विकास में मनुष्य की जैवकीय रूप से (Genetically) स्वरूप प्रदान करता है। यह सभी व्यक्तियों में होता है। फ्रायड की भाँति एरिक्सन ने भी इस बात पर बल दिया कि व्यक्तित्त्व और व्यवहार जन्म के बाद न कि जन्म से पहले किस प्रकार प्रभावित होते हैं।

ऐरिक्सन के सिद्धान्त का केन्द्रीय बिन्दु यह है कि मानव के व्यक्तित्त्व का विकास कई पूर्वनिश्चित अवस्थाएँ जो सार्वभौमिक (Universal) होती हैं, से होकर होता है। जिस प्रक्रिया द्वारा ये अवस्थाएँ विकसित होती हैं, वह विशेष नियम द्वारा नियंत्रित होती हैं। इस नियम को 'पश्चजात नियम' (Epigenetic Principle) कहा जाता है।

प्रश्न 11. वंशानुक्रम से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– **वंशानुक्रम का अर्थ (Meaning of Heredity)**–यह देखकर बहुत आश्चर्य होता है जब बच्चे माता-पिता जैसे ही होते हैं, जैसे बुद्धि-स्तर पर समानता, रंग-रूप में समानता, शारीरिक रचना में समानता, कद में समानता आदि। कई बार माता-पिता और सन्तान में यह समानता अनुपस्थित भी होती है। कई बार बुद्धिमान माता-पिता की सन्तान मूर्ख ही रह जाती है। गोरे माता-पिता की सन्तान काली होती है। इस प्रकार इन अन्तरों में वंशानुक्रम की मुख्य भूमिका होती है।

साधारण शब्दों में वंशानुक्रम का अर्थ है–जैसे माता-पिता, वैसी सन्तान। इस दृष्टि से यदि माता-पिता बुद्धिमान है तो उनकी सन्तान भी बुद्धिमान होगी। इसी प्रकार एक कुत्ता 'कुत्ते' को ही पैदा करता है, बिल्ली 'बिल्ली' को ही पैदा करती है तथा मानव से 'मानव' ही पैदा होता है। 'समान से समान' जीवन पैदा करने वाली धारणा वंशानुक्रम की 'संकीर्ण धारणा' *(Narrow*

Scanned with OKEN Scanner

Concept) कहलाती है तथा जैसे 'माता-पिता, वैसी सन्तान' वाली धारणा को 'विस्तृत धारणा' *(Broader Concept)* माना गया है। इस प्रकार वंशानुक्रम के अर्थ को निम्नलिखित दो प्रकार की धारणाओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

(1) संकीर्ण धारण *(Narrow Concept)*

(2) विस्तृत धारणा *(Broader Concept)*

(1) **संकीर्ण धारणा (Narrow Concept)**–इस धारणा के अनुसार शारीरिक समानताएँ वंशानुक्रम कहलाती हैं। लेकिन यह अर्थ बहुत ही संकीर्ण है तथा एक अशिक्षित व्यक्ति की जिज्ञासा शांत करने के लिए पर्याप्त है। यह धारणा समानता और शारीरिक विशेषताओं पर प्रकाश डालती है। जैसे–शारीरिक अंगों, रंग-रूप, आकार, सूरत इत्यादि में समानता का होना ही वंशानुक्रम है।

(2) **विस्तृत धारणा (Broder Concept)**–इस धारणा के अनुसार इन समानताओं के अतिरिक्त असमानताओं को भी वंशानुक्रम के अर्थ से शामिल किया जाता है। विस्तृत धारणा के अनुसार वंशानुक्रम वे सभी कारक तत्व हैं जो बच्चे के जन्म के साथ नहीं, बल्कि गर्भाधान के समय उसमें उपस्थित होते हैं। वंशानुक्रम की इस धारणा के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक और व्यक्तित्व लक्षण शामिल होते हैं। शारीरिक लक्षणों में जैसे–चेहरा, आंखों का रंग, त्वचा, हाथों का आकार, टांगों का आकार तथा ग्रन्थियाँ आदि। मानसिक लक्षणों के अन्तर्गत प्रवृत्तियाँ, बुद्धि, स्मरण शक्ति, सूक्ष्म विचार, तर्क शक्ति, निर्णय क्षमता तथा ध्यान आदि आते हैं। व्यक्तित्व के दूसरे लक्षणों में व्यवहार, स्वभाव, आदतें, संवेग, सूंघने की शक्ति आदि शामिल हैं। विस्तृत धारणा के अनुसार 'ये सभी लक्षण बच्चे अपने माता-पिता से प्राप्त करते हैं तथा इसे ही वंशानुक्रम कहा जाता है। इस प्रकार वंशानुक्रम 'जन्मजात वैयक्तिक गुणों का योगफल' *(Sumtotal of inborn individual traits)* है। जीव शास्त्रियों *(Biologists)* के अनुसार "निषेचित अंड में सम्भाव्यतः उपस्थित विशिष्ट गुणों का योग ही वंशानुक्रम है।" *(The sum-total of the traits potentially present in the fertilized ovum.)*

प्रश्न 12. **वातावरण का क्या अर्थ है?**

उत्तर– **वातावरण का अर्थ (Meaning of Environment)**–यह तो निश्चित ही है कि गर्भाधान के समय विशेषताओं का हस्तान्तरण पैतृकों *(Genes)* द्वारा हो जाता है। गर्भाधान के पश्चात् इन विशेषताओं का पालन-पोषण या विकास करने के लिये उचित वातावरण की अति आवश्यकता पड़ती है। उचित वातावरण के अभाव में इन विशेषताओं या गुणों का विकास संभव नहीं। गर्भाधान के पश्चात् सम्बन्धित शक्तियाँ सक्रिय हो उठती हैं। वातावरण किसे कहा गया है–यह निम्नलिखित परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है–

रॉस *(Ross)* के अनुसार–"वातावरण वह हर वस्तु हैं जो किसी अन्य वस्तु को घेरे हुए और उस पर सीधे अपना प्रभाव डालता है।" *(the environment, as anything immediately surrounding as object exerting a direct or influence on it.)*

एनास्टसी *(Anastasi)* के अनुसार–"वातावरण वह हर वस्तु है जो व्यक्ति के पैतृकों के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को प्रभावित करता है।" *(The environment is everything that affects the individual except the genes.)*

वुडवर्थ और मार्क्विस *(Woodworth and Marquis)* के शब्दों में, "वातावरण में वे सभी बाहरी तत्व आ जाते हैं, जिन्होंने व्यक्ति को अपनी जीवन-लीला प्रारम्भ करने के समय से प्रभावित किया हो।" *(Environment covers all the outside factors that acted on the individual since he began life.)*

Scanned with OKEN Scanner

डुगलस और हालैंड *(Douglas and Holland)* के अनुसार—"वातावरण वह शब्द है जिसका प्रयोग समस्त बाहरी शक्तियों, प्रभावों और परिस्थितियों का सामूहिक रूप से वर्णन करने के लिए किया जाता है तथा जो जीवधारियों के जीवन, स्वभाव, व्यवहार और अभिवृद्धि, विकास तथा परिपक्वता पर प्रभाव डालता है।" *(The term environment is used to describe, in the aggregate, all the external forces, influences and conditions, which affect the life, nature, behaviour and the growth, development and maturity of living organisms.)*

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि वातावरण में वे सभी वस्तुएँ शामिल हैं जो दूसरी वस्तुओं को घेर कर प्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव छोड़ें। वातावरण गर्भाधान के समय से ही रचित हो जाता है तथा अंत तक अपना प्रभाव प्रदर्शित करता है। वंशानुक्रम के तत्वों का विकास करने में वातावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

प्रश्न 13. परिपक्वता के सम्प्रत्यय की व्याख्या कीजिए। इसका शैक्षिक महत्व क्या है?

उत्तर— परिपक्वता का अर्थ है किसी कार्य के विकास की पूर्ण उपलब्धि।

गैसल और **मार्टिन** दोनों ही यह मानते हैं कि प्राणी में परिपक्वता की प्रक्रिया स्वतः चलती रहती है और वह वातावरण के प्रभावों से मुक्त रहती है। परिपक्वता के अभाव में प्राणी अधिगम की क्रिया में सफल नहीं हो सकता। अधिगम के लिए परिपक्वता आवश्यक होती है (Maturation is essential for learning)।

गैसल (Gesell) के अनुसार, **"आत्म सीमित जीवन-चक्र में कार्य कर रहे जीवाणु के समूचे प्रभाव को परिपक्वता कहते हैं।"**

बोरिंग, लैंगफैल्ड और वैल्ड के विचारानुसार, **"परिपक्वता का अर्थ वृद्धि और विकास है जो किसी न किसी व्यवहार के अस्तित्त्व में आने या किसी विशिष्ट व्यवहार के अस्तित्त्व में आने से पहले अत्यन्त आवश्यक माना जाता है।"**

शारीरिक और मानसिक परिपक्वता के कारण भी व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन आयु के साथ-साथ होते हैं और प्राकृतिक होते हैं ये परिवर्तन सीखने के परिवर्तन से भिन्न हैं। सीखने और परिपक्वता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। परिपक्वता की अनुपस्थिति में सीखना संभव नहीं होता।

शैक्षिक महत्त्व (Educational Implications)—परिपक्वता और सीखने माता-पिता तथा अध्यापक को यह बात जानने में सहायता प्रदान करते हैं कि 'क्या' 'कब' सीखना चाहिए और कब नहीं। परिपक्वता की भूमिका का ज्ञान यह बताता है कि यदि बच्चे में सीखने की परिपक्वता नहीं है तो सीखने का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं तथा उसके लिए किया गया परिश्रम व्यर्थ जायेगा। अतः यदि सीखने का प्रयास परिपक्वता से पहले किया जाता है तो समय और शक्ति दोनों ही नष्ट होंगे। सीखने की प्रक्रिया तभी शुरू की जानी चाहिए जब बच्चा सीखने के लिए तैयार हो। ऐसी अवस्था में बच्चे के मार्गदर्शन एवं निर्देशन मिलान अति आवश्यक होता है, वरना उसकी रुचि के समाप्त होने की संभावना बनी रहती है।

परिपक्वता तथा सीखने का आपसी सम्बन्ध ही सीखने के समय को तय करता है, व्यक्ति तब तक नहीं सोच सकता जब तक वह तैयार न हो। इसी प्रकार परिपक्वता उन सीमाओं को निर्धारित करती है जिनके परे अत्यन्त अनुकूल शिक्षण-विधियों तथा विद्यार्थियों की सशक्त उत्तेजनाओं के होने पर भी विकास नहीं हो सकता।

व्यक्तिगत व्यवहारों, रुचियों, आकांशाओं तथा दृष्टिकोणों की विभिन्नता का कारण केवल मात्र परिपक्वता ही नहीं होता बल्कि परिपक्वता और सीखना दोनों ही होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

प्रश्न 14. परवरिश से क्या अभिप्राय है?

उत्तर **'परवरिश' से अभिप्राय (Meaning of Parenting)**–परवरिश शब्द को विभिन्न संदर्भों में प्रयोग किया जाता है। मानव के संदर्भ में 'परवरिश' शब्द बालक के जैविकीय माता-पिता (Biological Parents) के द्वारा की जाती है। इस परवरिश में सरकार और समाज भी योगदान करते हैं। परवरिश (Parenting) किसी बालक को जन्म से प्रौढ़ावस्था या वयस्कावस्था तक खड़ा करने और उसे शिक्षित करने की एक प्रक्रिया है। यह सामान्यतः परिवार में माता या पिता द्वारा की जाती है। जब माता-पिता ऐसी देखभाल करने के योग्य नहीं होते या इच्छुक नहीं होते वहां पर यह देखभाल या परवरिश निकट के संबंधी, दादा-दादी, नाना-नानी या अनाथालयों द्वारा की जाती है।

परवरिश का मुख्य लक्ष्य होता है–

(i) माता-पिता द्वारा बच्चों की शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना।

(ii) बच्चों की खतरों से सुरक्षा करना,

(iii) बच्चों के सांस्कृतिक मूल्यों, कौशलों आदि को प्रदान करते रहना होता है और यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक वे वैधानिक (Legally) तरीके से वयस्कावस्था अर्जित नहीं कर लेते।

इस प्रकार परवरिश को हम ऐसे भी परिभाषित कर सकते हैं–प्राकृतिक माता-पिता द्वारा बच्चे का ध्यान रखकर, पालन-पोषण और सुरक्षा करते हुए माता-पिता की भूमिका निभाना 'परवरिश' कहलाती है।

(Performing the role of a parents by care-giving nurturance and protection of the child by a natural parents in called parenting.)

प्रश्न 15. मीडिया का क्या अर्थ है?

उत्तर अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Media' का अर्थ होता है–'Means of Mass Communication'। अतः सबसे पहले 'मॉस' (Mass) शब्द की अवधारणा को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। **ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नरस डिक्शनरी** (Oxford Advanced Learner's Dictionary-1996, p-720) में मॉस (Mass) शब्द के दो अर्थ दिए गए हैं, जिन्हें हिन्दी में इस प्रकार रूपांतरित किया जा सकता है–(क) बिना किसी निश्चित आकार-प्रकार या क्रम के किसी चीज की बड़ी मात्रा, (ख) बड़ी मात्रा में एकत्र लोग या चीजें। (1. An often large quantity of something without a definite shape, form or order, 2. Large number of people or things together)। हिन्दी में इस शब्द के लिए अनेक शब्द उपलब्ध हैं, जैसे–जन, लोक, भीड़, दल आदि। परन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि वास्तव में 'मॉस' (Mass) शब्द किसी एक स्थान पर एकत्र लोगों की भीड़ का अर्थ-बोध नहीं कराता, बल्कि यह शब्द तो इधर-उधर फैले, रहने वाले व्यक्तियों का अर्थ-द्योतक है जो अलग-अलग वर्ग, समुदाय, परिस्थिति, स्थान आदि से संबंधित हैं।

अब हम 'Communication' अर्थात् कम्यूनिकेशन' शब्द को लेते हैं। अंग्रेजी भाषा में यह शब्द 'कम्यूनिकेट' 'Communicate)' शब्द से बना है, जिसके अर्थ हैं–

(i) Make something known, convey अर्थात् किसी चीज के बारे में जानकारी देना।

(ii) Exchange news, information, idea etc. अर्थात् समाचार, सूचना, विचार आदि का आदान-प्रदान।

हिन्दी भाषा में इसके लिए 'संचार' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार अंग्रेजी भाषा के शब्द 'मॉस कम्यूनिकेशन' (Mass Communication) के लिए हिन्दी भाषा में जिस **'जनसंचार'** शब्द का प्रयोग होता है, उसका अर्थ है–जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान करना।

Scanned with OKEN Scanner

चूँकि अंग्रेजी भाषा में 'मॉस' (Mass) शब्द के अर्थ में मीन्स (Means) अर्थात् 'साधन' शब्द का भी प्रयोग हुआ है, अतः 'मीडिया' (Media) शब्द का अर्थ हुआ—वे साधन, जिनके माध्यम से जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान की जाती है।

इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा के 'मल्टी' (Multi) शब्द के लिए हिन्दी में प्रायः 'बहु' उपसर्ग का प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार 'Multimedia' या 'बहुमाध्यम' का अर्थ हुआ—ऐसे बहुआगामी साधन, जिनके माध्यम से जनता या सामूहिक लोगों को सूचना आदि प्रदान की जाती है। माध्यम (Media) और बहुमाध्यम (Multimedia) में अन्तर यह है कि 'बहुमाध्यम' (Multi Media) का ही एक प्रकार है क्योंकि 'माध्यम' शब्द में मुद्रित माध्यम (जैसे—समाचार-पत्र, पत्रिका या श्रव्य-माध्यम (जैसे—रेडियो), दृश्य-माध्यम (जैसे—इंटरनेट, कम्प्यूटर आदि), दृश्य-श्रव्य माध्यम (जैसे—दूरदर्शन, चलचित्र आदि) आ जाते हैं। मुद्रित-माध्यम व दृश्य माध्यम में केवल आँखों द्वारा पढ़कर या देखकर सूचना-प्राप्ति का प्रयास किया जाता है, श्रव्य-माध्यम का प्रयोग करते समय जनसाधारण केवल कानों द्वारा (सुनकर) सूचना प्राप्त करते हैं जबकि दृश्य-श्रव्य माध्यम में आँखों व कानों (देखकर व सुनकर, कभी-कभी पढ़कर भी) द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

2

व्यक्तिगत विभिन्नता की समझ
(Understanding Individual Difference)

2.1. व्यक्तिगत विभिन्नता का संप्रत्यय
[Concept of individual difference]

1. वैयक्तिक भिन्नताओं से आपका क्या अभिप्राय है? वैयक्तिक भिन्नताओं के क्षेत्र, प्रकारों, कारणों तथा इनके शैक्षणिक महत्त्व की विवेचना कीजिये।

अथवा

वैयक्तिक भिन्नताएँ क्या होती हैं? इनके क्षेत्र, प्रकारों, कारणों तथा शिक्षा के क्षेत्र में इनकी उपयोगिता या महत्त्व का उल्लेख कीजिये।

अथवा

वंशानुक्रम तथा वातावरण के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए। व्यक्तिगत विभिन्नताओं के विकास में वंशानुक्रम तथा वातावरण की भूमिका पर चर्चा करें।
(Differentiate between heredity and environment. Discuss the role of heredity and environment in developing individual differences.)

उत्तर–कोई भी दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किसी न किसी रूप में भिन्न होता है। यह भिन्नता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है, चाहे वह शारीरिक क्षेत्र हो या बौद्धिक क्षेत्र हो (सीखने की क्षमता हो), स्मृति का क्षेत्र हो या विचार करने की योग्यता। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में पाई जाने वाली इन भिन्नताओं को व्यक्तिगत विभिन्नताओं का नाम दिया जाता है अर्थात् कहा जाता है।

वैयक्तिक विभिन्नताओं की परिभाषाएं
(Definitions of Individual Differences)

जेम्स ड्रेवर के अनुसार, **"औसत-समूह के मानसिक, शारीरिक विशेषताओं के संदर्भ में समूह के सदस्य के रूप में भिन्नता या अंतर को वैयक्तिक भेद कहते हैं।"**

डॉ. अब्दुर राफ के अनुसार, **"तकनीकी भाषा में व्यक्तिगत भेद मानसिक या शारीरिक विशेषताओं में विभिन्नताएँ या विचलन (deviations) होते हैं जो व्यक्तियों में देखे जाते हैं और जो समूह की औसत से उनका विभेदीकरण करते हैं।"**

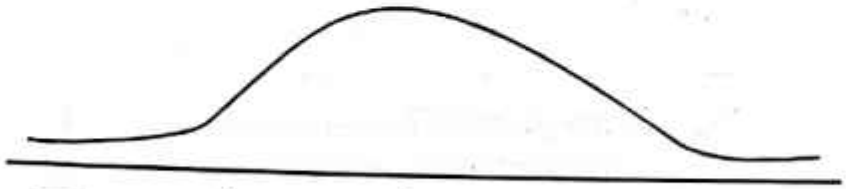
वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति (Nature of Individual Difference)–सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति में निम्नलिखित विशेषताएँ समाहित मिलती हैं–

Scanned with OKEN Scanner

1. विचलनशीलता तथा प्रसामान्यता (Variability and Normality)–व्यक्तित्व के किसी गुण अथवा लक्षण की दृष्टि से किसी समूह के व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी लक्षण अथवा योग्यता का विकास सभी व्यक्तियों में समान नहीं होता, वरन् असमान रूप से व्यक्तियों पर विकसित होता है। अस्तु मानसिक एवं शारीरिक शक्तियाँ विचलनशील होती हैं। एक ही आयु के पृथक्-पृथक् व्यक्तियों में भी इनका विकास भिन्न होता है।

यदि व्यक्तियों का एक विशाल समूह लेकर किसी लक्षण *(Trait)* का मापन किया जाए तो ज्ञात होगा कि समूह पर लक्षण का वितरण प्रसामान्य *(Normal)* है, अर्थात् उसके आवृत्ति वक्र *(Frequency Curve)* का स्वरूप प्रसामान्य वक्र *(Normal Curve)* होगा।

उदाहरणार्थ–यदि हाईस्कूल कक्षा के एक विशाल समूह *(N = 5000)* की बुद्धिलब्धि ज्ञात की जाए तो उसका वितरण कुछ इस भांति का होगा, जैसा कि निम्नलिखित आकृति में दर्शाया गया है–



2. अभिवृद्धि तथा अधिगम की भिन्न गति (Differential Rates of Growth and Learning)–अभिवृद्धि तथा विकास सभी व्यक्तियों में न तो एक साथ अर्थात् एक ही वय में प्रारंभ होता है तथा न ही इसकी गति समान होती है। किन्हीं व्यक्तियों में विकास की गति बहुत तेज होती है तथा वे अन्य की अपेक्षा शीघ्र ही परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं, परंतु वातावरणीय तथा जैविकीय कारणों से अनेक व्यक्तियों में विकास की गति बहुत धीमी होती है तथा अपने ही आयु के बच्चों की तुलना में वे बहुत छोटे लगते हैं।

3. लक्षणों का अंतर्सम्बन्ध (Inter-relationship of Traits)–व्यक्ति के लक्षणों का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है। वे एक-दूसरे से इस भांति सम्बद्ध अथवा संयुक्त होते हैं कि एक लक्षण के क्षेत्र में अंतर दूसरे पर निश्चित रूप से प्रभाव डालता है। उदाहरणार्थ, बालक की धारणा कि 'कक्षा के साथी उसे हीन समझते हैं' उसकी रुचि, उपलब्धि, क्रियाकलाप, उसके व्यक्तित्व, उसकी बौद्धिकता तथा उसकी शारीरिक दशाओं को भी प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती। अंततः ये परिवर्तन एक-दूसरे के साथ अंतर्क्रिया *(Interaction)* कर गुणों, योग्यताओं की संपूर्ण संरचना को असंतुलित कर सकते हैं।

4. वंशानुक्रमीय तथा वातावरणीय कारकों का प्रभाव (Influence of Heredity and Environmental Factors)–व्यक्ति के कुछ गुणों का उद्गम वंशानुक्रम में होता है तथा कुछ वातावरणीय प्रभावों के फल होते हैं। कुछ शक्तियों पर वंशानुक्रम तथा परिवेश दोनों का समान अथवा संयुक्त प्रभाव पड़ता है।

इनका स्रोत कुछ भी हो, स्वास्थ्य, शारीरिक गठन, अनुभव, पारिवारिक संबंध, विद्यालय की प्रकृति तथा बालक को मिलने वाली शिक्षा पूरी तौर से व्यक्ति में लक्षणों की मात्रात्मक भिन्नता को प्रभावित करते हैं।

वैयक्तिक विभिन्नताओं के क्षेत्र या स्वरूप
(Scope or Forms of Individual Differences)

वैयक्तिक विभिन्नताएँ क्योंकि व्यक्तित्व में पाई जाती हैं और व्यक्तित्व जीवन के कई क्षेत्रों से मिलकर बनता है। अतः वैयक्तिक विभिन्नताओं की प्रकृति उसके क्षेत्रों पर निर्भर करती है। इन क्षेत्रों को ही हम दूसरे शब्दों से भिन्नता भी कहते हैं, जिनमें से मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

1. शारीरिक विभिन्नता (Physical Difference)–बालक शरीर से गोरे, काले, दुबले, मोटे, अपंग इत्यादि तरह के होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

2. मानसिक विभिन्नता (Mental Difference)–प्रतिभाशाली, सामान्य एवं मन्द-बुद्धि के बालक होते हैं।

3. भावात्मक विभिन्नता (Emotional Difference)–कतिपय बालक प्रसन्न, चिड़चिड़े, उदास, संवेग प्रधान होते हैं।

4. रुचि एवं दृष्टिकोणों में विभिन्नता (Difference in Interest and Attitudes)–बालकों की रुचि में स्वभाव में भिन्नता पाई जाती है। बालक पढ़ने-लिखने, खेलने-कूदने में अलग-अलग रुचि रखते हैं।

5. अधिगम प्रक्रिया में विभिन्नता (Difference in Learning)–कुछ बालक पुस्तकीय ज्ञान में विश्वास रखते हैं या शीघ्र सीखते हैं तथा कुछ व्यावहारिक पक्ष को महत्त्व देते हैं।

6. विशिष्ट योग्यताओं में विभिन्नता (Difference in Special Abilities)–विशिष्ट योग्यता परीक्षाओं के माध्यम से बालकों की विशिष्ट योग्यता संबंधी विभिन्नता का ज्ञान होता है। बालक हिन्दी-संस्कृत, तेलुगु-तमिल, सामाजिक विज्ञान, गणित-विज्ञान किस विषय में रुचि रखता है, इसका पता परीक्षण द्वारा किया जाता है। इसी से उसकी विभिन्नता का ज्ञान होता है।

7. चारित्रिक विभिन्नता (Difference in Character)–श्री हरेश कुमार पाण्डेय–चारित्रिक परीक्षाओं के माध्यम से बालक के चरित्र का ज्ञान होता है।

8. व्यक्ति में विभिन्नता (Difference in Personality)–बालक में अन्तर्मुखी एवं बहिर्मुखी भेद से उसके व्यक्तित्व में विभिन्नता पाई जाती है।

9. सांस्कृतिक और भौगोलिक विभिन्नताएँ (Cultural and Geographical Variations)–प्रायः हम देखते हैं कि सांस्कृतिक और भौगोलिक अंतर कई प्रकार के व्यक्तिगत भेद उत्पन्न कर देते हैं। उदाहरण के लिए, एक प्रांत के रीति-रिवाज और जलवायु दूसरे प्रांत की रीति-रिवाजों और जलवायु से भिन्न होने के कारण उनके व्यवहार, आदतों, दृष्टिकोण आदि में भी समानता नहीं पाई जाती।

10. गत्यात्मक योग्यताओं में भिन्नता (Difference in Motor Abilities)–प्रत्येक व्यक्ति के काम करने की गति अलग-अलग होती है तथा काम करने का क्षेत्र भी अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, कुछ लोग भारी कार्य कर सकते हैं, परंतु कुछ लोग नहीं कर सकते।

11. अभिप्रेरणाओं में भेद–अभिप्रेरणाओं *(Motivations)* अथवा प्रेरकों की दृष्टि से भी बालकों के बीच पर्याप्त भेद होता है। प्राकृतिक अथवा जैविकीय *(Natural or Biological)* तथा अर्जित अथवा सामाजिक *(Acquired or Social)* प्रेरक विभिन्न छात्रों के बीच पृथक्-पृथक् सीमाओं में पाए जाते हैं। कुछ बालकों में एक प्रकार के प्रेरक अधिक प्रभावी तथा प्रबल होते हैं, जबकि अन्य में दूसरे प्रेरक। प्रेरक मनुष्य के व्यवहार को निर्देशित करते हैं। अतः प्रेरकों के भेद के कारण विद्यार्थियों के संपूर्ण आचरण में भेद होना स्वाभाविक होता है।

12. समायोजन में भेद–समायोजन क्षमता की दृष्टि से भी व्यक्तियों के बीच भेद होता है। कुछ व्यक्तियों में वातावरण तथा परिस्थितियों के साथ समायोजन की योग्यता अधिक होती है तथा कुछ में कम। किसी व्यक्ति की समायोजन क्षमता एक क्षेत्र में, उदाहरणार्थ खेलकूद के क्षेत्र में अधिक हो सकती है तथा अन्य क्षेत्र, यथा शिक्षार्जन के क्षेत्र में बहुत कम हो सकती है।

यह सामान्य अनुभव की बात है कि कुछ लोगों में 'सामाजिक समायोजन' की कुशलता अधिक होती है, फलस्वरूप वे अत्यधिक लोकप्रिय होते हैं तथा इसके विपरीत न्यून 'सामाजिक अनुकूलन' की क्षमता वाले व्यक्तियों पर लोग कम ध्यान देते हैं।

14. लैंगिक विभिन्नता (Sex Difference)–कुछ कार्य करने में स्त्री आगे होती है तथा कुछ कार्यों में पुरुष। उदाहरण के तौर पर नारी घर के कामकाज में कुशल होती है और पुरुष अधिक बल वाले एवं पेचिदा कार्य करने में कुशल होते हैं। इसी को लैंगिक भिन्नता की संज्ञा दी जाती है।

15. एक ही व्यक्ति में वैयक्तिक विभिन्नताएँ (Intra Individual Differences)–व्यक्तियों में तो विभिन्न-भिन्नताएँ पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त उसकी स्वयं की विभिन्नताएँ भी मौजूद होती हैं। उदाहरण

Scanned with OKEN Scanner

स्वरूप, एक विद्यार्थी की सभी योग्यताएँ एक समान विकसित नहीं होतीं। जैसे वह खेलकूद में प्रथम है तो आवश्यक नहीं कि वह शिक्षा के अथवा अन्य क्षेत्रों में भी प्रथम ही हो। यहाँ तक कि शैक्षिक उपलब्धि के क्षेत्र में भी किसी विद्यार्थी के विज्ञान में 90% अंक आते हैं और अंग्रेजी में मात्र 35% ही।

16. सीखने में विभिन्नताएँ (Differences in Learning)–सभी की सीखने की गति एक जैसी नहीं होती तथा हर कार्य को नहीं सीख सकते और न ही सीखने की क्षमता बराबर होती है। यदि सीखने में विभिन्नता न होती तो कोई भी परीक्षा में फेल नहीं होता।

17. उपलब्धियों में विभिन्नताएँ (Differences in Achievement)–एक समान बुद्धि वाले समूह के सदस्यों की उपलब्धियों में भी भिन्नता होती है। उपलब्धि अनेक बातों पर निर्भर करती है, जैसे बुद्धि, समस्या, शक्ति, पाठ्यक्रम, रुचि, अभिवृत्ति, क्षमता, शैक्षिक वातावरण एवं शिक्षण-विधियाँ आदि।

18. अभिरुचियों में विभिन्नताएँ (Differences in Aptitudes)–अगर हम किसी अभिरुचि परीक्षण द्वारा व्यक्तियों की परीक्षा करें तो हमें पता चलेगा कि किसी की अभिरुचि यांत्रिक कार्यों में है, किसी की क्लर्क में, चित्रकला की, पढ़ाने में, इंजीनियरिंग में, मेडिकल में आदि। यदि हम अपने व्यवसाय का चयन अभिरुचि के अनुसार करते हैं तो उस क्षेत्र में हम निपुणता एवं सफलता प्राप्त करते हैं।

19. चरित्र तथा व्यक्तित्व की विभिन्नताएं–चरित्र 'आदतों का समूह', 'स्थायी भावों का सुसंगठित रूप' तथा 'क्रियाशील संकल्पनशक्ति' है। आदतों, स्थायी भावों तथा संकल्पशक्ति में अंतर के कारण चरित्र की दृष्टि से व्यक्ति परस्पर भिन्न होते हैं। कुछ उच्च अथवा दृढ़ चरित्र के धनी होते हैं तो कुछ का चरित्र दूषित अथवा संदेहास्पद होता है।

व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विशेषताओं, शक्तियों तथा लक्षणों का समुच्चय अथवा योग होता है। सामर्थ्य तथा गुणों की भिन्नताएँ व्यक्तित्व में अंतर उपजाती हैं। व्यक्तित्व के अंतर्गत सभी योग्यताएं, क्षमताएँ व कुशलताएँ समाहित होती हैं। व्यक्तित्व की दृष्टि से किसी कक्षा के बालक स्पष्ट रूप से भिन्न होते हैं तथा यह अंतर अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रियाओं तथा अन्य शैक्षिक कार्यक्रमों में स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

20. स्वभाव तथा मनोवृत्तियों में भिन्नता–बालकों की प्रकृति अथवा स्वभाव में स्पष्ट भिन्नता होती है। उदाहरणार्थ, कुछ बालक शांत प्रकृति के होते हैं, कुछ उच्छृंखल, कुल सहनशील होते हैं, कुछ झगड़ालू, कुछ में सदा दूसरों की सहायता करने का भाव होता है तथा कुछ छिद्रान्वेषण में ही सुख पाते हैं।

इसी भांति शिक्षा, मैत्री, समानता, निष्ठा आदि के प्रति बालकों के दृष्टिकोणों तथा मनोवृत्तियों आदि में भी अंतर होता है। शिक्षा के विभिन्न अंगों के प्रति उचित मनोवृत्तियाँ शैक्षिक प्रगति में योग देती है तथा इसके विपरीत ऋणात्मक मनोवृत्तियों के घातक परिणाम होते हैं।

अतः ये शारीरिक और मानसिक भिन्नताएँ ही प्रत्येक के व्यक्तित्व के आधार पर एक-दूसरे से अलग करती हैं। इन भेदों के आधार पर ही हर व्यक्ति का एक अलग व्यक्तित्व होता है। व्यक्तित्व भिन्नताओं को हम प्रायः दो वर्गों में बाँटते हैं। विभिन्न समूहों में भिन्नता तथा व्यक्तियों में भिन्नता, परंतु मनोवैज्ञानिक अन्य दो प्रकार की भिन्नता बताते हैं।

वैयक्तिक विभिन्नताओं के प्रकार
(Type of Individual Differences)

अब तक मनोवैज्ञानिक ने दो प्रकार की व्यक्तिगत विभिन्नताएँ बताई हैं–

1. अंतर वैयक्तिक विभिन्नताएँ (Inter-individual Differences)–जब एक व्यक्ति के गुण दूसरे व्यक्ति से भिन्न होते हैं तो उन्हें अंतर वैयक्तिक भिन्नताएँ कहते हैं।

2. अन्तः वैयक्तिक विभिन्नताएँ (Intra-individual Differences)–जब एक व्यक्ति के उसके स्वयं के गुणों में ही भिन्नता पाई जाती है, तो उसे उसके उसकी अंतः वैयक्तिक भिन्नता कहा जाता है। उदाहरण के लिए, सभी व्यक्ति बुद्धि में एक-दूसरे से अलग हो सकते हैं। यह अंतर वैयक्तिक विभिन्नताओं

Scanned with OKEN Scanner

को प्रकट करता है, परंतु यदि एक बालक के विभिन्न विषयों में भिन्न अंक आएँ यानी किसी विषय में अधिक अंक किसी में कम तो यह अंतः वैयक्तिक विभिन्नता का उदाहरण है, क्योंकि एक ही बालक के गुणों में अंतर है।

वैयक्तिक भेदों या भिन्नता के कारण
(Causes of Individual Differences)

सभी व्यक्ति एक जैसे नहीं होते, उनमें व्यक्तिगत-विभिन्नताएँ पायी जाती हैं, जिनके कुछ कारण भी होते हैं।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के मुख्य कारण निम्न प्रकार से हैं–

1. आयु एवं बुद्धि का प्रभाव (Influence of Age and Intelligence)–आयु के आधार पर बालक का शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक विकास होता है। परिणामतः आयु के अनुसार बुद्धि का भी विकास होता है और इसी कारण अंतर भी पाया जाता है।

2. शिक्षा एवं आर्थिक दशा का प्रभाव (Influence of Education and Economical Condition)–शिक्षित एवं अशिक्षित व्यक्ति के व्यक्तित्व में अंतर पाया जाता है तथा आर्थिक परिस्थिति भी वैयक्तिक भिन्नता का कारण बनती है। राजा एवं रंक में, धनवान एवं निर्धन में अंतर पाया जाता है।

3. लिंग या यौनगत भेद का प्रभाव (Influence of Sex Difference)–बालक एवं बालिका में यौनगत भेद के कारण विभिन्नता पाई जाती है। बालिका बालक की अपेक्षा शीघ्र परिपक्वावस्था को पा जाती है। उसका स्वभाव मृदु, नम्र होता है, जबकि बालक कठोर, साहसी, क्रोधी, लापरवाह होते हैं।

4. जाति, प्रजाति एवं देश का प्रभाव (Influence of Caste, Race and nation)–बालक जिस जाति, प्रजाति वर्ग, प्रांत, देश का होगा, उसके उसमें गुण होंगे और यही विभिन्नता के कारण माने जाते हैं।

5. वातावरण (Environment)–वातावरण का प्रभाव व्यक्तिगत भेदों पर पड़ता है। जिस वातावरण में विद्यार्थी रहता है, उसका प्रभाव विद्यार्थी पर अवश्य पड़ता है। वास्तव में बालक पर वातावरण का प्रभाव तो मां के गर्भ से ही पड़ना शुरू हो जाता है। गर्भ में विकसित हो रहे बच्चे पर मां के संवेगों का, मां के भोजन का, मां की मानसिक स्थिति का प्रभाव बालक के विकास पर अवश्य पड़ता है। यदि मां के गर्भ के वातावरण का कोई भी पक्ष असंतुलित हो जाए तो इसका कुप्रभाव बच्चे के विकास पर अवश्य पड़ता है और उसमें कई प्रकार के दोष आने की संभावनाएँ हो जाती हैं। यहाँ तक कि बच्चे के मस्तिष्क पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है, जिसके कारण वह मानसिक रूप से पिछड़ सकता है।

इसी प्रकार गर्भावस्था से ही कई प्रकार के व्यक्तिगत भेद उत्पन्न होने शुरू हो जाते हैं। जन्म लेने के पश्चात् बच्चे पर गर्भ से बाहर का वातावरण उसे प्रभावित करना शुरू कर देता है और उसमें व्यक्तिगत विभिन्नताएँ आनी शुरू हो जाती हैं। वातावरण से संबंधित निम्नलिखित कारक वैयक्तिक भिन्नताओं को उत्पन्न करते हैं–

(i) पारिवारिक वातावरण–व्यक्तिगत भिन्नताओं पर परिवार के वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है। जैसे शैशवावस्था में शिशु का पालन-पोषण जिस ढंग से होता है, उसके प्रभाव से व्यक्तिगत-विभिन्नताएँ पैदा हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, एक ग्रामीण व शहरी बालक के व्यवहार में बहुत अंतर होता है।

(ii) निर्धनता–पारिवारिक निर्धनता के कारण माता-पिता अपने बालकों की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते। हर बालक अपने अन्य साथियों के समान पहनने, खेलने, खाने-पीने, घूमने-फिरने आदि की सुविधाओं को प्राप्त करना चाहता है, परंतु गरीबी के कारण वह इन सबसे वंचित रह जाता है, जिससे उसमें हीनता आ जाती है तथा उसका व्यक्तित्व अमीर घर के बच्चे से भिन्न हो जाता है। निर्धन बालक के व्यवहार तथा अमीर बालक के स्वभाव में बहुत अंतर इन व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर ही होता है।

(iii) पक्षपात पूर्ण वातावरण–कई बार मां-बाप एक बालक पर अधिक ध्यान देते हैं, जिसके कारण दूसरा बालक एक ही घर में रहने के बावजूद बदला लेने की प्रवृत्ति वाला तथा ईर्ष्यालु बन जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) अत्यधिक सुरक्षा–कई बार बालकों को माता-पिता अत्यधिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। उन्हें कोई भी काम नहीं करने देते, सारा काम स्वयं कर देते हैं, जिसके कारण उसका व्यक्तित्व परावलम्बी बन जाता है।

(v) विद्यालय का वातावरण–कभी-कभी अध्यापक कक्षा में कुछ बालकों की तरफ अधिक ध्यान देते हैं, प्यार करते हैं, दूसरी ओर अन्य बालकों को डांटते-फटकारते हैं, जिसके कारण एक ही कक्षा में पढ़ने पर भी उनमें व्यक्तिगत भिन्नता आ जाती है।

किसी स्कूल में कठोर अनुशासन भरा वातावरण होता है, जबकि कुछ स्कूलों में वातावरण प्यार का होता है, कठोर अनुशासन का नहीं। इस तरह दोनों स्कूलों के बच्चों के व्यवहारों में अन्तर आ जाता है।

(vi) वंशानुक्रम का प्रभाव (Influence of Heredity)–विभिन्नता का कारण वंशानुक्रम का प्रभाव है। बालक शारीरिक एवं मानसिक योग्यताएँ सामान्यतः वंश परंपरा से ही प्राप्त करता है। मानव पित्र्य सूत्र वंश परंपरा से प्राप्त करता है, यही व्यक्तिगत या वैयक्तिक भिन्नता के कारण माने जाते हैं।

(vii) अन्य कारण (Other Reasons)–वातावरण और वंशानुक्रम के अतिरिक्त अन्य भी कई कारण हैं, जो व्यक्तिगत भेदों को जन्म देते हैं, जैसे जाति, राष्ट्रीय प्रभाव, यौन भेद आदि। प्रत्येक राष्ट्र और जाति के लोगों की रुचियों, उनके दृष्टिकोणों और उनके विचारों की शैली में भारी अंतर पाया जाता है। यहाँ तक कि उनके खाने-पीने की आदतों में भी अंतर होता है।

व्यक्तिगत विभिन्नताओं का शैक्षणिक महत्त्व
(Educational Implication of Individual Differences)

सभी व्यक्ति एक जैसे नहीं होते, उनमें किसी न किसी क्षेत्र में व्यक्तिगत भिन्नता अवश्य पाई जाती है। इसी तरह शिक्षा के क्षेत्र में भी व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती हैं, क्योंकि प्रत्येक बालक दूसरे बालक से कई प्रकार से भिन्न होता है, जैसे सीखना, स्मृति, योग्यता तथा उपलब्धियाँ आदि। एक अध्यापक के लिए इन विभिन्नताओं को जानना अति आवश्यक है, ताकि वह इन विभिन्नताओं को जानकर अपनी शिक्षण प्रक्रिया को अपने छात्रों की आवश्यकताओं के अनुसार बनाकर उनका भविष्य उज्ज्वल बना सके।

बालकों में पाई जाने वाली व्यक्तिगत विभिन्नताएँ निम्न प्रकार से हैं–

1. योग्यताओं में विभिन्नताएँ (Differences in Abilities)–प्रत्येक बालक के कार्य करने की योग्यता में भिन्नता पाई जाती है। ये योग्यताएँ शारीरिक *(Physical)* भी हो सकती हैं और मानसिक *(Mental)* भी। कई बालक शारीरिक रूप से इतने अयोग्य होते हैं कि वे कक्षा की औसत शिक्षा को ग्रहण कर पाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। जैसे आँख कमजोर होना, कम सुनाई देना तथा कमजोरी आदि ऐसी कुछ अयोग्यताएँ हैं। कई बालक मानसिक रूप से इतने अयोग्य होते हैं कि वे साधारण बुद्धि वाले बच्चों जितना कार्य भी नहीं कर सकते। इसी प्रकार जिन बच्चों का बौद्धिक स्तर अधिक होता है, उनका साधारण कार्यों में मन लगाना और उन्हें करना सरल नहीं होता है।

2. अभिवृत्तियों में विभिन्नता (Difference in Attitudes)–बालकों की अभिवृत्तियों में भी विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। ये विभिन्नताएँ लिंग, आयु, वातावरण, रुचियों आदि से प्रभावित होती हैं। जैसे लड़कों की अभिवृत्ति गणित या तकनीकी क्षेत्रों में अधिक होती है। लड़कियों की अभिवृत्ति गृह विज्ञान, साहित्य आदि में होती है। इसके अतिरिक्त इन अभिवृत्तियों पर उसके वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है, जैसे–घर का वातावरण, समाज का वातावरण आदि।

3. उपलब्धियों में विभिन्नताएँ (Differences in Achievements)–प्रत्येक बालक की उपलब्धि दूसरे बालक से भिन्न होती है और यह उपलब्धि उसकी रुचि, अभिवृत्ति, योग्यताओं तथा वातावरण से बहुत प्रभावित होती है। एक ही कक्षा में या एक ही परिवार के अलग-अलग बच्चों की उपलब्धियाँ अलग-अलग हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, कई बच्चों की गणित में उपलब्धि अधिक होती है, परंतु इतिहास व अंग्रेजी में कम हो सकती है।

Scanned with OKEN Scanner

इन सभी विभिन्नताओं की जानकारी को ध्यान में रखकर अध्यापक अपनी शैक्षिक रणनीति अर्थात् शैक्षिक प्रक्रिया को निम्न प्रकार से प्रभावपूर्ण बनाकर बच्चों का सर्वांगीण विकास कर सकता है।

(i) व्यक्तिगत भेदों के कारण बच्चों का वर्गीकरण (Classification of children due to individual differences)–अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों का मानसिक योग्यताओं के आधार पर वर्गीकरण कर उन्हें शिक्षा दें, ताकि शिक्षा उनके लिए सरल व उपयोगी सिद्ध हो सके। उदाहरण के लिए, उच्च बुद्धि, स्मृति और तर्क तथा कल्पना शक्ति वाले छात्रों को एक कक्षा में रखा जाए, मध्यम श्रेणी वाले छात्रों को एक अलग कक्षा में रखना चाहिए। यदि अध्यापक छात्रों का वर्गीकरण कर इस तरह से बालकों को शिक्षा देता है ते शिक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होती है, उस शिक्षा की अपेक्षा जो विभिन्न योग्यताओं वाले बालकों को एक ही कक्षा में रखकर दी जाती है। कक्षा बनाने हेतु यह वर्गीकरण कई आधार पर किया जा सकता है, जैसे–

1. मानसिक योग्यताओं के आधार पर।
2. रुचियों के आधार पर।
3. लिंग भेद के आधार पर।
4. सामाजिक-आर्थिक स्तर के आधार पर।
5. शारीरिक दोषों के आधार पर।

(ii) कक्षा में छात्रों का सीमित संख्या में होना (Limited Number of Students in the Class)–वैयक्तिक भिन्नताओं के अनुसार शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि कक्षा में अध्यापक बालकों की संख्या अधिक से अधिक 25 रखे, क्योंकि कक्षा में छात्रों की संख्या कम होने से अध्यापक छात्रों को भलीभांति समझ व जान सकता है। जब एक अध्यापक का छात्रों से व्यक्तिगत संपर्क और संबंध होता है तो वह अपने छात्रों से उनके सभाव के अनुसार कार्य करवा सकता है।

(iii) शिक्षण-विधियाँ (Teaching Methods)–अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों में व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण-विधियों का प्रयोग करे। उदाहरण के लिए, मन्द-बुद्धि बालकों के लिए ऐसी शिक्षण-विधि अपनानी चाहिए, ताकि वह खेल-खेल में ही सीख सके। इसी तरह तीव्र बुद्धि वाले बालकों के लिए रचनात्मक विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

(iv) पाठ्यक्रम (Curriculum)–जैसा हम जानते हैं कि एक ही कक्षा के बालक तथा बालिकाओं की रुचियों, अभिवृत्तियों एवं मानसिक योग्यताओं में कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य पाया जाता है। इन सबको सामान्य पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा देना गलत होता है। अतः पाठ्यक्रम बनाते समय अध्यापक को विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण भी होना चाहिए। पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए। एक ही कक्षा के बालकों को अपनी रुचियों, योग्यताओं और इच्छाओं के अनुसार विषयों के चयन में छूट होनी चाहिए। पाठ्यक्रम को बाल केंद्रित होना चाहिए, क्योंकि सीखना विद्यार्थी को होता है, अध्यापक को नहीं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान एक अध्यापक के लिए अति आवश्यक है, क्योंकि बालक को सीखना है अर्थात् शिक्षित करना है और उसी का सर्वांगीण विकास करना है। अतः सबसे महत्त्वपूर्ण बात बालक को 'जानना' और 'समझना' है। बालक की रुचियों, अभिरुचियों तथा क्षमताओं के बारे में जानकर ही अध्यापक बालकों को उचित शिक्षा देकर उनका भविष्य उज्ज्वल बना सकता है।

◆◆◆

2. बालकों को व्यक्तिगत-भिन्नता के आधार पर शिक्षा प्रदान करने हेतु कौन-कौन-सी मुख्य बातों का ध्यान देना आवश्यक है? विवेचना कीजिये।

अथवा

अध्यापक की व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर बच्चों को शिक्षा देते समय कौन-कौन-सी आवश्यक बातों को ध्यान में रखना चाहिये?

उत्तर–व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर बालकों की शिक्षा को समायोजित *(Adjust)* करने की प्रक्रिया में अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

Scanned with OKEN Scanner

1. कक्षा का सम-समूहों में विभाजन–शिक्षण को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से आवश्यक है कि कक्षा को लगभग समान बुद्धि तथा क्षमताओं वाले बालकों के सम-समूहों *(Homogeneous Groups)* में विभक्त कर लिया जाए। सम-समूहों का निश्चय करने में मानसिक योग्यता के साथ-साथ बालकों की आयु, सामाजिक मनोवृत्ति, संवेगात्मक प्रवृत्ति का भी ध्यान रखना उचित होगा।

2. पाठ्यक्रम समायोजन–बालक की मानसिक क्षमता तथा सामर्थ्य के अनुरूप ही उसे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलना चाहिए। अतः प्रत्येक स्तर पर सभी कोटि के छात्रों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए।

3. कक्षा के आकार को सीमित करना–कक्षा का आकार छोटा होना चाहिए जिससे बुद्धि तथा सीखने की योग्यता के आधार पर यथासंभव सम-समूहों का गठन हो सके। कम छात्रों का अर्थ होता है, कक्षा में कम विषमता तथा शिक्षण का लगभग समान प्रभाव।

इसके अतिरिक्त छोटी कक्षाओं में छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाना संभव हो सकता है तथा इस भांति शिक्षा के स्तर में वृद्धि की जा सकती है।

4. उपयुक्त पद्धतियों का चयन–कक्षा के सभी विद्यार्थियों को एक ही पद्धति से पढ़ाना अमनोवैज्ञानिक तथा अतार्किक है। सामान्य बालकों के लिए प्रयुक्त विधि कमजोर बालकों के लिए कठिन एवं अलाभकारी हो सकती है तथा तेज बालकों के लिए इतनी सरल कि पाठ के प्रति उनका कौतूहल एवं उत्साह ही समाप्त हो जाए।

पाठ के सरल अंशों के विकास में कमजोर विद्यार्थियों तथा कठिन अंशों के विकास में प्रखर बुद्धि के बालकों का सहयोग लिया जाना चाहिए। इससे दोनों वर्ग के छात्रों को प्रोत्साहन तथा संतुष्टि मिलती है तथा नवीन पाठ के प्रति उनका लगाव बना रहता है।

अतः छात्रों के बीच व्याप्त वैयक्तिक विभिन्नता का ध्यान रखकर ऐसी शिक्षण-विधि का चयन करना चाहिए, जिससे सभी वर्ग के विद्यार्थियों की कठिनाइयों का निराकरण, जिज्ञासाओं का समाधान तथा आशाओं की पूर्ति तथा ज्ञान-पिपासा का शमन किया जा सके।

5. गृहकार्य का निर्धारण–कमजोर विद्यार्थियों को अभ्यास द्वारा तेज बनाया जा सकता है। कक्षा के सीमित समय में इन विद्यार्थियों पर विशेष ध्यान दे पाना संभव नहीं होता। ऐसे विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त मात्रा में गृह-कार्य निर्धारित करना चाहिए तथा सावधानी के साथ इसकी जांच की जानी चाहिए। मंदबुद्धि के बालकों को अभ्यास के लिए सरल प्रश्न ही दिए जाने चाहिए।

इसी भांति तीव्र बुद्धि के बालकों को गृह-कार्य के रूप में कुछ जटिल अथवा कठिन कार्य देकर उन्हें लाभान्वित किया जा सकता है।

6. शारीरिक विभिन्नता का ध्यान–कक्षा में ऐसे बच्चों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है, जो किसी शारीरिक न्यूनता से ग्रस्त होते हैं। उनके लिए अध्यापक को ऐसा प्रबंध करना होगा कि उन्हें ज्ञानार्जन में असुविधा न हो तथा कक्षा निरीक्षण का अधिकतम लाभ मिल सके। ऐसे बच्चों को कक्षा में आगे बिठाने का प्रबंध करना चाहिए जिन्हें कम सुनाई पड़ता है अथवा जिनकी दृष्टि कमजोर है।

शैक्षिक प्रक्रिया के संचालन में बच्चों की शारीरिक क्षमता का भी ध्यान रखना चाहिए। स्वाभाविकतया ऐसे विद्यार्थियों से अधिक कार्य लिया जाना चाहिए जिनमें शारीरिक सामर्थ्य अधिक है। निर्बल शरीर रचना के छात्रों पर कार्य का दबाव कम होना चाहिए।

7. लिंग-भेद के अनुकूल शिक्षा–किशोरावस्था प्राप्त होने पर बालकों तथा बालिकाओं को उनके जीवन के अनुकूल कुछ विशेष प्रकार के विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए। बालकों को परिवार का बोझ संभालना होता है, अतः उन्हें अपनी योग्यताओं के अनुरूप व्यावसायिक शिक्षा मिलनी चाहिए। बालिकाओं को घर की देखरेख करनी होती है, अतः उन्हें गृह विज्ञान तथा शिशु पालन की उचित शिक्षा दी जानी चाहिए।

8. सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियां–प्रत्येक बालक को अपनी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के अनुरूप शिक्षा पाने का अधिकार है। अतः सभी के लिए उसकी आवश्यकताओं तथा महत्त्वाकांक्षाओं के अनुरूप शिक्षा का प्रबंध होना चाहिए।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3. वैयक्तिक भिन्नताओं या वैयक्तिक भेदों का क्या अर्थ है? वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्यापक के कार्यों पर पड़ने वाले प्रभाव की विवेचना कीजिये।

अथवा

वैयक्तिक भिन्नताओं के अर्थ को स्पष्ट करते हुये वैयक्तिक भिन्नताओं के अध्यापक के कार्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का उल्लेख कीजिए।

उत्तर–वैयक्तिक विभिन्नताओं का अर्थ (Meaning of Individual Differences)–औसत समूह में मानसिक या शारीरिक विशेषताओं के संदर्भ में समूह के सदस्य के रूप में भिन्नता या अंतर को वैयक्तिक भेद कहते हैं।

दूसरे शब्दों में हम यूं कह सकते हैं कि व्यक्तियों में पाई जाने वाली इन विभिन्नताओं को, जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करती हैं उन्हें एक अनुपम व्यक्ति बनाती है, इन्हें ही वैयक्तिक विभिन्नताओं के नाम से जाना जाता है। योग्यताओं में भिन्नता को तो बहुत पहले से ही महसूस किया जा चुका है, परंतु वैयक्तिक विभिन्नताओं की ओर ध्यान अभी हाल ही में गया है।

वैयक्तिक भेदों का अध्यापक के कार्यों पर प्रभाव (Influence of Individual Differences Upon the Work of the Teacher)–अध्यापक को एक ही कक्षा में कई प्रकार के बच्चों को पढ़ाना होता है। उनमें प्रतिभाशाली भी होते हैं, औसतन भी और पिछड़े बच्चे भी। प्रतिभाशाली बच्चे अध्यापकों से अधिक ध्यान की आशा रखते हैं और अपनी प्रतिभा की स्वीकृति *(Recognition)* चाहते हैं। उधर पिछड़े बच्चों पर भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। अगर दोनों ही परिस्थितियों में अध्यापक अधिक ध्यान देता है तो औसत बच्चे जिनकी संख्या काफी होती है, वे अध्यापक की अधिक सेवाओं से वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार से अध्यापक के कार्यों पर वैयक्तिक भेदों का बहुत प्रभाव पड़ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि वैयक्तिक विभिन्नताओं के आधार पर अध्यापक विद्यार्थियों की क्या और किस प्रकार से सहायता कर सकता है, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी को अध्यापक की सेवाओं का लाभ मिल सके। अतः अध्यापक निम्न रूप से उनकी सहायता कर सकता है–

1. वर्गीकरण (Classification)–अध्यापक कक्षा के विद्यार्थियों को उनकी योग्यताओं, रुचियों, बौद्धिक क्षमता के आधार पर वर्गीकृत कर सकता है, जिससे वह विद्यार्थियों की योग्यता के आधार पर उनको अच्छा शैक्षिक वातावरण प्रदान करके सहायता कर सकता है। उधर विद्यार्थी भी अपने-अपने समजातीय *(Homogeneous)* समूहों में अधिक प्रसन्न तथा चिंतामुक्त रहते हैं।

2. व्यक्तिगत ध्यान (Individual Attention)–एक ही कक्षा में विभिन्न योग्यता के विद्यार्थी होते हैं। अगर वह प्रतिभाशाली बच्चों पर खास ध्यान नहीं देता तो उसकी प्रतिभा की स्वीकृति नहीं होती और उनकी अच्छी बुद्धि अनुचित कार्यों में परिवर्तित हो जाती है। उधर अगर प्रतिभाशाली और पिछड़े विद्यार्थियों की कक्षा अलग करते हैं तो दूसरी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे खास प्रशिक्षित अध्यापक *(Specially Trained Teachers)* उपलब्ध नहीं हैं। उनके बैठने का प्रबन्ध, उनके लिए पाठ्यक्रम और समय सारणी भी अलग होनी चाहिए। ये सब बातें हमारे यहाँ संभव नहीं है। कक्षा अलग करने से जो लाभ वो प्रतिभाशाली बच्चों से उठा सकते हैं वो नहीं उठा पाएंगे। अतः अध्यापक को एक ही कक्षा में सबकी ओर ध्यान देना है। व्यक्तिगत ध्यान से ही वह प्रतिभाशाली, पिछड़े तथा औसतन विद्यार्थियों की उनकी विभिन्नताओं को ध्यान में रहते हुए सहायता कर सकता है।

3. पाठ्यक्रम (Curriculum)–बाल केंद्रित शिक्षा की मांग है कि सीखने वाले के वैयक्तिक भेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। जैसा कि हमने देखा है कि विद्यार्थियों में बहुत प्रकार की विभिन्नताएँ हैं। कुछ विद्यार्थियों की रुचि विज्ञान में है तो दूसरों की वाणिज्य में। इसी प्रकार सहशिक्षा *(Co-education)* वाली संस्थाओं में यह और भी आवश्यक है कि विद्यार्थियों के लिए स्कूल में विभिन्न विषय होने चाहिए, जिससे विद्यार्थी अपनी योग्यता और अभिवृत्ति के अनुसार विषयों का चुनाव कर सकें। अतः विस्तृत पाठ्यक्रम से सभी विद्यार्थियों को विषय चुनने में आसानी होगी और अपनी योग्यताओं को पूर्ण रूप से विकसित कर पाएंगे।

Scanned with OKEN Scanner

4. पढ़ाने की विधियाँ (Methods of Teaching)–सभी विद्यार्थी एक ही पाठ्य विधि से लाभ नहीं उठा सकते। दूसरे शब्दों में, सभी विधियाँ सब विद्यार्थियों के अनुकूल नहीं होतीं। अध्यापक को चाहिए कि वह विधि का चुनाव व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए करे जिससे सभी विद्यार्थी लाभान्वित हो सकें। एक अच्छा अध्यापक वही है, जिसकी अध्यापन योजना समानता पर आधारित न होकर विभिन्नताओं पर आधारित होती है।

5. समायोजन संबंधी समस्याएँ (Adjustment Problems)–इन विभिन्नताओं के कारण कई बार विद्यार्थी कक्षा के वातावरण में अपने आपको समायोजित नहीं कर पाता। किसी को पाठ्यक्रम कठिन लगता है, किसी को समय सारणी अनुकूल नहीं लगती तो दूसरे कुछ विद्यार्थी अपने सहपाठियों के साथ मिलजुल कर नहीं रह सकते। अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं को समझकर उनके समायोजन के लिए उचित शैक्षिक वातावरण उत्पन्न करें। विकसित देशों में इस प्रकार की समायोजन संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए विशेष तौर से प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की जाती है।

6. नियमित कक्षा कक्ष में बाल केंद्रित शिक्षा (Child Centred Education in the Regular Class Room)–अध्यापक का प्रमुख कार्य है वह अपने विद्यार्थियों की संभावनाओं और सीमाओं को जानें। हाँ, अध्यापक अपनी पीठ योजना औसतन विद्यार्थियों के लिए तैयार करेगा, क्योंकि कक्षा में इनकी संख्या सबसे अधिक होती है, फिर भी वैयक्तिक विभिन्नताओं के ज्ञान से अध्यापक समझ सकेगा कि कहाँ पर किस प्रकरण की व्याख्या करनी है। इसके साथ-साथ प्रतिभाशाली बच्चों की श्रेष्ठ बुद्धि को भी स्वीकृति देगा और कमजोर विद्यार्थियों का भी ध्यान रखेगा।

7. शिक्षा का कार्य सभी को समान स्तर पर लाना नहीं है। (Education is not a levelling process)–अध्यापक का उद्देश्य सबको एक स्तर पर लाने का नहीं होना चाहिए, बल्कि उसका उद्देश्य यह हो कि वह हर एक विद्यार्थी को जाने और उसी के अनुसार उसे शिक्षा प्रदान करे।

8. निर्देशन प्रदान करना (Providing Guidance)–सफल निर्देशन वही है, जो वैयक्तिक विभिन्नताओं को जानकर प्रदान किया जाए। यदि सभी विद्यार्थी समान होते तो निर्देशन की आवश्यकता ही न होती। न ही पाठ्यक्रम की विविधता की आवश्यकता थी और न ही पाठ्य विधि के चुनाव की समस्या आती। अतः अध्यापकों को चाहिए कि वह विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से जाने तथा इनकी रुचियों, अभिवृत्तियों, योग्यताओं और उपलब्धियों के अनुसार ही उन्हें शैक्षिक और व्यवसायिक निर्देशन प्रदान करे।

निष्कर्ष (Conclusion)–प्रजातंत्र के सिद्धांतों के अनुसार सभी को शिक्षा के समान अवसर मिलने चाहिएँ, परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सबके लिए समान शिक्षा हो। इसका अर्थ है हर बच्चे के लिए उत्तम शिक्षा। जब सभी व्यक्ति समान नहीं हैं तो उनकी शिक्षा समान कैसे हो सकती है। अगर हम ऐसा करते हैं तो इससे बड़ी कोई असमानता नहीं है कि हम असमान व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार करें *(There is nothing so unequal as the equal treatment of unequal.)* इस प्रकार वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखना न केवल वांछनीय है, बल्कि आवश्यक है।

◆◆◆

4. वैयक्तिक भिन्नताओं से आपका क्या अभिप्राय है? इनके मुख्य प्रकारों को बताते हुये वैयक्तिक भिन्नताओं को मापने की विभिन्न विधियों का उल्लेख कीजिए।

अथवा

वैयक्तिक भिन्नताएँ किसे कहते हैं? इनके मुख्य प्रकारों तथा इन्हें मापने की मुख्य विधियों का वर्णन करें।

उत्तर–संसार में कोई भी दो व्यक्ति पूर्ण रूप से समान नहीं हैं, न ही हो सकते हैं। यह बात सत्य है। विभिन्न अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि समरूप जुड़वां *(Identical twins)* भी पूर्ण रूप से समान नहीं हैं। देखने में उनमें काफी समानताएँ दिखाई देंगी, जैसे एक जैसी शक्ल सूरत, कद, भार, रंग आदि परंतु

Scanned with OKEN Scanner

मनोवैज्ञानिक रूप से उनमें काफी विभिन्नताएँ मिलेंगी, जैसे–रुचियां, आकांक्षाएं, उपलब्धियां, दृष्टिकोण, अभिवृत्तियाँ आदि। दोनों का वंशानुक्रम एक है और मान लो हम एक-सा ही वातावरण प्रदान करते हैं परंतु फिर भी कुछ विभिन्नताएँ विकसित हो जाएंगी क्योंकि सभी व्यक्ति वातावरण का प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* अपने-अपने ढंग से करते हैं। कितनी योग्यताएँ ऐसी हैं जो वातावरण में ही हम अर्जित करते हैं।

शैक्षिक उपलब्धियों में भी वैयक्तिक विभिन्नताओं के कारण सभी की उपलब्धियाँ बराबर नहीं होतीं जबकि एक ही कक्षा के विद्यार्थियों को वही अध्यापक पढ़ाते हैं, वही शिक्षण-विधियाँ होती हैं तथा एक जैसी ही शिक्षण सुविधाएँ होती हैं। विद्यार्थियों में सीखने की योग्यता, क्षमता, रुचि, बुद्धि एवं अभिवृत्ति आदि के स्तर में अंतर होने के कारण ही उपलब्धियों में भी अंतर आ जाता है।

वैयक्तिक विभिन्नताओं का मुख्य कारण वंशानुक्रम और वातावरण दोनों ही है। हम यह नहीं कह सकते कि इनमें से कौन-सा अधिक महत्त्वपूर्ण है। वंशानुक्रम और वातावरण में से एक भी अच्छा न हो तो व्यक्तित्व के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

वैयक्तिक विभिन्नताओं के प्रकार (Type of Individual Differences)–वैयक्तिक भिन्नताओं के मुख्य प्रकार निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. अभिरुचियों में विभिन्नता *(Differences in aptitudes)*
2. गामक योग्यताओं में विभिन्नताएँ *(Differences in motor activities)*
3. लैंगिक विभिन्नता *(Sex difference)*
4. एक ही व्यक्ति में वैयक्तिक विभिन्नताएँ *(Inter individual differences)*
5. उपलब्धियों में विभिन्नताएँ *(Differences in achievement)*
6. रुचियों में भिन्नताएँ *(Differences in interests)*
7. चरित्र में विभिन्नताएँ *(Differences in character)*
8. संवेगात्मक विभिन्नताएँ *(Emotional differences)*
9. शारीरिक विभिन्नताएँ *(Differences in physique)*
10. मानसिक विभिन्नताएँ *(Mental differences)*
11. सीखने में विभिन्नताएँ *(Differences in learning)*

वैयक्तिक विभिन्नताओं को मापने की विधियाँ (Methods for Measuring Individual Differences)–वैयक्तिक भिन्नताओं को किस प्रकार से पहचाना जाए या वैयक्तिक भेदों में पाये जाने वाले अंतर को कैसे जाना जाए, जिससे कि अध्यापक एक सफल शैक्षिक योजना को बनाने में सफल हो सके। अतः अध्यापक निम्नलिखित वैयक्तिक भेदों को मापने की विधियों का सहारा लेकर छात्रों की वैयक्तिक भिन्नताओं के बारे में पता लगा सकता है–

1. निरीक्षण या अवलोकन (Observation)–अवलोकन भी दो प्रकार का होता है। नियंत्रित और अनियंत्रित। दोनों ही प्रकार के अवलोकन से ही किसी व्यक्ति विशेष के व्यवहार को, गुणों को जान सकते हैं।

2. प्रश्नावली (Questionnaire)–इसमें व्यक्ति के हम जिस भी पहलू या पक्ष को जानना चाहें उससे संबंधित बहुत से प्रश्नों को एकत्र कर एक प्रश्नावली बनाकर व्यक्ति को देते हैं, उसके द्वारा दिए गए उत्तरों के आधार पर ही हम उसकी विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

3. साक्षात्कार (Interview)–जब दो व्यक्तियों के बीच में आमने-सामने बातचीत होती है *(Face to face relationship)* तो उसे साक्षात्कार कहते हैं। साक्षात्कारकर्ता दूसरे व्यक्ति से विभिन्न प्रश्न पूछकर उसके बारे में जानकारी प्राप्त करता है। अतः यह जानकारी ही उसे दूसरों से विभिन्न करती है।

4. प्रक्षेपी प्रविधियाँ (Projective Techniques)–इस विधि द्वारा भी हम वैयक्तिक विभिन्नताओं को माप सकते हैं। इस विधि में अरूप परिस्थितियाँ *(Unstructured)* प्रदान की जाती हैं, जिनका कोई निश्चित उत्तर नहीं होता है। अतः अरूप परिस्थितियों को व्यक्ति अपनी विभिन्नताओं के आधार पर विभिन्न रूपों में देखता है तथा व्याख्या करता है। इनमें मुख्य हैं रोर्शास्याही के धब्बे *(Rorschach Ink blot test)*

Scanned with OKEN Scanner

जिसे मन का एक्स-रे भी कहा जाता है *(Rorschach ink blot test is known as X-Ray of mind)*, मरे का टी.ए.टी. *(Murray's T.A.T.)* और वाक्य पूर्ति परीक्षण *(Sentence Completion Test)* आदि। इनकी मुख्य विशेषता यह है कि इनमें हम अपनी बातें छिपा नहीं सकते।

5. मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Tests)–व्यक्तिगत विभिन्नताओं को जानने के लिए कई प्रकार के परीक्षण उपलब्ध हैं। जैसे बुद्धि परीक्षण, रुचि एवं अभिरुचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, शिक्षण संबंधी परीक्षण आदि। मनोवैज्ञानिक परीक्षण मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं–व्यक्तिगत एवं सामूहिक *(Individual and Group)*। व्यक्तिगत परीक्षण उसे कहते हैं जब परीक्षण द्वारा एक समय में एक ही व्यक्ति का परीक्षण संभव हो और सामूहिक उसे कहते हैं जब एक समय में एक परीक्षण को एक से अधिक व्यक्तियों पर किया जा सके। इसके अतिरिक्त परीक्षण दोनों प्रकार के व्यक्तियों के लिए होते हैं। अनपढ़ों के लिए भी तथा पढ़े-लिखे के लिए भी। जैसे भाषायी *(Verbal)* जिनमें भाषा का प्रयोग होता है ये पढ़े-लिखों के लिए होते हैं और अभाषायी *(Non-verbal)* जिनके द्वारा अनपढ़ व्यक्तियों की योग्यताओं अथवा विभिन्नताओं को जाना जाता है।

6. माता-पिता की रिपोर्ट (Report of Parents)–कई बार विद्यार्थी के कुछ गुणों या अवगुणों का माता-पिता से पता चलता है। जिस योग्यता का अध्यापक अनुमान नहीं लगा पाता, कई बार उसे माता-पिता बताते हैं कि हमारे बच्चे में यह विशिष्ट योग्यता है या कोई खास समस्या है। जिसके आधार पर अध्यापक के वैयक्तिक विभिन्नताओं के ज्ञान में वृद्धि होती है।

7. मापदण्ड मूल्यांकन (Rating Scale)–यह कई प्रकार की होती है, जैसे तीन बिन्दुओं पर आधारित *(Three point scale)*, पाँच बिन्दुओं पर आधारित *(Five point scale)*, सात बिन्दुओं पर आधारित *(Seven point scale)* आदि। इसमें प्रत्येक के उत्तर में उतनी ही अनुक्रियाएँ *(Responses)* होती हैं जितने बिन्दुओं पर वह आधारित हो। उनमें से जिस अनुक्रिया से व्यक्ति सहमत हो उसी पर ठीक का निशान (✓) लगाकर अपना दृष्टिकोण प्रकट करता है। उदाहरण के तौर पर पाँच बिन्दुओं पर आधारित एक परीक्षण के द्वारा हम जानना चाहते हैं व्यक्ति की अनुक्रिया। मान लो हमारा प्रश्न है वह बहुत ईमानदार व्यक्ति है इसके आगे इसकी अनुक्रियाएँ होंगी पूर्णतया सहमत *(Fully agreed)*, कुछ-कुछ सहमत *(Just agreed)*, अनिश्चित *(Uncertain or Neutral)*, कुछ-कुछ असहमत *(Just disagreed)*, पूर्णतया असहमत *(Fully disagreed)*। इनमें से व्यक्ति को एक अनुक्रिया पर निशान लगाना होता है। फिर इनका सांख्यिकी विश्लेषण करके परिणामों के आधार पर व्याख्या की जाती है।

◆◆◆

2.2 मनोवैज्ञानिक भाव में भिन्नताओं के आयाम [Dimensions of Differences in Psychological Attributes]

संज्ञानात्मक अधिगम (Cognitive Learning)

1. ज्ञानात्मक सीखने या अधिगम का क्या अर्थ है? ज्ञानात्मक सीखने को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों की विवेचना कीजिये।

अथवा

ज्ञानात्मक सीखना किसे कहते हैं? ज्ञानात्मक सीखने को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों को स्पष्ट करें।

Scanned with OKEN Scanner

अथवा

संज्ञानात्मक सीखना या ज्ञानात्मक सीखना से आपका क्या अभिप्राय है? संज्ञानात्मक या ज्ञानात्मक सीखने को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों का वर्णन करें।

उत्तर–ज्ञानात्मक सीखना का अर्थ–ज्ञानात्मक सीखने का तात्पर्य ऐसी क्रियाओं के सीखने से है जिनमें चिन्तन, प्रत्यक्षीकरण और समस्या का समाधान निहित है। साधारण भाषा में ज्ञानात्मक क्रियाएं ही बौद्धिक क्रियाएं कहलाती हैं। ज्ञानात्मक सीखने का अर्थ है–बालक के समझने की शक्ति, स्मृति, तर्कशक्ति तथा बुद्धि का विकास होना।

संज्ञानात्मक अधिगम या सीखने को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक (Factors Affecting Cognitive Learning)–संज्ञानात्मक सीखने को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं–

(1) परिपक्वता (Maturation)–बालक के प्रत्ययों का विकास अप्रत्यक्ष रूप से परिपक्वता से भी प्रभावित होता है। एक आयु-विशेष में सही और सामान्य प्रत्ययों के विकास के लिए आवश्यक है कि उसकी मानसिक परिपक्वता आयु के अनुसार हो। यदि यह आयु के अनुसार नहीं है, तो बालक अपनी आयु के अनुसार उद्दीपकों के अर्थ को समझने में असमर्थ होगा।

(2) सीखने के अवसर तथा सामाजिक वातावरण (Learning Opportunities)–प्रत्ययों के विकास की मात्रा तथा प्रत्ययों के गुण, दोनों ही का उद्देश्य सीखने के लक्ष्य प्राप्त करना है। समस्या समाधान में तीन चरण होते हैं–

(क) छात्रों के सम्मुख समस्या इस प्रकार से रखी जाती है, जिससे उनमें प्रेरणा उत्पन्न हो;

(ख) अनुमानित हल की खोज; तथा

(ग) मूल्यांकन तथा निष्कर्ष।

(3) ज्ञानात्मक सीखने पर पर्यावरण का प्रभाव (Effect of Environment on Cognitive Learning)–ज्ञानात्मक सीखने पर पर्यावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। अनुकूल पर्यावरण का होना बहुत आवश्यक है। माता-पिता तथा अध्यापकों को बालकों के उचित विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराने के लिए भरसक प्रयास करने चाहिए।

विद्यालय में बच्चों को ऐसा वातावरण प्रदान करना चाहिए जिसमें उनको ऐसी समस्याओं को हल करने का अभ्यास हो, जो सूझ-बूझ और साहस की माँग करती हैं।

(4) ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense Organs)–जब ज्ञानेन्द्रियां दोषपूर्ण होती हैं, तब बालक को होने वाली संवेदना और प्रत्यक्षीकरण दोषपूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए–यदि बालक को कम सुनाई पड़ता है तो सुनने से सम्बन्धित उसमें जो प्रत्यय विकसित होंगे वे त्रुटिपूर्ण होंगे।

(5) बौद्धिक-क्षमताएं (Intellectual Abilities)–बौद्धिक क्षमताओं में बालक की बुद्धि, तर्क, चिन्तन, कल्पना और स्मृति आदि योग्यताओं का विकास यदि सामान्य ढंग से हुआ है तो बालक अपने चारों ओर के वातावरण की चीजों के ज्ञान को सामान्य ढंग से अर्जित करेगा। यदि उसकी ये योग्यताएं सामान्य नहीं हैं, तो निश्चय ही बालक गलत प्रत्यक्षीकरण करेगा।

(6) तर्क करना (Reasoning)–तर्क एक उच्च स्तर की एक ज्ञानात्मक क्रिया है, जो विचारों को सम्बन्धित एवं व्यवस्थित रूप देकर निष्कर्ष तक पहुँचाती है। इसमें कुछ नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर दी गई सामग्री का विश्लेषण तथा विवेचन करके कुछ परिणाम निकाले जाते हैं या किसी समस्या का निराकरण या समाधान किया जाता है। अतः कहा जा सकता है कि बच्चे में तार्किक क्षमता उचित रूप में विकसित होने पर उसकी संज्ञानात्मक समझ तथा क्षमता भी बढ़ती है।

(7) चिन्तन (Thinking)–चिन्तन एक ज्ञानात्मक क्रिया है, जो प्रत्यक्षीकरण और स्मृति-दोनों पर ही निर्भर करती है। प्रत्यय और सिद्धान्त हमारे चिन्तन का संचालन करते हैं। चिन्तन में वस्तुओं का विश्लेषण होता है तथा चिन्तन निरीक्षण के क्षेत्र में वृद्धि करता है।

Scanned with OKEN Scanner

गहरे चिन्तन के लिए यह आवश्यक है कि हमारे मस्तिष्क के अन्दर इन वस्तुओं के सम्बन्ध में जिनके विषय में हम चिन्तन कर रहे हैं, स्पष्ट प्रत्यय हों, प्रत्यक्ष विचारधाराएं हों और हमें प्रयोग में आने वाले शब्दों की भाषा ज्ञात हो। पूर्ण और सही प्रत्यय के बिना चिन्तन संभव नहीं होता है।

वंशानुक्रम (Heredity)–किसी भी बच्चे का संज्ञानात्मक सीखना बहुत सीमा तक उसके वंशानुक्रम या वंश-परम्परा पर भी निर्भर करता है। यदि बच्चे के माता-पिता या सगे-सम्बन्धी मानसिक रूप से बहुत अधिक विकसित हैं तो इसका कुछ प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे पर भी पड़ता है।

◆◆◆

सृजनात्मकता
(Creativity)

1. सृजनात्मकता क्या है? सृजनात्मक बच्चों की विशेषताएँ बताएं।
(What is creativity? Explain the characteristics of creative children.)

अथवा

सृजनशील बच्चे की सामान्य विशेषताएं लिखें।
(Write general characteristics of a creative child.)

उत्तर–विद्यालय में सृजनशीलतार के अध्ययन और विकास के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए टोरन्स (Torrance) ने निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किए हैं–

(i) बच्चों में सृजनशीलता का अध्ययन उनके व्यक्तित्त्व के विकास की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यदि बालकों में सृजनशीलता का दमन किया जाए तो उसके व्यक्तित्त्व का विकास ही नहीं रुक जाएगा, बल्कि उनका व्यक्तित्त्व ही छिन्न-भिन्न हो जाएगा।
(ii) सृजनात्मक चिन्तन नई-नई जानकारियों में बहुत योगदान देता है।
(iii) सृजनात्मक चिन्तन व्यावसायिक उन्नति के लिए ज्ञान के प्रयोग में अपनी भूमिका निभाता है।
(iv) किसी भी देश का भविष्य उस देश में सृजनशील व्यक्तियों पर ही निर्भर करता है।

अब प्रश्न उठता है कि यह सृजनात्मकता है क्या चीज? 'Create' का शाब्दिक अर्थ है–सृजन करना, उत्पन्न करना आदि। 'Creativity' से अर्थ है, विचारों और वस्तुओं में नए संबंध देखना। कुछ विद्वानों ने सृजनात्मकता की परिभाषाएं प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जो निम्नलिखित हैं–

ड्रेवडाहल (According to Drevdhal) के अनुसार, **"सृजनात्मक व्यक्ति की वह योग्यता है, जिसके द्वारा वह कोई नवीन रचना करता है अथवा नवीन विचार प्रस्तुत करता है।"**

(Creativity is the ability of individual by which he creates something new and presents novel ideas.)

स्किनर (According to Skinner) के अनुसार, **"सृजनात्मकता से अर्थ है कि व्यक्ति की भविष्यवाणियां नई, मौलिक तथा असाधारण होती हैं। सृजनशील व्यक्ति वह है, जो नए क्षेत्रों की खोज करता है, नए अवलोकन करता है, नई भविष्यवाणियां करता है तथा नए निष्कर्ष निकालता है।"**

(Creativity thinking means that the predictions for the individual are new, original and unusual. The creative thinker is one who explores new areas and makes new observations, new predictions, new in fereneces.)

स्टेगनर एवं कावोस्की (According to Stagner and Karwoski) के अनुसार, **"किसी नई वस्तु का पूर्ण या आंशिक उत्पादन सृजनात्मकता है।"**

(Creativity implies the production of the totally or partially novel identity.)

आइजैक (According to Eysneck) के अनुसार, **"सृजनात्मकता वह योग्यता है, जिसके द्वारा नए संबंधों का ज्ञान होता है तथा इसकी उत्पत्ति में चिन्तन के परम्परागत प्रतिमानों से हटकर असाधारण विचार उत्पन्न होते हैं।"**

Scanned with OKEN Scanner

(Creativity is the ability to see new relationship, to produce unusual ideas and to deviate from traditional patterns of thinking.)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सृजनात्मकता की विशेषताओं का निम्नलिखित रूप से उल्लेख कर सकते हैं–

(i) सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है अथवा सृजनात्मकता सभी प्राणियों में होती है, किसी में अधिक और किसी में कम।

(ii) सृजनात्मकता योग्यता प्रशिक्षण तथा शिक्षा द्वारा विकसित की जा सकती है।

(iii) सृजनात्मकता अभिव्यक्ति द्वारा किसी नई वस्तु को उत्पन्न किया जाता है, परंतु यह जरूरी नहीं कि वह वस्तु पूर्णरूप से नई हो।

(iv) सृजनात्मक प्रक्रम से जो उत्पादन होता है वह मौलिक (Original) होता है।

(v) सृजनात्मकता और बुद्धि से अधिक संबंध नहीं है।

(a) बहुविध चिन्तन *(Divergent thinking)* सृजनात्मकता का आधार है।	(a) एक विध चिन्तन (Convergent thinking) बुद्धि का आधार है।
(b) बुद्धि परीक्षणों में ज्ञानात्मक व्यवहार की गति और शुद्धता पर बल दिया जाता है।	(b) सृजनात्मक परीक्षणों में नवीनता, लचीलापन तथा मौलिकता पर अधिक बल दिया जाता है।
(c) यह आवश्यक नहीं है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति सृजनकता हो।	(c) उच्च सृजनात्मकर्ताओं में उच्च स्तरीय बुद्धि होती है।

(vi) गिलफोर्ड ने अपने अनुसंधानों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि सृजनात्मक चिन्तन में निम्नलिखित योग्यताएं शामिल हैं–

(a) समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता (Sensitivity of Problems)

(b) लचीलापन (Flexibility)

(c) विस्तरण (Elaboration)

(d) प्रवाहमानता (Fluency)

(e) पुनः परिभाषित करना (Re-definition)

(f) अमूर्त एवं संक्षेपण करने की क्षमता (Abstracting ability)

(g) व्यवस्थित एवं वर्गीकरण करने की क्षमता (Ability to arrange)

(h) संगठित एवं सुगठित करने की क्षमता (Ability to coherence and organisation)

(i) संश्लिष्ट एवं सुबद्ध करने की क्षमता (Ability to synthesise and closure)

अतः हम यह कह सकते हैं कि सृजनशीलता वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने वातावरण को इस प्रकार बल देना चाहता है कि उसमें वह नए विचार नमूने अथवा संबंध उत्पन्न कर सके। सृजनशीलता मौलिक कार्य करने की क्षमता है या जिससे हम पुराने अनुभवों को पुनः निर्मित करके नई रचना करने की उपयोगी योग्यता कह सकते हैं।

सृजनशील बालकों की विशेषताएं
(Characteristics of Creative Children)

मास्लो (Maslow) के अनुसार सृजनशील बालकों में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं–

(i) सृजनशील बालकों में विरोध को सहने की अधिक क्षमता होती है।

(ii) सृजनशील बालक एक स्वच्छ एवं आत्मसिद्धि (Self actualization) करने वाला होता है।

(iii) सृजनशील बालक अज्ञान एवं अस्पष्ट वस्तुओं और विचारों से भय नहीं खाते।

(iv) सृजनशील बालक तत्क्षण कार्य करने में सक्षम होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(v) उनके विचारों में एक प्रकार का प्रवाह रहता है, जो बिना किसी प्रयास के स्वयं ही चलता रहता है।

(vi) सृजनशील बालक भोले होते हैं और फरेब तथा मक्कारी से दूर रहते हैं।

मैकिनन (Mackinnon) ने सृजनशील बालकों में निम्नलिखित विशेषताएं पाई हैं–

(i) सृजनशील बालक बुद्धिमान होते हैं।

(ii) इसके विचार एवं आचार स्वतंत्र होते हैं।

(iii) इनके विचार मौलिक होते हैं।

(iv) सृजनशील बालकों में अन्तर्दृष्टि की शक्ति अधिक होती है।

(v) वे गतिविधियों को जकड़ने वाले अवरोध से मुक्त होते हैं।

(vi) उनमें उच्च स्तर की कार्यशक्ति अधिक होती है।

(vii) उनमें सृजनात्मक प्रयासों पर आग्रहपूर्वक अटल रहने की शक्ति होती है।

टॉरेन्स (Torrance) ने सृजनात्मक बालकों में निम्नलिखित गुणों पर अधिक बल दिया है–

(i) सृजनशील हास्यापद विचारों वाले बालक होते हैं।

(ii) उनके द्वारा किए गए कार्य एवं उत्पादन मौलिक (Original) होते हैं।

(iii) उनके द्वारा किए गए कार्य अनम्यता (Rigidity) एवं आरामतलबी (Relaxiation) से मुक्त होते हैं।

सृजनात्मकता की प्रक्रिया
(The Process of Creativity)

सृजनात्मक क्रिया निम्नलिखित चार अवस्थाओं में से गुजरती है–

1. तैयारी (Preparation)–इस अवस्था में समस्या पर गंभीरता से कार्य आरम्भ किया जाता है। मानसिक स्तर पर समस्या को समझा जाता है और विभिन्न परिकल्पनाएं बनाई जाती हैं और एकत्रित की जाती हैं। उदाहरण के तौर पर लेखक किताब लिखने के लिए उससे सम्बन्धित सारी सामग्री इकट्ठी करता है।

2. उद्भवन (Incubation)–इस अवस्था में एकत्रित की गई सामग्री मन के अर्द्धचेतन स्तर पर घूमती है और समस्या को हल (Solve) करने की क्रिया चलती रहती है। इस अवस्था में बाह्य क्रिया बन्द हो जाती है। इस अवस्था में हम विश्राम भी कर सकते हैं। इस अवस्था में समस्या के समाधान की दिशा मिल जाती है। समस्या के समाधान से सम्बन्धित विचार अचेतन मन से चेतन मन में आने का प्रयास करते रहते हैं।

3. प्रकाश (Illumination)–इस अवस्था में चिन्तक अचानक समस्या के समाधान अनुभव करता है। समस्या का समाधान चेतन मन पर अचानक प्रकाशमय होता है। कभी-कभी तो चिन्तक स्वप्न में ही समाधान का रास्ता देख लेता है।

4. पड़ताल (Verification)–इस अवस्था में समस्या के प्राप्त समाधान की जांच-पड़ताल की जाती है और अन्य स्थितियों में लागू किया जाता है। यदि समाधान ठीक नहीं है तो दोबारा समस्या के समाधान के लिए प्रयास किए जाते हैं।

उपरोक्त चारों अवस्थाओं की सहायता से कोई सृजनात्मक कार्य सम्भव होता है।

सृजनशील बालकों की पहचान
(Identification of Creative Children)

सृजनशील बालकों की पहचान के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. व्यवहारगत निरीक्षण सृजनशील बालकों से व्यवहार का निरन्तर निरीक्षण करके उनमें सृजनात्मकता के बारे में जाना जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

टॉरेन्स ने सृजनशील बालकों की पहचान के लिए उनके व्यवहार में निम्नलिखित योग्यताओं की ओर देखने के लिए संकेत किया है–

(i) मौलिकता
(ii) स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता।
(iii) हास्य-विनोद में रुचि एवं प्रेम।
(iv) स्वायत्तता।
(v) जिज्ञासा
(vi) संवेदनशीलता अथवा जागरूकता।

2. सृजनात्मक परीक्षणों का प्रयोग–परीक्षण पद्धति अथवा विधि का उपयोग की सृजनशीलता की पहचान के लिए किया जा सकता है। सृजनशीलता के परीक्षणों में निम्नलिखित परीक्षण अधिक प्रचलित हैं–

(i) टॉरेन्स का सृजनात्मक परीक्षण (Torrance Test of Creativity)
(ii) बकार महेदी सृजनात्मक परीक्षण (Baquer Mehdi Test of Creative Thinking)
(iii) पासी सृजनात्मकता परीक्षण (Passi Test of Creativity)
(iv) गेटजेल्स और जैक्सन (Gatejels and Jackson) ने अपने अनुसंधानों में सृजनशीलता का माप करने के लिए निम्नलिखित पांच प्रकार की परीक्षणों का उपयोग किया है–
   (अ) **शब्द साहचर्य परीक्षण (Word association Test)**–इनमें बालकों को शब्दों की अधिक से अधिक परिभाषाएं देने के लिए कहा जाता है।
   (आ) **वस्तु उपयोग परीक्षण (Use of things test)**–बालकों से सामान्य वस्तुओं के अधिक से अधिक उपयोग बताने को कहा जाता है।
   (इ) **परोक्ष आकार परीक्षण (Hidden shape test)**–एक कार्ड पर बने साधारण चित्र के आकार से छात्रों को अधिक जटिल चित्र या आकार बनाने के लिए कहा जाता है।
   (ई) **तीन विभिन्न अन्त परीक्षण (Three different ending test)**–इसमें बालकों से एक अधूरी लघु कथा को इस प्रकार पूरा करने के लिए कहा जाता है कि वह कहानी सुखान्त, दुखान्त एवं व्यंगान्त हो जाए।

3. समस्या निर्मित परीक्षण (Make up problem test)–इसमें एक जटिल अनुच्छेद में दी गई जानकारियों के आधार पर बालकों से जितनी अधिक संख्या में गणितीय समस्याएं वे बना सकते हैं बनाने के लिए कहा जाता है।

सृजनात्मकता के विकास में शिक्षक की भूमिका ?

2. कक्षा में सृजनात्मकता वृद्धि की प्रविधियाँ बताएं। सृजनात्मकता विकसित करने के उपाय / आधार
(Explain techniques for fostering creativity in class room.)

उत्तर–प्रत्येक राष्ट्र का यह कर्तव्य होता है कि सृजनशील बच्चों की पहचान करने के बाद उनमें सृजनात्मकता का विकास करे। सृजनात्मकता विश्व, राष्ट्र तथा व्यक्ति के विकास में एक नया मोड़ प्रदान कर सकती है। सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हर व्यक्ति में सृजनात्मक योग्यताएँ होती हैं। यदि इसे उचित प्रशिक्षण तथा शिक्षा के पर्याप्त अवसर प्रदान न दिए जाए तो वह व्यर्थ चली जाती है। अध्यापकों तथा समाज के लिए आवश्यक है कि वे बालकों में सृजनात्मक योग्यता के विकास के लिए उचित वातावरण प्रदान करें। बालकों में सृजनात्मकता के विकास के लिए मौलिकता, लचीलापन, विविध चिन्तन, आत्मविश्वास, सतत परिश्रम, संवेदनशीलता आदि योग्यताएं सहायक सिद्ध हो सकती हैं। बालकों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए निम्नलिखित सुझाव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं–

1. विचारों की स्वतंत्रता (Freedom of thoughts)–अध्यापक और माता-पिता अपने बच्चों से पुराने घिसे-पीटे उत्तरों की आशा रखते हैं, मगर सृजनात्मकता का सम्बन्ध स्वतंत्रता से होता है। बच्चों को उत्तर देने के लिए स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए। बच्चों को समस्या के समाधान के लिए अधिक से अधिक उत्साहित करना चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

2. लचीले व मौलिक चिन्तन को प्रोत्साहित करना (Encouraging Flexible and Original Thinking)–बालकों में विद्यमान मौलिकता को प्रोत्साहित करना चाहिए। तथ्यों का अनुसरण करना, रटना आदि सृजनात्मक अभिव्यक्ति में रुकावट है। स्कूल में बालकों को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिएं, जिससे उनके विचारों में मौलिकता तथा लचीलापन आए।

3. डर और झिझक को दूर करना (Removal of fear and hesitation)–अध्यापकों तथा माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों में डर और झिझक को दूर करें। डर और झिझक से बच्चों में हीनभावना उत्पन्न होती है। बच्चे को अभिप्रेरित करना चाहिए कि वह अपने विचार बिना किसी झिझक के दूसरों के सामने प्रस्तुत कर सके।

4. वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना (Encouraging the spirit of scientific enquiry)–अध्यापक को बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। बच्चे समस्या का समाधान वैज्ञानिक ढंग से निकालें। इस प्रकार का दृष्टिकोण बालकों में सृजनात्मकता को विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

5. उचित वातावरण पैदा करना (Providing appropriate Environment)–बच्चों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए उचित वातावरण की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों में जिज्ञासा तथा सहनशीलता को बढ़ावा देना चाहिए। सृजनशील अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने चाहिएं। स्कूल के पाठ्यक्रम में पाठ्य सहपाठी क्रियाओं का उपयोग करना चाहिए।

6. स्वस्थ आदतों का विकास (Development of health habits)–आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आन्तरिक अनुशासन, श्रमशीलता आदि गुणों के निर्माण द्वारा बालकों में सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है। अध्यापक को बालकों के विचारों का आदर करना चाहिए। बालकों को यह बात अनुभव करनी चाहिए कि जो उन्होंने रचना की है, वह अनुपम है और उनके द्वारा वह बात अभिव्यक्त हो रही है, जिसे वे अभिव्यक्त करना चाहते हैं।

7. बहुविध का विकास (Development of Divergent thinking)–यह एक स्थापित तथ्य है कि बहुविध चिन्तन सृजनात्मकता का आधार है। बहुविध चिन्तन द्वारा बालक समस्या के समाधान के लिए विभिन्न साधनों अथवा विचारों का प्रयोग करता है। अध्यापक को चाहिए कि वह बच्चों को समस्या के समाधान के लिए भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए अभिप्रेरित करे।

8. परिणामों के बारे में चिन्तन करना (Thinking over consequences)–परिणामों के बारे में बार-बार चिन्तन करना सृजनात्मकता का आधार बन सकता है। अध्यापक को चाहिए कि बालकों को कार्य के परिणाम पर चिन्तन करने के लिए अभिप्रेरित करें।

9. उचित पाठ्यक्रम (Proper curriculum)–पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनके द्वारा बालकों में सृजनात्मकता सम्बन्धी गुणों का विकास हो सके। शिक्षण विधियां ऐसी होनी चाहिए जिससे बच्चों को नये ढंग से सोचने की प्रेरणा मिले।

पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए। पाठ्यक्रम में मन और मस्तिष्क को उत्तेजित करने वाले अनुभव शामिल करने चाहिएं।

टॉरेन्स (Torrance) ने बालकों में सृजनशीलता का विकास करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं–(i) अध्यापकों को बालकों के अस्वाभाविक एवं असाधारण उत्तरों का सम्मान करना चाहिए, (ii) बालकों को कुछ चीजों का अभ्यास बिना परीक्षा के भय के करने का अवसर प्रदान करना चाहिए, (iii) बालकों को किसी वाद-विवाद में, गोष्ठी में या कक्षा में अपनी असहमति प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, (iv) बालकों को प्रभावकारी मार्ग-दर्शन मिलना चाहिए, (v) बालकों में लक्ष्यप्राप्ति के लिए कठिनाइयों को सहने की शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए, (vi) बालकों को स्नेहयुक्त, सुरक्षित वातावरण देना चाहिए, (vii) उन्हें आत्म अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर प्रदान करना चाहिए, (viii) उन्हें अहं-भावना (Ego) की अभिव्यक्ति के लिए अवसर देने चाहिएं, (ix) उन्हें स्व-मूल्यांकन (Self Evaluation) करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, (x) मूल्यांकन को उसके कारणों और परिणामों के साथ जोड़ना चाहिए।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

रुचि (Interest)

1. रुचि क्या है? रुचि तथा ध्यान किस प्रकार सम्बन्धित हैं? रुचि का मापन किस प्रकार किया जाता है?
(What is Interest? How is interest related with attention? How are interests measured?)

अथवा

'रुचि' को परिभाषित करें। 'रुचि' को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
(Define Interest. Describe the factors affecting interest.)

अथवा

'रुचि' का अर्थ स्पष्ट करें। 'रुचि' का मापन कैसे करेंगे?
(Make clear the meaning of Interest. How will you measure Interest?)

उत्तर–रुचि का प्रत्यय (Concept of Interest)–हर व्यक्ति की कोई न कोई रुचि अवश्य होती हैं। इन्हीं रुचियों के कारण वह किसी वस्तु, क्रिया आदि को पसंद करता है या उसे अधिमान देता है। शिक्षा के क्षेत्र में तो रुचि को ही केन्द्रीय विन्दु माना गया है। हर व्यक्ति सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक मामलों के प्रति विभिन्न प्रकार से अपनी प्रतिक्रिया करते हैं। हर व्यक्ति के अपने-अपने जीवन के उद्देश्य होते हैं। ये रुचियाँ कभी भी जन्मजात नहीं होतीं। जीवन काल में व्यक्ति को विभिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं तथा इन्हीं अनुभवों के आधार पर उसकी रुचियों का विकास होता है।

रुचियाँ, दृष्टिकोण और चरित्र जन्मजात नहीं होते, बल्कि व्यक्ति उन्हें अपनी विकास प्रक्रिया के दौरान अर्जित करता हैं इस प्रक्रिया में, परिपक्वता और अधिगम सक्रिय होते हैं। रुचियाँ आयु के साथ-साथ बदलती रहती हैं। छोटे बच्चों में ये रुचियाँ बड़ी तीव्रता से बदलती हैं। लेकिन बाद में ये रुचियाँ स्थिर हो जाती हैं। लेकिन ये रुचियाँ होती क्या हैं? रुचियों के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने से पहले इसका अर्थ समझना अति आवश्यक है।

रुचि का अर्थ (Meaning of 'Interest')–किसी भी व्यक्ति के निरन्तर व्यवहार के लिये उसकी रुचियाँ ही उत्तरदायी होती हैं। रुचि वह अभिप्रेरक शक्ति है, जो एकाग्र प्रयास को पैदा करती है, स्थिर रखती है तथा उसे नियमित बनाती है। (Interest is a motivating force that arouses,, sustains and regulates concentrated efforts.)

मैक्डूगल (McDugall) के अनुसार, **'रुचि एक व्यक्ति का स्थिर गुण है।'**
(Interest is a stable quality of a person.)

साहरी और टैलफोर्ड (Sawhery and Telford) के अनुसार, **''रुचि पदार्थ के प्रति अनुकूल व्यवहार है।''** (Interest is favourable attitude towards objects.)

लातीनी भाषा में 'रुचि' के अंग्रेजी अनुवाद 'इन्ट्रैस्ट' (Interest) का अर्थ 'सम्बन्ध होना' या 'सरोकार' होना है। अतः रुचि का अर्थ है कि किसी वस्तु से सम्बन्ध का होना या सरोकार होना।

विलियम जेम्स (William James) के अनुसार, **'चयनित जागरूकता या ध्यान है, जो किसी के सम्पूर्ण अनुभवों में से अर्थ पैदा करता है।'** (It is a form of selective awareness or attention that produces meaning out of the mass of one's experiences.)

बरडी (Berdie) के अनुसार, **'रुचि वे कारक हैं, जो किसी व्यक्ति को किसी पदार्थ, व्यक्ति या क्रियाओं की ओर आकर्षित करते हैं या अनाकर्षित करते हैं।** (Berdie viewed them as factors that attract an individual to or repel him from objects, persons, and objects.)

स्ट्रांग (Strong) ने रुचियों को **'पसंद' (Likes)** कहा है। मैक्डूगल (McDougall) ने कहा है कि **'रुचि छुपा हुआ ध्यान है और ध्यान किसी क्रिया में रुचि है।'** (Interest is latent attention and attention is interest in action.)

Scanned with OKEN Scanner

बिनघंम (Bingham) के अनुसार, 'रुचि एक अनुभव में विलीन होने और उसी प्रकार निरन्तर चलते रहने की एक प्रवृत्ति है।' इस प्रकार बिनघंम के अनुसार सभी रुचियाँ प्रवृत्तियाँ ही होती हैं!'

के. लोवल (K. Lovel) के अनुसार, 'संक्षेप में रुचि किसी ठोस पदार्थ जैसे क्रिकेट, टिकट संग्रह या सुई कार्य के बारे में व्यक्तिनिष्ट भावनाओं के समूह से बनी होती हैं और यह किसी प्रकरण के प्रतिविशेष प्रकार के व्यवहार करने की प्रवृत्ति है।'

मनोविज्ञान के अपने शब्द कोष में इंगलिश और इंगलिश (English and English, 1958) ने रुचि के कई अर्थ दिये हैं। प्रथम अर्थ के अनुसार, **'रुचि एक आवृत्ति या अवधानों का समूह (Attitudes or set of attitudes) है। दूसरे अर्थ के अनुसार, रुचि 'किसी वस्तु की ओर चयनित ध्यान देने की प्रवृत्ति है।' इन्हीं के अनुसार एक अन्य अर्थ है, ''एक ऐसी भावना जिसके बिना व्यक्ति कुछ भी सीखने के अयोग्य होता है।'' इन्हीं द्वारा अन्य अर्थ के अनुसार, 'रुचि वह आनन्दमय अनुभव है, जो किसी कार्य के बिना किसी बाधा के लक्ष्य की ओर बढ़ने से होता है।''**

डगलस फ्रेयर (Duglas Frayer) के अनुसार, 'रुचियाँ' वो वस्तुएँ और क्रियाएँ हैं जो व्यक्ति में आनन्दमय अनुभवों को उत्तेजित करती हैं।'

क्रो एवं क्रो (Crow and Crow) के अनुसार, 'रुचि वह अभिप्रेरक शक्ति है, जो हमें किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया की ओर ध्यान देने के लिये मजबूर करती है अथवा यह एक प्रभावात्मक अनुभूति है, जो स्वयं क्रिया द्वारा अभिप्रेरित होती है। दूसरे शब्दों में 'रुचि' किसी क्रिया का कारण भी हो सकती है और उस क्रिया में भाग लेने का परिणाम भी हो सकता है।'

बी.एन.झा के अनुसार, 'रुचि वह स्थिति मानसिक संस्थान है, जो कार्य चालू रखकर ध्यान को लगातार बनाये रखता है।'

जे.पी. गिलफोर्ड (J.P. Guilford) ने रुचि की इस प्रकार व्याख्या की है—'जब कोई व्यक्ति यह खोज निकालता है कि कुछ विशिष्ट पदार्थ और अनुक्रियाओं से प्रेरक संतुष्ट होते हैं, तब उस पदार्थ और अनुक्रियाओं में रुचि प्रदर्शित होती है। रुचियाँ ध्यान देने या कुछ उद्दीपन ढूँढने या किन्हीं विशेष क्रियाओं में संलिप्त होने की ओर झुकाव होती हैं।' इस प्रकार रुचि को हम भावात्मक दृष्टिकोण के रूप में प्रदर्शित कर सकते हैं।' रुचि एक भावना है, जो दोनों प्रकार की हो सकती है—कष्टदायक और आनन्दमय। इन दोनों प्रकार की भावनाओं के साथ अवधान (Attention) प्रायः जुड़ा रहता है। जिस कार्य में हम रुचि लेते हैं उसकी ओर ध्यान भी रखते हैं। जिस कार्य में हम रुचि लेते हैं। उसकी ओर ध्यान भी रखते हैं। जिस कार्य की ओर हमारा ध्यान जाता है, आवश्यक नहीं कि उसमें हमारी रुचि भी हो। रुचि के बिना ध्यान अधिक समय तक नहीं लगाया जा सकता।

'रुचि' की विशेषताएँ (Characteristics of an Interest)–सभी रुचियों की कुछ विशेषताएँ होती हैं जो कि उपरोक्त परिभाषाओं के माध्यम से हमारे सामने आती हैं। ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) रुचियाँ जन्मजात (Inborn) भी हो सकती हैं तथा इन्हें अर्जित (Aquired) भी किया जा सकता है।

(ii) रुचियों का सम्बन्ध वर्तमान से होता है।

(iii) रुचियाँ संवेगात्मक अभिवृत्तियाँ (Emotional Attitudes) होती हैं।

(iv) रुचियाँ भी प्रवृत्तियाँ (Instincts) ही हैं।

(v) अधिगम और रुचि में गहरा सम्बन्ध होता है।

(vi) रुचि स्थायी नहीं होती। प्रौढावस्था में पहुँचते-पहुँचते इन रुचियों में व्यापक परिवर्तन होते रहते हैं तथा कुछ रुचियाँ आयु के साथ-साथ लुप्त हो जाती हैं।

(vii) रुचियाँ अवसरों और सामाजिक-मूल्यांकन का परिणाम हैं।

(viii) सुपर के अनुसार रुचियाँ वंशानुक्रमित अभिरुचियों तथा नालिका-विहिन कारकों में (Endocrine Factors) अन्तः क्रिया का परिणाम हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(ix) रुचि और ध्यान को अलग करना असंभव है।

(x) रुचि गुप्त ध्यान है तथा ध्यान रुचि का सक्रिय रूप है। (Interest is latent attention, attention is interest in action.)

(xi) रुचियाँ हमारी आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा लक्ष्यों से जुड़ी होती हैं।

(xii) रुचि के अनुसार कार्य करने से अधिगम प्रक्रिया (Learning process) में आने वाली अनेक बाधाएँ स्वयं ही दूर हो जाती हैं।

(xiii) रुचि एक प्रकार की अभिप्रेरक शक्ति है, जो व्यक्ति को ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और भावात्मक व्यवहार की ओर प्रोत्साहित करती है।

(xiv) किसी वस्तु में रुचि होने के कारण हम उस वस्तु की उसी दृष्टिकोण से व्याख्या करते हैं और उसे अर्थ प्रदान करते हैं।

(xv) 'रुचि' हमें संतोष देती है। ऐसा तभी होता है जब हम रुचि के अनुसार कोई कार्य करते हैं।

(xvi) वातावरण तथा वंशानुक्रम सम्बन्धी कारक रुचि को रूप देते हैं।

(xvii) रुचि तथा व्यवहार का गहरा सम्बन्ध है।

(xviii) रुचियों के विकास में लैंगिक भिन्नता (Sex Differences) होती है।

(xix) व्यक्ति की बुद्धि उसकी रुचियों को प्रभावित करती है।

(xx) संस्कृति रुचियों को प्रभावित करती है

रुचियों के प्रकार (Types of Interest)–रुचियों को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(i) जन्मजात रुचियाँ (Inborn Interests)–जन्मजात रुचियों को प्राकृतिक रुचियों का नाम भी दिया गया है। इन रुचियों का आधार मूल-प्रवृतियाँ होती हैं, जैसे गाने में रुचि, बच्चों की खेल में रुचि, भूखे व्यक्ति की भोजन में रुचि, माँ की अपनी संतान में रुचि।

(ii) अर्जित रुचियाँ (Acquired Interests)–अर्जित रुचियाँ वे होती हैं जो आदतों, मनोभावों (Sentiments), हीन भावों, आचरण तथा आदर्शों द्वारा ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार की रुचियाँ प्राकृतिक अथवा जन्मजात रुचियों द्वारा उत्पन्न होती हैं। इस रुचि के कारण व्यक्ति किसी विशिष्ट कार्य में कौशल अर्जित व्यक्ति कहलाता है। जैसे, मकैनिक हाथ लगाकर ही बता देता है कि मशीन में त्रुटि कहाँ पर है।

(iii) गुणात्मक दृष्टि से रुचियाँ (Interests from quality view point)–गुणात्मक दृष्टि से रुचियाँ निम्न प्रकार की हैं–सामाजिक रुचियाँ, व्यावसायिक रुचियाँ, वैज्ञानिक रुचियाँ, साहित्यिक रुचियाँ, संगीत सम्बन्धी रुचियाँ, कलात्मक रुचियाँ, व्यापारिक रुचियाँ, गणित-सम्बन्धी रुचियाँ, लिपिक रुचियाँ आदि।

रुचि और ध्यान में सम्बन्ध
(Relationship between Interest and Attention)

रुचि और ध्यान का आपस में गहरा सम्बन्ध है। मैक्डूगल ने ठीक ही कहा है कि रुचि गुप्त ध्यान है और ध्यान सक्रिय रुचि है (Interest is latent attention and attention is interest in action.)। रुचि एक मानसिक संरचना (Mental Structure) है तथा ध्यान एक मानसिक प्रक्रिया (Mental Process) है। रुचि और ध्यान का यह घनिष्ट सम्बन्ध निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है –

(a) ध्यान रुचि पर आधारित है (Attention is based on interest)–ध्यान को रुचि पर आधारित माना गया है। व्यक्ति उन वस्तुओं की ओर अपना ध्यान आकर्षित करता है जिनमें उसकी रुचि होती है। जैसे, यदि किसी व्यक्ति की रुचि कविताओं में है तो वह कविताएँ पढ़ने ओर सुनने की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित करेगा। रुचि के अभाव में ध्यान नहीं हो सकता।

(b) रुचि ध्यान पर आधारित है (Interest is based on attention)–कुछ मनोवैज्ञानिक इस बात पर बल देते हैं कि रुचि ध्यान पर आधारित है। किन्तु वस्तु पर व्यक्ति जब तक अपना ध्यान केन्द्रित नहीं करता, तब तक उस वस्तु में उसकी रुचि असंभव है। जैसे, यदि कोई बालक गणित पढ़ने में अपना

Scanned with OKEN Scanner

ध्यान केन्द्रित करता है तो उसे गणित की समझ आने लगेगी। गणित को समझने के पश्चात् उसकी गणित में रुचि पैदा होने लगेगी। अतः ध्यान के बिना रुचि नहीं हो सकती।

(c) दोनों एक दूसरे पर आधारित (Both based on each other)–कुछ मनोवैज्ञानिकों ने दोनों को, अर्थात् ध्यान और रुचि को एक दूसरे पर आधारित माना है। ध्यान और रुचि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि ध्यान और रुचि में से किसका महत्त्व अधिक है। यदि रुचि के कारण कोई व्यक्ति किसी वस्तु की ओर ध्यान केन्द्रित करता है तो ध्यान के कारण किसी वस्तु में उसकी रुचि उत्पन्न होगी।

रुचि को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Interest)–रुचि विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होती है। इन कारकों का वर्णन निम्न दिया गया है –

(i) बुद्धि (Intelligence)–बुद्धि और रुचि का सह-सम्बन्ध भी पाया गया है। तीव्र बुद्धि वाले बच्चे उन कार्यों में अधिक रुचि लेते हैं, जिनमें तर्क की अधिक आवश्यकता होती है तथा जिसमें अधिक चिंतन करना पड़ता है। मंद बुद्धि वाले बालक ऐसा करने के योग्य नहीं होते। बुद्धि का स्तर रुचि को प्रभावित करता है। उच्च बुद्धि वाले व्यक्ति कठिन कार्य को करने में आनन्द का अनुभव करते हैं। आम कार्यों से उन्हें असंतोष होता है तथा वे उसे त्यागना कहते हैं। लेविस (Lewis) और मैक्घी (McGhee) ने श्रेष्ठ बुद्धि वाले और मंदबुद्धि वाले बालकों की रुचियों का अध्ययन किया है। उन्होंने पाया कि श्रेष्ठ बुद्धि वाले बालकों की रुचियों में अधिक विविधता (Diversification) थी। उनमें पढ़ने की रुचि अत्यधिक थी। श्रेष्ठ बुद्धि वाले बच्चों की जानवरों की कहानियों में अधिक रुचि पाई गई।

(ii) आयु तथा लिंग (Age and Sex)–रुचियों के विकास के बारे में अधिकतर अध्ययनों में लिंग सम्बन्धी अन्तरों और आयु का प्रभाव स्पष्ट रूप से सामने आया है। लड़कियों में शारीरिक परिपक्वता लड़कों से अपेक्षाकृत पहले आती है। जिसके कारण लड़कियाँ सामाजिक गतिविधियों में अधिक रुचि का प्रदर्शन करती हैं तथा शारीरिक कार्य को पसंद नहीं करती। सांस्कृतिक कारक भी योगदान करते हैं। अधिकतर संस्कृतियों में लड़कियों से अधिक से अधिक सामाजिक होने की अपेक्षा की जाती है तथा लड़कों से शारीरिक रूप से सुदृढ़।

5 से 7 वर्ष की आयु के बच्चे रेत से खेलना पसंद करते हैं तथा कल्पित कार्यों में भाग लेते हैं। वे खेल-दल (Play Group) बनाते समय लिंग (Sex) भूल जाते हैं। लेकिन 10 वर्ष की आयु तक बच्चों की रुचियों में परिवर्तन होने लगता है। इस आयु में वे लिंग के प्रति सचेत हो जाते हैं। लड़कियाँ परियों और पशुओं की कहानियों में रुचि लेती है तथा लड़के वीरता तथा विज्ञान सम्बन्धी कहानियों में। 15 वर्ष की आयु तक लड़किया घर पर ही खेलना पसंद करती है और लड़के घर से बाहर।

(iii) शारीरिक विकास (Physical Development)–शारीरिक विकास भी इन रुचियों को प्रभावित करता है। स्वस्थ बच्चे गति भरे खेलों को पसंद करते हैं जैसे क्रिकेट, फुटबाल, हॉकी आदि तथ अस्वस्थ या कमज़ोर बालक गति के बिना खेलों को खेलना पसंद करते हैं। शारीरिक विकास और रुचियों का सम्बन्ध शैशवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में अधिक स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। बच्चा खिलौनों से तभी खेलना शुरू करता है जब उसें माँसपेशियों के साथ सामंजस्य (Coordination) विकसित हो जाता है।

(iv) सामाजिक-आर्थिक स्तर (Socio-Economic Level)–परिवार का सामाजिक और आर्थिक स्तर भी रुचियों को प्रभावित करता है। परिवार का आर्थिक स्तर उच्च होने से है, जो उसकी रुचियों के विकास में सहायक होती है।

(v) सांस्कृतिक वातावरण (Cultural Environment)–सांस्कृतिक और सामाजिक ढाँचा जिसमें बच्चा रहता है, उसकी रुचियों का परिचायक होता है। शहरी और ग्रामीण बच्चों की रुचियों में भी अन्तर पाया गया है। 9 से 12 वर्ष की आयु के लड़के और लड़कियों का साक्षात्कार किया गया। शहरी बच्चों की रुचियों में अधिक विविधता पाई गई। सिन्हा और निवास के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि परिवार की सामाजिक स्थिति भी रुचियों के विकास को प्रभावित करती है। सिनेमा देखने की रुचि ग्रामीण बच्चों में

Scanned with OKEN Scanner

कम पाई गई। ग्रामीण क्षेत्रों में शिकार, मछली पकड़ना आदि अधिक होता है। शहरी क्षेत्रों के बच्चों में इसके विपरीत रुचियाँ पाई गईं अर्थात् सिनेमा देखने की रुचि अधिक थी। ऐसा इसलिये था कि शहरी बच्चों को अभिव्यक्ति के अवसर अधिक मिलते हैं।

(vi) इच्छाएँ एवं आदर्श (Wishes and Ideal)—बच्चों की रुचियों पर उनकी इच्छाओं और आदर्शों का प्रभाव भी बहुत अधिक पड़ता है। विभिन्न अनुभवों का प्रभाव रुचियों का विकास करता है तथा ये अनुभव स्कूल द्वारा प्रभावित होते हैं। इस दृष्टि से स्कूल भी हमारे अनुभवों को प्रभावित करते हैं तथा इससे रुचियाँ प्रभावित होती हैं।

(vii) स्कूल पाठ्यक्रम (School Curriculum)—स्कूल का पाठ्यक्रम भी बच्चों की रुचियों को प्रभावित करते हैं। कई पाठ्यक्रमों को सीखने में बच्चे अपनी रुचि का प्रदर्शन करते हैं। कई बार पाठ्यक्रम को देखकर बच्चे यह कह कर उसे छोड़ देते हैं कि 'यह तो वही पुराना है।'

(viii) व्यवसाय (Vocation)—कई बार कोई विशेष व्यवसाय व्यक्ति की रुचियों को प्रभावित कर जाता है। यह अधिकतर किशोरावस्था में होता है। इस अवस्था में व्यवसाय का चयन कठिन हो जाता है, क्योंकि उसके अनुभव कम होते हैं। व्यक्ति की व्यावसायिक रुचियाँ उसके ज्ञान, दृष्टिकोणों, मूल्यों, शारीरिक विशेषताओं तथा वातावरणीय प्रभावों पर निर्भर करते हैं। कई लड़कों और लड़कियों में व्यक्तिगत विशेषताओं के प्रति जागरूकता का अभाव, कम ज्ञान तथा सीमित अनुभवों के कारण रुचियाँ अस्पष्ट होती हैं। वास्तविक व्यावसायिक रुचियों के लिये व्यवसायों का ज्ञान आवश्यक है। विद्यार्थियों को स्वयं का स्पष्ट ज्ञान होना अति आवश्यक है ताकि रुचियों को उपलब्धियों से सम्बन्धित किया जा सके।



चित्र : रुचियों को प्रभावित करने वाले कारक

बच्चों में रुचि उत्पन्न करना या रुचियों का शैक्षिक महत्त्व
(To Create Interest in Children or Their Educational Implications)

प्रभावशाली शिक्षण के लिए बच्चों या विद्यार्थियों में रुचियों का विकास करना अति आवश्यक है। इससे कक्षा-कक्ष की कई शैक्षिक समस्याओं का हल स्वयं ही मिल जाएगा। बच्चों में या विद्यार्थियों में रुचियां उत्पन्न करने में या इन्हें उपयुक्त स्वरूप प्रदान करने में अध्यापक की या स्कूल की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निम्न सुझावों का माता-पिता, अध्यापक और अन्य लोगों द्वारा अनुकरण किया जा सकता है।

(i) उचित उद्देश्य का निर्धारण (Determination of Proper Objectives)—कक्षा में विद्यार्थियों की रुचि उत्पन्न करने के लिए उचित उद्देश्यों का निर्धारण अति आवश्यक है, बल्कि उन उद्देश्यों की उपयोगिता से विद्यार्थियों को परिचित कराना भी अति आवश्यक है, तभी उन उद्देश्यों के अर्जित करने में विद्यार्थियों की रुचि उत्पन्न होगी। कक्षा में किसी पाठ को पढ़ाने से पहले उसके उद्देश्यों का ज्ञान विद्यार्थियों

Scanned with OKEN Scanner

को अवश्य होना चाहिए ताकि विद्यार्थी अपने ध्यान को केन्द्रित कर सकें। अतः कोई भी कार्य शुरू करने से पहले अध्यापक या प्रशिक्षक के लिए यह अति आवश्यक होता है कि वह सबसे पहले उद्देश्यों को स्पष्ट करे। इन उद्देश्यों को विद्यार्थियों के सम्मुख स्पष्ट करना चाहिए।

(ii) उचित शिक्षण विधियों का चयन (Selection of Proper Teaching Methods) –शिक्षण-कार्य को तथा अधिगम को रुचिकर बनने के लिए उचित शिक्षण विधियों का चयन अति आवश्यक होता है। शिक्षण कार्य शुरू करने से पहले उचित शिक्षण विधियों का चयन कर लेना चाहिए। ये शिक्षण विधियाँ बच्चों के मानसिक स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। सभी शिक्षण विधियां सभी विषयों के लिए उपयुक्त नहीं होती। अतः विषय की प्रकृति और बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर ही शिक्षण विधियों का चयन किया जाना चाहिए।

(iii) सहायक सामग्री का प्रयोग (Use of Audio–Visual Aids)–कक्षा में शिक्षण कार्य को रुचिकर बनाने के लिए तथा सीखने की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए उचित एवं आकर्षक सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे मॉडल, चार्ट, नक्शे, टी.वी., फिल्में इत्यादि।

(iv) अध्यापक का व्यक्तित्त्व (Teacher's Personality)–किसी व्यक्ति में रुचि उत्पन्न करने के लिए स्वयं अध्यापक का अपना व्यक्तित्त्व भी महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होता है। उसका कक्षा में विद्यार्थियों के साथ व्यवहार रुचिकर होना चाहिए। कक्षा में अध्यापक पूरी तैयारी के साथ प्रवेश करे तथा उसकी आवाज स्पष्ट एवं प्रभावशाली होनी चाहिए। विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण भी प्रभावशाली हो। अध्यापक को चुस्त तथा परिश्रमी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अध्यापक को हंसी-मजाक करना भी आना चाहिए। विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, प्रेमपूर्ण तथा लोकतांत्रिक व्यवहार करना चाहिए। अध्यापक को अपना पाठ दैनिक जीवन के साथ सम्बद्ध करना चाहिए।

(v) समय सारणी (Time Table)–कक्षा-कक्ष में शिक्षण के दौरान कई प्रकार के कारक अधिगम प्रक्रिया को खराब करने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। उनमें थकान का कारण प्रमुख होता है। थकान के कारण विद्यार्थी का ध्यान केन्द्रित नहीं रहता। इस प्रकार इन कारकों के प्रभाव को न्यूनतम करने के लिए अध्यापक स्कूल में समय-सारणी (Time Table) का प्रयोग करता है। समय सारणी में स्कूल समय को विभिन्न कालांशों (Periods) में बांटा जाता है तथा प्रत्येक कालांश में पढ़ाये जाने वाले विषय निर्धारित कर दिए जाते हैं। इस समय विभाजन और विषय को निर्धारित करते समय बच्चों की शारीरिक अवस्था, आयु तथा मौसम आदि को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए। एक ही विषय की कई कालांशों में बिल्कुल नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। इस प्रकार सरल तथा कठिन विषय और पाठों का समय विभाजन एक-दूसरे के बाद लाया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों की मानसिक थकान को कम किया जा सकता है। समय-सारणी में विद्यार्थियों के लिए खाली पीरियड की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

(vi) अधिगम-अनुभवों के उचित चयन (Proper selection of Learning Experiences) –कक्षा-कक्ष में जिस विषय-वस्तु को अध्यापक प्रस्तुत करने के लिए चुनता है, वह सुव्यवस्थित होनी चाहिए। तभी विद्यार्थी उसमें अपनी रुचि का प्रदर्शन करेंगे। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह सभी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखे तथा पढ़ाये जाने वाले पाठ की विषय-वस्तु का चयन करें तथा उसे ठीक ढंग से प्रस्तुत करें।

(vii) उचित वातावरण की व्यवस्था (Arrangement of Proper Environment)–हर कार्य के लिए उचित वातावरण का होना अति आवश्यक है। कक्षा में रुचि उत्पन्न करने के लिए स्कूल तथा कक्षा में सीखने के लिए उचित वातावरण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, अतः स्कूल तथा कक्षा में उचित वातावरण के निर्माण की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। इसके लिए कक्षा में आरामदायक तथा आकर्षक फर्नीचर की व्यवस्था, हवा तथा रोशनी का प्रबन्ध, उपयुक्त समय-सारणी का निर्माण, विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की उचित मानसिक स्थिति का होना परम आवश्यक है।

Scanned with OKEN Scanner

(viii) विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रयोग (Exploitation of Various Instincs)–बच्चों की रुचियां उनकी मूल-प्रवृत्तियों द्वारा नियंत्रित तथा निर्देशित होती हैं। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों में शिक्षण कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करे तथा इसमें वह उनकी मूल-प्रवृत्तियों की सहायता ले, जैसे जिज्ञासा की प्रवृत्ति का प्रयोग, आत्म सम्मान का प्रयोग आदि।

(ix) नये ज्ञान को पुराने से सम्बद्ध करना (Relating new knowledge to old)–बच्चों की रुचि बनाये रखने के लिए नये ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बद्ध करना आवश्यक है। जब बच्चा नये और पूर्व अर्जित ज्ञान में कुछ सम्बन्ध देख लेते हैं तो उनमें उस अर्जित किए जाने वाले ज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न होनी शुरू हो जाती है।

(x) विविधता और नवीनता (Variety and Novelty)–अध्यापक पाठक को उकताने (Boring) वाला न बनने दे। उसे एक ही बात को बार-बार दोहराना नहीं चाहिए। उसके पाठों में विविधता और नवीनता होनी आवश्यक है।



चित्र : रुचि उत्पन्न करना या रुचियों का शैक्षिक महत्त्व

रुचि मापन
(Measurement of Interest)

निम्नलिखित विधियों से रुचियों की पहचान और मापन किया जाता है–

1. अवलोकन (Observation)
2. परामर्श लेने वाले की अभिव्यक्ति (Claims of the counsellee)
3. परीक्षणों द्वारा मापन (Tests of measurement)

अवलोकन
(Observation)

1. अवलोकन एक ऐसी विधि है, जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति की रुचियों का अनुमान लगाया जा सकता है। व्यक्ति-अध्ययन के विषय में कुछ विधियों का प्रयोग किया जाता है। उनके द्वारा ही व्यक्ति की रुचियों तथा अन्य विशेषताओं का पता लगाया जाता है। इन विधियों में व्यक्ति इतिहास (Case History), आत्म-कथा (Autobiography), आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख (Anecdotal Record), माता-पिता का मत तथा संचित अभिलेख पत्र (Cummulative

Scanned with OKEN Scanner

Record Card) समाहित हैं। इस प्रकार छोटे बच्चों की रुचियों का अवलोकन उनकी क्रियाओं तथा व्यवहार से किया जाता है। खेल रुचि, स्वाध्याय रुचि, टी.वी., रेडियो तथा सिनेमा में रुचियों का पता बच्चों के व्यवहार से लगाया जा सकता है।

2. परामर्श लेने वाला (Counsellee) भी पूछने पर अपनी रुचियों की अभिव्यक्ति कर सकता है।
3. रुचि परिसूची (Interest Inventory) के माध्यम से भी रुचियों का पता लगाया जा सकता है।

कुछ रुचि तालिकाओं (Interest Inventories) की व्याख्या

निम्नलिखित कुछ महत्त्वपूर्ण रुचि परिसूचियाँ इस प्रकार हैं–

1. स्ट्रांग की व्यावसायिक रुचि परिसूची (Strong's Vocational Interest Bank)–स्टेन फोर्ड विश्वविद्यालय में स्ट्रांग (Strong) ने व्यावसायिक रुचि परिसूची का निर्माण तथा प्रमापीकरण किया। इनके द्वारा व्यक्ति की रुचियों तथा विरक्तियों (Like and dislikes) का पता लगाया जा सकता है। इस परिसूची में 400 पद हैं और यह पुरुषों तथा महिलाओं के लिए पृथक्-पृथक् फार्म में उपलब्ध है। ये पद विभिन्न व्यवसायों, मनोरंजक क्रियाओं, विद्यालय, विषय एवं व्यक्तिगत विशेषताओं से सम्बन्धित है। यह परिसूची 40 व्यवसायों को अंकित करती है। यह परिसूची 14 वर्ष के लड़कों के लिए अति उत्तम है। इसके आधार पर स्ट्रांग ने पता लगाया कि इनमें से किसी भी व्यवसाय में कार्य करने वाले व्यक्तियों की रुचियां अन्य व्यक्तियों की रुचियों से पृथक् होती हैं। जब कोई व्यक्ति परिसूची भर लेता है तो उसका विश्लेषण किया जाता है एवं फलांकन निकाला जाता है। फिर ज्ञात कर लिया जाता है कि उसकी रुचियां उन व्यक्तियों के समकक्ष हैं या नहीं, जो उस व्यवसाय में सफलतापूर्वक काम कर रहे हैं। इस प्रकार यह परिसूची योग्यता का मापन ही नहीं करती अपितु तुलनात्मक अध्ययन भी करती है।

2. कुइडर का अधिमान लेखा (Kuder's Preference Record)–यह लेखा 10 प्रकार की क्रियाओं के बारे में वरीयताओं (Preferences) का मापन करता है। यह 504 पदों का बना हुआ है। यह पद तीन-तीन के समूहों में विभक्त किए गए हैं। व्यक्ति से पूछा जाता है कि वह किस पद को सबसे अधिक पसन्द करता है और किसको सबसे कम चाहता है। कुइडर ने 10 प्रकार के क्षेत्र चुने हैं। वह इस प्रकार से हैं–

(i) बाह्य क्षेत्र की क्रियाएं (Outdoor activities)
(ii) यांत्रिक (Mechanical)
(iii) गणनात्मक (Computational)
(iv) वैज्ञानिक (Scientific)
(v) अनुनयात्म (Persuasive)
(vi) कलात्मक (Artistic)
(vii) साहित्यिक (Literary)
(viii) संगीतात्मक (Musical)
(ix) समाज-सेवा (Social Service)
(x) लिपिक (Clerical)

3. थर्स्टन का व्यवसाय रुचि कार्यक्रम (Thurstone's Vocational Interest Schedule)–थर्स्टन ने 80 व्यवसायों के लिए एक व्यवसाय रुचि प्रोग्राम बनाया, जिसे 3400 कॉलेज विद्यार्थियों ने इस प्रकार भरा पसन्द (L), उदासीन (I) या ना पसन्द (D) के चिह्न लगाकर रुचि को प्रकट किया गया। यह कार्यक्रम समय तथा धन की बचत करता है तथा व्यक्तियों को आत्म-विश्लेषण के लिए प्रेरित करता है।

4. आर.पी.सिंह का रुचि अभिलेख-पत्र (R.P.Singh's Interest Record Card)–यह स्वमापन का रुचि अभिलेखन पत्र 7 क्षेत्रों में रुचि को मापता है। इसमें 168 पद हैं जो कि 7 भागों में विभक्त हैं। 7 क्षेत्र इस प्रकार से हैं–

1. यांत्रिक (Mechanical)
2. व्यापार (Business)
3. वैज्ञानिक (Scientific)
4. सामाजिक (Social)
5. लिपिक (Clerical)
6. सौन्दर्यात्मक (Aesthetic)
7. बाह्य क्षेत्र क्रियाएँ (Out door activities)

Scanned with OKEN Scanner

निम्नलिखित कुछ अन्य रुचि मापन के परीक्षणों के नाम हैं–

(i) **हेपनर** की व्यावसायिक रुचि-लब्धि (Hepner's Vocational Interest Quotient)
(ii) **क्लीटन** की व्यावसायिक रुचि तालिका (Cleeton's vocational Interest Inventory)
(iii) **स्टीवार्ड एवं ब्रेनार्ड** की विशिष्ट रुचि तालिका (Steward and Brainard's specific Interest Inventory)

भारत में रुचि परिसूचियाँ
(Interest Inventories in India)

भारत में रुचि मापने का कार्य 1946 में प्रारम्भ हुआ जब इलाहाबाद ब्यूरो ने **कुइडर रुचिपत्र** के आधार पर एक व्यावसायिक रुचि पत्र का निर्माण हिन्दी में किया। इसी वर्ष ही बिहार शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो ने **कुइडर** रुचिपत्र का भारतीयकरण किया। सन् 1957 में **बर्नन रे. चौधरी रुचि–सर्वेक्षण** का निर्माण किया। 1960 में पटना के चटर्जी ने **"चटर्जी अभाषिक प्राथमिकता प्रपत्र"** का प्रमापीकरण किया। 1962 में आगरा के डॉ. पाण्डे ने किशोरी की रुचि मापन हेतु एक रुचि परीक्षण बनाया। 1973 में **महेश भार्गव ने व्यावसायिक प्रायमिकता मापक** तैयार किया।

कुछ अन्य रुचि परीक्षणों के नाम इस प्रकार हैं–

1. पी.एस.एम. रुचि परिसूची (P.S.M. Interesrt Inventory)
2. झिंगरन ओझा रुचि परिसूची (Jhingran Ojha Interest Inventory)
3. भारद्वाज का रुचि अभिलेखा पत्र (Bhardwaj's Interest Record)
4. कुलश्रेष्ठ का शैक्षिक एवं व्यावसायिक रुचि अभिलेख पत्र (Kulshrestha's Educational and Vocational Interest Record)

निर्देशन में रुचि मापन का उपयोग
(Use of Interest Measurement in Guidance)

निर्देशन एवं परामर्श प्रक्रियाओं में रुचि एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। निर्देशन में रुचि दो कार्यों में की जा सकती है–

1. व्यक्ति की रुचि तथा उसकी योग्यताओं में सह-संबंध (Correlation) जाने बिना निर्देशन का कार्य अधूरा है। व्यक्ति की रुचि तथा योग्यताओं में कोई संबंध हो तो रुचि को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।
2. बहुत से व्यवसाय रुचि संबंधी सह-संबंध रखते हैं। इसका विचार कर व्यक्तियों को उनकी रुचि की मात्रा के अनुसार सदा निर्देशित करना चाहिए।
3. शिक्षा निर्देशन में भी रुचि मापन का महत्त्व कम नहीं। अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह छात्रों की रुचियों को ध्यान में रखें।
4. रुचि छात्रों को अध्ययन में प्रेरणा देती है। अध्यापक छात्रों में वांछित रुचियां पैदा कर सकता है। रुचि कॉलेज जीवन में विषय चुनने में अत्यन्त सहायक होती है। विद्यालय जीवन में छात्रों को रुचियों का पता लगाने के उपरान्त उन्हीं के आधार पर उच्च शिक्षा का चयन किया जा सकता है।

रुचि परिसूचियों का लाभ निम्न के लिए भी आवश्यक है
(Use of Interest Inventories)

1. **विद्यार्थियों के लिए (For Students)**–विद्यार्थी रुचि परिसूचियों के माध्यम से अपनी रुचियों की जानकारी लेकर उनका विश्लेषण कर सकते हैं। विद्यार्थी अपने व्यवसाय चयन का निर्णय अपनी रुचि के अनुसार कर सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

2. **अध्यापकों तथा परामर्शदाताओं के लिए (For Teacher and Counsellors)**–रुचि परिसूचियों के द्वारा छात्रों की रुचियों का पता लगाकर अध्यापक उनका व्यावसायिक मार्गदर्शन कर सकते हैं। परामर्शदाता छात्रों की समस्याओं को भी हल करने में सहायता प्रदान कर सकता है।
3. **नियोक्ताओं के लिए (For Employers)**–काम तथा रोजगार देने वालों के लिए रुचि परिसूचियां लाभदायक सिद्ध होती हैं। इनकी सहायता से नौकरी के लिए आए व्यक्तियों का चुनाव कर सकते हैं।

रुचि परिसूचियों के दोष
(Limitations of Interest Inventories)

1. माध्यमिक स्तर पर छात्रों की रुचियां स्थाई नहीं होतीं और इस प्रकार उनके भावी व्यवसाय का चयन करने में असफलता रहती है।
2. विभिन्न विद्यालयों तथा श्रेणियों के छात्रों की रुचियां भिन्न-भिन्न होती हैं।
3. कई बार विद्यार्थी स्कूल स्तर पर किसी कार्य में रुचि प्रकट न करे, परंतु जब बाद में वही काम करना पड़े, तो रुचि लेने लग जाए। रुचि परिसूचियां इस बात का पता नहीं देतीं।
4. कई बार विद्यार्थियों की रुचियां केवल उन कार्यों तक सीमित रहती है जिनका उन्हें कुछ पता होता है। माध्यमिक स्तर पर छात्रों का अनुभव सीमित होता है। इसलिए उना रुचियां इस बात का पता नहीं दे सकती कि वे भावी जीवन में कौन-सा व्यवसाय अपनाएंगे।
5. कई परिसूचियां रुचि की अपेक्षा योग्यता को प्रकट करती है वरन् रुचि तथा योग्यता दो अलग-अलग वस्तुएं होती है। अतः कुछ परीक्षाएं बिल्कुल उचित तथा विश्वसनीय नहीं होती।

◆◆◆

अभिरुचि
(Aptitude)

1. अभिरुचि परीक्षण से आपका क्या अभिप्राय है? अभिरुचियों के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से हैं? छात्रों की अभिरुचि मापन की विभिन्न विधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
(What do you understand by aptitude test? What are the various types of aptitudes? Discuss in detail the different methods of measuring the aptitude.)

अथवा

रुझान क्या है? रुझान परीक्षाओं की उपयोगिता तथा सीमाओं का वर्णन करें।
(What is Aptitude? Explain the various uses and limitations of aptitude tests.)

अथवा

अभिरुचि के सम्प्रत्यय तथा मापन की व्याख्या कीजिए।
(Explain the concept and assessment of aptitude.)

उत्तर–हमने प्रायः अध्यापकों को ऐसा कहते हुए सुना है कि यह व्यक्ति तो जन्मजात कलाकार है, सोहन गणित में विशेष योग्यता रखता है, मोहन एक अच्छा वक्ता है। इस प्रकार के कथन व्यक्ति की विशिष्ट योग्यताओं से परिचय कराते हैं। इन योग्यताओं के आधार पर व्यक्तियों का विशेष क्षेत्रों में रुझान ढूंढा जाता है। इन्हीं प्राकृतिक रुझानों या योग्यताओं को ही अभिरुचि या अभियोग्यता (Aptitude) कह दिया जाता है। बुद्धि के अतिरिक्त अभिरुचि व्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है, जो किसी पाठ्यक्रम अथवा व्यवसाय में सफलता की भविष्यवाणी कर सकता है। 'अभिरुचि' का पता लगाने के लिए विभिन्न परीक्षणों का विकास

Scanned with OKEN Scanner

किया गया है जिनका प्रयोग एक अनुसंधानकर्ता अपने अनुसंधान कार्य में करता है। अतः कई प्रकार के अनुसंधान विषयों में अभिरुचि परीक्षणों (Aptitude Tests) को अनुसंधान यंत्रों (Research Tools) के रूप में प्रयुक्त करना पड़ता है। अतः प्रत्येक शैक्षिक अनुसंधानकर्ता को 'अभिरुचि' तथा अभिरुचि परीक्षणों के विभिन्न पहलुओं के बारे में पता होना चाहिए।

अभिरुचि का अर्थ
(Meaning of Aptitude)

वैरन (Warren) के अनुसार, **"अभिरुचि वह दशा या गुणों का वह रूप है, जो व्यक्ति की उस योग्यता की ओर संकेत करता है, जो प्रशिक्षण के बाद ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं के साथ सीखता है, जैसे भाषा बोलने या संगीतोत्पादन की योग्यता है।"**

(An aptitude is a condition or set of characteristics regarded as symptomatic of an individual's ability to acquire with training some knowledge, skill, or set or responses such as the ability to speak a language, to produce music etc.)

ट्रैक्सलर (Traxler) के अनुसार, **"अभिरुचि वह वर्तमान दशा है, जो व्यक्ति की भविष्य क्षमताओं की ओर संकेत करती है।"**

(Aptitude is a present condition which is indicative of an individual's potentialities for the future.)

सुपर (Super) ने अभिरुचि की चार विशेषताएं बताई हैं–

(i) विशिष्टता (Specificity) (ii) एकात्मक रचना (Unitary Composition)

(iii) सीखने में सुविधा (Facilitation of Learning)

(iv) स्थिरता (Consistancy)

बिंघम (Bingham) ने अभिरुचि की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर संकेत किया है–

(i) किसी व्यक्ति की अभियोग्यता या अभिरुचि (Aptitude) वर्तमान दशा या गुणों का समुच्चय है, जो उसकी क्षमताओं की ओर संकेत करता है।

(ii) अभिरुचि किसी कार्य में संभाव्य योग्यता (Possibility) से भी अधिक है।

(iii) अभिरुचि किसी वस्तु का नाम नहीं है, यह अमूर्त (Abstract) है।

(iv) अभिरुचि भविष्य की ओर संकेत करती है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकालते हैं–

(i) अभिरुचि व्यक्ति की किसी कार्य या व्यवसाय को करने की योग्यता का संकेत मात्र ही है।

(ii) यह वर्तमान वस्तु-स्थिति है, जिसका संबंध भविष्य से है।

(iii) अभिरुचियां बहुतायत में होती हैं।

(iv) ये एक विशेष आयु स्तर से पहले निर्मित नहीं होतीं।

(v) अभिरुचि वंश तथा वातावरण का गुणनफलन है। दूसरे शब्दों में ये दोनों ही तत्त्व अभिरुचि को प्रभावित करते हैं।

(vi) अभियोग्यता या अभिरुचि पर शिक्षा, प्रशिक्षण और परिस्थिति का कुछ प्रभाव पड़ता है। यह निश्चित है कि इनमें शीघ्रता से परिवर्तन संभव नहीं।

(vii) अभिरुचि में संभावित योग्यता, कौशल तथा ज्ञान आदि में प्रवीणता प्राप्त करने की तत्परता तथा इन क्रियाओं को ग्रहण कर लेने के पश्चात् संतुष्टि यह सब समाहित है।

अभिरुचि की प्रकृति
(Nature of Aptitude)

अभिरुचि की प्रकृति को समझाने के लिए निम्नलिखित बातों पर विचार करना पड़ेगा–

Scanned with OKEN Scanner

(a) क्या अभिरुचि जन्मजात है या अर्जित हुई (Whether Aptitude is Inborn or Acquired)–बीसवीं सदी के प्रारंभ तक तो वैज्ञानिक यही मानते रहे हैं कि अभिरुचि आनुवंशिक (Hereditary) ही है। परंतु हाल ही के अनुसंधानों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अभिरुचि के विकास में वंशानुक्रम के साथ-साथ वातावरण या परिस्थितियों का योगदान भी रहता है।

(b) क्या अभिरुचियां परिवर्तनशील हैं या स्थिर हैं (Whether Aptitudes are Changeble or Stable)–इस संबंध में अनुसंधान का अभाव है। परंतु यह माना जाने लगा है कि कुछ सीमा तक इन्हें प्रभावित किया जा सकता है।

अभिरुचियों के प्रकार
(Types of Aptitudes)

बिंघम (Bingham) ने अभिरुचियों के निम्नलिखित प्रकार बताए हैं–

(i) दस्तकारी कार्यों की अभिरुचि (Aptitude for Manual Occupation)
(ii) क्लर्क के कार्यों में अभिरुचि (Aptitude for Clerical Occupation)
(iii) शिक्षण कार्य के लिए अभिरुचि (Aptitude for Teaching)
(iv) संगीत तथा कला के लिए अभिरुचि (Aptitude for Music and Art)
(v) डॉक्टरी व्यवसाय के लिए अभिरुचि (Aptitude for Medical Profession)
(vi) वकालत के लिए अभिरुचि (Aptitude for Legal Profession)
(vii) इंजीनियरिंग के लिए अभिरुचि (Aptitude for Engineering)
(vii) कौशल व्यवसाय के लिए अभिरुचि (Aptitude for Skill occupation)

कैले (Kelley) ने अभिरुचियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से दिया है–

(i) मौखिक (Verbal)
(ii) संख्यात्मक (Numerical)
(iii) स्थान सम्बन्धी (Spatial)
(iv) गति सम्बन्धी (Motor)
(v) संगीतात्मक (Musical)
(vi) सामाजिक (Social)
(vii) यान्त्रिक (Mechanical)

अभिरुचियों का मापन
(Measurement of Aptitudes)

अभिरुचि मापन के लिए भी अभिरुचि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। **हल (Hull)** ने अभिरुचि परीक्षण को इस प्रकार परिभाषित किया है–**"एक अभिरुचि परीक्षण द्वारा इस बात की खोज की जाती है कि किसी व्यक्ति में एक विशेष व्यवसाय सीखने अथवा एक विशेष कौशल को ग्रहण करने की कितनी क्षमता है।"**

(An aptitude test is a test designed to discover what potentialities a given person has for learning some particular vocation or acquiring some particular skill.)

बिंघम और फ्रीमैन (Bingham and Freeman) के अनुसार, **"अभिरुचि परीक्षण वे परीक्षण होते हैं जो कुछ मात्रा में सफलता की भविष्यवाणी करते हों।"**

(Aptitude tests are tests that will predict success to some degree.)

अभिरुचि परीक्षणों के प्रकार
(Types of Aptitude Tests)

विभिन्न अभिरुचि परीक्षणों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. सामान्य अभिरुचि परीक्षण बैटरी (General Aptitude Test Battery)
2. विभेद अभिरुचि परीक्षण (Differential Aptitude Tests)
3. विशेष अभिरुचि परीक्षण (Special Aptitude Tests)

Scanned with OKEN Scanner

1. सामान्य अभिरुचि परीक्षण बैटरी (General Aptitude Test Battery)—अभिरुचि परीक्षणों की यह बैटरी अमेरिका में विकसित हुई है तथा इसमें सामान्य अभिरुचियों का परीक्षण किया जाता है। इसका विकास रोजगार के लिए चयन हेतु किया गया है। यह बैटरी 12 परीक्षणों (Tests) की बनी है और यह उन 9 अभिरुचियों का मापन करती है, जो विभिन्न व्यवसायों में सफलता के लिए आवश्यक हैं। इस बैटरी में निम्नलिखित परीक्षण शामिल हैं—

(i) नाम विभेदीकरण (Name comparison)
(ii) गणना (Computation)
(iii) त्रिपक्षीय स्थान (Three Dimensional Space)
(iv) शब्दावली (Glossary)
(v) यन्त्र मैचिंग (Tool Matching)
(vi) गणित तर्क (Arithmatic Reasoning)
(vii) फार्म मैचिंग (Form Matching)
(viii) चिह्न बनाना (Mark Making)
(ix) स्थान (Place)
(x) बारी (Turn)
(xi) एकत्रित करना (Assemble)
(xii) विसर्जन (Disassemble)

सामान्य अभिरुचि परीक्षण बैटरी (GATB) में निम्नलिखित कारक (Factors) सम्मिलित किए गए हैं—

(i) बुद्धि (G)
(ii) शाब्दिक अभिरुचि (Verbal Aptitude)
(iii) संख्यात्मक अभिरुचि (Numerical Aptitude i.e. N)
(iv) स्थानात्मक अभिरुचि (Spatial Aptitude i.e. S)
(v) फार्म प्रत्यक्षीकरण (Form Perception i.e. P)
(vi) कलैरिक्ल प्रत्यक्षीकरण (Clerical Perception i.e. Q)
(vii) गति समन्वय (Motor Coordination i.e., K)
(viii) अंगुली निपुणता (Finger Dexterity i.e. F)
(ix) माननीय निपुणता (Manual Dexterity i.e. M)

बैटरी की सीमाएं
(Limitations of the Battery)

(i) परीक्षण की गति बहुत अधिक होती है।
(ii) इस बैटरी द्वारा सभी अभिरुचियों का परीक्षण नहीं हो सकता। इस बैटरी में मैकेनिकल बोध (Mechanical Comprehension) के मापन के लिए कोई परीक्षण नहीं है।

2. विभेद अभिरुचि परीक्षण (Differential Aptitude Test Battery)—इस बैटरी का विकास **बैनेट (Benett), सीशोर (Seashore)** तथा **बैसमैन (Wasman)** ने किया था। इसे शैक्षिक तथा व्यावसायिक परामर्श के लिए हाई स्कूल स्तर पर उपयोग किया गया है। इसको कक्षा 8 से 12 तक के छात्रों के लिए तैयार किया गया है। इस बैटरी में 8 परीक्षण तथा 7 पुस्तिकाएं हैं। सब परीक्षण फार्म A तथा फार्म B में उपलब्ध हैं। इस बैटरी में निम्नलिखित परीक्षण हैं—

(i) शाब्दिक तर्क परीक्षा (Verbal Reasoning)
(ii) संख्यात्मक योग्यता परीक्षण (Numerical Ability Test)
(iii) अमूर्त तर्क परीक्षण (Abstract Reasoning Test)

Scanned with OKEN Scanner

(iv) स्थान सम्बन्धी परीक्षण (Space Aptitude Test)

(v) यान्त्रिक तर्क परीक्षण (Mechanical Reasoning Test)

(vi) लिपिकीय गति एवं शुद्धता परीक्षण (Clerical Speed and Accuracy Test)

(vii) भाषा प्रयोग परीक्षण प्रथम (Language usage Test I - Spelling)

(viii) भाषा प्रयोग परीक्षण द्वितीय (Language Usage II - Sentences)

प्रत्येक परीक्षण का समय 25 से 35 मिनट तक का है। डी.टी.ए. का भारतीय संस्करण भी उपलब्ध है।

3. विशेष अभिरुचि परीक्षण (Special Aptitude Tests)—विशेष अभिरुचि परीक्षणों में विभिन्न अभिरुचियों का मापन किया जाता है। ये अभिरुचियां (Aptitudes) परीक्षण निम्नलिखित हैं—

(a) यांत्रिक अभिरुचि परीक्षण (Mechanical Aptitude Test)

(b) लिपिक अभिरुचि परीक्षण (Clerical Aptitude Test)

(c) चिकित्सा सम्बन्धी अभिरुचि परीक्षण (Medical Aptitude Test)

(d) वैज्ञानिक अभिरुचि परीक्षण (Scientific Aptitude Test)

(e) तकनीकी अभिरुचि परीक्षण (Technical Aptitude Test)

(f) कला अभिरुचि परीक्षण (Art Aptitude Test)

(g) मिलिट्री कैरियर अभिरुचि परीक्षण (Military Career Aptitude Test)

(h) संगीत अभिरुचि परीक्षण (Musical Aptitude Test)

(i) साहित्यिक अभिरुचि परीक्षण (Literacy Aptitude Test)

(j) शिक्षण अभिरुचि परीक्षण (Teaching Aptitude Test)

(a) यांत्रिक अभिरुचि परीक्षण (Mechanical Aptitude Test)—यान्त्रिक अभिरुचि एकाकी विशेषक (Unitary Trait) नहीं होती। यह कई विशेषकों (Traits) का समूह (Combination) होता है। यांत्रिक योग्यता (Mechanical Ability) ठोस वस्तुओं को व्यवस्थित करने की योग्यता है। जैसे यंत्र इत्यादि। (Mechanical ability is an ability involved in manipulation of concrete objects, such as tools, and in dealing mentally with mechanical movements).

इस प्रकार की योग्यता को मापने के लिए निम्न परीक्षणों का विकास हुआ है—

(i) **मिनीसोटा मैकेनिकल योग परीक्षण (Minnesota Mechanical Assembly Test)**—इस परीक्षण में व्यक्ति एक मशीन के पुर्जे जोड़ता है।

(ii) **मिनीसोटा कागज रूप परीक्षण (Minnesota Paper Form Test)** —यह परीक्षण कागज, पैंसिल परीक्षा कहलाती है। यह परीक्षा अवलोकन योग्यता तथा पदार्थों के बनाने की योग्यता में बहुत उपयुक्त होती है।

(iii) **मैकेनिकल अभिरुचि परीक्षा बैटरी (Sharma's Mechanical Aptitude Test Battery)** —यह बैटरी 8वीं से 12वीं कक्षा के छात्रों की अभिरुचि को मापती है। इस परीक्षण की पुस्तिकाएं उपलब्ध हैं।

(b) लिपिक अभिरुचि परीक्षण (Clerical Aptitude Test)—लिपिक अभिरुचि परीक्षण निम्नलिखित होते हैं—

(i) **मिनीसोटा लिपिक अभिरुचि परीक्षण (Minnesota Clerical Aptitude Test)**—यह परीक्षण एन्ड्रयू (Andrew) द्वारा विकसित किया गया था। इसे उद्योग तथा निर्देशन में बहुत प्रयोग किया जाता है। इसके दो उपपरीक्षण हैं—

(ii) **सामान्य लिपिक अभिरुचि परीक्षण (General Clerical Aptitude Test)**

(iii) क्लर्की अभिरुचि परिक्षण A तथा B (General Clerical Aptitude Test A and B)

(c) चिकित्सा अभिरुचि परीक्षण (Medical Aptitude Test)—इस क्षेत्र में परीक्षण के लिए निम्नलिखित योग्यताएं शामिल हैं—

(i) सामान्य शैक्षिक योग्यता (General Scholastic Study)

Scanned with OKEN Scanner

(ii) विज्ञान विषयों में योग्यता (Ability in the Sciences)

(iii) रुचि (Interest)

(iv) बुद्धि (Intelligence)

चिकित्सा अभिरुचि परीक्षण निम्नलिखित हैं–

(i) अमेरिकन मेडिकल विद्यालयों की समिति द्वारा मेडिकल स्कूलों के लिए परीक्षण (The Association of American Medical Colleges Scholastic Aptitude Test for Medical School)

(ii) मेडिकल अभिरुचि परीक्षण, शस्त्र सैनिक मेडिकल महाविद्यालय, पूना (Medical Aptitude Test, Armed Forces Medical College Poona)

यह परीक्षण मेडिकल कालेज पूना में प्रवेश पाने वालों के लिए बनाया गया है।

(d) वैज्ञानिक अभिरुचि परीक्षण (Scientific Aptitude Test)–

(i) राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसन्धान परीक्षण परिषद् नई दिल्ली (National Council of Educational Research and Training)–इस परिषद् द्वारा निर्मित परीक्षण प्रति वर्ष वैज्ञानिक अभिरुचि को मापने के लिए दिया जाता है। यह परीक्षण दो भागों में है। पहले भाग में 10 प्रश्न हैं। दूसरे भाग में 100 प्रश्न हैं।

(ii) वैज्ञानिक ज्ञान और अभिरुचि परीक्षण (Scientific knowledge and Aptitude Test) –यह परीक्षण **एस. चटर्जी** तथा **एम. मुखर्जी** द्वारा तैयार किया गया है।

(e) तकनीकी अभिरुचि परीक्षण (Technical Aptitude Test) –इंस्टीट्यूट ऑफ वोकेशनल गाईडेंस, महाराष्ट्र सरकार द्वारा तैयार किया गया स्कोलैस्टिक अभिरुचि परीक्षण (Scholastic Aptitude Test) है।

(f) वैज्ञानिक अभिरुचि परीक्षण (Scientific Aptitude Test)–जैसे N.I. E द्वारा तैयार किया गया Science Aptitude Test, 1964.

इसी प्रकार, A.K.P. Sinha तथा L.N.K. Sinha द्वारा तैयार किया गया परीक्षण।

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की अभिरुचियों के मापन के लिए विभिन्न परीक्षणों का विकास किया गया है। अनुसंधान कार्य में इन परीक्षणों का प्रयोग करके सार्थक परिणाम निकाले जा सकते हैं।

◆◆◆

व्यक्तित्त्व (Personality)

1. 'व्यक्तित्त्व' को परिभाषित करें। व्यक्तित्त्व की विशेषताएं क्या हैं? व्यक्तित्त्व को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
(Define Personality. What are the characteristics of Personality? Describe the various factors affecting personality.)

उत्तर–शिक्षा मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करता है तथा व्यवहार व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है। कोई व्यक्ति जैसा व्यवहार करेगा वैसा ही उसका व्यक्तित्त्व प्रकट होगा। प्रत्येक समाज तथा स्कूल बच्चों के व्यक्तित्त्व के विकास में रुचि लेता है। स्कूल का मुख्य उद्देश्य भी बच्चों के व्यक्तित्त्व का विकास करना ही होता है।

दैनिक जीवन में हम 'व्यक्तित्त्व' शब्द का कई बार प्रयोग करते हैं। लेकिन 'व्यक्तित्त्व' शब्द का अर्थ नहीं बता पाते। वैसे भी व्यक्तित्त्व के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिये इस शब्द की व्याख्या करना अति आवश्यक है। अतः सबसे पहले 'व्यक्तित्त्व' शब्द का अर्थ समझा जाए।

अर्थ एवं परिभाषाएँ

Scanned with OKEN Scanner

(Meaning and Definitions)

'व्यक्तित्त्व' क्या है ? इसके बारे में अलग-अलग मनोवैज्ञानियों का अलग-अलग मत है। 'व्यक्तित्त्व' शब्द अंग्रेज़ी भाषा के 'पर्सनेल्टी' (Personality) शब्द का ही हिन्दी अनुवाद है। 'पर्सनेल्टी' (Personality) शब्द लातीनी भाषा के 'परसोना' (Persona) से विकसित हुआ है, जिसका अर्थ होता है—'मुखौटा' या 'नकली चेहरा'। प्राचीन काल में तथा एक आम या अशिक्षित व्यक्ति के लिये 'व्यक्तित्त्व' से अभिप्राय शारीरिक रचना, रंगरूप, वेशभूषा इत्यादि से था। बाहरी गुणों द्वारा प्रभावित करने वाला व्यक्ति ही सबसे अधिक प्रभावशाली माना जाता था। लेकिन व्यक्तित्त्व का अर्थ समझने के लिये या व्यक्तित्त्व का निर्धारण करने के लिये अनेक कारक या पक्ष अपना-अपना योगदान देते हैं।

गिलफोर्ड (Guilford) के अनुसार, निम्नलिखित चार प्रतिकारकों के कारण ही व्यक्तित्त्व का निर्माण होता है –

(i) **सामाजिक अनुक्रिया (Social Response)**—व्यक्ति को सामाजिक अनुक्रिया का प्रभाव माना गया है। एक व्यक्ति पर दूसरे व्यक्ति का जो प्रभाव पड़ता है, उसे ही व्यक्तित्त्व कहा गया है। इस दृष्टि से सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति ही 'व्यक्तित्त्वपूर्ण' माना जायेगा।

(ii) **सर्वव्यापी तत्त्व (Omnimus)**—इस विचार के अनुसार व्यक्तित्त्व विभिन्न शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं का योग माना जाता है।

(iii) **संगठन पर बल (Emphasis on Integration)**—इस मत के अनुसार व्यक्तित्त्व किसी एक तत्त्व या शक्ति की उपज या परिणाम नहीं है। यह मत अनेक तत्त्वों के संगठन पर बल देता है।

(iv) **सम्पूर्ण मत (Whole Opinion)**—इस मत के अनुसार व्यक्तित्त्व सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व है।

समाज शास्त्रियों के अनसुार—**'व्यक्तित्त्व उन समस्त गुणों का संगठन है, जोकि समाज में व्यक्ति का कार्य तथा पद निश्चित करता है।'**

कुछ व्यक्तियों के अनुसार व्यक्तित्त्व वे जन्मजात शक्तियाँ है जिनको लेकर एक व्यक्ति पैदा होता है तथा जो वातावरण के प्रभावों से मुक्त रहती है। 'व्यक्तित्त्व' के अर्थ के बारे में लोगों के विचारों में इतनी भिन्नता है कि इसकी कोई एक परिभाषा बताना बहुत कठिन है। व्यक्तित्त्व को परिभाषित करने के बहुत प्रयास किये गये हैं, लेकिन आज तक कोई एक सर्वमान्य परिभाषा सामने नहीं आ सकी।

आलपोर्ट (Allport) के अनुसार, **'व्यक्तित्त्व, व्यक्ति में उन मनोदैहिक व्यवस्थाओं का संगठन है, जो वातावरण के साथ उसका अपूर्व समायोजन निर्धारित करती हैं।' (Personality is the dynamic organisation with in individual of those psycho physical system that determine his unique adjustment to his environment.)**

आलपोर्ट (Allport) द्वारा बताई गई परिभाषा में निम्न शब्दों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—

(i) **संगठन (Organisation)**—व्यक्तित्त्व अनेक संस्थानों या प्रणालियों का संगठन है।

(ii) **गतिशील (Dynamic)**—व्यक्तित्त्व गतिशील है। बालक की वृद्धि के साथ-साथ उसके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष भी बदलते रहते हैं।

(iii) **मनो-दैहिक (Psycho-Physical)**—व्यक्तित्त्व में मन और शरीर दोनों ही शामिल हैं। प्रत्येक क्रिया मनो-दैहिक होती है। तन मन और शरीर को अलग नहीं किया जा सकता तथा मन शरीर से अलग रहकर कार्य नहीं कर सकता। दोनों में से कोई भी स्वतंत्र नहीं रह सकता।

(iv) **संस्थान या व्यवस्था (System)**—इसके अन्तर्गत उन प्रवृत्तियों का समूह होता है, जो मन में निष्क्रय या क्रियाशील रहती है।

(v) **निर्धारित करना (Determine)**—व्यक्तित्त्व द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों को निर्धारित करना।

(vi) **अपूर्व (Unique)**—प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में एक विशिष्टता या अपूर्वता होती है। प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करता है।

(vii) **वातावरण में समायोजन (Adjustment to environment)**—वातावरण में समायोजन करना

Scanned with OKEN Scanner

व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के क्रियात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार आलपोर्ट ने व्यक्तित्त्व को गतिशील माना है तथा इसे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विशेषताओं का मिश्रण माना है। व्यवहार द्वारा व्यक्तित्त्व का निर्धारण किया जा सकता है। व्यक्ति का व्यक्तित्त्व गतिशील इस लिये है कि वह समय-समय पर वातावरण की अन्तःक्रियाओं द्वारा स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करता है।

वैलेनटीन (Valentine) के अनुसार, **'व्यक्तित्त्व जन्म जात और अर्जित प्रवृत्तियों का योग है।'**

(Personality is the sum total of innate and acquired dispositions)

मन (Munn) के अनुसार, **'व्यक्तित्त्व एक व्यक्ति के गठन, व्यवहार के तरीकों, रुचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं और तरीकों का सबसे विशिष्ट संगठन है।**

(Personality may be defined as the most characteristic integration of an individual's structures, modes of behaviour, interests, attitudes, capacities, abilities and aptitudes.)

बोरिंग (Boring) के अनुसार, **'व्यक्तित्त्व, व्यक्ति का अपने वातावरण के साथ अपूर्व और स्थाई समायोजन है।'**

(Personality is an individual consistent adjustment to his behaviour.)

कैटल (Cattell) के अनुसार, **''व्यक्तित्त्व जो किसी विशेष परिस्थिति में जो भी कार्य करता है, उसका प्रतिरूप ही व्यक्तित्त्व है।''**

(Personality is that permits a prediction of what a person will do in a given situation.)

वारेन (Warren) के अनुसार, **''व्यक्तित्त्व व्यक्ति का, विकास की किसी भी अवस्था में सम्पूर्ण मानसिक संगठन है।'**

(Personality is the entire mental organisation of a human being at any stage of his development.)

रैक्सरोड (Rexroad) ने व्यक्तित्त्व को समाज द्वारा स्वीकृत विशेषताओं में एक सामंजस्य कहा है।

(Personality is the balance between socially approved traits.)

मार्टन प्रिंस (Morton Prince) के अनुसार, **'व्यक्तित्त्व, व्यक्ति के समस्त जन्मजात संस्थानों, आवेगों, प्रवृत्तियों, झुकावों एवं मूल प्रवृत्तियों और अनुभवों के द्वारा अर्जित संस्कारों एवं प्रवृत्तियों का योग है।''**

(Personality is the sum total of the biological innate dispositions impulses, tendencies, aptitudes and instincts of the individual, and the dispositions and tendencies acquired by experiences.)

आईजैंक (Eysenck) के अनुसार, **''व्यक्तित्त्व व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धि और शारीरिक संरचना का स्थाई और स्थिर संगठन है, जो वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।''** इस परिभाषा में वंशानुक्रम और वातावरण के संतुलित महत्त्व को मान्यता दी गई है। इस परिभाषा के अनुसार व्यक्तित्त्व का मापन और मूल्यांकन संभव है। इस परिभाषा में व्यक्ति के व्यवहार पर अधिक बल न देकर उसके शारीरिक संगठन और उसके शरीर की संरचना पर अधिक बल दिया गया है।

व्यक्तित्त्व की विशेषताएँ (Characteristics of Personality)

'व्यक्तित्त्व' की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण एवं अध्ययन के परिभाषा स्वरूप 'व्यक्तित्त्व' की कुछ विशेषताएं स्पष्ट होती है, जो कि निम्नलिखित हैं–

1. व्यक्तित्त्व 'गतिशील' है (Personality is dynamic)–व्यक्तित्त्व को 'गतिशील' माना गया

Scanned with OKEN Scanner

है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों में परिवर्तन आते रहते हैं। समायोजन में सफलता प्राप्ति के लिये ये परिवर्तन आवश्यक भी होते हैं। इस दृष्टि से व्यक्तित्व गतिशील कहलाता है।

2. व्यक्तित्व आत्म-चेतना (Personality is self-consciousness)—हर व्यक्ति में आत्म-चेतना अवश्य होती है। यह आत्म-चेतना उसके व्यक्तित्व की विशेषता होती है। वास्तविकता तो यह है कि जब व्यक्ति में आत्म-चेतना जैसी वस्तु घर करने लगती है तभी उसके व्यक्तित्व का अस्तित्व दिखाई देता है। आत्म-चेतना से अभिप्राय है—स्वयं का ज्ञान। बच्चे में आत्म-चेतना का अभाव होता है। जब वह बड़ा होता है तो वह अपनी ओर वस्तुपरक दृष्टिकोण (Objective) से देखना शुरू करता है।

3. अपूर्वता या अनुपमता (Uniqueness)—व्यक्तित्व अपूर्व या अनुपम या विशिष्ट होते हैं। हर व्यक्ति अपने ही ढंग का होता है। कोई भी दो व्यक्ति, चाहे वे समरूप समज (Identical Twins) ही क्यों न हों, एक समान व्यवहार नहीं करते। हर व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुछ न कुछ विशिष्ट या अनुपम (Unique) अवश्य होता है। हर व्यक्ति अपने अपने ढंग से स्वयं को समायोजित करते हैं अर्थात् हर व्यक्ति के समायोजन की अपनी ही विशेषताएँ होती हैं।

4. लक्ष्य-निर्देशित (Goal-Directed)—हर व्यक्ति के व्यवहार में लक्ष्यों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। हर व्यक्ति का व्यक्तित्व किसी न किसी लक्ष्य द्वारा निर्देशित रहता है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी लक्ष्य को अर्जित करना होता है। वह इन लक्ष्यों को अर्जित करने के लिये प्रयास करता है। व्यक्तित्व को ये लक्ष्य दिशा प्रदान करते हैं।

5. सामाजिकता (Sociability)—सामाजिकता भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। व्यक्तित्व के निर्माण में समाज का योगदान नकारा नहीं जा सकता। सामाजिकता के अन्तर्गत व्यक्ति का समाज के हर सदस्य के साथ सम्पर्क होता है, जो उस व्यक्ति में आत्म-चेतना के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी पैदा करता है। इस सामाजिक सम्पर्कों से व्यक्ति को कई प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं, जो व्यक्तित्व के विकास में महत्त्वपूर्ण साबित होते हैं। अतः सामाजिकता की प्रक्रिया में से व्यक्तित्व का गुजरना अति आवश्यक है ताकि व्यक्ति में सामाजिक परिपक्वता आ सके।

6. समायोजन की योग्यता (Ability of Adjustment)—व्यक्तित्व और समायोजन का आपस में गहरा सम्बन्ध होता है। पर्यावरण के अनुसार स्वयं को ढाल लेना ही व्यक्तित्व कहलाता है। हर व्यक्ति को हर प्रकार के वातावरण के साथ समायोजित करना पड़ता है चाहे वह वातावरण बाहरी हो या आन्तरिक हो। **मरफी (Murphy)** के अनुसार, **"अच्छे व्यक्तित्व का अर्थ है वातावरण में समायोजन की शक्ति का होना।" (A good personality means power of adjustment with environment.)**

7. निरन्तरता (Consistency)—**वुडवर्थ (Woodworth)** के अनुसार, **'निरन्तरता व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।'** (Consistenecy is an important characteristic of personality) अपनी ही बात का यदि कोई व्यक्ति विरोध करने लगता है तो वह व्यक्तित्व एक अच्छा व्यक्तित्व नहीं माना जाता। वातावरण के साथ निरन्तर समायोजन को ही अच्छा व्यक्तित्व कहा जाता है। व्यक्ति के व्यवहार में निरन्तरता का होना ही अच्छे व्यक्ति का संकेत है। यदि उसके व्यवहार में निरन्तरता का अभाव हो तो उसे दोषपूर्ण व्यक्तित्व के वर्ग में रखा जाता है।

8. दृढ़ता (Persistency)—अच्छे व्यक्तित्व की एक और विशेषता है—दृढ़ता। समाज में सफलता अर्जित करने के लिये दृढ़ता का होना अति आवश्यक है। बिना दृढ़ता के कोई भी व्यक्ति सफल नहीं हो सकता। असाधारण बुद्धि वाले व्यक्ति दृढ़ता की कमी के कारण समाज में असफल रहते हैं तथा समायोजित नहीं हो पाते। सफलता के शिखर को छूने के लिये दृढ़ता और निरन्तरता का होना अति आवश्यक है।

9. लचीलापन (Flexibility)—**डैशीयल (Dashiell)** के अनुसार लचीलापन तथा समायोजन 'व्यक्तित्व' के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं।' (Flexiblility and adjustment are important aspects of personality)। व्यक्ति को अपने वातावरण तथा अपनी अन्तः शक्तियों के साथ संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष के परिणाम स्वरूप व्यक्तित्व में कई बदलाव आते रहते हैं, जिसके कारण व्यक्तित्व की प्रकृति

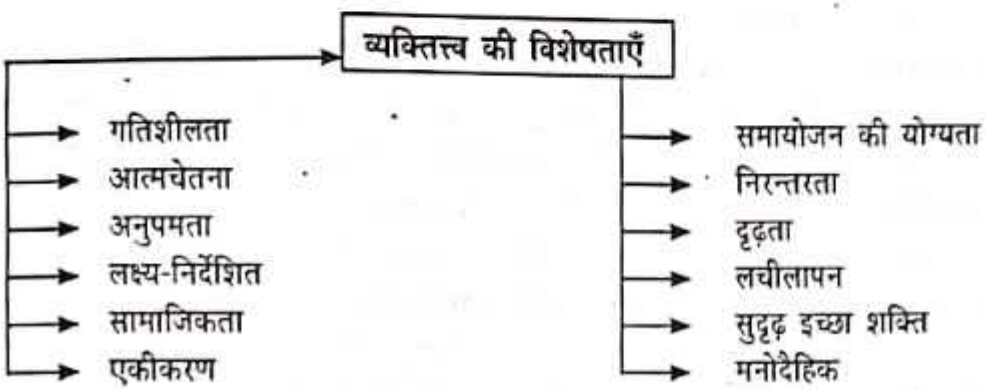
Scanned with OKEN Scanner

गतिशील बनती है। व्यक्तित्त्व में हमेशा परिवर्तन और सुधार होते रहते हैं।

10. एकीकरण (Integration)–व्यक्तित्त्व में ज्ञान, भावनाओं और क्रिया तीनों ही आपस में एकीकृत होते हैं। इन्हें एक दूसरे से जुदा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्त्व सम्पूर्ण इकाई के रूप में कार्य करता है। वास्तव में व्यक्तित्त्व व्यक्ति की सभी शक्तियों और गुणों का एकीकरण है।

11. सुदृढ़ इच्छा शक्ति (Strong will power)–हर व्यक्ति में इच्छाशक्ति होती है, जिसे व्यक्तित्त्व का एक आवश्यक ढंग माना गया है। जीवन की कठिन परिस्थितियों का सामना करने में यह इच्छा शक्ति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा व्यक्तित्त्व को आकर्षण प्रदान करती है। यदि किसी व्यक्ति में इच्छा शक्ति का अभाव है तो उसका व्यक्तित्त्व भी प्रभावित होता है।

12. मनोदैहिक (Psycho-physical)–व्यक्तित्त्व में मन और शरीर घनिष्ट रूप से संगठित होते हैं। व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया मनोदैहिक होती है। मन शरीर से अलग रहकर स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकता और न ही शरीर मन के बिना कोई क्रिया करने में समर्थ है।



चित्र : व्यक्तित्त्व की विशेषताएँ

व्यक्तित्त्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Influencing Development of Personality)

मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यक्तित्त्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इन कारकों का सम्बन्ध शारीरिक रचना, वंशानुक्रम तथा वातावरण से होता है। व्यक्तित्त्व को कोई एक ही कारक प्रभावित नहीं करता। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को कोई कारक प्रभावित करता है तथा अन्य व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को कोई और कारक। इस तरह विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्त्व को विभिन्न कारक किसी न किसी रूप में प्रभावित करते रहते हैं। इन कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने के लिये इन्हें हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

1. जैविक या वंशानुक्रम सम्बन्धी कारक (Biological and Hereditary Factors)
2. वातावरण सम्बन्धी कारक (Environmental Factors)
3. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

1. जैविक या वंशानुक्रम सम्बन्धी कारक (Biological and Hereditary Factors)–इन कारकों का सम्बन्ध व्यक्ति के जैविक या वंशानुक्रम पक्ष से होता है। ये कारक जन्मजात होते हैं। यही जन्मजात कारक व्यक्तित्त्व को एक अलग ही स्वरूप प्रदान करते हैं। इन जन्मजात कारकों के निष्क्रिय होने से व्यक्तित्त्व विघटित हो सकता है। अतः इन कारकों का अपना ही महत्त्व है। ये कारक निम्नलिखित हैं–

(i) शारीरिक संरचना (Physical Structure or Physique)–किसी भी व्यक्ति के शरीर की रचना वंशानुक्रम (Heredity) पर आधारित होती है। शरीर की रचना के अन्तर्गत रंग (Complextion), कद, भार, शारीरिक दोष, शारीरिक स्वास्थ्य आदि शामिल किये जाते हैं। किसी भी व्यक्ति का रंग रूप, कद, भार

Scanned with OKEN Scanner

इत्यदि जन्मजात होते हैं। किसी भी शरीर की सुन्दर संरचना सभी ओर से प्रशंसनीय रहती है। यही प्रशंसा व्यक्ति के आत्म-विश्वास की आधारशिला है। इसके विपरीत, सुन्दर शारीरिक रचना के अभाव में व्यक्ति में हीन भावना घर करने लगती है तथा संवेगात्मक अस्थिरता को जन्म देती है। इसी के फलस्वरूप व्यक्ति में सामाजिक अस्थिरता भी आ सकती है। इस प्रकार शरीर की रचना व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को किसी न किसी ढंग से प्रभावित करती है।

(a) रंग (Complextion)—व्यक्ति का रंग-रूप उसके व्यक्तित्त्व में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। गोरा रंग आकर्षक व्यक्तित्त्व के लिये एक आवश्यक तत्त्व है। काले रंग वाले व्यक्ति का अक्सर मज़ाक ही उड़ता है। लेकिन एक मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से काला रंग या गोरा रंग बाहरी व्यक्तित्त्व (External Personality) से सम्बन्धित है। काले रंग वाले व्यक्ति का आन्तरिक व्यक्तित्त्व प्रशंसनीय हो सकता है। इसी प्रकार गोरे रंग वाले व्यक्ति का आन्तरिक व्यक्तित्त्व दुर्बल हो सकता है।

(b) कद एवं भार (Height and Weight)—रंग-रूप की तरह व्यक्ति का कद और भार भी व्यक्तित्त्व के आवश्यक तत्त्व हैं। लम्बे कद के व्यक्ति का व्यक्तित्त्व प्रभावशाली माना जाता है। ठिगने (Dumpy) कद वाले व्यक्तित्त्व का भी मज़ाक उड़ता है। इसी प्रकार मोटे और पतले व्यक्तियों के लिये मोटापा या पतलापन वरदान या अभिशाप बन जाते हैं। कई बार बहुत मोटे, ठिगने या पतले व्यक्तियों में हीनभावना पैदा हो जाती है, जिसके कारण उनका समायोजन कठिन हो जाता है। संतुलित कद, भार, रंग-रूप वाला व्यक्ति आत्म-विश्वास से भरा होता है तथा आकर्षक व्यक्तित्त्व का स्वामी होता है।

(c) शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)—स्वास्थ्य अच्छे व्यक्तित्त्व की जड़ है। यदि व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ है तो उसका व्यक्तित्त्व भी उत्तम होगा। अस्वस्थ व्यक्ति का व्यक्तित्त्व कभी भी आकर्षक या प्रभावशाली नहीं हो सकता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी एक स्वस्थ व्यक्ति प्रसन्न, चिन्ता रहित, सक्रिय, संवेगात्मक रूप से स्थिर तथा सामाजिक रूप से परिपक्व रहता है। उसके व्यवहार में आशावाद शामिल होता है। ये सभी गुण एक अच्छे व्यक्तित्त्व के आवश्यक घटक माने जाते हैं।

(d) शारीरिक दोष (Physical Defects)—शारीरिक दोष भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में बाधा डालते हैं। यदि ये दोष जन्मजात हैं तो इनका प्रभाव और भी हानिकारक हो सकता है। जैसे, गूंगापन, लंगड़ापन, अन्धापन, बहरापन। शारीरिक दोष युक्त व्यक्तियों को समाज के अन्य सदस्य पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करते। ऐसे लोगों का समाज में रहना कठिन हो जाता है, जिसके कारण कई प्रकार की हीन भावनाएँ, तनाव, उत्पन्न हो जाते हैं जो कि उनके व्यक्तित्त्व के विकास को रोकते हैं। समाज की कई वर्ग ऐसे लोगों का मज़ाक भी उड़ाते हैं, जिससे इनके मन को ठेस पहुँचती है और वे जीने के इच्छा से दूर रहने लगते हैं। ऐसे दोषयुक्त व्यक्ति अपने घर तक ही सीमित रहते हैं। समाज में उनकी अन्तर्क्रिया नहीं हो पाती और परिणामस्वरूप उनका सामाजीकरण भी निम्न स्तर का ही रह जाता है या बिल्कुल नहीं हो पाता।

(ii) लिंग (Sex)—भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में यदि देखा जाये तो व्यक्तित्त्व पर 'लिंग' (Sex) का भी बहुत प्रभाव देखने में आया है। भारतीय संस्कृति में लड़कियों के व्यक्तित्त्व के विकास की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। लड़कियों पर कई पाबन्दियाँ लगा दी जाती हैं और परिणामस्वरूप उनके व्यक्तित्त्व की जन्मजात शक्तियाँ दब जाती थीं तथा व्यक्तित्त्व उभर कर सामने नहीं आता था। इसके विपरीत लड़कों को स्वतंत्रता में रखकर उनके व्यक्तित्त्व को विकसित होने के पूरे अवसर प्रदान किये जाते थे। आज के आधुनिक युग में स्थिति कुछ बदली अवश्य है, लेकिन बहुत कम। आज भी लड़की के पैदा होने पर खुशी का प्रदर्शन नहीं होता और लड़के के जन्म पर समारोह किये जाते हैं। लड़की की शिक्षा को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता तथा लड़के की शिक्षा पर लाखों रुपये बहा दिये जाते हैं।

(iii) बुद्धि (Intelligence)—बुद्धि को जन्मजात माना गया है। बुद्धि व्यक्तित्त्व का एक आवश्यक तत्त्व है। यदि किसी व्यक्ति का आकर्षक शरीर, रंग गोरा और ऊँचा कद है, लेकिन बुद्धि का स्तर निम्न है तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसका व्यक्तित्त्व उत्तम नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से आकर्षक नहीं, कद छोटा है तथा रंग काला है, लेकिन बुद्धि का स्तर बहुत ऊँचा है तो

Scanned with OKEN Scanner

उसका व्यक्तित्त्व स्वीकार्य होगा तथा समाज में प्रशंसनीय होगा। बुद्धि युक्त व्यक्तित्त्व समाज में स्वयं को ठीक ढंग से समायोजित भी कर लेगा तथा समाज की अपेक्षाओं के अनुसार व्यवहार भी कर लेगा। लेकिन निम्न बुद्धि वाला व्यक्तित्त्व न तो समाज में उचित ढंग से स्वयं को समायोजित कर पायेगा और न ही समाज की आशाओं पर खरा उतरेगा। समाज के अन्य सदस्य भी बुद्धिमान व्यक्तित्त्व के साथ सम्पर्क रखने में गर्व का अनुभव करेंगे। बुद्धिहीन व्यक्ति से सभी लोग दूर-दूर ही रहेंगे, जिससे उस व्यक्ति में हीन भावना जागृत होने का भय रहता है।

(iv) नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ (Endocrine or Ductless Glands)—मानव के शरीर में कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं जो बिना किसी नलिका के होती हैं और इन ग्रन्थियों में से कुछ ऐसे हारमोन (Hormones) बनकर निकलते हैं जो व्यक्ति के शरीर के विभिन्न कार्यों को नियंत्रित करते हैं और व्यक्तित्त्व के कई पक्षों को प्रभावित करते हैं। अर्थात् ये हारमोन व्यक्ति के शारीरिक, संवेगात्मक, बौद्धिक तथा सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। कुछ प्रमुख नलिका-विहीन ग्रन्थियाँ अग्रलिखित हैं—

(a) उपवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland)—इन ग्रन्थियों की संख्याँ दो होती है तथा गुर्दों के पास होती हैं। ये ग्रन्थियाँ दो हारमोन बनाती हैं कोर्टिन (Cortin) तथा एड्रेनेलिन (Adrenaline)। कोर्टिन की उपयोगिता का कोई विशेष अनुमान नहीं है। लेकिन एड्रेनेलिन (Adrenaline) स्नायुसंस्थान (Nervous System), माँसपेशियों (Muscles) तथा यौन अंगों (Sex Organs) की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करता है। उपवृक्क ग्रन्थियों को प्राण-रक्षा ग्रन्थियों की संज्ञा भी दी जा सकती है। क्योंकि यदि इनमें से ये हारमोन बनने कम हो जायें या बंद हो जायें तो हमारा शरीर दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता जायेगा। संकट के समय ये ग्रन्थियां शरीर की रक्षा करती हैं। एड्रेनेलिन नामक यह हारमोन व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति को प्रभावित करता है तथा उसे क्रोध, चिन्ता, भय, प्रेम आदि के लिये तैयार करने में सहायता करता है।

इन ग्रन्थियों से अधिक मात्रा में हारमोन निकलने पर व्यक्ति अधिक उत्तेजित, अधिक व्याकुल और झगड़ालू किस्म का हो जाता है। समय से पहले यौन-परिपक्वता (Sexual Maturity) भी इसी कारण आती है। लड़कों में छोटी आयु में ही दाढ़ी-मूँछ निकलनी शुरू हो जाती है तथा लड़कियों में शीघ्र ही मासिक-धर्म (Menstrual Cycle) शुरू हो जाता है और स्तन (Breasts) बहुत अधिक विकसित हो जाते हैं। यदि वे ग्रन्थियाँ आवश्यकता से अधिक विकसित हो जाएं अर्थात् उनमें से हारमोन अधिक मात्रा में बनने लगे तो स्त्रियाँ पुरुषों जैसी दिखाई देने लगती हैं। नारी जैसी कोमलता का अभाव रहता है। इसी प्रकार पुरुष स्त्रियों जैसे लगने लगते हैं अर्थात् उनके चेहरे पर दाढ़ी मूँछ कम उगती है तथा वे दब्बू किस्म के हो जाते हैं।

इन ग्रन्थियों के अधिक विकास के कारण रक्तचाप (Blood Pressure) भी बढ़ जाता है, हृदय-गति बढ़ जाती है तथा साँस तेज़ चलने लगती है।

इन ग्रन्थियों में से कम हारमोन बनने के कारण एडिसन (Addisen Disease) नामक रोग हो जाता है। इस रोग के कारण व्यक्ति को नींद नहीं आती तथा उसके शरीर में दुर्बलता आने लगती है तथा निर्णय-शक्ति क्षीण हो जाती है। इन सब कारणों से वह व्यक्ति चिड़चिड़ा हो जाता है।

(b) यौन ग्रन्थियाँ (Sex Glands or Gonads)—ये ग्रन्थियाँ स्त्री और पुरुष में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। पुरुषों में यौन ग्रन्थियाँ अंडकोषों (Testes) के रूप में तथा स्त्रियों में अंडाशयों (Ovaries) के रूप में होती हैं। पुरुषों की यौन ग्रन्थियाँ एन्ड्रोजन (Androgen) नामक हारमोन उत्पन्न करती हैं तथा स्त्रियों की यौन ग्रन्थियों से एस्ट्रोजन (Estrogen) नामक हारमोन बनता है। इन यौन ग्रन्थियों का विकास समस्त व्यक्तित्त्व के विकास को प्रभावित करता है। इन हारमोन्स के कारण ही स्त्री और पुरुष के स्वभाव में भिन्नता पाई जाती है। इन हारमोन्स के उत्पादन में संतुलन का होना अति आवश्यक है। इनके अधिक या कम बनने से शरीर में कई प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इन ग्रन्थियों की अधिक क्रियाशीलता से मनुष्य की काम-प्रवृत्ति भी अधिक सक्रिय हो जाती है।

(c) थाईरायड ग्रन्थि (Thyroid Gland)—इसे चुल्लिका या गल ग्रन्थि भी कहा जाता है। यह श्वासा नली के सामने गर्दन के मूल में होती है। इस ग्रन्थि से थायरोक्सिन (Thyroxin) नामक हारमोन

Scanned with OKEN Scanner

बनता है, जो व्यक्ति को क्रोधी, चिन्तामय, सुस्त तथा बेचैन बनाता है तथा नींद भी कम करता है। इसके कम बनने से व्यक्ति थकावट, व्याकुलता और मानसिक दुर्बलता अनुभव करता है। यह ग्रन्थि आक्सीकरण प्रक्रिया (Oxidations Process) को तेज़ करके भोजन को ऊर्जा या शक्ति के रूप में परिवर्तित करता है।

(d) पैरा-थाईरायड ग्रन्थियां (Para-Thyroid Glands)—ये ग्रन्थियाँ थाईरायड ग्रन्थि के पीछे की ओर स्थित होती हैं तथा संख्या में चार होती हैं। इन ग्रन्थियों द्वारा उत्पन्न हारमोन से व्यक्ति शाँत हो जाता है तथा इनके कम क्रियाशील होने से व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है। ये ग्रन्थियाँ शरीर में से उत्तेजक द्रव्यों को बाहर निकाल कर उसे शाँत बना देती हैं।

(e) पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)—इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि (Master Gland) भी कहते हैं। इस ग्रन्थि का सम्बन्ध सभी ग्रन्थियों से होता है तथा सभी ग्रन्थियों पर यह ग्रन्थि अपना नियंत्रण रखती है। इस ग्रन्थि के अधिक क्रियाशील रहने से व्यक्ति का शारीरिक और बौद्धिक विकास प्रभावित होता है। इस ग्रन्थि से निकलने वाले हारमोन से शरीर में रासायनिक आधुनिक योग्यता (Chemical Equilibrium) पैदा करता है। इस ग्रन्थि के आवश्यकता से अधिक क्रियाशील होने पर व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक मोटा हो जाता है। हड्डियों और माँसपेशियों में वृद्धि बहुत ही तीव्र ग्रति से होती है तथा वह अधिक आक्रामक हो जाता है। लेकिन इस ग्रन्थि के कम क्रियाशील होने पर व्यक्ति का शारीरिक विकास रूक जाता है तथा उसके व्यक्तित्त्व का आकर्षण कम हो जाता है।

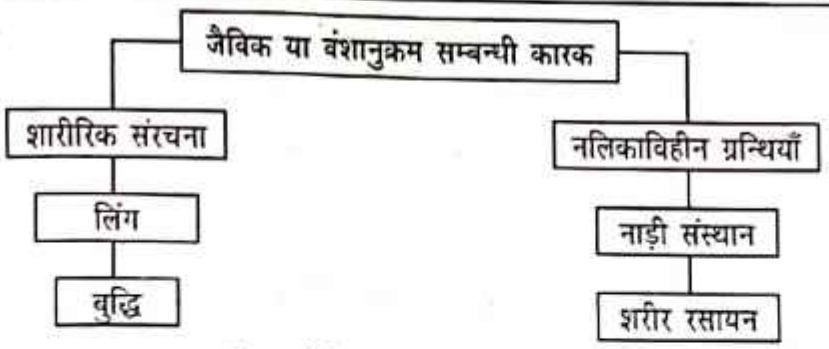
इस ग्रन्थि के दो भाग होते हैं—अगला और पिछला भाग (Anterior and Posterior Parts) । अगला भाग हड्डियों के विकास में योगदान करता है। इस भाग में छः प्रकार के हारमोन पैदा होते हैं। इस हारमोन की कमी में शरीर का विकास उचित प्रकार से नहीं हो पाता। लेकिन इसकी अधिक मात्रा भी हानिकारक होती है। इससे विभिन्न भागों की वृद्धि का अनुपात बिगड़ जाता है तथा मनुष्य का शारीरिक सौन्दर्य कुरूपता में बदल जाता है। इस अगले भाग से उत्पन्न छः हारमोन थाईरायड ग्रन्थियों, उपवृक्क ग्रन्थियों (Adrenal Glands) तथा यौन ग्रन्थियों (Sex Glands) के कार्य में सहयोग देते हैं।

इसी ग्रन्थि के पिछले भाग (Posterior Part or Lobe) से पिच्युट्रीन (Pituitarine) नामक हारमोन पैदा होता है, जो मानव शरीर की जलधारण शक्ति और रक्त-चाप को नियंत्रित करता है। इस हारमोन की कमी के कारण जल्दी जल्दी पेशाव करने का रोग हो जाता है।

(v) नाड़ी संस्थान (Nervous System)—मानव शरीर में नाड़ी-संस्थान बहुत ही संवेदनशील और कोमल प्रणाली है। इसके सुव्यवस्थित रूप से विकसित होने से सभी मानसिक और शारीरिक क्रियाएँ सुचारु रूप से होने लगती हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व आकर्षक एवं प्रशंसनीय बनता है। लेकिन नाड़ी संस्थान के विकास के अभाव में व्यक्ति का व्यक्तित्त्व संतुलित नहीं रह पाता। नाड़ी संस्थान के माध्यम से ही हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों के विकास का पता चलता है। हर प्रकार की संवेदना (Sensation) उन ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही हम तक पहुँचती है। जैसे गन्ध का आना, स्वाद महसूस होना, आवाज़ को सुनना। कुछ सीमा तक हमारी अधिगम प्रक्रिया भी नाड़ी संस्थान द्वारा ही नियंत्रित होती है, क्योंकि बौद्धिक विकास के लिये इस नाड़ी संस्थान का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। इस नाड़ी संस्थान में किसी प्रकार की बाधा को यह शरीर और मस्तिष्क सहन नहीं करते। नाड़ी संस्थान हमारे संवेगों को तथा शारीरिक क्रियाओं को भी नियंत्रित करता है।

(vi) शरीर रसायन (Body Chemistry)—हमारे शरीर में कई रसायन भी होते हैं जो व्यक्तित्त्व के विकास के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। शरीर में जो भी प्रणाली कार्य कर रही है, शरीर को जो भी शक्ति मिल रही है वह शरीर में चल रही रासायनिक प्रक्रिया का ही परिणाम है। उदाहरणार्थ, शर्करा को ग्लूकोज़ में परिवर्तित करना, भोजन को पचाना, साँस क्रिया द्वारा ऑक्सीजन को अन्दर लेकर जाना तथा कार्बनडाइक्साईड को बाहर निकालना आदि। इन क्रियाओं द्वारा हमारा व्यवहार और व्यक्तित्त्व प्रभावित होते हैं। इन रसायनों में ज़रा सा भी असंतुलन व्यक्तित्त्व को अत्यधिक प्रभावित कर देता है। उदाहरणार्थ, व्यक्ति में स्नायुद्रव्य (Nervous Fluid) के अधिक मात्रा में पैदा होने से व्यक्ति में घबराहट होने लगती है तथा शर्करा (Sugar) के अधिक मात्रा में होने से व्यक्ति का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

Scanned with OKEN Scanner



चित्र : जैविक या वंशानुक्रम सम्बन्ध

वातावरण सम्बन्धी कारक *(Environmental Factors)*

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार हमारे कुछ व्यवहार जन्मजात होते हैं तथा कुछ व्यवहारों को वातावरण से अर्जित किया जाता है। अतः वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्त्व पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। वैसे भी जन्म से ही व्यक्ति एक निश्चित वातावरण में रहता है। जिसको जैसा वातावरण मिलेगा, उसकी वैसी ही विशेषताएँ विकसित होंगी। वातावरण भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है, जैसे–

(i) सामाजिक वातावरण (Social Environment)–सामाजिक वातावरण का बालक के व्यक्तित्त्व पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। डलर्ड के अनुसार, **"मनुष्य का व्यक्तित्त्व समाज में वातावरण से गुंथा हुआ होता है।" (Personality is shaped by and interwoven with the social environment.)**

लॉरेंस के अनुसार, **"संस्कृति वह आधार भूमि है, जिससे व्यक्तित्त्व विकसित होता है।' (Culture is the ground from which personality emerges.)**

हम सामाजिक वातावरण में रहकर ही वहाँ की माया, रीति-रिवाज़, खान-पान की विधि, व्यवहार की विधि आदि अर्जित करते हैं। इस प्रकार, वास्तव में समाज ही व्यक्तित्त्व का निर्माण करता है। **गैरेट (Garrett)** के अनुसार **'जन्म के समय ही बच्चे का व्यक्तित्त्व उस समाज के द्वारा जिस में वह रहता है, निर्मित और परिवर्तित किया जाता है।'**

(ii) सांस्कृतिक वातावरण (Cultural Environment)–मनुष्य के व्यक्तित्त्व के विकास में उसकी सभ्यता तथा रहन-सहन के ढंग का भी विशेष योगदान देता है। व्यक्तित्त्व पर सभ्यता की अमिट छाप रहती है। वैसे भी व्यक्तित्त्व को संस्कृति का दर्पण (Mirror of Culture) कहा गया है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी मान्यताएँ, रीति-रिवाज़, रहन-सहन की विधियाँ, धार्मिक विश्वास इत्यादि शामिल होते हैं। अतः जिस संस्कृति में व्यक्ति रहता है, उसी के अनुसार उसके व्यक्तित्त्व का विकास होगा।

(iii) भौगोलिक या भौतिक वातावरण (Geographical or Physical Environment)–व्यक्तित्त्व के विकास में भौगोलिक अथवा भौतिक वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। जिस स्थान की जलवायु ठंडी होती है, वहाँ के लोग गोरे, सुन्दर, स्वस्थ एवं बुद्धिमान होते हैं। लेकिन गर्म जलवायु में रहने वाले लोग काले, आलसी तथा मंद-बुद्धि होते हैं।

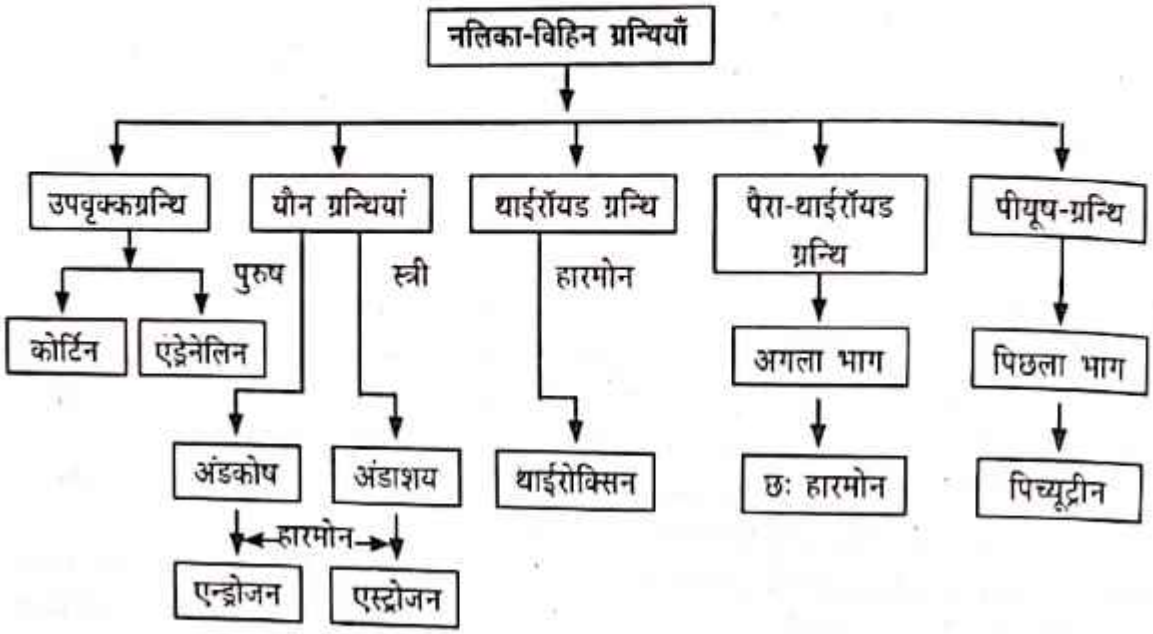
(iv) पारिवारिक वातावरण (Family Environment)–व्यक्तित्त्व को प्रभावित करने वाले कारकों में से परिवार का वातावरण भी एक शक्तिशाली कारक माना गया है। व्यक्तित्त्व के निर्माण में पारिवारिक जीवन की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। परिवार का बालक पर नियंत्रण ही उसके व्यक्तित्त्व के विकास को दिशा प्रदान करता है। यदि नियंत्रण अधिक है तो भी यह हानिकारक है और यदि कम है तो भी बालक गलत दिशा की ओर बढ़ सकता है। घर का वातावरण निम्नलिखित कारकों से मिलकर बनता है–

(a) माता-पिता का बच्चे के प्रति दृष्टिकोण (Parental Attitude)–घर में सभी बच्चों के प्रति माता-पिता का दृष्टिकोण क्या है ? उनका बच्चों के साथ व्यवहार कैसा है ? तथा माता-पिता की बच्चों के प्रति निष्पक्षता इत्यादि बच्चों के व्यक्तित्त्व को प्रभावित करती हैं।

(b) माता-पिता की योग्यताएँ (Abilities of Parents)–घर में माता-पिता की शिक्षा, उनके संवेगात्मक और सामाजिक गुण, उनकी अपनी रुचियाँ, अभिरुचियाँ तथा उनका चरित्र इत्यादि बच्चे के व्यक्तित्त्व को प्रभावित करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(c) परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्त्व और व्यवहार (Behaviour and personality of family members)—घर में रहने वाले सभी सदस्यों का व्यक्तित्त्व और उनका व्यवहार विकसित हो रहे बच्चों को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करता है। बच्चा घर के हर सदस्य के व्यवहार को बड़ी बारीकी से देखता है तथा उसका अनुकरण करता है। कई बार घर के किसी सदस्य को वह अपना गुरु आदर्श भी मान लेता है।



चित्र : नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ एवं हारमोन

(d) परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति (Socio-economic status of the family)—परिवार का समाज में स्थान तथा परिवार की आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी बालक के व्यक्तित्त्व पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ेगा।

(e) परिवार का आकार (Size of the family)—परिवार का आकार अर्थात् परिवार में भाई-बहनों की संख्या तथा उनका परिवार में क्रम आदि भी व्यक्तित्त्व के विकास को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। छोटे परिवारों में बच्चों की आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो जाती हैं, लेकिन बड़े परिवारों में नहीं। इसी प्रकार परिवारों में सबसे बड़े बच्चे पर अधिक ध्यान दिया जाता है या सबसे छोटे बच्चे पर।

(v) स्कूल का वातावरण (School Environment)—परिवार के पश्चात् बच्चा स्कूल में अधिकतर समय व्यतीत करता है। अतः स्कूल का प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्त्व पर पड़ना आवश्यक है। स्कूल में रहकर अनुशासन, नैतिक मूल्यों आदि से बच्चों का व्यक्तित्त्व अत्यधिक प्रभावित होता है। जो बातें बच्चे स्कूल में रहकर सीखते हैं, उन बातों को हम घर पर भी नहीं सिखा पाते। इसी प्रकार स्कूल में सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular Activities) बच्चों के व्यक्तित्त्व के विकास में विशेष योगदान करती हैं। अतः जो स्कूल बच्चों को अच्छा वातावरण प्रदान करते हैं वहाँ पर उनका व्यक्तित्त्व अधिक विकसित होता है। स्कूल में बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति, मनोरंजन के साधन, खेलों की व्यवस्था, उच्च आदर्श, नाटक, पुस्तकालय आदि सभी कुछ बच्चे के व्यक्तित्त्व के विकास के लिये उपलब्ध होता है।

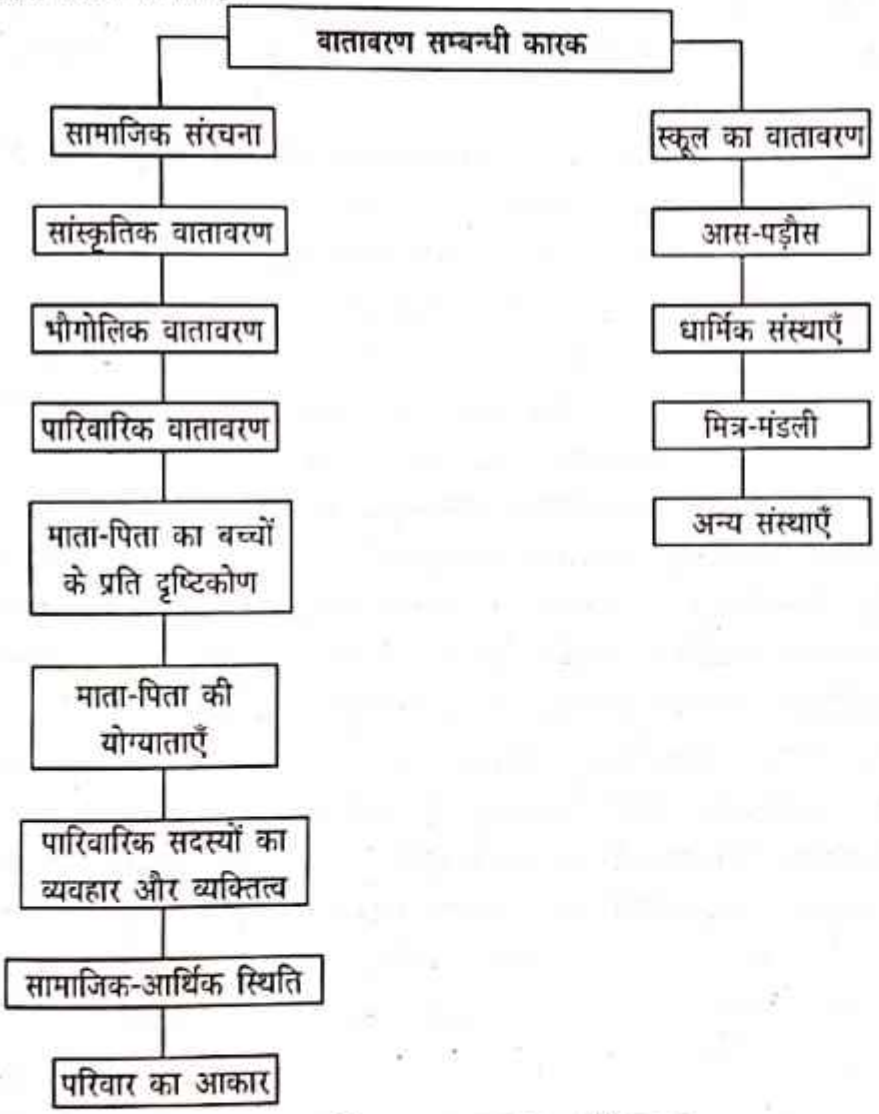
(vi) आस-पड़ौस (Neighbourhood)—परिवार तथा स्कूल की भाँति व्यक्तित्त्व आस-पड़ौस के प्रभाव से भी अछूता नहीं रह सकता। बच्चे के आस-पड़ौस में रहने वाले लोग सुशिक्षित हैं तथा सभ्य हैं तो उस पड़ौस में पनप रहे अन्य बच्चों का व्यक्तित्त्व अवश्य प्रभावित होगा। यह माना जाता है कि बच्चों में बुरी आदतों का विकास आस-पड़ौस से ही होता है। यही कारण है कि एक अच्छे पड़ौसी का होना अति आवश्यक है।

Scanned with OKEN Scanner

(vii) धार्मिक संस्थाएँ (Religious Institutions)—धार्मिक संस्थाओं का प्रभाव भी व्यक्तित्त्व पर पड़ता है। जैसे मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च इत्यादि। इन संस्थाओं द्वारा चलाई जाने वाली धार्मिक गतिविधियाँ बच्चों के व्यक्तित्त्व को प्रभावित करती हैं तथा उनकी विचारधारा को दिशा प्रदान करती हैं।

(viii) मित्र मंडली (Friends)—बच्चा काफी समय अपनी मित्र मंडली में रहकर व्यतीत करता है, अतः मित्र मंडली के सदस्यों का व्यक्तित्त्व भी बालक के व्यक्तित्त्व के विकास को प्रभावित करता है। अर्थात् उनकी आदतें, शिष्टाचार, रुचियाँ, भाषा, संवेगों का प्रदर्शन आदि बच्चों के व्यक्तित्त्व को दिशा प्रदान करते हैं। मित्रमंडली में रहकर ही उनमें आत्म-विश्वास, मित्रता तथा नेतृत्व की भावना का विकास होता है।

(ix) अन्य संस्थाएँ (Other Agencies)—उपरोक्त संस्थाओं एवं कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थाएँ भी बालक के व्यक्तित्त्व को प्रभावित करती हैं, जैसे कई प्रकार की सामाजिक संस्थाएँ, क्लब, संप्रेषण के साधन, जैसे रेडियो, टेलीविज़न, फिल्म इत्यादि, साहित्यिक एवं ललित कलाओं से जुड़ी संस्थाएँ, प्रचार के साधन, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें तथा विविध प्रकार का साहित्य इत्यादि। आज के युग में टेलीविज़न का प्रभाव नई पीढ़ी पर स्पष्ट रूप से देखने को मिल रहा है। इसी प्रकार वेश-भूषा का भी व्यक्तित्त्व के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। कीमती वेशभूषा की अपेक्षा उचित वेशभूषा का व्यक्तित्त्व पर अधिक प्रभाव पड़ता है। उचित तथा प्रशंसनीय वेशभूषा से बच्चे में आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान की भावना विकसित होती है। यदि वेशभूषा उचित नहीं होगी तो बच्चे ही बच्चों का मज़ाक उड़ायेंगे तथा उनमें हीन-भावना पनपने लगती है।



चित्र : बातावरण सम्बन्धी कारक

Scanned with OKEN Scanner

मनोवैज्ञानिक कारक
(Psychological Factors)

व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को प्रभावित करने में मनोवैज्ञानिक कारक भी पीछे नहीं रहते। आज के वैज्ञानिक युग में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारक निम्नलिखित हैं–

(i) इच्छा शक्ति (Will Power) –इच्छा शक्ति एक अच्छे व्यक्तित्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। संवेगात्मक संतुलन के लिये सुदृढ़ इच्छा शक्ति का होना बहुत आवश्यक होता है। दृढ़ इच्छा शक्ति से अभिप्राय है कि जब व्यक्ति कुछ भी करने की ठान लेते हैं, उसे करके या प्राप्त करके ही छोड़ते हैं। दुर्बल इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति सदा असमंजस की स्थिति में ही रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों में आत्म-विश्वास का भी अभाव रहता है। अतः सुदृढ़ इच्छा-शक्ति का होना एक संतुलित व्यक्तित्त्व के लिये आवश्यक है।

(ii) आकांक्षा स्तर एवं उपलब्धि अभिप्रेणा (Aspiration Level and Achievement Motivation) –व्यक्ति की आकांक्षाओं का स्तर और उसकी उपलब्धि अभिप्रेरणा व्यक्तित्त्व के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उपलब्धि के लिये अर्थात् कुछ प्राप्त करने के लिये अभिप्रेरित रहना एक अच्छे व्यक्तित्त्व की ओर संकेत करता है। यदि उपलब्धि अभिप्रेरणा का स्तर बहुत निम्न है तो वह व्यक्ति निकम्मा, सुस्त तथा आलसी व्यक्तियों के वर्ग में आता है। दूसरी ओर, जिनमें आकांक्षा का स्तर ऊँचा होगा, उनमें उपलब्धि-अभिप्रेरणा का स्तर भी अधिक रहेगा। ऐसे व्यक्ति सदा कर्म पर अधिक विश्वास करते हैं, न कि भाग्य पर।

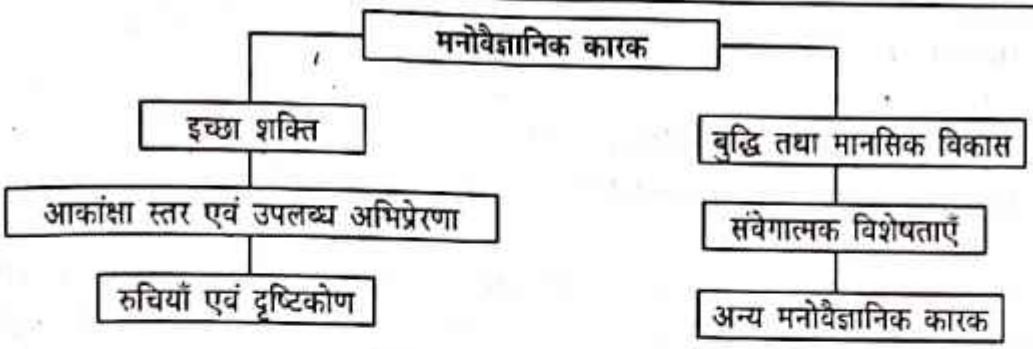
(iii) रुचियाँ एवं दृष्टिकोण (Interests and Attitudes)–व्यक्ति की रुचियाँ और दृष्टिकोण उसके व्यवहार करने के तरीकों तथा व्यक्तित्त्व पर बहुत प्रभाव डालते हैं। हमारे हर कार्य तथा व्यवहार में रुचि का कुछ न कुछ अंश अवश्य होता है। जिन चीज़ों के प्रति हमारी सकारात्मक दृष्टिकोण होता है उनमें हमारी रुचि होती है तथा जिनके प्रति हमारा नकारात्मक दृष्टिकोण होता है उनमें हमारी रुचि नहीं होती। अतः हमारा व्यवहार इन दृष्टिकोणों और रुचियों पर निर्भर करता है।

(iv) बुद्धि तथा मानसिक विकास (Intelligence and Mental Development)–व्यक्तित्त्व के निर्धारण में उसकी बुद्धि और मानसिक विकास का बहुत अधिक हाथ होता है। उसका व्यवहार उसकी मानसिक क्षमताओं पर निर्भर करता है तथा व्यक्तित्त्व उसके व्यवहार से जुड़ा रहता है। व्यक्ति का सम्पूर्ण समायोजन, अधिगम प्रक्रिया (Learning Process) तथा सीखने में सफलता, ज्ञान को अर्जित करना तथा कौशल सीखने, निर्णय लेने की क्षमता, समस्याओं को हल करने की योग्यता, व्यक्तियों और परिस्थितियों से तालमेल रखने का कौशल आदि व्यक्ति के बौद्धिक विकास पर निर्भर करता है। व्यक्ति का व्यवहार वही बनता है, जो उसकी बुद्धि और मानसिक क्षमता द्वारा बनाया जाता है।

(v) संवेगात्मक विशेषताएँ (Emotional Characteristics)–व्यक्ति की संवेगात्मक विशेषताएँ तथा उसका स्वभाव उसके व्यक्तित्त्व को दिशा प्रदान करते हैं। सकारात्मक संवेग तथा नकारात्मक संवेगों का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्त्व पर पड़ता है। एक क्रोधी व्यक्ति का स्वभाव एक शान्त व्यक्ति से भिन्न होगा। इसी प्रकार सबके हित की बात सोचने वाले व्यक्ति का व्यवहार और व्यक्तित्त्व भी अलग प्रकार का ही होगा। संवेगात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति का व्यक्तित्त्व बहुत ही संतुलित होता है।

(vi) अन्य मनोवैज्ञानिक कारक (Other Psychological Factors)–उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक कारक भी हैं जो व्यक्तित्त्व को प्रभावित करते हैं, जैसे अर्जित रुचियाँ (Acquired Interests), चरित्र (Character), तर्क, चिंतन, कल्पना सम्बन्धी क्षमताएँ, समायोजन सम्बन्धी योग्यताएँ इत्यादि।

Scanned with OKEN Scanner



चित्र : मनोवैज्ञानिक कारक

◆◆◆

2. व्यक्तित्त्व के प्रकारों की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।
(Describe the different types of Personality in detail.)

अथवा

व्यक्तित्त्व के प्रकारों की चर्चा कीजिए।
(Discuss various kinds of personality.)

उत्तर–विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के गुणों के आधार पर उसके व्यक्तित्त्व का वर्गीकरण किया है, जो निम्नलिखित हैं–

1. जंग द्वारा वर्गीकरण (Classification by Jung)–जंग ने लोगों को तीन वर्गों में बांटा है–

(i) बहिर्मुखी (Extroverts)–ये लोग सामाजिक, मिलनसार, संतुष्ट, प्रसन्नचित्त, चिन्ताओं से मुक्त होते हैं। वे हमेशा बाहरी विश्व की ओर उन्मुख रहते हैं। ये व्यक्ति सर्वदा दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं। ये व्यावहारिक जीवन में अत्यधिक निपुण होते हैं। वे सभाओं और सामाजिक कार्यों में रुचि लेते हैं। बहिर्मुखी व्यक्ति आशावादी तथा अवसरवादी स्वभाव के होते हैं। विचार की अपेक्षा कार्य को अधिक महत्त्व देते हैं। इनमें लचीलापन और समायोजन की योग्यता होती है। ये अपनी चाल-ढाल, योग्यता तथा वेशभूषा से दूसरों पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे व्यक्ति निपुण खिलाड़ी होते हैं।

(ii) अन्तर्मुखी (Introvert)–यह लोग बहिर्मुखी व्यक्तित्त्व वाले लोगों से विपरीत होते हैं। ये अपेक्षाशील, आत्मकेन्द्रित तथा असामाजिक होते हैं। ये हंसी मजाक नहीं पसंद करते हैं। कार्य के प्रति कर्म को अधिक महत्त्व देते हैं। ये केवल अपने आंतरिक संसार में ही व्यस्त रहते हैं। ये दूसरों को खुश रखने का प्रयत्न नहीं करते। ये लोग आध्यात्मिक विषयों को पढ़ने में अधिक रुचि लेते हैं। इन लोगों की जिज्ञासा प्रवृत्ति (Curiosity Instinct) अत्यधिक प्रबल होती है। ये झक्की तथा हठी स्वभाव के होते हैं। ये अपने पारिवारिक जीवन से सन्तुष्ट नहीं रहते हैं। दिन में सपने देखना इनकी मुख्य विशेषता है। वे चिन्तन और लेखन में रुचि रखते हैं।

(ii) मध्यमुखी (Ambivert)–मध्यमुखी वे व्यक्ति होते हैं जो न पूर्ण रूप से अन्तर्मुखी होते हैं और न बहिर्मुखी। ऐसे व्यक्तियों में कुछ गुण अन्तर्मुखी वाले तथा कुछ गुण बहिर्मुखी व्यक्तित्त्व वाले होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन दोनों का मिश्रण होता है। युग ने ऊपर वाले दोनों के बीच में आने वाले व्यक्तियों की समाज में अधिकता पाई और उनको मध्यमुखी की संज्ञा दी।

2. शैल्डन का वर्गीकरण (Sheldon's Classification)–शारीरिक आकार के आधार पर शैल्डन ने व्यक्तियों को तीन भगों में बांटा है, जो निम्न प्रकार से है–

(i) गोलाकार (Endomorphic)–इन लोगों का शरीर मोटा, भारी तथा गोलाकार होता है। इनका पेट बड़ा होता है और पाचनक्रिया कम विकसित होती है।

Scanned with OKEN Scanner

(ii) **आयताकार (Mesomorphic)**–इन श्रेणी के लोगों की हड्डियां तथा मांसपेशियां मजबूत तथा काफी शक्तिशाली होती हैं। इन व्यक्तियों का शरीर आयताकार होता है। ये लम्बे-चौड़े, डील-डौल तथा अच्छे स्वास्थ्य वाले होते हैं।

(iii) **लम्बाकार (Ectomorphic)**–इनका कद तथा हड्डियां लम्बी होती हैं। ये कोमल, कमजोर शरीर के मालिक होते हैं।

3. क्रैशमर का वर्गीकरण (Classification of Kretschmer)–प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **क्रैशमर** ने अपनी पुस्तक 'Physique and Character' में शारीरिक रचना के आधार पर लोगों को निम्नलिखित चार भागों में बांटा है–

(i) **पिकनिक (Pyknic)**–ये लोग छोटे-मोटे आराम प्रिय, सामाजिक उन्माद, विषादयुक्त होते हैं। ये स्वभाव से प्रसन्नचित्त एवं मिलनसार होते हैं।

(ii) **ऐथेलिटिक (Athletic)**–ये लोग सुडौल, तन्दुरुस्त, व्यवहार में कुशल, सामाजिक व सक्रिय होते हैं। ये स्वभाव के व्यवहार कुशल और क्रियाशील होते हैं।

(iii) **ऐस्थेलेटिक (Aesthletic)**–इन लोगों का शरीर पतला-दुबला और कंधे छोटे होते हैं। इनका स्वभाव आत्मकेन्द्रित, भावुक, स्वप्न होता है। ये एकान्तप्रिय होते हैं।

(iv) **डिस्प्लैस्टिक (Displastic)**–जो लोग ऊपरी तीनों में से किसी में से भी नहीं आते या जिनमें मिले-जुले गुण होते हैं। उसको हम डिस्प्लैस्टिक (मिश्रित) में रख सकते हैं।

4. आइजेंक का वर्गीकरण (Eysenck Classification)–**आइजेंक** ने लोगों को चार वर्गों में बांटा जो निम्नलिखित हैं–

(i) **बहिर्मुखी (Extrovert)**–ये लोग सामाजिक, मिलनसार, संतुष्ट, प्रसन्नचित्त व चिन्ताओं से मुक्त होते हैं।

(ii) **अन्तर्मुखी (Introvert)**–ये व्यक्ति लज्जाशील, एकान्तप्रिय, निराशावादी तथा असामाजिक होते हैं। ये चिन्तन और लेखन में रुचि रखते हैं।

(iii) **साइकोटिसिज्म (Psychoticism)**–इस वर्ग में आने वाले व्यक्ति समाज विरोधी होते हैं। वे लोग दूसरों की परवाह नहीं करते।

(iv) **न्यूरोटिसिज्म (Neuroticism)**–ये लोग मानसिक रोगी होते हैं। वे अपने चारों ओर के वातावरण में कठिनाइयों का अनुभव करते हैं। इस बीमारी के निम्नलिखित लक्ष्य हैं अथवा इन लोगों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

(a) चिन्ता और भय
(b) आत्मकेन्द्रित
(c) अन्तर्दृष्टि का अभाव
(d) असन्तोष और प्रसन्नता
(e) तनाव और चिड़चिड़ापन
(f) असफलता
(g) स्वयं की पहचान का अभाव

Eysenck ने Extrovert एवं Neuroticism को मापने के लिए Personality Inverntory का किया, जिसे Eysenck Personality Inventory के नाम से जाना जाता है।

◆◆◆

3. व्यक्तित्व निर्धारण की कौन-कौन सी विभिन्न विधियाँ हैं? इनमें से किन्हीं दो विधियों की सविस्तार विवेचना कीजिए।
(What are the different methods of assessing personality? Discuss any two of them in detail.)

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

व्यक्तित्त्व मापन की प्रक्षेपी विधियों और व्यक्तित्त्व प्रश्नावलियों में भेद बतलाइए। व्यक्तित्त्व मूल्यांकन की किसी एक प्रक्षेप विधि की विवेचना कीजिए।
(Distinguish between Projective Techniques and Personality Questionnaires as measure of personaility. Discuss any one projective technique for the assessment of personality.)

अथवा

व्यक्तित्त्व की परिभाषा दीजिए। उसके मूल्यांकन की विभिन्न विधियाँ बताइए और उनमें से किसी एक की विस्तृत विवेचना कीजिए।
(Define personality. State different methods of the assessment and discuss any one of them in detail.)

उत्तर–हम व्यक्तित्त्व की परिभाषा इसी इकाई की प्रश्न संख्या 1 में दे चुके हैं।

क्या व्यक्तित्त्व का माप हो सकता है?
(Can Personality be Measured?)

व्यक्तित्त्व का ठीक माप सम्भव नहीं, क्योंकि मानवीय व्यवहार बड़ा जटिल है। कपड़े को हम मीटर से, दूध को लीटर से माप सकते हैं, मगर व्यक्तित्त्व का हमारे पास कोई मापक नहीं है। किसी वस्तु का मापक तैयार करने के लिए शून्य अथवा (Starting Point) होना अति आवश्यक है। मगर किसी भी मनुष्य का व्यक्तित्त्व 'शून्य' नहीं होता अर्थात् कोई भी बच्चा शून्य व्यक्तित्त्व लेकर पैदा नहीं होता। दूसरा व्यक्तित्त्व के साथ हम विकास शब्द का प्रयोग करते हैं और विकास को मापा नहीं जा सकता, महसूस किया जा सकता है। व्यक्तित्त्व गतिशील होता है स्थिर नहीं, इसलिए व्यक्तित्त्व में आए परिवर्तनों का निरीक्षण कर सकते हैं मापन नहीं। व्यक्तित्त्व को कपड़े, दूध तथा तेल की तरह नहीं मापा जा सकता। व्यक्तित्त्व का परीक्षणों के आधार पर मूल्यांकन (अनुमान) लगाया जा सकता है। अतः व्यक्तित्त्व के विकास का मूल्यांकन ही सम्भव है, क्योंकि इसे मापने के लिए कोई इकाई (Unit) नहीं है। व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करने के लिए तीन प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है, जिनका वर्णन निम्नलिखित है–

(A) व्यक्तिनिष्ठ विधि (Subjective Method) (B) वस्तुनिष्ठ विधि (Objective Method)
(C) प्रक्षेपी विधि (Projective Method)

(A) व्यक्तिनिष्ठ विधि
(Subjective Method)

ये विधि अन्तर्दर्शन सिद्धान्त के ऊपर आधारित है अर्थात् व्यक्ति अपने स्वयं के बारे में सूचनाएँ प्रदान करता है। व्यक्ति द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर उसके व्यक्तित्त्व सम्बन्धी निष्कर्ष निकाले जाते हैं। व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करने के लिए यह विधि बहुत ही सरल एवं उपयोगी है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रविधियों (Techniques) को प्रयोग में लाया जाता है–

1. आत्मकथा (Autobiography)–व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने पर लिखी गई कहानी को आत्मकथा कहते हैं। आत्मकथा विधि मनोवैज्ञानिकों द्वारा बहुत प्रयोग में लाई जाती है। व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न लक्ष्यों, प्राप्तियों, इच्छाओं, अनुभवों, समस्याओं, रुचियों, अभिरुचियों एवं अनुभवों आदि के बारे में स्वयं लिखता है। इसमें मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक अपने ढंग और भावों के अनुसार अपने बारे में लिखता है। आत्मकथा में व्यक्ति के भूतकाल और वर्तमान के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इसके आधार पर उस व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन किया जाता है। आत्मकथाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं। एक तो नियन्त्रित (Closed end) और दूसरी स्वतन्त्र (Open end)। नियन्त्रित में सलाहकार जो जानना चाहता है उसकी Outline बनाकर देता है और बालक उसको पूर्ण करता है। दूसरी प्रकार में बालक जो चाहता है वह लिखता रहता है।

Scanned with OKEN Scanner

गुण (Merits)–

(i) इस विधि में समय और धन की बचत होती है।

(ii) इस विधि द्वारा बालक के बारे में वे सूचनाएँ मिलती हैं जो और किसी तरह से नहीं मिल सकतीं।

(iii) अध्यापक को अधिक मेहनत नहीं करनी पड़ती।

दोष (Demerits)–

(i) आत्मकथाएँ झूठ और गप्पों से भरपूर होती हैं।

(ii) बहुत-सी बातें इसमें बेकार और महत्त्वहीन होती हैं।

(iii) व्यक्ति अपने गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर लिखता है।

(iv) मनुष्य कभी अपनी संवेगात्मक स्थिति नहीं बताना चाहता।

(v) अगर मनुष्य को भाषा का ज्ञान नहीं है तो वह अपने विचार लिखने में असफल रहता है।

अतः इस विधि द्वारा व्यक्ति के बारे में वास्तविक तथ्य प्राप्त नहीं किए जा सकते।

2. व्यक्ति इतिहास (Case History)–इस विधि द्वारा व्यक्ति के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है। इस विधि का प्रयोग प्रायः पिछड़े या अपराधी बालकों के व्यक्तित्त्व के अध्ययन हेतु किया जाता है। इस विधि में व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का पूर्ण इतिहास होता है। इसमें व्यक्ति के परिवार, सामाजिक सम्बन्धों, रुचियों, दृष्टिकोणों, शारीरिक तथा मानसिक योग्यताओं के बारे में तथ्यों को इकट्ठा किया जाता है। इन सभी का विश्लेषण करने के बाद किसी समस्या की गहराई तक जाया जाता है। मानसिक और शारीरिक रोगों की चिकित्सा में यह विधि अधिक उपयोगी है, परन्तु इसमें निम्न दोष भी हैं–

(i) इस विधि का दोष है कि व्यक्ति और माता-पिता वास्तविक बातों को छिपा लेते हैं।

(ii) समय और मेहनत अधिक लगती है।

(iii) इस विधि में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

(iv) इस विधि द्वारा एकत्रित की गई सूचनाएँ झूठी होती हैं।

3. साक्षात्कार विधि (Interview Method)–दो व्यक्तियों के आमने-सामने होने वाली बातचीत को साक्षात्कार कहते हैं। इनमें मानवकर्ता एवं व्यक्ति आमने-सामने बैठकर, पारस्परिक वार्तालाप द्वारा व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं सम्बन्धी प्रश्न पूछता है और व्यक्ति के उत्तरों के आधार पर ही उसके व्यक्तित्त्व का अनुमान लगाया जाता है। साक्षात्कार विधि को स्वरूप के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है–पहला संरचनात्मक साक्षात्कार जिसमें निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखकर एक अग्रिम रूप से प्रश्नों की कोई सूची तैयार नहीं की जाती। इसमें स्वतन्त्र रूप से पारस्परिक वार्तालाप ही होता है। आमने-सामने होने वाली बातचीत से उस व्यक्ति की रुचियों, इच्छाओं तथा आशाओं का पता चलता है। परन्तु इस विधि में भी निम्नलिखित दोष है–

(i) इस विधि में समय अधिक लगता है, क्योंकि एक समय में एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार होता है।

(ii) इस विधि में भी व्यक्ति कई प्रश्नों का उत्तर ठीक प्रकार से नहीं देते कुछ बातें मन में ही छुपा लेते हैं।

गुण (Merits)–

(i) अनपढ़ लोगों के साथ भी इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

(ii) साक्षात्कार द्वारा हम मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्त्व के बारे में जान सकते हैं।

(iii) यह अधिक वैध है।

4. प्रश्नावली विधि (Questionnaire Method)–इस विधि में प्रश्नों की एक सूची तैयार की जाती है। इस सूची को व्यक्तियों में बांट दिया जाता है और उन प्रश्नों के उत्तर मांगे जाते हैं। व्यक्ति ने उत्तर प्रायः 'हाँ' या 'नहीं' या 'कभी-कभी' पर चिह्न अंकित करने देने होते हैं। उन उत्तरों का विश्लेषण

Scanned with OKEN Scanner

करने के बाद व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रकार की प्रश्नावली को बन्ध प्रश्नावली कहते हैं। इस विधि द्वारा कम समय में अधिक व्यक्तियों के व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन किया जा सकता है। इस विधि द्वारा तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। परन्तु इसमें भी निम्न दोष हैं–

(i) कई बार व्यक्ति जानबूझकर कुछ प्रश्नों के उत्तर नहीं देता या गलत देता है।

(ii) कई बार व्यक्ति बिना सोचे-समझे प्रश्नों के उत्तर देता है।

(iii) कई बार व्यक्ति प्रश्नों को समझ नहीं पाता, जिसके कारण वह ठीक उत्तर नहीं दे पाता।

(iv) इस विधि में सभी प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर पाना बहुत कठिन कार्य है।

(B) वस्तुनिष्ठ विधि
(Objective Method)

वस्तुनिष्ठ विधि के अन्तर्गत यह देखा जाता है कि व्यक्ति जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में किस प्रकार का व्यवहार करता है। इस विधि के अन्तर्गत निम्न प्रविधियाँ सम्मिलित हैं–

1. निरीक्षण विधि (Observation Method)–इस विधि में निरीक्षण द्वारा व्यक्तित्त्व का अनुमान किया जाता है। छोटे बच्चों के अध्ययन में इस विधि का अधिक उपयोग किया जाता है, मगर थोड़े समय के निरीक्षण द्वारा व्यक्तित्त्व का अनुमान लगाना सम्भव नहीं हो सकता। यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। निरीक्षण दो प्रकार से किया जा सकता है–

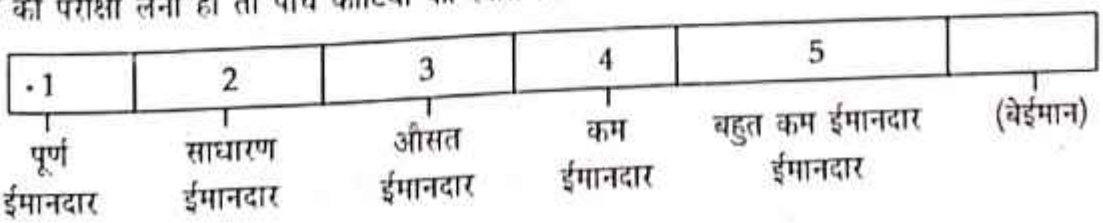
(i) **नियन्त्रित निरीक्षण (Controlled Observation)**–इसके अन्तर्गत व्यक्ति को निरीक्षण के बारे में मालूम होता है। इसलिए यह निरीक्षण का सबसे बड़ा दोष है कि व्यक्ति बनावटी व्यवहार करने लगता है, जिससे उसके व्यक्तित्त्व का सही अनुमान नहीं हो पाता।

(ii) **अनियन्त्रित निरीक्षण (Uncontrolled Observation)**–इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहार का चुपके से निरीक्षण किया जाता है और व्यक्ति को उसके निरीक्षण का बिल्कुल पता नहीं चलने दिया जाता। इसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का प्राकृतिक रूप सामने आता है।

2. परिस्थिति परीक्षण विधि (Situational Test)–इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति को किसी विशेष परिस्थिति में रखकर उसके व्यक्तित्त्व की किसी विशेषता का मूल्यांकन किया जाता है। इस परीक्षण में वास्तविक परिस्थिति पैदा की जाती है। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध विद्वान् हार्टशोर्न तथा मे (May) ने बालक की ईमानदारी की परीक्षा लेने के लिए निम्न प्रकार का परीक्षण किया–

उन्होंने परीक्षा लेने के लिए कमरे में एक डिब्बा रख दिया। इसके पश्चात् बालकों से यह कहा गया कि तुम सब कमरे में रखे हुए डिब्बे में कुछ पैसे डाल आओ। यह पैसे गरीबों को दिए जाएंगे। जब परीक्षण आरम्भ हुआ तो यह देखा गया कि कुछ बच्चे तो डिब्बे में पैसे डाल आए हैं, लेकिन कुछ बच्चे ऐसे भी थे जिन्होंने पैसे डालने की बजाए डिब्बे से और पैसे निकाल लिए। यह विधि व्यक्ति के गुणों का मूल्यांकन करने की अच्छी विधि है।

3. रेटिंग स्केल (Rating Scale)–इस विधि द्वारा व्यक्तित्त्व के विभिन्न गुणों का अनुमान लगाया जा सकता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करने के लिए उस व्यक्ति के बारे में अन्य व्यक्तियों के मत एकत्रित किए जाते हैं। जिन व्यक्तियों के मत एकत्रित किए जाते हैं, वे उस व्यक्ति के पिता, अध्यापक और आस-पास रहने वाले होते हैं। परीक्षणकर्ता बालक के व्यक्तित्त्व के जिस गुण की परीक्षा लेना चाहता है उसको तीन, पाँच या सात कोटियों में विभाजित कर लेता है और अधिक से अधिक लोगों से किसी एक भाग को चिह्नित (Mark) करने के लिए कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि बालक की ईमानदारी के गुण की परीक्षा लेनी हो तो पाँच कोटियों की स्केल निम्न प्रकार से बनेगी–



Scanned with OKEN Scanner

उपरोक्त पाँच विभागों में से जिस विभाग में अधिक वोट प्राप्त होते हैं उसी तरह का बालक यह समझा जाता है। इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि मतदाता मत देते समय पक्षपात कर सकते हैं।

4. समाजमिति विधि (Sociometric Method)–जे.एल. मोरेनो (J.L.Moreno) को समाजमिति विधि का जन्मदाता कहा जाता है। इस विधि से समूह के सदस्यों के बीच पाई जाने वाली स्वीकृति, अस्वीकृति, आकर्षण और विकर्षण का अध्ययन किया जाता है अर्थात् व्यक्ति के सामाजिक गुणों का मूल्यांकन किया जाता है। इस विधि में प्रश्नों की एक सूची तैयार की जाती है। सूची में निम्न प्रकार के प्रश्न होते हैं–

(i) आप किन दो मित्रों के साथ कक्षा में बैठना चाहोगे?

(ii) आप किन दो मित्रों के साथ खेलना पसंद करोगे?

इस प्राप्त उत्तरों के आधार पर एक आरेख तैयार किया जाता है, जिसे सोशियोग्राम (Sociogram) कहते हैं। इस सोशियोग्राम का विश्लेषण करके व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन किया जाता है।

5. व्यक्तित्त्व परिसूची (Personality Inventory)–यह विधि प्रश्नावली विधि से मिलती-जुलती है। व्यक्तित्त्व परिसूची में प्रश्न केवल व्यक्ति विशेष से ही सम्बन्धित होते हैं। मगर प्रश्नावली विधि में व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य सूचनाएँ भी प्राप्त की जाती हैं। इस विधि में भी व्यक्ति अपने दोषों और कमजोरियों को छिपा लेता है।

अतः वस्तुनिष्ठ विधि (Objective Method) भी सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

(C) प्रक्षेपी विधि
(Projective Method)

प्रक्षेपी (Projective) का अर्थ है अपनी अचेतन चाहों, विचारों, संवेगों, डरों तथा दमित इच्छाओं को किसी बाह्य वस्तु के साथ जोड़ना। प्रक्षेपी विधि द्वारा पूर्ण व्यक्तित्त्व को समझने का प्रयत्न किया जाता है, न कि किसी एक पहलू को। दूसरी विधियों द्वारा व्यक्ति के चेतन मन (Conscious Mind) का ही अध्ययन होता है। मगर इस विधि द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन (Unconscious Mind) का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इन विधियों में प्रयुक्त होने वाली सामग्री, रचनाहीन (Unstructured) होती है। इन विधियों द्वारा मानसिक रोगियों का अध्ययन किया जाता है। व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करने की सभी विधियों में से यह विधि सबसे अधिक विश्वसनीय तथा वैध है। प्रमुख रूप से प्रयोग की जाने वाली प्रक्षेपी प्रविधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. रोर्शा का स्याही का धब्बा परीक्षण (The Rorschah's Ink Blot Test)
2. विषय-सम्बन्ध अन्तर्बोध परीक्षण (Thematic Apperception Test or TAT)
3. बालकों का अन्तर्बोध परीक्षण (Children Apperception Test or CAT)
4. वाक्यपूर्ति परीक्षण (Sentence Completion Test)
5. शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association Test)
6. मुक्त संसर्ग परीक्षण (Free Association Test)
7. हस्तलेख की विशेषताएँ (Features of Handwriting)
8. कहानी कहने और कहानी पूरी करने की परीक्षा (Story Telling and Story Completion Test)

प्रक्षेपी विधियों के गुण (Merits of Projective Techniques)–

1. प्रक्षेपी विधियों द्वारा व्यक्ति के अचेतन व्यवहार का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जिसका स्वयं व्यक्ति को भी ज्ञान नहीं होता।
2. ये व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करती हैं न कि उसके अंशों का।
3. इनका प्रयोग चिकित्सा के क्षेत्र में अधिक होता है।
4. ये विधियाँ रोचक हैं।
5. ये विधियाँ अधिक विश्वसनीय और वैध हैं।
6. ये विधियाँ पहले बताई गई दोनों विधियों के दोषों से मुक्त हैं।

Scanned with OKEN Scanner

प्रक्षेपी विधियों के दोष (Demerits of Projective Techniques)–

1. इन विधियों द्वारा उत्तर प्राप्त करने में अधिक समय लगता है।
2. इन विधियों द्वारा व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करने के लिए विशेषज्ञों (Experts) की आवश्यकता होती है, जो प्रायः नहीं मिलते।
3. इनको विद्यालय की परिस्थितियों में प्रयुक्त करना कठिन कार्य है।
4. प्रामाणिक परीक्षाएँ (Standardised Test) मंहगी होती हैं।
5. प्रक्षेपी विधियों में व्यक्ति-निष्ठता (Subjectivity) होती है।
6. इनके द्वारा गलत निष्कर्ष निकालने का भय बना रहता है।

Imp (as short) ◆◆◆

4. व्यक्तित्त्व के मूल्यांकन की विभिन्न प्रक्षेपण विधियों का परिचय दीजिए। रोर्शा इंक ब्लॉट टैस्ट या विमेटिक एपरसैप्शन टैस्ट का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।
(What are the different projective methods of assessing personality? Discuss in detail either on Rorschah's Ink Blot Test or Thematic Apperception Test.)

अथवा

रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण का विस्तार से वर्णन कीजिए।
(Discuss in detail the Rorscha's Ink-Blot Test of Personality assessment.

अथवा

व्यक्तित्त्व की प्रक्षेपी विधियों की विवेचना कीजिए। इसके गुण और दोषों का वर्णन कीजिए।
(Explain projective methods of personality assessment. Discuss its merits and limitations.)

अथवा

व्यक्तित्व से आपका क्या अभिप्राय है? व्यक्तित्व को जाँचने के लिए रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण की व्याख्या कीजिए।
(What do you understand by Personality? Explain the Rorschach Ink Blot test for personality assessment.)

अथवा

व्यक्तित्व का क्या अर्थ है? इसे मापने की प्रक्षेपण विधियों का वर्णन कीजिए।
(What is the meaning of Personality? Explain projective method of its assessment.)

उत्तर–प्रक्षेपण विधि का अर्थ (Meaning of Projection Method)–प्रक्षेपण का प्रयोग सर्वप्रथम मनोविश्लेषणवादी **फ्रायड** ने किया था। प्रक्षेपण अचेतन मस्तिष्क की वह सुरक्षा प्रक्रिया है। जिसके द्वारा कोई वस्तु अपने अनुभवों, विचारों, आकांक्षाओं एवं संवेगों को दूसरे व्यक्ति में परिवर्तित कर देता है। दूसरे शब्दों में, प्रक्षेपण का अर्थ है अपने विचारों, भावों एवं दमित इच्छाओं को अन्य व्यक्तियों या पदार्थों के माध्यम से व्यक्त करना।

प्रक्षेपण विधियों द्वारा व्यक्ति की छुपी हुई एवं दमित इच्छाओं का पता लगाया जाता है, जिन्हें व्यक्ति स्वयं भी नहीं जानता। इन विधियों द्वारा व्यक्ति के अचेतन व्यवहार (मन) का अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति की आवश्यकताओं, भावनाओं, संवेग, प्रेरणा, स्थायी भाग अचेतन मन में जन्म लेते हैं। प्रक्षेपी विधियों में अचेतन मन में विभिन्न पदों को मापने के लिए व्यक्ति के सामने उद्दीपक (Stimulus) स्थिति प्रस्तुत की जाती है कि वह अपने अचेतन व्यवहार सम्बन्धी अधिकाधिक बातों को उन उद्दीपकों से जोड़ता जाए। जैसे सिनेमा का Projector प्रतिमा को पर्दे पर दर्शाता है, उसी प्रकार व्यक्ति अपनी अनुक्रियाओं द्वारा अपने व्यक्तित्त्व का प्रक्षेपण करता है। प्रक्षेपण विधियों द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का पूर्ण मूल्यांकन किया जाता

Scanned with OKEN Scanner

है, न कि किसी एक पहलू का प्रयोग होने वाली सामग्री रचनाहीन (Unstructured) होती है, इसकी कोई विशेष आकृति नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के प्रति अलग-अलग उत्तर देता है। प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक उत्तर का विश्लेषण किया जाता है और व्यक्ति के व्यक्तित्त्व की भविष्यवाणी की जाती है। व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करने की सभी विधियों में से सबसे अधिक विश्वसनीय तथा वैध विधि है। आज के समय में इन्हीं विधियों का अधिक प्रयोग किया जाता है। परन्तु प्रक्षेपी विधियों में निम्न दोष भी हैं–

(i) इन विषयों में समय अधिक लगता है।

(ii) छोटे बच्चों के लिए वह विधियाँ उपयोगी सिद्ध नहीं होतीं।

(iii) परीक्षण बहुत महंगे हैं, इसलिए धन का अधिक प्रयोग होता है।

(iv) इन परीक्षणों के लिए कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, जो प्रायः नहीं मिलते।

(v) ये विधियां सामान्य की अपेक्षा असामान्य व्यक्तियों पर अच्छे परिणाम देती हैं।

व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करने के लिए प्रमुख रूप से प्रयोग की जाने वाली प्रक्षेपी प्रविधियां निम्नलिखित हैं–

1. रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण (Rorscha's ink Blot Test)–इस परीक्षण की रचना स्विट्जरलैण्ड के प्रसिद्ध मनोचिकित्सक हरमन रोर्शा (Herman Rorscha's) ने 1929 में की। चाहे रोर्शा 37 वर्ष की आयु में स्वर्ग सिधार गए हैं फिर भी यह एक बहुत प्रसिद्ध प्रशिक्षण है। रोर्शा ने मानसिक रूप से असामान्य लोगों के साथ काम किया है और अनुभव किया कि उनकी प्रतिक्रिया सामान्य लोगों से भिन्न होती है। इस परीक्षण में 10 कार्डों का प्रयोग किया जाता है। इन कार्डों पर रचनाहीन (Unstructured) स्याही के धब्बों से बनी आकृतियां है। इन दस कार्डों में से 5 कार्डों पर बिल्कुल काले रंग की आकृतियों, 2 पर काले और लाल, 3 कार्डों पर बहुरंगी आकृतियां होती हैं। इन सभी आकृतियों का कोई विशेष अर्थ नहीं होता। जिस व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन करना है उसे 10 कार्ड एक-एक करके दिए जाते हैं और उसे पूछा जाता है कि कार्ड पर बनी आकृति में आपको नजर क्या नम्बर आता है। आपके लिए यह क्या हो सकता है, आप इसके बारे में क्या सोचते हैं। प्रत्येक कार्ड का देखने के लिए व्यक्ति जितना समय लेना चाहता है उसे उतना समय दिया जाता है। व्यक्ति को कार्ड उलट-पलट करके अलग-अलग स्थिति में देखने की अनुमति होती है।

इसके पश्चात् परीक्षक व्यक्ति के व्यवहार के विभिन्न पक्षों पर अपने-अपने विचार लिखता है। व्यक्ति जिसके व्यक्तित्त्व का अनुमान लगना है, लिखता रहता है और परीक्षक देखता और लिखता रहता है। जब व्यक्ति 10 कार्डों के बारे में लिख चुका होता है तो दूसरी बात की पूछताछ आरंभ होती है।

पूछताछ के दो उद्देश्य होते हैं–

(i) पहली बात तो देखने योग्य होती है कि व्यक्ति की कार्ड के किस भाग में प्रतिक्रिया आरम्भ होती है और इसके साथ क्या-क्या सम्बन्धित है।

(ii) पूछताछ में व्यक्ति अपने विचार को पूर्ण रूप से समझा जा सकता है या उसे कुछ और कहने का अवसर दिया जाता है।

परीक्षण की व्याख्या
(Interpretation of the test)

व्याख्या में निम्नलिखित बातें आती हैं–

(i) विषयवस्तु (Content)–इसमें यह देखा जाता है कि व्यक्ति ने कार्ड के किस भाग को मनुष्य, जानवर, वस्तु या कुछ और बताया है। इन बातों से परिणाम निकाले जाते हैं। जैसे–व्यक्ति मनुष्य चित्र में मनुष्य देखता है। मगर कल्पना धुंधली है और इससे उसकी बुद्धि का पता चलता है। जो व्यक्ति जानवर आदि देखता है वह कम बुद्धि वाला व्यक्ति होता है।

(ii) समय (Time)–समय का मापन चार प्रकार से किया जाता है। प्रतिक्रिया का माध्यमिक समय, माध्यमिक प्रतिक्रिया (Reaction Time) समय और कुल प्रतिक्रिया समय (Total Reaction Time) इन

Scanned with OKEN Scanner

मापनों से व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का पता चल जाता है। यदि व्यक्ति का औसतन प्रतिक्रिया समय 1½ मिनट से अधिक हो तो वह किसी प्रतिरोध का शिकार है।

(iii) स्थिति (Location)—स्थिति से तात्पर्य है कि व्यक्ति ने क्या कार्ड के सारे भाग देखकर प्रतिक्रिया की या किसी एक भाग को देखकर और यदि किसी एक भाग को देखकर दिया तो किस भगा को? कार्ड की उस समय की स्थिति क्या थी? क्या उसकी व्याख्या अजीब थी। स्थिति में व्यक्ति की समस्या समाधान की योग्यता का पता चलता है। यदि व्यक्ति पूर्ण बोर्ड को ध्यान में रखकर प्रतिक्रिया करता है तो वह महत्त्वाकांक्षी है और सैद्धांतिक बातों में विश्वास रखता है। किसी एक भाग को ध्यान में रखने का अर्थ है कि व्यक्ति में समस्या को सुलझाने की सामान्य शक्ति है। जो व्यक्ति कार्ड के छोटे-छोटे भागों को देखकर प्रतिक्रिया करता है। वह जीवन की छोटी-छोटी बातों में फंसा रहता है।

(iv) निर्धारक (Determinant)—निर्धारक से यह मालूम होता है कि क्या प्रतिक्रिया धब्बे के रूप, रंग, ढंग या गति द्वारा निर्धारित की गई। रंगदार कार्ड संवेगात्मक रूप से उकसाते हैं और इनसे व्यक्ति की संवेगात्मक शक्ति का पता चलता है। रूप और गति की विषय की आन्तरिक प्रवृत्तियों का पता चलता है।

(v) मौलिकता (Originality)—इससे हमें व्यक्ति की सामान्य और प्रसिद्ध प्रतिक्रियाओं का पता चलता है। हमें यह पता चल सकता है कि कौन-सी प्रतिक्रिया मौलिक है। इन प्रसिद्ध और मौलिक प्रतिक्रियाओं की (Percentage को व्यक्ति की बुद्धि स्तर का मापक माना जाता है।

इस परीक्षण से असामान्य व्यक्तियों का पता लगाया जा सकता है। इससे व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया को छिपाने की कोशिश नहीं करता, क्योंकि वह यह समझता है कि वह अपने बारे में कुछ नहीं बता रहा। वह जो देख रहा है उसके बारे में बता रहा है। इससे व्यक्ति की बुद्धि का पता भी चलता है। इस परीक्षण द्वारा हमें व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक पक्षों के बारे में भी ज्ञान मिलता है। मगर यह परीक्षण छोटे बच्चों के लिए उपयोगी नहीं है। इसमें समय और मेहनत अधिक लगती है। इस परीक्षण के लिए कुशल व्यक्तियों की आवश्यता होती है। सभी व्यक्ति यह काम नहीं कर सकते। इस परीक्षण में वस्तुनिष्ठा का भी अभाव रहता है।

2. थिमैटिक एपरसैप्शन परीक्षण
(Thematic Apperception Test)

मार्गन तथा मुरे (Morgan & Murrey) ने 1925 में इसका निर्माण किया। इस परीक्षण में 30 चित्र होते हैं। इनमें से 10 चित्र पुरुषों के, 10 स्त्रियों के तथा 10 दोनों के। प्रत्येक व्यक्ति को 20 चित्र दिखाये जाते हैं। ये चित्र अस्पष्ट होते हैं। इसमें प्रत्येक चित्र पर कहानी लिखने को कहा जाता है। इस कहानी के आधार पर व्यक्ति की मौलिक कल्पना को देखा जाता है। इसे कल्पना-शक्ति परिक्षण भी कहते हैं। व्यक्ति को निश्चित समय में अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर चित्र को देखकर कहानी लिखनी होती है। यह याद रखना चाहिए कि चित्र लगभग एक मिनट तक दिखाया जाता है और अगले तीन चार मिनट में कहानी लिखनी होती है। व्याख्या (Interpretation) इन परीक्षणों के परिणामों का विश्लेषण और व्याख्या परीक्षक के विचार, मन और परीक्षक के विचार, मन और परीक्षण के उद्देश्य पर आधारित होती है। मुरे के अनुसार कहानी की व्याख्या दी गई विषयवस्तु के आधार पर करनी चाहिए। जैसे—

(i) कहानी का मुख्य पात्र (Hero of the story)
(ii) मुख्य पात्र की आवश्यकताएं (Needs of the Hero)
(iii) परिणाम।

इनकी व्याख्या निम्न प्रकार से है—

A. मुख्य पात्र (The Hero)—मुख्य पात्र को ढूंढ़ने के लिए नीचे लिखी बातें सहायता करती हैं—

(i) व्यक्ति जिसके साथ अधिक रुचि दिखाए वह मुख्य पात्र है।
(ii) जिसके साथ उसका लिंग, आयु और पद मिलता है।

Scanned with OKEN Scanner

(iii) व्यक्ति अन्य में किसी एक पात्र से अपना सम्बन्ध अधिक दिखाए। उस पात्र को हम मुख्य पात्र कहते हैं।

B. आवश्यकताएं (Needs)—व्यक्ति के कार्यों के बारे में जानने के लिए कहानी के मुख्य पात्र के विचार और अभिप्रेरणाओं को जांच जाता है। हर एक अभिप्रेरणा की शक्ति जाननी चाहिए।

C. शक्ति (The Press)—व्यक्ति के मुख्य पात्र पर कौन-कौन सी शक्ति प्रभाव डाल सकती हैं जानने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिए हमें वातावरण को जानना चाहिए। ये वह शक्तियां होती हैं जो व्यक्ति को कुछ और चाहते हुए करवाती कुछ और ही हैं।

D. परिणाम (The Outcomes)—यह जानने से पूर्व कि मुख्य पात्र का रास्ता आसान या कठिन है हमें भिन्न-भिन्न शक्तियों को जानना चाहिए।

यह परीक्षण छोटे बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं है। इस परीक्षण में प्राप्त उत्तरों की व्याख्या करना एक जटिल कार्य है।

3. बालकों का अन्तर्बोध परीक्षण
(Children Apperception Test of CAT)

इस परीक्षण का निर्माण 3 वर्ष से 11 वर्ष तक की आयु के बच्चों के व्यक्तित्त्व का अनुमान करने के लिए 1948 में **डॉ. बैलाक (Dr. Bellak)** ने किया। इस परीक्षण में 10 कार्ड होते हैं, जिन पर जानवरों के चित्र होते हैं। जानवरों के इन चित्रों को देखकर बच्चों को कहानी लिखने को कहा जाता है। बच्चा अपनी भावनाओं, रुचियों, इच्छाओं का प्रदर्शन कहानियां लिखकर करता है। बच्चा इस कार्य को शौक से पूरा करता है। इन कहानियों का विश्लेषण निम्न बातों के आधार पर किया जाता है—

(i) कहानी के नायक का व्यक्तित्व कैसा है।
(ii) कहानी की भाषा एवं शैली
(iii) कहानी का आधार
(iv) कहानी में बच्चे ने किन वस्तुओं को शामिल किया है और किनको छोड़ा है।
(v) कहानी का अन्त सुखद अथवा दुःखद।
(vi) बच्चे की चिन्ता तथा परेशानी

इस परीक्षा की सहायता से बच्चों के व्यक्तित्त्व का मूल्यांकन किया जाता है। मगर इसके लिए अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, जो प्रायः नहीं मिलते।

4. वाक्यपूर्ति परीक्षण (Sentence Completion Test)—इस परीक्षण में व्यक्ति को अधूरे वाक्यों को पूरा करने को कहा जाता है। इन अधूरे वाक्यों को पूरा करने में व्यक्ति अधिक विषयवस्तु का प्रयोग करता है। जैसे—

(i) काश! .....।
(ii) स्त्री .....।
(iii) जिन्दगी .....।
(iv) मेरी असफलता .....।

इस प्रकार के छोटे-छोटे परन्तु खोज करने वाले प्रश्न पूछे जाते हैं। सभी पूर्ति वाले वाक्यों का विश्लेषण करके व्यक्ति के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है।

5. शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association Test)—इस परीक्षा में 50 से 100 तक चुने हुए शब्द होते हैं। व्यक्ति को कहा जाता है कि वह इन शब्दों को सुनने के तत्काल बाद जो शब्द उसके मन में आता है बोल दे। ये बोले हुए शब्द ठीक या गलत नहीं होते। प्रयोज्य (Subject) के चेहरे के भाव से कुसमायोजन, मानसिक तनाव आदि का पता लगाया जाता है। इसके द्वारा झूठ का पता भी लगाया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

6. मुक्त साहचर्य परीक्षण (Free Association Test)—इस विधि में व्यक्ति से कहा जा सकता है कि उसके मन में जो कुछ भी आता है उसे स्वतंत्रतापूर्वक बोल दे। उसकी इस स्वतंत्र अभिव्यक्ति से विशेषज्ञ (Expert) उसके मानसिक दमन, निराशा एवं तनाव के कारणों का पता लगा लेता है।

7. हस्त लेख की विशेषताएं (Features of Hand Writing)—हस्त लेख की विशेषताओं को देखकर व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का अनुमान लगाया जाता है। अक्षरों का स्थान, अक्षरों का झुकाव, दो शब्दों में अन्तर, शब्दों के विभिन्न भागों पर दबाव, अक्षरों का स्थान आदि व्यक्तित्त्व के कई गुणों की सूचना देता है। अक्षरों की बनावट से यह भी पता चल जाता है कि लिखने वाला पुरुष है या नारी, जवान है या बूढ़ा आदि।

8. कहानी कहने और कहानी का परीक्षा (Story telling and Story completion Test)—खेल द्वारा, नाटक से भाग देकर भी व्यक्तित्त्व के कई पक्षों को पहचाना जा सकता है। नाटक में भूमिका निभाते अन्य पात्रों के प्रति व्यक्ति की भावनाओं आदि से उसके व्यक्तित्त्व के गुणों का पता लगाया जा सकता है।

◆◆◆

मूल्य एवं उनका विकास
(Values and their Development)

1. मूल्यों से आपका क्या अभिप्राय है? बालकों में व्यक्तिगत मूल्यों का विकास तथा परिवर्तन कैसे होता है? स्पष्ट कीजिये।

अथवा

मूल्यों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए बतायें कि बालकों में व्यक्तिगत मूल्यों का विकास एवं मूल्यों में परिवर्तन किस प्रकार होता है।

उत्तर—व्यक्तित्व की सामान्यता और परिपक्वता *(Normlity and Maturity)* इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति की सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की एकीकृत प्रणाली *(Unified System)* है या नहीं। मूल्य व्यक्तियों के जीवन को अर्थपूर्ण बना देते है तथा उन्हें एक दिशा प्रदान करते हैं। लेकिन ये मूल्य हैं क्या? इनका अर्थ जानना अति आवश्यक है।

'मूल्य' का अर्थ
(Meaning of 'Value')

गैरेट के अनुसार मूल्य कोई भी चीज़ है, जो एक मनुष्य के पास होनी चाहिए। *(A value may be defined as anything which is desirable to a person.)*

सी.ई. स्किनर के अनुसार, 'यह एक अनुपम शाब्दिक प्रत्यय है, जो किसी महत्त्व को, किसी विशिष्ट प्रकार की वस्तुओं, कार्यों और दशाओं से जोड़ता है।' *(Values are unique verbal concepts that relate to the worth given to specific kinds of objects, acts and conditions by individuals and groups.)*

मूल्य किसी चीज़ के प्रति व्यक्ति का आकर्षक है, वह जो कुछ किसी वस्तु में या स्वयं में ढूंढता है उसका सार है। *(Values are what is attractive to a person, the essence of what he seeks in on object, a person or even himself.)* इस प्रकार से मूल्य निर्णयों सम्बन्धी मापदंड *(Criteria)* के रूप में में कार्य करते हैं तथा वे व्यक्ति के जीवन के निर्णयों और व्यवहार को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

नियम के रूप में, एक व्यक्ति उन मूल्यों को अपनाते हैं जो उसकी इच्छाओं को पूरा करने में सहायता करते हैं तथा जिन्हें उस समूह द्वारा स्वीकृत किया जाता है, जिससे वे जुड़े होते हैं। इस प्रकार मूल्य व्यक्ति के व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित भी होते है तथा व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित *(Reflect)* भी करते हैं।

मूल्यों के आधार पर व्यक्तियों में अन्तर होता है और यही कारण है कि एक ही वस्तु, व्यक्ति या स्थिति के बारे में निर्णयों में अन्तर होता है तथा एक जैसी स्थितियों में उनके व्यवहारों में भी अन्तर होगा।

Scanned with OKEN Scanner

हर व्यक्ति उन मूल्यों का विकास करता है, जो उसे महत्त्वपूर्ण लगते हैं और जो उसके जीवन को मार्ग-दर्शन प्रदान करते हैं।

मूल्य एक सामाजिक संप्रत्यय या धारणा है तथा शैक्षिक प्रक्रिया में मूल्य भाग लेते हैं, क्योंकि ये मूल्य समाज के लिये मूलभूत *(Basic)* होते हैं। बालक और स्कूल इस समाज का अंग हैं।

मूल्य और मानक *(Values and Norms)* में अन्तर करना भी आवश्यक है। किसी समूह के मूल्यों को मानक कहा जाता है। *(The values of the group are norms.)* इनके द्वारा हम अपने और दूसरों के व्यवहारों के बारे में निर्णय लेते हैं। किसी समाज के मानक उस संदर्भ का कार्य करते हैं जो हमारे दृष्टिकोण ों और कार्यों को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। मूल्य अभिप्रेरक प्रकृति के होते हैं, क्योंकि ये 'इच्छा' और 'आवश्यकता' *(Wants and Needs)* से मिलते जुलते हैं। निसंदेह वे समाज की अपेक्षाओं या मानकों द्वारा प्रभावित रहते हैं, लेकिन हर व्यक्ति के मूल्यों में भिन्नता होती है।

दूसरी ओर, मानक *(Norms)* किसी समूह में हावी मानकों की अभिव्यक्ति है। *(Norms are expressions of the dominant standards which prevail in a group.)*

मूल्य समूह के अन्दर सार्वभौमिक होते हैं तथा वैयक्तिक रूप से अनुपम होते हैं। सार्वभौमिक वे इसलिये होते हैं कि समूह के सभी सदस्य इन मूल्यों के अनुसार व्यवहार करते हैं—कुछ कुसमायोजित व्यक्तियों को छोड़कर वे अनुपम इस दृष्टि से होते हैं कि हर व्यक्ति उन्हें अपने अनुसार अपनाता है तथा अपने अनुसर उनका प्रत्यक्षीकरण करता है।

उपरोक्त वर्णन द्वारा 'मूल्यों' के सम्बन्ध में कुछ निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं कि :—

(i) मूल्य वह कुछ भी है, जो किसी व्यक्ति के लिये वांछनीय हो।

(ii) मूल्य व्यक्ति के जीवन को अर्थपूर्ण बना देते हैं।

(iii) मूल्य किसी चीज़ के प्रति व्यक्ति की आकर्षण है।

(iv) मूल्य इच्छाओं को पूरा करने में सहायता देते हैं।

(v) मूल्यों के आधार पर हर व्यक्ति में अन्तर दिखाई देता है।

(vi) मूल्य समाज के लिये मूलभूत होते हैं।

(vii) मूल्य शैक्षिक प्रक्रिया में संलिप्त होते हैं।

(viii) किसी समूह के मूल्यों को ही मानक *(Norm)* कहा जाता है।

मूल्यों का विकास
(Development of Values)

कोई भी चीज़ जो व्यक्ति के लिये लाभकारी होती है, उसके लिये मूल्यवान हो जाती है। कोई भी वस्तु जो एक व्यक्ति के लिये लाभदायक है, लेकिन दूसरे के लिये हानिकारक हो सकती है। इस प्रकार, दर्शनशास्त्र की दृष्टि से मूल्य किसी विचार या दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होती है।

मूल्यों का विकास प्रत्यक्ष-अधिगम और पहचान प्रक्रिया *(Direct Learning and recognition)* द्व ारा होता है। बच्चा घर तथा स्कूल में मिलने वाले प्रशिक्षण से तथा माता-पिता और अध्यापकों का अनुकरण करके सामाजिक समूह के सांस्कृतिक रूप से स्वीकृत मूल्यों को सीखता है, जिस समूह के साथ वे अपनी पहचान बनाते हैं।

बड़ा बालक अपने आयु वाले समूह के मूल्य सीखता है, अपने पड़ौसियों तथा संचार माध्यमों द्वारा प्रस्तुत मूल्यों को सीखता है, जैसे फिल्मों, रेडियो, टैलीविज़न, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा पुस्तकों द्वारा प्रस्तुत किये गये मूल्य। इनमें से कई मूल्य तो वही होते हैं, जो घर तथा स्कूल में सीखे गये होते हैं।

विभिन्न वातावरणीय साधनों द्वारा सीखे गये मूल्य इन कारकों पर निर्भर करते हैं :—

(i) व्यक्ति का बौद्धिक स्तर

(ii) कुछ मूल्यों की स्वीकार और अस्वीकार करने के लिये सामाजिक बल *(Social Pressure)*,

Scanned with OKEN Scanner

(iii) वह विधि जिसके द्वारा ये मूल्य प्रस्तुत किये जाते हैं।

(iv) उस व्यक्ति के साथ सीखने वाले व्यक्ति का सम्बन्ध जिसके मूल्य सीखने वाले व्यक्ति के सम्मुख सीखने के लिये प्रस्तुत किये जाते हैं।

(v) नैतिक स्तर और भौतिकवाद–जिस परिवार में नैतिक स्तर निम्न ओर भैतिकवाद *(Materialism)* सुदृढ़ होगा, वहाँ पर व्यक्ति के मूल्य उन परिवार के लोगों से भिन्न होंगे जहाँ पर सख़्त नैतिक मूल्यों पर बल दिया जाता है।

(vi) परिवारों का आकार–बच्चा परिवार की पद्धति, सहयोग आदि से जुड़े मूल्यों को सीखता है, जबकि छोटे परिवारें में आत्म-अभिव्यक्ति और वैयक्तिकरण *(Individualism)* परिवार की सक्रियता में योगदान करते हैं।

(vii) अध्यापकों और मित्रों के साथ सम्बन्धों की प्रकृति भी सीखे गये मूल्यों को प्रभावित करती है। बच्चा स्कूल के बारे में क्या सोचता है तथा वह शिक्षा को क्या महत्त्व देता है–यह सब मात्र उसके बौद्धिक सतर पर ही निर्भर नहीं करता या उनकी उपलब्धि पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करता है कि अध्यापक और उसके अन्य सहपाठी उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं। अध्यापक जितना अधिक उसे सहयोग करेंगे तथा वह जितना अधिक अपने सहपाठियों में लोकप्रिय होगा, उतना ही अधिक वह उन सबके मूल्यों को शीघ्रता से स्वीकार करेगा, चाहे उसके ये मूल्य घर पर सीखे गये मूल्यों के विरोधी ही क्यों न हों।

मूल्यों की वृद्धि के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये गये हैं :–

(i) विद्यार्थियों का स्वयं अपनी पसंद चुनने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा उन्हें निडर और बेफिक्र होकर चयन करने देना चाहिए।

(ii) चयन-प्रक्रिया में उपलब्धि *(Alternatives)* की खोज और उसकी जाँच करने में विद्यार्थियों की सहायता करनी चाहिए।

(iii) इन *(Alternatives)* के परिणामों को आँकने में सहायता करनी चाहिए।

(iv) विद्यार्थियों को उनकी पसंद या चयन को प्रदर्शित करने, तथा बहस करने के अवसर प्रदान किये जाने चाहिएं।

(v) विद्यार्थियों को उनकी पसंद या चयन के अनुसार कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार ये मूल्यों की प्रशिक्षण की प्रक्रिया है, न कि मूल्यों को थोपा जाना। मूल्यों को पठन सामग्री *(Reading Material)* और पाठ्यपुस्तकों द्वारा भी प्रस्तुत किय जा सकता है। पाठ्यपुस्तक बहुत ही महत्त्वपूण शैक्षिक साधन है, जिसे विद्यार्थी बार-बार पढ़ता है। कहानियों के माध्यम से मूल्यों को प्रस्तुत करना, महान व्यक्तियों के जीवन में घटित घटनाओं द्वारा भी मूल्यों का प्रशिक्षण संभव है।

मूल्यों में परिवर्तन
(Changes in Values)

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, वैसे-वैसे वह दूसरी संस्कृतियों तथा सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों से आये लोगों के सम्पर्क में आता है। तब वह अपने मूल्यों में परिवर्तन लाता है। इसके अतिरिक्त उसके स्वयं के जीवन के अनुभव उसे नये मूल्यों से अवगत करवाते हैं तथा वह बिना किसी आलोचना के इन बदले हुए मूल्यों को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ, मध्यवर्गीय परिवार में यह समझा जाता है कि ईमानदारी लोकप्रियता में बाधक है। वे अपने मित्रों की बेईमान तरीकों से सहायता करना चाहेंगे। इसी प्रकार निम्न वर्गीय परिवारों में ईमानदारी का पाठ घर पर पढ़ाया जाता है, लेकिन बाद में उन्हें पता चलता है कि ईमानदारी से उन्हें कुछ भी मिलने वाला नहीं है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रौढ़ावस्था में युवाकाल के मूल्यों का महत्त्व कम होने लगता है। जैसे, किशोरावस्था में शिष्टाचार, प्रेम, मेल मिलाप इत्यादि का सम्मान किया जाता है, लेकिन जीवनदर्शन का मूल्य बहुत निम्न रहता है। लेकिन मध्य-आयु वर्ग में इन मूल्यों की स्थिति बदल जाती है। व्यक्ति का व्यक्ति जितना अधिक तीव्र गति से विकसित होगा, मूल्य में परिवर्तन उतना ही कम होगा।

मूल्यों में परिवर्तन कब और कितने होता है, तथा इन मूल्यों में परिवर्तन के क्या कारण हो सकते हैं तथा इससे समायोजन किस प्रकार प्रभावित होता है, इसे जानने के लिये इन परिवर्तनों को चार क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, ये क्षेत्र हैं :–

(a) कार्य, *(b)* नवीन और भिन्न, धर्म धन का उपयोग *(work, New and different, Religion, used of money.)*

(a) कार्य (Work)–छोटे बच्चे का कार्य के प्रति रवैया ठीक होता है। वे घर पर सहायता करना पसंद करते हैं तथा वे गौरव अनुभव करते हैं जब उनकी उपलब्धि के लिये उनकी प्रशंसा की जाती है। वे स्कूल जाना चाहते हैं। जितने बच्चे अधिक प्रतिभाशाली होंगे, उतना ही अधिक स्कूल कार्य के प्रति उनका दृष्टिकोण उचित होगा।

दूसरी कक्षा के अन्त तक स्कूल कार्य के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही नकारात्मक हो जाता है। दस वर्ष की आयु तक हर कार्य के लिये 'अनाकर्षण' पैदा हो जाता है।

किशोरावस्था से पहले उनमें कार्य के विरोध की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है। विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के कार्य के प्रति दृष्टिकोणों के सर्वेक्षण से पता चलता है कि उनके जीवन का समायोजन इन दृष्टिकोणों से बहुत प्रभावित होता है। बच्चों और किशारों का कार्य-विरोधी दृष्टिकोण अपने उत्तरदायित्व को समझने की बजाय इसे औरों के कन्धों पर डाल देते हैं, स्कूलों में अल्प-उपलब्धि वाले होते हैं तथा माता-पिता, अध्यापकों तथा मित्रों के साथ तनावपूर्ण सम्बन्ध होते हैं।

(b) धर्म (Religion)–धार्मिक मूल्यों में परिवर्तनों के कारण धार्मिक रुचियों में भी परिवर्तन आने लगता है। छोटे बच्चों को धार्मिक गतिविधियों में भाग लेना अच्छा लगता है।

किशोरावस्था में धार्मिक मूल्यों में कमी आती है। यद्यपि प्रौढ़ावस्था 'न्यूनतम धार्मिक अवस्था' कहलाती है तो कई युवा-किशोर कई अधार्मिक मूल्य अर्जित करते हैं। माता-पिता अन्य सामाजिक भूमिकाओं से जुड़े होते हैं। धर्म में सक्रिय होकर वे बच्चों के लिये एक 'माडल' का काम करते हैं, तथा समुदाय में प्रौढ़ों की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं।

बुढ़ापे में फिर एक बार धार्मिक मूल्य बदलते हैं। इस अवस्था में धार्मिक स्थानों पर जाना व्यक्तिगत आवश्यकता द्वारा अभिप्रेरित होता है, न कि केवल सामाजिक स्वीकृति अर्जित करना। व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन में धार्मिक मूल्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये मूल्य स्थिरता और सुरक्षा की भावना प्रदान करते हैं। सामाजिक रूप से यदि व्यक्ति समूह या समाज के धार्मिक मूल्यों को स्वीकार करते हैं तो उनकी सामाजिक छवि में सुधार आता है।

(c) नवीन और भिन्न (The New and Different)–जो भी वस्तु खिलौना, कपड़ा, आदि को नया है या कुछ अलग प्रकार का है, बच्चों को रुचिकर लगता है यदि उसे इसलिये अच्छा नहीं लगता कि वह औरों से बेहतर है, बल्कि इसलिये अच्छी लगती है कि यह नया और अलग प्रकार का है। इसी प्रकार का मूल्य किशोरों में भी होता है। कपड़ों में, बालों की पद्धति में, व्यवहार के तरीकों में, भाषा में, शिष्टाचार में तथा विश्वासों में निरन्तर परिवर्तनों से यह दर्शाता है कि किशोर नवीनता को स्वीकार करने के लिये कितने इच्छुक रहते है तथा पुरातन को कितनी तत्परता से त्यागते हैं।

(d) धन का उपयोग (Use of Money)–धन से सम्बन्धित मूल्य भी अनुभव के साथ तथा व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजनों में धन की भूमिका को महसूस करके बदल जाते हैं।

छोटे बच्चे के लिये धन चीज़ें प्राप्त करने का साधन है। अपने मित्रों की आँखों में सम्मान प्राप्त करने के लिए उन्हें धन चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

किशोरों के लिये धन का दो दृष्टिकोणों से महत्त्व है—पहला स्वतन्त्रता के लिए तथा दूसरा, सामाजिक स्तर के लिये। किशोरावस्था में किशोरों के लिये यह अधिक महत्त्वपूर्ण होता है कि कोई व्यवसाय उन्हें कितने पैसे देगा। कार्य की प्रकृति से उनको कोई सरोकार नहीं तथा उन्हें इस बात की भी परवाह नहीं होती कि वह कार्य कितना रुचिकर है तथा भविष्य में प्रगति के कितने अवसर हैं। किशोरों की भाँति,प्रारम्भिक प्रौढ़ों के लिये भी धन प्रतिष्ठा अर्जित करने और मनोरंजन की आवश्यकता पूरी करने का एक साधन है।

मध्यवर्गीय व्यक्ति बचत को अधिक मूल्य प्रदान करते हैं तथा बुद्धिमत्ता से खर्च करने पर बल देते हैं। धन सम्बन्धी मूल्य व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। किसी व्यक्ति के पास कितना धन है, यह बात उसके स्तर की सूचक है।

◆◆◆

2. छात्रों को मूल्य शिक्षा प्रदान करते समय कौन-कौन-सी मुख्य बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए?

अथवा

एक शिक्षक को विद्यार्थियों में सामाजिक मूल्यों को विकसित करने के लिए कौन-कौन से उपाय अपनाने चाहिए? विवेचना कीजिए।

अथवा

शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में सामाजिक मूल्यों को विकसित करने से सम्बन्धित उपाय कौन-कौन से हैं? वर्णन करें।

उत्तर–शिक्षा द्वारा सामाजिक मूल्यों को विद्यार्थियों में विकसित करने के उपाय (Measures to develop social values among the students through Education)—एक शिक्षक के लिए केवल सामाजिक तथा दूसरे मानव मूल्यों को जानना ही आवश्यक नहीं, अपितु उसे यह भी पता होना चाहिए कि इन मूल्यों को कक्षा में किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से पढ़ाया जा सकता है। इसके लिए एक सरल विधि तो यह है कि मूल्य शिक्षा के कुछ पाठ पाठ्य-पुस्तकों में डाल दिए जाने चाहिएँ। विद्यार्थियों को इनके बारे में निर्देशन दिया जाए कि उनको इन मूल्यों के बारे में क्या-क्या ज्ञान प्राप्त करना है तथा क्या यह ज्ञान प्राप्त हो गया है कि नहीं। इसका मूल्याँकन किया जाए। परन्तु इस प्रकार की प्रक्रिया से तो विद्यार्थियों के साथ केवल मूल्यों के बारे में बात कर सकते हैं, परन्तु शिक्षा का उद्देश्य तो विद्यार्थियों में मूल्यों के प्रति गहरी भावना भरना है। इसलिए केवल शिक्षण या निर्देशन पर्याप्त नहीं है। मूल्य शिक्षा का निर्देशन देते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है—

1. मूल्यों के बारे में स्पष्ट विचारधारा होनी चाहिए (There should be clear thinking about values)—मूल्यों के बारे में विवेचना अनावश्यक नहीं होती। वास्तव में, मूल्यों के बारे में जितनी विवेचना की जाए, उतनी ही मूल्यों के बारे में स्पष्टता होती जाएगी। इसलिए विद्यार्थियों को शिक्षण तथा निर्देशन देने के बजाय अधिक अच्छा होगा यदि उनके साथ विवेचना की जाए कि सहयोग (एक उदाहरण) हमारे जीवन में क्यों आवश्यक है। इसी प्रकार शिष्टाचार के मूल्य का उदाहरण लीजिए। लोगों में शिष्टाचार के बिना काम क्यों नहीं चलता?

इसी प्रकार एक और उदाहरण भी दिया जा सकता है कि समाज में इतना अन्याय तथा शोषण क्यों है? ऐसे विषयों में निर्देशन के स्थान पर विवेचना अधिक उपयुक्त है। परन्तु केवल विवेचना से ही काम नहीं चलेगा। मूल्य मनुष्य के आधारभूत जीवन से सम्बन्धित होते हैं अर्थात् उनके आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित होते हैं। इसलिए इन्हें बच्चों पर लादना नहीं चाहिए। यद्यपि कुछ मूल्य ऊपरी सतह के होते हैं, जैसे—स्वच्छता तथा अनुशासन आदि।

इनका अनुसरण करने के लिए विद्यार्थियों को विवश किया जा सकता है, परन्तु हम किसी विद्यार्थी को सच बोलने, न्याय संगत होने, करुणा या सहानुभूति करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। अन्तर्निहित

Scanned with OKEN Scanner

मूल्यों का विकास तभी संभव है जब विद्यार्थी उन मूल्यों को पूरी तरह पहचान लें। वही मूल्य उनके जीवन में जड़ पकड़ सकेंगे जिन्हें वे स्वेच्छा तथा चेतन मन से स्वीकार करते हैं।

2. धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा (Religious and Moral Education)—वैसे तो सभी देशों में नैतिक शिक्षा तथा धार्मिक शिक्षा साथ-साथ ही आरम्भ हुई तथा अब भी बहुत से देश ऐसे हैं जिनमें नैतिक शिक्षा किसी धर्म के आधार पर ही दी जाती है।

हमारे देश में कुछ लोगों का विचार है कि धार्मिक शिक्षा के बिना नैतिक शिक्षा नहीं दी जा सकती, परन्तु क्योंकि हमने भारतीय संविधान के अनुसार धर्म निरपेक्षता के नियम को स्वीकार कर लिया है, इसलिए कोई भी राजकीय या मान्यताप्राप्त स्कूल किसी धर्म की शिक्षा प्रदान नहीं कर सकता। दूसरे हमारे देश में विभिन्न धर्मों का आपसी तनाव इतना है कि उनके आधार पर एक अच्छी नैतिक शिक्षा प्रदान करना लगभग असंभव है। हमारे देश में तो धर्म के नाम पर ही दंगे तथा झगड़े होते हैं।

परन्तु यह हमारा सौभाग्य है कि प्राचीन समय से ही हमारे देश में एक परम्परा रही है कि सभी धर्मों के कथनों से ऊपर उठो और सच्चाई की खोज करो। इसलिए अध्यापक का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह इस परम्परा के बारे में विद्यार्थियों को जानकारी दे।

3. सृजनात्मक कार्य (Creative Work)—सामाजिक तथा मानवीय मूल्य शिक्षा केवल शब्दों द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती। इस प्रकार की शिक्षा उपयुक्त प्रकार के कार्यों से ही संभव है। इसलिए उपयुक्त सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों को विद्यार्थियों में प्रोत्साहित करने के लिए निरन्तर क्रियाओं का होना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं—

(i) बच्चों में स्वच्छता व सहयोग की भावना का विकास किया जाना चाहिए।

(ii) बच्चों को सफाई तथा ईमानदारी सिखाने के लिए कुछ योजनाओं का निर्माण करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर स्कूल में एक ईमानदारी की दुकान *(Honesty shop)* खोली जा सकती है। इस दुकान में कुछ छोटी फुटकर चीज़ें जैसे पेंसिल, रिफिल, कापियाँ तथा रबड़ आदि रखी जा सकती हैं। निगरानी के लिए कोई भी व्यक्ति इस दुकान पर नहीं बैठेगा। विद्यार्थी वहाँ जाएँगे, आवश्यक सामान खरीदेंगे और पैसे रख कर चले जाएँगे। हो सकता है कि कुछ विद्यार्थी बेईमानी करें और मास में दो चार रुपये का घाटा भी पड़ जाए, परन्तु अधिकतर विद्यार्थी ईमानदारी का व्यवहार करेंगे और इस प्रकार उनमें सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों का विकास होगा।

(iii) स्कूल के बच्चों को एक दूसरे के घर जाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर 8 या 10 बच्चे मिलकर किसी दूसरे मित्र के घर जाएँ तो अन्य किसी दिन किसी और के घर। इस प्रकार वे एक दूसरे के घरों के सदस्यों से परिचित हो जाएँगे। इससे उनमें सद्भावना बढ़ेगी। हो सकता है कि इनमें से कुछ मित्र विभिन्न धर्मों या जातियों के हों। इससे सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता में बढ़ावा होगा तथा विभिन्न धर्मों तथा जातियों के लोग एक दूसरे के समीप आ सकेंगे।

(iv) हमारे देश में विभिन्न धर्मों तथा जातियों के लोग रहते हैं, जिनकी अपनी संस्कृति होती है। मेले और त्यौहार होते हैं। मूल्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए स्कूल उन सब त्यौहारों को संयुक्त रूप से मनाएँ जिसमें सभी धर्मों तथा जातियों के बच्चे भाग लें। इससे बच्चों में राष्ट्रीय भावना का विकास होगा तथा उनमें धार्मिक सहनशीलता बढ़ेगी तथा परोक्ष रूप में सामाजिकता को बढ़ावा मिलेगा।

(v) स्कूल में विभिन्न प्रकार के भाषणों का भी आयोजन किया जाना चाहिए। ये भाषण कुछ इस प्रकार के हो सकते हैं—

(क) हमारे देश की धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक परम्पराएँ।

(ख) भारत में विभिन्न धर्मों को मनाने वाले लोगों का जीवन।

(ग) देश की विभिन्न समस्याएँ तथा उनको नियन्त्रित करने की विधियाँ।

(घ) इन भाषणों का आयोजन करने के लिए कुछ बाहर से वक्ताओं *(Speakers)* को भी बुलाया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रत्येक भाषण के पश्चात् प्रश्न-उत्तर का भी एक अधिवेशन होना चाहिए, जिसमें भाषण देने वाले तथा बच्चे भाग लें।

4. सेमिनारों का प्रबन्ध (Arrangement for holding seminars)–विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के बीच सेमिनारों का आयोजन भी किया जाना चाहिए। इन सेमिनारों तथा गोष्ठियों का यह लाभ होगा कि विद्यार्थी में बोलने तथा सोचने की क्षमता बढ़ेगी और वे अपने देश की समस्याओं का विवेचन कर सकेंगे। विद्यार्थियों को विभिन्न समस्याओं के बारे में सोचने और बोलने के बारे में अवसर दिए जाएँ तथा उन्हें यह कह देना चाहिए कि अपने विचार प्रकट करते समय उन्हें किसी प्रकार के डर का अहसास नहीं होना चाहिए तथा बेधड़क होकर सब कुछ बोल सकते हैं, जिसको वे अच्छा या बुरा समझते हैं। मान्यताओं तथा मूल्यों की विवेचना के लिए विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रकार के अवसर प्रदान करने चाहिए।

◆◆◆

2.3. गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धान्त (Gardiner & Theory of Multiple Intelligences)

1. बहुबुद्धि सिद्धांत पर इसके शैक्षिक निहितार्थों को दिखाते हुए इसका वर्णन कीजिए। (Describe multiple Intelligence theory highlighting its educational implications.)

अथवा

बहुबुद्धि सिद्धांत क्या है? हावर्ड गार्डनर के अनुसार बुद्धियों के प्रकारों का वर्णन कीजिए। (What is theory of multiple Intelligence? Describe the types of Intelligence according to Howard Gardner.)

उत्तर–बहुबुद्धि सिद्धांत का प्रतिपादन हावर्ड गार्डनर द्वारा किया गया। हावर्ड गार्डनर के अनुसार, बुद्धि कोई एक तत्त्व नही है बल्कि कई भिन्न-भिन्न प्रकार की बुद्धियों का अस्तित्व होता है। प्रत्येक प्रकार की बुद्धि एक-दूसरे से स्वतंत्र रहकर कार्य करती है। गार्डनर के अनुसार किसी समस्या को हल करने के लिए विभिन्न प्रकार की बुद्धियाँ आपस में अंतःक्रिया करते हुए साथ-साथ कार्य करती हैं। गार्डनर ने अपने-अपने क्षेत्रों में असाधारण योग्यताओं का प्रदर्शन करने वाले प्रतिभाशाली व्यक्तियों का अध्ययन किया तथा इसके आधार पर आठ प्रकार की बुद्धियों का वर्णन किया जिनका वर्णन इस प्रकार है–

1. भाषागत बुद्धि (Linguistic Intelligence)–भाषागत बुद्धि विचारों को प्रकट करने तथा दूसरे व्यक्तियों के विचारों को समझने के लिए भाषा का उपयोग करने की योग्यता है। यह बुद्धि जिन व्यक्तियों में अधिक होती है, वे व्यक्ति 'शब्द कुशल' होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों के प्रति संवेदनशील होते हैं तथा अपने मन में भाषा के बिम्बों का निर्माण करने की क्षमता रखते हैं तथा शुद्ध एवं स्पष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार की बुद्धि लेखकों तथा कवियों में अधिक होती है।

2. तार्किक-गणितीय बुद्धि (Logical-Mathematical Intelligence)–तार्किक-गणितीय बुद्धि उन व्यक्तियों में पाई जाती है, जिनमें तार्किक तथा आलोचनात्मक चिंतन की क्षमता होती है। इस प्रकार की बुद्धि वाले व्यक्ति अमूर्त तर्कना कर लेते हैं तथा गणितीय समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रतीकों का प्रहस्तन अच्छी प्रकार से कर लेते हैं। इस प्रकार की बुद्धि वैज्ञानिकों तथा नोबल पुरूस्कार विजेताओं में पाई जाती है।

3. देशिक बुद्धि (Spatial Intelligence)–यह बुद्धि मानसिक बिम्बों को बनाने, उनका प्रयोग करने तथा उनमें मानसिक धरातल पर परिमार्जन करने की क्षमता है। इस प्रकार की बुद्धि रखने वाला व्यक्ति देशिक सूचनाओं को अपने मस्तिष्क में रख सकता है। इस प्रकार की बुद्धि मूर्तिकार, नाविक, विमान चालक, चित्रकार, वास्तुकार, शल्य चिकित्सक आदि में पाई जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

4. संगीतात्मक बुद्धि (Musical Intelligence)–संगीतिक अभिरचनाओं को उत्पन्न करने, उनका सर्जन करने तथा प्रहस्तन करने की योग्यता संगीतात्मक बुद्धि कहलाती है। इस प्रकार की बुद्धि वाले लोग ध्वनियों, स्पंदनों तथा ध्वनियों की नई अभिरचनाओं से सर्जन के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

5. शारीरिक-गतिसंवेदी बुद्धि (Bodily-Kinaesthetic Intelligence)–शारीरिक-गतिसंवेदी बुद्धि किसी वस्तु अथवा उत्पाद के निर्माण के लिए अथवा मात्र शारीरिक प्रदर्शन के लिए संपूर्ण शरीर अथवा उसके किसी एक या एक से अधिक अंग की लोच तथा पेशीय कौशल की योग्यता होती है। इस प्रकार की बुद्धि नर्तकों, धावकों, खिलाड़ियों, अभिनेताओं/अभिनेत्रियों, जिमनास्टो तथा शल्य चिकित्सकों में अधिक पाई जाती है।

6. अंतर्वैयक्तिक बुद्धि (Interpersonal Intelligence)–अंतर्वैयक्तिक बुद्धि यह योग्यता है, जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की अभिप्रेरणाओं, उद्देश्यों, व्यवहारों, भावनाओं का सही बोध करते हुए उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करता है। इस प्रकार की बुद्धि मनोविज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, परामर्शदाता, धार्मिक नेताओं तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं में पाई जाती है।

7. अंतःव्यक्ति बुद्धि (Intrapersonal Intelligence)–यह बुद्धि वह योग्यता है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति को अपनी शक्ति तथा कमजोरियों का ज्ञान और उस ज्ञान का दूसरे व्यक्तियों के साथ सामाजिक अन्तःक्रिया में उपयोग करने का ऐसा कौशल शामिल है, जिससे वह अन्य व्यक्तियों से प्रभावशाली संबंध स्थापित कर सकता है। इस प्रकार की बुद्धि वाले व्यक्ति अपनी पहचान, मानव अस्तित्व तथा जीवन अर्थ को समझने में अति संवेदनशील होते हैं। इस प्रकार की बुद्धि आध्यात्मिक नेताओं तथा दार्शनिकों में देखने को मिलती है।

8. प्रकृतिवादी बुद्धि (Naturalistic Intelligence)–प्रकृतिवादी बुद्धि का तात्पर्य प्राकृतिक पर्यावरण से हमारे संबंधों की पूर्ण अभिज्ञता से है। यह बुद्धि विभिन्न पशु पक्षियों तथा वनस्पतियों के सौंदर्य का बोध करने में तथा प्राकृतिक पर्यावरण में सूक्ष्म विभेद करने में मदद करती है। इस प्रकार की बुद्धि किसान, शिकारी, पक्षी विज्ञानी, प्राणी विज्ञानी, वनस्पति विज्ञानी, प्रकृतिवादी में अधिक पाई जाती है।

◆◆◆

2.4. ज्ञानात्मक योग्यताओं पर आधारित विभिन्नताओं की समझ (Understanding differences based on a range of cognitive Abilities)

अधिगम कठिनाइयाँ (Learning Difficulties)

1. अधिगम असमर्थता से आप क्या समझते हैं? अधिगम असमर्थ बच्चे की शिक्षा पर एक टिप्पणी लिखिए। (What do you mean by learning disability? Write a note on the education of learning disabled children.)

उत्तर–अधिगम असमर्थता (Learning Disability)–

अर्थ (Meanings)–अधिगम असमर्थता *(Learning Disability)* का सम्बन्ध सीखने की समस्याओं से होता है। यह सुनने, सोचने, बोलने, पढ़ने, लिखने या गणितीय गणना करने सम्बन्धी अपूर्ण *(Imperfect)* योग्यता के कारण होती है। ये अयोग्यताएँ प्राथमिक रूप से दृष्टि बाधिता, श्रवण बाधिता, मानसिक मंदता, पर्यावरणीय या अर्थशास्त्रीय दोषों के कारण नहीं होती, बल्कि ये दोष समझने और भाषा के प्रयोग करने में मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

अधिगम असमर्थता के ग्रस्त बहुत से बच्चे होते हैं। यह समस्या आमतौर पर निम्न कारकों के मेल से होती है–

(i) बुद्धि का निम्न स्तर

(ii) मानसिक मंदता

(iii) दृष्टि बाधिता *(Visual Impairment)*

(iv) निम्न स्तर के निर्देशन आदि।

अधिगम असमर्थता को परिभाषित करने के लिए निम्नलिखित दो उपगम हैं–

(a) कारण-केन्द्रित उपागम *(Cause Oriented Approach)*

(b) प्रभाव-केन्द्रित उपागम *(Effect-oriented Approach)*

कारण केन्द्रित उपागम में प्रेक्षित व्यवहार के कारण की पहचान की जाती है, जबकि प्रभाव केन्द्रित उपागम में प्रेक्षित व्यवहार का विश्लेषण और संशोधन किया जाता है।

कीरक *(Kirk, 1962)* के अनुसार, "अधिगम-असमर्थता वाणी, भाषा, पठन, स्पैलिंग, लिखने या गणित की एक या अधिक प्रक्रियाओं का विलम्बित विकास है, जो संभवतः सैरीब्रल अकार्यपरकता के कारण या संवेगात्मक या व्यवहारात्मक विचलन *(Disturbance)* के परिणामस्वरूप होता है, न कि मानसिक मंदता, संवेदनहीनता, सांस्कृतिक या निर्देशनात्मक कारकों से।

(Learning disability refers to a retardation, disorder or delayed development in one or more of the processes of speech, language, reading, spelling, writing or arithmatic resulting from a possible cerebral dyfunction/and or emotional or behvioural disturbance and not from mental retardation, sensory deprivation, cultural or instructional factors."

कीरक की यह प्रभाव-केन्द्रिय परिकरण है। कीरक (1963) ने अपने एक भाष्य में यह स्पष्ट कर दिया कि वह अधिगम-असमर्थ के वर्ग में उन बच्चों को शामिल नहीं कर रहे जो मानसिक मंदता के कारण या दृष्टि बाधिता या श्रवण बाधिता के कारण असमर्थ *(Disabled)* हैं। सन् 1960 में न्यूयार्क शहर में अभिभावकों की एक सभा में कीरक *(Kirk)* ने 'असमर्थता' *(Disability)* शब्द प्रस्तावित किया है। उन दिनों में ऐसे बच्चों को घायल मस्तिष्क *(Brain Injured)*, धीमी गति से सीखने वाले, प्रत्यक्ष रूप से विकलांग *(Perceptually Handicapped)* आदि नामों से पुकारा जाता था। लेकिन 'अधिगम-असमर्थ' *(Learning Disabled)* शब्द का प्रयोग किये जाने का सभी माता-पिता के स्वागत किया।

कावेल और फोरनैस *(Kavale & Forness)* के अनुसार, "अधिगम-असमर्थता सहित लोग उसी तरीके से या उतनी दक्षता से नहीं सीखते जितना अधिगम-समर्थी लोग सीख लेते हैं। चाहे उनके पास सामान्य बुद्धि क्यों न हो, फिर भी उनका शैक्षिक निष्पादन अपने अन्य कक्षा के साथियों से बहुत पीछे होता है। कुछ गणित सीखने में बहुत कठिनाई का सामना करते हैं तथा लिखने और पढ़ने में मास्टरी करना उनके लिए कठिन चुनौती होती है।" *(People with learning disabilities do not learn in the same way or as efficiently as their non-disabled peers. Although most possess normal intelligence, their academic performance is significantly behind their class mates. Some have great difficulty in learning mathematics, but most find the mastery of reading and writing to be their most difficult challenge.)*

—Kavale & Forness)

अमेरिका का अधिगम असमर्थ बच्चों, विकलागों की राष्ट्रीय सलाहकार समिति *(Association of Children with Learning Disabilities, USA, 1967)* के अनुसार, "अधिगम असमर्थ बच्चे वे होते हैं, जिनकी केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में अकार्यपरकता *(Dysfunctions)* होती है और यह अकार्यपरकता प्राथमिक रूप से बाधित अधिगम कुशलता *(Impaired Learning Efficiency)* द्वारा अभिव्यक्त होती है।"

(Children with learning disabilities are those children who have central nervous system dysfunctions which is expressed primarily in impaired learning efficiency).

–National Advisory Committee (USA) for Handicapped (1969)

–Association of Children with Learning Disabilities, U.S.A. (1967)

Scanned with OKEN Scanner

अधिगम असमर्थ बच्चों की विशेषताएँ
(Characteristics of Learning Disabled Children)

अधिगम असमर्थ बच्चों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित होती हैं–

1. बोली जाने वाली भाषा का विलम्बित विकास (Delayed Spoken Language Development)—बोली जाने वाली भाषा के विकास में अधिगम-असमर्थी बच्चे पिछड़े हुए होते हैं। वे अपनी हम उम्र या कक्षा के साथियों के साथ मुकाबला नहीं कर पाते। इनका शब्द-भंडार भी बहुत ही सीमित होता है। वे अपने अपरिपक्व शब्द भंडार के लिये भी जाने जाते हैं। सामान्यतः वे व्याकरण सम्बन्धी बहुत-सी गलतियाँ करते हैं। तर्कपूर्ण क्रम में विचारों को व्यवस्थित करने में इन्हें कठिनाई होती है। वे शब्दों का नियमित सामूहीकरण भी नहीं कर पाते हैं। इनकी भाषा असंगठित हो जाती है जब वे कुछ कारणों पर एक साथ बहस छेड़ते हैं। वे केन्द्रीय बिन्दु से विचलित हो जाते हैं और साथ वाले विचार को स्पर्श कर जाते हैं। वे लम्बी वार्ता और जटिल वार्ता को भूल जाते हैं।

2. अपर्याप्त समय संप्रत्यय (Inadequate Time Concept)—ऐसे बच्चों में समय का संप्रत्यय नहीं होता। उन्हें कार्य को सम्पन्न करने में लगने वाले समय का कोई अनुमान नहीं होता। अधिगम असमर्थ बच्चे अपनी प्राथमिकताएँ संगठित करने में असफल होते हैं। समय, घड़ी, कैलेन्डर के बारे में इनकी संवेदना बड़ी निम्न स्तर की होती है। इसी प्रकार इनमें दिन, सप्ताह, महीने, वर्ष आदि का भी अधिक ज्ञान नहीं होता। समय की इकाइयों का भी इन्हें ज्ञान नहीं होता।

3. सम्बन्ध पर निर्णय में कठिनाई (Difficulty in Judging Relationship)—अधिगम असमर्थी बच्चों में इस निर्णय का अभाव रहता है कि क्या महत्त्वपूर्ण है और क्या महत्त्वपूर्ण नहीं है? इससे अनिगनत पैंसिल अकुशलता उत्पन्न होती है तथा कार्य सम्पन्न करने में असफल होते हैं। कुछ बच्चे जमा और घटाने के चिह्न में कोई अन्तर नहीं कर पाते।

4. निम्न मानवीय डैक्टैरिटी (Poor Manual Dexterity)—इसमें पैंसिल के संभालने में अयोग्यता, पुस्तक पकड़ने में अयोग्यता या दरवाज़े का हैंडल पकड़ने में अयोग्यताएं आदि शामिल हैं। ये बच्चे नये यंत्रों को संभालने में भी कठिनाई का अनुभव करते हैं। वे आमतौर पर यह भूल जाते हैं कि उन्होंने क्या करना है या उन्होंने कुशलतापूर्वक कैसे करना है या अपने बहुत से कार्यों में कैसे रोकना है ताकि दिन-प्रतिदिन के जीवन के हर पक्ष से कैसे व्यवहार किया जाये तथा कम से कम परिश्रम करना पड़े।

5. निम्न स्तरीय गत्यात्मक समन्वय (Poor General Motor Coordination)—इसमें बार-बार गिरने की प्रवृत्ति, निम्न स्तरीय समन्वय, निम्न स्तरीय संतुलन आदि शामिल हैं। ऐसे बच्चे हर हाथ से उसी समय कार्य करने में अयोग्य होते हैं। वे हाथों से विभिन्न क्रियाएं करने में सक्षम नहीं होते। कई बार वे हाथों और पावों से एक साथ क्रियाएँ करने में सक्षम नहीं होते। वे बहुत बेआरामी, बेचैनी अनुभव करते हैं और ध्यान-विस्तार *(Attention span)* बहुत कम होता है। ऐसे बच्चे आलसी और बहुत ही असगंठित होते हैं। अधिगम असमर्थी बच्चे ऐसे सन्देशों से अनभिज्ञ होते हैं जो आँखों के सम्पर्क से, चेहरे के हाव-भावों से, पहनावे से, क्रियाओं आदि से सूचित होते हैं। इनमें वस्तुओं के आकार, स्वरूप आदि का भी अहसास नहीं होता। इस प्रकार इनमें निम्न स्तर का गत्यात्मक समन्वय *(Motor Coordination)* होता है।

6. प्रत्यक्षीकरण दोष (Perceptual Disorders)—उद्दीपनों की व्यक्ति द्वारा की गई व्याख्या ही प्रत्यक्षीकरण है। प्रत्यक्षीकरण एक ज्ञानात्मक प्रक्रिया *(Cognitive Process)* है, जो संवेदना के आंकड़ों *(Sensor Data)* की पहचान करती है, उन्हें संगठित करती है और उन्हें अर्थपूर्ण सूचना में बदलती है। प्रत्यक्षीकरण प्रक्रियाओं में विभेदीकरण *(Discrimination)*, समन्वयीकरण *(Coordination)* और क्रम में करना *(sequencing)* आदि शामिल हैं। विभेदीकरण के अन्तर्गत विभिन्न पक्षों में अन्तर ढूँढा जाता है, समन्वयीकरण के अन्तर्गत सूचनाओं को एकीकृत किया जाता है। सूचनाओं के दो या अधिक सूचना स्रोतों *(Sources)* से सूचनाओं को एकीकृत किया जाता है। क्रम की प्रक्रिया के अन्तर्गत उद्दीपकों को क्रमबद्ध किया जाता है। अधिगम असमर्थी इन सभी क्षेत्रों में प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाओं में कठिनाई अनुभव करते हैं। प्रत्यक्षीकरण दोषों में शामिल हैं–दृष्टि दोष, श्रवण दोष, स्पर्श दोष आदि।

Scanned with OKEN Scanner

7. स्मृति दोष (Memory Disorder)—आजकल स्मृति को एक गतिशील प्रक्रिया माना जाता है, जो हमें जटिल पर्यावरणीय सूचना को संगठित करने और भंडारित *(Store)* करने में सहायता देती है। स्मृति एक जटिल प्रक्रिया है, जिसे शोधों के बावजूद भी अभी तक समझा नहीं जा सका। स्मृति सम्बन्धी दोषों में श्रवण या दृष्टि दोष शामिल होते हैं। अधिगम असमर्थी *(Learning Disabled)* दोनों प्रकार के दोषों का सामना करते हैं। वे कई बार यह भूल जाते हैं कि उनके कमरे या दरवाज़ा या बैड किधर है। कई बार तो वे 3 शब्दों को सुनने के तत्काल बाद की उनके क्रम के अनुसार भूल जाते हैं। इस प्रकार श्रवण में न्यूनता उनके अधिगम *(Learning)* को बुरी तरह से प्रभावित करती है।

8. हाईपर क्रिया (Hyper Activity)—'हाईपर' *(Hyper)* शब्द का अर्थ है—'अतिरिक्त या सामान्यतः से अधिक।' क्रिया का सम्बन्ध 'हलचल' से है। हाईपर क्रियाओं में शामिल हैं—विश्राम हीनता *(Restlessness)* वाले व्यवहार। अधिकतर अधिगम असमर्थी बच्चे हाईपर एक्टिव *(Hyper active)* होते हैं। वे चुपचाप नहीं बैठ सकते। जिनमें ध्यान का अभाव होता है वे ऐसे ही होते हैं। हाईपर क्रिया लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में अधिक होती है। ऐसे बच्चों की शैक्षिक समस्याएँ सामान्य बच्चों की तुलना में अधिक होती है।

9. 'ध्यान का अभाव या अवधान का होना (Inattention)—अधिगम असमर्थी बच्चे किसी एक क्रिया पर सामान्य समय के लिये केन्द्रित रहने में बहुत कठिनाई का सामना करते हैं। ध्यान एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया है, जो हमें आस-पास के उद्दीपकों की चयनित विशेषताओं पर ध्यान केन्द्रित करने के योग्य बनाती है। अवधान को दो भागों में बाँटा जा सकता है—चयनित ध्यान और स्थाई ध्यान *(Selective and Sustained Attention)*। स्थाई ध्यान का सम्बन्ध उस ध्यान से है, जिसे हम कुछ समय के लिये बनाये रखते हैं। चयनित ध्यान कुछ महत्त्वपूर्ण उद्दीपकों को पहचानने की योग्यता है। अधिगम असमर्थी *(Learning Disabled)* बच्चों में दोनों का ही अभाव रहता है। कक्षा में ध्यान देने में योग्यता का न होना इन बच्चों की विशेषता होती है।

10. दिशा सम्बन्धी भ्रम (Direction Related Confusion)—इसमें शामिल हैं—दांएं, बाएं, उत्तर, पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, ऊपर, नीचे आदि। संप्रत्ययों *(Concepts)* को प्रयोग करने की योग्यता। ऐसे अधिगम असमर्थी बच्चों में नक्शों की सूचना समझने की योग्यता नहीं होती है। वे सड़क की दिशाएँ भी कई बार भूल जाते हैं।

11. स्थान-ज्ञान का अभाव (Poor Spatial Orientation)—अधिगम-असमर्थी बच्चे नये वातावरण से परिचित होने में कठिनाई अनुभव करते हैं। वे कई बार भवनों के कम्पलैक्स में रास्ता भूल जाते हैं। वे जटिल मकैनिकल कार्यों को भूल जाते हैं तथा यह भी भूल जाते हैं कि दूसरे लोग ऐसे जटिल कार्य कैसे करते हैं। जब ये बच्चे किसी जटिल कार्य का सामना करते हैं जो वे जोश दिखाते हैं और उसे बिना सोच समझे करने लग जाते हैं। इनकी कोई योजना नहीं होती अर्थात् किसी जटिल कार्य को करने के लिये ये किसी योजना की ओर ध्यान नहीं देते।

अधिगम-असमर्थता के कारण *(Causes of Learning Disability)*

यह बहुत ही कठिन होता है कि बच्चों की अधिगम-असमर्थता के विशेष कारणों का विशेषीकरण किया जाये। संभावित कारणों को हम निम्नलिखित तीन वर्गों में बांट सकते हैं—

1. आंगिक और जैविक कारक *(Organic and Biological Factors)*
2. जननिक कारक *(Genetic Factors)*
3. पर्यावरणीय कारक *(Environmental Factors)*

1. आंगिक और जैविक कारक (Organic and Biological Factors)—कई विद्वानों का मत है कि अधिगम असमर्थी बच्चों में केन्द्रीय नाड़ी संस्थान *(Central Nervous System)* में दोष *(Dysfunction)* आ जाता है या वह कार्य नहीं करता। उनका मस्तिष्क कुछ कम कार्य करता है। लेकिन कुछ विद्वान यह बात मानने को तैयार नहीं हैं। इस सम्बन्ध में किया गया प्रारम्भिक शोध कार्य पुराने तरीकों से किया गया

Scanned with OKEN Scanner

था, लेकिन आजकल मस्तिष्क की क्रियाओं का मूल्यांकन बहुत विकसित तकनीक से किया जाता है। केन्द्रीय नाड़ी संस्थान के दोषयुक्त होने के लिये बुखार, चोट, समय के पहले जन्म तथा जन्म के समय लापरवाही आदि परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं।

2. जननिक (Genetic Factors)—ऐसे बहुत से प्रमाण हैं जो इस बात की ओर संकेत करते हैं कि अधिगम असमर्थता एक परिवार से दूसरे परिवार में स्थानान्तरित होती है। पर्याप्त अध्ययन यह बताते हैं कि अधिगम असमर्थताओं का कारण वंशानुक्रम *(Heredity)* होता है, विशेषकर गंभीर अधिगम असमर्थता। जैसे अध्ययन यह बताते हैं कि जब जुड़वाँ बच्चों में से एक बच्चा पठन असमर्थी हो तो दूसरे में भी पठन असमर्थता *(Reading Disability)* की संभावना होती है। लेकिन ऐसा तभी होता है जब ये जुड़वाँ समरूप जुड़वाँ *(Identical twins)* होते हैं। बन्धुत्व जुड़वाँ *(Fraternal twins)* में ऐसा नहीं होता।

3. पर्यावरणीय कारक (Environmental Factors)— पर्यावरणीय कारकों की सूची तैयार करना बहुत ही कठिन होता है। पर्यावरणीय परिस्थितियों के शिकार बच्चे अधिगम समस्याओं का अधिक सामना करते हैं। पर्यावरणीय कारकों में प्रमुख कारक है—खराब शिक्षिण। विद्वानों का मत है कि यदि अध्यापक बच्चों के सीखने की समस्याओं की ओर स्कूल के प्रारम्भिक दिनों में ही ध्यान दे तो कुछ अधिगम असमर्थताओं को टाला जा सकता है। अधिगम असमर्थता के लिये बच्चों का शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक पर्यावरण भी उत्तरदायी होता है। उदाहरणार्थ, नशीली दवाओं का सेवन, आवश्यकता से अधिक भावुक होना, कुपोषण, सिर पर चोट का लगना तथा दुर्घटना आदि।

अधिगम असमर्थियों की पहचान
(Identification of Learning Disabled)

अधिगम असमर्थियों की पहचान के लिये मूल्यांकन प्रक्रिया *(Assessment Procedure)* के सुदृढ़ करना होगा। मूल्यांकन प्रक्रिया को हम निम्नलिखित दो भागों में बाँट सकते हैं—

(a) अनौपचारिक मूल्यांकन *(Informal Assessment)*

(b) औपचारिक मूल्यांकन *(Formal Assessment)*

(a) अनौपचारिक मूल्यांकन (Informal Assessment)—अनौपचारिक मूल्यांकन में विद्यार्थी के दैनिक व्यवहार का अवलोकन *(Observation)*, विद्यार्थी की परीक्षा में उपलब्धि तथा विद्यार्थियों के साथ बहस आदि शामिल हैं। इसके विद्यार्थियों के बारे में आंकड़े एकत्रित करने में सहायता मिलती है और ये अनुदेशनात्मक रूप से *(Instructionally)* सम्बद्ध *(Relevant)* होते हैं। अनौपचारिक मूल्यांकन के माध्यम से विद्यार्थियों पर अध्यापक प्रत्यक्ष रूप से नजर रख सकता है। अनौपचारिक मूल्यांकन भी विभिन्न प्रकार का हो सकता है। जैसे—

1. पाठ्यक्रम पर आधारित मूल्यांकन *(Curriculum based assessment)*
2. मापदंड संदर्भित मूल्यांकन *(Criterion referenced assessment)*
3. अवलोकन *(Observation)*
4. साक्षात्कार, प्रश्नावली, चैकलिस्ट आदि। *(Interviews, Questionnaires, Check Lists etc.)*

पाठ्यक्रम पर आधारित मूल्यांकन में शामिल हैं—पाठ्यक्रम आधारित मापन, अनुक्रिया और त्रुटि विश्लेषण *(Response and Error Analysis)*, कार्य-विश्लेषण *(Task Analysis)* तथा अध्यापक निर्मित परीक्षण *(Teacher Made Tests)*।

(b) औपचारिक मूल्यांकन (Formal Assessment)—यह सर्वमान्य है कि अधिगम असमर्थता की पहचान किसी एक मूल्यांकन यंत्र *(Assessment Instrument)* द्वारा संभव नहीं। किसी एक असमर्थता *(Disability)* का निदान *(Diagnosis)* कोई एक घटना नहीं होती। यह लक्ष्य-केन्द्रित प्रक्रिया होती है, जो प्रश्नों की शृंखला द्वारा निर्देशित होती है। इन प्रश्नों के उत्तरों

Scanned with OKEN Scanner

द्वारा आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। इस प्रक्रिया के विभिन्न चरणों पर उन विद्यार्थियों के लिये उन्हीं परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है, जो मंदबुद्धि, संवेगात्मक रूप से विचलित तथा अधिगम-असमर्थी होते हैं। जो परिणाम इन परीक्षकों से प्राप्त होते हैं उन्हीं के द्वारा अधिगम असमर्थियों की पहचान की जाती है।

औपचारिक मूल्यांकन का प्रयोग आमतौर पर वैयक्तिक रूप से *(Individually)* किया जाता है और प्रमाणीकृत *(Standardized)* परीक्षकों द्वारा किया जाता है। आमतौर पर मापदंड संदर्भित परीक्षणों *(Norm Referenced Tests)* का ही प्रयोग किया जाता है। ये परीक्षण वे होते हैं, जिनके अंकों की औसत-निष्पादन *(Average Performance Norms)* अर्थात् मापदंड *(Norms)* से तुलना की जाती है। औपचारिक मूल्यांकन के लिये कई परीक्षण हैं, जिसके द्व ारा अधिगम असमर्थी की पहचान की जा सकती है। इसका विस्तृत विवरण रैड्डी, रामर और कुसुमा *(1999)* की पुस्तक 'अधिगम असमर्थताएं प्रयोगकर्ताओं के लिये एक गाईड' *(Learning Disabilities: A Practical Guide to Practitioners)* में दिया गया है।

अधिगम असमर्थी बच्चों की शिक्षा (Education of Learning Disabled Children)—अधिगम असमर्थी बच्चों की शिक्षा के लिये विभिन्न संभावित कार्यक्रम हैं। ये संभावित कार्यक्रम निम्नलिखित उपागमों के रूप में निम्नलिखित हैं—

1. व्यवहारात्मक हस्तक्षेप *(Behavioural Interventions)*
2. ज्ञानात्मक व्यवहारात्मक हस्ताक्षेप *(Cognitive Behavioural Interventions)*
3. चिकित्सा-आधारित हस्तक्षेप *(Medically Based Interventions)*
4. बहु-इन्द्रिय उपागम *(Multisensory Approach)*
5. प्रत्यक्ष अनुदेशन *(Direct Instruction)*

1. व्यवहारात्मक हस्तक्षेप (Behavioural Interventions)— इसमें बदलते हुए सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण व्यवहारों का अवलोकन किया जाता है। वातावरणीय कारणों को क्रमबद्ध तरीके से व्यवस्थित किया जाता है ताकि वृद्धि, परिवर्तन या आकार को लक्षित किया जा सके। व्यवहारों में परिवर्तनों का सर्वप्रथम प्रयास किया जाना चाहिये। व्यवहारों को बदलने के लिये अध्यापक को चाहिये कि सर्वप्रथम वह व्यक्ति की आवश्यकताओं की सूची बनाए और फिर बदले जाने वाले व्यवहारों को लक्षित करके उनका चयन करे। अधिगम-असमर्थी बच्चों को पुनर्बलन *(Reinforcement)* प्रदान करना चाहिये, जैसे—प्रशंसा करना।

2. ज्ञानात्मक व्यवहारात्मक हस्तक्षेप (Cognitive Behavioural Interventions)—कार्य के दौरान व्यवहारों में बुद्धि के प्रभावशीलता के शोध कार्यों का भी समर्थन प्राप्त है। आत्म नियंत्रण का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया। इस विधि द्वारा अवधान सम्बन्धी व्यवहारों *(Attention Behaviours)* को परिवर्तित किया जाता है। आत्म-नियंत्रण *(Self Monitoring)* विधि स्वयं के व्यवहारों का बार-बार मूल्यांकन करने की योग्यता है ताकि उनमें सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सके।

3. चिकित्सा आधारित हस्तक्षेप (Medically Based Interventions)–यदि अवधान-समस्याएँ हाईपर-क्रिया *(Hyper–Activity)* के कारण हैं तो चिकित्सा विज्ञान *(Medical Science)* मुख्य भूमिका निभा सकता है। यदि कोई विद्यार्थी हाईपर-सक्रिय *(Hyper Active)* है तो उसे सीखने में समस्या आ सकती है। जब अवधान सम्बन्धी समस्याएँ आती हैं तब व्यवहारात्मक हस्तक्षेप और आत्म-नियंत्रण *(Behavioural Intervention and Self Monitoring)* जैसी विधियों का प्रयोग करना चाहिये। यदि ये विधियाँ प्रभावी न हों तब दवा का प्रयोग करना चाहिये।

हाईपर-क्रिया के लिये आमतौर पर जिस दवा का चयन किया जाता है—वह है 'एम्फिटा माईन परिवार' *(Amphetamine Family)*। अवधान *(Attention)* की कमी को पूरा करने के लिये दवाओं का सुझाव दिया जाता है। वे है— साईलर्ट *(Cylert)*, रिटालिन *(Ritalin)* और डैक्सीड्रीन *(Dexedrine)* प्रभावशीलता के लिहाज से ये दवाएं भिन्न हैं। रिटालिन और डैक्सीड्रीन आधे घंटे से भी कम समय में यह प्रभावशाली हो जाती है। लेकिन साईलर्ट *(Cylert)* चार सप्ताहों का समय लेती है अपना असर दिखाने के लिये। साईलर्ट दिन में एक बार ली जाती है और इसका असर भी लम्बे समय तक के लिए रहता है, जबकि सिटालिन और

Scanned with OKEN Scanner

डैक्सीड्रीन का असर केवल उसे 5 घंटे तक रहता है। अतः स्कूल में ही इस दवा की दूसरी खुराक देनी पड़ती है। दवा के कुछ कुप्रभाव भी होते हैं जैसे—हल्का-सा नशा इनसोमनिया *(Insomnia)* सिरदर्द। ये प्रभाव आमतौर पर थोड़े समय के लिये होते हैं।

4. बहु-इन्द्रिय उपागम (Multisensory Approach)— दृष्टि और दृष्टि-कौशलों के लिये बहुत से कार्यक्रम विकसित किये गये हैं तथा कई मनोभाषायी प्रक्रियाएँ *(Psycholinguistic processes)* भी विकसित की गई हैं। बहु-इन्द्रिय कार्यक्रम शैक्षिक सामग्री के साथ प्रत्यक्ष रूप से कार्य करने पर बल देते हैं। बहु-इन्द्रिय विधियों में बच्चे की इन्द्रीय प्रणाली के संयोग *(Combination)* पर बल देती हैं। इसमें अवधारण ा यही होती है कि यदि एक से अधिक द्वन्द्वी अधिगम-अनुभवों में भाग लेती है तब बच्चे बेहतर सीखते हैं। उदाहरण—फरनाल्ड *(Fernald)* की *VAKT* विधि। इसमें *V(Visual), A(Auditory), K(Kinesthetic)* तथा *T (Tactual)* है। शब्दों को सीखने के लिये, सर्वप्रथम बच्चा शब्द को देखता *(Visual)* है। फिर अध्यापक से ही 'शब्द' सुनता *(Auditory)* है। फिर बच्चा उसी शब्द को बोलता *(Auditory)* है तथा अन्त में बच्चा उसी शब्द को ढूँढ़ता *(Kinaesthetic and tactual)* है।

5. प्रत्यक्ष अनुदेशन (Direct Instruction)— 'प्रत्यक्ष अनुदेशन' अनुदेशन के सभी पक्षों को देखने का एक जटिल तरीका है, जिसमें कक्षा का संयोजन *(Classroom organisation)* तथा प्रबन्धन, अध्यापक-छात्र अन्तर्क्रिया की गुणवत्ता, अनुदेशनात्मक सामग्री का डिजाईन तथा सेवाकालीन अध्यापक प्रशिक्षण की प्रकृति आदि शामिल हैं जो असमर्थी बच्चे प्रत्यक्ष अनुदेशन द्वारा सीखते हैं वे उन बच्चों की अपेक्षा बेहतर निष्पादन *(Performance)* करते हैं जो परोक्ष *(Indirect)* विधियों द्वारा करते हैं।

6. अन्य विधियाँ (Other Methods)— उपरोक्त उपागमों के अतिरिक्त कुछ अन्य विधियाँ भी हैं, जिनके द्वारा हम अधिगम-असमर्थी की शिक्षा व्यवस्था कर सकते हैं। वे विधियाँ हैं—

(i) अलग विद्यालय *(Separate School)*

(ii) इनके लिये अलग कक्षाओं *(Separate Classes)* की व्यवस्था हो।

(iii) असमर्थी बच्चों की अलग समस्याओं के होने के कारण अध्यापकों का प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है।

(iv) ऐसे बच्चों का पाठ्यक्रम भी विशेष तौर पर तैयार किया जाना चाहिये।

(v) ऐसे बच्चे वर्तनी *(Spelling)* के क्षेत्र में कमजोर होते हैं। इस कमी की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिये।

(vi) विषय की दृष्टि से ऐसे बच्चे आमतौर पर गणित में कमजोर होते हैं। इस क्षेत्र में भी विशेष ध्यान दिया जा सकता है।

(vii) ऐसे बच्चों का यदि हस्तलेख *(Hand writing)* स्पष्ट नहीं है तो इन्हें हस्तलेख का प्रशिक्षण शुरू से ही दिया जाना चाहिए ताकि इन्हें शुरू से ही अक्षरों के ज्ञान, आकार, बनावट, क्रम आदि का ज्ञान हो।

◆◆◆

धीमी गति से सीखने वाले अधिगमकर्ताओं तथा डिस्केक्सिया ग्रस्त बालक (Slow learners and Dyslexies)

2. धीमी गति से सीखने वाले बालकों तथा डिस्लेक्सिया ग्रस्त बालकों की क्या विशेषताएँ हैं? इनकी शिक्षा के लिए क्या किया जा सकता है?
(Describe the characteristics of slow learners andy dyslexies. What can be done for their education?)

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

धीमी गति से सीखने वाले बालकों तथा डिस्लेक्सिया ग्रस्त बालकों से आप क्या समझते हैं? इनके मुख्य कारणों, समस्याओं तथा बालकों के पिछड़ेपन को दूर करने के उपायों का वर्णन करें। (What do you understand by slow learner and dyslexies? Explain their main causes problems and measures to eradicate children's backwardness.)

उत्तर–अर्थ (Meaning)—धीमी गति से सीखने वाले बच्चे वे होते हैं जिनकी सीखने की गति बहुत ही धीमी होती है। ऐसे बच्चों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। जब अध्यापक इनकी ओर ध्यान देने लगता है तब अन्य बच्चों को हानि उठानी पड़ती है। तब अन्य बच्चों के लिए शिक्षण नीरस बनने लगता है तथा अधिगम विकलांग बच्चे हर कार्य में पीछे रह जाते हैं। अन्य बच्चों के साथ ये नहीं चल पाते। कक्षा में साधारण से साधारण कार्य में भी उनकी कोई प्रगति नहीं होती। पढ़ाई में तो ये बहुत ही कमज़ोर रहते हैं। परीक्षा-परिणाम संतोषजनक नहीं होते। ऐसे बच्चे और बच्चों से विचलित *(Deviated)* हो जाते हैं। यदि ऐसे बच्चों की समय पर पहचान कर ली जाये तो उनमें उपयोगी नागरिक बनने की क्षमता होती है तथा वे प्रभावी जीवन व्यतीत कर सकते हैं। ऐसे बच्चों की पढ़ने और गणित तर्क में दुर्बलताएं होती हैं। अपनी कमियों के कारण ये बच्चे स्कूल से भागने लगते हैं।

डिस्लेकिसया ग्रस्त बालक (Dyslexies)

डिस्लेक्सिया ग्रस्त बालक वे बालक होते हैं जिनमें लिखे गए शब्दों को पहचानने तथा समझने में कठिनाई महसूस होती है। उनका पठन कार्य काफी धीमा होता है। उनमें पठन-लेखन तथा गिनती सम्बन्धी अधिगम कठिनाई होती है। इससे बच्चों के पठन स्तर तथा बौद्धिक स्तर में एक अन्तराल पैदा हो जाता है।

धीमी गति से सीखने वाले तथा डिस्लेकिसया ग्रस्त बच्चों की विशेषताएँ *(Characteristics of Slow Learner and Dyslexies Children)*

अधिगम विकलाँग या धीमी गति से सीखने वाले तथा डिस्लेकिसया बच्चों की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

1. इनमें मानसिक केन्द्रीकरण *(Mental Concentration)* कम होता है।
2. ऐसे बच्चों में शब्द भंडार भी सीमित होता है।
3. उनका ध्यान-विस्तार *(Span of attention)* भी कम होता है।
4. ये बच्चे मानसिक कार्य की अपेक्षा शारीरिक कार्य अधिक अच्छी तरह से कर सकते हैं।
5. इनमें समस्या-समाधान, चिन्तन या तर्क की योग्यता नहीं होती।
6. इनमें सामान्य बुद्धि *(Common Sense)* और निर्णय करने की क्षमता कम होती है।
7. इन बच्चों में धीमी गति से सीखने की आदत होती है तथा इनमें विस्मृति *(Forgetting)* भी शीघ्र और अधिक होती है।
8. इनमें सृजनात्मकता *(Creativity)* और मौलिकता का अभाव होता है।
9. शब्दों और विचारों के बीच सम्बन्ध बनाने की गति बहुत धीमी होती है।
10. नई परिस्थितियों में परिचित तत्त्वों को ढूँढने में भी ये असमर्थ होते हैं।

रोस्टर (Roster) के अनुसार ऐसे बच्चों की विशेषताएं निम्नलिखित होती हैं–

1. धीमी गति से सीखने वाले बच्चे सौंपे गये कार्य को करने और उसे समझने में सक्षम नहीं होते।
2. तर्क और सामान्य ज्ञान का अभाव रहता है।
3. जटिल खेल नियमों को समझने के अयोग्य होते हैं।
4. स्वतंत्र रूप से कार्य करने के अयोग्य होते हैं।
5. ये शीघ्र ही असमंजस की स्थिति *(State of confusion)* में आ जाते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

6. ऐसे बालक सभी पक्षों – सामाजिक, शैक्षिक, संवेगात्मक और शारीरिक पक्षों में बहुत धीमे होते हैं।
7. ऐसे बालक खेल के नियमों का उल्लंघन तो कर सकते हैं, लेकिन इसका उन्हें ज्ञान नहीं होता।
8. ऐसे बच्चों की रुचियाँ तथा ध्यान विस्तार *(Span of Attention)* भी सीमित होते हैं।
9. शैक्षिक कार्यों में कक्षा के साथ-साथ नहीं चल सकते।
10. वे स्वयं केन्द्रीयकरण *(Concentration)* करने में समर्थ नहीं होते।
11. कक्षा में सामान्य उपलब्धियों में भी ये बहुत पीछे रह जाते हैं।

धीमी गति से सीखने वाले बालकों की पहचान *(Identification of Slow Learners)*

अधिगम विकलाँग बालकों की पहचान के लिये निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जा सकता है–

(i) **विशेषताओं को कसौटी मानकर (On the basis of Characteristics)**–कक्षा में धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की विशेषताओं को कसौटी मानकर पहचाना जा सकता है।

(ii) **प्रामाणिक परीक्षण (Standardized Tests)**–इनकी पहचान के लिये कई प्रामाणिक परीक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे– बुद्धिलब्धि परीक्षण।

(iii) **संचित अभिलेख (Cummulative Record)**–कक्षा में बच्चों का संचित अभिलेख तैयार करते समय उसका अध्ययन करने से ऐसे बच्चों की पहचान हो सकती है। अतः संचित अभिलेख में बच्चों की उपलब्धियों, शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक समायोजन का अभिलेख रखा जा सकता है।

(iv) **अवलोकन (Observation)**–कक्षा में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान बच्चों का निरन्तर अवलोकन करते रहने से भी कई बार धीमी गति से सीखने वाले बच्चों के बारे में पता चल सकता है।

(v) **अध्यापकों और माता-पिता के विचार (Opinions of Parents and Teachers)**–अध्यापकों को कक्षा में किसी भी बच्चे के बारे में अपनी राय निर्मित करने से पहले स्कूल के अन्य अध्यापकों तथा उसे बच्चे के माता-पिता के उस बच्चे के बारे में जानना अति आवश्यक होता है।

धीमी गति से सीखने के कारण के कारण *(Causes of Slow Learning)*

1. शारीरिक कारण (Physical Causes)–कई बार अपने शारीरिक दोषों के कारण बच्चों के सीखने की गति धीमी हो जाती है। वे सामान्य बालकों की तरह कार्य नहीं कर सकते। जैसे–अकसर बीमार रहना, दृष्टि सम्बन्धी दोष, सुनने के दोष, बोलने में दोष, मस्तिष्क पर चोट लगना, शरीर का कोई अंग भंग होना। इन दोषों के कारण बच्चों में हीन-भावनाएं पैदा होने लगती हैं तथा वे कक्षा से दूर-दूर रहने लगते हैं। उसके परिणामस्वरूप वे कक्षा में हर काम में पिछड़ जाते हैं।

2. व्यक्तिगत ध्यान की कमी (Lack of Personal Attention)–कक्षा में अकसर व्यक्तिगत ध्यान का अभाव रहता है। धीमी गति से सीखने वाले बच्चे व्यक्तिगत ध्यान के अभाव में बहुत पीछे रह जाते हैं तथा कुछ भी सीख नहीं पाते। प्रतिभाशाली बच्चे तो कुछ न कुछ सीख जाते हैं, लेकिन अधिगम विकलाँग बच्चे कुछ नहीं सीख पाते।

3. बुद्धि का अभाव (Lack of Intelligence)–ऐसे बालकों में कई बार बुद्धि का अभाव रहता है, जिसके परिणामस्वरूप इनमें बौद्धिक योग्यताओं की कमी हो जाती हैं। इनकी स्मरण शक्ति भी कमज़ोर हो जाती है तथा उनका मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। दौरे पड़ना, कक्षा में असामान्य व्यवहार आदि आम हो जाता है। ऐसे बालक कक्षा में हर कार्य में पिछड़ने लगते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

4. विद्यालय का अनुचित वातावरण (School Environment)—कई बार स्कूलों में अनुचित वातावरण भी बच्चों के अधिगम करने की गति में बाधा डालता है। जैसे— अप्रशिक्षित अध्यापक, स्कूल भवन का दोषपूण f होना, त्रुटिपूर्ण पाठ्यक्रम, त्रुटिमय समय सारिणी, प्रेरणा का अभाव, अपर्याप्त सहगामी क्रियाएँ इत्यादि।

5. कक्षा में अनियमितता (Irregularity in Class)—कक्षा में नियमित न होना भी धीमी गति से सीखने वाले का एक मुख्य कारण हो सकता है। कक्षा में दो-चार दिन भी अनुपस्थित रहने से उनके अध्ययन में निरन्तरता समाप्त हो जाती है तथा उन्हें आगे कुछ समझ नहीं आता। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चा उस विषय में पिछड़ जाता है।

6. माता-पिता का दृष्टिकोण (Parent's Attitude)—कई बार इस प्रकार के बालकों के प्रति उनके माता-पिता का दृष्टिकोण सही नहीं होता। वे इन बच्चों के प्रति अधिक कठोर रूख अपनाते हैं। माता-पिता की ओर से इन बच्चों को न तो स्नेह मिलता है और न ही सहानुभूति। इन अभावों का प्रभाव बच्चे के अधिगम पर पड़ने लगता है तथा वह सीखने की प्रक्रिया में पिछड़ जाता है।

7. स्थानान्तरण की समस्या (Problem of Transfer)—कई बच्चे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित होते हैं तो उनका अधिगम कुप्रभावित होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से पाठ्यक्रम तथा वातावरण में परिवर्तन आता है। कई बार नये स्थान पर बच्चे स्वयं को समायोजित नहीं कर पाते। इससे बच्चे धीमी गति से सीखने वाले बन जाते हैं।

8. संवेगात्मक कारण (Emotional Causes)—कई परिस्थितियों में बच्चों की संवेगात्मक स्थिति भी उन्हें धीमी गति से सीखने वाले बना देती है। क्रोध, चिन्ता, भय, व्याकुलता, उदासीनता, सुस्ती आदि संवेगात्मक कारकों के परिणामस्वरूप ऐसे बच्चे शिक्षा के क्षेत्र में पीछे रह जाते हैं।

9. पारिवारिक झगड़े (Family Disputes)—कई परिवार आपसी झगड़ों से घिरे रहते हैं। ऐसे झगड़ों के कुप्रभाव बच्चों की संवेगात्मक स्थिति पर पड़ता है तथा बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। वे अपने ध्यान को केन्द्रित करने में असमर्थ रहते हैं।

10. रुचि का अभाव (Lack of Interest)—कई बार किसी विषय में रुचि के अभाव के कारण बच्चों की अधिगम गति धीमी होती है तथा वे कुछ सीखने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की समस्याएँ
(Problems of Slow Learners)

(a) सामाजिक समस्याएँ (Social Problems)—धीमी गति से सीखने वाले बालकों की सामाजिक समस्याएँ भी होती हैं, जैसे—

1. वे समाज में स्वयं को समायोजित नहीं कर पाते।
2. वे स्वयं को हर क्षेत्र में असफल मानते हैं।
3. उनमें हीन-भावना विकसित होती है।
4. मित्रों की संख्या कम होती है।
5. अपराध प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।
6. वे समाज विरोधी कार्यों में संलिप्त हो जाते हैं।
7. वे समाज से अलग रहने लगते हैं।
8. शैक्षिक दृष्टि से अन्य बच्चों के साथ चलना इनके लिये असंभव-सा हो जाता है।

(b) मानसिक समस्याएँ (Mental Problems)

1. ऐसे बच्चों की बुद्धि सामान्य बच्चों से कम होती है।
2. ध्यान विस्तार *(Span of Attention)* भी कम बुद्धि के कारण कम ही होता है।
3. कक्षा में उपलब्धि का स्तर भी कम होता है।
4. निरन्तर असफलताओं के कारण उनमें हीन-भावना पैदा हो जाती है।
5. वे स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(c) संवेगात्मक समस्याएँ (Emotional Problems)

1. ऐसे बच्चों को निराशाओं का सामना करना पड़ता है।
2. पिछड़ा होने के कारण उन्हें स्नेह तथा सहानुभूति भी नहीं मिलती।
3. बार-बार की असफलताओं के कारण उनके व्यवहार का संतुलन भी बिगड़ जाता है।
4. संवेगात्मक रूप से वे अस्थिर होने लगते हैं।

(d) स्कूल सम्बन्धी समस्याएँ (School Problems)

1. धीमा अधिगम होने के कारण वे अन्य बच्चों के साथ नहीं चल सकते।
2. सामान्य शिक्षण विधियाँ अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं होती ।
3. स्कूल के सामान्य पाठ्यक्रम से इन बच्चों को कठिनाई होती है।
4. ऐसे बच्चे अपने से नीचे की कक्षा का कार्य भी नहीं कर सकते।
5. अध्यापकों का व्यवहार भी इनके प्रति उचित नहीं रहता।
6. इन विभिन्न कठिनाइयों के कारण ये बालक स्वयं को स्कूल में उचित प्रकार से समायोजित नहीं कर पाते।

धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की शिक्षा
(Education of Slow Learners Children)

धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की सहायता करना अध्यापकों का परम कर्तव्य बन जाता है। इन बच्चों की शिक्षा के लिये एक विशेष योजना तैयार की जानी चाहिए। यदि इन बच्चों को उचित प्रोत्साहन दिया जाए तो इन्हें सामान्य बच्चों की श्रेणी में शामिल किया जा सकता है। अतः ऐसे बच्चे की शिक्षा के लिये विशेष कदम उठाये जाने की आवश्यकता है। इन बच्चों की शिक्षा के लिये निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए–

1. अलग वर्गीकरण करना (Separate Classification)–इस प्रकार के अधिगम द्वारा विकलाँग बालकों को अलग से वर्गीकृत किया जाना आवश्यक है। ऐसा इसलिये आवश्यक है ताकि इन्हें विशेष पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा प्रदान की जा सके। इस वर्ग के बच्चों के लिये विशेष कक्षाओं का निर्माण भी किया जाना चाहिए। विशेष कक्षाओं का निर्माण करते समय इन बातों की ओर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है, जैसे–

(a) कक्षा में बच्चों की संख्या न्यूनतम हो।

(b) छोटी कक्षा के लिये कक्षा का आकार भी उतना ही छोटा होना चाहिए।

इस प्रकार की छोटी कक्षाओं में विद्यार्थियों का समायोजन उचित होता है। इनमें हीन-भावना का भी विकास नहीं होता।

2. विशेष शिक्षण विधियाँ (Special Teaching Methods)–यह तो निश्चित है कि धीमी गति से सीखने वाले बच्चे सभी प्रकार की शिक्षण विधियों से नहीं सीख सकते। उनके लिये विशेष शिक्षण विधि का चयन करना आवश्यक है। उनके लिये ऐसी शिक्षण विधि होनी चाहिए जो धीमी हो। हर बात की विस्तार से तथा सरल भाषा में व्याख्या की जानी चाहिए। धीमी गति से सीखने वाले बच्चे अभ्यास अधिक चाहते हैं। अतः शिक्षण विधियों का चयन बच्चों की धीमी गति के अनुसार ही करना चाहिए।

3. विशेष पाठ्यक्रम (Special Curriculum)–धीमी गति से सीखने वाले बच्चों का पाठ्यक्रम बहुत ही सरल तथा मनोरंजक होना चाहिए। ऐसे बच्चे को स्वयं करके सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिएं। ऐसे बच्चे अमूर्त अधिगम में सक्षम नहीं होते। उन्हें मूर्त अधिगम करवाना चाहिए। उन्हें भविष्य के लिये आत्म-निर्भर बनाना चाहिए।

4. दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग (Use of Audio-Visual Aids)–दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग करके शिक्षण कार्य को उपयोगी, सरल व मनोरंजक बनाया जाना चाहिए। इनके प्रयोग से कठिन से कठिन

Scanned with OKEN Scanner

कार्य को भी सरल बनाया जा सकता है। इस सामग्री के उपयोग से बच्चे अभिप्रेरित भी होते हैं।

5. विशेष स्कूल (Special Schools)—मनोवैज्ञानिकों ने धीमी गति से सीखने वालों के लिये विशेष स्कूलों की व्यवस्था पर बल दिया है। ऐसे स्कूलों में ऐसे विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। उन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है। इन स्कूलों में ये बच्चे स्वयं को अधिक सुरक्षित महसूस करेंगे। उनमें आत्म-विश्वास पैदा होता है। इस सुझाव का एक दूसरा पहलू भी है कि अलग स्कूलों में इन बच्चों का पढ़ाने से वे दूसरे बच्चों से कुछ नहीं सीख पायेंगे। इन अलग स्कूलों में पढ़ाने से बच्चों में हीन-भावना भी जागृत होती है।

6. व्यक्तिगत ध्यान देना (Individual Attention)—अधिगम विकलाँग बालकों की दुर्बलताओं की ओर ध्यान देते हुए उनकी ओर व्यक्तिगत ध्यान देना अति आवश्यक है। ऐसे बच्चों की कठिनाइयों को दूर करके उनमें समायोजन में सहायता की जानी चाहिए।

7. निर्देशन की व्यवस्था (Provision of Guidance)—ये बालक अधिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। अतः उनके भविष्य के लिये इन्हें शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यक रहती है। इन बच्चों को किसी हस्त कार्य में कोई प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हें उनकी रुचियों, अभिरुचियों, योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार निर्देशन दिया जाना चाहिए।

8. सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular Activities)—स्कूलों में इस प्रकार के बच्चों के लिये विशेष सहगामी क्रियाएँ होनी चाहिएँ जिससे इनमें आत्म-विश्वास बढ़ेगा तथा इन्हें सफलता से प्रोत्साहन मिलता है। उन्हें स्कूल जाने की प्रेरणा मिलती है। इन क्रियाओं के प्रभाव से उनमें पढ़ाई के प्रति लगन भी पैदा होती है।

9. अध्यापकों का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार (Sympathetic Behaviour of Teachers)— अधिगम विकलाँग बालकों को अध्यापकों की सहानुभूति चाहिए। उन्हें इन बच्चों के प्रति कठोर नहीं होना चाहिए। जैसे, कक्षा में यदि कोई बच्चा कार्य नहीं करता तो उन्हें कठोर दंड नहीं दिया जाना चाहिए। कक्षा में कार्य न करने के पीछे कोई विशेष कारण हो सकता है, जिसका पता लगाया जाना आवश्यक होता है।

10. कारण ढूँढना (Exploring Causes)—बच्चों के धीमी गति से सीखने के कारणों का पता लगाना अति आवश्यक होता है। इन कारणों का हम विभिन्न विधियों द्वारा पता लगा सकते हैं। इन बच्चों का संचित अभिलेख का विश्लेषण करके कारणों का पता लगाया जा सकता है। इसी प्रकार यदि किसी बालक में सुनने या देखने का दोष है तो उसे कक्षा में ऐसे स्थान पर बिठाना चाहिए जहाँ पर उसे ठीक से दिखाई दे या सुनाई दे। यदि संभव हो तो उसके शारीरिक दोषों को दूर किया जाना चाहिए।

11. वातावरण में परिवर्तन (Changes in Environment)—कई बार धीमी गति से सीखने के दोष के लिये बच्चों का वातावरण मुख्य रूप से उत्तरदायी होता है। इस वातावरण में स्कूल और घर का वातावरण शामिल है। घर का सहानुभूतिपूर्ण तथा स्नेहपूर्ण वातावरण ऐसे बच्चों को सुरक्षा प्रदान करता है तथा उनमें आत्म-विश्वास पैदा करता है। इसी प्रकार स्कूल में अध्यापकों का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार बच्चों में आत्म-विश्वास पैदा करता है।

12. पदोन्नति प्रणाली पर पुनर्विचार (Re-examine Promotion System for Slow Learners)—इन बच्चों की विभिन्न विषयों में पदोन्नति करते रहना चाहिए। कई विषयों में उन्नति करना इनके लिये बहुत कठिन होता है। ऐसे विषयों में ये तब तक कार्य करते रहें जब तक उस विषय में ये निपुणता हासिल नहीं कर लेते।

13. कुछ अन्य प्रभाव (Some other suggestion)—उपरोक्त सुझावों के अतिरिक्त कुछ अन्य सुझाव भी हैं जो कि निम्नलिखित हैं—

1. इनके सम्मुख अधिकतर मौखिक समस्याएं प्रस्तुत की जाएं।
2. गति की अपेक्षा शुद्धता पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
3. कार्य-पुस्तकों *(Work Books)* का प्रयोग किया जाना चाहिए।
4. मूर्त-पदार्थों *(Concrete)* का प्रयोग उचित रहेगा।
5. अमूर्त और सामान्यीकृत नियमों के प्रयोग की अपेक्षा अर्थपूर्ण प्रयोग किया जाना चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

6. तात्कालिक घटनाओं से अवगत कराया जाना चाहिए।
7. लघु-अवधि के लक्ष्य *(Short-term goals)* निर्धारित किये जाने चाहिएं।
8. धीमी गति से सीखने वाले बच्चों को अध्यापक, माता-पिता आदि सभी स्वीकार करें।
9. धीमी गति से सीखने वाले बच्चों के साथ गोष्ठियाँ करनी चाहिएं।
10. उनके नकारात्मक दृष्टिकोणों में परिवर्तन किया जाना चाहिए।
11. अध्ययन की आदतों में सुधार किया जाना चाहिए।

◆◆◆

बौद्धिक या मानसिक दुर्बलता (Intellectual Deficiency)

3. मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त या मन्द-बुद्धि वाले बच्चों का क्या अर्थ है? इनके मुख्य वर्गीकरणों, विशेषताओं तथा कारणों का उल्लेख कीजिए।

अथवा

मन्द-बुद्धि बच्चों के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इनके मुख्य प्रकारों, विशेषताओं तथा कारणों का वर्णन कीजिए।

अथवा

मन्द-बुद्धि बालकों से आपका क्या अभिप्राय है? इनके मुख्य प्रकारों, विशेषताओं तथा कारणों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर–अर्थ (Meaning) : कुछ बालक मानसिक रूप से उप-सामान्य (Sub-normal) होते हैं। ऐसे उप-सामान्य बालक शिक्षा में अध्यापक के शिक्षा कार्य को समझने में असमर्थ होते हैं या आसानी से समझ नहीं पाते। ऐसे बालकों को मन्द-बुद्धि बच्चों की श्रेणी में रखा जाता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि ऐसे बालकों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

बालकों को उनकी बुद्धिलब्धि (Intelligence Quotient) के आधार पर ही वर्गीकृत किया जाता है। **टरमन (Terman)** के अनुसार 70 से कम बुद्धिलब्धि (I.Q.) वाले बालक को 'मन्द बुद्धि' बालक कहा गया है। ऐसे बालक किसी भी शारीरिक तथा मानसिक रोग के कारण मन्द बुद्धि का प्रदर्शन करते हैं और अपनी आयु के स्तर के अनुसार किसी कार्य को करने में असमर्थ होते हैं। इस दोष का परिणाम यह होता है कि उनमें कई प्रकार की हीन-ग्रन्थियाँ (Inferiority Complex) पैदा हो जाती हैं। मन्द-बुद्धि बालक हर ओर से उपेक्षित (Neglected) रहते हैं।

मानसिक रूप से पिछड़े ऐसे बालक संवेगात्मक स्थिरता, सामाजिक परिपक्वता तथा बौद्धिक प्रवीणता में भी पिछड़े रहते हैं। कई बार ऐसे बच्चे शारीरिक रूप से तो परिपक्व हो जाते हैं, लेकिन उनका सामाजिक और संवेगात्मक व्यवहार उनकी आयु के बच्चों से बहुत पिछड़ा हुआ होता है।

आईजैंक (Eysenck) के अनुसार, "मानसिक क्षमताओं का अपूर्ण एवं अपर्याप्त सामान्य विकास ही मानसिक मन्दबुद्धिता कहलाता है।" (Mental retardation is defined as incomplete or insufficient general development of the mental capacities.)

पेज (Page) के अनुसार, "मानसिक मन्द बुद्धिता मानसिक विकास की उप-सामान्य स्थिति है, जो बच्चे में जन्म के समय विद्यमान होती है या प्रारम्भिक बाल्यकाल में पैदा हो जाती है। इसकी मुख्य विशेषता है सीमित बौद्धिकता और सामाजिक अपर्याप्तता।"

(Mental retardation is a condition of sub-normal development present at birth or early childhood and characterized mainly by limited intelligence and social inadequacy.)

Scanned with OKEN Scanner

हेक के अनुसार, "मन्द बुद्धि बालक वे हैं जो किसी कार्य को करने में इसलिए असमर्थ होते हैं, क्योंकि उनमें मानसिक परिपक्वता की कमी होती है।'

मन्द बुद्धि बालकों का वर्गीकरण
(Classification of Mentally Retarded Children)

1. बुद्धिलब्धि के आधार पर वर्गीकरण (Classification on the basis of I.Q.)–बुद्धिलब्धि के आधार पर किया गया वर्गीकरण सभी द्वारा मान्य वर्गीकरण नहीं है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने मन्द–बुद्धि की भिन्न–भिन्न सीमाएँ बताई हैं। लेकिन इस बात पर सभी सहमत हैं कि इन बालकों का मानसिक विकास सामान्य बच्चों की तुलना में बहुत कम होता है। मानसिक क्रियाओं में ये बालक सामान्य बालकों के बराबर नहीं हो सकते।

यूनेस्को (UNESCO) के एक प्रकाशन ने मंदबुद्धि बालकों की बुद्धिलब्धि (I.Q.) के स्तर प्रकाशित किए थे जा इस प्रकार है :

	मानसिक न्यूनता की श्रेणी	लगभग बुद्धि स्तर
1.	जड़ (Idiot)	0—19
2.	हीन बुद्धि (Imbecile)	20—49
3.	दुर्बल बुद्धि (Feeble Minded)	50—69
4.	मन्द तथा पिछड़ा (Dull & Backward)	70—80

एक अन्य वर्गीकरण

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार मानसिक रूप से विकलांग बच्चे निम्नलिखित प्रकार के होते हैं :

(a) **जड़ बुद्धि या मूर्ख (Idiot) :** इस वर्ग के बच्चों की बुद्धिलब्धि (I.Q.) 20—25 तक होती है। ये मूर्ख सबसे निम्न श्रेणी के होते हैं। इनका मानसिक स्तर इतना निम्न होता है कि ये कोई भी कार्य स्वयं नहीं कर पाते। यहां तक कि इन्हें खाना भी खिलाना पड़ता है तथा कपड़े भी दूसरों द्वारा ही पहनाये जाते हैं। ऐसे बच्चों की सुरक्षा विशेष रूप से करनी पड़ती है। इस वर्ग के बच्चे कुछ भी सीखने में असमर्थ होंगे। ऐसे बच्चे आसानी से दुर्घटनाग्रस्त हो जाते है। उनमें जीवन–रक्षा की इच्छा की कमी होती है। ऐसे बच्चे बहुत ही लाचार होते हैं।

(b) **कम या मूढ़ बुद्धि (Imbecile) :** उनकी बुद्धिलब्धि की सीमा 26—50 तक है। ऐसे बच्चे भी पढ़-लिख नहीं सकते। इन्हें भी दिनचर्या के कई कार्य सिखाये जाते हैं। स्वयं की रक्षा के प्रति सचेत किया जाता है। लेकिन स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने में ये सभी असमर्थ होते हैं। इनका मानसिक विकास तथा मानसिक योग्यताएं बहुत कम होती हैं। ये भी स्वयं की देखभाल नहीं कर सकते।

(c) **असहाय या मूर्ख बुद्धि (Maroons) :** इनकी बुद्धिलब्धि 51-70 तक होती है। ये बालक भी बहुत कम पढ़-लिख सकते हैं। इनका अधिगम (Learning) बहुत ही धीमी गति से होता है। ऐसे बच्चों को किसी अकुशल कार्य (Unskilled) में शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इन्हें घरेलू कार्यों के लिये तैयार किया जा सकता है। सामान्य स्कूल शिक्षा उनके लिए भी कठिन होती है। वे शारीरिक दृष्टि से सामान्य होते हैं। ये कुछ ट्रेनिंग के बाद अपनी रोटी कमा सकते हैं।

(d) **सीमांत बच्चे (Border Line cases) :** इस प्रकार के बच्चों की बुद्धिलब्धि 71 और 80 के बीच होती है। ऐसे बालक कक्षा में अन्य बच्चों के साथ नहीं चल सकते। ये जनसंख्या का अधिकतर हिस्सा होते हैं। ये सामान्य बालकों जैसी क्षमताओं और योग्यताओं के बहुत निकट होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

अमेरिकन एसोसिएशन के अनुसार वर्गीकरण

अमेरिकन एसोसिएशन (1973) के अनुसार, बुद्धिलब्धि के आधार पर मन्दबुद्धि बालकों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है :

(i) **गहन रूप से मन्द बालक (Perfound Mentally Retarded Children) :** इस वर्ग के बालकों की बुद्धिलब्धि 25 से कम होती है। इन बालकों में भाषा का विकास बहुत कम होता है। वे बहुत अधिक देखभाल चाहते हैं। उनमें साधारण कार्य करने की भी योग्यता नहीं होती। शारीरिक संरचना में भी बहुत विकृतियां होती हैं। इनका स्वास्थ्य दुर्बल होता है। रोगों के प्रति प्रतिरोध बहुत कम होता है।

(ii) **तीव्र रूप से मंदबुद्धि बालक (Severe Mentally Retarded Children) :** इन बालकों की बुद्धिलब्धि 25 से 39 तक होती है। उचित प्रशिक्षण द्वारा वे आसान भाषा और संकेत द्वारा संप्रेषण (Communication) करने की योग्यता ग्रहण कर लेते हैं। इनमें संवेगात्मक अस्थिरता रहती है।

(iii) **मध्यम रूप से मन्द बुद्धि बालक (Moderately Mentally Retarded Children) :** ऐसे बालकों की बुद्धिलब्धि 40 से 54 तक होती है। ऐसे बच्चे सामाजिक सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकते। इनका गयात्मक विकास धीमा होता है। ऐसे बालकों को उचित प्रशिक्षण द्व ारा समायोजित किया जा सकता है। वे स्वयं स्नान कर सकते हैं, स्वयं कपड़े पहन सकते हैं, स्वयं खाना खा सकते हैं। वे सामान्य स्कूलों में पढ़ने में सक्षम नहीं होते।
विशिष्ट परीक्षण द्वारा बच्चे थोड़ा-बहुत पढ़ना लिखना सीख जाते हैं। कुछ बालक तो बोलचाल की भाषा अच्छी प्रकार से सीख लेते हैं।

(iv) **अल्प रूप से मन्द बुद्धि बालक (Mild Mentally Retarded Children) :** इस वर्ग के बालकों की बुद्धिलब्धि 55 से 69 तक होती है। सामान्य बालकों की तुलना में इस वर्ग के बच्चे कुछ सुस्त प्रकृति के होते हैं। उनमें उत्सुकता, संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में सहजता की कमी होती है। ऐसे बच्चों को आसानी से बेवकूफ बनाया जा सकता है तथा उनसे समाज विरोधी कार्य कराये जा सकते हैं। इनमें अमूर्त चिन्तन करने की योग्यता सीमित होती है। स्कूल में इनकी उपलब्धियां सीमित होती हैं तथा कुछ वर्षों के पश्चात् उनमें सामाजिक कौशल तथा संप्रेषण कौशल विकसित हो जाते हैं। सामान्य बालकों से उनका विभेदीकरण करना कठिन होता है। वे साधारण गणित कर सकते हैं। स्कूलों में इन बालकों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इनके लिये विशेष कक्षाओं तथा स्कूलों की आवश्यकता रहती है। प्रशिक्षण द्वारा उन्हें आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।

मन्द बुद्धि बालकों की विशेषताएं
(Characteristics of Mentally Retarded Children)

1. अधिगम की धीमी गति (Slow Learning) : मानसिक रूप से मन्द बुद्धि बालकों के अधिगम की गति बहुत ही धीमी रहती है। इसे तीव्र करना असंभव होता है।

2. शारीरिक हीनता (Physical Inferiority) : इस प्रकार के बच्चों में शारीरिक हीनता भी आ जाती है। उनका शरीर विकृत हो जाता है। शारीरिक रोगों का सामना करने की शक्ति उनमें कम होती है। सामान्यतः वे अस्वस्थ रहते हैं तथा उनका शारीरिक विकास कम होता है।

3. संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional Unstability) : मानसिक रूप से पिछड़े बालक संवेगात्मक रूप से अस्थिर होते हैं अर्थात् उनका संवेगों पर कोई नियंत्रण नहीं होता। कई बार तो बहुत ही निम्न श्रेणी के बालक जीवित रहने की इच्छा ही खो बैठते हैं। वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति करने में भी असमर्थ होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

4. अपूर्ण और और दोषपूर्ण शब्दावली (Incomplete & Defective Vocabulary) : इस श्रेणी के बालकों की शब्दावली अपूर्ण और दोषपूर्ण होती हैं। उन्हें भाषा का सीमित ज्ञान होता है।

5. सीमित रुचियां (Limited Interests) : मानसिक रूप से पिछड़े बालकों की रुचियां बहुत ही सीमित होती हैं। वे किसी एक ही कार्य में अपनी रुचि का प्रदर्शन करने में सक्षम होते हैं।

6. लघु अवधान विस्तृति (Short Attention Span) : मन्दबुद्धि बालकों में लघु अवधान विस्तृति होती है। लम्बे कार्य में मानसिक रूप से मन्द बालकों की रुचि समाप्त हो जाती है तथा उनका ध्यान विचलित हो जाता है। ऐसे बालक सामान्य बालकों की तरह किसी लक्ष्य को प्राप्त करने की योजना का अनुसरण नहीं कर पाते।

7. मौलिकता का अभाव (Lack of Originality) : इन बालकों में मौलिकता का अभाव रहता है अर्थात् वे अपने स्वयं के चिन्तन के अभाव में कोई कार्य नहीं कर पाते।

8. सामान्यीकरण की योग्यता का अभाव (Lack of ability to Generalize) : मानसिक रूप से मन्द बालकों में तथ्यों का सामान्यीकरण करने की योग्यता का अभाव रहता है अर्थात् वे किसी स्थिति का निष्कर्ष निकालने के योग्य नहीं होते।

9. प्रोत्साहन का अभाव (Lack of Inspiration) : ऐसे बालकों में प्रायः प्रोत्साहन की कमी रहती है तथा स्कूलों में जाने की रुचि बिल्कुल नहीं होती। इनका झुकाव अनैतिकता और अपराध की ओर रहता है।

10. धीमी विकास गति (Slow Development) : ऐसे मन्द बुद्धि बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में धीरे-धीरे विकसित होते हैं। कई बार इनका विकास इतना धीमा होता है कि वे आयु वर्ग से बहुत पीछे रह जाते हैं।

11. समायोजन का अभाव (Lack of Adjustment) : स्कूल की शिक्षा का स्तर कम होने के कारण ये बालक सामाजिक और संवेगात्मक रूप से स्वयं का समायोजन नहीं कर पाते।

12. निरन्तर अस्वस्थता एवं धीमी प्रतिक्रियाएं (Consistent ill health and slow reaction) : मानसिक रूप से विकलांग बालकों का स्वास्थ्य निरन्तर रूप से ठीक नहीं रहता। उन्हें कोई न कोई रोग घेरे रखता है या उनमें प्रतिक्रियाएं भी बहुत धीमी गति से होती हैं।

13. अनुपयुक्त व्यक्तित्व (Inadequate Personality) : ऐसे बालकों का व्यक्तित्व कभी सम्पूर्ण नहीं हो सकता। उनमें स्वाभाविकता तथा गत्यात्मकता बहुत कम होती है। वे स्वयं निर्णय लेने में सक्षम नहीं होते। उन्हें भविष्य की स्थिति से कोई लेना देना नहीं होता। वे केवल वर्तमान में ही जीते हैं।

14. दूसरों पर निर्भरता (Dependence on others) : मन्दबुद्धि बालक दूसरों पर अधिक आश्रित रहते हैं। उनमें व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं से निपटने की योग्यता न के बराबर ही होती है। उनका अपनी इच्छाओं आदि पर नियंत्रण भी नहीं होता तथा वे असामाजिक कार्यों में भाग ले सकते हैं।

15. सीमित बुद्धि (Limited Intelligence) : मन्दबुद्धि बालकों की बुद्धि बहुत ही सीमित होती है अर्थात् 70 से कम इस कमी के कारण उनमें समायोजन करने तथा अन्य मानसिक प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने की क्षमता नहीं होती।

16. अमूर्त चिन्तन का अभाव (Lack of Abstract Thinking) : मंदबुद्धि बालक बुद्धिलब्धि कम होने के कारण अमूर्त चिन्तन करने में सक्षम नहीं होते। वे समस्या का विश्लेषण नहीं कर सकते।

मन्द बुद्धि के कारण (Causes of Mental Retardation)

मन्द बुद्धि कई प्रकार की अन्तःक्रियाओं के कारण उत्पन्न होती है। इसके लिये कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं होता। मन्द बुद्धि के निम्नलिखित मुख्य कारण माने जाते हैं :

1. वंशानुक्रम (Heredity)
2. शारीरिक कारक (Physiological Factors)
3. संवेगात्मक कारक (Emotional Factors)
4. समाजशास्त्रीय कारक (Sociological Factors)

Scanned with OKEN Scanner

1. **वंशानुक्रम (Heredity) :** मानसिक पिछड़ेपन का उत्तरदायित्व वंशानुक्रम पर डाला जाता रहा है। माता-पिता के मानसिक पिछड़ेपन का मुख्य भाग उनकी संतान को मिल जाता है। इस प्रकार की बुद्धि-हीनता पूर्वजों में भी होती है तथा उसका हस्तान्तरण उनकी संतान में हो सकता है। यह हस्तान्तरण गुणसूत्रों (Chromosomes) के माध्यम से होता है।
2. **शारीरिक कारक (Physiological Factors) :** मस्तिष्क के किसी भी भाग में यदि कोई दोष आ जाये तो बालक मानसिक रूप से विकलांग या मंद बुद्धि हो सकता है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क कोशिकाओं (Brain cells) को बुखार आदि के कारण आघात लगना भी शारीरिक कारकों में ही शामिल है। कई और बीमारियां भी मन्दबुद्धि को जन्म देती हैं, जैसे—मैनिन जाईटस (Menin gitis), कोनजिनियल सिफलिस (Congenial Cyphilis), जर्मन मीसल्स (German Mesals), ऐपीलैप्सी (Epilepsy), अधरंग (Paralysis), ऐपोप्लैक्सी (Apoplexy) इत्यादि। इन बीमारियों के अतिरिक्त गर्भावस्था के दौरान उप-सामान्य स्थिति (Sub-normal condition), बच्चे के जन्म के समय कोई दुर्घटना होना या मस्तिष्क पर किसी औजार के घाव लगना, शैशवावस्था में सिर पर चोट लगना, असंतुलित भोजन या कम भोजन के कारण भी बालक मन्दबुद्धि के हो सकते हैं।
3. **संवेगात्मक कारक (Emotional Factors) :** मानसिक रूप से पिछड़े बालक संवेगात्मक रूप से कुसंयोजित हो सकते हैं। कई बार ऐसे बालक बहुत उत्तेजक और आक्रामक होते हैं। इन बालकों के संवेगात्मक असंतुलन का प्रभाव उनकी शैक्षणिक उपलब्धि (Emotional Achievement) पर अवश्य पड़ता है। ऐसा इसलिये होता है कि ये बालक अपने संवेगों पर नियन्त्रण पाने के अयोग्य होते हैं या उन्हें किसी प्रकार का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। ऐसी परिस्थितियों में ये बच्चे अपना समायोजन करने में सक्षम नहीं होते।
4. **समाज शास्त्रीय कारक (Sociological Factors) :** समाजशास्त्रीय कारक भी मानसिक पिछड़ेपन में अपना योगदान देते हैं। कुछ समाज शास्त्रियों का मत है कि मानसिक पिछड़ापन परिवार की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण होता है।

उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं, जैसे—गर्भकालीन अवस्था में गर्भाशय पर एक्स-रे (X-Ray) का गर्भस्य शिशु के मानसिक विकास पर महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार परिवार के वातावरण में नीरसता, स्नेह का अभाव, सुखद अनुभवों का अभाव, असंगठित तथा दुखी परिवार निर्धनता तथा असुविधाएं इत्यादि भी मानसिक मन्दन के लिये उत्तरदायी होती हैं।

◆◆◆

4. मन्दबुद्धि बालकों की मुख्य समस्याओं, पहचान के आधारों तथा इनकी शिक्षा हेतु किये जा सकने वाले उपायों की विवेचना कीजिये।

अथवा

मन्दबुद्धि बालकों की मुख्य समस्यायें कौन-कौन सी हैं? इनकी पहचान तथा शिक्षा हेतु किये जा सकने वाले उपायों का वर्णन कीजिये।

अथवा

मन्दबुद्धि बालकों की मुख्य समस्याओं, पहचान के आधारों तथा इनकी शिक्षा से संबंधित उपायों की विवेचना कीजिये।

उत्तर–मन्दबुद्धि बालकों की समस्याएं (Problems of Mentally Retarded Children)– सामान्य बालकों की तुलना में मंद बुद्धि बालकों का समायोजन नहीं के बराबर होता है। इन बालकों को कई समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। कुछ समस्याओं का वर्णन निम्न प्रकार से है :

Scanned with OKEN Scanner

(A) समायोजन सम्बन्धी समस्याएं (Adjustment Problems) : मंद–बुद्धि बालक स्वयं को सामान्य बालकों की अपेक्षा कुसमायोजित महसूस करते हैं। समाज, स्कूल तथा समुदाय में इनका समायोजन कठिन होता है। समायोजन संबंधी समस्याएं निम्नलिखित हो सकती हैं :

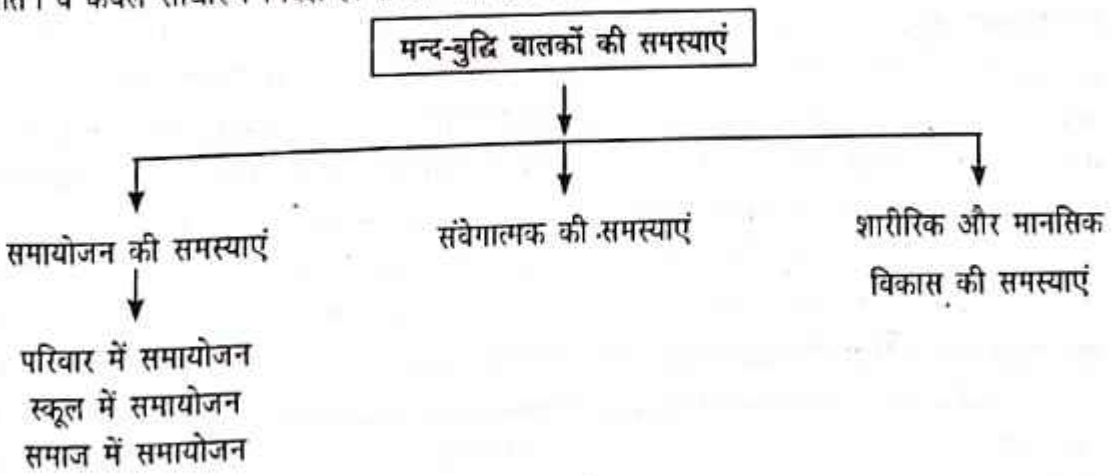
(a_1) परिवार में समायोजन (Adjustment at Home) : बच्चे के माता-पिता को यह विश्वास दिलाना अति आवश्यक होता है कि उनका बच्चा मंद-बुद्धि बालक है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो माता-पिता उस बच्चे से उच्च आकांक्षाएं रखते हैं, लेकिन कुछ ही समय में बालक की असफलताओं से उन्हें निराशा होती है। इससे माता-पिता और बालक के मध्य द्वन्द्व (Conflict) की स्थिति पैदा हो जाती है। परिवार के अन्य सदस्यों का व्यवहार भी उस बच्चों के साथ ही ठीक नहीं रहता। ऐसी स्थिति में बच्चा स्वयं को परिवार में कुसमायोजित महसूस करने लगता है।

(a_2) स्कूल में समायोजन (Adjustment in Schools) : कई बार मंदबुद्धि बालकों को स्कूलों में और कक्षाओं में अध्यापकों के असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ता है। ऐसे बालक कक्षा में अध्यापकों की सामान्य विधियों से कुछ भी सीखने में असमर्थ होते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अध्यापकों की डांट सुननी पड़ती है। कई बार तो उन्हें दंड भी दिया जाता है। स्कूल की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने के लिये उन्हें कोई प्रोत्साहित नहीं करता। स्कूल से उन्हें घृणा होने लगती है।

(a_3) समाज में समायोजन (Adjustment in Society) : समाज के अन्य वर्ग के लोग भी मंदबुद्धि बालकों को हीन भावना से देखने लगते हैं तथा इनसे मेल जोल चबाना पसंद नहीं करते। परिणामस्वरूप इन बालकों में भी हीन भावना पैदा होनी शुरू हो जाती है। समाज के अन्य सदस्यों के समान स्वयं को समाज में समायोजित नहीं कर पाते। इसी कारण से इनका सामाजिक विकास सामान्य रूप से नहीं हो पाता।

(B) संवेगात्मक समस्याएं (Emotional Problems) : घर, स्कूल, समाज आदि में उचित वातावरण न मिलने के कारण कुसमायोजित बालक संवेगात्मक रूप से परिपक्व नहीं हो सकते। संवेगों को नियंत्रित करने का प्रशिक्षण उन्हें नहीं मिल पाता। अतः संवेगात्मक रूप से वे अपरिपक्व रह जाते हैं। छोटी-छोटी बातों पर लड़ने लगते हैं या रोने लगते हैं।

(C) शारीरिक और मानसिक विकास की समस्या (Problems of Physiological and Mental Development) : इन बालकों का शारीरिक और मानसिक विकास सामान्य बालकों की तरह नहीं हो पाता तथा रुटीन के कई कार्य ये नहीं कर पाते जैसे ठीक से बैठना, कम सुनना, आंखों में दोष, बोलने में दोष। इनमें बुद्धि कम होने के कारण कुछ सीख नहीं पाते। उनमें अमूर्त चिन्तन की योग्यता नहीं होती। उनका ध्यान विस्तार भी कम होता है। एक विषय पर वे स्वयं को अधिक समय के लिये केन्द्रित नहीं कर पाते। वे केवल साधारण निर्देश ही समझ पाते हैं। उनकी रुचियां भी सीमित होती हैं।



चित्र : मन्द-बुद्धि बालकों की समस्याएं

Scanned with OKEN Scanner

मंद-बुद्धि बालकों की पहचान (Identification of Mentally Retarded Children)–कक्षा में मंद बुद्धि बालकों की पहचान करने की चुनौती अध्यापक को स्वीकार करनी ही पड़ती है। अध्यापक को इस चुनौती का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिए। अतः कक्षा में ऐसे बालकों की पहचान अति आवश्यक है ताकि उनकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जा सके। इनकी पहचान के लिये निम्नलिखित प्रविधियों का प्रयोग किया जा सकता है :

1. बुद्धि परीक्षण (Intelligence Tests) : मन्दबुद्धि बालकों की पहचान के लिए बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग उचित रहता है। ये परीक्षण व्यक्तिगत या सामूहिक, भाषायी या अभाषायी (Individual or Group test, verbal or non-verbal tests) हो सकते हैं। बहुत छोटे बच्चों को अभाषायी और व्यक्तिगत परीक्षण ही अधिकतर दिये जा सकते हैं। इस कार्य के लिए नई दिल्ली में हौज खास में बाल-कल्याण विभाग द्वारा संचालित विभाग में बच्चों की बुद्धि परीक्षण की व्यवस्था भारत द्वारा की गयी है। अध्यापक बालक के माता-पिता को ऐसे संस्थानों में जाने के लिए सिफारिश कर सकता है या सुझाव दे सकता है।

इस संस्था का पूरा पता है :

NATIONAL INSTITUTE OF PUBLIC COOPERATION
AND CHILD DEVELOPMENT
Child Guidance Clinic,
HAUZ KHAS, NEW DELHI

2. उपलब्धि परीक्षणों द्वारा (Achievement Tests) : बालकों का मानसिक पिछड़ापन उपलब्धि परीक्षाओं द्वारा भी जाना जा सकता है। इस प्रकार के परीक्षण अध्यापकों द्वारा बड़ी सावधानी पूर्वक बनाये जाने चाहिए। ये परीक्षण भी व्यक्तिगत या सामूहिक तौर पर दिये जा सकते हैं।

3. विशेषताओं को कसौटी मानकर (Characteristics as criteria for identification) : बुद्धि परीक्षणों और उपलब्धि परीक्षणों के अतिरिक्त मन्दबुद्धि बालकों की विशेषताओं के आधार पर भी अध्यापक कक्षा में इनकी पहचान कर सकता है। लेकिन इसके लिये अध्यापक को इन बालकों का अधिक समय तक अवलोकन करना पड़ेगा।

मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा
(Education of Mentally Retarded children)

मानसिक रूप से पिछड़े बालकों की रोकथाम और उपचार विभिन्न विधियों से किया जाता है तथा उनके लिये विशेष शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। एक सुझाव के अनुसार इन बालकों का सामान्य बालकों से पृथक्करण (Segregation) कर दिया जाना चाहिए और उनके लिये अलग संस्थाएं खोली जानी चाहिएं। दूसरे सुझाव के अन्तर्गत जन्म दर (Birth rate) पर नियंत्रण करना चाहिए। इस पग के अन्तर्गत मन्दबुद्धि, माता-पिता की नसबन्दी होनी चाहिए ताकि मानसिक रूप से पिछड़े बालकों के पैदा होने की संभावनाएं ही समाप्त हो जायें। तीसरा सुझाव विशेष शैक्षणिक कार्यक्रमों (Special Educational Programme) को लागू करने के संबंध में है। मन्दबुद्धि बालकों की शिक्षा के लिए निम्नलिखित पग उठाये जाते हैं :

1. व्यक्तिगत ध्यान देना (To pay Individual Attention) : मन्द-बुद्धि बालकों की ओर विशेष व्यक्तिगत ध्यान देने की बहुत आवश्यकता है। अध्यापकों की व्यक्तिगत रुचि के लिए कक्षाएं आकार में छोटी-छोटी होनी चाहिएं ताकि वह प्रत्येक बालक को पर्याप्त समय दे सके।

2. विशेष स्कूल और हस्पताल (Special Schools and Hospitals) : मन्दबुद्धि बालकों के लिए विशेष स्कूल तथा हस्पताल होने चाहिएं ताकि उन्हें विशेष शिक्षा दी जा सके। उनके लिये विशेष हस्पतालों का होना इसलिये आवश्यक है ताकि वहां इनके उचित परीक्षण होते रहें और उनके परिणामों के अनुसार इनकी शिक्षा निरन्तर चलती रहे। सामान्य स्कूलों और हस्पतालों में ऐसा संभव नहीं।

Scanned with OKEN Scanner

3. विशेष शिक्षण विधियां (Special Teaching Methods) : सामान्य शिक्षण विधियां मंदबुद्धि बालकों के लिये उपयुक्त नहीं हो सकतीं। अतः इनके लिये विशेष शिक्षण विधियों का प्रयोग आवश्यक है। इनके लिये शिक्षण विधियां सरल व रोचक होनी चाहिएं। शिक्षण की गति धीमी हो। उदाहरणों का प्रयोग अधिक करवाया जाए तथा अभ्यास का समय भी दिया जाना चाहिए।

4. विशेष पाठ्यक्रम (Special Curriculum) : मन्दबुद्धि बालक सामान्य पाठ्यक्रम को सामान्य गति से न तो सीख पाते हैं और न ही सामान्य बालकों के साथ चल सकते हैं। अतः इनके लिये विशेष पाठ्यक्रम का होना भी आवश्यक है। इनके लिये पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा हस्तकलाओं का शिक्षण अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

5. माता-पिता को शिक्षित करना (Educate Parents) : मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका है : माता-पिता को शिक्षित करना। शैक्षणिक योग्यताएं रखते हुए भी कई बार माता-पिता को इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि मन्द बुद्धि बालकों को कैसे शिक्षित किया जाये। उनके साथ कैसे व्यवहार किया जाये? सबसे पहले तो माता-पिता को उनकी सन्तान के मन्द बुद्धि होने का विश्वास दिलाया जाये तथा फिर उन्हें विशेष शिक्षण विधियों से अवगत कराया जाये ताकि घर पर वे स्वयं अपने मंद बुद्धि बच्चे की शिक्षा की व्यवस्था करके उनके समायोजन में उनकी सहायता कर सकें।

6. विशेष अध्यापक (Special Teacher) : मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा या प्रशिक्षण के लिये विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता होती है। सामान्य अध्यापक के लिये उन्हें शिक्षित करना कठिन हो सकता है। अध्यापक का व्यवहार सहानुभूति पूर्ण तथा प्रेमपूर्ण होना चाहिए। अध्यापक को इन बच्चों से उच्च आशाएं भी नहीं रखनी चाहिएं।

7. विशेष समय-सारिणी (Special Time Table) : मंद बुद्धि बालकों की मानसिक एकाग्रता एक निश्चित समय के लिये होती है। अतः उनकी शिक्षा के लिये पीरियड्स छोटे होने चाहिएं। उनके आराम की ओर ध्यान देना चाहिए। औपचारिक शिक्षण सीमित अवधि के लिये ही हो। इनकी समय सारिणी लचीली हो।

8. दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग (Use of Audio-Visual Aids) : मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा में दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग होना चाहिए। चार्ट, मॉडल, रेडियो, टी.वी., ग्लोब आदि का प्रयोग करें तो इनकी रुचि बढ़ेगी।

9. विशेष कक्षा (Special Classes) : ऐसे बच्चों के लिये विशेष कक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। कक्षा का आकार भी छोटा होना चाहिए। उन कक्षाओं में इनके लिये विशेष पाठ्यक्रम की व्यवस्था हों तथा स्वतंत्र वातावरण हों।

10. पारिवारिक उत्तरदायित्व (Family Responsibility) : माता-पिता को यह स्वीकार करना चाहिए कि उनका बच्चा मंद बुद्धि है। वे इस समस्या का साहसपूर्ण मुकाबला करें। बच्चों को मैडिकल चैकअप कर बताते रहना चाहिए तथा उन्हें स्नेह, सुरक्षा तथा सहानुभूति प्रदान करें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मंद बुद्धि बालकों की शिक्षा का कार्य इतना सरल नहीं है। इस परिणाम पर पहुंचा गया है कि ऐसे बालकों की शिक्षा के लिये :

1. सामग्री कठिन न हो।
2. कार्य छोटा हो।
3. पाठ्य-वस्तु छोटे-छोटे पदों में विभाजित करके प्रस्तुत की जाये।
4. इन बच्चों को उनकी सफलता का आभास करवाकर उन्हें सुख का अनुभव करवाना चाहिए।
5. सीखने वाली सामग्री को दैनिक जीवन में विद्यमान वस्तुओं से संबंधित किया जाना चाहिए।
6. इनमें सामाजिक कुशलता विकसित की जाये तथा सहयोग की भावना उत्पन्न की जाये।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

बौद्धिक प्रतिभाशालीता
(Intellectual giftedness)

5. प्रतिभाशाली बालकों से आपका क्या अभिप्राय है? प्रतिभाशाली बालकों की मुख्य विशेषताओं तथा प्रकारों का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिये।
(What do you mean by Gifted children? Explain in detail the main characteristics and types of gifted children.)

अथवा

प्रतिभाशाली बालकों का क्या अर्थ है? प्रतिभाशाली बालकों की विशेषताओं, पहचान तथा इनकी उचित शिक्षा हेतु किये जा सकने वाले उपायों का वर्णन कीजिये।
(What is the meaning of Gifted children. Explain the characteristics, identification and educational provisions for gifted children.)

अथवा

प्रतिभाशाली बालकों का क्या अर्थ है? प्रतिभाशाली बालकों की मुख्य विशेषताओं, समस्याओं तथा इनकी शिक्षा के लिये किए जा सकने वाले विशेष उपायों की विवेचना कीजिए।
(What is the meaning of gifted children? Discuss the main characteristics, problems and educational provisions for gifted childrens.)

उत्तर–प्रतिभावान या प्रबुद्ध बालक (Gifted Children)—प्रतिभावान बालकों में अन्य बालकों की अपेक्षा उच्चतर बुद्धि, अधिक प्रतिभा एवं बेहतर कार्य कौशल होता है। किसी भी समाज का भविष्य उसके प्रतिभावान बालकों के उचित या अनुचित विकास पर निर्भर करता है। अतः प्रारम्भ से ही ऐसे प्रतिभावान बालकों का चुनाव कर, उन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि 'प्रतिभावान बालक' का अर्थ क्या है।

प्रतिभावान बालक का अर्थ
(Meaning of Gifted Children)

वह बालक जिसकी मानसिक आयु अपने आयु वर्ग के अनुपात में औसत से बहुत अधिक हो अथवा ऐसा बालक अपने आयु के बालकों से साधारण अथवा विशेष योग्यता में श्रेष्ठ हो, उसे प्रतिभावान बालक कहा जाता है। जैसे–अगर कोई बालक अपेक्षाकृत कम आयु में ही कोई नया चमत्कार या रिकॉर्ड *(Record)* कायम करता है तो वह बालक प्रतिभावान कहलाएगा।

कॉलस्निक (Kolesnik) के अनुसार, "वह हर बच्चा, जो अपने आयु-स्तर के बच्चों में किसी योग्यता में अधिक हो और जो हमारे समाज के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण नई देन दे, प्रतिभावान कहलाता है।" *(That every child who, in his age group, is superior in some ability which may make him an out standing contributor to the welfare and quality of living in our society is known as gifted.)*

विट्टी (Witty) के अनुसार, "प्रतिभावान *(Gifted)* बच्चे वे बच्चे होते हैं, जिनका मानवीय कोशिश में कार्य सदा शानदार होता है और जो पढ़ाई में उत्तम होते हैं।" *(Gifted children are those children whose performance in a worthwhile human endeavour is consistently remarkable and those who are academically superior.)*

डॉ० अब्दुज रॉफ (Dr. Abdul Rauf) के अनुसार, प्रायः उच्च बुद्धिलब्धि *(High I.Q.)* को प्रतिभाशाली होने का संकेत माना जाता है। अतः 'प्रतिभावान बालक' शब्द का अभिप्राय बालक की उच्च बुद्धि लब्धि से लिया जाता है। *(The term 'gifted child' has been commonly taken to means child with a high I.Q.)*

प्रेम पसरीचा (Prem Pasricha) ने प्रतिभावान बालक को इस प्रकार से परिभाषित किया है, "जो सामान्य बुद्धि की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रतीत हो या वह उन क्षेत्रों में जिनका अधिक बुद्धि-लब्धि से सम्बन्धित होना

Scanned with OKEN Scanner

जरूरी नहीं, अति विशिष्ट योग्यताएँ रखता हो।" *(The gifted child is the one who exhibits superiority in intelligence or the one who is in possession of special abilities of high order in the fields which are not necessarily associated with high intelligence quotient.)*

हैविग्हर्सट (Havighurst) के अनुसार, 'प्रतिभावान बालक वह है, जो निरन्तर किसी भी कार्य क्षेत्र में अपनी कार्यकुशलता का परिचय देता है।' *(The talented or gifted child is one who shows consistently remarkable perfomance any worthwhile line of endeavour.)*

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के मत का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिभावान बालक केवल बुद्धि में उत्तम नहीं होते बल्कि शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक शिक्षा तथा अपनी आयु के बालकों से कई और विशेषताओं में भी उत्तम होते हैं।

टरमन के अनुसार, 140 बुद्धि-लब्धि से ऊपर वाले बालक *(I.Q. > 140)* प्रतिभावान माने जा सकते हैं।

प्रतिभावान बालकों की विशेषताएँ *(Characteristics of Gifted Children)*

भिन्न प्रतिभावान बालकों की विभिन्न विशेषताएँ होती हैं और यह आवश्यक नहीं है कि किसी एक प्रतिभावान बालक में सभी विशेषताएँ उपस्थित हों। प्रतिभावान बालकों की प्रतिभाएँ मुख्यतः निम्नलिखित पक्षों से सम्बन्धित होती हैं –

(A) शारीरिक विशेषताएँ (Physical Characteristics)–

1. **टरमन और विटी (Terman and Witty)** ने प्रतिभावान बालकों और उनके माता-पिता के स्वास्थ्य के इतिहास *(Health History)* का अध्ययन करने के पश्चात् यह पाया कि प्रतिभावान बालक व उनके माता-पिता सामान्य बालकों और उनके माता-पिता के स्वास्थ्य से बेहतर स्वास्थ्य वाले होते हैं। बालक जन्म के समय सामान्य बच्चों से भारी होते हैं।
2. प्रतिभावान बालकों में किशोरावस्था *(Adolescence)* के लक्षण शीघ्र दिखाई देते हैं।
3. इनकी ज्ञान इन्द्रियाँ तीव्र होती हैं।
4. इनमें शारीरिक दोष *(Physical Defects)* भी बहुत कम होते हैं।
5. प्रतिभावान बालक सामान्य बालकों से दो मास पहले दाँत निकाल लेते हैं। सामान्य बालकों से 2 मास पहले चलना-फिरना शुरू कर देते हैं।

(B) संवेगात्मक विशेषताएँ (Emotional Characteristics)–

1. प्रतिभावान बालकों में कल्पना करने, सोचने की, विश्लेषण करने की, निर्णय इत्यादि करने की क्षमता दूसरों से अधिक होती है।
2. ये प्रसन्नचित्त, मिलनसार और श्रेष्ठ चरित्र वाले होते हैं।
3. संवेगात्मक रूप से प्रतिभावान बालक स्थिर और समायोजित *(Stable and Adjusted)* होते हैं।
4. इस प्रकार के बालक सामाजिक दृष्टि से भी सुदृढ़ होते हैं।

(C) सामाजिक विशेषताएँ (Social Characteristics)–

1. प्रतिभावान बालक, क्योंकि हँसमुख व प्रसन्नचित्त रहते हैं, अतः वे सामाजिक तौर पर अधिक परिपक्व तथा सर्वप्रिय होते हैं।
2. टरमन (1925) के अध्ययन के अनुसार प्रतिभावान बालक अधिक ईमानदार, विषम परिस्थितियों में विश्वसनीय होते हैं।
3. वे अपनी आयु से बड़ों के मित्र बनना चाहते हैं, परन्तु खेलते अपनी आयु के बालकों के साथ हैं।
4. इनमें नेतृत्व की विशेषताएँ बहुत होती हैं।
5. प्रतिभावान बालकों में घुलने मिलने की योग्यता में कमी पाई गई है।

Scanned with OKEN Scanner

(D) शैक्षणिक उपलब्धि (Educational Achievement)—

1. प्रतिभावान बालक साहित्य, विज्ञान, व्याकरण, गणित, इतिहास, भूगोल आदि विषयों में अध्यापक द्वारा श्रेष्ठ घोषित होते हैं।
2. पुरस्कार और छात्रवृत्तियाँ जीतने में भी प्रतिभावान बालक सबसे आगे रहते हैं। जैसे, निबन्ध-लेखन प्रतियोगिता।
3. ये बालक अधिक पाठ्यक्रम को कम समय में समझने की क्षमता रखते हैं।
4. उनका शब्द-भण्डार विशाल होता है। उनका साधारण ज्ञान भी अच्छा होता है।
5. प्रतिभावान बालकों की रुचियाँ एवं अभिरुचियाँ भी व्यापक होती हैं। मासिक पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों, चित्रकारी, संगीत, फोटोग्राफी इत्यादि उनकी रुचियों के क्षेत्र हैं।
6. ऐसे बालक शिक्षा के क्षेत्र में अधिक उपलब्धियाँ प्राप्त करते हैं।
7. ऐसे बालकों में वृद्धि और उपलब्धि में सह-सम्बन्ध अधिक होता है।

(E) सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular Activities)—

1. **लेहमन और विटी (Lehman and Witty)** के अनुसार प्रतिभावान बालक शारीरिक खेलों में कम रुचि लेते हैं और जिनमें पढ़ाई एक तत्व होता है, उनमे अधिक रुचि लेते हैं।
2. ये बालक स्कूले जाने में अधिक रुचि लेते हैं।
3. पढ़ाई के साथ-साथ अन्य मंचीय एवं रंगमंचीय कार्यक्रमों में भी प्रतिभावान बालक बढ़ चढ़कर हिस्सा लेते हैं।
4. वे प्रत्येक चीज़ को विस्तार से जानने के इच्छुक होते हैं।
5. प्रतिभावान बालक शारीरिक खेलों में कम रुचि लेते हैं और जिनमें पढ़ाई एक तत्व होता है, उनमें अधिक रुचि लेते हैं।

(F) व्यक्तित्व की विशेषतायें (Personality Characteristics)—

1. प्रतिभावान बालकों में माधुर्य की भावना *(Sense of Humour)* अधिक होती है।
2. ऐसे बालक समाज़ में आसानी से घुल-मिल जाते हैं।
3. इनमें सहयोग की भावना भी होती है।
4. ऐसे बालक झूठ बहुत कम बोलते हैं।
5. ऐसे प्रतिभावान बालकों का कक्षाओं में उनके सहपाठी अधिक चयन करते हैं।
6. इन बालकों की संवेगात्मक स्थिरता उनकी प्रौढ़ावस्था में भी निरन्तर बनी रहती है।

(G) बौद्धिक विशेषतायें (Intellectual Characteristics)—

1. प्रतिभावान बालकों की याद रखने की क्षमता और बुद्धि सामान्य बालकों से ज्यादा अच्छी होती है।
2. इनमें तर्क *(Argument)* करने की योग्यता भी अधिक होती है।
3. इनका शब्द-भण्डार विशाल होता है। उनका सामान्य ज्ञान भी अच्छा होता है।
4. ये बालक अन्य कार्यों, जैसे—स्कूल में दिया गया कार्य, आदि में भी अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन करते हैं।
5. इनकी अवधान-विस्तृति *(Attention Span)* भी अधिक होती है।
6. अपना ध्यान अधिक केन्द्रित कर सकते हैं।
7. इनकी स्मृत्ति अन्य बालकों की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है।
8. इनकी प्रतिक्रियाएँ तात्कालिक होती हैं।
9. ये स्पष्टवादी, फुर्तीले और श्रेष्ठ आत्म-अभिव्यक्ति वाले होते हैं।
10. इनका अधिगम तीव्रगति से होता है तथा आसानी से होता है।
11. ये बालक अन्य कार्यों जैसे गृहकार्य, आदि में भी अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

12. इन बालकों में रुचियाँ, सामान्यीकरण की योग्यताएँ भी सामान्य बालकों से अधिक होती है।
13. ये बालक कक्षा की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें पढ़ने में समर्थ होते हैं।

(H) निषेधात्मक विशेषतायें (Negative Characteristics)–

1. प्रतिभावान बालक अधिकतर अभिमानी किस्म के होते हैं और दूसरों से ईर्ष्या भी उन्हें होने लगती है।
2. ऐसे बालकों की रुचि दूसरों की आलोचना करने में अधिक हो जाती है।
3. अगर कोई कार्य उनकी रुचि का न हो तो वे लापरवाह हो जाते हैं।
4. ऐसे बालक बड़े नटखट और शोर मचाने वाले होते हैं।

प्रतिभावान बालकों की पहचान (Identification of Gifted Children)—प्रतिभावान बालकों की पहचान विभिन्न विधियों के द्वारा की जा सकती है–

(i) **बुद्धि परीक्षाएँ (Intelligence Tests)**–प्रतिभावान बालकों की पहचान के लिए अध्यापक विभिन्न प्रकार की बुद्धि परीक्षाओं का प्रयोग कर सकते हैं। प्रतिभावान बालक इस प्रकार की परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त करते हैं।

(ii) **अभिरुचि परीक्षण (Aptitude Tests)**–बालकों की विभिन्न रुचियों का अध्ययन करके तथा उन क्षेत्रों में उनकी प्रतिभाओं का परीक्षण करके, प्रतिभावान बालकों की पहचान की जा सकती है।

(iii) **सम्बन्धित व्यक्तियों से सूचनाएँ (Informations from Related Persons)**– बालकों के माता-पिता, अध्यापक, आस-पड़ोस के लोग और मित्रगण आदि से सूचनाएँ एकत्रित करके अध्यापक प्रतिभावान बालकों का चयन और पहचान कर सकता है।

(iv) **विशेषताओं के आधार पर (On the Basis of Characteristics)**–अध्यापक बालकों की विशेषताओं और प्रतिभाओं का अध्ययन करके उनमें से प्रतिभावान बालकों का चयन कर सकता है। इस काम में विद्वानों द्वारा तैयार की गई प्रतिभावान बालकों की विशेषताओं की सूची का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(v) **उपलब्धि परीक्षण (Achievement Tests)**–उपलब्धि परीक्षाएँ और उनके नतीजे प्रतिभावान बालकों की पहचान में बेहद कारगर सिद्ध होते हैं। परिणामों का अध्ययन करके बेहद शीघ्रता और सुगमता से सामान्य और प्रतिभावान बालकों को अलग-अलग किया जा सकता है।

प्रतिभावान बालकों की समस्यायें
(Problems of Gifted Children)

1. परिवार में समायोजन (Adjustment in the Family)—माता-पिता अपने बालक की प्रतिभाओं को ठीक से समझ नहीं पाते हैं। घर से अपेक्षित मान्यता व सहयोग न मिलने के कारण उनकी प्रतिभाओं का समुचित विकास नहीं हो पाता है और अपने ही घर में ऐसे बालक अपने-आपको असुरक्षित महसूस करते हैं।

2. स्कूल में समायोजन (Adjustment in Schools)—स्कूल का परिवेश सामान्य बालकों के अनुसार होता है। परन्तु प्रतिभावान बालकों की मानसिक क्रियाएँ अधिक तीव्र होती हैं। इसलिए साधारण शिक्षा विधियों से उनको संतोष नहीं होता। हर समय नई चीज़ें जानने की जिज्ञासा की पूर्ति न होने से ऐसे बालक अपने अध्यापकों और अपने सहपाठियों के साथ उचित व्यवहार नहीं करते। सामान्य बालक भी उनसे ईर्ष्या करने लगते हैं।

3. समाज में समायोजन (Adjustment in Society)—बुद्धि में उत्तम होने के कारण प्रतिभाशाली बच्चों को खेलने के लिए साथी नहीं मिलते। इस प्रकार उनका सामाजिक विकास रुक जाता है। कई बार दूसरे समुदाय में रहने के कारण वहाँ के रीति-रिवाज़ों के साथ बच्चों का समायोजन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता।

Scanned with OKEN Scanner

4. लापरवाही (Carelessness)—प्रतिभावान बालकों को अपनी श्रेणी का कार्य बेहद आसान लगता है और धीरे-धीरे वे लापरवाही बरतने लगते हैं। अपनी प्रतिभा का प्रयोग शरारतें करने में करते हैं। उनमें अभिमान भी पनप जाता है।

5. स्कूल विषयों और व्यवसायों के चयन में समस्या (Difficulty in Choosing School Subjects and Vocations)—प्रतिभावान बालकों की अभिरुचियाँ विभिन्न होती हैं। उनके समुचित विकास के लिए किसी एक स्कूल का चयन करना बेहद मुश्किल हो जाता है। बाद में यही समस्या उचित व्यवसाय चयन में भी आती है।

6. अभिमान का विकास (Development of Proud)—कई बार कक्षा में प्रतिभावान बालकों की ओर अध्यापकों द्वारा अधिक ध्यान देने से ये बालक स्वयं को सामान्य बालकों की तुलना में श्रेष्ठ समझते हैं और सामान्य बालकों को तुच्छ। उनमें अभिमान पनप जाता है। प्रतिभावान और सामान्य बालकों में सम्बन्ध मधुर नहीं रहते। वे एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना रखते हैं।

7. कार्य करने की गति (Rate of Doing Work)—इन बच्चों की मानसिक क्षमताएं और योग्यताएँ सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक बेहतर होती हैं। उनमें सूझ-बूझ की शक्ति, चिन्तन-शक्ति, तर्क-वितर्क क्षमता, कल्पना की शक्ति और स्मरण-शक्ति तथा सृजनात्मकता आदि सामान्य बालकों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। हर नये कार्य को सीखने में प्रतिभावान बालक कम समय लेते हैं। इस दृष्टि से वे सामान्य बालकों के साथ समायोजन नहीं कर पाते। उनके सीखने की गति भी धीमी पड़ जाती है।

8. शिक्षण विधियाँ (Teaching Methods)—यह बात सर्वमान्य है कि प्रतिभावान बालकों को विशेष शिक्षण विधियों की आवश्यकता रहती है। सामान्य शिक्षण विधियों से कई बार प्रतिभाशाली बालक संतुष्ट नहीं होते तथा वे कक्षा में कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार के वातावरण में प्रतिभावान बालक स्वयं का समायोजन करने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

9. गिरोहों में शामिल होना (Join Gangs)—कई बार प्रतिभावान बालकों को सहानुभूति, स्नेह, प्रशंसा इत्यादि नहीं मिल पाते। इनकी पूर्ति के लिये वे बालक अन्य लोगों से सम्पर्क बढ़ाने शुरू कर देते हैं तथा वहां से स्नेह, सहानुभूति तथा प्रशंसा प्राप्त करते हैं। परिणामस्वरूप ये बालक कई बार गलत समूहों में शामिल हो जाते हैं तथा अपनी प्रतिभा को गँवा बैठते हैं।

10. उच्च बुद्धि का गलत प्रयोग (Measure of High Intelligence)—कई बार उच्च बुद्धि वाले बालकों को उचित समय पर सही निर्देशन नहीं मिल पाता तथा वे अपनी प्रतिभा का गलत प्रयोग करने लगते हैं। वे अनुशासनहीनता, दलबंदी, शरारतों आदि गतिविधियों में शामिल हो जाते हैं। कई बार वे समाज-विरोधी गतिविधियों में भी शामिल हो जाते हैं।

प्रतिभावान बच्चों की शिक्षा
(Education of the Gifted Children)

प्रतिभावान बालकों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित सुविधाएँ उन्हें उपलब्ध करवाई जा सकती हैं, जिससे उनका सर्वांगीण विकास हो सके—

1. योग्य तथा नेक अध्यापक (Competent and Noble Teachers)—प्रतिभावान बालकों के लिए विशेष योग्यता वाले अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए, जो स्वयं तेज़ बुद्धि और शैक्षणिक योग्यता वाले हों। योग्य अध्यापक ही प्रतिभावान बालकों को सही दिशा प्रदान कर सकते हैं।

2. सहगामी क्रियाओं की विशेष व्यवस्था (Special Facilities for Co-curricular Activities)—पढ़ाई-लिखाई के अतिरिक्त दूसरी क्रियाओं में प्रतिभावान बालकों को अवश्य अवसर मिलने चाहिए। अन्यथा उनकी विशेष शक्ति गलत कार्यों में व्यर्थ समाप्त हो जाएगी। उनके मन-पसन्द के क्रिया-कलापों के लिए समुचित व्यवस्था करना स्कूल का दायित्व है।

Scanned with OKEN Scanner

3. पुस्तकालय सुविधाएँ (Library Facilities)–प्रतिभावान बालकों को नए ज्ञान की प्यास सदा ही रहती है। अतः इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए स्कूलों में पुस्तकालय संबंधी सुविधाओं का प्रबन्ध सुचारू रूप से होना चाहिए। इससे वे अपने खाली समय का भी उचित ढंग से उपयोग कर सकते हैं।

4. विस्तृत पाठ्यक्रम (Enriched Curriculm)–प्रतिभावान बालकों की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम विस्तृत होना चाहिए क्योंकि सामान्य बालकों वाले पाठ्यक्रम को प्रतिभावान बालक बड़ी आसानी से समझ लेते हैं। इनके पाठ्यक्रम में निम्नलिखित कार्यक्रम शामिल किये जा सकते हैं–

(a) नागरिकता की शिक्षा,

(b) जीवन गाथाओं का अध्ययन,

(c) आधुनिक भाषाओं का अध्ययन,

(d) विशेष योग्यताओं का प्रशिक्षण।

5. विशेष गृहकार्य (Special Home Assignments)–प्रतिभावान बालकों को उनकी योग्यताओं और क्षमताओं के अनुसार विशेष गृहकार्य दिया जाना चाहिए। इससे उन्हें अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर मिलेगा।

6. प्रतिभाशाली बालकों से सम्बन्धित शिक्षण विधियाँ (Teaching Methods related to Gifted Children)–प्रतिभाशाली बालकों को शिक्षा प्रदान करने हेतु नाटकीयकरण, प्रयोगात्मक विधि, देशाटन और मात्रा आदि विधियों का प्रयोग उपयुक्त रहता है। ऐसे छात्रों को सर्वोत्तम शिक्षकों द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए। **बर्नाड** नामक शिक्षाविद् ने प्रतिभाशाली बालकों के लिए निम्नलिखित शिक्षण-उपागमों *(Teaching Approaches)* का सुझाव दिया है–

(i) प्रतिभाशाली बालकों के समूह में वैयक्तिक भिन्नता सामान्य बालकों के समूह की अपेक्षा अधिक व्यापक होती है। अतः प्रतिभाशाली बालकों की विविध रुचियों, आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सर्वोत्तम कोटि की समुन्नत अधिगम सामग्रियों, दत्त कार्यों तथा योजनाओं की व्यवस्था करनी चाहिए।

(ii) प्रतिभाशाली बालकों की चारित्रिक एवं व्यक्तित्व विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए अर्थपूर्ण एवं चुनौती भरे विषयों का प्रतिपादन करना चाहिए।

(iii) सीखने या अधिगम को प्रभावकारी और सुगम बनाने के लिए शाब्दिक वर्णन तथा सामान्यीकरण का उपयोग अधिक अच्छा होता है।

(iv) विद्यालय में छात्रों को विभिन्न प्रकार की पुस्तकों, प्रयोगशाला उपकरणों एवं प्रदर्शनात्मक सामग्रियों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करना चाहिए, ताकि प्रतिभाशाली बालक अपनी रुचि एवं उद्देश्य के अनुसार उनका चयन एवं उपयोग कर सकें।

(v) छात्रों के समक्ष विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण के समय अनावश्यक आवृत्ति व समस्या-समाधान की गई अधिगम सामग्री प्रस्तुत नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर प्रतिभाशाली बालकों में निष्क्रियता व अरुचि उत्पन्न हो जाती है।

7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा हेतु कार्य (Educational Provisions for Gifted Children by National Education Policy)–राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अन्तर्गत केन्द्र सरकार ने प्रतिभाशाली बालकों को निःशुल्क गुणात्मक शिक्षा देने के उद्देश्य से समस्त भारत के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में अब तक 258 नवोदय विद्यालयों की स्थापना की गई है। इन विद्यालयों का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित प्रकार से है–

(i) प्रतिभाशाली छात्रों को शिक्षा प्रदान करने हेतु शिक्षक-अधिगम *(Teaching-Learning)* से सम्बन्धित विशेष प्रबन्ध किए जाते हैं।

(ii) इन विद्यालयों में प्रतिभाशाली बालकों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

(iii) इन विद्यालयों में देश के प्रत्येक कोने से आए छात्रों को आपस में एक-जुट होकर रहने तथा सीखने के समान अवसर देकर उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा की जाती है।

(iv) इन विद्यालयों में उच्च शैक्षिक-लब्धि *(Educational Quotient)* वाले छात्रों हेतु विशेष शिक्षा प्रदान की जाती है।

8. व्यक्तिगत ध्यान (Individual Attention)—प्रतिभावान बालक चाहते हैं और यह आशा करते हैं कि अध्यापक कक्षा में उनका व्यक्तिगत रूप से विशेष ध्यान रखें। बालकों की इस इच्छा की पूर्ति अध्यापक कई विधियों से कर सकता है। इससे बालकों में आत्म-संतुष्टि की भावना उत्पन्न होती है।

9. उत्तरदायित्व के कार्य (Tasks of Responsiblity)—प्रतिभावान बालकों को उत्तरदायित्व के कार्य सौंपे जायें जैसे कि उन्हें कक्षा का मॉनीटर बनाया जाए और भिन्न-भिन्न सभाओं, क्लबों तथा टीमों का लीडर बना दिया जाए। इस तरह करने से वे समाज में उत्तरदायित्व का भार उठाना सीख जायेंगे।

10. प्रोजेक्ट विधि (Project Method)—प्रतिभावान बालकों को प्रोजेक्ट कार्यों में संलिप्त करना चाहिए। इससे उनमें सहयोग की भावना का विकास होता है। इसके अतिरिक्त प्रतिभावान बालकों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अवसर मिलता है और उनका आत्म-विश्वास जागता है।

11. छात्रावास की सुविधाएँ (Hostel Facilities)—अगर किसी प्रतिभावान छात्र के घर का माहौल ठीक न हो और उसके समुचित विकास में रूकावट डालता हो तो ऐसे प्रतिभावान बालकों को छात्रावास की सुविधाएँ उपलब्ध की जानी चाहिएँ।

12. विशेष कक्षाओं की व्यवस्था (Special Classes)—प्रतिभावान बालकों के लिये विशेष कक्षाओं का प्रबन्ध होना चाहिए। लेकिन इस सम्बन्ध में लोग एकमत नहीं हैं। इसके पक्ष में बोलने वालों का मत है कि विशेष कक्षाओं में ऐसे बालकों को पढ़ाई करने का उपयुक्त वातावरण मिल जायेगा। इसके विरोधियों का मत है कि सामान्य बालकों और प्रतिभावान बालकों को अलग करके प्रतिभावान बालकों में सामान्य परिस्थितियों में समायोजन करने की क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। विशेष कक्षाओं में प्रतिभावान बच्चों को अपनी योग्यतानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता होती है तथा अध्यापकों को इनकी आवश्यकतानुसार शिक्षा प्रदान करने का अवसर मिलता है।

विशेष कक्षाओं के विपक्ष में तर्क भी दिए गए हैं जोकि इस प्रकार से हैं—

1. यह सुझाव अलोकतांत्रिक है।
2. विशेष कक्षाओं में प्रतिभाशाली बालक अभिमानी हो जाते हैं।
3. सामान्य बालक इन बालकों से ईर्ष्या करने लगते हैं।
4. अधिक कार्य करने से प्रतिभाशाली बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।
5. सामान्य बालक प्रतिभाशाली बालकों के साथ से वंचित हो जाते हैं।
6. आर्थिक दृष्टि से भी विशेष कक्षाएं मंहगी पड़ती हैं।

13. तीव्र उन्नति (Rapid Promotion)—तीव्र उन्नति से अभिप्राय है कि प्रतिभावान बालकों को वर्ष में दोहरी उन्नति देना। लेकिन ऐसा करना भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है। क्योंकि ऊँची कक्षा में जाने पर उस बालक की शारीरिक और सामाजिक परिपक्वता के स्तर में और अगली बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों के शारीरिक और सामाजिक परिपक्वता के स्तर में अन्तर रह जाता है। अतः मनोवैज्ञानिक इस सुझाव का समर्थन नहीं करते।

14. विशेष स्कूल (Special Schools)—इन विद्यार्थियों के लिये अलग स्कूलों की व्यवस्था का सुझाव भी दिया जाता है। लेकिन ऐसा करना व्यावहारिक नहीं होता। आर्थिक दृष्टि से ऐसा करना संभव दिखाई नहीं पड़ता। सामाजिक दृष्टि से भी यह उचित नहीं है तथा यह अलोकतांत्रिक भी है।

15. शुगल (Hobbies)—प्रतिभाशाली बालकों में विभिन्न प्रकार की रुचियाँ और शुगल होते हैं। इनके विकास के लिये स्कूलों में प्रबन्ध किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, फोटोग्राफी, टिकटें एकत्रित करना आदि।

Scanned with OKEN Scanner

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिक्षक अनेक उपायों से प्रतिभावान बालकों के सर्वांगीण विकास में योगदान देकर राष्ट्र के पुनः निर्माण कार्य में भागीदार बन जाता है। वास्तव में उपर्युक्त विधियों से अधिक प्रतिभावान बालकों का विकास शिक्षक की समझदारी, योग्यता और उत्तरदायित्व की भावना पर निर्भर है। अध्यापक को अपनी कक्षा के मेधावी बालकों की पहचान कर या मेधावी बालकों का ध्यान रखते हुए उनके सभी गुणों के पूर्ण विकास के लिए प्रबन्ध करने चाहिए। इस सम्बन्ध में माता-पिता की जिम्मेदारी भी कम नहीं है, क्योंकि स्कूल के समान घर पर भी प्रतिभावान बालकों के विकास के लिए विशेष उपकरण जुटाए जाने चाहिए और माता-पिता को भी उनके विकास का विशेष ध्यान रखना चाहिए, जिससे उनके मन में कुण्ठाएँ उत्पन्न न हों।

जो बालक किसी विशेष कला में प्रतिभा दिखलाता है उसको उस विशिष्ट कला के स्कूल में भेजा जाना चाहिए और उसको उपयुक्त उपकरण दिए जाने चाहिएँ। इस प्रकार माता-पिता और शिक्षक परस्पर सहयोग से देश के भावी नेताओं, वैज्ञानिकों, विद्वानों, साहित्यकारों और सेनानायकों के निर्माण के लिए मेधावी बालकों के विकास में योग दे सकते हैं। इसमें समाज और सरकार को भी उनकी सहायता करनी चाहिए। वह सहायता तरह-तरह की छात्रवृत्तियों के रूप में हो सकती है।

इस प्रकार माता-पिता तथा अध्यापक मिलकर इन देश के भावी कर्णधारों के विकास में अपना योगदान दे सकते हैं।

◆◆◆

2.5. बच्चों तथा किशोरों के व्यवहार को समझने की विधियाँ व तरीके (Methods and Ways to Understand Children's and adolescent's behaviour)

विभिन्न संदर्भों से बालक सम्बन्धी आँकड़ों का संकलन [Gathering Data about Children from Different Contexts]

Imp for Short Question

(A) स्वाभाविक निरीक्षण [Naturalistic Observation]

1. स्वाभाविक निरीक्षण से क्या अभिप्राय है? वर्णन करें। स्वाभाविक निरीक्षण की सीमाओं पर चर्चा करें। (What is Naturalistic Observation? Discuss the limitations of naturalistic observations.)

उत्तर–स्वाभाविक निरीक्षण का अर्थ (Meaning of Naturalistic Observation)–प्राकृतिक निरीक्षण का लक्ष्य होता है–बच्चों के बारे में जैसा वे वास्तव में व्यवहार करते हैं, उसके बारे में विस्तृत प्रमाण प्राप्त करना और वह भी उसके वास्तविक पर्यावरण (Real World Setting) में जिसमें वे रहते हैं।

स्वाभाविक निरीक्षण के क्षेत्र को अध्ययन विधि (Field Study Method) या क्रमबद्ध प्रेक्षण (Systematic Observation) का नाम भी दिया जाता है, जब स्वाभाविक परिस्थितियों में व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। तब ऐसे प्रेक्षण या अवलोकन या निरीक्षण को 'स्वाभाविक प्रेक्षण या अवलोकन या निरीक्षण' कहा जाता है। इस विधि का प्रयोग मुख्यतः पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करने हेतु किया जाता है, जैसे बन्दर, बिल्ली, चींटियाँ इत्यादि के व्यवहारों का अध्ययन उनके स्वाभाविक रूप से रहने के स्थान पर जाकर किया जाता है। इस प्रकार के अवलोकन का प्रयोग कभी-कभी मनुष्य के शिशुओं के व्यवहार के अध्ययन के लिए भी किया जाता है। इस प्रकार के व्यवहार का अध्ययन बिना किसी परिवर्तन या जोड़-तोड़

Scanned with OKEN Scanner

(Manipulation) के किया जाता है। साधारण शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जो व्यवहार अपने वास्तविक रूप में घटित होते हैं, उनका अध्ययन उसी रूप में किया जाता है।

प्रेक्षण के संदर्भ (Contexts of Observation)—प्रेक्षण या अवलोकन दो परिस्थितियों में होता है—

1. विभिन्न प्रसंगों में प्रेक्षण (Observation in many contexts)
2. एकल प्रसंग में प्रेक्षण (Observation in Single Context)

1. विभिन्न प्रसंगों में प्रेक्षण (Observation in many contexts)—स्वाभाविक अवलोकन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य या लक्ष्य बालक के पर्यावरण (Ecology) का वर्णन करना होता है। 'इकॉलाजी' (Ecology) शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है—'घर' (Home) या मातृभूमि (Homeland)

जीव विज्ञान में 'इकालॉजी' (Ecology) शब्द का सम्बन्ध पौधों या जानवरों के रहने के स्थान (Habitat) तथा पौधों या जानवरों की जैविकीय संरचना (Biological structure), प्रकार्यों (Functions) और विशेषताओं से होता है।

मनोविज्ञान में 'इकालॉजी' (Ecology) का सम्बन्ध उन परिस्थितियों की शृंखला (Range of Situations) से होता है, जिनमें व्यक्ति कार्य करता है तथा भूमिकाएँ (Roles) निभाता है। पर्यावरणीय वृत्तांत (Ecological Description) व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण चित्र उपलब्ध कराता है। बालक के संदर्भ में ऐसे वृत्तांत सम्पूर्ण बालक के बारे में सब कुछ बताते हैं।

2. एकल प्रसंग में प्रेक्षण (Observation in Single Context)—विभिन्न संदर्भों में पर्यावरणीय उपागम (Ecological Approach) में समय बहुत अधिक खर्च होता है। इसका प्रयोग भी बहुत खर्चीला है। इसलिये मनोवैज्ञानिक अपने प्रेक्षण को उस एकल सामाजिक परिस्थिति तक ही सीमित रखते हैं जो बालकों के जीवन में महत्त्वपूर्ण होती है।

मनोवैज्ञानिक बच्चों में और प्रौढ़ों में अन्तर्क्रिया या बच्चों में आपस में ही आमने-सामने अन्तःक्रिया का अवलोकन करते हैं। यह अन्तर्क्रिया किस प्रकार की होती है? कहीं इसमें आक्रामकता बढ़ाने वाली बातें तो नहीं हो रहीं? कहीं यह कक्षा में अरुचिकर न हो? अध्यापक लड़के और लड़कियों के दुर्व्यव्यहार की ओर एक समान ध्यान नहीं देते। अध्यापक लड़कों को उनके बुरे कार्यों के लिये सरे-आम डाँट देते हैं, लेकिन लड़कियों के साथ ऐसा नहीं किया जाता। कक्षा में लड़कों की ओर बराबर का ध्यान दिया जाता है।

प्राणी के व्यवहारों का अवलोकन भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किया जा सकता है। कई प्रेक्षक मिलकर प्राणी या जीव के व्यवहारों की निरीक्षण एक साथ करते हैं। इसलिए इस विधि को 'वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि' (Objective Observation Method) भी कहा जाता है। इस विधि की निम्नलिखित दो विशेषताएँ देखने को मिलती हैं—

(i) प्रेक्षण सदा उद्देश्यपूर्ण तथा सूक्ष्म होता है अर्थात् प्रेक्षक किसी उद्देश्य से प्राणी के व्यवहार के किसी खास पहलू पर अधिक ध्यान देते हुए प्रेक्षण करता है।

(ii) प्रेक्षण का उद्देश्य अध्ययन नियमों से जुड़े चरों (Variables) के बीच पारस्परिक सम्बन्धों का पता लगाना होता है।

अन्तःदर्शन (Introspection) और अवलोकन (Observation) में अन्तर है। अन्तःदर्शन (Introspection) में व्यक्ति अपनी ही मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है, जबकि अवलोकन या निरीक्षण या प्रेक्षण (Observation) में व्यक्ति दूसरे के व्यवहारों को ध्यानपूर्वक देखकर उनकी मानसिक दशा का पता लगाता है। इस दृष्टि से ज्ञानेन्द्रियों से किसी पदार्थ, क्रिया या व्यवहार का ध्यानपूर्वक अध्ययन ही निरीक्षण या अवलोकन (Observation) कहलाता है। अवलोकन द्वारा अनेक मानसिक क्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

मान लो कोई भी अध्ययनकर्ता 8-10 साल के बच्चों के समूह में होने वाले मुख्य व्यवहारों का अध्ययन करना चाहता है। इसके लिये निरीक्षण या अवलोकन विधि (Observation) का चयन किया जाता है। अध्ययनकर्ता यदि चाहे तो वह स्वयं उन बच्चों के समूह में रहकर उन बच्चों के व्यवहारों को

Scanned with OKEN Scanner

नोट कर सकता है। लेकिन व्यावहारिक रूप से यदि देखा जाये तो प्रेक्षक की किसी समूह में उपस्थिति से बच्चे अपने व्यवहारों में परिवर्तन ला सकते हैं। इस संभावना को दूर करने के लिये अध्ययनकर्ता प्रत्येक बच्चे का छिपकर अवलोकन करे। छिपकर वह ऐसे स्थान पर बैठ जाये जहाँ से वह उन बच्चों को तो देख सके लेकिन बच्चे उसे न देख पाएँ। समूह में रहते हुए वह कैसे बातचीत करता है? कैसे हँसता है? कैसे दूसरों की बातों पर ध्यान देता है? इन सभी व्यवहारों का वह प्रेक्षक क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षण या अवलोकन (Observe) कर सकता है।

अन्त में इसी प्रेक्षण के आधार पर वह किसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा। यह प्रेक्षण उन्हीं परिस्थितियों में कई दिनों तक करता रहेगा।

कई अध्ययनकर्ता एक साथ मिलकर उस समूह में उन बच्चों के व्यवहार का प्रेक्षण करेंगे। इस प्रेक्षण में जो तथ्य सभी अध्ययनकर्ताओं में सामान्य या साँझे (Common) होंगे, उन्हें वास्तविक निष्कर्ष के तौर पर स्वीकार कर लिया जाता है। प्रेक्षण विधि के द्वारा ही जोन्स एवं जोन्स (Johns and Johns) ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भय का संवेग (Emotion of Fear) जन्मजात न होकर अर्जित संवेग होता है।

स्वाभाविक प्रेक्षण की सीमाएं या दोष
(Limitations of Naturalistic Observation)

स्वाभाविक प्रेक्षण के सामाजिक विकास के बारे में आँकड़ों को महत्त्वपूर्ण स्रोत समझा जाता है। लेकिन इस प्रकार के प्रेक्षण की कुछ सीमाएं हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

1. लोगों के व्यवहार में परिवर्तन होते रहना (Behaviour Changes)–इस स्वाभाविक प्रेक्षण में एक मुख्य कठिनाई सामने आती है जब बालक को यह पता चल जाता है कि उसका किसी के द्वारा निरीक्षण किया जा रहा है तब ऐसी परिस्थिति में उसके व्यवहार में बदलाव आ जाता है। वे सामान्य व्यवहार करने की कोशिश करते हैं, लेकिन उसकी यह अभिव्यक्ति झूठी दिखाई पड़ती है।

2. विकास सम्बन्धी सूचनाओं का स्रोत (Source of Information about development)–स्वाभाविक प्रेक्षण में प्रक्रिया के साथ सम्बन्ध का कारण बहुत ही कम बताया जाता है। यह विज्ञान का मूल उद्देश्य होता है। अवलोकन या प्रेक्षण के दौरान जब यह मालूम किया जाता है कि क्या दो कारक (Factors) सह-सम्बन्धित हैं? जब सम्बन्ध होता है तब एक कारक में दूसरे कारक के साथ ही परिवर्तन होता है। परन्तु इसमें हमें यह नहीं पता चलता है कि एक कारक से दूसरा कारक प्रभावित होता है या दोनों कारक किसी तीसरे कारक के कारण होते हैं। अर्थात् सह-सम्बन्ध से कारण नहीं मान लेना चाहिए।

3. कारण सम्बन्धी कारकों को बताने का साधन नहीं (No means of telling from observations alone regarding causal factors)–प्रेक्षण की प्रक्रिया के दौरान मात्र अवलोकन या प्रेक्षण के आधार पर सम्बन्धित कारकों को बताने का इसमें कोई साधन नहीं है। इसलिए इस समस्या का हल ढूँढ़ने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगात्मक विधि को अपनाना शुरू किया जो विज्ञान के और निकट मानी जाती है।

4. चयनात्मक प्रेक्षण (Selective Observation)–प्रेक्षक जब किसी का प्रेक्षण करता है और वह जो कुछ भी देखता है तब वह उसके प्रति अपेक्षाएँ (Expectations) रखता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति की प्रवृत्ति (Tendency) होती है कि चयनात्मक (Selectively) रूप से प्रेक्षण करता है और बहुत से अपेक्षाएँ रखता है। प्रेक्षक हर चीज को नोट नहीं कर सकता। लिखने की प्रक्रिया में कुछ सूचनाएँ रह भी जाती हैं या नष्ट हो जाती हैं। तब तो ये सूचनाएँ बिल्कुल ही रह जाती हैं जब ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं, जिनकी कभी अपेक्षा ही न की हो। इसी प्रकार यदि घटना घटित होने और लिखने तक समय का अन्तर अधिक हो जाता है तब सूचना की अधिक हानि होती है। इस दोष को दूर करने के लिये टेप-रिकॉर्डर, वीडियो रिकार्डिंग आदि की सहायता ली जा सकती है। लेकिन ये यंत्र महंगे होते हैं तथा इनके द्वारा रिकॉर्ड की गई सूचनाओं के विश्लेषण में समय भी अधिक लगता है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

(B) साक्षात्कार
(Interview)

2. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? साक्षात्कार के मुख्य तत्त्वों, विशेषताओं, उद्देश्यों तथा प्रकारों का वर्णन कीजिये।
(What do you mean by Interview? Describe the main elements, characteristics, objectives and types of interview.)

उत्तर–यद्यपि प्रदत्त एकत्रीकरण के लिए निरीक्षण *(Observation)* तथा प्रश्नावली *(Questionnaires)* विधियों का अधिकतर प्रयोग होता है, परन्तु अनेक अवसरों पर निरीक्षण के साथ-साथ साक्षात्कार द्वारा भी प्रदत्त एकत्रित किए जाते हैं। बाल-विकास में साक्षात्कार विधि का उपयोग तभी सम्भव है जब बच्चे समस्याओं को पूर्ण रूप से समझने व व्यक्त करने में सक्षम हों। इस विधि में साक्षात्कार कर्ता *(Interviewer)* और सूचनादाता *(Interviewee)* के बीच आमने-सामने पारस्परिक क्रिया उत्पन्न होने का अवसर मिलता है। जिस व्यक्ति का साक्षात्कार लिया जा रहा है, उसके बारे में अर्थपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। **आइजेंक (Eysenck, 1972) के अनुसार**–"साक्षात्कार वह साधन है, जिसके द्वारा मौखिक अथवा लिखित सूचना प्राप्त की जाती है। **मोसर (Moser, 1958) के अनुसार**–"साक्षात्कार एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें साक्षात्कारकर्ता तथा सूचनादाता दो व्यक्तियों की पारस्परिक क्रिया सम्मिलित है। *(The interview is a social process involving interaction of two individuals, the interviewer and respondent.)* साक्षात्कार विधि की व्यक्तिगत विशेषताओं; जैसे अपने वातावरण का प्रत्यक्षीकरण, समस्याओं और तनावपूर्ण परिस्थितियों का सामना करने का ढंग, उसकी आकांक्षाएं, आशाएँ तथा भय आदि की अभिव्यक्ति के साथ उनके चिन्तन एवं व्यक्ति के गुणों आदि का तर्कपूर्ण मूल्यांकन करने की महत्त्वपूर्ण विधि है।

साक्षात्कार के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इसके आकार का रूप का निर्धारण किया जाता है। साक्षात्कार साधारण एवं कम समय का हो सकता है अथवा लम्बे समय का विभिन्न सूत्रों *(Sessions)* में भी हो सकता है। प्रमुख रूप से साक्षात्कार को दो श्रेणियों में रखा जाता है जिनके लिए भिन्न-भिन्न शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं जैसे औपचारिक *(Formal)* तथा अनौपचारिक *(Informal)*, संरचित *(Structured)* तथा असंरचित *(Unstructured)* प्रतिबंधित *(Closed)* तथा मुक्त *(Open)* इत्यादि। साक्षात्कार के उद्देश्य के अनुसार अध्ययन समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों को पहले ही तैयार कर लिया जाता है। यदि प्रश्नों का क्रम एवं संख्या नहीं बदले जाते हैं तो यह संरचित, औपचारिक या बन्धित साक्षात्कार कहलाता है। यदि साक्षात्कार में प्रश्नों को पहले से तैयार न करें, प्रश्नों की संख्या व क्रम घटा बढ़ा सकें तथा साक्षात्कारकर्ता अपेक्षित समस्या सम्बन्धित प्रश्न पूछने के लिए स्वतन्त्र हो तो यह प्रविधि असंरचित, मुक्त या अनौपचारिक साक्षात्कार कलहाती है।

साक्षात्कारकर्ता के साक्षात्कार प्रारम्भ करने एवं उसका संचालन करने के ढंग पर यह निर्भर करता है कि वह *(Interviewer)* सूचनादाता से कैसे महत्त्वपूर्ण सूचनाओं की खोज निकालता है। **कनैल एवं काहन (Cannell and Kahn)** ने एक सफल साक्षात्कार के लिए **निम्न तीन मुख्य आवश्यकताएँ दी हैं। प्रथम,** सूचना दाता को यह मालूम होना चाहिए कि उससे कौन सी सूचना अपेक्षित है? इसके अनुसार ही वह यह फैसला करेगा कि उसे कौन सी प्रासंगिक सूचना *(Relevant information)* देनी है, तथा उसे किस संदर्भ में अपने उत्तर अभिव्यक्त करने हैं। **द्वितीय,** साक्षात्कारकर्ता सूचना दाता से जिस सूचना की अपेक्षा रखता है वह उसके पास उपलब्ध होनी चाहिए ताकि वह प्रश्नों के उत्तर सही ढंग से दे सके। एक सफल साक्षात्कार के लिए तृतीय अपेक्षा अभिप्रेरणा *(Motiviation)* है, जो सूचनादाता को प्रश्नों के सही उत्तर के लिए प्रेरित करती है। यह साक्षात्कार के प्रारम्भ में तथा चलते रहने में सहयोग देती है। साक्षात्कार में परस्पर घनिष्ठता स्थापित होनी आवश्यक है। जिस व्यक्ति का साक्षात्कार लिया जा रहा है उसे पूर्ण विश्वास दिलाया जाए कि उसके द्वारा दी गई सूचना गोपनीय रखी जाएगी। साक्षात्कार का स्थान एकान्त में होना चाहिए तथा

Scanned with OKEN Scanner

साक्षात्कारकर्ता को सूचनादाता के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। साक्षात्कार पर लगा समय उसके उद्देश्य एवं सूचनादाता की आय पर निर्भर करता है। यदि हमें अधिक सूचना ग्रहण करनी है तो साक्षात्कार एक ही लम्बे सत्र में करने की अपेक्षा सत्रों की संख्या बढ़ा देनी चाहिए। साक्षात्कार प्रदाता की शुद्धता बढ़ाने के लिए साक्षात्कारकर्ता का प्रशिक्षित होना आवश्यक है, जिसमें उसके अपने विचारों, पक्षपात पूर्ण, प्रश्नों तथा अनुमति बोधक अभिवृत्ति से बचा जा सकता है। प्रशिक्षण से उसकी प्रतिक्रियाओं को नोट करने की क्षमता भी बढ़ती है।

साक्षात्कार से सम्बन्धित मुख्य तत्त्व या कारक (Important factors or Elements of Internview)–

साक्षात्कार से सम्बन्धित मुख्य तत्त्व या कारक **निम्नलिखित प्रकार से हैं–**

(1) साक्षात्कार एक प्रकार का वार्तालाप होता है, जिसमें कम से कम दो व्यक्ति शामिल होते हैं एक सूचना लेने वाला और दूसरा साक्षात्कार देने वाला।

(2) साक्षात्कार किसी एक व्यक्ति या दूसरे व्यक्ति से होता है। शिक्षा क्षेत्र से सम्बन्धित साक्षात्कार के अन्तर्गत साक्षात्कार लेने वाला प्रायः अध्यापक अथवा कोई शोधकर्ता होता है तथा साक्षात्कार देने वाला कोई छात्र होता है।

(3) साक्षात्कार के दौरान होने वाले वार्तालाप का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है।

(4) साक्षात्कार एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ सम्पर्क स्थापित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन होता है।

(5) साक्षात्कार लेने वाला व्यक्ति प्रशिक्षित तथा अनुभवी होता है, जो दूसरे व्यक्ति को सलाह अथवा परामर्श देता है।

साक्षात्कार विधि की विशेषतायें
(Characteristics of Interview Method)

साक्षात्कार प्रविधि की उपरोक्त व्याख्या के आधार पर इस प्रविधि की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं–

(1) दो या दो से अधिक व्यक्ति (Two or more than two persons)–साक्षात्कार प्रविधि की मुख्य विशेषता है इसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों का परस्पर आमने-सामने वार्तालाप होता है, अकेला व्यक्ति अपना ही साक्षात्कार नहीं कर सकता है इस कारण साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता का होना आवश्यक है।

(2) आमने-सामने के सम्बन्ध (Face to face relations)–साक्षात्कार प्रविधि की प्रमुख विशेषता है कि इसमें साक्षात्कारकर्ता *(Interviwer)* तथा साक्षात्कारदाता *(Interviewee)* के द्वारा प्रत्यक्ष आमने-सामने के प्राथमिक सम्बन्ध *(Direct face to face primary relations)* स्थापित किये जाते हैं।

(3) विशिष्ट उद्देश्य (Specific purpose)–साक्षात्कार की तीसरी प्रमुख विशेषता 'विशिष्ट उद्देश्य' *(Specific purpose)* है, अर्थात् दो या दो से अधिक व्यक्तियों के प्रत्येक वार्तालाप को साक्षात्कार नहीं कहा जा सकता, बल्कि साक्षात्कार एक ऐसी उद्देश्यपूर्ण अन्तःक्रिया है, जिसमें दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा सम्बन्ध किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही स्थापित किये जाते हैं।

(4) सामग्री संकलन (Data Collection)–साक्षात्कार प्रविधि का प्रमुख उद्देश्य जो कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, यह है कि साक्षात्कार की प्रत्येक गतिविधि एवं वार्तालाप के द्वारा सामाजिक अनुसंधानों तथा सामाजिक अध्ययनों के लिये सामग्री का संकलन किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य
(Main objectives of Interview)

साक्षात्कार प्रविधि का अर्थ तथा विशेषताओं को समझ लेने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि उसके उद्देश्यों को भी समझ लिया जाये, साक्षात्कार के अनेक उद्देश्य होते हैं, जिनको निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) आमने-सामने के सम्पर्क से सूचना प्राप्त करना (Collection of information in face to face situation)–साक्षात्कार का प्रमुख उद्देश्य प्रत्यक्ष अथवा आमने-सामने के सम्पर्क स्थापित करके अध्ययन विषय के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करना होता है, वास्तव में साक्षात्कार प्रविधि के द्वारा मनुष्यों की भावनाओं, मूल्यों उद्वेगों अथवा मनोवृत्तियों का अध्ययन किया जाता है और इन सभी के अध्ययन के लिये आमने-सामने के प्रत्यक्ष सम्बन्धों को स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

(2) प्राकल्पनाओं के निर्माण का स्रोत (Main source of hypothesis)–साक्षात्कार प्रविधि का दूसरा प्रमुख उद्देश्य प्राकल्पनाओं के निर्माण के लिये आवश्यक सामग्री को एकत्रित करना है, साक्षात्कार के समय अनुसंधानकर्ता को व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में बहुमूल्य जानकारी प्राप्त होती है, जिसके आधार पर अनुसंधानकर्ता को विभिन्न व्यक्तियों की भावनाओं, विचारों, मनोवृत्तियों इत्यादि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है, इसी कारण सामाजिक क्रियाओं और व्यक्तिगत अन्तःक्रियाओं के सम्बन्ध में प्राकल्पनाओं के निर्माण के लिये साक्षात्कार प्रविधि अत्यन्त ही उपयोगी है।

(3) अवलोकन के लिये अवसर पाना (To seek opportunity for observatioin)–यदि किसी घटना या व्यवहार के विषय में केवल सूचना ही नहीं बल्कि अवलोकन भी करना हो तो साक्षात्कार एक उपयुक्त प्रविधि है। जिस समय अध्ययनकर्ता किसी सूचनादाता के पास साक्षात्कार के लिये जाता है तो वह केवल साक्षात्कार नहीं लेता बल्कि सूचनादाता के घर का वातावरण, पास पड़ोस, उसके व उसके घर के अन्य सदस्यों के व्यवहार के विविध प्ररूप आदि अनायास ही उसकी दृष्टि में आ जाते हैं और वह उनके अवलोकन का बहुमूल्य अवसर भी प्राप्त कर लेता है, श्री बेंजामिन डी. पाल *(Benjamin D. Paul)* ने लिखा है कि–"यद्यपि साक्षात्कार एवं अवलोकन को विकल्प प्रविधियाँ माना जाता है, लेकिन वे पूरक प्रविधियाँ हैं और किसी अकेली प्रविधि का उपयोग करने के स्थान पर उनके सम्मिलित प्रयोग से अधिक उत्तम ज्ञान दृष्टि प्राप्त होती है।" इस प्रकार साक्षात्कार प्रविधि में साक्षात्कार एवं अवलोकन दोनों ही प्रविधियों के लाभ प्राप्त होने का सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

(4) गुणात्मक तथ्यों का संकलन (Collection of qualitative information)–सामाजिक तथ्य मूलरूप से गुणात्मक होते हैं जो विचारों, भावनाओं तथा लोक विश्वासों के रूप में मनुष्य के अन्तर्जगत में फैले रहते हैं, ये व्यक्तिगत भी हो सकते हैं और सामूहिक भी। इन्हें अन्य साधनों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, केवल साक्षात्कार द्वारा ही संकलित किया जा सकता है।

(5) व्यक्तिगत एवं आन्तरिक सूचना संकलित करना (Collection of personal and internal data)–साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन के आन्तरिक पक्ष को समझने के लिये एवं सम्बन्धित सूचनायें एकत्रित करने के लिये किया जाता है, साक्षात्कार के इसी उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए श्री लुण्डबर्ग *(Lundberg)* ने कहा है–"अनुसंधानकर्ता की रुचि न केवल वस्तुगत आंकड़ों जैसे आय, संतानों की संख्या, आयु इत्यादि प्राप्त करने में होती है, बल्कि उसके व्यक्तित्व, उसकी प्रवृत्तियों तथा उसके राग-द्वेषों का पता लगाने में भी होती है। जो उसके वातावरण तथा उससे सम्बन्धित शारीरिक क्रियाओं, भाव-भंगिमाओं इत्यादि के द्वारा प्रगट होती है।"

साक्षात्कार के प्रकार
(Types of Interview)

साक्षात्कार को अनेक प्रकार से विभाजित किया जा सकता है, साक्षात्कार का यह वर्गीकरण अगर हम विभिन्न आधारों पर करें तो अधिक उत्तम रहेगा, यह वर्गीकरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है–

Scanned with OKEN Scanner

(1) उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण (Classification according to objectives)–

(क) कारक परीक्षक साक्षात्कार *(Diagnostic Interview)*

(ख) उपचार सम्बन्धी साक्षात्कार *(Treatment Interview)*

(ग) अनुसंधान सम्बन्धी साक्षात्कार *(Research Interview)*

(2) औचारिकता के आधार पर वर्गीकरण (Classificatioin according to formality)–

(क) औपचारिक साक्षात्कार *(Formal Interview)*

(ख) अनौपचारिक साक्षात्कार *(Informal Interview)*

(3) उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण (Classification according to number of respondents)–

(क) व्यक्तिगत साक्षात्कार *(Personal Interview)*

(ख) सामूहिक साक्षात्कार *(Group Interview)*

(4) अध्ययन पद्धति के आधार पर वर्गीकरण (Classification according to methodology)–

(क) अनिर्देशित साक्षात्कार *(Non-directive Interview)*

(ख) केन्द्रित साक्षात्कार *(Focused Interview)*

(ग) पुनरावृत्ति साक्षात्कार *(Repetitive Interview)*

साक्षात्कारों के उपरोक्त वर्णित प्रकारों का विस्तृत अध्ययन अत्यधिक आवश्यक है, अगले कुछ पृष्ठों में इनका विस्तार से अध्ययन किया गया है–

(1) (क) कारक परीक्षक साक्षात्कार (Diagnostic Interview)–जिस समय किसी साक्षात्कार का उद्देश्य किसी गम्भीर सामाजिक घटना या समस्या के कारकों की खोज करना होता है तो उसे कारक परीक्षक *(Diagnostic)* साक्षात्कार कहते हैं, अतः इसका प्रयोग सामाजिक समस्याओं के कारणों की खोज करने के लिये किया जाता है।

(ख) उपचार सम्बन्धी साक्षात्कार (Treatment Interview)– जिस समय किसी साक्षात्कार का उद्देश्य किसी सामाजिक समस्या को दूर करने के उपचार से सम्बन्धित सुझावों की खोज करना होता है तो उसे उपचार सम्बन्धी साक्षात्कार *(Treatment Interview)* कहा जाता है।

(ग) अनुसंधान सम्बन्धी साक्षात्कार (Research Interview)–जिस समय साक्षात्कार के द्वारा किसी सामाजिक समस्या से सम्बन्धित सभी आवश्यक कारकों की खोज का प्रयास किया जाता है तो इसे अनुसंधान सम्बन्धी साक्षात्कार *(Research Interview)* कहा जाता है।

(2) (क) औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview)–औपचारिक साक्षात्कार को संरचित *(Structured)* या प्रमापीकृत *(Standardized)* साक्षात्कार भी कहा जाता है, इस प्रकार साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता पहले से ही भलीभांति तैयार की गई साक्षात्कार अनुसूची *(Interview Schedule)* में दिये प्रश्नों को ही पूछता है और साक्षात्कारदाता द्वारा दिये गये उत्तरों को नोट कर लेता है, इस प्रकार के साक्षात्कार की प्रमुख विशेषता है कि इसमें साक्षात्कारकर्ता पर पूर्ण नियन्त्रण होता है, वह अनुसूची के प्रश्नों की भाषा, उनके क्रम और उनकी संख्या में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने के लिये स्वतन्त्र नहीं होता, साक्षात्कारदाता से सम्बन्ध को भी पीटर एच. मान *(Peter H. Mann)* ने निर्देशित साक्षात्कार *(Directive Interview)* भी कहा है।

(ख) अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview)–अनौपचारिक साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और इसी कारण इसे अनियंत्रित या स्वतन्त्र साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में किसी भी प्रकार की विशेष अनुसूची की सहायता नहीं ली जाती है। साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कारदाता से कुछ मुख्य प्रश्न या किसी विषय पर उसके विचार पूछता है और उत्तरदाता किसी पूर्व निर्धारित रूप में नहीं बल्कि एक वर्णनात्मक शैली में अपने विचारों को प्रकट करता है और साक्षात्कारकर्ता को इसी वर्णन अथवा विवेचन के आधार पर अपने निष्कर्ष निकालने होते हैं। सामान्यतया

Scanned with OKEN Scanner

इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग व्यक्तियों के आन्तरिक व्यवहार के गहन अध्ययन के लिये अथवा पूर्वगामी अध्ययनों *(Pilot studies)* में किया जाता है।

(3) (क) व्यक्तिगत साक्षात्कार (Personal Interview)–व्यक्तिगत साक्षात्कार में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है साक्षात्कारकर्ता एक समय में एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार करता है। साक्षात्कार के इस प्रारूप की एक विशेषता यह है कि इसमें साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों की स्थापना हो जाती है। जैसा श्री सिन पायो यंग *(Hsin Pao Yang)* ने भी कहा है–"व्यक्तिगत साक्षात्कार एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ मिलता है।" इन घनिष्ट सम्बन्धों के कारण साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कारदाता के दृष्टिकोण तथा विचारों के अतिरिक्त उसकी प्रेरणाओं, भावनाओं तथा अभिवृत्तियों इत्यादि को भी जान सकता है, श्री बोगार्डस *(Bogardus)* के अनुसार–"अभिवृत्तियाँ तथा उनमें आने वाले परिवर्तन व्यक्तिगत साक्षात्कार के द्वारा सर्वोत्तम रूप में जाने जा सकते हैं।" इस प्रकार के साक्षात्कार के साक्षात्कारकर्ता एक के बाद दूसरा प्रश्न पूछता जाता है और उत्तरदाता बारी-बारी से उनका उत्तर देता जाता है।

व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा अनेक लाभ प्राप्त होने की संभावना रहती है, जो **निम्नलिखित हैं**–

(अ) प्रथम तो अन्य प्रविधियों की तुलना में इससे अधिक सही जानकारी प्राप्त होती है, क्योंकि साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता के गलत उत्तरों को ठीक कर सकता है और जानबूझकर दिये गये झूठे उत्तरों की जाँच भी कर सकता है।

(आ) जिन संवेदनशील प्रश्नों का उत्तर अनुसूची या प्रश्नावली विधि द्वारा नहीं मिल सकता, व्यक्तिगत साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता को विश्वास में लेकर और कोमल शब्दों में उन प्रश्नों को पूछकर उनका उत्तर प्राप्त कर सकता है।

(इ) व्यक्तिगत साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता अनुसूची में कठिन भाषा में बनाये गये प्रश्नों को सरल भाषा में स्पष्ट कर सकता है। अतः उनका त्रुटिपूर्ण अर्थ समझ लिये जाने का भय नहीं रहता है।

इन विशेषताओं तथा गुणों के साथ ही व्यक्तिगत साक्षात्कार की अपनी कुछ सीमायें भी हैं, प्रथम तो आवगमन में अत्यधिक व्यय होने के कारण यह प्रविधि बड़े क्षेत्रों के लिये उपयुक्त नहीं होती, दूसरे इस साक्षात्कार में 'मानवीय समीकरण' *(Human equation)* अर्थात् व्यक्तिगत पक्षपात प्राप्त उत्तरों को अस्तव्यस्त कर देता है अर्थात् व्यक्तिगत साक्षात्कार में अभिनति *(Bias)* आने की सम्भावना रहती है। तीसरे यह अत्यधिक खर्चीली एवं समय नष्ट करने वाली प्रविधि हैं, उपरोक्त सीमाओं के बावजूद भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि व्यक्तिगत साक्षात्कार ही सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि है।

(ख) सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview)–व्यक्तिगत साक्षात्कार के विपरीत, सामूहिक साक्षात्कार में एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया जाता है। इस साक्षात्कार में एक सीमा तक व्यक्तिगत साक्षात्कार की कमियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। साक्षात्कारकर्ता व्यक्तियों के समूह से कुछ प्रश्न बारी-बारी से करता है और समूह के सभी सदस्य या कुछ सदस्य उसके उत्तर देते हैं। इस प्रकार एक वाद-विवाद सभा का सा रूप उपस्थित हो जाता है। इससे साक्षात्कारकर्ता को वास्तविक तथ्यों को चुनने व एकत्रित करने के लिये पर्याप्त अवसर मिल जाता है।

वास्वत में इस प्रविधि में कई लाभ है। प्रथम तो यह बड़ी जनसंख्या में कम व्यय तथा समय में सामग्री संकलन का संर्वोत्तम तरीका है। दूसरे इसमें व्यक्तिगत साक्षात्कार जितनी कुशलता एवं प्रशिक्षण की भी आवश्यकता नहीं होती और इसके साथ ही साथ इसमें व्यक्तिगत अभिनति *(Bias)* आने की सम्भावना भी बहुत कम रहती है। परन्तु उन विशेषताओं के साथ ही इस प्रविधि में सामूहिक रूप से प्रश्नोत्तर करने के कारण न तो सभी प्रश्नों के उत्तर मिल पाते हैं और न ही सभी व्यक्ति प्रश्नों को समझ पाते हैं।

(4) (क) अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-directive Interview)–साक्षात्कार का यह प्रकार अनियन्त्रित *(Uncontrolled)* असंरचित *(Un-structured)* अथवा अनिर्दिष्ट *(Un-guided Interview)* साक्षात्कार भी कहलाता है। इसमें कोई पूर्व निर्मित अनुसूची नहीं होती, बल्कि साक्षात्कारकर्ता अपनी इच्छानुसार

Scanned with OKEN Scanner

प्रश्नों को पूछने के लिये स्वतन्त्र होता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कारदाता के सम्मुख कोई कठिन समस्या या प्रश्न रखता है और साक्षात्कारदाता किसी विवरण अथवा कहानी के रूप में अपने उत्तर प्रत्युत्तर प्रस्तुत करता है। साक्षात्कारकर्ता उसको बीच में टोके बिना धैर्यपूर्वक उसका उत्तर सुनता रहता है और जिस समय साक्षात्कारदाता एक प्रश्न का उत्तर पूरा कर लेता है उसी समय साक्षात्कारकर्ता दूसरा प्रश्न पूछता है। इस प्रकार से साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता और सूचनादाता दोनों के ही मूल प्रसंग से अधिक भटक जाने की सम्भावना रहती है। इसके पश्चात् भी साक्षात्कार का यह प्रकार गहन मनोवैज्ञानिक अध्ययनों अथवा एकल विषय अध्ययनों *(Case studies)* के लिये अत्यन्त ही उपयोगी प्रविधि है। यदि विस्तृत रूप से देखा जाये तो अनौपचारिक साक्षात्कार तथा अनिर्देशित साक्षात्कार लगभग एक समान है।

(ख) केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview)–केन्द्रित साक्षात्कार का सर्वप्रथम उपयोग 1956 में श्री रॉबर्ट मटर्न *(Robert Metron)* तथा श्री केन्डल *(Kendell)* ने सामाजिक जीवन पर आधुनिक संचार साधनों का प्रभाव जानने के लिये किया था।

यह साक्षात्कार इस मान्यता पर आधारित है कि यद्यपि वैयक्तिक अनुभूतिपरक धारणाओं के सूक्ष्म स्वरूप की प्राप्ति सम्भव है, परन्तु इसमें सम्बन्धित स्थिति का पूर्व विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है। अतः ऐसे साक्षात्कार पूर्व विश्लेषित परिस्थितियों पर ही आधारित होते हैं। इसके लिये केन्द्रित साक्षात्कार में यह आवश्यक होता है कि साक्षात्कारदाता किसी निश्चित एवं विशेष परिस्थिति, जो कि अनुसंधान *(Research)* का मुख्य विषय है, में रह चुका हो, जैसे किसी रेडियो कार्यक्रम को सुनना अथवा किसी फिल्म को देखना, साक्षात्कारकर्ता अपना ध्यान इस बात पर केन्द्रित करता है कि घटना, अवस्था या परिस्थिति का अध्ययन करने वाले व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसके लिये साक्षात्कारकर्ता उस अवस्था या घटना के द्वारा उत्पन्न विभिन्न भावनाओं, विचारों तथा मानसिक स्थितियों का अध्ययन करता है।

यद्यपि केन्द्रित साक्षात्कार में अध्ययन की जाने वाली समस्या का पूर्व विश्लेषण करके एक साक्षात्कार निर्देशिका *(Interview Guide)* का निर्माण कर लिया जाता है। परन्तु साक्षात्कारदाता अपने उत्तरों को स्वतन्त्र वर्णन के रूप में ही देता है। प्रायः केन्द्रित साक्षात्कार का प्रयोग नये आविष्कारों का समाज पर प्रभाव जानने के लिये किसी विषय पर विस्तृत अध्ययन करने के लिये प्राकल्पनाओं के निर्माण के लिये होता है।

(ग) पुनरावृत्ति साक्षात्कार (Repetitive Interview)–जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, पुनरावृत्ति साक्षात्कार में एक ही समूह का एक से अधिक बार साक्षात्कार किया जाता है। इस प्रविधि का प्रयोग प्रायः सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप समुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिये किया जाता है। सामाजिक परिवर्तन के प्रभाव किसी भी समूह पर एकदम स्पष्ट नहीं हो जाते बल्कि यह प्रभाव धीरे-धीरे दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण इन प्रभावों का अध्ययन केवल एक बार साक्षात्कार करने से नहीं किया जा सकता इसलिये उसी एक समूह का साक्षात्कार बार-बार किया जाता है और इसी कारण इसे पुनरावृत्ति *(repetitive)* साक्षात्कार कहा जाता है। उदाहरणार्थ अगर किसी गाँव में कोई बहुत बड़ी औद्योगिक इकाई स्थापित कर दी जाये तो उसका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर शनैः शनैः काफी समय तक पड़ेगा, जिसका अध्ययन पुनरावृत्ति साक्षात्कार द्वारा ही सम्भव है। श्री पाल लैजर फील्ड *(P. F. Lazerfield)* ने इस प्रकार के साक्षात्कार द्वारा यह पता लगाया है कि अमेरिका में राष्ट्रपति के चुनाव के विषय में राय बनाने में मतदाता किन-किन सामाजिक, मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से गुजरता है। यद्यपि साक्षात्कार के इस प्रकार में अत्यधिक समय, श्रम तथा धन की आवश्यकता होती है परनतु यह भी निर्विवाद सत्य है कि सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के विकास का जो अध्ययन इस प्रविधि द्वारा किया जा सकता है वह अन्य किसी भी प्रविधि द्व ारा सम्भव नहीं हो सकता है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3. साक्षात्कार विधि के महत्त्वपूर्ण चरण या पद कौन-कौन से है? उल्लेख करें।
(What are the important steps of interview method? Describe them.)

अथवा

साक्षात्कार के संचालन हेतु किन-किन मुख्य चरणों का पालन करना अति आवश्यक है? वर्णन करें।
(What essential steps are to be followed for conducting interview? Describe them.)

उत्तर–एक सफल साक्षात्कार के संचालन के लिये **निम्नलिखित मुख्य चरणों या पदों का अनुसरण आवश्यक है–**

1. साक्षात्कार की तैयारी (Preparation for Interview)–साक्षात्कार प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी तैयारी कर लेना अति आवश्यक है, क्योंकि बिना प्राथमिक ज्ञान के साक्षात्कार संचालित नहीं हो पाता। साक्षात्कार की तैयारी में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें अत्यधिक आवश्यक हैं–

1.1 समस्या की पूर्ण जानकारी (Full knowledge of Problem)–जिस विषय या प्रसंग पर साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार करना चाहता है, उसके लिये यह आवश्यक है कि वह उस विषय के सम्पूर्ण पक्षों पर पर्याप्त चिन्तन करके उसके सम्बन्ध में विस्तृत ज्ञान एकत्रित कर ले। ऐसा करने से उसे समस्या का सम्पूर्ण ज्ञान हो जायेगा और जब वह साक्षात्कार करने जायेगा तो साक्षात्कारदाता के सम्मुख अपनी समस्या, उसके अर्थ एवं महत्त्व को भलीभांति प्रस्तुत कर सकेगा और किसी प्रकार भी साक्षात्कारदाता द्वारा विचलित नहीं किया जा सकेगा।

1.2 साक्षात्कार निर्देशिका का निर्माण (Construction of Interview guide)–साक्षात्कार के विषय से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् साक्षात्कारकर्ता का कार्य होता है साक्षात्कार निर्देशिका का निर्माण करना। साक्षात्कार निर्देशिका एक लिखित प्रलेख होता है, जिसमें अध्ययन विषय के समस्त पहलुओं का क्रमबद्ध रूप में निर्देश दिया होता है, साक्षात्कार समस्या के ये विभिन्न पहलू निर्देशिका में केवल शीर्षकों अथवा उपशीर्षकों के रूप में होते हैं। पूर्ण वाक्यों का प्रश्नों के रूप में नहीं दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि–"साक्षात्कार निर्देशिका अध्ययन समस्या की क्रमबद्ध योजना एवं संक्षिप्त वर्णन है।" श्रीमती पी. वी यंग *(P. V. Young)* के अनुसार साक्षात्कार निर्देशिका के महत्त्व को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते हैं–

(a) साक्षात्कार परिचालन में एकरूपता (Uniformity in conducting interview)– साक्षात्कार निर्देशिका के प्रयोग से अध्ययनों में एकरूपता आ जाती है। प्रायः किसी जटिल समस्या का अध्ययन करने के लिये विशाल जनसमूह का साक्षात्कार लेना होता है, जिसको एक ही व्यक्ति नहीं कर पाता है इसलिये अनेकों कार्यकर्ताओं द्वारा साक्षात्कार लिये जाते हैं और ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कार निर्देशिका ही ऐसा साधन है, जिसके द्वारा सभी कार्यकर्ताओं द्वारा किये गये साक्षात्कारों में एकरूपता लाई जा सके।

(b) पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन (Complete and detailed study)–साक्षात्कार निर्देशिका का दूसरा महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि इसके द्वारा समस्या के सभी पहलुओं का पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन सम्भव हो जाता है, क्योंकि समस्या से सम्बन्धित सभी पहलुओं को पहले से ही साक्षात्कार निर्देशिका में दर्ज कर लिया जाता है, जिसके कारण किसी भी पहलू के छूटने की सम्भावना नहीं रहती है।

(c) विषयांतर से बचाव (Saving from loosing the main subject)–जिस समय साक्षात्कारकर्ता स्वतन्त्र साक्षात्कार कर रहा होता है तो प्रायः वह भावात्मक वातावरण में बह जाता है और उसके मूल विषय से बाहर चले जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कार निर्देशिका पथ-प्रदर्शक के समान साक्षात्कारकर्ता का मार्ग दर्शन करती है।

(d) क्रमबद्धता (Helps in systematic conducting of Interview)–अन्त में साक्षात्कार निर्देशिका अध्ययन में क्रमबद्धता लाने में सहायक होती है, साक्षात्कार की सफलता के लिये उसमें क्रमबद्धता का होना अति आवश्यक है। क्योंकि कभी-कभी प्रश्नों में क्रमबद्धता न होने के कारण उत्तरदाता घबरा जाता है और आगे उत्तर देने से इन्कार कर देता है। ऐसी परिस्थिति से बचने के लिये साक्षात्कार निर्देशिका अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण होती है।

Scanned with OKEN Scanner

1.3 साक्षात्कारदाताओं का चुनाव (Selection of Interviewees)–साक्षात्कार निर्देशिका के निर्माण के पश्चात् साक्षात्कारदाताओं का चुनाव किया जाता है। साक्षात्कार में समस्त सूचना का स्रोत साक्षात्कारदाता ही होता है और इनका चुनाव भी अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण होता है। साक्षात्कारदाताओं का चुनाव किसी निदर्शन प्रणाली के आधार पर होता है। यह अध्ययन समस्या पर निर्भर करता है कि किस निर्देशन को अपनाया जाये।

1.4 साक्षात्कार के लिये स्थान व समय का निर्धारिण (To determine time and place for Interview)–साक्षात्कारदाताओं के चुनाव के पश्चात् साक्षात्कार की तैयारी के सम्बन्ध में अन्तिम बात रह जाती है साक्षात्कार के समय एवं स्थान का निर्धारण, साक्षात्कार के समय एवं स्थान के पूर्व निर्धारण से साक्षात्कारकर्ता का काफी समय एवं धन बच जाता है, क्योंकि उसे बेकार ही अनेकों बार सूचनादाता के पास नहीं जाना पड़ता।

2. साक्षात्कार की प्रक्रिया (Process of Interview)–साक्षात्कार के लिये उपरोक्त तैयारियाँ कर लेने के पश्चात् मुख्य साक्षात्कार की ओर अग्रसर होना पड़ता है। इस स्तर पर साक्षात्कारकर्ता और सूचनादाता आमने-सामने होते हैं और उनमें अन्तःक्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है। इस प्रकार साक्षात्कार एक प्रक्रिया है, जिसकी सफलता मुख्य रूप से साक्षात्कारकर्ता की व्यक्तिगत कुशलता, प्रशिक्षण एवं व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। इसी कारण इस सम्बन्ध में किन्हीं निश्चित नियमों का प्रतिपादन सम्भव नहीं है। परंतु फिर भी अनुभवों के आधार पर कुछ सामान्य सावधानियों का उल्लेख किया जा सकता है जिनको ध्यान में रखकर ही साक्षात्कारकर्ता को आगे बढ़ना चाहिए।

2.1 सम्पर्क स्थापना (Establishment of Contact)–साक्षात्कार का पहला चरण है पूर्व निर्धारित समय व स्थान पर साक्षात्कारकर्ता द्वारा सूचनादाता से सम्पर्क स्थापित करना। यह अवसर साक्षात्कारकर्ता के लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इस अवसर पर साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता की प्रकृति के अनुरूप औपचारिकताओं का पालन करते हुए सूचनादाता का विश्वास प्राप्त करने का प्रयास करता है।

2.2 रैपर्ट प्राप्त करना (Gaining Rapport)–सूचनादाता से सम्पर्क स्थापित करने के उपरांत साक्षात्कारकर्ता को अपना परिचय देकर चतुरतापूर्वक अपने उद्देश्य को स्पष्ट कर देना चाहिए। उद्देश्य के उपरांत साक्षत्कारकर्ता को सूचनादाता से सहयोग की प्रार्थना करनी चाहिए और जिस समय सूचनादाता सूचना देने के लिये तैयार हो जाता है तो वह परिस्थिति रैपर्ट कहलाती है। जैसा कि सर्वे श्री गुडे एवं हॉट *(Goode and Hatt)* ने भी कहा है, "रैपर्ट वह अवस्था है, जिसमें साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता के विश्वास को जीत लेता है और सूचनादाता उसके अनुसंधान उद्देश्य को ऐसा स्वीकार कर लेता है कि वह आवश्यक सूचना देने के लिये सक्रिय रूप से प्रेरित हो उठता है।"

2.3 प्रमुख साक्षात्कार का प्रारम्भ (Begining of main interview)–साक्षात्कारकर्ता द्वारा सूचनादाता का विश्वास प्राप्त करने कर लेने के पश्चात् वास्तविक साक्षात्कार प्रारम्भ होता है। इस समय कुछ विशेष सावधानियों को बरतने की आवश्यकता होती है, जो **निम्न प्रकार हैं**–

(a) साक्षात्कार का प्रारम्भ अत्यन्त ही सरल, सामान्य एवं असंदिग्ध प्रश्नों से करना चाहिए जैसे, आपका नाम क्या है? क्या आप अपने परिवार के सदस्यों की संख्या बतायेंगे? इत्यादि।

(b) सूचनादाता को अधिक अवसर दिया जाना चाहिए, साक्षात्कारकर्ता का कार्य सूचनाओं को प्राप्त करना होता है इसलिये उसे स्वयं अधिक न बोलकर सूचनादाता को ही अधिक बोलने का अवसर देना चाहिए।

(c) सूचनादाता को कभी दूसरे सूचनादाताओं द्वारा व्यक्त किये गये विचारों को नहीं बताना चाहिये, क्योंकि अगर साक्षात्कारकर्ता ऐसा करता है तो सूचनादाता का उस पर से विश्वास हट जाता है।

(d) सूचनादाता से व्यक्तिगत अनुभव सम्बन्धी प्रश्न बाद में पूछने चाहिये।

2.4 सूचनादाता का उत्साहवर्धन करना (Encouraging Respondent)–साक्षात्कार के मध्य साक्षात्कारकर्ता को सूचनादाता का उत्साह भी बढ़ाते रहना चाहिये जैसे 'आपकी सूचना ने इस समस्या को हल करने में बड़ा सहयोग दिया है', 'वाह! यह तो आपने बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात बताई', इस प्रकार के वाक्यों से

Scanned with OKEN Scanner

सूचनादाता का आत्म-सम्मान बना रहता है और वह साक्षात्कारकर्ता को पूरा-पूरा सहयोग देने को तत्पर रहता है। परन्तु इस प्रकार के उत्साहवर्धक वाक्य उचित समय पर एवं इस प्रकार कहने चाहिए कि सूचनादाता को यह न लगे कि साक्षात्कारकर्ता उसकी चापलूसी कर रहा है अन्यथा इसका प्रभाव उलटा भी पड़ सकता है।

2.5 धैर्यपूर्ण श्रवण (Patient Listening)–यह अच्छे साक्षात्कारकर्ता का महत्त्वपूर्ण गुण है उसका एक धैर्यवान श्रोता *(Patient Listener)* होना। अगर साक्षात्कारकर्ता निरन्तर प्रश्न ही करता रहेगा तो हो सकता है कि सूचनादाता 'बोर' होकर साक्षात्कार देने ही इन्कार कर दे, इसके अतिरिक्त अगर कभी सूचनादाता भावनाओं में बहकर निरन्तर बोलता ही चला जाता है तो साक्षात्कारकर्ता को धैर्यपूर्वक उसे सुनना चाहिये, साक्षात्कारकर्ता को अपनी किसी भी क्रिया या व्यवहार से यह स्पष्ट नहीं होने चाहिये कि वह 'बोर' हो रहा है अन्यथा सूचनादाता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

2.6 स्मरण करना (Recalling)–कभी-कभी सूचनादाता अपने अनुभवों का वर्णन करते-करते भावनाओं में बह जाता है और मुख्य विषय से भटक जाता है। ऐसी परिस्थिति में साक्षात्कारकर्ता का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अत्यन्त ही सावधानीपूर्वक उसे मुख्य विषय की याद दिलाये, उदाहरण के लिये वह कह सकता है, "हाँ तो अभी आप....के सम्बन्ध में कुछ बता रहे थे, कृपया उस सम्बन्ध में कुछ और बताइये।"

2.7 सूचनाओं को लेखाबद्ध करना (Recording of Data)–साक्षात्कारकर्ता का प्रमुख कार्य सूचना को नोट करना भी है। जिस समय साक्षात्कार स्वतन्त्र वर्णन के रूप में होता है, उस समय उसे नोट करना अत्यधिक कठिन होता है। क्योंकि अगर वार्तालाप के समय साक्षात्कारकर्ता लेखन में व्यस्त हो जाता है तो साक्षात्कार का प्रवाह रुक जाता है और साक्षात्कार के बीच में टूट जाने का भय रहता है। लेकिन इसके बावजूद भी साक्षात्कारकर्ता को संकेत लिपि *(short hand)* के संकेत शब्दों में कुछ न कुछ नोट ले लेने चाहिये और अपनी स्मरण-शक्ति पर अत्यधिक विश्वास नहीं करना चाहिये यही एक कुशल साक्षात्कारकर्ता की कसौटी है।

◆◆◆

4. साक्षात्कार विधि के गुणों तथा अवगुणों का वर्णन कीजिए।
(Describe the merits and demerits of interview method.)

उत्तर–साक्षात्कार विधि के प्रमुख गुणों अथवा लाभों को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) **सभी प्रकार की सूचनाओं का संकलन (Collection of all types of information)**–इस प्रविधि के द्वारा सभी प्रकार को सूचनाओं का संकलन सीधे रूप से घटना से सम्बन्धित व्यक्तियों से किया जा सकता है, यदि छात्र असंतोष का अध्ययन करना है तो छात्रों का साक्षात्कार लिया जा सकता है और अगर अपराधियों से सम्बन्धित कोई अध्ययन करना है तो अपराधियों का साक्षात्कार ले सकते हैं।

(2) **अमूर्त एवं अदृश्य घटनाओं का अध्ययन (Study of abstract and non-visible phenomenon)**–अमूर्त तथा भावात्मक स्थितियों जैसे प्रवृत्तियों, विचारों, भावनाओं इत्यादि का अध्ययन करने के लिये सर्वोत्तम विधि है, यह तो निर्विवाद सत्य है कि इस प्रकार की घटनाओं का अवलोकन नहीं किया जा सकता क्योंकि ये प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती। इनका प्रभाव तो केवल प्रभावित व्यक्ति ही जानता है और इस प्रविधि में सूचनादाता में इस प्रकार की सभी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(3) **भूतकालीन समृतियों तथा भविष्य की योजनाओं का ज्ञान (Knowledge of past memories and future plans)**–साक्षात्कार प्रविधि के द्वारा भूतकालीन घटनाओं एवं उनके प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। मानव जीवन में अनेक ऐसी घटनायें होती हैं, जिनकी पुनरावृत्ति संभव नहीं होती, परन्तु उनका प्रभाव स्थायी होता है। ऐसी घटनाओं के अध्ययन के लिये साक्षात्कार के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। इसी प्रकार यदि हम व्यक्तियों की भविष्य

Scanned with OKEN Scanner

की योजनाओं के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं तो उसके लिये भी साक्षात्कार एकमात्र उपयुक्त और व्यावहारिक प्रविधि है।

(4) **समाज के सभी संस्तरणों में संभव (Possible in all starts of society)**–साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग समाज के सभी वर्गों तथा संस्तरणों पर किया जा सकता है। प्रश्नावली प्रविधि का प्रयोग केवल शिक्षित और उनमें से भी केवल इच्छुक व्यक्तियों पर किया जा सकता है, जबकि इस प्रविधि का प्रयोग शिक्षित, अशिक्षित, इच्छुक तथा अनिच्छुक सभी प्रकार के सूचनादाताओं पर किया जा सकता है।

(5) **सूचनाओं का सत्यापन (Varification of Data)**–साक्षात्कार प्रविधि का एक गुण यह भी है कि इसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं का सत्यापन भी संभव होता है। साक्षात्कार अधिकतर वर्णनात्मक होते हैं और एक बार कही गई बात की सत्यता उसके स्पष्टीकरण से प्रकट हो जाती है, जबकि प्रश्नावली *(Questionnaire)* या अनुसूची *(Schedule)* से प्राप्त संक्षिप्त उत्तरों द्वारा यह संभव नहीं होता।

(6) **अवलोकन का अवसर (Opportunity to observe)**–साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्ता को सूचनादाता के पर्यावरण के अवलोकन का भी एक उपयुक्त एवं सुन्दर अवसर प्राप्त होता है। इसके आधार पर सूचनादाता द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं की वैधता की जाँच की जा सकती है, जो कि साक्षात्कार प्रविधि का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण गुण है।

(7) **पर्याप्त मनोवैज्ञानिक अध्ययन (Adequate psychological study)**–साक्षात्कार एक तीक्ष्ण बेधनशील प्रविधि है, जिसके द्वारा अनुसंधानकर्ता मनुष्य के बाहरी रूप से दिखने वाले व्यवहारों को बेधकर उसकी भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं इच्छाओं के आन्तरिक क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। साक्षात्कार करते समय साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कारदाता के मानसिक भावों के उतार-चढ़ाव का भी अध्ययन करता है। साथ ही अनेकों मनोवैज्ञानिक प्रश्न पूछकर उसके दिल की बात जिसे वह बताना चाहता है, को निकालने का भरसक प्रयास करता है और एक सीमा तक वह सफल भी रहता है।

(8) साक्षात्कार में हम न केवल यह जान पाते हैं कि किसी व्यक्ति की अमुक विषय में क्या राय है, अपितु हम यह भी पता लगा सकते हैं कि ऐसी राय बनने के पीछे क्या कारण निहित है।

(9) इस प्रविधि को अन्य माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं को पूर्ण बनाने हेतु भी एक पूरक प्रविधि के रूप में काम में लिया जा सकता है।

(10) अन्य माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं की प्रामाणिकता स्थापित करने हेतु भी इस प्रविधि का उपयोग किया जा सकता है।

(11) प्रश्नावलियों में एक समस्या यह भी रहती है कि उत्तर देने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की राय लेकर उत्तर दे। यह संभावना साक्षात्कार में नहीं रहती, क्योंकि जिस व्यक्ति का साक्षात्कार किया जा रहा है उसे इस बात का पूर्वाभास नहीं रहता है कि उससे कौन से प्रश्न पूछे जाने वाले हैं।

(12) अनेक बार अधिक व्यस्त व्यक्तियों से हम लम्बी प्रश्नावलियों के उत्तर की अपेक्षा नहीं कर सकते, किन्तु स्वयं जा कर साक्षात्कार करने पर उनसे सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

(13) ऐसी परिस्थिति में जबकि हमें अनपढ़ व्यक्तियों से सूचनाएँ प्राप्त करनी हैं तो साक्षात्कार का उपयोग लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

(14) साक्षात्कार द्वारा अनुसंधाता ऐसी जानकारी प्राप्त कर सकता है, जो कि कदापि अन्य प्रविधियों एवं उपकरणों द्वारा प्राप्त न हो सके।

(15) प्रश्नवलियाँ भेजने पर एक कठिनाई हमारे सम्मुख यह आती है कि प्रतिदर्श में चयनित अनेक व्यक्ति उसका उत्तर नहीं देते। साक्षात्कार में क्योंकि हम व्यक्तियों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करते हैं, इस कारण सहयोग न मिलने की, उत्तर न देने की समस्या खड़ी नहीं होती।

Scanned with OKEN Scanner

(16) प्रायः लिखित उत्तरों में प्राप्त सूचनाओं की अपेक्षा व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा प्राप्त सूचनाएँ अधिक विश्वसनीय होती है।

(17) साक्षात्कार के दौरान यदि व्यक्ति को कोई प्रश्न समझ में न आये तो वह साक्षात्कारकर्ता से स्पष्टीकरण मांग सकता है। यह प्रश्नावली में संभव नहीं है।

(18) साक्षात्कार के दौरान यदि किसी प्रश्न का उत्तर स्पष्ट नहीं हो तो अधिक प्रश्न पूछ कर हम स्पष्टीकरण कर सकते हैं।

साक्षात्कार विधि की सीमायें या दोष
(Demerits or Limitations of Interview Method)

यद्यपि यह ठीक है कि साक्षात्कार प्रविधि के अनेक लाभ हैं, परन्तु ऐसा होते हुए भी अन्य प्रविधियों की भांति साक्षात्कार प्रविधि पूर्णतया दोषमुक्त नहीं है। साक्षात्कार प्रविधि के कुछ प्रमुख दोष अथवा सीमायें निम्नलिखित हैं–

(1) व्यक्तिगत अभिनति (Personal Bias)–साक्षात्कार प्रविधि का सबसे बड़ा दोष है कि इसमें अभिनति या पक्षपात् आने की संभावना रहती है और इसी कारण इस प्रविधि द्वारा संकलित सामग्री की विश्वसनीयता सदैव संदिग्ध रहती है। इस प्रविधि में सारा वर्णन स्वतन्त्र होता है, जिसके कारण सूचनादाता तो अपने भाव एवं पक्षपातपूर्ण सूचनायें प्रदान करता है, इसके अतिरिक्त साक्षात्कारकर्ता का अपना पक्षपात भी उसमें सम्मिलित हो जाता है।

(2) साक्षात्कारदाता पर निर्भरता (Dependence on Interviwer)–साक्षात्कार प्रविधि की दूसरी सीमा इसका सूचनादाता पर अत्यधिक निर्भर होना है। इस सम्बन्ध में दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं, पहली तो सूचनादाता को साक्षात्कार के लिये राजी करना ही एक समस्या है और दूसरे यदि वह राजी हो भी जाता है तो स्वतन्त्र वर्णन को कोई व्यक्ति ही पसन्द करता है, अतः इस प्रविधि में साक्षात्कारकर्ता पूर्णतया सूचनादाता की कृपा पर आश्रित रहता है।

(3) स्मरणशक्ति पर निर्भर (Dependence on Memory)–साक्षात्कार प्रविधि की एक अन्य सीमा है कि इसमें साक्षात्कारकर्ता को अपनी स्मरणशक्ति पर अत्यधिक निर्भर रहना पड़ता है। इसका कारण है कि साक्षात्कार लेते समय वह इस स्थिति में नहीं होता है कि वह सभी सूचनाओं को नोट कर सके, वह साक्षात्कार करने के पश्चात् अपने कार्यालय में आकर उन सूचनाओं को नोट करता है, जिसमें अनेक बातें वह भूल जाता है और अनेक गलत लिख देता है। ये ही छोटी-छोटी त्रुटियाँ उसके निष्कर्षों को गलत कर देती हैं।

(4) कुशल साक्षात्कारकर्ता की समस्या (Problem of qualified Interviewer)– साक्षात्कार प्रविधि के सफल एवं सुचारू संचालन के लिये एक अत्यधिक व्यवहार कुशल साक्षात्कारकर्ता की आवश्यकता होती है। साक्षात्कार के लिये साक्षात्कारकर्ता का एक अच्छा मनोवैज्ञानिक होना भी आवश्यक है, परन्तु सभी साक्षात्कारकर्ताओं में वांछित मात्रा में व्यवहार कुशलता, चतुरता एवं बुद्धि चातुर्य नहीं होता, जिसके परिणाम स्वरूप साक्षात्कार सही प्रकार से नहीं हो पाता और संकलित सामग्री अविश्वसनीय, अप्रमाणिक व असत्य हो जाती है।

(5) हीन भावना (Inferiority Complex)–साक्षात्कार प्रविधि में साक्षात्कारकर्ता को सामग्री संकलन के लिये अनेक व्यक्तियों के पास जाना पड़ता है और इस प्रक्रिया के दौरान कभी-कभी साक्षात्कारदाता ऐसा तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते हैं कि साक्षात्कारकर्ता के मन में हीन भावना उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण वह ठीक प्रकार से साक्षात्कार का संचालन नहीं कर पाता जिसका प्रभाव उसके निष्कर्षों पर पड़ता है।

(6) साक्षात्कारकर्ता व सूचनादाता के मध्य पर्याप्त संदेशवाहन का अभाव (Lack of adequate Communication between Interviwer and respondent)–साक्षात्कार प्रविधि में यह आवश्यक नहीं है कि साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता (सूचनादाता) एक ही सांस्कृतिक परिवेश में आये हों, अतः उनके दृष्टिकोण में पर्याप्त मतभेद होता है और उसका परिणाम यह होता है कि साक्षात्कार में जिन शब्दों और

Scanned with OKEN Scanner

धारणाओं का प्रयोग होता है। उनका दोनों के लिये समान अर्थ नहीं होता है, जिसमें कभी-कभी साक्षात्कार में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

(7) अत्यधिक खर्चीली एवं धीमी प्रविधि (More time and money consuming technique)–साक्षात्कार प्रविधि की अन्तिम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण सीमा यह है कि इस प्रविधि में अत्यधिक समय एवं धन की आवश्यकता होती है। इस प्रविधि में एक साक्षात्कारकर्ता एक समय में एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार करता है और कभी-कभी एक ही व्यक्ति के पास बार-बार जाना पड़ता है। जिस कारण अनावश्यक रूप से समय एवं धन की बरबादी होती है।

इसमें सन्देह नहीं कि साक्षात्कार प्रविधि की अनेक सीमायें है, परन्तु वास्तव में यह अस्वभाविक नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु में कुछ गुणों के साथ-साथ कुछ सीमाओं का होना भी आवश्यक है। क्योंकि इन्हीं सीमाओं के कारण उसका विकास एवं सुधार संभव होता है, साक्षात्कार प्रविधि का भी धीरे-धीरे विकास होता जा रहा है और इसे सामाजिक अनुसंधान की महत्त्वपूर्ण प्रविधि के रूप में मान्यता मिलती जा रही है, सर्वश्री गुडे एवं हॉट *(Good and Hatt)* ने भी कहा है कि–"समकालीन अनुसंधान में गुणात्मक साक्षात्कार के पुर्नमूल्यांकन के कारण साक्षात्कार करने का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है।"

◆◆◆

5. साक्षात्कार प्रक्रिया के दौरान ध्यान रखने वाली मुख्य बातों पर प्रकाश डालें।
(Throw light on the essential considerations during the process of interview.)

उत्तर–साक्षात्कार प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य बातें या साक्षात्कार के विभिन्न पद (Process of Interview-Points for Consideration)–साक्षात्कार प्रक्रिया में साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्ता की चतुरता तथा कुशलता पर निर्भर करती है। इसमें अग्रलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं–

(1) साक्षात्कारदाताओं से सम्पर्क स्थापित करना (Establishment of Contact with Interviewers)–सबसे पहले इसमें साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कारदाता से पूर्व निर्धारित स्थान एवं समय पर सम्पर्क करता है। साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कारदाता से उचित तथा आदरपूर्वक मिलना चाहिए। साक्षात्कारकर्ता को साफ वस्त्रों में होना चाहिए और साक्षात्कारदाता को उसे तुरन्त अपना परिचय-पत्र देना चाहिए जो अनुसन्धान संस्था के शीर्ष-पत्र *(letter head)* पर हो।

(2) साक्षात्कार के उद्देश्य को बताना (Purpose of the Interview)–साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कारदाता से मिलने के बाद में अपना परिचय देकर अपने उद्देश्य का स्पीष्टकरण चतुरता के साथ देना चाहिए और साक्षात्कारदाता द्वारा यह पूछे जाने पर कि वह उसके पास ही क्यों आया है तो जिस निदर्शन पद्धति के द्वारा उसका नाम चुना गया हो, वह बता देनी चाहिए।

(3) सहयोग की प्रार्थना (Appeal for Cooperation)–इसके पश्चात् साक्षात्कारदाता से साक्षात्कारकर्ता को सहयोग की प्रार्थना करनी चाहिए। उसे यह समझाना चाहिए कि उनका सहयोग अनुसन्धान में अपना महत्त्व रखता है, साथ ही यह भी विश्वास दिलाना चाहिए कि उसके द्वारा दी गई सभी सूचनायें गुप्त रखी जायेंगी।

(4) प्रश्न पूछना (Questioning)–सर्वप्रथम साक्षात्कारकर्ता को प्राथमिक प्रश्न पूछे जायेंगे, जैसे आपका नाम क्या है? आपकी आयु क्या है? आदि।

(5) पुनःस्मरण (Recall)–कभी-कभी साक्षात्कारदाता अपने अनुभवों का प्रश्न करते समय भावनाओं में डूबकर मुख्य विषय से हट जाता है। ऐसे समय पर साक्षात्कारकर्ता का यह कर्तव्य है वह सावधानी से उसको मुख्य विषय की याद दिलाये। स्मरण कराते समय साक्षात्कारकर्ता को अत्यधिक सावधानी रखनी चाहिए। साक्षात्कारदाता को यह महसूस हो कि वास्तव में यह बात अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

Scanned with OKEN Scanner

(6) अन्वेषक प्रश्न (Probe Questions)–साक्षात्कार में ऐसे भी अवसर आते हैं जब साक्षात्कारकर्ता अनजाने अथवा जान-बूझकर किसी महत्त्वपूर्ण पहलू को देख लेता है। साक्षात्कारकर्ता को ऐसी परिस्थिति के प्रति सजग रहना चाहिए। यदि उसे ऐसा जान पड़े कि समस्या का कोई महत्त्वपूर्ण पहलू छूटा जा रहा है तो ऐसे अवसर पर उसे नम्रतापूर्वक यह कहकर इसकी याद दिला देनी चाहिए, तभी आप...की बात बता रहे थे। कृपया इसके सम्बन्ध में और अधिक बताइये यह बहुत दिलचस्प है।" अन्वेषक को प्रश्न करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिये। साक्षात्कारदाता को यही जान पड़े कि यह प्रश्न जिज्ञासा वश उत्पन्न हुआ है।

(7) प्रोत्साहन देना (Incentives)–साक्षात्कार करते समय बीच-बीच में उत्तरदाता को प्रोत्साहित करने की भी आवश्यकता होती है, जिससे उसे यह महसूस हो कि साक्षात्कारकर्ता उसके वर्णन में रुचि ले रहा है तथा उसके दृष्टिकोणों को समझ रहा है। उत्तरदाता को इस बात से भी प्रोत्साहन मिलता है जब अनुसंधानकर्ता उसकी राय मानता है तथा यह कहकर नोट करता है कि वह वास्तव में अत्यन्त उपयोगी है। साक्षात्कारकर्ता को वार्तालाप को मनोरंजन तथा रुचिपूर्ण बनाने के लिए उसे सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए और विवाद की स्थिति में अवश्य बचना चाहिए तथा मौन श्रोता के रूप में नहीं बैठना चाहिए। प्रारम्भ में साक्षात्कारकर्ता को बड़ा ही गम्भीर, सतर्क तथा तटस्थ रहना चाहिए। साक्षात्कारदाता को अधिक से अधिक अवसर देना चाहिए और स्वयं थोड़ा बोलना चाहिए। साथ ही साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कारदाता के पूछने पर किसी भी दिशा में किसी दूसरे अनुभव नहीं बताना चाहिए। इससे साक्षात्कारदाता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

(8) उन्मुक्त वार्तालाप की प्राप्ति (Securing Rapport)–साक्षात्कार के आरम्भ में जो उत्तरदाता होता है, वह बहुत ही सावधानी के साथ उत्तर देता है, परन्तु जैसे-जैसे वार्तालाप का अधिक विकास हो जाता है वैसे-वैसे दोनों के बीच में अधिक विश्वास, आत्मीयता तथा मित्रतापूर्ण वातावरण उत्पन्न हो जाता है तथा साक्षात्कारदाता सब कुछ भूलकर अपने अनुभवों का वर्णन करने में तल्लीन हो जाता है। साक्षात्कारकर्ता का सामान्य ज्ञान, चतुरता, अनुभव तथा व्यक्तित्व ही ऐसी स्थिति को प्राप्त करने में सहायक होता है। कोई भी रहस्य किसी भी व्यक्ति के लिये बहुत ही परेशानी तथा बेचैनी उत्पन्न कर देता है और स्वभावतः वह दूसरों की सहायता लेना चाहता है। सबसे बड़ी आवश्यकता इस समय उस उचित व्यक्ति की होती है, जो इतना बुद्धिमान हो कि उसके महत्त्व को ठीक-ठीक समझ सके और साथ ही वह व्यक्ति इतना विश्वसनीय भी हो कि उसे इधर-उधर कहता न फिरे या उसके विरुद्ध उसका उपयोग न करे और इतना भी हो कि उसकी कमजोरियों को भी सहज भाव से ग्रहण करे तथा उनके कारण इससे घृणा न करें। साक्षात्कारदाता का विश्वास प्राप्त करने के लिए साक्षात्कारकर्ता को इन्हीं बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

(9) क्रोधित होने से बचना (To Avoid Irritating Points)–साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार लेते समय ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिए जिनसे कि साक्षात्कारदाता के नाराज होने का भय हो, ऐसा होने पर साक्षात्कार के समाप्त हो जाने तथा अध्ययन के अधूरा रह जाने का भय रहता है। उदाहरण के लिए, किसी चोर से यह पूछना कि चोरी करना बड़ा गन्दा काम है, तुमने चोरी क्यों की, गलत होगा।

(10) उचित समयानुसार प्रश्न (Adequate and Timely Questions)–साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्ता को सदैव उचित प्रश्न पूछने चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्तिगत प्रश्न अधिक नहीं पूछने चाहिए, जैसे–यदि किसी व्यक्ति से उसकी प्रेमिका के बारे में या उसके गुप्त सम्बन्धों के बारे में पूछा जायेगा तो वह इन प्रश्नों का उत्तर नहीं देगा और साक्षात्कार भी बन्द कर देगा। प्रश्न उचित होने चाहिए और लाभ उनका समयानुसार होना भी आवश्यक है। अर्थात् एक विषय को छोड़कर एकाएक-दूसरे विषय पर प्रश्न नहीं पूछने चाहिए। ऐसा होने पर साक्षात्कारदाता क्रोधित भी हो सकता है।

(11) अन्य सामान्य बातें (Some Other General Things)–ऊपर वर्णित हुई बातों के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी है जिन्हें साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार लेते समय ध्यान में रखना चाहिए। साक्षात्कारदाता को जटिल प्रश्न और ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर अति संक्षिप्त हो नहीं पूछने चाहिए, क्योंकि वर्णनात्मक प्रश्नों से अधिक उचित एवं उपयुक्त सूचना प्राप्त होने की सम्भावना रहती है और साथ ही ऐसे प्रश्न भी नहीं पूछने चाहिए जो पथ-प्रदर्शन करने वाले हो जैसे–"क्या आप सिनेमा देखना पसन्द करते हैं।" ऐसी दशा में साक्षात्कारदाता प्रश्न के अनुसार ही 'हाँ' में उत्तर देता है।

Scanned with OKEN Scanner

(12) सूचना को नोट करना (Noting of Information)–जब साक्षात्कार स्वतन्त्र वर्णन के रूप में होता है तब उसे लिखना एक समस्या होती है। वास्तव में लिखने का काम कम से कम होना चाहिए। वार्तालाप का प्रवाह बातचीत करते समय अत्यधिक लिखते रहने के कारण रूक जाता है और साक्षात्कार समाप्त हो जाने का भय रहता है। अतः संकेत लिपि *(Short Hand)* या संकेत शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। 'टेपरिकॉर्ड का प्रयोग भी ठीक है, परन्तु इससे कभी साक्षात्कारदाता को सन्देह हो जाने का डर रहता है, फिर भी अपनी स्मरण-शक्ति पर अधिक विश्वास न करके किसी न किसी रूप में कुछ न कुछ नोट अवश्य करते रहना चाहिए।

(13) साक्षात्कार का नियन्त्रण, निर्देशन एवं प्रमाणीकरण (Controlling directing and Validating of the Interview)–साक्षात्कारकर्ता को साक्षात्कार करते समय एक अति आवश्यक कर्तव्य साक्षात्कार को निर्देशित, नियंत्रित एवं प्रमाणीकृत करना भी है। यदि वर्णनकर्ता किसी बात को करने को अत्यन्त उत्सुक है और उसे एकाएक रोक दिया जाये तो उसके अहंभाव को चोट लग सकती है। और वह बुरा मान सकता है। इसलिए साक्षात्कारकर्ता को बड़े धैर्य के साथ वे सभी बातें सुननी चाहिए और अपनी रुचि के स्थान पर उसे साक्षात्कारदाता की रुचि का बड़ा ध्यान रखना चाहिए।

◆◆◆

बालक सम्बन्धी परावर्तक पत्रिका
(Reflective Journal about Children)

1. बच्चों के बारे में परावर्तक पत्रिका किसे कहते हैं? इसका क्या महत्त्व है? परावर्तक पत्रिका को आप कैसे लिखेंगे?
(What do you mean by Reflective Journal about children? Why is it important? How reflective journal is written?)

उत्तर–बच्चों से सम्बन्धित परावर्तक पत्रिका का अर्थ (Meaning of Reflective Journal about Children)–बच्चों से सम्बन्धित परावर्तक पत्रिका से अभिप्राय होता है–वह नोटबुक या कागज़ का टुकड़ा जिसका प्रयोग बालक अपने स्वयं के विचारों को लिखने हेतु करते हैं। इस प्रकार के पत्रिका-लेखन से बालकों में अधि-संज्ञानात्मक कौशलों (Meta Cognitive Skills) के विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस पत्रिका द्वारा बालक स्वयं का मूल्यांकन करने तथा यह मालूम करने के लिये किया जाता है कि वे क्या जानते हैं।

(Reflective journals are note books or pieces of papers that students use when writing about the reflecting on their own thoughts.)

स्वयं के विचारों और चिन्तन का मूल्यांकन करने की प्रक्रिया उन विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से सहायक होती है, जो नये-नये सम्प्रत्ययों को अभी सीख ही रहे होते हैं या जटिल समस्याओं को हल करना प्रारंभ ही करते हैं।

परावर्तक पत्रिका का महत्त्व (Importance of Reflective Journal)–परावर्तक पत्रिका का महत्त्व या आवश्यकता निम्नलिखित है–

(i) परावर्तन पत्रिकाएं विद्यार्थियों को मुक्त ढाँचे (Open-ended format) में लेखन कौशलों के अभ्यास के अवसर प्रदान करती हैं।

(ii) सबसे अधिक शक्तिशाली अधिगम तब होता है जब बालक स्वयं का मूल्याकंन स्वयं करते हैं तथा स्वयं का परावर्तन (Reflect) करते हैं।

(iii) समस्याओं, गलतफहमियों और भ्रमों (Misunderstandings, and Confusions) को स्पष्ट करने के लिये परावर्तक क्रियाएँ (Reflective Process) आवश्यक होती हैं। इस प्रकार के लेखन से यह उद्देश्य पूरा होता है।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) परावर्तन पत्रिकाएँ विद्यार्थियों के मस्तिष्क की खिड़कियों के दरवाज़ों को खोलने का कार्य करती हैं।

(v) परावर्तन पत्रिकाएँ अध्यापकों को विद्यार्थियों की ओर ध्यान देने के अवसर प्रदान करती हैं।

(vi) ये विद्यार्थियों के बारे में अतिरिक्त सूझबूझ प्रदान करने के लिये एक महत्त्वपूर्ण-उपकरण(Tool) प्रदान करती हैं।

(vii) परावर्तन पत्रिका इसलिये भी आजकल महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं ताकि इनसे बालक को यह ज्ञान हो जाये कि वे क्या कुछ जानते हैं तथा वह अपने बोध (understanding) में वृद्धि करने के लिए क्या कुछ कर सकते हैं या करना चाहते हैं?

(viii) कम सफल अधिगमकर्ता या बालकों को यह भी मालूम पड़ जाता है कि उनके मस्तिष्क को किन-किन आदतों के विकास की आवश्यकता है।

(ix) बालक ने जो कुछ भी स्वयं का मूल्यांकन करके यह खोजा है कि उन्हें क्या कुछ आता है, उसका अपने अधिगम में सुधार लाने के लिये योजना बनाने में प्रयोग किया जा सकता है।

परावर्तन पत्रिका को कैसे लिखा जाता है?
(How to write Reflective Journal)

परावर्तन-पत्रिका का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है–'उसे लिखना'। यह कैसे लिखी जानी चाहिये? इसका ज्ञान बालक को अवश्य होना चाहिये। इसके लिये कुछ ध्यान देने योग्य बातें निम्नलिखित हैं–

1. पत्रिका लिखने का मुख्य लक्ष्य होता है–चिंतन को लेखन में कैसे स्थानान्तरित किया जाये? इस पक्ष को विद्यार्थियों के सम्मुख स्पष्ट करना अति आवश्यक है।
2. बहुत छोटे बच्चों को पत्रिका लिखने का कार्य जोर-जोर से बोलकर तथा चिन्तन करते हुए करना चाहिये।
3. पत्रिका में प्रविष्टियाँ (Enteries) कक्षा में कराये गये कार्यों के आधार पर हो सकती हैं।
4. पत्रिका में प्रविष्टियाँ विद्यार्थी के स्वयं के जीवन के बारे में चिन्तन या कक्षा से बाहर के वातावरण के बारे में भी हो सकती हैं।
5. परावर्तन पत्रिका में विद्यार्थियों को उनके स्वयं के चिंतन के बारे में सोचने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये।
6. परावर्तन पत्रिका में परावर्तन-पत्रिका अध्यापक के उत्तरदायित्वों को विद्यार्थियों के उत्तरदायित्वों में स्थानान्तरित करती है।
7. इस पत्रिका के माध्यम से विद्यार्थियों को व्यक्तिगत मूल्यों के विकास हेतु प्रोत्साहित करना चाहिये।
8. विद्यार्थियों को इस योग्य बना दिया जाये कि वे यह जान सकें कि वे व्यक्तिगत रूप से क्या सोचते हैं या महसूस करते हैं? वे स्वयं के निष्कर्ष क्या निकालते हैं।
9. पत्रिका के प्रश्न गहरे होने चाहिये, न कि सतह स्तर के।
10. पत्रकारिता एक नियमित गतिविधि का रूप ले ले।
11. रूटीन पत्रकारिता विद्यार्थियों को अन्य लेखन क्रियाओं को लिखने के लिये अवसर प्रदान करे।
12. पत्रिका का पुनः पठन (Re-reading) और संशोधन अवश्य हो। इसके लिये विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
13. पत्रिका के माध्यम से विद्यार्थियों को स्वयं अपने अधिगम और अपनी प्रविधियों की आलोचना करने में सहायता प्रदान की जा सकती है।
14. विद्यार्थियों को स्वयं के विचारों के प्रसार, बचाव, बहस और उन पर प्रश्न करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

Scanned with OKEN Scanner

15. मूल्यांकन की प्रक्रिया में, जो विद्यार्थियों ने पत्रिका में लिखा है उसके बारे में उन्हें प्रतिपुष्टि (Feedback) प्रदान की जानी चाहिये।

पत्रिका का प्रबन्धन (Management of Journal)–पत्रिका लिखने के बाद उसका प्रबन्धन भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लिये निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है–

1. परावर्तन पत्रिका को किसी लिफाफे (Folder) या जिल्द वाली नोट-बुक में या स्पायरल नोट बुक (Spiral Note Book) में रख सकते हैं।
2. परावर्तन पत्रिका को उपरोक्त ढंग से रखने के परिणामस्वरूप विद्यार्थी उसे 'रिव्यू' (Review) कर सकते हैं तथा उन पर निगरानी रख सकते हैं।
3. पत्रिका ही हर प्रविष्टि (Entry) की पहचान के लिये किसी 'प्रणाली' को निर्धारित करना चाहिये।
4. विद्यार्थियो के ग्रेड-स्तर के अनुसार पत्रिका को ऐसे स्थान पर रखें जहाँ पर सुगमता से पहुँचा जा सके। विद्यार्थियों को यह मालूम हो कि उनकी पत्रिका कहाँ पर मिलेगी।
5. पत्रिका के वितरण और उन्हें एकत्रित करने के लिये किसी स्पष्ट प्रणाली को निर्धारित करें।
6. यह अधिक उपयुक्त होगा यदि विद्यार्थी पत्रिकाओं को व्यक्तिगत रूप से कहीं रखें।

◆◆◆

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख और विवरणात्मक कथाऐं
[Anecdotal Records and Narratives]

1. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख का अर्थ स्पष्ट करें। यह कितने प्रकार का होता है? अच्छे आकस्मिक अभिलेख के गुण बताएँ।
(Explain the meaning of Anecdotal Record? What are its types? Describe the qualities of a good anecdotal record.)

उत्तर–आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख का अर्थ (Meaning of Anecdotal Record)–विभिन्न विद्वानों ने आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं। लेकिन इसे अवलोकन विधि में अधिकतर प्रयुक्त किया जाता है। साधारण शब्दों में आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख से अभिप्राय है–विद्यार्थियों द्वारा लिखी डायरी, अध्यापकों द्वारा तैयार किये गये घटनावृत्त तथा संचित अभिलेख कार्ड।

रैथस लुईस (Rathus Louis) के अनुसार, 'किसी विद्यार्थी की जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना की रिपोर्ट ही आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख है।' (An anecdotal record is a report of significant episode in the life of a student.)

जॉन डी. विलार्ड (John D. Willard) ने आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख को इस प्रकार परिभाषित किया है–

'आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख निरीक्षण की दृष्टि में किसी विद्यार्थी के लिये महत्त्व रखती हुई घटना का सरल विवरण या कथन होता है।' (An anecdotal record is a simple statement of an incident deemed by the observer to be significant with respect to a given pupil.)
–John D. Willard

इस प्रकार, उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन मे हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं–

(i) आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख किसी अध्यापक द्वारा निरीक्षण किया गया किसी विद्यार्थी के व्यवहार और व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ वर्णन है।
(ii) यह अभिलेख नियमित (Regular) निरीक्षण का परिणाम होता है।
(iii) यह बिना किसी तैयारी के किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) इसे अनौपचारिक अवलोकन (Informal Observation) भी कहा जाता है।

(v) यह दैनिक जीवन की घटनाओं का वर्णन करता है।

(vi) इसमें किसी घटना को मौके पर ही रिकॉर्ड किया जाता है।

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के प्रकार
(Types of Anecdotal Records)

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के निम्न स्वरूप होते हैं–

1. **पहली प्रकार (First Type)**–इस प्रकार के अभिलेख के अन्तर्गत विद्यार्थी के व्यवहार का वस्तुनिष्ठ (Objective) अध्ययन होता है तथा इसमें किसी भी तरह के विचारों का समावेश नहीं किया जाता।
2. **दूसरी प्रकार (Second Type)**–इस प्रकार के अभिलेख में विद्यार्थी के व्यवहार के वर्णन के साथ-साथ संक्षिप्त-सी टीका-टिप्पणी भी लिखी जाती है।
3. **तीसरी प्रकार (Third Type)**–तीसरी प्रकार में विद्यार्थी के व्यवहार का विवरण एवं टीका-टिप्पणी के अतिरिक्त उसमें उपचार का वर्णन भी होता है।
4. **चौथी प्रकार (Fourth Type)**–इस चौथी प्रकार में व्यवहार का वर्णन, उसके गुण व दोषों के साथ होता है और भावी जीवन में उपचार के लिए सुझावों का उल्लेख भी होता है।

अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के गुण
(Qualities of Good Anecdotal Records)

1. प्रमुख सूचनाएँ (Selective Information)–एक अच्छे अभिलेख की यह विशेषता भी होती है कि उसमें प्रमुख सूचनाएँ ही रिकॉर्ड की जानी चाहिये। उचित निदान तभी संभव है यदि केवल सम्बन्धित तथा अर्थ-पूर्ण घटनाओं का ही आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में उल्लेख किया गया हो।

2. पृष्ठभूमि की जानकारी (Information of the Background)–आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में यह विशेषता होनी आवश्यक है कि वह व्यक्ति या विद्यार्थी के बारे में पूर्ण पृष्ठभूमि की जानकारी प्रस्तुत करे।

3. वस्तुनिष्टता (Objectivity)–एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में वस्तुनिष्ठता का होना अति आवश्यक है अर्थात् इसे पक्षपात, द्वेष आदि से मुक्त होना चाहिये।

4. पूर्ण चित्र (Complete Picture)–एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में यह विशेषता भी होनी चाहिये कि वह किसी व्यक्ति या घटना के बारे में पूर्ण चित्र प्रस्तुत करे। अपूर्ण या अधूरा चित्र प्रस्तुत करने से हानि हो सकती है।

5. घटनाओं का विवरण तथा क्रम (Descriptions and Sequence of Events)–इस प्रकार के अभिलेख में दर्ज सूचनाओं या घटनाओं का उचित क्रम होना चाहिये तथा उनका विवरण भी क्रम में हो। घटनाओं के विवरण में उपयुक्त शब्दों (Relevant Terms) का प्रयोग ही किया जाना चाहिये।

◆◆◆

8. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के मुख्य चरणों का वर्णन करें। इसके लाभ और सीमाओं की भी चर्चा करें।
(Describe the main steps of anecdotal record. Also mention the advantages and limitations of anecdotal records.)

उत्तर–आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के निम्नलिखित चरण होते हैं–

1. प्रथम चरण (First Step)–इस चरण के अन्तर्गत सहयोग हासिल किया जाता है। सहयोग से अभिप्राय है–उस व्यक्ति का सहयोग जिसके बारे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख तैयार किया जाता है। इस सहयोग के अभाव में इस अभिलेख को तैयार करना कठिन है।

Scanned with OKEN Scanner

2. दूसरा चरण (Second Step)—इस चरण में इस बात पर बल दिया जाता है कि अध्यापक उतना ही विवरण लिखे जितना कि आवश्यक है। प्रायः यह देखा गया है कि अध्यापक आवश्यकता से अधिक ही लिखने लगते हैं। अतः इस चरण के अन्तर्गत अनावश्यक बातों को रिकॉर्ड नहीं किया जाता।

3. तीसरा चरण (Third Step)—तीसरे चरण से सम्बन्धित फार्म (Form) की तैयारी शामिल होती है। इस फार्म में चार स्तम्भ (Column) बनाये जाते हैं। पहले कॉलम में तिथि, दूसरे कॉलम में स्थान, तीसरे कॉलम में घटना तथा चौथे कॉलम में टीका-टिप्पणी लिखनी होती है। फार्म के ऊपर विद्यार्थी का नाम एवं कक्षा होती है। फार्म के अन्त में निरीक्षक के हस्ताक्षर करवाये जाते हैं।

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख (Anecdotal Record)

दिनांक	स्थान	घटना	टीका-टिप्पणी

4. चौथा चरण (Fourth Step)—इस चरण के अन्तर्गत निरन्तरता रखी जाती है। कक्षा में बहुत-सी घटनाएँ होती रहती हैं जो रिकॉर्ड करने योग्य होती हैं। शिक्षण-कार्य को बीच में छोड़ कर इन्हें नोट नहीं किया जा सकता और विद्यार्थियों का ध्यान भी बँट जाता है। ऐसी स्थिति में अध्यापक कुछ चिह्नों का प्रयोग कर सकता है ताकि उन चिह्नों को देखकर वह घटना याद आ जाये तथा उसे वह रिकॉर्ड कर लें।

5. पाँचवाँ चरण (Fifth Step)—इस चरण के अन्तर्गत प्रमुख फाइल तैयार की जाती है अर्थात् आकस्मिक आलेख एक स्थान पर इकट्ठा किया जाता है ताकि आवश्यकतानुसार सुगमता से उसका अध्ययन किया जा सके।

6. छठा चरण (Sixth Step)—इस चरण में संक्षिप्तीकरण (Summarization) की प्रक्रिया सम्मिलित की जाती है। महीने में एक बार आकस्मिक आलेखों का संक्षिप्तीकरण किया जाना चाहिये। वार्षिक संक्षिप्तीकरण परामर्शदाता को ही करनी चाहिये।

आकस्मिक निरीक्षण के लाभ
(Advantages of Anecdotal Records)

इस प्रकार के आलेख में निम्नलिखित लाभ होते हैं—

1. ये अभिलेख उपचारक सेवाओं (Clinical Services) में लाभदायक होते हैं।
2. इन अभिलेखों में विवरण की विविधता (Variety of Descriptions) देखने को मिलती है।
3. यह अभिलेख विद्यार्थियों को आत्मज्ञान प्राप्त करने में भी सहायक होता है।
4. इन अभिलेखों के माध्यम से अध्यापक हर बच्चे की ओर ध्यान दे सकता है।
5. ऐसे अभिलेखों से अन्य अध्यापकों को भी विवरण लिखने की अभिप्रेरणा मिलती है।
6. विद्यार्थियों की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में की गई प्रतिक्रियाओं को समझने में सहायता मिलती है।
7. इन अभिलेखों के परिणामस्वरूप अध्यापक का ध्यान पुस्तकीय ज्ञान से हटकर बालक के विकास की ओर आकर्षित होता है।
8. इन पंक्तियों का अध्ययन करके अध्यापक और परामर्शदाता बालकों की समस्याओं से पहले से ही परिचित हो जाता है। परिणामस्वरूप वह अधिक गहराई से सोच-विचार सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

9. इस अभिलेख के आधार पर किसी के भी व्यक्तित्व का सही अनुमान लगाना संभव होता है। यह अनुमान निर्देशन सेवाओं में सहायक होता है।
10. ये अभिलेख बालकों की समस्याओं पर भी प्रकाश डालते हैं। इस दृष्टि से ये अभिलेख निर्देशन कार्य में बहुत सहायक होते हैं।
11. ये अभिलेख थोड़े समय में ही बालकों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
12. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख अध्यापक के मन में बालक के प्रति रुचि उत्पन्न करता है तथा अध्यापक बालक सम्बन्ध को सुदृढ़ करता है।

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख की सीमाएँ
(Limitations of Anecdotal Records)

इस प्रकार के अभिलेख का प्रयोग सीमित होता है। इसकी मुख्य सीमाएँ निम्नलिखित होती हैं–

1. कठिन व्याख्या (Difficult Interpretation)–इस प्रकार के आलेखों को पढ़कर व्याख्या करना कठिन कार्य माना जाता है। त्रुटिपूर्ण व्याख्या से निर्देशन कार्य प्रभावित हो सकता है।

2. रख-रखाव में कठिनाई (Difficulty in Maintenance)–आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख को लिखना कठिन कार्य होता है, क्योंकि हमारे स्कूलों में बच्चों की संख्या इतनी बढ़ चुकी है। सभी बच्चों का यदि रिकॉर्ड लिख भी लिया जाये तो उसका रख-रखाव बहुत मुश्किल होता है।

3. आत्मनिष्ठता (Subjectivity)–ये अभिलेख आत्मनिष्ठ (Subjective) होते हैं। अध्यापक जो कुछ भी चाहता है उसे लिख देता है।

4. सभी प्रकार के वर्णन (All Types of Description)–इन अभिलेखों में व्यक्ति के अच्छे या बुरे कार्यों के दर्ज होने की संभावना रहती है। लेकिन इनमें सभी प्रकार के विवरण दर्ज होने चाहिये।

5. अवांछित व्यवहार का अभिलेख (Recording of Undesirable Behaviour)–इस प्रकार के अभिलेख में अवांछित व्यवहारों के रिकॉर्ड होने की संभावना बनी रहती है। अतः इसमें प्रतिकूल व्यवहारों को ही न दर्ज किया जाये, अपितु सभी प्रकार के व्यवहारों को दर्ज करना चाहिये।

6. अध्यापक की स्वयं की प्रतिक्रियाएँ (Teacher's Own Reactions)–कई बार ऐसी संभावनाएँ भी रहती हैं कि अध्यापक स्वयं की प्रतिक्रिया को नोट करता रहता है तथा वास्तविक विवरण नहीं देता।

◆◆◆

9. विवरणात्मक कथाओं पर एक नोट लिखें।
(Write a note on Narratives.)

उत्तर–विवरणात्मक कथाओं से अभिप्राय (Meaning of Narratives)–विवरणात्मक कथाएँ मौके पर घट रहे व्यवहारों का उसी रूप में लिखित क्रम होता है। यह बच्चे की गतिविधियों का विस्तार से वृत्तांत होता है।

(A narrative is written in sequence within an extended time period, taking on the spot records of behaviour as it is occurring). इसे रनिंग रिकॉर्ड (Running Record) भी कहते हैं।

उद्देश्य (Purpose)–किसी स्थिति के बारे में इस प्रकार के लिखित रिकॉर्ड जिसे कोई दूसरा व्यक्ति बाद में पढ़ सके और उस दृश्य को देख सके तथा व्यवहार के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर केन्द्रित करने का प्रयास किया जाता है तथा उसका वृत्तांत लिखा जाता है।

लाभ (Advantages)–

(i) इसमें कोई पूर्व योजना तथा व्यापक प्रशिक्षण नहीं चाहिये।
(ii) यह किसी एक व्यवहार पर केन्द्रित न होकर सभी व्यवहारों पर केन्द्रित होती है।

Scanned with OKEN Scanner

(iii) इसे दैनिक भाषा में लिखा जाता है।
(iv) बाद के विश्लेषणों के लिये उसे कोई भी प्रयुक्त कर सकता है।
(v) इसमें न्यूनतम यंत्रों/उपकरणों की आवश्यकता रहती है।
(vi) व्यवहार का क्रम, पर्यावरणीय सूचनाओं तथा दूसरों की प्रतिक्रियाओं को सुरक्षित (Preserve) किया जा सकता है।
(vii) इसमें घटनाओं का रिकॉर्ड स्थायी रूप से हो जाता है।

दोष (Disadvantages)–

(i) एक से अधिक बालक का निरीक्षण करने में यह विधि कठिन लगती है।
(ii) रिकॉर्ड करने में समय अधिक लगता है।
(iii) निरीक्षणकर्ता बच्चों से स्वयं को अलग रखते हैं, जबकि अध्यापकों के लिये ऐसा करना कठिन हो जाता है।

◆◆◆

2.6. खेल का अर्थ, विशेषताएँ तथा प्रकार (Meaning, characteristics and Kinds of plays)

1. 'खेल' का अर्थ समझाएं। खेल की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
(Explain the meaning of 'Play'. Throw light on its characteristics.)

अथवा

बालकों के खेल की विशेषताएँ बताइए।
(Write characteristics of Children's Play.)

उत्तर–खेल का अर्थ (Meaning of Play) : खेल बच्चों की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। खेलों के द्वारा बालक के शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास के साथ-साथ सामाजिक अन्तःक्रिया का विकास होता है। खेलों को बालकों की वृद्धि और विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

खेल की क्रिया अहम-प्रेरित (Self-Motivated) होती है तथा आनन्ददायक भी होती है, खेल की क्रिया बच्चों में उत्साह, स्फूर्ति, आत्म विश्वास, चंचलता, प्रसन्नता आदि गुणों का विकास करती है।

आधुनिक युग में खेल के महत्त्व को विद्वानों ने स्वीकार किया है। इसीलिए विभिन्न शाखाओं में खेल से जुड़ी विभिन्न क्रियाओं को शामिल किया गया है। जैसे–ड्रामा, संगीत, विभिन्न खेल इत्यादि। आजकल दूरदर्शन और रेडियो के माध्यम से भी 'खेलों' के महत्त्व को दर्शाया एवं बताया जा रहा है। खेलों से जुड़े खिलौनों के प्रयोग के माध्यम से बच्चों के बौद्धिक विकास को बल प्रदान किया जा रहा है। ग्रास (Gross) के विचारानुसार खेलों के द्वारा बच्चे विभिन्न कौशलों का अभ्यास करते हैं।

क्रो एवं क्रो (Crow & Crow) ने खेल को इस प्रकार परिभाषित किया है–"खेल वह क्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति उस समय व्यस्त होता है जब वह उस कार्य को करने के लिए स्वतंत्र होता है, जिस कार्य को वह करना चाहता है।" ("Play can be defined as the activity in which a person engages when he is free to do what he wants to.")

हरलॉक (Hurlock, 1978) के अनुसार, "खेल वह कोई भी क्रिया है, जो प्राप्त होने वाले आनन्द के लिए की जाती है, परंतु इसके अन्तिम परिणाम पर कोई विचार नहीं किया जाता है।" ("It means any activity engaged in for the enjoyment it gives, without consideration of the end result."–Hurlock, 1978)

Scanned with OKEN Scanner

कुछ लोगों ने खेल को रचनात्मक क्रियाओं की अभिव्यक्ति माना है तथा कुछ लोग इसे आनन्दपूर्ण, स्वाभाविक तथा रचनात्मक क्रिया कहा है। वेलनटाईन (Valentine) के अनुसार खेल किसी कार्य में एक प्रकार का मनोरंजन है। अतः 'खेल' (Play) एक स्वाभाविक (Spontaneous) और आत्म-प्रेरित (Self-Motivated) शारीरिक या मानसिक क्रिया है, जो अपने आप में पूर्ण है तथा जिसका कोई अव्यक्त लक्ष्य नहीं होता। इसके परिणाम पर कोई विचार नहीं किया जाता।

फ्रोबेल (Frobel) के अनुसार, "बच्चे के विकास का सर्वोत्तम रूप खेल ही है। सक्रियात्मक होता है तथा अंतःकरण का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। यह प्रसन्नता तथा संतोष प्रदान करता है, आन्तरिक और बाहरी आराम होता है।"

खेल की विशेषताएं
(Characteristics of Play)

खेल की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित होती हैं–

1. खेल स्वतंत्र होते हैं। वास्तव में यह स्वतंत्रता है।
2. खेल 'साधारण' (Ordinary) या वास्तविक जीवन नहीं होते।
3. खेल 'साधारण जीवन' (Ordinary life) से भिन्न होते हैं।
4. खेल 'व्यवस्था' (Order) पैदा करते हैं, खेल के लिए 'व्यवस्था' (Order) चाहिए।
5. खेल का सम्बन्ध किसी भौतिक रुचि से नहीं होता तथा इनमें से कोई 'लाभ' भी उठाया नहीं जा सकता।
6. खेल एक स्वाभाविक (Spontaneous) प्रवृत्ति है।
7. यह एक आत्म-प्रेरित शारीरिक मानसिक क्रिया है।
8. खेल शारीरिक या मानसिक क्रिया है।
9. यह स्वयं में पूर्ण होती है।
10. खेल बच्चों में स्फूर्ति और चंचलता पैदा करते हैं।
11. बच्चे खेल के अन्तिम परिणाम पर कोई विचार नहीं करते।
12. खेल का कोई गुप्त लक्ष्य नहीं होता। केवल प्रत्यक्ष लक्ष्य होते हैं।
13. खेल का मुख्य लक्ष्य आनन्द और स्वतंत्रता की प्राप्ति होती है।
14. खेल को जन्मजात प्रवृत्ति माना है, लेकिन यह सही नहीं है, क्योंकि खेल सीखने और वातावरण पर आधारित है।
15. प्रत्येक खेल में रचनात्मकता (Creativeness) का पाया जाना आवश्यक नहीं।
16. खेल से बालक में संतुष्टि का संचार होता है।
17. खेल बच्चों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।
18. खेल स्वेच्छा पर आधारित होता है।
19. खेल आराम के रूप में भी कार्य करता है।

बच्चों के खेल की विशेषताएं
(Characteristics of Children's Play)

प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा बालकों में खेल की भिन्न विशेषताएं होती हैं जोकि निम्नलिखित हैं–

1. **परम्पराओं से प्रभावित (Influenced by Traditions)** : समाज या देश से जुड़ी परम्पराओं से भी बालकों के खेल अत्यधिक प्रभावित होते हैं। बच्चे आमतौर पर अपने बड़ों से कुछ न कुछ सीखते हैं, लेकिन फिर भी वे उनसे कुछ न कुछ नयापन जोड़ देते हैं, इस प्रकार के नयेपन की वृद्धि हर पीढ़ी (Generation) करती रहती है। यह किसी बालक विशेष का कार्य नहीं होता।

Scanned with OKEN Scanner

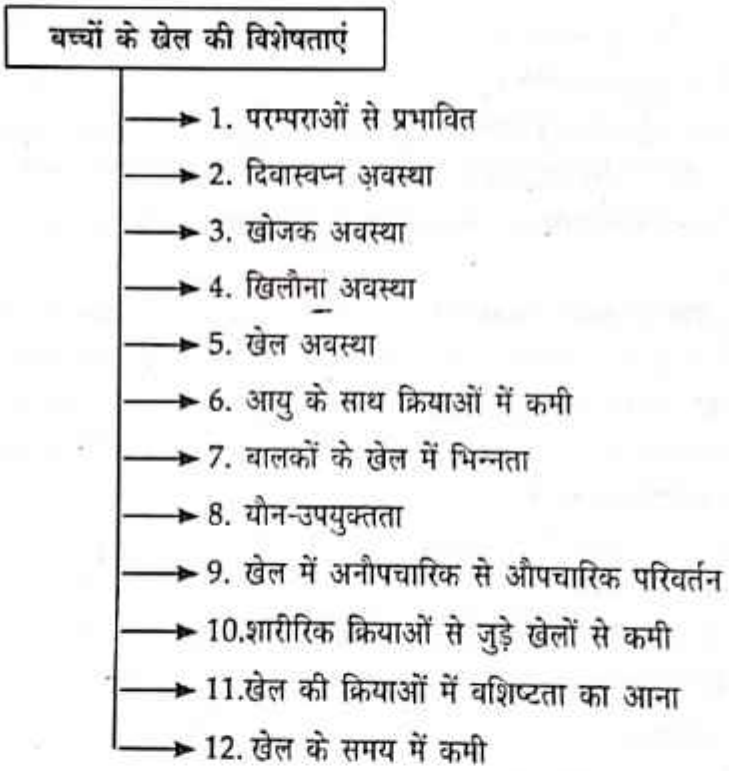
2. **दिवास्वप्न अवस्था (Stage of Day Dreaming)** : दिवास्वप्न की अवस्था का प्रारम्भ लगभग दस वर्ष की आयु से हो जाता है। इसके पश्चात् धीरे-धीरे मन खेल से दूर होने लगता है तथा वह खाली समय में बैठकर दिवास्वप्न देखने लगता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ उसके दिवास्वप्नों की प्रकृति बदलने लगती है।
3. **खोजक अवस्था (Exploratory Stage)** : बालकों के खेल का विकास एक निश्चित क्रम से होता है तथा सबसे पहली अवस्था खोजक-अवस्था होती है। इस अवस्था के दौरान बच्चा जो भी चीज देखता है उसे झपटने का प्रयास करता है। इस अवस्था से उसके हाथों में क्रियात्मक और कौशलों (Skills) का विकास प्रारम्भ हो जाता है। कुछ समय के पश्चात् वह घिसटकर (Crawling) चलने लगता है। वह गेंद आदि के पीछे घिसटता है। इसके पश्चात् ही वह चलना सीखता है।
4. **खिलौना अवस्था (Toy Stage)** : एक वर्ष की अवस्था से बालक का खिलौनों से खेलना शुरू हो जाता है। आठ वर्ष की अवस्था तक बालकों का खिलौनों के साथ खेलना अपनी चरम सीमा तक पहुंच जाता है। लगभग दो वर्ष की आयु तक बालक यह समझता है कि खिलौनों में भी जीवन है।
5. **खेल अवस्था (Play Stage)** : एक वर्ष के पश्चात् जब बच्चा ठीक प्रकार से चलना शुरू कर देता है तब वह दूसरे बच्चों के साथ खेलना शुरू कर देता है। शुरू में वह दूसरे बच्चों के साथ खिलौनों से खेलता है, लेकिन आयु बढ़ने के साथ-साथ वह दूसरे खेलों में भी रुचि लेना शुरू कर देता है। आठ-नौ वर्ष तक वह खिलौने के साथ खेलते हुए दौड़ने लगता है और सामूहिक खेलों में अधिक रुचि लेने लगता है। स्कूल शुरू होने पर वह नये-नये बच्चों के साथ मिलकर वह नये-नये खेल सीखता है। इसी अवस्था से उसमें 'शौक' (Hobbies) विकसित होने लगती है।
6. **आयु के साथ क्रियाओं में कमी (Decrease in Activities with Age)** : जैसे-जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, वैसे-वैसे उसकी खेल-क्रियाएं भी कम होती चली जाती हैं। इस कमी का मुख्य कारण होता है पढ़ने, लिखने तथा काम की ओर उन्मुख होना। साढ़े सात वर्ष की अवस्था में खेल-क्रियाओं (Play Activities) की औसत संख्या 27, साढ़े ग्यारह वर्ष की अवस्था में 21 तथा साढ़े सोलह वर्ष की आयु में यह औसत केवल 13 रह जाती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चों के दोस्तों की संख्या में भी कमी आ जाती है, इसलिए भी खेल-क्रियाएं कम होने लगते हैं।
7. **बालकों के खेल में भिन्नता (Variation in Play)** : यह आम तौर पर देखा जाता है कि सभी बच्चों के खेल खेलने में अन्तर रहता है। ये अन्तर खेल खेलने के तरीकों में अन्तर होने के कारण होता है।
8. **यौन-उपयुक्तता (Sex Appropriateness)** : बाल्यकाल में सभी बच्चे (लड़के तथा लड़कियाँ) लगभग एक-समान खेलते हैं। लेकिन 3-4 वर्ष की आयु से उनके खेलों में भी अन्तर आने लगता है। स्कूल जाने की अवस्था तक तो यह अन्तर और भी अधिक हो जाता है।
9. **खेल में अनौपचारिक से औपचारिक परिवर्तन (Play Changes from Informal to Formal)** : प्रारम्भिक अवस्था में बालकों के खेल में किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं होती। उनका खेल स्वाभाविक होता है। बालक कहीं पर भी, किसी के साथ भी तथा कितनी भी देर तक खेलता रहता है। इस दौरान उन्हें किसी भी पाबन्दी का ध्यान नहीं रहता। लेकिन आयु तथा समझ बढ़ने के साथ-साथ उन्हें खेलों के औपचारिक नियमों का ज्ञान होने लगता है तथा वे खेल की औपचारिक ड्रेस पहनकर खेलना चाहते हैं। इस प्रकार उनमें खेल से जुड़ी औपचारिकताएं आने लगती हैं। बारह-तेरह वर्ष की आयु तक वे नियमानुसार खेलने लगते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

10. **शारीरिक क्रियाओं से जुड़े खेलों में कमी (Decrease in Plays involving Physical Activities)** : आयु बढ़ने के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओं से जुड़े खेलों में कमी आने लगती है। जैसे-जैसे उनकी मानसिक योग्यताओं का विकास होता रहता है, वैसे-वैसे बच्चे मानसिक खेलों में अधिक रुचि लेने लगते हैं। जैसे—रेडियो सुनना, टी.वी. देखना, खेल खेलना, शतरंज, कैरम खेलना, ताश खेलना इत्यादि।

11. **खेल की क्रियाओं में विशिष्टता का आना (Specificity in Play Activities)** : प्रारम्भिक अवस्थाओं में खेल की क्रियाओं में विशिष्टता का अभाव रहता है, क्योंकि उनके ध्यान का विस्तार सीमित होता है। उनकी मानसिक और शारीरिक योग्यताएं भी सीमित होती हैं, लेकिन आयु बढ़ने के साथ-साथ उनमें परिपक्वता आने लगती है तथा बौद्धिक योग्यताओं का भी विकास हो जाता है। परिणामस्वरूप उनकी खेल-क्रियाओं में विशिष्टता आने लगती है।

12. **खेल के समय में कमी (Decrease in Play Time)** : आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चे अन्य कार्यों एवं अपनी पढ़ाई में व्यस्त हो जाते हैं। उन पर पढ़ाई का बोझ बढ़ने लगता है। परिणामस्वरूप उनके खेलने के समय में निरन्तर कमी आती रहती है। स्कूल का काम इतना अधिक हो जाता है कि वे खेलों के लिए बहुत ही कम समय निकाल पाते हैं या बिल्कुल नहीं निकाल पाते। शारीरिक क्रियाओं वाले खेल तो बिल्कुल ही नहीं खेल पाते।



चित्र : बच्चों के खेल की विशेषताएं

◆◆◆

2. खेल कितने प्रकार के होते हैं? वर्णन करें।
(What are the forms or types of Play? Describe them.)

उत्तर–खेलों के प्रकार (Types or Forms of Place)–खेलों का वर्गीकरण हम निम्नलिखित तीन आधारों पर कर सकते हैं–

Scanned with OKEN Scanner

1. खेल-साथियों की संख्या के आधार पर (On the Basis of Number of Playmates)
2. शारीरिक-मानसिक सक्रियता के आधार पर (On the Basis of Physical & Mental Involvement)
3. खेल के स्थान के आधार पर (On the Basis of Play of the Play)

1. खेल-साथियों की संख्या के आधार पर (On the Basis of Number of Playmates) : हर खेल मे खेलने वालों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। इस आधार पर खेल के कुछ प्रकार निम्नलिखित होते हैं–

(i) **समान्तर खेल (Parallel Play) :** ये वे खेल होते हैं, जिनमें बच्चे एक दूसरे से स्वतंत्र होकर खेलते हैं तथा अलग-अलग खेलते हैं। खेल में उन्हें एक-दूसरे की आवश्यकता नहीं रहती। प्रारम्भ में बच्चों में सामाजिकता की मात्रा बहुत ही कम होती है। यह अवस्था लगभग चौदह माह तक की होती है। इस अवस्था के बच्चे अपने दैनिक जीवन में आमतौर पर अकेले देखे जा सकते हैं। सात-आठ माह के बच्चों को यदि कुछ खिलौने दे दिये जाएं तो वह उन्हीं में लीन होकर रह जाते हैं। वह अपने आयु के अन्य बच्चों की परवाह भी नहीं करता है।

(ii) **सहचारी खेल (Associative Play) :** इस अवस्था में दो बच्चे एक-दूसरे के साथ मिलकर खेलते हैं। इस अवस्था तक उनकी शारीरिक-मानसिक योग्यताओं का विकास तथा सामाजिक विकास इतना हो चुका होता है कि वे एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर खेलने लग जाते हैं। इस प्रकार का खेल बच्चे जिज्ञासावश तथा अकेलेपन के कारण खेलते हैं। इस खेल को वे तब खेलना शुरू करते हैं जब वे चलना और घिसटना सीख जाते हैं। वे खिलौनों के लिए छीना-झपटी भी करने लगते हैं।

(iii) **सामूहिक खेल (Group Play) :** वे ऐसे खेल होते हैं, जिनमें तीन या अधिक बच्चे भाग लेते हैं। बालकों के खेलों में सहयोग और सामूहिकता दिखाई पड़ती है। लगभग तीन-चार वर्ष की अवस्था से बालक ऐसे खेल खेलना शुरू कर देता है, परंतु अधिकतर बच्चे सात-आठ वर्ष की आयु से ये खेल खेलना शुरू करते हैं। इन खेलों में आस-पड़ोस के बच्चे शामिल होते हैं। उदाहरण–फुटबाल, क्रिकेट, हॉकी, आंख-मिचौली इत्यादि।

2. शारीरिक-मानसिक सक्रियता के आधार पर (On the Basis of Physical & Mental Involvement) : इन खेलों में वे खेल शामिल होते हैं, जिनमें शारीरिक और मानसिक क्रियाएं होती हैं। इस आधार पर निम्न खेल होते हैं–

(i) **शारीरिक खेल (Physical Play) :** शारीरिक खेल वे खेल होते हैं, जिनमें बालकों का शरीर मस्तिष्क की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होता है। जैसे छोटे बच्चों का लेट कर हाथ-पैर मारना। पांच माह का बालक ऐसी क्रियाएं करता है। खेल के मैदान में बच्चों की मानसिक क्रियाओं की अपेक्षा शारीरिक क्रियाएं अधिक सरल होती हैं। इन क्रियाओं से बालकों का शारीरिक विकास और कौशलों का विकास अधिक होता है।

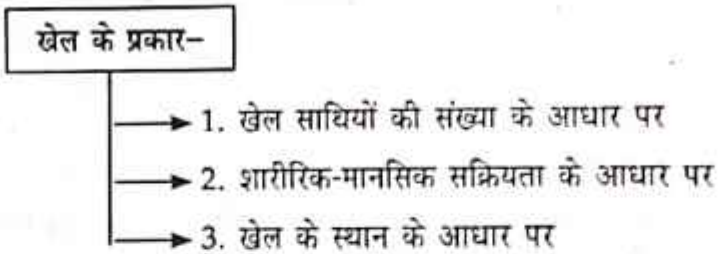
(ii) **मानसिक खेल (Mental Play) :** ये वे खेल होते हैं, जिनमें शारीरिक क्रियाएं कम तथा मानसिक क्रियाएं अधिक होती हैं। जैसे–शतरंज, कहानी सुनाना, पहेलियां बुझाना, ताश आदि।

3. खेल के स्थान के आधार पर (On the Basis of Place of the Play) : इस वर्ग के अन्तर्गत दो प्रकार के खेल आते हैं–

(i) **घर के अन्दर खेले जाने वाले खेल (Indoor Games) :** जैसे–ताश, कैरम, लूडो, चायनीज चेकर आदि।

(ii) **घर के बाहर खेले जाने वाले खेल (Outdoor Games) :** जैसे–क्रिकेट, फुटबॉल, हॉकी, बैडमिन्टन आदि।

Scanned with OKEN Scanner



चित्र : 'खेल' के प्रकार या स्वरूप

कुछ अन्य खेल
(Some Other Plays)

उपरोक्त खेलों के अतिरिक्त कुछ अन्य खेल भी होते हैं जोकि निम्नलिखित हैं–

1. रचनात्मक खेल (Constructive Play) : इस प्रकार के खेलों में कुछ चीजों का निर्माण किया जाना शामिल होता है, जैसे–खिलौने बनाना, बालू रेत के पहाड़ या गुफाएं बनाना, कैंची की सहायता से कई प्रकार के डिजाइन काटना, ब्लॉक से डिजाइन बनाना, रंगों से डिजाइन आदि बनाना। ये सभी कार्य रचनात्मक खेलों की श्रेणी में शामिल किये जाते हैं। पांच वर्ष की आयु से बच्चे ऐसे खेल खेलना शुरू कर देते हैं। इस आयु के बच्चे स्कूल जाना शुरू कर चुके होते हैं, तब वे और भी खेल खेलना सीख जाते हैं, जैसे–घर बनाना, कागज की नाव बनाना। बच्चे अपने रचनात्मक खेलों को दूसरों के सम्मुख प्रस्तुत करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। इस स्थिति में उनकी रचनात्मकता में सृजनात्मकता का अंश नहीं होता, लेकिन सात-आठ वर्ष की आयु में बच्चों में मौलिकता (Originality) दिखाई देने लगती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ उनके खेलों में मौलिकता बढ़ने लगती है।

2. स्वतंत्र और स्वाभाविक खेल (Free and Spontaneous Play) : बच्चों के जीवन में स्वतंत्र और स्वाभाविक खेल ही सर्वप्रथम शुरू होते हैं। ऐसे खेल में बालक को किसी प्रकार के नियमों तथा प्रतिबन्धों आदि का पालन नहीं करना होता। जब जी चाहता है बालक खेलता है तथा जब मन करता है तब वह उसे बंद कर देता है। 3 महीने की आयु से वह इस प्रकार खेलने लगता है। इस प्रकार के खेलों में शामिल हैं–चूसने वाले खिलौने। इस प्रकार के अधिकतर खेल खोजक (Exploratory) प्रवृत्ति के होते हैं। लड़के और लड़कियाँ इस प्रकार के खेल समान रूप से खेलते हैं, परंतु खिलौने खोजने के तरीके अलग होते हैं। लड़के अधिक क्रियाशील और विध्वंसक (Destructive) प्रवृत्ति के माने जाते हैं। लड़कियाँ खोजने में अधिक समय व्यतीत करती हैं। पांच वर्ष की आयु में ऐसे खेल बहुत कम हो जाते हैं।

3. पढ़ना (Reading) : पढ़ने को भी एक प्रकार का खेल माना गया है। यह बहुत ही आनन्ददायक होता है। बच्चे दूसरों की सक्रियता या क्रियाशीलता का मजा लेते हैं। बच्चे अकेले होने पर, जब उनका खेलने का मन नहीं होता, तब वे पढ़ने का मजा लेते हैं। आमतौर पर बच्चों को घर से बाहर जाने के लिए मना किया जाता है तथा घर में बैठने हेतु बाध्य किया जाता है। ऐसी स्थिति में वे पढ़ते हैं। ऐसा देखा गया है कि लड़कियाँ, लड़कों की अपेक्षा अधिक अध्ययन करती हैं। प्रतिभाशाली बच्चे अन्य आयु के बच्चों की अपेक्षा अधिक पढ़ते हैं। वे पढ़ने को खेल न समझ कर कार्य समझते हैं। अधिक सुविधा सम्पन्न बच्चे पढ़ने में अधिक अच्छे होते हैं।

लड़के समाचार पत्र पढ़ना अधिक पसंद करते हैं। आजकल बच्चे कामिक्स अधिक पढ़ते हैं। लगभग तीन वर्ष का बच्चा कामिक्स में चित्र देखने लगता है। दस-ग्यारह वर्ष की आयु तक उसका कामिक्स पढ़ने का शौक चरम सीमा तक पहुंच जाता है। जो बच्चे सीखने में मंद होते हैं, वे कामिक्स अधिक पढ़ते हैं तथा पुस्तक कम पढ़ते हैं। हँसी-मजाक वाले कामिक्स को लड़के कम पसंद करते हैं और लड़कियाँ अधिक पसंद करती हैं।

Scanned with OKEN Scanner

कामिक्स पढ़ने में रुचि अधिक होने के निम्न कारण होते हैं–

(i) कामिक्स बच्चों की कल्पना से जुड़े होते हैं।

(ii) कामिक्स पढ़ने में आसान या सरल होते हैं।

(iii) बच्चे रहस्यमय और हंसी मजाक वाले कामिक्स पुस्तकों से अधिक पसंद करते हैं।

(iv) कामिक्स के रंगीन और रुचिकर तथा स्पष्ट चित्र बच्चों को अधिक आकर्षित करते हैं।

कामिक्स पढ़ने के लाभ (Advantages) :

(i) इन्हें पढ़ने से बच्चों में पढ़ने की योग्यता बढ़ाई जा सकती है।

(ii) बच्चे पढ़ने के लिए प्रेरित होते हैं।

(iii) बच्चों का शब्द भंडार विकसित होता है।

(iv) इन्हें पढ़ने से रेचन क्रिया (Catharsis) होती है।

हानियां (Disadvantages) : कामिक्स पढ़ने से बच्चों को कुछ हानियां भी हो सकती हैं जोकि निम्नलिखित हैं–

(i) बच्चे अपने वास्तविक जीवन के प्रति कुछ नीरस अनुभव करने लगते हैं।

(ii) इन्हें पढ़ने वाले बच्चे अन्य खेलों में रुचि नहीं लेते या कम लेते हैं।

(iii) इन्हें पढ़ने से बच्चों में हिंसा और भय का विकास होने लगता है।

(iv) कामिक्स की भाषा का स्तर बहुत ही निम्न स्तर का होता है।

(v) इन्हें पढ़ने वाले बच्चे अच्छा साहित्य पढ़ने से मन चुराते हैं।

4. रेडियो और टेलीविजन (Radio & Television) : तीन वर्ष की आयु के बच्चे रेडियो आदि में रुचि लेने लगते हैं। लड़के रेडियो सुनना अधिक पसंद करते हैं। प्रतिभावान लड़के रेडियो सुनना पसंद करते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण बच्चे शहरी बच्चों की अपेक्षा रेडियो सुनना अधिक पसंद करते हैं। रेडियो से बच्चों के ज्ञान में वृद्धि होती है और उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है। उनकी भाषा में सुधार होता है, लेकिन रेडियो सुनने से वे शारीरिक क्रियाओं से वंचित रह जाते हैं। उनका शारीरिक विकास रुक जाता है। रेडियो सुनने वाले बच्चों का अधिकांश समय रेडियो सुनने में ही निकल जाता है परिणामस्वरूप उनके व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन का संतुलन बिगड़ जाता है।

इसी प्रकार एक अध्ययन में यह पाया गया कि अमेरिका में 1/6 समय टेलीविजन देखने में ही लगाया जाता है। छः वर्ष की अवस्था तक बच्चों में टेलीविजन देखने की प्रवृत्ति अत्यधिक होती है। उच्च आर्थिक और सामाजिक स्तर के लोग टेलीविजन कम देखते हैं। सामाजिक रूप से बेहतर स्वीकृति वाले बच्चे भी टेलीविजन अधिक देखते हैं। इसी प्रकार उच्च IQ वाले बालक टेलीविजन कम देखना पसंद करते हैं।

5. दिवास्वप्न (Day Dreaming) : इसे मानसिक खेल के वर्ग में रखा जाता है। छोटे बच्चे मुख्यतः दैनिक जीवन में होने वाली घटनाओं के बारे में दिवास्वप्न देखते हैं। लगभग बारह वर्ष तक की अवस्था तथा दिवास्वप्न चरम सीमा तक पहुंच जाते हैं। हरलॉक (Hurlock) के अनुसार सुसमायोजित बालक तब दिवास्वप्न देखता है जब वह कुछ खेलों में शामिल नहीं हो पाता। दुर्बल समायोजन वाला बालक दिवास्वप्न में अपने को दूसरे बालकों के साथ स्वयं रचनात्मक खेल खेलते हुए देखता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक दिवास्वप्न देखती हैं।



चित्र : कुछ और खेल

Scanned with OKEN Scanner

हट (Hutt, 1979) के अनुसार 'खेल' को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

(a) एपिसटेमिक (Epistemic)

(b) ल्यूडिक (Ludic)

(c) नियम सहित खेल (Games with rules)

(a) एपिसटेमिक (Epistemic) : एपिसटेमिक खेल (Epistemic Games) बालक के जीवन के प्रथम दो वर्षों के साथ जुड़े होते हैं तथा वे खोजी (Exploratory) खेल होते हैं और वस्तुओं और सामग्री के संदर्भ में होते हैं। (Epistemic play refers to exploratory play with objects and materials whereby children gather Knowledge about the world through gather knowledge about the world through their senses.) इन खेलों द्वारा बालक विश्व के बारे में अपनी इन्द्रियों द्वारा ज्ञान एकत्रित करते हैं। इसमें समस्या समाधान, खोज आदि शामिल हैं।

(b) ल्यूडिक (Ludic) : ल्यूडिक खेल (Ludic Play) बच्चों की कल्पना, फेन्टेसी और सामाजिक-ड्रामा खेल से जुड़े होते हैं। (Ludic play refers to children's imaginative, fantasy and socio-dramatic play i.e. what 'f' type.)

(c) नियम सहित खेल (Games with rules) : नियमों सहित खेल (Games with Rules) में बालक अपने स्वयं के खेलों का डिजाइन या तैयार करते हैं तथा अपने ही नियम बनाते हैं। वह पारम्परिक खेलों में भी हिस्सा लेते हैं तथा बाहरी नियमों का अनुसरण करते हैं।

अन्य वर्गीकरण–

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार खेल निम्न प्रकार के भी होते हैं–

1. खोजी खेल (Exploratory Play) : शारीरिक कौशलों और वस्तुओं को छूकर उनके गुणों को सीखना तथा यह जानना कि वे कैसा महसूस कर रहे हैं और उनके साथ क्या कुछ किया जा सकता है।

2. रचनात्मक खेल (Constructive Play) : प्राकृतिक या रचित सामग्री का प्रयोग करते हुए उन वस्तुओं और सामग्री को व्यवस्थित कर कुछ सृजन (Create) करना, जैसे ब्लाक कोलैज सामग्री (Collage Material), रेत और पानी। इसमें सृजन करना, पहचान करना तथा समस्याओं का समाधान करना शामिल है।

3. सृजनात्मक खेल (Creative Play) : कला सामग्री और प्राकृतिक सामग्री का इस प्रकार से प्रयोग करना जिससे प्रवाह, लचीलेपन, मौलिकता, कल्पना तथा नये सम्बन्धों के निर्माण को प्रोत्साहन मिले।

4. कल्पना और सामाजिक-नाटकीयपूर्ण खेल (Pretend, Fantasy and Socio-dramatic Play) : इसमें शामिल हैं–भूमिका निर्वाह (Role Play), काल्पनिक खेल दायरे में रहना और किसी घटना खेल का सृजन करना। जब इसमें एक-दूसरे के बीच किसी अन्तर्क्रिया और शाब्दिक सम्प्रेषण (Verbal Communication) की भागीदारी होती है और ये खेल साथी के खेल के बारे में अन्तर्क्रिया करते हैं। तब इसे सामाजिक-ड्रामाटिक खेल (Socio-dramatic Play) कहा जाता है।

5. शारीरिक लोकोमोटर खेल (Physical Locomotor Play) : वे क्रियाएं या गतिविधियां जो स्वयं के आनंद के लिए सभी प्रकार की शारीरिक हलचल (Physical Movements) पैदा करती हैं, उन्हें शारीरिक लोकोमोटर खेल कहते हैं। इस प्रकार के खेल में सूक्ष्म और मुख्य गत्यात्मक कौशलों (Fine or Gross Motor Skills) का अभ्यास किया जाता है तथा उनपर मास्टरी की जाती है।

6. भाषा या शब्द खेल (Language or Word Play) : इस प्रकार के खेल में शामिल हैं–बिना अभ्यास की गई और एक साथ निकाली गई आवाजें तथा लयपूर्ण शब्द (Rhythmic Words) और तत्वों की पुनरावृत्ति। बच्चे जैसे बड़े होते हैं ऐसे खेलों में कविताएं, शब्द-खेल और हास्य शामिल हो जाते हैं।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3. बाल-विकास में 'खेल' की भूमिका का वर्णन करें।
(Describe the role of 'Play' in Child-Development.)

अथवा

'खेलों' के महत्त्व पर प्रकाश डालें।
(Throw light on importance of Plays.)

अथवा

खेल एक बालक के मानसिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है?
(How play affect the mental development of a child?)

उत्तर–बालक के विकास की प्रक्रिया में 'खेल' का महत्त्व अब छिपा नहीं रह गया और न ही कोई व्यक्ति इसके महत्त्व से इन्कार कर सकता है। खेल बालक को व्यक्ति के रूप में विकसित होने में सहायक होता है। (It helps the child to develop as a person.) बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष खेल के प्रभाव से अछूते नहीं रहे। खेल से बच्चों में अनेक शारीरिक, सामाजिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों का विकास होता है। शिक्षा के क्षेत्र में खेल को एक प्रणाली 'खेल प्रणाली' (Play Method) के रूप में स्वीकार किया गया है। खेल का महत्त्व निम्न कारणों से बहुत अधिक समझा जाता है–

1. शारीरिक विकास (Physical Development) : शारीरिक विकास के क्षेत्रों में खेलों का महत्त्व इस प्रकार है–

(i) विभिन्न शारीरिक अंगों जुड़े कौशलों (Skills) का विकास प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेलों पर ही आधारित रहता है।
(ii) भिन्न-भिन्न आयु-स्तरों के लिए भिन्न-भिन्न खेल सही समझे जाते हैं।
(iii) विभिन्न अंगों के विकास के लिए अधिक से अधिक क्रियात्मक खेल खेलना अति आवश्यक समझा जाता है।
(iv) खेलों से विभिन्न अंगों की मांसपेशियों (Muscles) का विकास होता है।
(v) क्रियात्मक खेलों द्वारा बालक में एकत्रित ऊर्जा का निष्कासन होता है तथा बालक तनाव-मुक्त होता है।
(vi) पूर्व-बाल्यावस्था में क्रियात्मक खेल ही पसंद किये जाये जाते हैं, जैसे–खेलना, कूदना, भागना, सीढ़ी चढ़ना आदि।
(vii) बालक के खेलों की पसन्द उसके माता-पिता पर भी निर्भर करती है।

2. मानसिक विकास (Mental Development) : बालकों के खेल शारीरिक होने के साथ-साथ मानसिक भी होते हैं। ये मानसिक और शारीरिक खेल बालकों के प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, चिन्तन, तर्क, स्मृति, बुद्धि आदि मानसिक योग्यताओं के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। घर के अन्दर या बाहर खेले जाने वाले सभी खेल बालकों की इन योग्यताओं के विकास में कुछ न कुछ मात्रा में सहायक होते हैं। इन खेलों के उदाहरण हैं–पजल, शतरंज, क्विज, ताश आदि। चित्रों के विभिन्न हिस्सों को जोड़ने वाले खिलौने भी मिलते हैं। इनसे मनोरंजन के अलावा मानसिक विकास भी होता है।

3. सामाजिक विकास (Social Development) : सामाजिक विकास के क्षेत्र में खेल का महत्त्व इस प्रकार है–

(i) बच्चों का एक-दूसरे के सम्पर्क में आना उसके समाजीकरण से जुड़ा हुआ है। वे जितना अधिक आयेंगे, उनका समाजीकरण उतना ही अधिक होगा।
(ii) खेलों में माध्यम से वे अनेक सामाजिक मूल्य सीखते हैं, जैसे–सहानुभूति, सहनशीलता, सहयोग आदि।
(iii) खेलों के माध्यम से बच्चे अनेकों भूमिकाओं (Roles) को निभाना सीखते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) सामूहिक खेलों में व्यक्ति नेतृत्व (Leadership), प्रभुत्व (Dominace), प्रतिस्पर्धा (Competition) इत्यादि को भली-भांति सीखता है।

(v) समूहों में खेलने से बच्चे को ख्याति एवं प्रशंसा हासिल होते हैं।

4. संवेगात्मक विकास (Emotional Development) : संवेगात्मक विकास के क्षेत्र में खेलों का महत्त्व इस प्रकार है–

(i) विभिन्न खेलों के माध्यम से बच्चों को विभिन्न संवेगों को अनुभव करने का अवसर प्राप्त होता है।

(ii) समूह में रहकर वे दूसरों के संवेगों को देखकर उनका अनुकरण करना सीखते हैं।

(iii) समूह खेलों के दौरान वे अपने संवेगों पर नियंत्रण पाना सीखते हैं।

(iv) संवेगात्मक अभिव्यक्ति में सहनशीलता, त्याग, सच्चाई और सहानुभूति इत्यादि शामिल होते हैं जोकि खेलों के माध्यम से भली-भांति सीखे जाते हैं।

5. नैतिक विकास (Moral Development)

(i) खेलों के माध्यम से बालक नैतिक मूल्यों के नियमों को सीखता है।

(ii) ये मूल्य घर तथा स्कूल में सिखाये जाते हैं, लेकिन इनकी शिक्षा खेलों के माध्यम से ही प्राप्त होती है।

(iii) खेलों के माध्यम से बच्चा शीघ्रता से सीखता है।

(iv) चारित्रिक दोष वाले बालकों को अन्य बालक अपने खेलों में शामिल नहीं करते।

6. सृजनात्मकता का विकास (Development of Creativity) : सृजनात्मकता के विकास में खेल निम्नलिखित भूमिका निभाते हैं–

(i) खेलों से बच्चों में सृजनात्मकता का विकास होता है।

(ii) खेलों के दौरान बालक अपने सृजनात्मक विचारों का उपयोग करना सीख जाते हैं।

(iii) इन सृजनात्मक विचारों के आधार पर बच्चे खेल में नये-नये तरीके खोजकर खिलौनों से खेलते हैं।

(iv) इस प्रकार नये-नये सृजनात्मक विचारों का उपयोग करके बालक आनन्द लेता है।

(v) इन सृजनात्मक विचारों को वह खेल से बाहर भी उपयोग में लाता है।

7. चिकित्सीय मूल्य (Therapeutic Value) : चिकित्सीय मूल्यों के विकास में खेलों की निम्नलिखित भूमिका होती है–

(i) कई बार बालकों में अनेकों तनाव उत्पन्न हो जाते हैं जोकि बालकों के लिए हानिकारक होते हैं।

(ii) कुछ तनाव अभिव्यक्ति के माध्यम से समाप्त हो जाते हैं, लेकिन कुछ तनाव रह जाते हैं जोकि खेलों के माध्यम से निष्कासित हो जाते हैं।

(iii) बालक अपनी कुछ इच्छाओं और आवश्यकताओं को खेल के द्वारा ही पूरा करता है।

(iv) खेल के माध्यम से बालक अपने संवेगों का त्याग कर सकता है तथा भय आदि को दूर कर सकता है।

8. आत्म-प्रत्यय का विकास (Development of Self-Concept) : आत्म-प्रत्यय के विकास में खेलों का निम्नलिखित योगदान होता है–

(i) खेलों के द्वारा बच्चों की अपनी योग्यताओं और क्षमताओं का ज्ञान होता है।

(ii) दूसरों की तुलना में खेलों के माध्यम से वह अपना मूल्यांकन करते हैं।

(iii) अपनी योग्यताओं और क्षमताओं के ज्ञान के आधार पर आत्म-प्रत्यय (Self-Concept) का विकास होने लगता है, जिसके आधार पर बालक को समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है।

Scanned with OKEN Scanner

9. शिक्षा में महत्त्व (Importance in Education) : फ्रोबेल (Froebel) ने एक शिक्षा-पद्धति का आविष्कार किया, जिसे किंडरगार्टन (Kindergarten) कहा जाता है, यह प्रणाली मुख्यतः 'खेल' पर ही आधारित है। इसी प्रकार 'खेल' द्वारा शिक्षण प्रदान करने की दूसरी प्रणाली का विकास मैडम मांटेसरी (Madam Montessori) ने 'मांटेसरी प्रणाली' (Montessori Method) के रूप में किया। खिलौनों के साथ खेलते-खेलते ही बच्चे रंगों की पहचान करना सीखते हैं। विभिन्न कौशलों को भी बच्चे खेल द्वारा ही सीखते हैं। विभिन्न वस्तुओं का संग्रह करना भी बच्चे खेल के माध्यम से ही सीखते हैं।



चित्र : 'खेल' का महत्त्व या बाल-विकास में खेल की भूमिका

◆◆◆

4. बाल-विकास के निम्न पक्षों में खेलकूद की भूमिका स्पष्ट करें–
(i) शारीरिक एवं पेशीय गति विकास
(ii) भाषा विकास
(iii) संज्ञानात्मक विकास
(iv) सृजनात्मक एवं कल्पनात्मक शक्ति का विकास।
(Explain the role of Play in the following aspects of child-development :
(i) Physical & Motor Development
(ii) Language Development
(iii) Cognitive Development
(iv) Development of Creative & Imaginative Power.)

उत्तर–(i) शारीरिक एवं पेशीय गति विकास (Physical and Motor Development) : बच्चे के शारीरिक विकास के लिए शारीरिक खेल आवश्यक हैं। इस प्रकार के खेलों से बच्चे की मांसपेशियां विकसित एवं मजबूत होती हैं। साथ ही शरीर के सभी अंगों का व्यायाम भी हो जाता है। खेलने से खूब भूख लगती है और अच्छी नींद आती है। खेलकूद में भाग लेने से बच्चा अपनी विभिन्न शारीरिक क्रियाओं जैसे–दौड़ना, ऊंची कूद, लम्बी कूद, साइकिल चलाना, पेड़ पर चढ़ना आदि पर नियंत्रण रखना सीख जाता है अर्थात् इस प्रकार के खेल पेशीय कौशलों (Motor Skills) के विकास में सहायक होते हैं।

खेल सूक्ष्म पेशीय कौशलों (Final Motor Skills) के विकास में भी सहायता करते हैं। प्राथमिक विद्यालय में पढ़ते समय बच्चे साइकिल चलाना, स्टापू, गेंद खेलना, गिल्ली डंडा, रस्सी कूदना और खेल-क्रियाओं द्वारा चुस्ती-फुर्ती, संतुलन बनाना, निशाना लगाना जैसे कौशल सीखते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(ii) भाषा विकास (Language Development) : बच्चे के भाषा विकास में खेल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। खेलते समय बच्चे एक-दूसरे से बातचीत भी करते हैं, जिससे भाषा विकास में सहायता मिलती है। खेल के दौरान उन्हें इस प्रकार अपनी बात कहनी होती है कि दूसरे उसे समझ सकें और इसी तरह दूसरे उनसे क्या कहने की कोशिश कर रहे हैं उसे समझाना भी उन्हें सीखना होता है। स्पष्ट है कि खेल बच्चे की भाव अभिव्यक्ति करने, अपनी बात स्पष्ट करने, व्याख्या करने, दूसरों की बातें समझने तथा प्रश्न करने और जानकारी प्राप्त करने सम्बन्धी योग्यताओं के विकास में योगदान देते हैं। शब्द पहेली, काव्य पहेली, प्रश्न पहेली आदि से शब्द भंडार को बढ़ाने में सहायता मिलती है।

(iii) संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development) : पुस्तक, टेलीविजन, खेलकूद, पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया आदि के माध्यम से क्रीड़ाएं (खेल) बहुत-सी बातें सीखने के अवसर प्रदान करती हैं, जैसे–

1. वर्गीकरण तथा श्रेणीबद्ध करना (Classification and Categorisation) : खेल के दौरान बच्चे अनेक प्रकार की वस्तुओं को वर्गीकृत करना, श्रेणी बद्ध करना और विभिन्न वस्तुओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करना सीखते हैं। रेत-मिट्टी या गारे के साथ खेलने से बच्चों को यह सीखने समझने का अवसर मिलता है कि किस प्रकार थोड़े से हेरफेर से ही इनसे अनेक प्रकार की वस्तुएं बनाई जा सकती हैं। उदाहरण ार्थ–प्राथमिक विद्यालय का विद्यार्थी गीली मिट्टी से संभवतः सिर्फ गेंद और टिकियां बनायेंगी। जैसे-जैसे वह बड़ा होगा, वह क्रमशः सुरंगें, रेत के घर (घरौंदे), सड़कें और यहां तक कि बड़े-बड़े किले आदि बनाना शुरू कर देगा। इन सभी क्रियाओं में क्रमशः अधिकाधिक उच्च स्तर की संज्ञानात्मक सक्रियता (Cognitive alertness) की आवश्यकता होती है।

2. स्मृति का विकास और विश्लेषण की योग्यता (Ability to develop memory and analysis) : खेलकूद स्मृति के विकास और विश्लेषण कर सकने की योग्यता, तर्क शक्ति तथा विभिन्न विकल्पों पर सोच सकने की योग्यता के विकास में भी सहायता करता है। 'लंगड़ी टांग' एक सीधा-सादा खेल है, जिसमें बच्चे को सोचना पड़ता है, कि अपने साथी को पकड़ने के लिए उसे किस दिशा में जाना है। उसे ऐसी कौन-सी दिशा में जाना चाहिए ताकि वह अपने साथी या उससे बचा सके। इसी तरह खो-खो, कबड्डी, गेंद मारा-मारी जैसे दूसरे खेलों में भी बच्चों को जटिल चिन्तन प्रक्रियाओं का प्रयोग करना होता है।

3. ध्यान केंद्रित करने की योग्यता (Ability to Concentrate) : खेलों के माध्यम से बच्चा ऐसी योग्यताएं भी विकसित कर लेता है जिनसे वह उस समय के लिए हुए कार्य पर ध्यान केंद्रित करता है। पहेलियां हल करना, किताबें पढ़ना, सामूहिक खेलकूद जैसे क्रियाकलापों में बच्चों को एक निश्चित समय के लिए क्रिया-विशेष के लिए एकाग्रचित होना पड़ता है, जिससे उसके अवधान और एकाग्रचित्रता में सुधार होता है।

(iv) सृजनात्मक एवं कल्पनात्मक शक्ति का विकास (Development of Creative and Imaginative Power) : खेलकूद के दौरान बच्चों को कल्पना और सृजनशीलता विकसित करने के अनेक अवसर मिलते हैं। काल्पनिक या नाटकीय खेलों में बच्चे अपनी कल्पनाशक्ति का भरपूर प्रयोग करते हैं। पुलिस और चोर, डाक्टर-मरीज, शिक्षक-छात्र आदि खेल खेलते हैं। एक पल के लिए बच्चा डाक्टर बनता है तो दूसरे पल वह मरीज का अभिनय कर रहा होता है।

काल्पनिक अभिनय के माध्यम से बच्चा विभिन्न चरित्रों का अभिनय करता है, जिससे उसकी मौलिक अभिव्यक्ति (Original Expression) में सुधार होता है। वह व्यक्तियों और वस्तुओं के बीच नये सम्बन्धों के बारे में सीखता है। खेलते समय बच्चा अपने आसपास उपलब्ध वस्तुओं को उलट-पुलट कर देखता है। अपनी इच्छानुसार उन्हें तोड़ने-मोड़ने, बदलने, चलाने-फिराने की कोशिश करता है और इन सबसे नई वस्तुओं का सृजन (Creation) कर डालता है। यह सब उसकी सृजनात्मकता के विकास में सहायक होता है। वह मिट्टी, रद्दी सामान और कागज वगैरह से नई चीजें बनाना सीखता रहता है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

5. बालक के सामाजिक और संवेगात्मक विकास में खेलकूद किस प्रकार सहायक होते हैं? (How can play be helpful or useful in the social and emotional development of the child?)

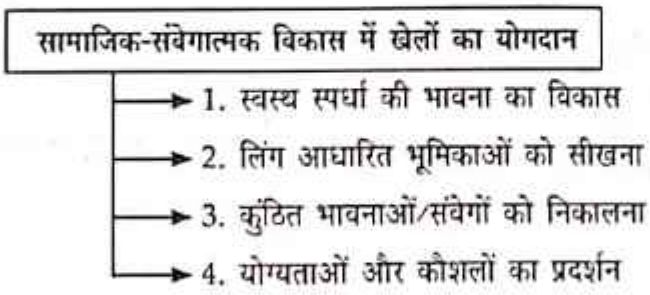
उत्तर–सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास (Social & Emotional Development)–बच्चे के सामाजिक-संवेगात्मक विकास के लिए खेलकूद अत्यधिक आवश्यक है। प्रारम्भ में खेल ही ऐसा माध्यम होता है, जिसके माध्यम से बच्चे सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होते हैं। खेल के समय बच्चे दूसरे अनेक बच्चों के साथ सम्पर्क में आते हैं, जिससे वह भिन्न-भिन्न बच्चों के साथ सीखता है। वह मिल बांट कर कार्य करना, दूसरे बच्चों को सहयोग देना, एक-दूसरे के साथ लेन-देन करना और दूसरों के दृष्टिकोण को समझना सीखता है। दूसरे बच्चों के साथ खेलने के जितने अधिक अवसर उसे मिलते हैं, उतने ही ज्यादा सामाजिक कौशलों को ग्रहण करने के मौके उसे मिलते हैं। खेलकूद निम्न प्रकार से सामाजिक-संवेगात्मक विकास में सहायता देते हैं–

1. स्वस्थ स्पर्धा की भावना का विकास (Development of Feeling of Competition) : दूसरे बच्चों के साथ खेलने से बच्चे में स्वस्थ स्पर्धा (Healthy Competition) की भावना के विकास में सहायता मिलती है और वह एक अच्छा खिलाड़ी, एक बच्छा विजेता और पराजयी होना सीख जाता है। खेलकूद से बच्चों को नियमों का पालन करने के अवसर भी मिलते हैं।

2. लिंग आधारित भूमिकाओं को सीखना (Learning of Gender based Roles) : काल्पनिक खेलों में बच्चे ऐसी घटनाओं-स्थितियों या पात्रों का अभिनय करते हैं–जिन्हें वे आसपास देख चुके होते हैं। काल्पनिक खेलों के माध्यम से ही वे अपनी लिंग आधारित भूमिकाएं सीखते हैं अर्थात् लड़कों की सामाजिक भूमिका क्या होती है और लड़कियों की क्या, इसे सीखने का अवसर काल्पनिक खेलों में मिलता है। ऐसी इच्छाएं या आवश्यकताएं जो यथार्थ में पूरी नहीं हो सकतीं, वे प्रायः इन खलों के माध्यम से पूरी हो जाती हैं। जो बच्चा अपने वास्तविक जीवन में नेतृत्व कर पाने में असमर्थ रहता है, हो सकता है वह सिपाही वाले खिलौनों के नेता की कल्पना द्वारा अपनी इस इच्छा को संतुष्ट कर ले।

3. कुंठित भावनाओं/संवेगों से निकालना (Elimination of Feelings of Frustration and Emotions) : खेल के माध्यम से बच्चा अपने मन में छुपी ऐसी कुंठित और आक्रामक भावनाओं और संवेगों को भी निकाल बाहर करता है, जिन्हें वह अन्य किसी प्रकार से अभिव्यक्त नहीं कर सकता। छोटा बच्चा जो अपनी वास्तविक जिन्दगी से दादागिरी करने वाले लड़के से बदला नहीं ले सकता, वह अपने खिलौनों को फैंककर तोड़-फोड़ कर या सजा देकर अपना गुस्सा निकाल सकता है। खेलते समय बच्चा बिना किसी रुकावट के अपने खिलौनों आदि को फैंक सकते हैं, तोड़कर चूर-चूर कर सकता है, मसल सकता है, मरोड़ सकता है। ऐसा करने से उसे अपनी कुंठाओं (Frustrations) को बाहर निकालने का मौका मिल सकता है और ऐसा करने से बच्चे स्वयं को दबाव-मुक्त महसूस करने लगते हैं।

4. योग्यताओं और कौशलों का प्रदर्शन (Exhibition of Abilities and Skills) : खेलकूद में बच्चों को अपनी योग्यताओं और कौशलों को प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। वे अपनी योग्यताओं को समझा सकते हैं और अपनी योग्यताओं की तुलना अपने साथी खिलाड़ियों से करना सीखते हैं। इन सबसे बच्चे में स्वयं के बारे में अधिक यथार्थपूरक तथा स्पष्ट धारणा विकसित होती है अर्थात् बच्चा अपनी वास्तविकताओं को समझने लगता है तथा अपने गुण-दोषों से परिचित होने लगता है।



चित्र : कुछ और खेल

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

6. खेलकूद के चिकित्सीय प्रयोग पर एक टिप्पणी लिखें।
(Write a note on Therapeutic use of Play.)

उत्तर–खेलकूद का चिकित्सीय प्रयोग (Therapeutic Use of Play)–संवेगात्मक समस्याओं वाले बच्चों के लिए खेलकूद का उपयोग उपचार की तरह भी किया जा सकता है। खेल का प्रयोग बच्चों के अन्तर्द्वन्द्व, (Inner Conflicts), कुंठा (Frustration) और तनाव (Tension) को बाहर निकालने के माध्यम के रूप में भी किया जा सकता है। अपनी मनो-भावनाओं को बच्चे खिलौनों जैसे–गुड़िया, बन्दूक, स्लेट आदि के साथ प्रक्षेपित (Project) कर सकते हैं।

खेल चिकित्सा में उपचारकर्ता द्वारा बिना किसी तरह की रुकावट डाले बच्चे के खेल-व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है। खेल-कक्ष में गेंद, गुड्डे-गुड़िया, घर बनाने की खेल-सामग्री जैसे–कुर्सी-मेज, बर्तन, संदूक, कृत्रिम पशु जैसे बहुत से खिलौने रखे जाते हैं। बिना किसी घबराहट के खेलने और स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए बच्चे को प्रोत्साहित किया जाता है। उसकी आलोचना करने या किसी तरह की गलती सुधारने का कोई प्रयास नहीं किया जाता है। बच्चा जैसा भी है उसे इसी रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। उपचारकर्ता बच्चे के साथ मित्रतापूर्ण तथा आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करता है और बच्चे के क्रियाकलापों और उसके द्वारा बोले जाने वाले शब्दों अर्थात् उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति पर पूरा ध्यान दिया जाता है। उपचारकर्ता स्वतंत्रतापूर्वक बिना किसी घबराहट के अपनी बात कहने और जैसे चाहे वैसा खेलने के लिए बच्चे को प्रोत्साहित करता है। खेल चिकित्सा का प्रयोग बच्चे तथा उसकी समस्याओं को अच्छी तरह समझने तथा उसकी चिन्ता एवं तनाव को दूर करने के लिए किया जा सकता है।

शिक्षक के रूप में आप कुछ भय, अवरोधों (Barriers), अन्तर्द्वन्द्वों से उबरने में बच्चों की सहायता करने के लिए खेलकूद का प्रयोग कर सकते हैं। तनाव और चिन्ताओं को दूसरे करने में शिक्षक सहायता कर सकता है। शर्म और लोगों से बचने वाले बच्चों को खेलकूद में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। कक्षा में शारीरिक रूप से विकलांग बच्चों की इनकी शारीरिक योग्यताओं के अनुसार खेलों में भाग लेने के लिए सहायता की जा सकती है। वे ऐसे खेलों में भाग ले सकते हैं, जिनमें कम शारीरिक शक्ति की आवश्यकता होती है अथवा वे रेफरी, अम्पायर या फिर स्कोर लिखने वाले का काम कर सकते हैं। बच्चों की आक्रामक एवं गुस्से वाली दमित भावनाओं को बाहर निकालने में आप सहायता कर सकते हैं। उदाहरणार्थ–खेल के दौरान ऐसा बच्चा जो हमेशा कक्षा के दूसरे बच्चों को नोचने और परेशान करने में लगा रहता है या कक्षा में पढ़ाई जा रही बातों पर ध्यान देने के बजाये हमेशा उसमें रुकावट डालने की कोशिश करता रहता है, सहायता भी खेलों के माध्यम से की जा सकती है। खेल के दौरान अपनी भावनाओं को स्वतन्त्रतापूर्ण अभिव्यक्त करने की अनुमति प्रदान की जा सकती है। उदाहरण के लिए–लकड़ी के बोर्ड पर हथौड़ा चलाना, नकली थैले पर मुक्केबाजी का अभ्यास।

शिक्षक कोई चिकित्सक नहीं होता, वह तो केवल कुछ तरीकों से ही अपने विचारों, भावनाओं तथा संवेगों को रचनात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने में बच्चों की सहायता करने के लिए खेल का प्रयोग कर सकता है।

◆◆◆

7. 'खेल' के प्रयोग द्वारा बालक के विकास में शिक्षक एवं माता-पिता की भूमिका क्या हो सकती है? वर्णन करें।
(What role can a teacher and parent play in the development of the child while using Play?)

उत्तर–

शिक्षक की भूमिका (Role fo Teacher)–

1. गृह कार्य पर नजर रखना (Home work) : इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि बच्चे को प्रतिदिन कितना गृहकार्य दिया जा रहा है। बच्चे घर पर अधिकांश समय गृहकार्य पूरा करने में व्यतीत करते

Scanned with OKEN Scanner

हैं। बच्चों को दिये जाने वाले गृहकार्य का बोझ हल्का करने का एक ढंग यह हो सकता है कि प्रतिदिन दिये जाने वाले कार्य को नियमित कर दिया जाये। प्रत्येक विषय के लिए अलग-अलग दिन निश्चित किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ—अंग्रेजी के गृह कार्य के लिए सोमवार और बुधवार, गणित के कार्य के लिए मंगलवार और शनिवार इत्यादि। गृहकार्य की मात्रा इतनी हो कि बच्चे के किसी भी विषय का काम पूरा करने में आधे घंटे से अधिक का समय न लगे। दो विषयों का गृहकार्य प्रतिदिन करना संभव रहता है।

एक दूसरा ढंग यह हो सकता है कि गृहकार्य के क्रियाकलापों को ऐसे 'खेल' पर आधारित कर दिया जाये, जिसमें सिर्फ अपनी पाठ्यपुस्तकों आदि से प्रश्नों के उत्तर नकल करने के बजाये बच्चा अपनी कल्पना शक्ति और सृजनात्मकता का प्रयोग कर सके। उदाहरणार्थ—भूगोल के मौसम के बारे में सीखते समय गृहकार्य के तौर पर मौसम के बारे में अपने माता-पिता, अखबारों, दूरदर्शन आदि स्रोतों से बच्चा जानकारी इकट्ठी कर सकता है तथा प्राप्त जानकारी को अपनी कक्षा के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है।

2. समय-सारिणी में स्थान (Place in Time Table) : स्कूल की समय-सारिणी में क्या बच्चों को खेलने के लिए पर्याप्त समय निर्धारित किया गया है? यदि नहीं तो स्कूल व्यवस्थापकों को ऐसा करने के लिए कहा जाना चाहिए। कम से कम एक खाली पीरियड खेल के लिए गेम पीरियड के रूप में अवश्य रखा जाये ताकि बच्चा बाहर खुले मैदान में जाकर खेल सके।

3. खेलकूद प्रतियोगिताएं (Sports Competitions) : यदि संभव हो तो दूसरे स्कूलों के साथ खेलकूद प्रतियागिताएं आयोजित की जा सकती हैं। यदि ऐसा संभव नहीं तो अपने स्कूल के बच्चों के बीच ही विभिन्न खेलकूद प्रतियागिताएं की जा सकती हैं।

4. खेल सामग्री खरीदने के लिये बजट (Budget for Purchasing Sports Material) : खेल सामग्री खरीदने हेतु बजट का प्रावधान होना चाहिए ताकि स्कूल में गेंद, बल्ले, हाकियां, रैकेट आदि खरीदे जा सकें। यदि बजट का प्रावधान नहीं हो पाता तो ऐसे खेल खेले जा सकते हैं, जिनमें किसी प्रकार की सामग्री की आवश्यकता न पड़े जैसे—खो-खो, दौड़ लगाना, पेड़ पर चढ़ना, पकड़म-पकड़ाई इत्यादि। इन खेलों में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन भी किये जा सकते हैं।

5. विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने के अवसर (Opportunities for Participating in Various Activities) : इस आयु में बच्चे विभिन्न वस्तुओं के बारे में अत्यधिक जिज्ञासु होते हैं और जितना भी वे सीख सकते हैं, उतना सीख लेना चाहते हैं। उन्हें विभिन्न क्रिया-कलापों में भाग लेने में आनन्द आता है। सप्ताह में एक या दो बार अलग से ऐसे पीरियड रखे जा सकते हैं, जिनमें बच्चा अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार पेन्टिंग, आर्ट और क्राफ्ट, कढ़ाई-बुनाई, सिलाई, टिकटें इकट्ठा करना, पहेलियां हल करना, गीत गाना आदि क्रियाकलापों में वह भाग ले सकता है।

6. अन्य क्रियाकलापों का आयोजन (Organising other Activities) : खेलों के अतिरिक्त कक्षा में अन्य क्रियाकलाप भी बच्चों के पढ़ाने के लिए आयोजित किये जा सकते हैं। पढ़ाये जा रहे पाठ के संदर्भ में अध्यापक विभिन्न क्रियाएं चुन सकते हैं और उनमें आवश्यकतानुसार सुधार या परिवर्तन कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—जल और जलचरों के बारे में पढ़ाते समय पानी से भरा एक टब या बाल्टी कक्षा में रखी जा सकती है। कैंची और कागज देकर बच्चों से कहा जाये कि ऐसे जानवरों की आकृति काटकर बनाएं, जिन्हें वे जलचर मानते हैं। इसके बाद कागज की इन आकृतियों के वे टब के पानी में डाल दें। इसके बाद अध्यापक प्रत्येक जलचर के बारे में विस्तृत चर्चा कर सकता है। यह चर्चा एक-तरफा (One sided) नहीं होना चाहिए। वाद-विवाद, प्रश्नोत्तर आदि क्रियाकलापों का आयोजन भी किया जा सकता है।

बच्चों को शिक्षित करने हेतु 'नाट्य मंचन' का प्रयोग भी बहुत प्रभावशाली रहता है। जैसे—इतिहास की कक्षा में ऐतिहासिक दृश्य एवं घटनाओं का बच्चों द्वारा कक्षा में ही अभिनय किया जा सकता है। पढ़ाये जा रहे पाठ की चर्चा से जुड़ी विभिन्न वस्तुओं की गति, कार्य आदि की ध्वनियों का भी बच्चे अभिनय कर सकते हैं। यदि परिवहन पर चर्चा के दौरान वे बस में यात्रा करने, रेलवे प्लेटफार्म, ऊँट पर सवारी करने आदि के दृश्य का भी अभिनय कर सकते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

7. वास्तविक घटनाएं/दृश्य (Actual Events /Scenes) : वास्तविक रूप से देखी हुई घटनाओं या दृश्यों के माध्यम से बच्चे अधिक और शीघ्रता से सीखते हैं। बच्चों को आसपास की चीजों को दिखाने के लिए बाहर ले जाया जा सकता है। उन्हें म्यूजियम और पुस्तकालयों आदि में भी ले जाया जा सकता है। पिकनिक आदि पर जाकर बच्चे बहुत मजा लेते हैं, बहुत कुछ सीखते भी हैं।



चित्र : खेलकूद में अध्यापक की भूमिका

'खेलकूद' में माता-पिता की सहभागिता या भूमिका *(Participation/Role of Parent in Play)*

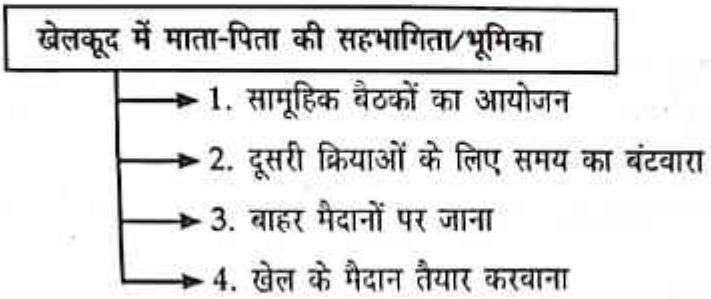
माता-पिता की सहभागिता के अभाव में अध्यापक द्वारा खेलकूद एंव दूसरे क्रियाकलापों को बढ़ावा देने के प्रयास अपूर्ण माने जायेंगे। बच्चा अधिकतर समय घर पर ही बिताता है। ऐसे में यह बहुत ही आवश्यक हो जाता है कि माता-पिता भी इस बात से परिचित होने चाहिए कि बच्चे के विकास में खेलकूद की भूमिका क्या है? ये भूमिकाएं निम्नलिखित हो सकती हैं–

1. **सामूहिक बैठकों का आयोजन (Meeting with Parent) :** अध्यापक माता-पिता के साथ मीटिंग कर सकता है तथा खेल के महत्त्व और खेल के अभाव से होने वाले संभावित कुप्रभावों को माता-पिता के साथ चर्चा कर सकता है। अध्यापक इस बारे में भी सुझाव दे सकता है कि बच्चों पर बहुत कठिन परिश्रम करने के लिए दबाव न डालें, तथा साथ ही औरों की उपलब्धियों और प्रतियोगिताओं का बहुत अधिक बखान न करें।
2. **दूसरी क्रियाकलापों के लिए समय का बंटवारा (Time for other Activities) :** बच्चों के पढ़ने-खेलने और दूसरी क्रियाकलापों को करने के लिए कितना समय दिया। माता-पिता यह सुनिश्चित कर सकते हैं ताकि बच्चे सभी कुछ छोड़-छाड़ कर किसी एक कार्य में ही सारे समय ही न लगे रह सकें।
3. **बाहर मैदानों पर जाना (Visits to open Grounds) :** बच्चा अपनी इच्छा से माता-पिता के साथ खेत-खलिहान या मैदान पर जाना चाहे तो माता-पिता बाहर खेत-खलिहान पर जाते समय बच्चे को भी साथ ले जा सकते हैं। यदि वे स्वेच्छा से न जाना चाहें तो ऐसे माता-पिता जो किसी कला-विशेष जैसे नृत्य, संगीत, कला और हस्तशिल्प आदि में प्रतिभासम्पन्न हों तो बच्चों के लिए स्कूल के बाद सप्ताह में एक या दो बार 'हॉबी कक्षाएं' (Hobby Classes) भी ले सकते हैं।
4. **खेल के मैदान तैयार करवाना (Sports Ground) :** यदि बच्चों के रहने के स्थान के आस-पास कोई खेल का मैदान नहीं है तो कुछ अभिभावक मिलकर सक्षम अधिकारियों से सम्पर्क कर सकते हैं अथवा यदि संभव हो चंदा आदि इकट्ठा करके बच्चों के लिए खेल के मैदान की व्यवस्था

Scanned with OKEN Scanner

करवा सकते हैं। ये मात्र सुझाव है। इनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किये जा सकते हैं। अपनी कल्पनाओं से खेल के अवसरों को बढ़ाने के लिए अन्य व अनेक तरीके सोचे जा सकते हैं।

इस प्रकार खेलकूद और अन्य सहगामी क्रियाकलापों (Co-curriculor Activities) की सहायता से सीखने की क्रिया को मनोरंजक व हास्य-विनोद पूर्ण बनाया जा सकता है। माता-पिता और शिक्षकों पर यह निर्भर करता है कि वे ऐसे तरीकों की तलाश करें जिनसे बच्चे विभिन्न प्रकार के खेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित हों तथा जिनसे सीखने की क्रिया और अधिक प्रभावशाली तथा आनन्ददायक बन सकें।



चित्र : खेलकूद में माता-पिता की संभागिता/भूमिका

◆◆◆

2.7 खेल तथा समूह गतिकी, खेलों के नियम तथा बच्चे मतभेदों तथा संघर्ष का समाधान करना कैसे सीखते हैं? (Games and Group Dynamics, Rules of Games and How Children Learns to Negotiate Differences and Resolve Conflict)

1. खेल तथा समूह गतिकी या समूह गत्यात्मकता का क्या संबंध है? खेलों के नियमों के बारे में आप क्या जानते हैं? बच्चे मतभेदों तथा संघर्ष का समाधान कैसे करते हैं?
(What is relationship between games and Group dynamics? What do you know about rules of games? How do children learn to negotiate differences and resolve conflict?)

उत्तर–खेलों तथा समूह गतिकी का महत्त्वपूर्ण संबंध होता है। बहुत से खेल सामूहिक रूप से खेले जाते हैं। जैसे खो-खो, क्रिकेट, फुटबॉल, हॉकी, कबड्डी, क्रिकेट, बॉस्केटबॉल, हैंडबॉल आदि। इन खेलों में खिलाड़ी को सामूहिक रूप से योगदान देना होता है। इन खेलों में खिलाड़ी समूह के रूप में एक टीम में खेलते हैं और समूह का एक नेता होता है, जिसको टीम का कैप्टन कहा जाता है। समूह गतिकी का खेलों में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

समूह गतिकी या समूह गत्यात्मकता का अर्थ *(Meaning of Group Dynamics)*

समूह गतिकी या समूह गत्यात्मकता (Group Dynamics) एक महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय है। सबसे पहले इस संप्रत्यय का प्रतिपादन कर्ट-लेविन (Kurt Lewin) ने सन् 1945 में किया था। यह वास्तव में समूहों के अध्ययन से संबंधित नया दृष्टिकोण है। कर्ट-लेविन के अनुसार समूह गतिकी से अभिप्राय समूह से संबंधित तथा विशेषतौर पर छोटे समूहों के उन प्रभावों तथा बलों (Forces) से होता है, जिनसे समूह के सदस्यों का व्यवहार एक निश्चित दिशा में परिवर्तित होता है। इसी कारण से समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे समूह-गतिकी

Scanned with OKEN Scanner

(Group dynamics) का नाम दिया तथा इसके अंतर्गत समूह के भीतर घटित होने वाली भिन्न-भिन्न की प्रक्रियाओं जैसे—समूह-व्यवहार, समूह-निर्माण, नेतृत्व, शक्ति-परिवर्तन आदि से संबंधित अध्ययनों को शामिल किया। समूह-गतिकी को परिभाषित करने के विभिन्न प्रयास किये गये हैं। **फिशर** (1983) के अनुसार, "समूह गतिकी या गत्यात्मकता अध्ययन से संबंधित एक ऐसा क्षेत्र है, जो उन बलों या दबावों का उल्लेख करता है। जिनसे छोटे समूह में व्यक्तियों का व्यवहार प्रभावित होता है।"

कार्टेराइट तथा **जैंडर** के अनुसार, "समूह गतिकी जांच पड़ताल का ऐसा क्षेत्र है, जो समूहों की प्रकृति से संबंधित विकसित ज्ञान, उनके विकास संबंधी नियमों तथा व्यक्तियों, दूसरे समूहों तथा अन्य बड़ी संस्थाओं के साथ उनके अंतःसंबंधों से संबंधित है।"

गुड के अनुसार, "समूह गत्यात्मकता का प्रयोग उन अंतःक्रियात्मक मनोवैज्ञानिक संबंधों के लिए किया जाता है, जिसमें समूह के सदस्य समान उभयनिष्ठ अनुभूतियों को विकसित करते हैं, क्योंकि समान साझे, अनुभवों तथा भावनाओं पर आधारित होते हैं।"

क्रैच एवं **क्रचफील्ड** के मतानुसार, "समूह गत्यात्मकता उन परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है, जो समूहों में होते हैं।"

अतः उपरोक्त दृष्टिकोण के आधार पर कहा जा सकता है कि समूह गतिकी या गत्यात्मकता ज्ञान से संबंधित वह शाखा है, जो समूहों का अध्ययन करती है तथा वह समूहों की प्रकृति एवं स्वरूप (nature) तथा क्रियाशीलता से संबंधित विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करती है। समूहों का निर्माण कैसे होता है? समूह व्यक्ति के व्यवहार को किस प्रकार से तथा कैसे प्रभावित करते हैं? इस प्रकार से समूह गतिकी या गत्यात्मता हमें समूह में विद्यमान मानवीय व्यवहार तथा सामाजिक संबंधों के बारे में पर्याप्त जानकारी प्रदान करती है।

इसके अतिरिक्त समूह गतिकी या गत्यात्मकता हमें समूहों से संबंधित ध्यान केंद्रित करने के अलावा उन प्रश्नों पर भी प्रकाश डालती हैं जो सामूहिक जीवन की गतिशीलता के साथ संबंध रखते हैं। इसके साथ-साथ समूह गतिकी हमें यह भी जानकारी देती है कि वे कौन-कौन सी केंद्रमुखी या केंद्र विमुख शक्तियां हैं जो समूह की संरचना (Group structure) में बदलाव लाती हैं। किस से समूह से संबंधित प्रभावशाली व्यक्ति समूह की बनावट तथा उसकी कार्यप्रणाली में परिवर्तन कर देता है? समूह में विद्यमान किन परिवर्तनों से उत्पादकता (productivity) को बढ़ावा मिलता है? समूह किस प्रकार से अपने सदस्यों में कार्य करने, सोचने तथा अनुभव करने में एकरूपता लाने के लिए दबाव डाल सकता है? समूह के उद्देश्यों तथा समूह के आकार में परिवर्तन आने के फलस्वरूप समूह के व्यवहार तथा उसकी संरचना में कौन-सा परिवर्तन होगा आदि। इसी प्रकार से समूह-जीवन के अंतर्गत विभिन्न कारणों से संभव विभिन्न परिवर्तनों से संबंधित पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर देने का भी समूह-गतिकी प्रयास करती है।

समूह-गतिकी के क्षेत्र के संबंध में बहुत से अध्ययन किये गये हैं। इन विभिन्न प्रकार के अध्ययनों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने समूह-गतिकी (Group dynamics) के संबंध में कुछ खास तथ्यों (Facts) का पता लगाया है, जिनमें से मुख्य निम्न प्रकार से हैं—

1. समूह के सदस्यों में कार्य-संतुष्टि तथा समूह का निष्पादन (Group Performance) बहुत कुछ नेतृत्व पर निर्भर करता है।
2. छोटे समूहों में बड़े समूहों की तुलना में सदस्यों के व्यवहारों में परिवर्तन लाना अपेक्षाकृत अधिक आसान होता है। इसी कारण से 'समूह-गतिकी' से संबंधित संप्रत्यय जितना छोटे-समूह पर सही उतरता है, उतना बड़े समूहों पर नहीं। इसी कारण से लेविन ने समूह-गतिकी को केवल छोटे समूहों तक ही सीमित रखा है।
3. समूह सदस्यों के व्यवहारों में सामूहिक निर्णय प्रक्रिया (group decision process) के द्वारा अधिक सरलता से बदलाव लाया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

4. सहभागी नेतृत्व के अंतर्गत भाषण नेतृत्व की अपेक्षाकृत समूह के सदस्यों के व्यवहारों में अधिक तीव्रता से परिवर्तन आता है।
5. कुछ स्थितियों में सीखना परिवर्तन के प्रति रुकावट की भावना से होता है। यदि विद्यार्थी स्वयं समझकर परिवर्तन चाहने लगते हैं तो सीखना हो जाता है।
6. समूह गत्यात्मकता समूह की शक्तियों का अध्ययन करता है।
7. समूह गतिकी या गत्यात्मकता व्यक्ति के साथ-साथ समूह के पारस्परिक संबंधों की जानकारी देता है।

समूह गतिकी या गत्यात्मकता की मूलभूत अवधारणायें *(Basic Assumptions of Group Dynamics)*

समूह-गतिकी से संबंधित प्रमुख अवधारणायें निम्न प्रकार से हैं–

1. समूह-गतिकी की जानकारी या ज्ञान से द्वारा समूह तथा उसके प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है। समूह गतिकी के ज्ञान या जानकारी होने से व्यक्तियों के समूह को समझने तथा उसे उचित दिशा प्रदान करने संबंधी समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है।
2. समूह में व्यक्ति को प्रभावित करने की अनोखी शक्ति विद्यमान होती है। समूह में अथाह शक्ति होती है। व्यक्ति को उनमें सम्मिलित होना होता है तथा साथ ही उनकी मान्यताओं का पालन करना होता है।
3. समूह व्यक्ति पर अच्छे तथा बुरे दोनों प्रकार के प्रभाव छोड़ते हैं। कुछ समूह अच्छा प्रभाव छोड़कर व्यक्ति को अच्छे रास्ते पर ले जाते हैं तथा दूसरी ओर कुछ समूह व्यक्ति को बुरे तथा कुमार्ग की ओर ले जाते हैं।
4. समूहों के बनने की प्रक्रिया निश्चित भी है तथा सार्वभौमिक भी। व्यक्तियों के समूहों का बनना एक स्वाभाविक तथा निश्चित बात है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी होने के नाते कभी भी अकेला नहीं रह सकता यह बात सभी स्थानों तथा समय पर समान रूप से लागू होती हैं अर्थात् यह बात सार्वभौमिक है।

समूह गतिकी या गत्यात्मकता की शैक्षिक उपयोगिता *(Educational Implication of Dyanmics)*

समूह-गतिकी या समूह-गत्यात्मकता हमें किसी भी समूह की प्रकृति एवं स्वरूप (Nature) तथा विशेषताओं के बारे में जानकारी प्रदान करती है। समूह में रहकर ही बच्चों की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति होती है तथा हर समूह में संसक्तिशील (Cohesive) तथा विघटनकारी (Disruptive) दोनों तरह के बल कार्य करते हैं। इन दोनों प्रकार के बलों से समूह में सदस्यों का व्यवहार प्रभावित होता है तथा समूह में परिवर्तन आता है।

जब समूह के सदस्यों का व्यक्ति वैयक्तिक लक्ष्य (Individual Goal) तथा समूह के लक्ष्य (Group Goal) में मतभेद (Differences) या संघर्ष (Conflict) होता है तथा समूह में विघटनकारी बल सक्रिय माने जाते हैं। ऐसी स्थिति में उस समूह का अस्तित्व खतरे में दिखाई पड़ते हैं। खेलों में भी विघटनकारी बल कार्य करते हैं। इन विघटनकारी बलों से टीम के सदस्यों का व्यवहार भी प्रभावित होता है। खेलों में जब टीम के सदस्यों का वैयक्तिक लक्ष्य या टीम के लक्ष्यों में मतभेद या संघर्ष होता है तो टीम में विघटनकारी बल सक्रिय होते हैं। खेलों में मतभेद तथा संघर्ष का समाधान अत्यंत आवश्यक है।

खेलों के नियमों का खेलों की सफलता में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्रत्येक खेल के लिए नियम बनाए जाते हैं। सामूहिक खेलों में खेलों के नियमों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

Scanned with OKEN Scanner

महत्त्वपूर्ण सामूहिक खेलों के नियम

हॉकी खेल के नियम–

(1) खेलते समय कोई भी खिलाड़ी अपनी स्टिक का कोई भी भाग कंधे से ऊंचा नहीं उठा सकता, जिससे किसी दूसरे खिलाड़ी को चोट लगने की या उसके रास्ते में बाधा पड़ने की सम्भावना हो।

(2) कोई भी खिलाड़ी खेलने के लिए स्टिक का उल्टा भाग प्रयोग नहीं कर सकता।

(3) हाकी को छोड़ अन्य किसी भी ढंग से न तो गेंद को रोकना चाहिए और न ही उसको उठाया या फेंका या ले जाया जाना चाहिए।

(4) गेंद को केवल स्कूप स्ट्रोक से ही ऊपर उठाया जा सकता है। गेंद को अंदर कट नहीं किया जाता।

(5) किसी विरोधी की हाकी को न हिट करना चाहिए और न ही हुकिंग करनी चाहिए।

(6) किसी विरोधी को रोकने के लिए हाकी, पांव या टांग का सहारा नहीं लेना चाहिए।

(7) यदि गेंद, गोलकीपर के कपड़ों में, किसी खिलाड़ी के कपड़ों में या अम्पायर के कपड़ों में फंस जाए तो अम्पायर खेल को बन्द कर देगा और खेल उसी स्थान से पास द्वारा पुनः शुरू होगा।

(8) गेंद यदि अम्पायर को लग जाए तो खेल जारी रहेगा।

(9) यदि कोई खिलाड़ी दुर्व्यवहार करता है तो उसे अम्पायर चेतावनी दे सकता है।

(10) गोलकीपर गेंद को गोल में जाने से बचाने के लिए शूटिंग सर्कल में अपने शरीर के किसी भी अंग से गेंद रोक सकता है।

(11) बरसात होने या रोशनी कम हो जाने की स्थिति में मैच दुबारा खेला जाएगा।

(12) यदि मैच में हार-जीत का फैसला न हो तो फिर अतिरिक्त समय 7½ – 7½ (बीच में 2 मिनट का आराम दिया जाएगा।

(13) यदि अतिरिक्त समय में कोई फैसला न हो तो 7½ मिनट का डेथ पीरियड और दिया जाता है। इस दौरान जहां भी टीम गोल कर दे मैच वहीं समाप्त हो जाएगा।

(14) यदि डेथ पीरियड में कोई फैसला न हो तो दुबारा अतिरिक्त समय दिया जाता है।

(15) यदि अतिरिक्त समय और दो बार दिये गये डेथ पीरियड में कोई फैसला न हो तो 5-5 पैनल्टी स्ट्रोक लगाए जाते हैं, जब तक हार-जीत का निर्णय नहीं हो जाता।

वालीवॉल खेल के नियम
(Rules of the Volley Ball)

(1) वालीवॉल के सभी अंतर्राष्ट्रीय मैच बेस्ट आफ फाइव पर खेले जाते हैं।

(2) खेल का प्रारंभ में दोनों टीमों के कप्तान सर्विस तथा सिरों को चुनने के लिए टास करते हैं।

(3) प्रत्येक टीम में 12 खिलाड़ी होते हैं, जिनमें से 6 खिलाड़ी एक समय में खेलते हैं।

(4) प्रत्येक सेट के बाद कोर्ट बदल ली जाती है।

(5) अंतिम सेट में जब किसी भी टीम ने 8 अंक बना लिए हों तो कोर्ट बदल सकते हैं।

टाइम आउट (Time Out)–

(1) रेफरी या अम्पायर केवल गेंद मृत (Dead) होने पर ही टाइम आउट देगा।

(2) टीम का कप्तान या कोच विश्राम तथा प्रतिस्थापन के लिए टाइम आउट मांग सकता है।

(3) एक सेट पर एक टीम अधिकतम दो टाइम आउट ले सकती है, जिसका अधिकतम समय 30 सेकंड होगा। लगातार दो टाइम आउट भी लिए जा सकते हैं।

(4) टाइम आउट के समय न तो खिलाड़ी कोर्ट से बाहर जा सकते हैं और न ही कोच कोर्ट के अंदर प्रवेश कर सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

(5) किसी भी खिलाड़ी के घायल हो जाने पर तीन मिनट का काल स्थगन दिया जाएगा। यह तभी दिया जाएगा, यदि घायल खिलाड़ी बदला न जा सकता हो।

(6) खिलाड़ी बदलने के तुरंत बाद खेल पुनः आरंभ हो जाएगा।

(7) प्रत्येक सेट के बीच में अधिक से अधिक दो मिनट का अवकाश होगा, परंतु चौथे और पाँचवें सेट के बीच में 5 मिनट का अवकाश होगा।

कबड्डी खेल के नियम
(Rules of the Kabaddi)

(1) खेल दोनों कप्तानों के मध्य टॉस करने के बाद शुरू होगा।

(2) टॉस जीतने वाली टीम को यह अधिकार होगा कि पहले वह अपनी पसंद का क्षेत्र ले या फिर आक्रमण (Raid) करे।

(3) खेलते समय यदि खिलाड़ी मैदान की सीमा रेखा से बाहर चला जाता है, तो वह आउट माना जायेगा।

(4) खेल आरंभ होने पर प्रकोष्ठ (लॉबी) को भी खेल के मैदान में माना जायेगा।

(5) विपक्षी दल का कोई खिलाड़ी यदि सीमा से बाहर चला जाए और आक्रामक को पकड़ ले तो आक्रामक आउट नहीं माना जाएगा।

(6) आक्रमण करने वाले खिलाड़ी को कबड्डी-कबड्डी शब्द जोर से बोलते हुए आक्रमण करना होगा। यदि वह विपक्षी कोर्ट में प्रवेश करने के बाद कबड्डी बोलता है या सांस खींचता है तो अम्पायर उसे वापस भेज सकता है।

(7) यदि खिलाड़ी को चेतावनी देने पर भी वह विपक्षी कोर्ट में जाकर कबड्डी शब्द बोलता है, तो उसकी बारी समाप्त कर दी जायेगी और विपक्ष को एक अंक मिलेगा।

(8) एक बार में केवल एक खिलाड़ी आक्रमण के लिए जा सकता है। यदि एक से अधिक खिलाड़ी ऐसा करते हैं, तो रेफरी उसे वापस भेज देगा और उस खिलाड़ी की बारी समाप्त हो जाएगी। साथ ही जिन विपक्ष के खिलाड़ियों को उन्होंने छू लिया, वे आउट नहीं माने जायेंगे।

(9) यदि कोई खिलाड़ी आक्रमण के समय विपक्षी कोर्ट में सांस तोड़ लेता है तो आउट माना जाएगा।

(10) आक्रामक के अपने कोर्ट में लौटने के तुरंत बाद विपक्षी दल अपना खिलाड़ी भेजेगा। अतः प्रत्येक पक्ष अपना खिलाड़ी बारी-बारी से खेल के अंत तक भेजता रहेगा।

(11) कोई भी आक्रामक या विपक्षी एक-दूसरे को धक्का मारकर सीमा से बाहर नहीं कर सकता। ऐसा करने वाले को आउट माना जायेगा।

(12) जब तक आक्रामक विपक्षी कोर्ट में रहता है, तब तक कोई विपक्षी खिलाड़ी केंद्रीय रेखा पार कर आक्रामक के किसी साथी को नहीं छुएगा। यदि ऐसा करेगा तो उसे आउट घोषित किया जाएगा।

(13) कोई आक्रामक खिलाड़ी यदि अपनी बारी के बिना विपक्षी कोर्ट में जाता है, तो अम्पायर उसे चेतावनी देगा, यदि फिर वह जाता है तो विरोधी टीम को एक अंक दिया जायेगा।

(14) किसी भी आक्रामक या विपक्षी को कमर, हाथ या पांव के अतिरिक्त शरीर के किसी भाग से पकड़ने की अनुमति नहीं होगी। इस नियम का उल्लंघन करने वाला आउट घोषित किया जायेगा।

(15) विपक्षी के आउट होने पर आउट खिलाड़ी उसी क्रम में जीवित किया जायेगा, जिस क्रम में वह आउट हुआ था।

(16) कोई खिलाड़ी यदि अपने पक्ष के आक्रामक को विपक्षी के प्रति सचेत करे तो अम्पायर उसके विरुद्ध एक अंक देगा।

Scanned with OKEN Scanner

(17) यदि किसी खिलाड़ी को चोट लगने से 20 मिनट खेल रुका रहे तो मैच पुनः खेला जायेगा।
(18) खेल के मध्य में यदि एक या दो खिलाड़ी रह जायें तथा विरोधी दल का कप्तान अपनी टीम को खेल में लाने के लिए उन्हें आउट घोषित कर दे तो विपक्षियों को इन शेष खिलाड़ियों की संख्या के बराबर अंकों के अतिरिक्त लोना के दो अंक दिये जायेंगे।
(19) जब टीम विरोधी टीम के सभी खिलाड़ियों को आउट कर दे, तो उसे लोना के दो अंक दिये जाते हैं।
(20) मैच 5 खिलाड़ियों के साथ भी प्रारंभ किया जा सकता है, परंतु जब पांच खिलाड़ी आउट हो जायें तो विपक्षी टीम को पूरा लोना अर्थात् 5 + 2 अंक दिये जाते हैं।
(21) किसी आक्रामक के पकड़े जाने पर विपक्षी खिलाड़ी कैंची मारना, जानबूझकर सांस रोकना या चोट लगाना आदि साधनों का प्रयोग नहीं कर सकते।

खो-खो खेल के नियम
(Rules of Kho-Kho Game)

(1) किसी भी टीम द्वारा चेजर या रनर बनने का फैसला टॉस द्वारा किया जाता है।
(2) सक्रिय चेजर (Active Chaser) केंद्रीय रेखा को पार नहीं कर सकता और न ही इसके शरीर का कोई भाग केंद्रीय गली से स्पर्श करेगा।
(3) यदि खो देनी हो तो बैठे हुए चेजर को पीछे से जाकर खो देनी होती है। बैठा हुआ चेजर बिना खो प्राप्त किये हुए उठ नहीं सकता।
(4) सक्रिय चेजर बैठे हुए चेजर के फैलाए हुए बाजू या टांग को छूकर खो नहीं देगा।
(5) खो देने के पश्चात् सक्रिय चेजर बैठे हुए चेजर का स्थान ग्रहण करेगा।
(6) खो मिलने के पश्चात् भागने वाला चेजर उस दिशा में जाएगा जो दिशा अपने वर्ग से उठकर केंद्रीय पट्टी को पार करके अपनाई हो।
(7) भागने वाले चेजर का मुंह उसके भागने की दिशा में ही होना चाहिए।
(8) चेजर इस प्रकार बैठे कि इससे धावक को बाधा न हो। यदि कोई धावक इस प्रकार की बाधा से आउट होता है, तो वह आउट नहीं माना जायेगा।
(9) धावक बैठे हुए चेजरों को नहीं छुएगा।
(10) यदि धावक के दोनों पांव सीमा रेखा से बाहर निकल जाएं तो वह आउट समझा जाएगा।
(11) यदि सक्रिय चेजर किसी नियम का उल्लंघन किये बिना रनर को छू लेता है, तो रनर आउट माना जायेगा।
(12) सक्रिय चेजर किसी एक पोल की ओर दिशा ग्रहण करने के पश्चात् उसी दिशा में जायेगा, जब तक वह खो नहीं कहता और न ही गली से दूसरी ओर जायेगा, जब तक वह पोल के चारों तरफ बाहर से न घूम ले।
(13) कोई भी सक्रिय चेजर खो देने के लिए वापस नहीं आ सकता।
(14) यदि सक्रिय चेजर किसी नियम का उल्लंघन करता है, तो अम्पायर उसके विरुद्ध उचित निर्णय ले सकता है।

क्रिकेट खेल के कुछ सामान्य नियम–

1. यदि बैट्समैन अपने बल्ले का प्रयोग कर गेंद को खेल क्षेत्र की सीमा रेखा के पार पहुँचा देता है, तब उसे चार रन मिलते हैं। यदि गेंद बल्ले से लगकर हवा में ही सीमा रेखा के पार चली जाती है, तब उस बैट्समैन को छह रन मिलते हैं।
2. किसी भी बैट्समैन को 'आउट' करार देने के लिए इनमें से किसी एक को आधार बनाया जा सकता है–(क) कैच, (ख) रनआउट, (ग) एल. बी. डब्ल्यू, (Lbw), (घ) हैंडलिंग द बॉल, (ङ) हिट द स्टम्प्स, (च) देर से मैदान में आना आदि।

Scanned with OKEN Scanner

3. यदि बैट्समैन रन लेने के लिए दौड़ता है तब कोई भी क्षेत्ररक्षक उसे जानबूझकर गिराने का या उसे रोकने का प्रयास नहीं कर सकता है।
4. एल.बी.डब्ल्यू. आउट करार देने के लिए बॉलर (गेंदबाज) या विपक्षी खिलाड़ी को अम्पायर से अपील करनी पड़ती है।
5. यदि गेंद खेल के मैदान में रखी बाह्यवस्तु (जैसे विकेटकीपर के हेलमेट) आदि से टकरा जाती है, तब बल्लेबाजी करने वाली टीम को पाँच अतिरिक्त रन मिलते हैं।
6. बैट्समैन को रन लेने के लिए दौड़ते समय पिच के किनारों पर ही दौड़ने की अनुमति होती है। पिच के बीचों-बीच दौड़ने से पिच में खड्डे पड़ने या उसके टूटने का अंदेशा रहता है।
7. इसे भद्रजनों का खेल (Gentlemen's Game) कहा जाता है। अतः प्रत्येक खिलाड़ी से मैदान पर अच्छे व्यवहार की ही अपेक्षा की जाती है।
8. आजकल रन आउट, छक्के, चौके आदि का सही निर्णय लेने के लिए थर्ड अम्पायर का प्रयोग किया जाने लगा है।
9. प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट मैच के लिए एक मैच रेफरी भी नियुक्त किया जाता है, जो कि मैच के दौरान होने वाली प्रत्येक गतिविधि पर कड़ी नजर रखता है।
10. स्कोरर तक अपना निर्णय पहुँचाने के लिए मैदान में खड़ा अम्पायर चौके, छक्के, आउट, वाइड बॉल, नो बॉल आदि के लिए हाथ व पाँव की सहायता से विशेष संकेत देता है।

खेलों में बच्चों के मतभेदों तथा संघर्ष का समाधान करने के लिए खेलों के नियमों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। खेलों में मतभेदों का समाप्त करने तथा संघर्ष का समाधान करने में समूह गतिकी का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। बच्चे समूह गतिकी के माध्यम से इन मतभेदों तथा संघर्षों का समाधान करना सीखते हैं। खेलों के क्षेत्र में समूह गतिकी के माध्यम से खिलाड़ियों के व्यवहारों में सामूहिक निर्णय प्रक्रिया द्वारा परिवर्तन लाने में निम्नलिखित सोपानों की तरफ ध्यान दिया जाता है–

1. टीम का कैप्टन टीम के सदस्यों की आवश्यकताओं एवं प्रेरणाओं के अनुकूल समस्या को रखता है, जिसमें एक निश्चित कार्यक्रम भी होता है।
2. उस कार्य को संपन्न करने में टीम के सदस्य अपने विचार एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं तथा टीम के किसी सदस्य द्वारा किसी बिन्दु पर विरोध किए जाने पर टीम के सदस्य आपस में विचार-विमर्श द्वारा उस समस्या का समाधान करते हैं।
3. टीम का कैप्टन विरोध के बिंदुओं को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार करता है।
4. टीम का केप्टन स्वयं भी स्वयं से जुड़ी सूचनाएं टीम के सदस्यों को देता है।
5. वह टीम के सदस्यों के बीच परिचर्या को प्रोत्साहित करता है ताकि विरोध बिंदुओं का उत्तर अधिक से अधिक मिल सके।
6. परिचर्या समाप्त होने पर टीम का कैप्टन टीम के सदस्यों से इस बात का निर्णय करता है कि वांछित क्रियाओं को सफलतापूर्वक संपन्न किया जाएगा या नहीं।
7. अंत में टीम का कैप्टन इस बात की संभावना पर भी ध्यान देता है कि कितने और लोग नई क्रियाओं को कार्यक्रम देने के लिए सहमत हो पाते हैं।

समूह गतिकी की सहायता के बच्चे मतभेदों को समाप्त करना तथा संघर्ष का समाधान करना सीखते हैं। समूह में रहकर बच्चों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तथा विकास के अवसर प्राप्त होते हैं। इसके साथ-साथ समूह में रहकर ही बच्चे सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति आदि के प्रति संवेदना व्यक्त करना सीखते हैं। बच्चों की विभिन्न प्रकार की योग्यताओं तथा आंतरिक शक्तियों का विकास भी समूह में रहकर ही होता है। सामूहिक जीवन में रहकर ही बच्चे का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक तथा सौंदर्यात्मक विकास होता है। सामूहिक जीवन के माध्यम से ही बच्चों में पारस्परिक स्नेह, सहयोग की भावना, आत्मविश्वास तथा वफादारी आदि से संबंधित गुणों का विकास होता है।

Scanned with OKEN Scanner

आपसी मतभेद को समाप्त करने तथा संघर्ष का समाधान करने में सात्मीकरण की अहम भूमिका होती है। सात्मीकरण की प्रक्रिया से बच्चों के समूहों में आपसी मतभेद समाप्त होते हैं तथा उनके दृष्टिकोणों में समानता विकसित होती है। इस प्रकार के द्वारा दो समूहों तथा संस्कृतियां इस प्रकार मिल जाते हैं कि इनमें अंतर करना कठिन हो जाता है। इसलिए सात्मीकरण को दृष्टिकोणों तथा मूल्यों का संपूर्ण मिश्रण तथा सामाजिक संपर्कों का परिणाम माना जाता है अर्थात् यह एक समझौता कराने वाली प्रक्रिया न होकर पूर्ण रूप से मिलाने वाली प्रक्रिया है। खेल में भी सात्मीकरण का अत्यंत महत्त्व है। जब दो व्यक्ति, समूह या संस्कृतियां एक-दूसरे के व्यवहार और आदर्शों को स्वीकार कर लेते हैं तथा एक-दूसरे से इस प्रकार घुलमिल जाते हैं कि उनमें कोई अंतर करना कठिन हो जाता है तो उसे हम सात्मीकरण कहते हैं। यह दो भिन्न-भिन्न समूहों या सांस्कृतियों के दृष्टिकोणों एवं मूल्यों का संपूर्ण सम्मिश्रण है। अतः बच्चे मतभेदों तथा संघर्षों का समाधान सात्मीकरण के माध्यम से सीखते हैं।

◆◆◆

लघु-उत्तरात्मक प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

प्रश्न 1. वैयक्तिक भिन्नताओं के अर्थ को उचित परिभाषाओं के आधार पर समझाएं।

उत्तर– वैयक्तिक विभिन्नता से तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति की विभिन्नता से है। सभी व्यक्ति आपस में व्यक्ति के समान नहीं हैं। हर व्यक्ति में अंतर, रूप-रंग, आकृति, स्वभाव, प्रकृति, अभिवृत्ति, मूल प्रवृत्ति के अनुसार सर्वथा अलग-अलग है। शिक्षा के माध्यम से इस वैयक्तिक विभिन्नता को भी बहुत कुछ परिवर्तित किया जा सकता है।

वैयक्तिक विभिन्नता की परिभाषा (Definition of individual difference)

1. **श्री रामबाबू गुप्ता**–संसार में किसी भी दो व्यक्तियों का एक-सा न होने को वैयक्तिक भिन्नता कहते हैं।
2. **स्किनर**–मापन किया जानने वाले व्यक्तित्व का प्रत्येक पहलू वैयक्तिक भिन्नता का अंश है।
3. **टायलर**–शरीर के आकार और रूप शारीरिक कार्य, गति की क्षमताओं, वृद्धि उपलब्धि, ज्ञान, रुचियों, अभिवृत्तियों और व्यक्तित्व के लक्षणों में पाई जाने वाली भिन्नताओं का अस्तित्व सिद्ध हो सका है।

परिभाषाओं को आधार मानने पर यह प्रतीत होता है कि–

1. एक से दूसरा व्यक्ति भिन्न होता है।
2. व्यक्ति का प्रत्येक कार्य भिन्न होता है।

प्रश्न 2. वैयक्तिक भिन्नता के मुख्य आधार कौन-कौन-से हैं? संक्षेप में बताओ।

अथवा

वैयक्तिक भिन्नता के आधारों को संक्षेप में स्पष्ट करें।

उत्तर– वैयक्तिक भिन्नता के मुख्य आधार निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. **व्यक्तित्व (Personality)**–व्यक्तित्व से तात्पर्य बालक की कार्य प्रक्रिया से है। बालक सामाजिक, वैज्ञानिक, धार्मिक इत्यादि इन्हीं गुणों के आधार पर होता है।
2. **अभिरुचि एवं निष्पत्ति (Attitude and Achievement)**–बालकों की अभिरुचि एवं निष्पत्ति में अंतर पाया जाता है। कई बुद्धिमान एवं चतुर होते हैं तो कुछ निम्न या सामान्य होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

3. **स्वभाव (Temperament)**–बालकों में रुचि, अभिरुचि, योग्यता क्षमता के आधार पर अंतर पाया जाता है।

4. **विशिष्ट योग्यताएँ एवं अयोग्यताएँ (Special Abilities and Disabilities)**–कक्षा में कुछ छात्र विशिष्ट योगयता वाले होते हैं, जो कि हर विषय प्रत्येक कार्य में आगे रहते हैं, तथा कुछ अयोग्य होते हैं, जिन्हें हम पिछड़े बालक कह सकते हैं। ऐसा भी पाया जाता है कि रुचि की प्रधानता के कारण भी बालक में अंतर आता है। किसी बालक की किसी खास विषय में रुचि पाई जाती है।

5. (i) **शारीरिक (Physical)**–शारीरिक पक्ष में बालकों में वैयक्तिक विभिन्नता रंग-रूप, आकृति, गोरे, कोले, छोटे-लम्बे, मोटे, दुबले, पतले इत्यादि के कारण पाई जाती है।

   (ii) **मानसिक (Mental)**–कक्षा में मानसिक या बौद्धिक दृष्टि से अंतर वाले छात्र होते हैं। मन्द, सामान्य एवं विशिष्ट योग्यता के छात्र कक्षा में पाये जाते हैं।

6. **रुचि (Interest)**–सामान्यतः प्रत्येक बालक की रुचि में अतर होता है तथा बालक एवं बालिकाओं की रुचि में भी अंतर पाया जाता है, ठीक इसी तरह अध्ययन क्रम में भी उनकी रुचि में अंतर पाया जाता है। **भिन्नरुचिर्हिलोके** संसार में प्रत्येक व्यक्ति भिन्न रुचि का होता है।

7. **अधिगम (Learning)**–प्रत्येक बालक में अधिगम की प्रक्रिया में भी अंतर होता है। कोई शीघ्रतापूर्वक कोई सामान्य रूप से तो कोई धीरे-धीरे विषय को सीखता है।

प्रश्न 3. वैयक्तिक भिन्नताओं के शैक्षिक महत्त्व या उपयोगिता के विषय में संक्षेप में बताएं।

अथवा

वैयक्तिक भिन्नताओं के शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्व या उपयोगिता को संक्षेप में स्पष्ट करें।

उत्तर– वैयक्तिक भिन्नताओं की शैक्षणिक उपयोगिता या महत्त्व निम्न प्रकार से है–

1. बालकों को स्वतः क्रिया के लिए प्रेरणा देना।
2. बालकों की अधिगम शक्ति का विकास करना।
3. अध्यापन की शिक्षण पद्धतियों में परिवर्तन एवं उनका विकास करना।
4. गृह-कार्य की समुचित रूप से व्यवस्था करना।
5. बालकों में विशेष रुचि उत्पन्न करना।
6. बालकों के शारीरिक दोषों की ओर ध्यान दे करके उनका निराकरण करना।
7. लिंगभेदानुसार शिक्षण व्यवस्था करना।
8. आर्थिक एवं सामाजिक अवस्थाओं के अनुसार शिक्षा।
9. बालकों के वर्गीकरण की एक नवीनतम विधि।
10. विभिन्नता के आधार पर बालकों का वर्गीकरण।
11. बालकों का बुद्धिलब्धि के अनुसार वर्गीकरण।
12. व्यक्तिगत शिक्षण की व्यवस्था।
13. कक्षा की समुचित व्यवस्था।
14. छोटी कक्षाओं में व्यक्तिगत अवधान।
15. वैयक्तिक विभिन्नता के अनुसार शिक्षण व्यवस्था।
16. बालकों में अभिरुचि अभिवृद्धि का विकास।
17. वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर कक्षा स्तर की व्यवस्था।

Scanned with OKEN Scanner

प्रश्न 4. व्यक्तिगत भिन्नताओं के मुख्य कारणों को संक्षेप में बताएँ।

अथवा

वैयक्तिक भिन्नताओं के मुख्य कारण कौन-कौन-से हैं? संक्षेप में लिखें।

उत्तर– व्यक्तिगत विभिन्नताओं के मुख्य कारण निम्न प्रकार से हैं–

1. **वातावरण (Environment)**–वातावरण का प्रभाव व्यक्तिगत भेदों पर पड़ता है। जिस वातावरण में विद्यार्थी रहता है, उसका प्रभाव विद्यार्थी पर अवश्य पड़ता है। वास्तव में बालक पर वातावरण का प्रभाव तो मां के गर्भ से ही पड़ना शुरू हो जाता है। गर्भ में विकसित हो रहे बच्चे पर मां के संवेगों का, मां के भोजन का, मां की मानसिक स्थिति का प्रभाव बालक के विकास पर अवश्य पड़ता है। यदि मां के गर्भ के वातावरण का कोई भी पक्ष असंतुलित हो जाए तो इसका कुप्रभाव बच्चे के विकास पर अवश्य पड़ता है और उसमें कई प्रकार के दोष आने की संभावनाएँ हो जाती हैं, यहाँ तक कि बच्चे के मस्तिष्क पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है, जिसके कारण वह मानसिक रूप से पिछड़ सकता है।
2. **वंशानुक्रम (Heredity)**–वंशानुक्रम भी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के लिए आवश्यक कारण है। स्त्री और पुरुष के पैतृक सूत्रों का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ता है, जिनसे उनमें व्यक्तिगत विभिन्नताएँ आ जाती हैं।
3. **अन्य कारण (Other Reasons)**–वातावरण और वंशानुक्रम के अतिरिक्त अन्य भी कई कारण हैं, जो व्यक्तिगत भेदों को जन्म देते हैं, जैसे जाति, राष्ट्रीय प्रभाव, यौन भेद आदि। प्रत्येक राष्ट्र और जाति के लोगों की रुचियों, उनके दृष्टिकोणों और उनके विचारों की शैली में भारी अंतर पाया जता है। यहाँ तक कि उनके खाने-पीने की आदतों में भी अंतर होता है।

प्रश्न 5. वैयक्तिक भिन्नताओं के किन्हीं पाँच क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए।

अथवा

वैयक्तिक भिन्नताओं के पाँच क्षेत्रों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर– वैयक्तिक विभिन्नताएँ क्योंकि व्यक्तित्व में पाई जाती हैं और व्यक्तित्व जीवन के कई क्षेत्रों से मिलकर बनता है। अतः वैयक्तिक विभिन्नताओं की प्रकृति उसके क्षेत्रों पर निर्भर करती है। इन क्षेत्रों को ही हम दूसरे शब्दों से भिन्नता भी कहते हैं, जिनमें से पाँच मुख्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

1. **रुचि और दृष्टिकोण में भिन्नता (Differences in Interests and Attitudes)**–प्रत्येक व्यक्ति तथा विद्यार्थियों की रुचियों और दृष्टिकोणों में भी अंतर पाया जाता है। किसी की पढ़ने में अधिक रुचि होती है, किसी की खेलने में और किसी की चित्रकारी में रुचि होती है।
2. **गत्यात्मक योग्यता में भिन्नता (Differences in Motor abilities)**–प्रत्येक व्यक्ति के काम करने की गति अलग-अलग होती है तथा काम करने का क्षेत्र भी अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, कुछ लोग भारी कार्य कर सकते हैं, परंतु कुछ लोग नहीं कर सकते।
3. **चरित्र में विभिन्नता (Differences in Character)**–चरित्र की दृष्टि से भी व्यक्तियों में भिन्नता पाई जाती है। कुछ अच्छे चरित्र व कुछ बुरे चरित्र वाले व्यक्ति होते हैं। कुछ समाज के नैतिक मूल्यों को मान्यता देते हैं, कुछ नहीं। उदाहरण के लिए कई लोग शराब पीते हैं, कई लोग नहीं पीते। इसी तरह कई विद्यार्थी दूसरे बच्चों की चीजें उठा लेते हैं, जबकि कुछ इस बात को गलत समझते हैं।
4. **अधिगम तथा उपलब्धियों की भिन्नता**–विभिन्न व्यक्तियों में सीखने की क्षमता भिन्न होती है। शैक्षिक उपलब्धि तथा ज्ञान भंडार *(Apperceptive mass)* की दृष्टि से भी बालकों में अंतर होता है। कक्षा के कुछ छात्र पढ़ने-लिखने, प्रश्न हल करने, पढ़ाई गई बातों को समझाने

Scanned with OKEN Scanner

आदि के आधार पर दूसरों से कहीं आगे होते हैं तथा अनेक कारणवश कुछ बालक पिछड़े *(Retarded)* ही रह जाते हैं। अतः विद्यालयीय उपलब्धि *(Sholastic achievement)* की दृष्टि से बालकों में स्पष्ट भेद होते हैं।

5. **अभिप्रेरणाओं में भेद**–अभिप्रेरणाओं *(Motivations)* अथवा प्रेरकों की दृष्टि से भी बालकों के बीच पर्याप्त भेद होता है। प्राकृतिक अथवा जैविकीय *(Natural or Biological)* तथा अर्जित तथा सामाजिक *(Acquired or Social)* प्रेरक विभिन्न छात्रों के बीच पृथक-पृथक सीमाओं में पाए जाते हैं। कुछ बालकों में एक प्रकार के प्रेरक अधिक प्रभावी तथा प्रबल होते हैं, जबकि अन्य में दूसरे प्रेरक। प्रेरक मनुष्य के व्यवहार को निर्देशित करते हैं। अतः प्रेरकों के भेद के कारण विद्यार्थियों के संपूर्ण आचरण में भेद होना स्वाभाविक होता है।

प्रश्न 6. सृजनात्मकता को परिभाषित करें तथा सृजनशील बच्चों की विशेषताएं बताएँ।
(Define creativity. Describe the Characteristics of Creative Children.)

उत्तर– सृजनात्मकता का अर्थ है–सृजन करना, उत्पन्न करना आदि। 'Creativity' से अर्थ है, विचारों और वस्तुओं में नए सम्बन्ध देखना। कुछ विद्वानों ने सृजनात्मकता की परिभाषाएं प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जो निम्नलिखित हैं–

ड्रेवडाहल (According to Drevdhal) के अनुसार, **"सृजनात्मक व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा व कोई नवीन रचना करता है अथवा नवीन विचार प्रस्तुत करता है।"**
(Creativity is the ability of individual by which he creates something new and presents novel ideas.)

स्किनर (According to Skinner) के अनुसार, **"सृजनात्मकता से अर्थ है कि व्यक्ति की भविष्यवाणियां नई, मौलिक तथा असाधारण होती हैं। सृजनशील व्यक्ति वह है जो नए क्षेत्रों की खोज करता है, नए अवलोकन करता है, नई भविष्यवाणियां करता है तथा नए निष्कर्ष निकालता है।"**
(Creativity thinking means that the predictions for the individual are new, original and unusual. The creative thinker is one who exploers new areas and makes new observations, new predictions, new inferences.)

स्टेगनर एवं कावोस्की (According to Stagner and Karwoski) के अनुसार, **"किसी नई वस्तु का पूर्ण या आंशिक उत्पादन सृजनात्मकता है।"**
(Creativity implies the production of the totally or partially novel identity.)

आइजैक (According to Eysneck) के अनुसार, **"सृजनात्मकता वह योग्यता है जिसके द्वारा नए संबंधों का ज्ञान होता है तथा इसकी उत्पत्ति में चिन्तन के परम्परागत प्रतिमानों से हटकर असाधारण विचार उत्पन्न होते हैं।"**
(Creativity is the ability to see new relationship, to produce unusual ideas and to deviate from traditional patterns of thinking.)

सृजनशील बालकों की विशेषताएं (Characteristics of Creative Children)

मासलो (Maslow) के अनुसार सृजनशील बालकों में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती है–

(i) सृजनशील बालकों में विरोध को सहने की अधिक क्षमता होती है।
(ii) सृजनशील बालक एक स्वच्छ एवं आत्मसिद्धि (Self actualization) करने वाला होता है।
(iii) सृजनशील बालक अज्ञान एवं अस्पष्ट वस्तुओं और विचारों से भय नहीं खाते।
(iv) सृजनशील बालक तत्क्षण कार्य करने में सक्षम होते हैं।
(v) उनके विचारों में एक प्रकार का प्रवाह रहता है, जो बिना किसी प्रयास के स्वयं ही चलता रहता है।
(vi) सृजनशील बालक भोले होते हैं और फरेब तथा मक्कारी से दूर रहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

मैकिनन (Mackinnon) ने सृजनशील बालकों में निम्नलिखित विशेषताएं पाई हैं–

(i) सृजनशील बालक बुद्धिमान होते हैं।

(ii) इसके विचार एवं आचार स्वतंत्र होते हैं।

(iii) इनके विचार मौलिक होते हैं।

(iv) सृजनशील बालकों में अन्तर्दृष्टि की शक्ति अधिक होती है।

(v) वे गतिविधियों को जकड़ने वाले अवरोध से मुक्त होते हैं।

(vi) उनमें उच्च स्तर की कार्यशक्ति अधिक होती है।

(vii) उनमें सृजनात्मक प्रयासों पर आग्रहपूर्वक अटल रहने की शक्ति होती है।

टोरेन्स (Torrance) ने सृजनात्मक बालकों में निम्नलिखित गुणों पर अधिक बल दिया है–

(i) सृजनशील हास्यापद विचारों वाले बालक होते हैं।

(ii) उनके द्वारा किए गए कार्य एवं उत्पादन मौलिक (Original) होते हैं।

(iii) उनके द्वारा किए गए कार्य अनम्यता (Rigidity) एवं आरामतलबी (Relaxiation) से मुक्त होते हैं।

प्रश्न 7. सृजनात्मक की प्रक्रिया बताएँ।

(Describe the Process of Creativity.)

उत्तर– सृजनात्मकता की प्रक्रिया (The Process of Creativity)–

सृजनात्मक क्रिया निम्नलिखित चार अवस्थाओं में से गुजरती है–

1. **तैयारी (Preparation)**–इस अवस्था में समस्या पर गंभीरता से कार्य आरम्भ किया जाता है। मानसिक स्तर पर समस्या को समझा जाता है और विभिन्न परिकल्पनाएं बनाई जाती हैं और एकत्रित की जाती हैं। उदाहरण के तौर पर लेखक किताब लिखने के लिए उससे सम्बन्धित सारी सामग्री इकट्ठी करता है।
2. **उद्भवन (Incubation)**–इस अवस्था में एकत्रित की गई सामग्री मन के अर्द्धचेतन स्तर पर घूमती है और समस्या को हल (Solve) करने की क्रिया चलती रहती है। इस अवस्था में वाह्य क्रिया बन्द हो जाती है। इस अवस्था में हम विश्राम भी कर सकते हैं। इस अवस्था में समस्या के समाधान की दिशा मिल जाती है। समस्या के समाधान से सम्बन्धित विचार अचेतन मन से चेतन मन में आने का प्रयास करते रहते हैं।
3. **प्रकाश (Illumination)**–इस अवस्था में चिन्तक अचानक समस्या के समाधान अनुभव करता है। समस्या का समाधान चेतन मन पर अचानक प्रकाशमय होता है। कभी-कभी तो चिन्तक स्वप्न में ही समाधान का रास्ता देख लेता है।
4. **पड़ताल (Verification)**–इस अवस्था में समस्या के प्राप्त समाधान की जांच-पड़ताल की जाती है और अन्य स्थितियों में लागू किया जाता है। यदि समाधान ठीक नहीं है तो दोबारा समस्या के समाधान के लिए प्रयास किए जाते हैं।

उपरोक्त चारों अवस्थाओं की सहायता से कोई सृजनात्मक कार्य सम्भव होता है।

प्रश्न 8. कक्षा में सृजनात्मकता वृद्धि कैसे हो?

(How Creativity can be fostered in the Class?)

उत्तर– सृजनात्मकता विश्व, राष्ट्र तथा व्यक्ति के विकास में एक नया मोड़ प्रदान कर सकती है। सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हर व्यक्ति में सृजनात्मक योग्यताएँ होती हैं। यदि इसे उचित प्रशिक्षण तथा शिक्षा के पर्याप्त अवसर प्रदान न किए जाए तो वह व्यर्थ चली जाती है। अध्यापकों तथा समाज के लिए आवश्यक है कि वे बालकों में सृजनात्मक योग्यता के विकास के लिए उचित वातावरण प्रदान करें। बालकों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए निम्नलिखित सुझाव उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं–

Scanned with OKEN Scanner

1. **विचारों की स्वतंत्रता (Freedom of thoughts)**–अध्यापक और माता-पिता अपने बच्चों से पुराने घिसे-पीटे उत्तरों की आशा रखते हैं मगर सृजनात्मकता का सम्बन्ध स्वतंत्रता से होता है। बच्चों को उत्तर देने के लिए स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए।
2. **लचीले व मौलिक चिन्तन को प्रोत्साहित करना (Encouraging Flexible and Original Thinking)**–बालकों में विद्यमान मौलिकता को प्रोत्साहित करना चाहिए। तथ्यों का अनुसरण करना, रटना आदि सृजनात्मक अभिव्यक्ति में रुकावट हैं।
3. **डर और झिझक को दूर करना (Removal of fear and hesitation)**–अध्यापकों तथा माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों में डर और झिझक को दूर करें। डर और झिझक से बच्चों में हीनभावना उत्पन्न होती है।
4. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना (Encouraging the spirit of scientific enquiry)** –अध्यापक को बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। बच्चे समस्या का समाधान वैज्ञानिक ढंग से निकालें।
5. **उचित वातावरण पैदा करना (Providing appropriate Environment)**–बच्चों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिए उचित वातावरण की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चों में जिज्ञासा तथा सहनशीलता को बढ़ावा देना चाहिए।
6. **स्वस्थ आदतों का विकास (Development of health habits)**–आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आन्तरिक अनुशासन, श्रमशीलता आदि गुणों के निर्माण द्वारा बालकों में सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है।
7. **बहुविध का विकास (Development of Divergent thinking)**–यह एक स्थापित तथ्य है कि बहुविध चिन्तन सृजनात्मकता का आधार है। बहुविध चिन्तन द्वारा बालक समस्या के समाधान के लिए विभिन्न साधनों अथवा विचारों का प्रयोग करता है।
8. **परिणामों के बारे में चिन्तन करना (Thinking over consequences)**–परिणामों के बारे में बार-बार चिन्तन करना सृजनात्मकता का आधार बन सकता है। अध्यापक को चाहिए कि बालक के कार्य के परिणाम पर चिन्तन करने के लिए अभिप्रेरित करें।
9. **उचित पाठ्यक्रम (Proper curriculum)**–पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनके द्वारा बालकों में सृजनात्मकता सम्बन्धी गुणों का विकास हो सके। पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिए।

प्रश्न 8. 'रुचि' का अर्थ बताएँ तथा इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
(What do you mean by Interest? Describe its Characteristics.)

उत्तर– **रुचि का अर्थ (Meaning of 'Interest')**–किसी भी व्यक्ति के निरन्तर व्यवहार के लिये उसकी रुचियाँ ही उत्तरदायी होती हैं। रुचि वह अभिप्रेरक शक्ति है जो एकाग्र प्रयास को पैदा करती है, स्थिर रखती है तथा उसे नियमित बनाती है। (Interest is a motivating force that arouses,, sustains and regulates concentrated efforts.)

मैक्डूगल (McDugall) के अनुसार, **'रुचि एक व्यक्ति का स्थिर गुण है।'**
(Interest is a stable quality of a person.)

साहरी और टैलफोर्ड (Sawhery and Telford) के अनुसार, **"रुचि पदार्थ के प्रति अनुकूल व्यवहार है।"**
(Interest is favourable attitude towards objects.)

लातीनी भाषा में 'रुचि' के अंग्रेजी अनुवाद 'इन्ट्रैस्ट' (Interest) का अर्थ 'सम्बन्ध होना' या 'सरोकार' होना है। अतः रुचि का अर्थ है कि किसी वस्तु से सम्बन्ध का होना या सरोकार होना।

Scanned with OKEN Scanner

विलियम जेम्स (William James) के अनुसार, 'चयनित जागरूकता या ध्यान वह है जो किसी के सम्पूर्ण अनुभवों में से अर्थ पैदा करता है।'
(It is a form of selective awareness or attention that produces meaning out of the mass of one's experiences.)
बरडी (Berdie) के अनुसार, 'रुचि वे कारक है जो किसी व्यक्ति को किसी पदार्थ, व्यक्ति या क्रियाओं की ओर आकर्षित करते हैं या अनाकर्षित करते हैं।
(Berdie viewed them as factors that attract an individual to or repel him from objects, persons, and objects.)
स्ट्रांग (Strong) ने रुचियों को 'पसंद' (Likes) कहा है। मैक्डूगल (McDougall) ने कहा है कि 'रुचि छुपा हुआ ध्यान है और ध्यान किसी क्रिया में रुचि है।'
(Interest is latent attention and attention is interest in action.)
'रुचि' की विशेषताएँ (Characteristics of an Interest)–

(1) रुचियाँ जन्मजात (Inborn) भी हो सकती हैं तथा इन्हें अर्जित (Aquired) भी किया जा सकता है।
(2) रुचियों का सम्बन्ध वर्तमान से होता है।
(3) रुचियाँ संवेगात्मक अभिवृत्तियाँ (Emotional Attitudes) होती हैं।
(4) रुचियाँ भी प्रवृत्तियाँ (Instincts) ही हैं।
(5) अधिगम और रुचि में गहरा सम्बन्ध होता है।
(6) रुचि स्थायी नहीं होती। प्रौढावस्था में पहुँचते-पहुँचते इन रुचियों में व्यापक परिवर्तन होते रहते हैं तथा कुछ रुचियाँ आयु के साथ-साथ लुप्त हो जाती हैं।
(7) सुपर के अनुसार रुचियाँ वंशानुक्रमित अभिरुचियों तथा नालिका-विहिन कारकों में (Endocrine Factors) अन्तः क्रिया का परिणाम है।
(8) रुचि और ध्यान को अलग करना असंभव है।
(9) रुचि गुप्त ध्यान है तथा ध्यान रुचि का सक्रिय रूप है। (Interest is latent attention, attention is interest in action.)
(10) रुचियाँ हमारी आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा लक्ष्यों से जुड़ी होती हैं।
(11) किसी वस्तु में रुचि होने के कारण हम उस वस्तु की उसी दृष्टिकोण से व्याख्या करते हैं और उसे अर्थ प्रदान करते हैं।
(12) 'रुचि' हमें संतोष देती है। ऐसा तभी होता है जब हम रुचि के अनुसार कोई कार्य करते हैं।
(13) वातावरण तथा वंशानुक्रम सम्बन्धी कारक रुचि को रूप देते हैं।
(14) रुचि तथा व्यवहार का गहरा सम्बन्ध है।
(15) रुचियों के विकास में लैंगिक भिन्नता (Sex Differences) होती है।
(16) व्यक्ति की बुद्धि उसकी रुचियों को प्रभावित करती है।

प्रश्न 10. रुचियों का शैक्षिक महत्त्व क्या है?
(What is the Educational Implication of Intersts?)

उत्तर– रुचियों का शैक्षिक महत्त्व निम्नलिखित है–

1. कक्षा में रुचि उत्पन्न करने में लिए उचित उद्देश्यों का निर्माण अति आवश्यक है।
2. शिक्षण कार्य को तथा अधिगम को रुचिकर बनाने के लिए उचित शिक्षण विधियों का चयन आवश्यक है।

Scanned with OKEN Scanner

3. शिक्षण कार्य को रुचिकर बनाने के लिए तथा सीखने की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए आकर्षक सहायक सामग्री का प्रयोग किया जाए।
4. किसी व्यक्ति में रुचि उत्पन्न करने के लिए स्वयं अध्यापक का अपना व्यक्तित्त्व भी महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होता है।
5. स्कूल में समय सारिणी बनाने के लिए रुचियों को आधार बनाया जा सकता है।
6. अधिगम अनुभवों के उचित चयन में रुचियाँ सहायक होती हैं।
7. हर कार्य के लिए उचित वातावरण का होना आवश्यक होता है। उचित वातावरण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
8. बच्चों की रुचियाँ उनकी मूल प्रवृत्तियों द्वारा नियंत्रित तथा निर्देशित होती हैं।
9. बच्चों की रुचि बनाए रखने के लिए नए ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बद्ध करना आवश्यक है।
10. अध्यापक पाठ को उकताने वाला न बनने दे। उसे एक ही बात को बार-बार दोहरानी नहीं चाहिए। उसके पाठों में नवीनता होनी चाहिए।

प्रश्न 11. अभिरुचि का अर्थ स्पष्ट करें।
(Explain the meaning of Aptitude.)

उत्तर– अभिरुचि का अर्थ (Meaning of Aptitude)–

बैरन के अनुसार, **"अभिरुचि वह दशा या गुणों का वह रूप है जो व्यक्ति की उस योग्यता की ओर संकेत करता है जो प्रशिक्षण के बाद ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं की तीव्रता है जैसे भाषा, बोलने या संगीतोत्पादन की योग्यता है।"**

(An aptitude is a condition or set of characteristics regarded as symptomatic of an individual's ability to acquire with training some knowledge, skill or set of responses such as the ability to speak a langauge, to produce music etc.)

ट्रैक्सलर (Traxler) के अनुसार] **"अभिरुचि वह वर्तमान दशा है जो व्यक्ति की भविष्य क्षमताओं की ओर संकेत करती है।"**

(Aptitude is a present condition which is indicative of an individual's potentialities for future.)

सुपर (Super) ने अभिरुचि की चार विशेषताएँ बतई हैं–

(i) विशिष्टता (Specificity), (ii) एकात्मक रचना (Unitary composition), (iii) सीखने में सुविधा (Facilitation of Learning), (iv) स्थिरता (Consistency)।

उपरोक्त परिभाषाओं से अभिरुचि की निम्न विशेषताएँ पता चलती हैं।

(i) अभिरुचि व्यक्ति की किसी कार्य या व्यवसाय को करने की योग्यता का संकेत मात्र ही है।
(ii) यह वर्तमान वस्तु स्थिति है जिसका सम्बन्ध भविष्य से है।
(iii) ये एक विशेष आयु स्तर से पहले निर्मित नहीं होती।
(iv) अभिरुचि वंश तथा वातावरण का गुणनफल है। ये दोनों ही तत्त्व अभिरुचि को प्रभावित करते हैं।
(v) अभिरुचि पर शिक्षण, प्रशिक्षण और परिस्थिति का कुछ प्रभाव पड़ता है। लेकिन इनमें शीघ्रता से परिवर्तन नहीं होता।
(vi) अभिरुचि में संभावित योग्यता, कौशल तथा ज्ञान आदि में प्रवीणता प्राप्त करने की तत्परता तथा इन क्रियाओं को ग्रहण कर लेने के पश्चात् संतुष्टि है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रश्न 12. व्यक्तित्त्व का अर्थ, परिभाषाओं सहित स्पष्ट करें।
(Explain the meaning of personality with the help of definitions.)

उत्तर— अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions)—

'व्यक्तित्त्व' क्या है ? इसके बारे में अलग-अलग मनोवैज्ञानियों का अलग-अलग मत है। 'व्यक्तित्त्व' शब्द अंग्रेज़ी भाषा के 'पर्सनेल्टी' (Personality) शब्द का ही हिन्दी अनुवाद है। 'पर्सनेल्टी' (Personality) शब्द लातीनी भाषा के 'परसोना' (Persona) से विकसित हुआ है, जिसका अर्थ होता है—'मुखौटा' या 'नकली चेहरा'। प्राचीन काल में तथा एक आम या अशिक्षित व्यक्ति के लिये 'व्यक्तित्त्व' से अभिप्राय शारीरिक रचना, रंगरूप, वेशभूषा इत्यादि से था। बाहरी गुणों द्वारा प्रभावित करने वाला व्यक्ति ही सबसे अधिक प्रभावशाली माना जाता था। लेकिन व्यक्तित्त्व का अर्थ समझने के लिये या व्यक्तित्त्व का निर्धारण करने के लिये अनेक कारक या पक्ष अपना-अपना योगदान देते हैं।

आलपोर्ट (Allport) के अनुसार, 'व्यक्तित्त्व, व्यक्ति में उन मनोदैहिक व्यवस्थाओं का संगठन है जो वातावरण के साथ उसका अपूर्व समायोजन निर्धारित करती है।' **(Personality is the dynamic organisation with in individual of those psycho physical system that determine his unique adjustment to his environment.)**

वैलेनटीन (Valentine) के अनुसार, 'व्यक्तित्त्व जन्म जात और अर्जित प्रवृत्तियों का योग है।'
(Personality is the sum total of innate and acquired dispositions)

मन (Munn) के अनुसार, 'व्यक्तित्त्व एक व्यक्ति के गठन, व्यवहार के तरीकों, रुचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं और तरीकों का सबसे विशिष्ट संगठन है।
(Personality may be defined as the most characteristic integration of an individual's structures, modes of behaviour, interests, attitudes, capacities, abilities and aptitudes.)

बोरिंग (Boring) के अनुसार, 'व्यक्तित्त्व, व्यक्ति का अपने वातावरण के साथ अपूर्व और स्थाई समायोजन है।'
(Personality is an individual consistent adjustment to his behaviour.)

कैटल (Cattell) के अनुसार, "व्यक्तित्त्व जो किसी विशेष परिस्थिति में जो भी कार्य करता है, उसका प्रतिरूप ही व्यक्तित्त्व है।"
(Personility is that permits a prediction of what a person will do in a given situation.)

वारेन (Warren) के अनसुार, "व्यक्तित्त्व व्यक्ति का, विकास की किसी भी अवस्था में सम्पूर्ण मानसिक संगठन है।'
(Personality is the entire mental organisation of a human being at any stage of his development.)

रैक्सरोड (Rexroad) ने व्यक्तित्त्व को समाज द्वारा स्वीकृत विशेषताओं में एक सामंजस्य कहा है।
(Personality is the balance between socially approved traits.)

मार्टन प्रिंस (Morton Prince) के अनुसार, 'व्यक्तित्त्व, व्यक्ति के समस्त जन्मजात संस्थानों, आवेगों, प्रवृत्तियों, झुकावों एवं मूल प्रवृत्तियों और अनुभवों के द्वारा अर्जित संस्कारों एवं प्रवृत्तियों का योग है।"
(Personality is the sum total of the biological innate dispositions impulses, tendencies, aptitudes and instincts of the individual, and the dispositions and tendencies acquired by experiences.)

Scanned with OKEN Scanner

प्रश्न 13. व्यक्तित्त्व को प्रभावित करने वाले जैविक कारक बताएँ।
(Describe briefly Biological factors which affect personality?)

उत्तर– जैविक या वंशानुक्रम सम्बन्धी कारक (Biological and Hereditary Factors)—इन कारकों का सम्बन्ध व्यक्ति के जैविक या वंशानुक्रम पक्ष से होता है। ये कारक जन्मजात होते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं–

(i) **शारीरिक संरचना (Physical Structure or Physique)**–किसी भी व्यक्ति के शरीर की रचना वंशानुक्रम (Heredity) पर आधारित होती हैं। शरीर की रचना के अन्तर्गत रंग (Complextion), कद, भार, शारीरिक दोष, शारीरिक स्वास्थ्य आदि शामिल किये जाते हैं। किसी भी व्यक्ति का रंग रूप, कद, भार इत्यादि जन्मजात होते हैं। इस प्रकार शरीर की रचना व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को किसी न किसी ढंग से प्रभावित करती है।

(a) **रंग (Complextion)**–व्यक्ति का रंग-रूप उसके व्यक्तित्त्व में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। गोरा रंग आकर्षक व्यक्तित्त्व के लिये एक आवश्यक तत्त्व है। काले रंग वाले व्यक्ति का अक्सर मज़ाक ही उड़ता है।

(b) **कद एवं भार (Height and Weight)**–रंग-रूप की तरह व्यक्ति का कद और भार भी व्यक्तित्त्व के आवश्यक तत्त्व हैं। लम्बे कद के व्यक्ति का व्यक्तित्त्व प्रभावशाली माना जाता है। ठिगने (Dumpy) कद वाले व्यक्तित्त्व का भी मज़ाक उड़ता है। संतुलित कद, भार, रंग-रूप वाला व्यक्ति आत्म-विश्वास से भरा होता है तथा आकर्षक व्यक्तित्त्व का स्वामी होता है।

(c) **शरीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)**–स्वास्थ्य अच्छे व्यक्तित्त्व की जड़ है। यदि व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वास्थ है तो उसका व्यक्तित्त्व भी उत्तम होगा। अस्वस्थ व्यक्ति का व्यक्तित्त्व कभी भी आकर्षक या प्रभावशाली नहीं हो सकता।

(d) **शारीरिक दोष (Physical Defects)**–शारीरिक दोष भी व्यक्तिके व्यक्तित्त्व के विकास में बाधा डालते हैं। यदि ये दोष जन्मजात है तो इनका प्रभाव और भी हानिकारक हो सकता है। जैसे, गूंगापन, लंगड़ापन, अन्धापन, बहरापन। शारीरिक दोष युक्त व्यक्तियों को समाज के अन्य सदस्य पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करते।

(ii) **लिंग (Sex)**–भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में यदि देखा जाये तो व्यक्तित्त्व पर 'लिंग' (Sex) का भी बहुत प्रभाव देखने में आया है। भारतीय संस्कृति में लड़कियों के व्यक्तित्त्व के विकास की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। लड़कियों पर कई पाबन्दियाँ लगा दी जाती हैं और परिणामस्वरूप उनको व्यक्तित्त्व की जन्मजात शक्तियाँ दब जाती थीं तथा व्यक्तित्त्व उभर कर सामने नहीं आता था।

(iii) **बुद्धि (Intelligence)**–बुद्धि को जन्मजात माना गया है। बुद्धि व्यक्तित्त्व का एक आवश्यक तत्त्व है। यदि किसी व्यक्ति का आकर्षक शरीर, रंग गोरा और ऊँचा कद है, लेकिन बुद्धि का स्तर निम्न है तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसका व्यक्तित्त्व उत्तम नहीं कहा जा सकता। बुद्धिहीन व्यक्ति से सभी लोग दूर-दूर ही रहेंगे, जिससे उस व्यक्ति में हीन भावना जागृत होने का भय रहता है।

(iv) **नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ (Endocrine or Ductless Glands)**–मानव के शरीर में कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं जो बिना किसी नलिका के होती हैं और इन ग्रन्थियों में से कुछ ऐसे हारमोन (Hormones) बनकर निकलते हैं जो व्यक्ति के शरीर के विभिन्न कार्यों को नियंत्रित करते हैं और व्यक्तित्त्व के कई पक्षों को प्रभावित करते हैं।

(v) **शरीर रसायन (Body Chemistry)**–हमारे शरीर में कई रसायन भी होते हैं जो व्यक्तित्त्व के विकास के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। शरीर में जो भी प्रणाली कार्य कर रही है शरीर को जो भी शक्ति मिल रही है वह शरीर में चल रही रासायनिक प्रक्रिया का ही

Scanned with OKEN Scanner

परिणाम है। उदाहरणार्थ, शर्करा को ग्लूकोज़ में परिवर्तित करना, भोजन को पचाना, साँस क्रिया द्वारा आक्सीजन को अन्दर लेकर जाना तथा कार्बनडाइआक्साईड को बाहर निकालना आदि।

प्रश्न 14. व्यक्तित्त्व को प्रभावित करने वाले वातावरण सम्बन्धी कारकों का संक्षिप्त वर्णन करें।
(Describe briefly the environmental factors which effect personality.)

उत्तर– **वातावरण सम्बन्धी कारक (Environmental Factors)**––मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार हमारे कुछ व्यवहार जन्मजात होते हैं तथा कुछ व्यवहारों को वातावरण से अर्जित किया जाता है। अतः वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्त्व पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। वैसे भी जन्म से ही व्यक्ति एक निश्चित वातावरण में रहता है, जिसको जैसा वातावरण मिलेगा, उसकी वैसी ही विशेषताएँ विकसित होंगी।

(i) **सामाजिक वातावरण (Social Environment)**–सामाजिक वातावरण का बालक के व्यक्तित्त्व पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।
हम सामाजिक वातावरण में रहकर ही वहाँ की, रीति-रिवाज़, खान-पान की विधि, व्यवहार की विधि आदि अर्जित करते हैं। इस प्रकार, वास्तव में समाज ही व्यक्तित्त्व का निर्माण करता है।

(ii) **सांस्कृतिक वातावरण** (Cultural Environment)–मनुष्य के व्यक्तित्त्व के विकास में उसकी सभ्यता तथा रहन-सहन की ढंग भी विशेष योगदान देता है। व्यक्तित्त्व पर सभ्यता की अमिट छाप रहती है।

(iii) **भौगोलिक या भौतिक वातावरण (Geographical or Physical Environment)** –व्यक्तित्त्व के विकास में भौगोलिक अथवा भौतिक वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। जिस स्थान की जलवायु ठंडी होती है वहाँ के लोग गोरे, सुन्दर, स्वस्थ एवं बुद्धिमान होते हैं। लेकिन गर्म जलवायु में रहने वाले लोग काले, आलसी तथा मंद-बुद्धि होते हैं।

(iv) **पारिवारिक वातावरण (Family Environment)**–व्यक्तित्त्व को प्रभावित करने वाले कारकों में से परिवार का वातावरण भी एक शक्तिशाली कारक माना गया है। घर का वातावरण निम्नलिखित कारकों से मिलकर बनता है–
   (a) **माता-पिता का बच्चे के प्रति दृष्टिकोण (Parental Attitude)**
   (b) **माता-पिता की योग्यताएँ (Abilities of Parent)**
   (c) **परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्त्व और व्यवहार (Behaviour and personality of family members)**
   (d) **परिवार की सामाजिक और आर्थिक स्थिति (Socio-economic status of the family)**
   (e) **परिवार का आकार (Size of the family)**

(v) **स्कूल का वातावरण (School Environment)**–परिवार के पश्चात् बच्चा स्कूल में अधिकतर समय व्यतीत करता है। अतः स्कूल का प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्त्व पर पड़ना आवश्यक है। स्कूल में रहकर अनुशासन, नैतिक मूल्यों आदि से बच्चों का व्यक्तित्त्व अत्यधिक प्रभावित होता है। जो बातें बच्चे स्कूल में रहकर सीखते हैं, उन बातों को हम घर पर भी नहीं सिखा पाते।

(vi) **आस पड़ौस (Neighbourhood)**–परिवार तथा स्कूल की भाँति व्यक्तित्त्व आस-पड़ौस के प्रभाव से भी अछूता नहीं रह सकता। बच्चे के आस-पड़ौस में रहने वाले लोग सुशिक्षित हैं तथा सभ्य हैं तो उस पड़ौस में पनप रहे अन्य बच्चों का व्यक्तित्त्व अवश्य प्रभावित होगा।

(vii) **धार्मिक संस्थाएँ (Religious Institutions)**–धार्मिक संस्थाओं का प्रभाव भी व्यक्तित्त्व पर पड़ता है। जैसे मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्च इत्यादि।

Scanned with OKEN Scanner

(viii) मित्र मंडली (Friends)—बच्चा काफी समय अपनी मित्र मंडली में रहकर व्यतीत करता है, अतः मित्र मंडली के सदस्यों का व्यक्तित्त्व भी बालक के व्यक्तित्त्व के विकास को प्रभावित करता है।

(ix) अन्य संस्थाएँ (Other Agencies)—उपरोक्त संस्थाओं एवं कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य संस्थाएँ भी बालक के व्यक्तित्त्व को प्रभावित करती हैं, जैसे कई प्रकार की सामाजिक संस्थाएएँ, क्लब, संप्रेषण के साधन जैसे रेडियो, टेलीविज़न, फिल्म इत्यादि, साहित्यिक एवं ललित कलाओं से जुड़ी संस्थाएँ, प्रचार के साधन, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें तथा विविध प्रकार का साहित्य इत्यादि।

प्रश्न 15. व्यक्तित्त्व को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारकों का वर्णन करें।
(Describe psychological factors which affect personality.)

उत्तर— मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)—

(i) इच्छा शक्ति (Will Power) —इच्छा शक्ति एक अच्छे व्यक्तित्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। संवेगात्मक संतुलन के लिये सुदृढ़ इच्छा शक्ति का होना बहुत आवश्यक होता है। दृढ़ इच्छा शक्ति से अभिप्राय है कि जब व्यक्ति को कुछ भी ठान लेते हैं, उसे करके या प्राप्त करके ही छोड़ते हैं।

(ii) आकांक्षा स्तर एवं उपलब्धि अभिप्रेणा (Aspiration Level and Achievement Motivation) —व्यक्ति की आकांक्षाओं का स्तर और उसकी उपलब्धि अभिप्रेरणा व्यक्तित्त्व के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उपलब्धि के लिये अर्थात् कुछ प्राप्त करने के लिये अभिप्रेरित रहना एक अच्छे व्यक्तित्त्व की ओर संकेत करता है। यदि उपलब्धि अभिप्रेरणा भी स्तर बहुत निम्न है तो वह व्यक्ति निकम्मा, सुस्त तथा आलसी व्यक्तियों के वर्ग में आता है।

(iii) रुचियाँ एवं दृष्टिकोण (Interests and Attitudes)—व्यक्ति की रुचियाँ और दृष्टिकोण उसके व्यवहार करने के तरीकों तथा व्यक्तित्त्व पर बहुत प्रभाव डालते हैं। हमारे हर कार्य तथा व्यवहार में रुचि का कुछ न कुछ अंश अवश्य होता है, जिन चीज़ों के प्रति हमारी सकारात्मक दृष्टिकोण होता है उनमें हमारी रुचि होती है तथा जिनके प्रति हमारा नकारात्मक दृष्टिकोण होता है उनमें हमारी रुचि नहीं होती।

(iv) बुद्धि तथा मानसिक विकास (Intelligence and Mental Development)—व्यक्तित्त्व के निर्धारण में उसकी बुद्धि और मानसिक विकास का बहुत अधिक हाथ होता है। उसका व्यवहार उसकी मानसिक क्षमताओं पर निर्भर करता है।

(v) संवेगात्मक विशेषताएँ (Emotional Characteristics)—व्यक्ति की संवेगात्मक विशेषताएँ तथा उसका स्वभाव उसके व्यक्तित्त्व को दिशा प्रदान करती हैं। सकारात्मक संवेग तथा नकारात्मक संवेगों का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्त्व पर पड़ता है। एक क्रोधी व्यक्ति का स्वभाव एक शाँन्त व्यक्ति से भिन्न होगा।

(vi) अन्य मनोवैज्ञानिक कारक (Other Psychological Factors)—उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक कारक भी है जो व्यक्तित्त्व को प्रभावित करते हैं, जैसे अर्जित रुचियाँ (Acquired Interests), चरित्र (Character), तर्क, चिंतन, कल्पना सम्बन्धी क्षमताएँ, समायोजन सम्बन्धी योग्यताएँ इत्यादि।

प्रश्न 17. व्यक्तित्त्व के प्रकारों की संक्षिप्त चर्चा करें।
(Describe briefly the types of personality.)

उत्तर— विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के गुणों के आधार पर उसे व्यक्तित्त्व का वर्गीकरण किया है, जो निम्नलिखित हैं—

Scanned with OKEN Scanner

1. जंग द्वारा वर्गीकरण (Classification by Jung)
   (i) बहिर्मुखी (Extroverts)–ये लोग सामाजिक, मिलनसार, संतुष्ट, प्रसन्नचित, चिन्ताओं से मुक्त होते हैं। वे हमेशा बाहरी विश्व की ओर उन्मुख रहते हैं। ये व्यक्ति सर्वदा दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं। ये व्यावहारिक जीवन में अत्यधिक निपुण होते हैं। बहिर्मुखी व्यक्ति आशावादी तथा अवसरवादी स्वभाव के होते हैं। इनमें लचीलापन और समायोजन की योग्यता होती है।
   (ii) अन्तर्मुखी (Introvert)–यह लोग बहुर्मुखी व्यक्तित्व वाले लोगों के विपरीत होते हैं। ये अपेक्षाशील, आत्मकेन्द्रित तथा असामाजिक होते हैं। ये हंसी मजाक नहीं पसंद करते हैं। कार्य के प्रति कर्म को अधिक महत्त्व देते हैं। ये केवल अपने आंतरिक संसार में ही व्यस्त रहते हैं। ये दूसरों को खुश रखने का प्रयत्न नहीं करते। दिन में सपने देखना इनकी मुख्य विशेषता है।
   (ii) मध्यमुखी (Ambivert)–मध्यमुखी वे व्यक्ति होते हैं जो न पूर्ण रूप से अन्तर्मुखी होते हैं और न बहिर्मुखी। ऐसे व्यक्तियों में कुछ गुण अन्तर्मुखी वाले तथा कुछ गुण बहिर्मुखी व्यक्तित्त्व वाले होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इन दोनों का मिश्रण होता है।
2. शैल्डन का वर्गीकरण (Sheldon's Classification)–शारीरिक आकार के आधार पर शैल्डन ने व्यक्तियों को तीन भागों में बांटा है जो निम्न प्रकार से हैं–
   (i) गोताकार (Endomorphic)–इन लोगों का शरीर मोटा, भारी तथा गोलाकार होता है। इनका पेट बड़ा होता है।
   (ii) आयताकार (Mesomorphic)–इन श्रेणी के लोगों की हड्डियां तथा मांसपेशियां मजबूत तथा काफी शक्तिशाली होती हैं। इन व्यक्तियों का शरीर आयताकार होता है।
   (iii) लम्बाकार (Ectomorphic)–इनका कद तथा हड्डियां लम्बी होती हैं। ये कोमल, कमजोर शरीर के मालिक होते हैं।
3. क्रैशमर द्वारा वर्गीकरण (Classification by Kretschmer)
   (i) पिकनिक (Pyknic)–ये लोग छोटे-मोटे आराम प्रिय, सामाजिक उन्माद, विषादयुक्त होते हैं। ये स्वभाव से प्रसन्नचित्त एवं मिलनसार होते हैं।
   (ii) ऐथेलिटिक (Athletic)–ये लोग सुडौल, तन्दुरुस्त, व्यवहार में कुशल, सामाजिक व सक्रिय होते हैं। ये स्वभाव के व्यवहार कुशल और क्रियाशील होते हैं।
   (iii) ऐस्थेलेटिक (Aesthetic)–इन लोगों का शरीर पतला-दुबला और कंधे छोटे होते हैं। इनका स्वभाव आत्मकेन्द्रित, भावुक, स्वप्न होता है। ये एकान्तप्रिय होते हैं।
   (iv) डिस्प्लैस्टिक (Displastic)–जो लोग ऊपरी तीनों में से किसी में से भी नहीं आते या जिनमें मिले-जुले गुण होते हैं, उसको हम डिस्प्लैस्टिक (मिश्रित) में रख सकते हैं।
4. आइजेंक का वर्गीकरण (Eysenck Classification)
   (i) बहिर्मुखी (Extrovert)–ये लोग सामाजिक, मिलनसार, संतुष्ट, प्रसन्नचित्त व चिन्ताओं से मुक्त होते हैं।
   (ii) अन्तर्मुखी (Introvert)–ये व्यक्ति लज्जाशील, एकान्तप्रिय, निराशावादी तथा असामाजिक होते हैं। ये चिन्तन और लेखन में रुचि रखते हैं।
   (iii) साइकोटिसिज्म (Psychoticism)–इस वर्ग में आने वाले व्यक्ति समाज विरोधी होते हैं। वे लोग दूसरों की परवाह नहीं करते।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) न्यूरोटिसिज्म (Neuroticism)–ये लोग मानसिक रोगी होते हैं। वे अपने चारों ओर के वातावरण में कठिनाइयों का अनुभव करते हैं। इस बीमारी के निम्नलिखित लक्ष्य हैं अथवा इन लोगों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

(a) चिन्ता और भय
(b) आत्मकेन्द्रित
(c) अन्तर्दृष्टि का अभाव
(d) असन्तोष और प्रसन्नता
(e) तनाव और चिड़चिड़ापन
(f) असफलता
(g) स्वयं की पहचान का अभाव

प्रश्न 18. अधिगम असमर्थता से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– अधिगम असमर्थता (Learning Disability)–

अर्थ (Meanings)–अधिगम असमर्थता *(Learning Disability)* का सम्बन्ध सीखने की समस्याओं से होता है। सुनने, सोचने, बोलने, पढ़ने, लिखने या गणितीय गणना करने सम्बन्धी अपूर्ण *(Imperfect)* योग्यता के कारण होती है। ये अयोग्ताएं प्राथमिक रूप से दृष्टि बाधिता, श्रवण बाधिता, मानसिक मंदता, पर्यावरणीय या अर्थशास्त्रीय दोषों के कारण नहीं होती बल्कि ये दोष समझने और भाषा के प्रयोग करने में मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण होते हैं।

अधिगम असमर्थता के ग्रस्त बहुत से बच्चे होते हैं। यह समस्या आमतौर पर निम्न कारकों के मेल से होती है–

(i) बुद्धि का निम्न स्तर
(ii) मानसिक मंदता
(iii) दृष्टि बाधिता *(Visual Impairment)*
(iv) निम्न स्तर के निर्देशन आदि।

अधिगम असमर्थता को परिभाषित करने के लिए निम्नलिखित दो उपगम हैं–

(a) कारण-केन्द्रित उपागम *(Cause Oriented Approach)*
(b) प्रभाव-केन्द्रित उपागम *(Effect-oriented Approach)*

कारण केन्द्रित उपागम में प्रेक्षित व्यवहार के कारण की पहचान की जाती है, जबकि प्रभाव केन्द्रित उपागम में प्रेक्षित व्यवहार का विश्लेषण और संशोधन किया जाता है।

कीरक *(Kirk, 1962)* के अनुसार, "अधिगम-असमर्थता वाणी, भाषा, पठन, स्पैलिंग, लिखने या गणित की एक या अधिक प्रक्रियाओं का विलम्बित विकास है जो संभवतः सैरीब्रल अकार्यपरकता के कारण या संवेगात्मक या व्यवहारात्मक विचलन *(Disturbance)* के परिणामस्वरूप होता है, न कि मानसिक मंदता, संवेदनहीनता, सांस्कृतिक या निर्देशनात्मक कारकों से।

(Learning disability refers to a retardation, disorder or delayed development in one or more of the processes of speech, language, reading, spelling, writing or arithmatic resulting from a possible cerebral dyfunction/and or emotional or behvioural disturbance and not from mental retardation, sensory deprivation, cultural or instructional factors."

कीरक की यह प्रभाव-केन्द्रिय परिकरण है। कीरक (1963) ने अपने एक भाष्य में यह स्पष्ट कर दिया कि वह अधिगम-असमर्थ के वर्ग में उन बच्चों को शामिल नहीं कर रहे जो मानसिक मंदता के कारण या दृष्टि बाधिता या श्रवण बाधिता के कारण असमर्थ *(Disabled)* हैं। सन् 1960 में न्यूयार्क शहर में अभिभावकों की एक सभा में कीरक *(Kirk)* ने 'असमर्थता' *(Disability)* शब्द प्रस्तावित किया है। उन दिनों में ऐसे बच्चों को घायल मस्तिष्क *(Brain Injured)*, धीमी गति से सीखने वाले, प्रत्यक्ष रूप से विकलांग *(Perceptually Handicapped)* आदि नामों से पुकारा जाता था। लेकिन 'अधिगम-असमर्थ' *(Learning Disabled)* शब्द का प्रयोग किये जाने का सभी माता-पिता के स्वागत किया।

Scanned with OKEN Scanner

श्न 19. अधिगम असमर्थता के क्या कारण है?

त्तर– **अधिगम-असमर्थता के कारण (Causes of Learning Disability)**–यह बहुत ही कठिन होता है कि बच्चों की अधिगम-असमर्थता के विशेष कारणों का विशेषीकरण किया जाये। संभावित कारणों को हम निम्नलिखित तीन वर्गों में बांट सकते हैं–

1. आंगिक और जैविक कारक *(Organic and Biological Factors)*
2. जननिक कारक *(Genetic Factors)*
3. पर्यावरणीय कारक *(Environmental Factors)*

1. **आंगिक और जैविक कारक (Organic and Biological Factors)**—कई विद्वानों का मत है कि अधिगम असमर्थी बच्चों में केन्द्रीय नाड़ी संस्थान *(Central Nervous System)* में दोष *(Dysfunction)* आ जाता है या वह कार्य नहीं करता। उनका मस्तिष्क कुछ कम कार्य करता है। लेकिन कुछ विद्वान यह बात मानने को तैयार नहीं हैं। इस सम्बन्ध में किया गया प्रारम्भिक शोध कार्य पुराने तरीकों से किये गये थे लेकिन आजकल मस्तिष्क की क्रियाओं का मूल्यांकन बहुत विकसित तकनीक से किया जाता है। केन्द्रीय नाड़ी संस्थान के दोषयुक्त होने के लिये बुखार, चोट, समय के पहले जन्म तथा जन्म के समय लापरवाही आदि परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती हैं।
2. **जननिक (Genetic Factors)**—ऐसे बहुत से प्रमाण हैं जो इस बात की ओर संकेत करते हैं कि अधिगम असमर्थता एक परिवार से दूसरे परिवार में स्थानान्तरित होती है। पर्याप्त अध्ययन यह बताते हैं कि अधिगम असमर्थताओं का कारण वंशानुक्रम *(Heredity)* होता है, विशेषकर गंभीर अधिगम असमर्थता। जैसे अध्ययन यह बताते हैं कि जब जुड़वाँ बच्चों में से एक बच्चा पठन असमर्थी हो तो दूसरे में भी पठन असमर्थता *(Reading Disability)* की संभावना होती है। लेकिन ऐसा तभी होता है जब ये जुड़वाँ समरूप जुड़वाँ *(Identical twins)* होते है। बन्धुत्व जुड़वाँ *(Fraternal twins)* में ऐसा नहीं होता।
3. **पर्यावरणीय कारक (Environmental Factors)**— पर्यावरणीय कारकों की सूची तैयार करना बहुत ही कठिन होता है। पर्यावरणीय परिस्थितियों के शिकार बच्चे अधिगम समस्याओं का अधिक सामना करते हैं। पर्यावरणीय कारकों में प्रमुख कारक है–खराब शिक्षिण। विद्वानों का मत है कि यदि अध्यापक बच्चों के सीखने की समस्याओं की ओर स्कूल के प्रारम्भिक दिनों में ही ध्यान दे तो कुछ अधिगम असमर्थताओं को टाला जा सकता है। अधिगम असमर्थता के लिये बच्चों का शारीरिक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक पर्यावरण भी उत्तरदायी होता है। उदाहरणार्थ, नशीली दवाओं का सेवन, आवश्यकता से अधिक भावुक होना, कुपोषण, सिर पर चोट का लगना तथा दुर्घटना आदि।

प्रश्न 20. धीमी गति से सीखने वाले बच्चों के बारे में आप क्या जानते हैं?

उत्तर– **अर्थ (Meaning)**—धीमी गति से सीखने वाले बच्चे वे होते हैं जिनकी सीखने की गति बहुत ही धीमी होती है। ऐसे बच्चों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। जब अध्यापक इनकी ओर ध्यान देने लगता है तब अन्य बच्चों को हानि उठानी पड़ती है। तब अन्य बच्चों के लिए शिक्षण नीरस बनने लगता है तथा अधिगम विकलांग बच्चे हर कार्य में पीछे रह जाते हैं। अन्य बच्चों के साथ ये नहीं चल पाते। कक्षा में साधारण से साधारण कार्य में भी उनकी कोई प्रगति नहीं होती। पढ़ाई में तो ये बहुत ही कमज़ोर रहते हैं। परीक्षा-परिणाम संतोषजनक नहीं होते। ऐसे बच्चे और बच्चों से विचलित *(Deviated)* हो जाते हैं। यदि ऐसे बच्चों की समय पर पहचान कर ली जाये तो उनमें उपयोगी नागरिक बनने की क्षमता होती है तथा वे प्रभावी जीवन

Scanned with OKEN Scanner

व्यतीत कर सकते हैं। ऐसे बच्चों की पढ़ने और गणित तर्क में दुर्बलताएं होती हैं। अपनी कमियों के कारण ये बच्चे स्कूल से भागने लगते हैं।

डिस्लेकिसया ग्रस्त बालक (Dyslexies)—डिस्लेक्सिया ग्रस्त बालक वे बालक होते हैं जिनमें लिखे गए शब्दों को पहचानने तथा समझने में कठिनाई महसूस होती है। उनका पठन कार्य काफी धीमा होता है। उनमें पठन-लेखन तथा गिनती सम्बन्धी अधिगम कठिनाई होती है। इससे बच्चों के पठन स्तर तथा बौद्धिक स्तर में एक अन्तराल पैदा हो जाता है।

धीमी गति से सीखने वाले तथा डिस्लेकिसया ग्रस्त बच्चों की विशेषताएँ (Characteristics of Slow Learner and Dyslexies Children)—अधिगम विकलाँग या धीमी गति से सीखने वाले तथा डिस्लेकिसया बच्चों की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं—

1. इनमें मानसिक केन्द्रीकरण *(Mental Concentration)* कम होता है।
2. ऐसे बच्चों में शब्द भंडार भी सीमित होता है।
3. उनका ध्यान-विस्तार *(Span of attention)* भी कम होता है।
4. ये बच्चे मानसिक कार्य की अपेक्षा शारीरिक कार्य अधिक अच्छी तरह से कर सकते हैं।
5. इनमें समस्या-समाधान, चिन्तन या तर्क की योग्यता नहीं होती।
6. इनमें सामान्य बुद्धि *(Common Sense)* और निर्णय करने की क्षमता कम होती है।
7. इन बच्चों में धीमी गति से सीखने की आदत होती है तथा इनमें विस्मृत्ति *(Forgetting)* भी शीघ्र और अधिक होती है।
8. इनमें सृजनात्मकता *(Creativity)* और मौलिकता का अभाव होता है।
9. शब्दों और विचारों के बीच सम्बन्ध बनाने की गति बहुत धीमी होती है।
10. नई परिस्थितियों में परिचित तत्त्वों को ढूँढने में भी ये असमर्थ होते हैं।

प्रश्न 21. प्रतिभाशाली बालकों के बारे में आप क्या जानते हैं?

उत्तर— **प्रतिभावान बालक का अर्थ (Meaning of Gifted Children)**—वह बालक जिसकी मानसिक आयु अपने आयु वर्ग के अनुपात में औसत से बहुत अधिक हो अथवा ऐसा बालक अपने आयु के बालकों से साधारण अथवा विशेष योग्यता में श्रेष्ठ हो, उसे प्रतिभावान बालक कहा जाता है। जैसे—अगर कोई बालक अपेक्षाकृत कम आयु में ही कोई नया चमत्कार या रिकॉर्ड *(Record)* कायम करता है तो यह बालक प्रतिभावान कहलाएगा।

कॉलस्निक (Kolesnik) के अनुसार, **"वह हर बच्चा, जो अपने आयु-स्तर के बच्चों में किसी योग्यता में अधिक हो और जो हमारे समाज के लिए कुछ महत्वपूर्ण नई देन दे, प्रतिभावान कहलाता है।"** *(That every child who, in his age group, is superior in some ability which may make him an out standing contributor to the welfare and quality of living in our society is known as gifted.)*

विट्टी (Witty) के अनुसार, **"प्रतिभावान *(Gifted)* बच्चे वे बच्चे होते हैं, जिनका मानवीय कोशिश में कार्य सदा शानदार होता है और जो पढ़ाई में उत्तम होते हैं।"** *(Gifted children are those children whose performance in a worthwhile human endeavour is consistently remarkable and those who are academically superior.)*

डॉ० अब्दुज रॉफ (Dr. Abdul Rauf) के अनुसार, प्रायः उच्च बुद्धिलब्धि *(High I.Q.)* को प्रतिभाशाली होने का संकेत माना जाता है। अतः 'प्रतिभावान बालक' शब्द का अभिप्राय बालक की उच्च बुद्धि लब्धि से लिया जाता है। *(The term 'gifted child' has been commonly taken to means child with a high I.Q.)*

Scanned with OKEN Scanner

प्रेम पसरीचा (Prem Pasricha) ने प्रतिभावान बालक को इस प्रकार से परिभाषित किया है, **"जो सामान्य बुद्धि की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रतीत हो या वह उन क्षेत्रों में जिनका अधिक बुद्धि-लब्धि से सम्बन्धित होना जरूरी नहीं, अति विशिष्ट योग्यताएँ रखता हो।"** *(The gifted child is the one who exhibits superiority in intelligence or the one who is in possession of special abilities of high order in the fields which are not necessarily associated with high intelligence quotient.)*

हैविग्हर्सट (Havighurst) के अनुसार, **'प्रतिभावान बालक वह है, जो निरन्तर किसी भी कार्य क्षेत्र में अपनी कार्यकुशलता का परिचय देता है।'** *(The talented or gifted child is one who shows consistently remarkable perfomance any worthwhile line of endeavour.)*

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के मत का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रतिभावान बालक केवल बुद्धि में उत्तम नहीं होते बल्कि शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक शिक्षा तथा अपनी आयु के बालकों से कई और विशेषताओं में भी उत्तम होते हैं।

टरमन के अनुसार, 140 बुद्धि-लब्धि से ऊपर वाले बालक *(I.Q. > 140)* प्रतिभावान माने जा सकते हैं।

प्रश्न 21. स्वाभाविक निरीक्षण से क्या अभिप्राय है?

उत्तर– **स्वाभाविक निरीक्षण का अर्थ (Meaning of Naturalistic Observation)**–प्राकृतिक निरीक्षण का लक्ष्य होता है–बच्चों के बारे में जैसा वे वास्तव में व्यवहार करते हैं, उसके बारे में विस्तृत प्रमाण प्राप्त करना और वह भी उसके वास्तविक पर्यावरण (Real World Setting) में जिसमें वे रहते हैं।

स्वाभाविक निरीक्षण के क्षेत्र को अध्ययन विधि (Field Study Method) या क्रमबद्ध प्रेक्षण (Systematic Observation) का नाम भी दिया जाता है, जब स्वाभाविक परिस्थितियों में व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। तब ऐसे प्रेक्षण या अवलोकन या निरीक्षण को 'स्वाभाविक प्रेक्षण या अवलोकन या निरीक्षण' कहा जाता है। इस विधि का प्रयोग मुख्यतः पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करने हेतु किया जाता है, जैसे बन्दर, बिल्ली, चींटियाँ इत्यादि के व्यवहारों का अध्ययन उनके स्वाभाविक रूप से रहने के स्थान पर जाकर किया जाता है। इस प्रकार के अवलोकन का प्रयोग कभी-कभी मनुष्य के शिशुओं के व्यवहार के अध्ययन के लिए भी किया जाता है। इस प्रकार के व्यवहार का अध्ययन बिना किसी परिवर्तन या जोड़-तोड़ (Manipulation) के किया जाता है। साधारण शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जो व्यवहार अपने वास्तविक रूप में घटित होते हैं, उनका अध्ययन उसी रूप में किया जाता है।

प्रश्न 23. साक्षात्कार विधि की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– साक्षात्कार विधि की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) **दो या दो से अधिक व्यक्ति (Two or more than two persons)**–साक्षात्कार प्रविधि की मुख्य विशेषता है इसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों का परस्पर आमने-सामने वार्तालाप होता है, अकेला व्यक्ति अपना ही साक्षात्कार नहीं कर सकता है। इस कारण साक्षात्कारकर्ता और साक्षात्कारदाता का होना आवश्यक है।

(2) **आमने-सामने के सम्बन्ध (Face to face relations)**–साक्षात्कार प्रविधि की प्रमुख विशेषता है कि इसमें साक्षात्कारकर्ता *(Interviwer)* तथा साक्षात्कारदाता *(Interviewee)* के द्वारा प्रत्यक्ष आमने-सामने के प्राथमिक सम्बन्ध *(Direct face to face primary relations)* स्थापित किये जाते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(3) विशिष्ट उद्देश्य (Specific purpose)–साक्षात्कार की तीसरी प्रमुख विशेषता 'विशिष्ट उद्देश्य' *(Specific purpose)* है, अर्थात् दो या दो से अधिक व्यक्तियों के प्रत्येक वार्तालाप को साक्षात्कार नहीं कहा जा सकता, बल्कि साक्षात्कार एक ऐसी उद्देश्यपूर्ण अन्तःक्रिया है, जिसमें दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा सम्बन्ध किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही स्थापित किये जाते हैं।

(4) सामग्री संकलन (Data Collection)–साक्षात्कार प्रविधि का प्रमुख उद्देश्य जो कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, यह है कि साक्षात्कार की प्रत्येक गतिविधि एवं वार्तालाप के द्वारा सामाजिक अनुसंधानों तथा सामाजिक अध्ययनों के लिये सामग्री का संकलन किया जाता है।

प्रश्न 24. बच्चों के बारे में परावर्तक पत्रिका किसे कहते हैं? इसका क्या महत्त्व है?

उत्तर– **बच्चों से सम्बन्धित परावर्तक पत्रिका का अर्थ (Meaning of Reflective Journal about Children)**–बच्चों से सम्बन्धित परावर्तक पत्रिका से अभिप्राय होता है–वह नोटबुक या कागज़ का टुकड़ा जिसका प्रयोग बालक अपने स्वयं के विचारों को लिखने हेतु इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार के पत्रिका-लेखन से बालकों में अधि-संज्ञानात्मक कौशलों (Meta Cognitive Skills) के विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस पत्रिका द्वारा बालक स्वयं का मूल्यांकन करने तथा यह मालूम करने के लिये किया जाता है कि वे क्या जानते हैं।

परावर्तक पत्रिका का महत्त्व (Importance of Reflective Journal)–परावर्तक पत्रिका का महत्त्व या आवश्यकता निम्नलिखित है–

(i) परावर्तन पत्रिकाएं विद्यार्थियों को मुक्त ढाँचे (Open-ended format) में लेखन कौशलों के अभ्यास के अवसर प्रदान करती हैं।

(ii) सबसे अधिक शक्तिशाली अधिगम तब होता है जब बालक स्वयं का मूल्याकंन स्वयं करते हैं तथा स्वयं का परावर्तन (Reflect) करते हैं।

(iii) समस्याओं, गलतफहमियों और भ्रमों (Misunderstandings and Confusions) को स्पष्ट करने के लिये परावर्तक क्रियाएँ (Reflective Process) आवश्यक होती हैं। इस प्रकार के लेखन से यह उद्देश्य पूरा होता है।

(iv) परावर्तन पत्रिकाएँ विद्यार्थियों के मस्तिष्क की खिड़कियों के दरवाज़ों को खोलने का कार्य करती हैं।

(v) परावर्तन पत्रिकाएँ अध्यापकों को विद्यार्थियों की ओर ध्यान देने के अवसर प्रदान करती हैं।

(vi) ये विद्यार्थियों के बारे में अतिरिक्त सूझबूझ प्रदान करने के लिये एक महत्त्वपूर्ण-उपकरण(Tool) प्रदान करती हैं।

(vii)परावर्तन पत्रिका इसलिये भी आजकल महत्त्वपूर्ण मानी जाती है ताकि इनसे बालक को यह ज्ञान हो जाये कि वे क्या कुछ जानते हैं तथा वह अपने बोध (understanding) में वृद्धि करने के लिए क्या कुछ कर सकते हैं या करना चाहते हैं?

(viii) कम सफल अधिगमकर्ता या बालकों को यह भी मालूम पड़ जाता है कि उनके मस्तिष्क को किन-किन आदतों के विकास की आवश्यकता है।

(ix) बालक ने जो कुछ भी स्वयं का मूल्यांकन करके यह खोजा है कि उन्हें क्या कुछ आता है, उसका अपने अधिगम में सुधार लाने के लिये योजना बनाने में प्रयोग किया जा सकता है।

प्रश्न 25. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– **आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के प्रकार (Types of Anecdotal Records)**–आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के निम्न स्वरूप होते हैं–

1. **पहली प्रकार (First Type)**–इस प्रकार के अभिलेख के अन्तर्गत विद्यार्थी के व्यवहार का वस्तुनिष्ठ (Objective) अध्ययन होता है तथा इसमें किसी भी तरह के विचारों का समावेश नहीं किया जाता।

Scanned with OKEN Scanner

2. **दूसरी प्रकार (Second Type)**—इस प्रकार के अभिलेख में विद्यार्थी के व्यवहार के वर्णन के साथ-साथ संक्षिप्त-सी टीका-टिप्पणी भी लिखी जाती है।
3. **तीसरी प्रकार (Third Type)**—तीसरी प्रकार में विद्यार्थी के व्यवहार का विवरण एवं टीका-टिप्पणी के अतिरिक्त उसमें उपचार का वर्णन भी होता है।
4. **चौथी प्रकार (Fourth Type)**—इस चौथी प्रकार में व्यवहार का वर्णन, उसके गुण व दोषों के साथ होता है और भावी जीवन में उपचार के लिए सुझावों का उल्लेख भी होता है।

प्रश्न 26. एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के गुणों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के गुण (Qualities of Good Anecdotal Records)—

1. **प्रमुख सूचनाएँ (Selective Information)**—एक अच्छे अभिलेख की यह विशेषता भी होती है कि उसमें प्रमुख सूचनाएँ ही रिकॉर्ड की जानी चाहिये। उचित निदान तभी संभव है यदि केवल सम्बन्धित तथा अर्थ-पूर्ण घटनाओं का ही आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में उल्लेख किया गया हो।
2. **पृष्ठभूमि की जानकारी (Information of the Background)**—आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में यह विशेषता होनी आवश्यक है कि वह व्यक्ति या विद्यार्थी के बारे में पूर्ण पृष्ठभूमि की जानकारी प्रस्तुत करे।
3. **वस्तुनिष्ठता (Objectivity)**—एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में वस्तुनिष्ठता का होना अति आवश्यक है अर्थात् इसे पक्षपात, द्वेष आदि से मुक्त होना चाहिये।
4. **पूर्ण चित्र (Complete Picture)**—एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में यह विशेषता भी होनी चाहिये कि वह किसी व्यक्ति या घटना के बारे में पूर्ण चित्र प्रस्तुत करे। अपूर्ण या अधूरा चित्र प्रस्तुत करने से हानि हो सकती है।
5. **घटनाओं का विवरण तथा क्रम (Descriptions and Sequence of Events)**—इस प्रकार के अभिलेख में दर्ज सूचनाओं या घटनाओं का उचित क्रम होना चाहिये तथा उनका विवरण भी क्रम में हो। घटनाओं के विवरण में उपयुक्त शब्दों (Relevant Terms) का प्रयोग ही किया जाना चाहिये।

प्रश्न 27. विवरणात्मक कथाओं के लाभ तथा दोषों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— लाभ (Advantages)—

(i) इसमें कोई पूर्व योजना तथा व्यापक प्रशिक्षण नहीं चाहिये।
(ii) यह किसी एक व्यवहार पर केन्द्रित न होकर सभी व्यवहारों पर केन्द्रित होती है।
(iii) इसे दैनिक भाषा में लिखा जाता है।
(iv) बाद के विश्लेषणों के लिये उसे कोई भी प्रयुक्त कर सकता है।
(v) इसमें न्यूनतम यंत्रों/उपकरणों की आवश्यकता रहती है।
(vi) व्यवहार का क्रम, पर्यावरणीय सूचनाओं तथा दूसरों की प्रतिक्रियाओं को सुरक्षित (Preserve) किया जा सकता है।
(vii)इसमें घटनाओं का रिकॉर्ड स्थायी रूप से हो जाता है।

दोष (Disadvantages)—

(i) एक से अधिक बालक का निरीक्षण करने में यह विधि कठिन लगती है।
(ii) रिकॉर्ड करने में समय अधिक लगता है।
(iii) निरीक्षणकर्ता बच्चों से स्वयं को अलग रखते हैं जबकि अध्यापकों के लिये ऐसा करना कठिन हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रश्न 28. खेल का क्या अर्थ है?

उत्तर– **खेल का अर्थ (Meaning of Play) :** खेल बच्चों की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। खेलों के द्वारा बालक के शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास के साथ-साथ सामाजिक अन्तःक्रिया का विकास होता है। खेलों को बालकों की वृद्धि और विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। खेल की क्रिया अहम-प्रेरित (Self-Motivated) होती है तथा आनन्ददायक भी होती है, खेल की क्रिया बच्चों में उत्साह, स्फूर्ति, आत्म विश्वास, चंचलता, प्रसन्नता आदि गुणों का विकास करती है।

आधुनिक युग में खेल के महत्त्व को विद्वानों ने स्वीकार किया है। इसीलिए विभिन्न शाखाओं में खेल से जुड़ी विभिन्न क्रियाओं को शामिल किया गया है। जैसे–ड्रामा, संगीत, विभिन्न खेल इत्यादि। आजकल दूरदर्शन और रेडियो के माध्यम से भी 'खेलों' के महत्त्व को दर्शाया एवं बताया जा रहा है। खेलों से जुड़े खिलौनों के प्रयोग के माध्यम से बच्चों के बौद्धिक विकास को बल प्रदान किया जा रहा है। ग्रास (Gross) के विचारानुसार खेलों के द्वारा बच्चे विभिन्न कौशलों का अभ्यास करते हैं।

क्रो एवं क्रो (Crow & Crow) ने खेल को इस प्रकार परिभाषित किया है–"खेल वह क्रिया है जिसमें एक व्यक्ति उस समय व्यस्त होता है जब वह उस कार्य को करने के लिए स्वतंत्र होता है जिस कार्य को वह करना चाहता है।" ("Play can be defined as the activity in which a person engages when he is free to do what he wants to.")

हरलॉक (Hurlock, 1978) के अनुसार, "खेल वह कोई भी क्रिया है जो प्राप्त होने वाले आनन्द के लिए की जाती है परंतु इसके अन्तिम परिणाम पर कोई विचार नहीं किया जाता है।" ("It means any activity engaged in for the enjoyment it gives, without consideration of the end result."–Hurlock, 1978)

रसेल (Russel) के अनुसार, "खेल एक आनन्ददायक शारीरिक या मानसिक क्रिया है जो अपने आप में पूर्ण है और जिसका कोई अव्यक्त लक्ष्य नहीं होता है।" ("Play may be defined as a joyful bodily or mental activity which is sufficient to itself & does not seek any ulterior goal."–Russel.)

कुछ लोगों ने खेल को रचनात्मक क्रियाओं की अभिव्यक्ति माना है तथा कुछ लोग इसे आनन्दपूर्ण f, स्वाभाविक तथा रचनात्मक क्रिया कहा है। वेलनटाईन (Valentine) के अनुसार खेल किसी कार्य में एक प्रकार का मनोरंजन है। अतः 'खेल' (Play) एक स्वाभाविक (Spontaneous) और आत्म-प्रेरित (Self-Motivated) शारीरिक या मानसिक क्रिया है जो अपने आप में पूर्ण है तथा जिसका कोई अव्यक्त लक्ष्य नहीं होता। इसके परिणाम पर कोई विचार नहीं किया जाता।

प्रश्न 29. समूह गतिकी का क्या अर्थ है?

उत्तर– **समूह गतिकी या समूह गत्यात्मकता का अर्थ (Meaning of Group Dynamics)**–समूह गतिकी या समूह गत्यात्मकता (Group Dynamics) एक महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय है। सबसे पहले इस संप्रत्यय का प्रतिपादन कर्ट-लेविन (Kurt Lewin) ने सन् 1945 में किया था। यह वास्तव में समूहों के अध्ययन से संबंधित नया दृष्टिकोण है। कर्ट-लेविन के अनुसार समूह गतिकी से अभिप्राय समूह से संबंधित तथा विशेषतौर पर छोटे समूहों के उन प्रभावों तथा बलों (Forces) से होता है जिनसे समूह के सदस्यों का व्यवहार एक निश्चित दिशा में परिवर्तित होता है। अन्य शब्दों में समूह-गतिकी या समूह गत्यात्मकता का अभिप्राय समूह के अंदर के दबावों (Pressures) तथा बलों से होता है। जोकि समूह के सदस्यों के व्यवहारों के इस सीमा से होता है। इसी

Scanned with OKEN Scanner

कारण से समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे समूह-गतिकी (Group dynamics) का नाम दिया तथा इसके अंतर्गत समूह के भीतर घटित होने वाली भिन्न-भिन्न की प्रक्रियाओं जैसे—समूह-व्यवहार, समूह-निर्माण, नेतृत्व, शक्ति-परिवर्तन आदि से संबंधित अध्ययनों को शामिल किया। समूह-गतिकी को परिभाषित करने के विभिन्न प्रयास किये गये हैं। **फिशर** (1983) के अनुसार, "समूह गतिकी या गत्यात्कता अध्ययन से संबंधित एक ऐसा क्षेत्र है, जो उन बलों या दबावों का उल्लेख करता है। जिनसे छोटे समूह में व्यक्तियों का व्यवहार प्रभावित होता है।"

कार्टेराइट तथा **जैंडर** के अनुसार, "समूह गतिकी जांच पड़ताल का ऐसा क्षेत्र है जो समूहों की प्रकृति से संबंधित विकसित ज्ञान, उनके विकास संबंधी नियमों तथा व्यक्तियों, दूसरे समूहों तथा अन्य बड़ी संस्थाओं के साथ उनके अंतःसंबंधों से संबंधित है।"

गुड के अनुसार, "समूह गत्यात्मकता का प्रयोग उन अंतःक्रियात्मक मनोवैज्ञानिक संबंधों के लिए किया जाता है जिसमें समूह के सदस्य समान उभयनिष्ठ अनुभूतियों को विकसित करते हैं क्योंकि समान साझे, अनुभवों तथा भावनाओं पर आधारित होते हैं।"

क्रैच एवं क्रचफील्ड के मतानुसार, "समूह गत्यात्मकता उन परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो समूहों में होते हैं।"

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3

बच्चों तथा किशोरों के बीच अधिगम को बढ़ाने के लिए सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य (Theoretical Perspectives to Enhance Learning Among Children and Adolescents)

3.1 अधिगम (Learning)

1. सीखने या अधिगम से आप क्या समझते हैं? सीखने या अधिगम की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं कौन-कौन सी हैं? वर्णन कीजिये।
(What do you mean by learning? What are the various characteristics of learning? Explain.)

अथवा

सीखना या अधिगम किसे कहते हैं? सीखने या अधिगम की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं की विवेचना करें।
(What is learning? Discuss the main characteristics of learning.)

उत्तर–सीखने या अधिगम का अर्थ (Meaning of Learning)–हमारे दैनिक जीवन में सीखने का बहुत महत्त्व है। जन्म के समय व्यक्ति असहाय होता है। धीरे-धीरे वह वातावरण के संपर्क में आता है और वातावरण के अनुसार स्वयं को बनाने का प्रयास करता है। इस क्रिया में वह अपने तथा परिवार व समाज के अन्य व्यक्तियों से भी लाभ उठाता है, जिसके फलस्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। भाषा बोलना, पढ़ना, लिखना तथा बहुत-सी अन्य आदतें भी हम सीखते हैं, जिसके कारण हमारा व्यवहार समाज के अनुरूप हो जाता है। हमारे व्यक्तित्व के बहुत से शीलगुणों का निर्माण भी सीखने के आधार पर ही होता है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति या जीव में कुछ जन्मजात संस्करण होते हैं, जो उसकी प्राथमिक प्रतिक्रिया का निर्धारण करते हैं और इन्हीं प्रतिक्रियाओं के द्वारा व्यक्ति स्वयं को वाह्य वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। वाह्य वातावरण के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया को ग्रहण करना ही मनोविज्ञान में सीखना कहलाता है। उदाहरण के तौर पर भूख की स्थिति में बन्दर की छीनने की प्रतिक्रिया तो स्वाभाविक होगी, परन्तु एक बालक के माँगने की प्रतिक्रिया सीखने का परिणाम होगा। सीखना एक प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन होता है। सीखने से व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों में अभ्यास का बहुत महत्त्व है। अभ्यास के अभाव में व्यवहार में होने वाले परिवर्तन सीखने से सम्बन्धित नहीं होते। सीखने से व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ मूल प्रवृत्तियाँ लेकर जन्म लेता है तथा उन मूल प्रवृत्तियों की तृप्ति अधिगम पर निर्भर करती है। अधिगम इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही संसार का यह विकास संभव हो सका है। अतः सीखने की यह प्रक्रिया बहुत ही विस्तृत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने से पहले यह जानना अति आवश्यक है कि सीखना या अधिगम क्या है? सीखने की विशेषताएँ क्या हैं? सीखने के सिद्धान्त कौन-कौन से हैं? इत्यादि।

अधिगम शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्रविन्दु है। अधिगम शिक्षा मनोविज्ञान का दिल है। शिक्षा के क्षेत्र में अधिगम का एक विशेष महत्त्व है, क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य ही सीखना (अधिगम) है। शिक्षा देने का अर्थ सीखना है। हम यह कह सकते हैं—*Learning is the heart of all education. All education is an attempt to Learn.* हम आज जो कुछ भी हैं वह सीखने का ही परिणाम है। समस्त स्कूली क्रियाकलाप सीखने के लिए होता है। स्कूल में, कक्षा में, घर में, अध्यापक और शिक्षक इसी के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। प्रत्येक बालक इस संसार में कुछ मूल प्रवृत्तियाँ लेकर आता है। इनकी तृप्ति सीखने पर निर्भर है। मूल प्रवृत्तियों का स्वरूप भी पाशविक होता है। सीखने की प्रक्रिया द्वारा उनमें परिवर्तन होता है। सीखने की प्रक्रिया के ही कारण आज विश्व का इतना अधिक विकास संभव हो सका है। सीखना एक अत्यन्त स्वाभाविक प्रक्रिया है जो मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक जारी रहती है। शिक्षा मनोविज्ञान का उद्देश्य सीखने को प्रभावशाली और अर्थपूर्ण बनाना है। सीखने की प्रक्रिया के बारे में बात करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि सीखना आखिर होता क्या है?

सीखने के एक अन्य उदाहरण के अनुसार–यदि किसी छोटे बच्चे के सम्मुख कोई जलता हुआ लैम्प रखा जाए तो स्वाभाविक रूप से वह उसकी दीपशिखा को स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाता है। परन्तु उसका हाथ दीपशिखा से जल जाता है तो उसे कष्ट होता है और वह तुरन्त ही अपना हाथ दीपशिखा से खींच लेता है। जब वह पुनः सम्मुख रखे हुए दीपक को देखता है तो उसे स्पर्श करने का स्वाभाविक व्यवहार नहीं करता, परन्तु यदि उसके सामने दीपक लाया जाता है तो वह उससे दूर भागने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार उसके स्वाभाविक व्यवहार में जो परिवर्तन होता है, उसकी इस प्रक्रिया को ही सीखना कहा जाता है। इस व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है—सीखने का अर्थ उस मानसिक प्रक्रिया से है जिसमें व्यक्ति के स्वाभाविक व्यवहार या भूतकालीन अनुभवों एवं व्यवहार में उन्नतिशील परिवर्तन होता है।

बर्नार्ड (Bernard) का मत है कि सीखने की प्रक्रिया आवश्यकता *(Need)* से आरम्भ होती है तथा जो उद्देश्यपूर्ण होती है। जब इसे प्रेरणा मिलती है तो इसमें तत्परता आ जाती है और पुनर्बलन *(Reinforcement)* द्वारा व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण और पूर्व अनुभवों के संगठनों के आधार पर अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के व्यवहार में जो सक्रिय परिवर्तन आ जाता है, इसे ही सीखना कहते हैं।

सीखने को परिवर्तन, सुधार, विकास, उन्नति तथा समायोजन के तुल्य जाना जाता है। यह केवल स्कूल की शिक्षा, साइकिल चलाने, पढ़ने या टाइप करने तक सीमित नहीं बल्कि यह एक विशाल शब्द है, जिसका व्यक्ति पर गहरी छाप या प्रभाव पड़ता है।

1. अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions)—विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की अलग-अलग दृष्टिकोणों से व्याख्या की है तथा विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। व्यवहारवादियों *(Behaviourists)* के अनुसार–अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना या अधिगम है। बच्चा जन्म से ही अपने वातावरण से अनुभव ग्रहण करके अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है।

सम्पूर्णवाद या गैस्टाल्ट दृष्टिकोण *(Gestalt View)* के अनुसार सीखने का आधार 'सम्पूर्ण ढाँचे' का अवलोकन करके ज्ञान प्राप्त करना है। सम्पूर्ण स्थिति के प्रति क्रिया करना ही सीखना है।

इसी प्रकार होरमिक दृष्टिकोण *(Hormic View)* लक्ष्य केन्द्रित स्वरूप पर जोर देता है अर्थात् सीखना लक्ष्य को सामने रखकर किया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रयत्न और भूल दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति कई प्रयास करता है तथा कई भूलें भी करता है, तब जाकर कुछ सीख पाता है। इसका प्रतिपादन थॉर्नडाइक ने किया था।

कुर्ट लेविन (Kurt Lewin) ने सीखने का फील्ड दृष्टिकोण *(Field View of Learning)* प्रस्तुत किया तथा यह स्पष्ट किया कि सीखना परिस्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक संगठन है और सीखने में प्रेरणा की महत्त्वपूर्ण भूमिका एवं स्थान है।

वुडवर्थ (Woodworth) के अनुसार–'अधिगम नए ज्ञान और नई अनुक्रियाओं को ग्रहण करने की एक प्रक्रिया है।' *(The process of acquiring new knowledge and new responses is the process of Learning.)*

क्रो एवं क्रो (Crow and Crow) ने भी अधिगम को आदतों, ज्ञान एवं अभिवृत्तियों को ग्रहण करना बताया है। *(Learning is the acquisition of habits, knowledge and attitude.)*

जे. पी. गिलफोर्ड (J.P. Gillford) ने व्यवहार से व्यवहार में परिवर्तन को ही अधिगम माना है। *(Learning is any change in behaviour resulting from behaviour.)*

क्रॉनबैक (Cronbach) ने कहा है कि अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार परिवर्तन ही अधिगम है। *(Learning is shown by a change in behaviour as a result of experience.)*

पैवलव (Pavlov) ने अनुक्रिया द्वारा आदतों के निर्माण को ही अधिगम माना है। *(Learning is habit formation resulting from conditioning.)*

गेट्स (Gates) के अनुसार–"सीखना अनुभव द्वारा व्यवहार का शोध है।" *(Learning is modification of behaviour through experience.)*

किंग्सले तथा गैरी (Kingsley and Garry) के अनुसार–"शोधण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवहार की अभ्यास या ट्रेनिंग द्वारा उत्पत्ति होती है या उसमें परिवर्तन होता है।" *(Learning is a process by which behaviour is originated or change through practice or training.)*

कॉलविन (Colvin) के अनुसार–"पहले से निर्मित व्यवहार में अनुभव द्वारा हुए परिवर्तन को अधिगम कहते हैं।" *(Learning is the modification of our readymade behaviour due to experience.)*

जी. डी. बाज (G. D. Boaz) के अनुसार–"अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण सामान्य जीवन की माँगों की पूर्ति के लिए अर्जित करता है।" *(Learning is the process by which the individual acquires habits, knowledge and attitude that are necessary to meet the demand of life in general.)*

प्रेसी (Pressy) ने कहा है "कि अधिगम एक ऐसा अनुभव है जिसके द्वारा कार्य में परिवर्तन या समायोजन होता है तथा व्यवहार की नई विधि प्राप्त होती है।" *(Learning represents experience that leads to a change or adjustment in performance and to the acquisition of new ways of behaving.)*

सी. ई. स्किनर (C. E. Skinner) के शब्दों में–"व्यवहार के अर्जन में प्रगति की प्रक्रिया को अधिगम कहते हैं।" *(Learning is the process of progressive behaviour adoption.)*

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के परिणामस्वरूप अधिगम के सम्बन्ध में कुछ तथ्य स्पष्ट होते हैं, जैसे–

(1) अधिगम व्यवहार परिवर्तन है।

(2) अधिगम व्यवहार का संगठन है।

(3) अधिगम नवीन प्रक्रिया की पुष्टि है।

परन्तु वास्तविकता यह है कि व्यवहार परिवर्तन, व्यवहार संगठन तथा पुष्टिकरण में कोई भी एक कारण अधिगम के लिए पूरी तरह उत्तरदायी नहीं है।

Scanned with OKEN Scanner

समय के अनुसार भी अधिगम का अर्थ स्पष्ट किया गया है, जैसे–

(1) प्राचीन मत के अनुसार अधिगम एक व्यापक शब्द है। इसमें बच्चों को प्रभावित करने वाली सभी क्रियाओं को शामिल किया जाता है। बच्चे के बड़े होने की प्रक्रिया के साथ-साथ उसके मस्तिष्क का भी विकास होता रहता है। जिसके परिणामस्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन आते रहते हैं। अनुभवों से बच्चा सीखता रहता है।

(2) इसके पश्चात् मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिगम की व्याख्या उद्दीपन-प्रक्रिया *(Stimulus Response)* के सम्बन्ध के रूप में भी की गई है। उसके अनुसार उद्दीपन और अनुक्रिया में सम्बन्ध का स्थापित होना ही अधिगम कहलाता है।

इस प्रकार अधिगम के सम्बन्ध में कुछ और भी तथ्य हमारे समक्ष आते हैं, जैसे–

(1) अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक के व्यवहार में परिवर्तन आते हैं।

(2) अधिगम का अनुमान व्यवहार में परिवर्तनों के आधार पर ही लगाया जाता है।

(3) ये परिवर्तन किसी भी दिशा में अर्थात् धनात्मक या निषेधात्मक हो सकते हैं।

(4) अधिगम के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तन स्थाई होते हैं।

(5) व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अभ्यास के फलस्वरूप होते हैं।

(6) अधिगम को एक मानसिक प्रक्रिया भी कहा जा सकता है।

अतः **निष्कर्ष के रूप में** यह कहा जा सकता है कि सीखना एक प्रक्रिया है। इसके फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन होता है। सीखने से व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों में अभ्यास का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। अभ्यास के अभाव में व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन सीखने से सम्बन्धित नहीं होते। सीखने के कारण व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं। अन्य शब्दों में, ये कुछ समय तक रहने वाले परिवर्तनों की भांति पूर्णतया स्थायी नहीं होते। सीखने की सहायता से जीव या प्राणी वातावरण की परिवर्तनशील परिस्थितियों से समायोजन स्थापित करते हैं अर्थात् सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत अनुभव एवं प्रशिक्षण के माध्यम से सीखने वाले व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी किस्म के परिवर्तन लाये जाते हैं।

2. अधिगम या सीखने की विशेषताएँ (Characteristics of Learning)—अधिगम पर सीखने की प्रक्रिया की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित हैं–

(1) अधिगम निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है (Learning is a Continuous Process)–अधिगम की प्रक्रिया माँ के गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है। जन्म होने के पश्चात् बच्चा वातावरण से प्राप्त अनुभवों के द्वारा कुशलता अर्जित करता है। अतः अधिगम हर प्रकार से अर्थात् औपचारिक- अनौपचारिक रूप से तथा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जीवन भर चलता ही रहता है। अधिगम को उत्पादन *(Product)* न मानकर उसे प्रक्रिया माना जाता है तथा इस प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति में ज्ञान, कौशल, आदतों, अभिवृत्तियों तथा अभिरुचियों का विकास होता रहता है। अधिगम का परिणाम ज्ञान के संचय के रूप में होता है तथा यह संचय जीवन भर होता है।

(2) अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है (Learning is Change in Behaviour)–सीखने की प्रक्रिया का परिणाम व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन के रूप में प्राप्त किया जाता है। सीखना किसी भी प्रकार का क्यों न हो–परिणाम वही होगा अर्थात् व्यवहार में परिवर्तन। यह परिवर्तन किसी भी रूप में हो सकता है। लेकिन सीखने की प्रक्रिया में इस बात का ध्यान रखना ही पड़ेगा कि ये परिवर्तन वांछित दिशा तथा वांछित रूप में हों अर्थात् ये परिवर्तन सकारात्मक दिशा में हों।

(3) अधिगम सार्वभौमिक प्रक्रिया है (Learning is a Universal Process)–अधिगम प्रक्रिया एक सार्वभौमिक प्रक्रिया मानी गई है, क्योंकि सीखना किसी एक देश, जाति या धर्म का ही अधिकार नहीं है। यह तो सभी के लिए है, हर स्थान के लिए है, हर जाति तथा हर धर्म के लिए है। हर व्यक्ति सीखने की पूरी क्षमता रखता है। अवसरों की आवश्यकता रहती है। सीखने में जो अन्तर दिखाई देता है वह अवसरों में भिन्नता के कारण ही होता है।

Scanned with OKEN Scanner

(4) अधिगम समायोजन की प्रक्रिया है (Learning is Adjustment)–अधिगम का समायोजन में विशेष योगदान होता है। जन्म के समय बच्चा शत्-प्रतिशत दूसरों पर आश्रित होता है। लेकिन समय के साथ-साथ उसे अपनी आन्तरिक अनुक्रियाओं को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ढालना पड़ता है। वह सर्वप्रथम अपने वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है, लेकिन इस समायोजन का आधार उसका अधिगम ही होता है।

(5) अधिगम उद्देश्यपूर्ण एवं लक्ष्य-केन्द्रित है (Learning is Purposive and Goal-Oriented) –अधिगम हमेशा लक्ष्य-केन्द्रित एवं उद्देश्यपूर्ण होगा। यदि हमारे पास कोई उद्देश्य और लक्ष्य नहीं है तो अधिगम प्रक्रिया का प्रभाव किसी भी रूप में दिखाई नहीं देगा। सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से हम किसी पूर्व-निर्धारित लक्ष्य की ओर बढ़ सकते हैं। जैसेज्जैसे हम सीखते जाते हैं, वैसे-वैसे हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाते हैं।

(6) अधिगम विकास की प्रक्रिया है (Learning is Process of Development)–अधिगम किसी भी दिशा में हो सकता है–वांछित या अवांछित *(Desirable or undesirable)* लेकिन हमारा सम्बन्ध तो व्यक्ति के वांछित दिशा में विकास से होता है। कोई बालक यदि चोरी करना या जेब काटना सीखता है तो भी अधिगम है लेकिन यह अवांछित है। समाज ऐसा विकास कभी नहीं चाहेगा। अतः अधिगम को हमेशा विकास के दृष्टिकोण से ही देखा जाता है।

(7) अधिगम अनुभवों की नई व्यवस्था है (Learning is New Organisation of Experience) –अधिगम या सीखने का आधार है–नवीन अनुभव ग्रहण करने। उन्हें नये अनुभवों के परिणामस्वरूप ही व्यवहार में परिवर्तन आते हैं। पुराने अनुभवों के आधार पर नये-नये अनुभव प्राप्त होते हैं तथा एक नई व्यवस्था जन्म लेती है।

(8) अधिगम क्रिया और वातावरण का परिणाम है (Learning is the Product of Activity and Environment)–अधिगम प्रक्रिया के लिए वातावरण के साथ अन्तःक्रिया करण मूलरूप से अनिवार्य है। बिना इस अन्तःक्रिया के अधिगम प्रक्रिया का कोई परिणाम संभव नहीं हो सकता। वातावरण के साथ बच्चों की अन्तःक्रिया जितनी अधिक होगी, उतना ही उन बच्चों का अधिगम अधिक होगा। अतः बिना किसी क्रिया एवं अन्तःक्रिया के अधिगम का कोई परिणाम नहीं हो सकता। यही अन्तःक्रिया बच्चों को अनुभव प्रदान करती है तथा उन्हीं अनुभवों के परिणामस्वरूप बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन होते हैं।

(9) अधिगम शिक्षण-अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक (Learning Helps in Achieving Teaching-Learning Objectives)–शिक्षा अधिगम परिस्थितियों में शिक्षण-अधिगम के भिन्न-भिन्न उद्देश्य होते हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए अधिगम प्रक्रिया का सहारा लेना पड़ता है तथा अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी ज्ञान, सूझबूझ, रुचियां, कुशलताएँ तथा दृष्टिकोणों का विकास किया जा सकता है। इन्हें अर्जित करने के पश्चात् ही व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन अपेक्षित होता है अर्थात् शिक्षण अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त करने में अधिगम प्रक्रिया ही मुख्य साधन है।

(10) अधिगम का स्थानान्तरण होता है (Learning is Transferable)–किसी एक परिस्थिति में अर्जित किया गया अधिगम दूसरी अन्य परिस्थिति में स्थानान्तरित होने में सूक्ष्म होता है। एक स्थिति में अर्जित ज्ञान दूसरी अन्य परिस्थिति में ज्ञान की प्राप्ति के लिए सहायक सिद्ध होता है। इसी को अधिगम का स्थानान्तरण *(Transfer of Learning)* कहते हैं। कई बार यह पूर्व अर्जित ज्ञान नव-ज्ञान को अर्जित करने में बाधा भी पैदा कर सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

(11) अधिगम का सम्बन्ध व्यक्तिगत और सामाजिक आवश्यकताओं से है (Learning is Related to Individual and Social Needs)–व्यक्ति सामाजिक प्राणी है तथा समाज का अभिन्न अंग है। वह समाज में रहकर ही अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है। हर व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताएँ होती हैं जोकि शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक या धार्मिक हो सकती हैं। लेकिन सभी व्यक्तियों की सभी आवश्यकताएँ कभी भी पूर्ण नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में वह अपनी आवश्यकताओं को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। इसी नियंत्रण करने की प्रक्रिया को 'परिस्थितियों के अनुकूल ढालना' कहते हैं। अतः अधिगम प्रक्रिया व्यक्ति और आवश्यकताओं में संतुलन पैदा करती है। सामाजिक वातावरण के अभाव में व्यक्ति की अधिगम प्रक्रिया प्रभावी नहीं रहती।

(12) अधिगम व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक है (Learning is Helpful in All-Round Development of Personality)–हर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का संतुलित तथा सर्वांगीण विकास चाहता है। संतुलित और सर्वांगीण विकास में अधिक प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

(13) अधिगम अनुसंधान करता है (Learning is Research)–अनुसंधान करना भी एक प्रकार का अधिगम होता है। अनुसंधान के दौरान व्यक्ति विभिन्न प्रयास करता है तथा कई क्रियाएँ करने के पश्चात् किसी एक परिणाम पर भी पहुँचता है। इस दृष्टि से अनुसंधान करना भी अधिगम है।

(14) अधिगम चेतन और अचेतन अनुभव है (Learning is Determined by Conscious as Well as Unconscious Experience)–अधिगम चेतन और अचेतन अनुभवों द्वारा निर्धारित होता है। यह सीखने वाले व्यक्ति द्वारा जानबूझकर या अनजाने में अर्जित किया जाता है।

(15) अधिगम द्वारा व्यवहार के सभी पक्ष प्रभावित है (All Modes of Behaviour are Affected by Learning)–अधिगम व्यवहार के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। इनमें कौशल, ज्ञान, दृष्टिकोण, व्यक्तित्व, अभिप्रेरणा, भय, शिष्टाचार इत्यादि शामिल हैं।

(16) अधिगम जीवन की मूलभूत प्रक्रिया है (Learning is the Fundamental Process of Life)–अधिगम को जीवन की मूलभूत प्रक्रिया माना गया है। इसके बिना जीवन का अस्तित्व ही संभव नहीं है और न ही किसी प्रकार की प्रगति संभव है। यह सभ्यता की प्रगति के लिए आधार का कार्य करता है।

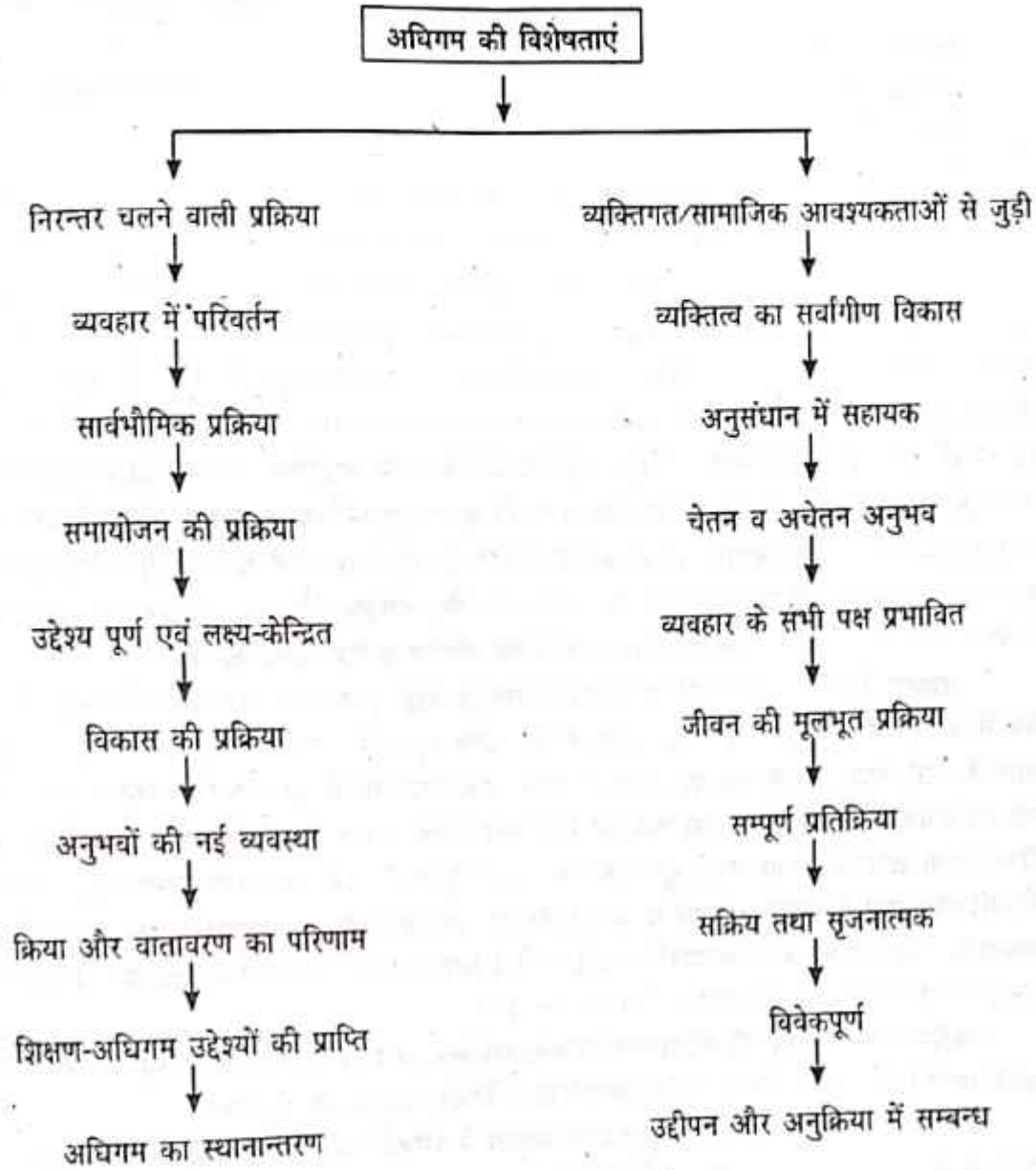
(17) अधिगम पूर्ण परिस्थिति के प्रति सम्पूर्ण प्रतिक्रिया है (Learning is Total Reaction of the Individual to Total Situation)–अधिगम सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रति व्यक्ति की पूर्ण प्रतिक्रिया है अर्थात् वह किस परिस्थिति के बारे में किस प्रकार प्रतिक्रिया प्रस्तुत करता है–यही उसका अधिगम कहलायेगा।

(18) अधिगम सक्रिय तथा सृजनात्मक है (Learning is Creative and Active)–अधिगम की प्रक्रिया सदा सक्रिय होती है अर्थात् सीखने वाला स्वयं सीखने की प्रक्रिया में भाग लेता है, तभी वह कुछ सीख पाता है। अतः अधिगम सक्रिय होता है। इसी प्रकार अधिगम को सृजनात्मक *(Creative)* माना जाता है।

(19) अधिगम विवेकपूर्ण है (Learning is Intellectual)–अधिगम को एक मेकैनिकल प्रक्रिया *(Mechanical process)* नहीं कहा जा सकता। यह तो एक विवेकपूर्ण कार्य है। बिना किसी चिंतन के कुछ भी नहीं सीखा जा सकता और न ही किसी कार्य में सफलता मिलती है। अतः इस कार्य को बड़ी शीघ्रता से सीखा जा सकता है, जिसमें बुद्धि का प्रयोग किया जाए।

(20) अधिगम उद्दीपन और अनुक्रिया में सम्बन्ध है (Learning is Relationship between Stimuius and Response)–अधिगम का प्रायः उद्दीपन और अनुक्रिया से सम्बन्ध होता है। किसी कार्य को सीखे हुए व्यक्ति उन्हें कहते हैं जब वे उद्दीपन अर्थात् उस कार्य के अनुकूल प्रतिक्रिया करते हैं। अधिगम द्वारा व्यक्ति पर्यावरण सम्बन्धी तथा जीवन के अन्य पक्षों से जुड़े हुए उद्दीपनों के प्रति अनुकूल प्रतिक्रियाएँ करना सीखता है।

Scanned with OKEN Scanner



चित्र : अधिगम की विशेषताएं

◆◆◆

2. सीखने या अधिगम से आप क्या समझते हैं? सीखने की प्रकृति की विवेचना कीजिये।
(What do you understand by learning? Discuss the nature of learning.)

अथवा

सीखने या अधिगम के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसके मुख्य प्रकारों तथा प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिये।
(Clarifying the meaning of learning, clarify its main types and process.)

अथवा

अधिगम (सीखना) की परिभाषा दीजिए। अधिगम की प्रकृति का वर्णन कीजिए।
(Define learning. Explain the nature of learning.)

अथवा

अधिगम क्या है? अधिगम की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
(What is learning? Explain the process of learning.)

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

सीखना या अधिगम का क्या अर्थ है? इसके सीखने से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों, प्रकारों तथा प्रक्रिया का वर्णन करें।
(What is the meaning of learning? Explain about its various approaches, types and process.)

उत्तर–अधिगम का अर्थ (Meaning of Learning)–अधिगम शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र-बिन्दु है। अधिगम शिक्षा मनोविज्ञान का दिल है। शिक्षा के क्षेत्र में अधिगम का एक विशेष महत्त्व है। क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य ही सीखना (अधिगम) है। शिक्षा देने का अर्थ सीखना है। हम यह कह सकते हैं–*Learning is the heart of all education. All education is an attempt to learn.* हम आज जो कुछ भी हैं वह सीखने का ही परिणाम है। समस्त स्कूली क्रियाकलाप सीखने के लिए होते हैं। स्कूल में, कक्षा में, घर में, अध्यापक और शिक्षक इसी के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। प्रत्येक बालक इस संसार में कुछ मूल प्रवृत्तियाँ लेकर आता है। इनकी तृप्ति सीखने पर निर्भर है। मूल प्रवृत्तियों का स्वरूप भी पाशविक होता है। सीखने की प्रक्रिया द्वारा उनमें परिवर्तन होता है। सीखने की प्रक्रिया के ही कारण आज विश्व का इतना अधिक विकास सम्भव हो सका है। सीखना एक अत्यन्त स्वाभाविक प्रक्रिया है जो मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक जारी रहती है। शिक्षा मनोविज्ञान का उद्देश्य सीखने को प्रभावशाली और अर्थपूर्ण बनाना है। सीखने की प्रक्रिया के बारे में बात करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि सीखना आखिर होता क्या है?

उदाहरण के लिए–यदि किसी छोटे बच्चे के सम्मुख कोई जलता हुआ लैम्प रखा जाए तो स्वाभाविक रूप से वह उसकी दीपशिखा को स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाता है। परन्तु उसका हाथ दीपशिखा से जल जाता है। उसे कष्ट होता है और वह तुरन्त ही अपना हाथ दीपशिखा से खींच लेता है। जब वह पुनः सम्मुख रखे हुए दीपक को देखता है तो उसे स्पर्श करने का स्वाभाविक व्यवहार नहीं करता, परन्तु यदि उसके सामने दीपक लाया जाता है तो वह उससे दूर भागने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार उसके स्वाभाविक व्यवहार में जो परिवर्तन होता है उसकी इस प्रक्रिया को ही सीखना कहा जाता है। इस व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है–"सीखने का अर्थ उस मानसिक प्रक्रिया से है जिसमें व्यक्ति के स्वाभाविक व्यवहार या भूतकालीन अनुभवों एवं व्यवहार में उन्नतिशील परिवर्तन होता है।"

अधिगम या सीखने की परिभाषाएँ (Definitions of Learning)–विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने विचारानुसार सीखने की परिभाषाएँ दी हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं–

गेट्स के अनुसार, "सीखना अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है।" *(Learning is modification of behaviour through experiences.*–**Gates)**

गिलफर्ड के अनुसार–"व्यवहार के फलस्वरूप व्यवहार में किसी प्रकार का परिवर्तन होना अधिगम है।" *(Learning is any change in behaviour through experiences.*–**Gillford)**

क्रो और क्रो के अनुसार–"सीखने के अन्तर्गत आदतें, ज्ञान तथा व्यवहार को ग्रहण करना शामिल है।" *(Learning involves the acquisition of habits, knowledge and attitudes.*–**Crow & Crow)**

पील के अनुसार–"अधिगम व्यक्ति में एक परिवर्तन है जो उसके वातावरण के परिवर्तनों के अनुसार होता है।" *(Learning is change in the individual following upon change in his environment.*–**Peel)**

हिलगार्ड एवं एटकिन्सन के अनुसार–"अधिगम पुराने अनुभवों के फलस्वरूप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन हैं।" *(Learning may be defined as a relatively permanent change in behaviour that occurres as a result of prior experiences.*–**Hilgard and Atkinson)**

प्रेसी के अनुसार–"अधिगम एक अनुभव है, जिसके द्वारा कार्य में परिवर्तन या समायोजन होता है तथा व्यवहार से प्रयोग की गई नई विधि प्राप्त होती है।" *(Learning represents experience that leads to a change or adjustment in performance and to the acquisition of new ways of behaviour.*–**Pressy)**

स्किनर के अनुसार–"अधिगम में प्राप्त तथा धारणा करने की शक्ति सम्मिलित है।" *(Learning includes both acquisition and retention.*–**Skinner)**

Scanned with OKEN Scanner

किंग्सले एवं गैरी के अनुसार–"अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवहार का अभ्यास या प्रशिक्षण द्वारा जन्म होता है या उसमें परिवर्तन होता है।" *(Learning is a process by which behaviour is originated or changed through practice or training.*–**Kingsley & Garry)**

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि–

(1) अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन होता है।
(2) अधिगम के द्वारा बहुत हद तक व्यक्ति के व्यवहारों में स्थायी परिवर्तन होता है।
(3) सीखने की इच्छा व्यक्तिगत तथा सामाजिक आवश्यकताओं से जागृत होती है।
(4) अधिगम सामाजिक दृष्टि से उचित और अनुचित दोनों ही हो सकता है।
(5) सीखना नये अनुभव ग्रहण करना है।
(6) नये अनुभवों का संगठन होता है अथवा नये अनुभवों को स्थाई किया जाता है।
(7) सीखने की क्रिया जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है।
(8) अधिगम एक सृजनात्मक पद्धति है।
(9) सीखना उद्देश्यपूर्ण एवं लक्ष्य निर्देशित होता है।
(10) अधिगम प्रगति और विकास है।
(11) अधिगम स्थानान्तरित *(Transferable)* होता है।
(12) अधिगम का अनुमान व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों से लगाया जाता है।
(13) सीखना सार्वभौमिक *(Universal)* है।
(14) अधिगम मानसिक प्रक्रिया है।
(15) अधिगम औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही परिस्थितियों में होता है।
(16) सीखना एक प्रक्रिया है न कि परिणाम।

सीखने के स्वरूप के बारे में दृष्टिकोण
(Approaches Related to Nature of Learning)

(1) व्यवहारवादी दृष्टिकोण (Behavioural View)–व्यवहारवादियों का विचार है कि सीखना अनुभव के परिणाम के तौर पर व्यवहार में परिवर्तन का नाम है मनुष्य तथा दूसरे प्राणी वातावरण में प्रतिक्रिया करते हैं। बच्चा जन्म से ही अपने वातावरण में सीखने का प्रयत्न करता है।

इस विचारधारा के अन्तर्गत थॉर्नडाइक *(Thorndike)* का **'भूल और प्रयास का सिद्धान्त'** *(Trial and Error Theory)* या **'उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धान्त'** *(Stimulus-response Theory)* शामिल हैं। थॉर्नडाइक *(Thorndike)* के भूल और प्रयास के सिद्धान्त या **'सम्बन्धवाद'** *(Connectionism)* ने पश्चिमी देशों को बहुत प्रभावित किया है। उसने जानवरों पर कई प्रयोग किए। उसके अनुसार समस्त अधिगम 'सम्बन्धों' *(Connections or Bonds)* पर आधारित है।

(2) गेस्टाल्ट दृष्टिकोण (Gestalt View)–इस दृष्टिकोण के अनुसार सीखने का आधार गेस्टाल्ट या संगठनात्मक ढांचे पर निर्भर है। इस दृष्टिकोण का मानना है कि किसी भी प्रकार के सीखने के लिए हम उसके विभिन्न अंगों की अपेक्षा सम्पूर्ण इकाई *(Whole Unit)* पर बल देते हैं। 'गैस्टाल्ट' शब्द 'लैटिन' भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है–*'as a whole'* अर्थात् 'सम्पूर्ण रूप में देखना'। गेस्टाल्टवादियों ने सम्पूर्ण परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* करना तथा फिर बुद्धिमत्तापूर्ण उचित अनुक्रिया व्यक्ति को अन्तर्दृष्टि मासूम की संज्ञा दी है।

इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत सूझबूझ या अन्तर्दृष्टि *(Insight)* द्वारा सीखने का आधार जर्मन के वैज्ञानिक कोहलर *(Kohler)* के प्रयोग हैं जो उन्होंने पशुओं पर किए। उन्होंने अपने प्रयोग के माध्यम से इस बात को स्पष्ट किया कि पशु भी मनुष्य के समान बुद्धिपूर्ण निरीक्षण द्वारा बहुत कुछ सीख सकते हैं। कोहलर ने यह तथ्य चिम्पैन्जी पर प्रयोग करके स्पष्ट किया।

Scanned with OKEN Scanner

(3) होरमिक दृष्टिकोण (Hormic View)–यह दृष्टिकोण मैकडूगल की देन है। यह सीखने के लक्ष्य-केन्द्रित स्वरूप पर जोर देता है। सीखना लक्ष्य को सामने रखकर किया जाता है।

मैकडूगल का मानना है कि यदि हम वस्तुनिष्ठ निरीक्षण *(Objective Observation)* तक सीमित रहते हैं तो हम किसी जानवर के व्यवहार के यांत्रिक दृश्य *(Mechanical Views)* को ही प्राप्त कर पाएँगे। व्यक्ति या मानव तो एक मशीन ही लगेगा। परन्तु हम अपने व्यवहार को आन्तरिक रूप से जानते हैं और उसकी उद्देश्यपूर्णता *(Purposiveness)* को भी समझते हैं जोकि यांत्रिक *(Mechanical)* नहीं होती। मैकडूगल ने लक्ष्य की खोज करते हुए व्यवहार की कई विशेषताएँ बताई हैं–

(i) व्यवहार स्थाई रहता है। *(It persists.)*

(ii) इस स्थाईपन के बावजूद क्रिया में भिन्नता होती है।

(iii) लक्ष्य-प्राप्ति के पश्चात् क्रिया समाप्त हो जाती है।

(iv) क्रिया पुनरावृत्ति के साथ सुधरती है।

(4) सीखने का फील्ड दृष्टिकोण (Field View of Learning)–**कर्टलेविन** ने इस दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया है। उसने लिखा है कि सीखना परिस्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक संगठन है और सीखने में प्रेरणा का महत्त्वपूर्ण हाथ है।

लेविन ने अभिप्रेरणा *(Motivation)* के अध्ययन को नई दिशा प्रदान की है। **लेविन** के अनुसार–जैसे-जैसे बच्चा विकसित होता है, उसकी व्यक्तित्व प्रणाली *(Personality System)* में विस्तार होता है और यह पूर्ण रूप से उप-प्रणालियों में संगठित हो जाता है। बच्चे के मनोवैज्ञानिक वातावरण में दिक् और समय *(Space and Time)* में भी प्रसार हो जाता है। वह अपनी वास्तविक और अवास्तविक इच्छाओं में अन्तर करने लगता है। इस प्रकार लेविन का क्षेत्र *(Field)* है–'जीवन दिक्, जिसमें व्यक्ति और उसका मनोवैज्ञानिक पर्यावरण शामिल है।' मनोवैज्ञानिक पर्यावरण के अन्तर्गत निस्संदेह ही वह सब कुछ शामिल होता है, जिसे वह देखता या समझता है। लेकिन इससे भी अधिक उसकी वर्तमान आवश्यकताएँ उसके मनोवैज्ञानिक वातावरण में शामिल होती हैं।

सीखने या अधिगम के प्रकार
(Types of Learning)

मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक दृष्टि से अधिगम को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं। यह वर्ग हैं–

A. सीखने वाले के प्रकार के अनुसार अधिगम (According to the Type of Learner)

B. शरीर के अंगों की संभागिता के अनुसार अधिगम (According to the Involvement of Bodily Organs)

C. मानव-व्यवहार के विभिन्न पक्षों के अनुसार अधिगम (According to the Various Aspects of Human Behaviour)

A. सीखने वाले के प्रकार के अनुसार अधिगम (According to the Type of Learner)–सीखने वाले के प्रकार के अनुसार अधिगम निम्नलिखित दो प्रकार का होता है–

1. **जानवरों द्वारा अधिगम (Learning by Animals)**–जानवरों के व्यवहार में परिवर्तन को जानवरों का अधिगम कहते हैं।
2. **मानव द्वारा अधिगम (Learning by Human)**–मानव के व्यवहार में जो परिवर्तन होता है उसे मानव का अधिगम या मानव द्वारा अधिगम कहा जाता है। मानव-अधिगम मानव के विकास की अवस्थाओं के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है, जैसे शैशवावस्था अधिगम *(Infant Learning)*, बाल्यकाल अधिगम *(Childhood Learning)*, किशोरावस्था अधिगम *(Adolescence Learning)*।

Scanned with OKEN Scanner

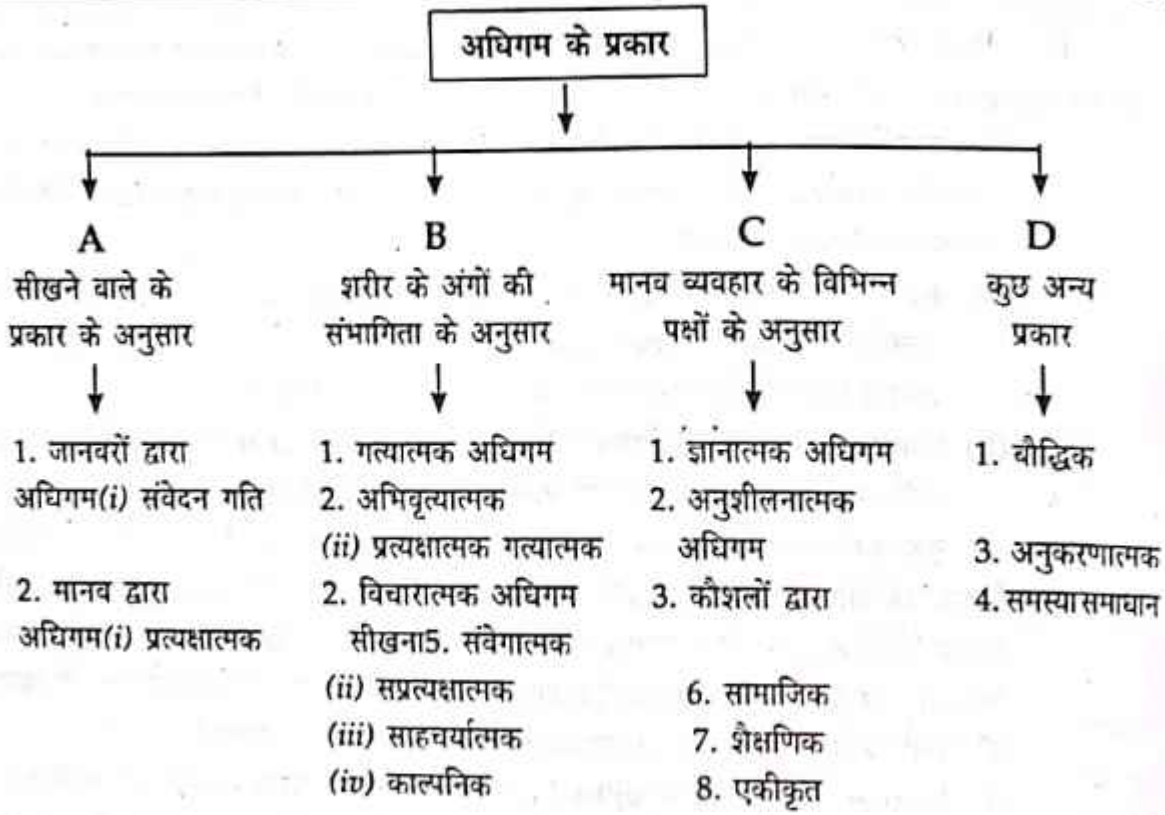
B. शरीर के अंगों की संभागिता के अनुसार अधिगम (According to the Involvement of Bodily Organs)–इस प्रकार के अधिगम को निम्नलिखित दो उप-वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. **गत्यात्मक अधिगम (Motor Learning)**–इस प्रकार के अधिगम में मांसपेशियों से युक्त क्रियाओं *(Muscular Activities)* को शामिल किया जाता है। गत्यात्मक अधिगम भी मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है–
   (i) **संवेदन गति अधिगम (Sensory Motor Learning)**–इस प्रकार के अधिगम के अन्तर्गत ज्ञानेन्द्रियों *(Sense organs)* के माध्यम से साधारण आदतों को अर्जित किया जाता है। उदाहरणार्थ, नर्सरी स्कूल के खेल मैदान में कौशलों को सीखना।
   (ii) **प्रत्यक्षात्मक गत्यात्मक अधिगम (Perceptual Motor Learning)**–इस प्रकार के अधिगम के अन्तर्गत आदतों तथा जटिल कौशलों को अर्जित किया जाता है। उदाहरणार्थ नृत्य करना, साइकिल चलाना, हाथ से लिखना, तैरना, संगीत के यंत्र को बजाना इत्यादि।
2. **विचारात्मक अधिगम (Ideational Learning)**–इस प्रकार के अधिगम के अन्तर्गत विचारों, संप्रत्ययों *(Concepts)* तथा मानसिक सहचर्यों *(Mental Associations)* को अर्जित किया जाता है। यह प्रायः व्यक्तिनिष्ठ प्रकृति का अधिगम होता है तथा इसमें मांसपेशियों की क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती। विचारात्मक अधिगम निम्न प्रकार का होता है–
   (i) **प्रत्यक्षात्मक अधिगम (Perceptual Learning)**–यह मुख्यतः या पूर्णतयाः ज्ञानेन्द्रियों, ठोस पदार्थों, बोले गए शब्दों या लिखित चिह्नों या चित्र बनाकर या प्रकृति के अध्ययन या पठन या भ्रमण करने के परिणामस्वरूप होता है।
   (ii) **संप्रत्यक्षात्मक अधिगम (Conceptual Learning)**–इसे अमूर्त अधिगम *(Abstract Learning)* भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत संप्रत्यय और अमूर्त विचारों को सीखा जाता है।
   (iii) **साहचर्यात्मक अधिगम (Associative Learning)**–यह वह अधिगम होता है जो इत्तफाक से या अचानक या सम्बन्ध से या प्रयोग द्वारा होता है। इसके अन्तर्गत सूचनाओं के एक निर्धारित क्रम में जोड़ना शामिल है। इसमें स्मरण करना तथा मानसिक प्रक्रियाओं में सम्बन्ध बनाना भी शामिल होता है।
   (iv) **काल्पनिक अधिगम (Imaginative Learning)**–वह प्रक्रिया जिसमें भूतकाल, वर्तमान काल तथा भविष्य काल की बातों को चेतना में एक निश्चित स्वरूप मिल जाए, उसे 'कल्पना' *(Imagination)* कहते हैं तथा वह प्रक्रिया जिसके द्वारा इन बातों को सीखा जाता है तथा समझा जाता है, उसे काल्पनिक अधिगम कहते हैं। उसमें आकृतियों *(Images)* को अर्जित करना तथा उन चीजों को समझना जिनका ज्ञानेन्द्रियों को अनुभव नहीं होता, शामिल है।

C. मानव-व्यवहार के विभिन्न पक्षों के अनुसार अधिगम (According to the Various Aspects of Human Behaviour)–मानव-व्यवहार के मुख्य तीन पक्ष हैं : ज्ञानात्मक *(Cognitive)*, भावात्मक *(Affective)* तथा क्रियात्मक *(Creative or Psycho-motor)* पक्ष।

1. **ज्ञानात्मक अधिगम (Cognitive Learning)**–इस प्रकार के अधिगम का सम्बन्ध ज्ञान, संप्रत्ययों तथा उनमें आपसी सम्बन्धों से होता है। स्कूल के सभी विषय इसी प्रकार के अधिगम का विकास करते हैं। स्कूल में, अध्यापक विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय विभिन्न तथ्यों का ज्ञान प्रदान करता है, विभिन्न प्रत्ययों में सम्बन्ध समझाता है तथा सीखने वालों को अपने अनुभवों के आधार पर किसी सामान्यीकरण पर पहुँचने में सहायता करता है।

Scanned with OKEN Scanner



2. **अभिवृत्यात्मक या दृष्टिकोण अधिगम (Attitudinal Learning)**—दृष्टिकोण और मूल्य मानव-व्यवहार द्वारा सीखे जाते हैं या अर्जित किए जाते हैं। इनका विकास अपने समूह के साथ सम्बन्धों के विकास के दौरान होता है। इस प्रकार के अधिगम के परिणामस्वरूप संवेग, स्थाई भाव *(Sentiments)* तथा आत्मानुभूति *(Self-Realization)* आदि सीखे जाते हैं।
3. **कौशलों द्वारा सीखना (Learning by Skills)**—इसमें अभ्यास द्वारा गत्यात्मक प्रकार का अधिगम शामिल है। स्कूल में कई प्रकार की गतिविधियों द्वारा इस प्रकार का अधिगम होता है, जैसे पढ़ना, लिखना, कोई विशिष्ट खेल खेलना। कौशलों के विकास के लिए जो मुख्य विधियों का प्रयोग किया जाता है, वे हैं प्रदर्शन विधि, प्रयोग विधि, प्रतिपुष्टि *(Feedback)* तथा अभ्यास *(Practice)*।

D. कुछ अन्य प्रकार (Some Other Types)—उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त कुछ और भी अधिगम के प्रकार हैं, जैसे—

1. **बौद्धिक अधिगम (Intellectual Learning)**—बालक के मानसिक विकास के साथ-साथ उसमें तर्कशक्ति बढ़ती है। संवेदन गति से प्राप्त होने वाले ज्ञान के विकास का अर्जन ही बौद्धि कहै।
2. **अनुशीलनात्मक अधिगम (Appreciational Learning)**—जब बालक में वस्तुओं एवं घटनाओं के प्रति गुण-दोष, अच्छाई-बुराई, सौन्दर्य आदि का बोध करने की क्षमता पैदा हो जाती है तो वह कविता, इतिहास, नाटक आदि के अध्ययन में अनुशीलनात्मक अधिगम ग्रहण करता है।
3. **अनुकरणात्मक अधिगम (Imitative Learning)**—अधिगम का अनुकरण किया जा सकता है। जैसे, नृत्य, कला, संगीत आदि का अधिगम अनुकरण द्वारा ही होता है।
4. **समस्या समाधान अधिगम (Problem-Solving Learning)**—इस प्रकार के अधिगम के परिणामस्वरूप समस्या का समाधान करने की योग्यता विकसित होती है तथा सही अनुक्रिया का चयन करने की क्षमता का विकास होता है।

Scanned with OKEN Scanner

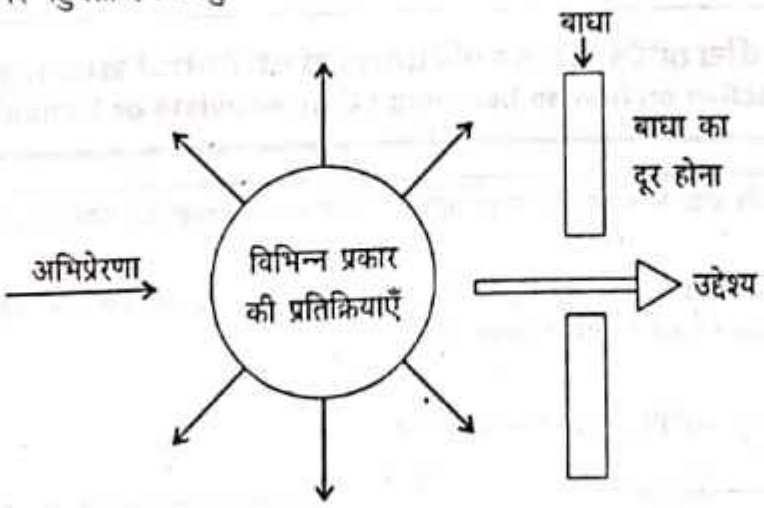
5. **संवेगात्मक अधिगम (Emotional Learning)**—जन्म के समय बच्चा डर, प्रेम, घृणा की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से नहीं कर पाता। लेकिन समय के साथ-साथ वह संवेगों की अभिव्यक्ति करने की योग्यता अर्जित कर लेता है।
6. **सामाजिक अधिगम (Social Learning)**—व्यक्ति विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत सामाजिक कार्य करना सीखता है जिसे सामाजिक अधिगम कहा जाता है।
7. **शैक्षणिक अधिगम (Academic Learning)**—इस प्रकार के अधिगम के अन्तर्गत वह ज्ञान सम्मिलित होता है जिसे बालक पुस्तकों एवं औपचारिक शिक्षा द्वारा ग्रहण करता है।
8. **एकीकृत अधिगम (Integrated Learning)**—इस प्रकार के अधिगम में उपरोक्त सभी प्रकार के अधिगम एक साथ होते हैं।

अधिगम की प्रक्रिया (Process of Learning)—किसी भी क्रिया को सीखने का अर्थ है—कुछ क्रियाओं को एक साथ सम्पन्न करके सम्पूर्ण रूप से किसी अनुभव को प्राप्त करना। सम्पूर्ण अनुभव अनेक क्रियाओं एवं उप-क्रियाओं से प्राप्त अनुभवों से बनता है। इस प्रकार अधिगम एक व्यापक प्रक्रिया है। अधिगम की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है। डेशिल *(Dashiel)* ने अधिगम प्रक्रिया के कुछ सोपानों का वर्णन किया है जोकि निम्नलिखित हैं—

(i) अभिप्रेरणा (Motivation)—वह हर कार्य जिसे मनुष्य करना चाहे, किसी न किसी अभिप्रेरणा से संचालित होता है। छात्र इसलिए पढ़ते हैं कि परीक्षा में पास होकर अच्छी नौकरी या व्यवसाय हासिल करें। अभिप्रेरणा ही उद्देश्य की ओर ले जाने का कार्य करती है। मानव जो भी कार्य करता है, उसके मूल में किसी न किसी प्रकार की अभिप्रेरणा निहित होती है। व्यक्ति की बहुत-सी आवश्यकताएँ होती हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए विभिन्न प्रेरक उत्पन्न हो जाते हैं। इन प्रेरकों के कारण व्यक्ति अधिक क्रियाशील हो जाता है। उद्देश्य-प्राप्ति के लिए व्यक्ति सदा ही अभिप्रेरित रहता है।

(ii) उद्देश्य (Goal)—किसी कार्य को सीखने का कोई न कोई उद्देश्य होता है। मनुष्य का भी अपनी आवश्यकताओं के अनुसार किसी भी क्रिया को सीखने का कोई न कोई उद्देश्य होता है। मनुष्य उस क्रिया को नहीं सीखना चाहता है जो उसके उद्देश्य की पूर्ति न करती हो। अतः व्यक्ति का व्यवहार उद्देश्यहीन नहीं होना चाहिए। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवहार करता है तथा उसका व्यवहार एक निश्चित दिशा की ओर केन्द्रित होता है। उद्देश्यों की स्पष्टता से व्यवहार को निश्चित दिशा प्राप्त होती है।

(iii) बाधा (Obstacle)—उद्देश्य की प्राप्ति के दौरान बाधाओं का उत्पन्न होना निश्चित होता है। इन बाधाओं की उपस्थिति में व्यक्ति अनेकों प्रकार का संभावित व्यवहार करता है। तभी वह इसके पश्चात् किसी उपयुक्त व्यवहार पर पहुँचता है। उपयुक्त व्यवहार होने पर इन बाधाओं को नियंत्रित किया जा सकता है।



चित्र : सीखने में बाधाओं का उत्पन्न होना

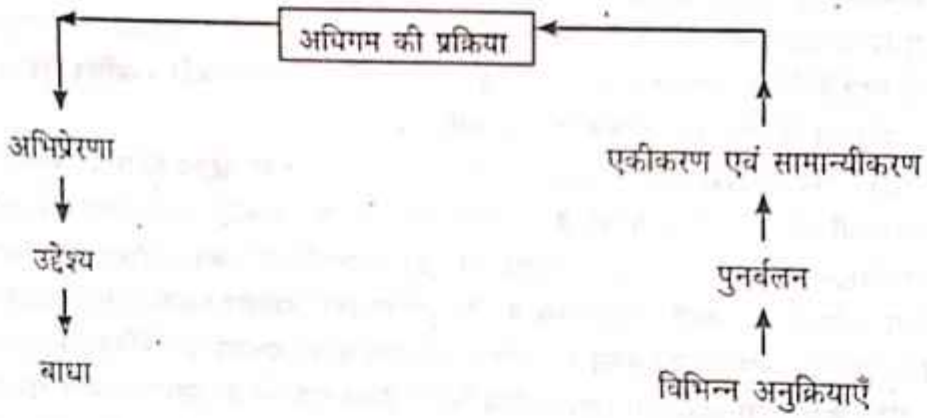
Scanned with OKEN Scanner

(iv) विभिन्न अनुक्रियाएँ (Various Responses)—बाधाओं को दूर करने के लिए तथा परिणामस्वरूप अपने उद्देश्य तक पहुँचने के लिए व्यक्ति विभिन्न अनुक्रियाएँ करता है। लेकिन सभी अनुक्रियाएँ सही नहीं होतीं। उद्देश्य को अर्जित करने के लिए वह कुछ विशेष प्रकार की अनुक्रियाएँ करता है।

(v) पुनर्बलन (Reinforcement)—पुनर्बलन के अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ तथा तथ्य आ जाते हैं जिनसे विवश होकर विद्यार्थी को क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। अध्यापक का आदेश, स्वयं की इच्छा, बड़ों के सम्मान तथा सामाजिक मर्यादा से प्रभावित होकर जो कार्य किए जाते हैं, वे सभी पुनर्बलन के अन्तर्गत आते हैं। जो भी अनुक्रिया सन्तोषजनक एवं सुखप्रद होती है वह पुनर्बलित हो जाती है। सभी असफल अनुक्रियाओं को भुला देना पड़ता है तथा सफल अनुक्रिया को स्थिति का सामना करने के लिए चुन लेना पड़ता है। उसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर व्यक्ति वैसे ही व्यवहार या अनुक्रिया को दोहराता है।

(vi) एकीकरण एवं सामान्यीकरण (Integration and Generalization)—अधिगम की क्रिया के विभिन्न अंगों का संगठन नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से जोड़ने के लिए किया जाता है। जब तक पूर्व एवं नवीन ज्ञान को जोड़ा नहीं जाता तब तक क्रिया सम्पूर्णता प्राप्त नहीं करती। इस प्रकार व्यक्ति नवीन सफल प्रतिक्रिया का पहले सीखी गई क्रियाओं में समन्वय स्थापित करता है। इसे नवीन ज्ञान का पूर्व ज्ञान से जोड़ना भी कहते हैं। ऐसा करने से नवीन प्रतिक्रिया उसके ज्ञान का एक अंग बन जाती है और उसका सम्पूर्ण ज्ञान एकीकृत हो जाता है।

अतः यह स्पष्ट है कि अधिगम किसी क्रिया विशेष का नाम नहीं है। अधिगम के अन्तर्गत अनेक उप-क्रियाएँ निहित होती हैं जो उसे पूर्णता प्रदान करती हैं।



◆◆◆

3.2. मानवीय अधिगम पर परिप्रेक्ष्य : संयोजनवादी या व्यवहारवादी [Perspective on human Learning : Connectivists or Behaviourist]

1. व्यवहारवाद से क्या अभिप्राय है? व्यवहारवाद कितने प्रकार का होता है? व्यवहारवाद के मूल तत्त्वों का वर्णन करें।
(What do you mean by Behaviourism? What are its types? Describe some basic elements of Behaviourism.)

अथवा

व्यवहारवाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
(Critically evaluate behaviourism.)

उत्तर : 'व्यवहारवाद' का अर्थ (Meaning of Behaviourism) : साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि 'व्यवहारवाद' एक आवृत्ति या दृष्टिकोण है (Behaviourism is an attitude.)। व्यवहार

Scanned with OKEN Scanner

वह होता है जिसे वस्तुएं करती हैं (Behaviour is what organisms do.)। व्यवहारवाद इसी धारणा पर आधारित है तथा इसका लक्ष्य है–व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा देना।

व्यवहारवाद निम्न बातों पर विश्वास करता है–

(i) मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है तथा मनोविज्ञान मन का विज्ञान (Science of mind) नहीं है।

(ii) व्यवहार की व्याख्या मानसिक घटनाओं या आन्तरिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के संदर्भ के बिना की जा सकती है।

(iii) मनोविज्ञान के अन्तर्गत सिद्धांत के विकास के दौरान या व्यवहार की व्याख्या के दौरान मानसिक शब्दावली (Mental Terms) या सम्प्रत्ययों का प्रयोग किया भी जाता है तब उनका व्यावहारिक सम्प्रत्ययों (Behavioural Concepts) में अनुवाद कर दिया जाना चाहिए या उनके स्थान पर व्यावहारिक शब्दावली (Behavioural Terms) का प्रयोग करना चाहिए।

ये तीनों तथ्य तार्किक रूप से भिन्न हैं। प्रत्येक तथ्य एक प्रकार के व्यवहारवाद का निर्माण करने में सहायक होता है।

व्यवहारवाद मनोविज्ञान का एक ऐसा उपागम है जो निरीक्षण योग्य तथा मापन योग्य व्यवहार पर बल देता है। (Behaviourism is an approach to psychology that emphasizes observable measurable behaviour.)

केवल 'व्यवहारवाद' वह सिद्धांत है जिसके द्वारा मनोविज्ञान में सत्य (Valid) आंकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं।

व्यवहारवाद मनोविज्ञान का वह स्कूल है जो व्यवहार के अवलोकन योग्य और परिमापन योग्य पक्षों के अध्ययन तक सीमित रहता है तथा जो व्यक्तिनिष्ठ प्रक्रियाओं को स्वयं में शामिल नहीं करता जैसे संवेग या अभिप्रेरक। (A school of psychology that confines itself to the study of observable and quantifiable aspects of behaviour and excludes subjective phenomena such as emotions and motives.)

व्यवहारवाद वह 'अधिगम परिपेक्ष' (Learning Perspective) है जिसमें कोई भी शारीरिक क्रिया व्यवहार होता है तथा उसे 'मनोविज्ञान का दर्शन' (Philosophy of Psychology) कहा जाता है। [Behaviourism also called the Learning Perspective (Where any physical action is a behaviour in a philosophy of psychology.)]

व्यवहारवाद इस धारणा पर आधारित है कि वस्तुएं जो कुछ भी करती हैं जैसे क्रिया, चिन्तन और भावना (Acting, Thinking and Feeling) उन्हें 'व्यवहारों'(Behaviours) में शामिल किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिए। किसी भी मनोवैज्ञानिक विकार (Psychological Disorder) का व्यावहारिक पद्धतियों में परिवर्तन या वातावरण में संशोधन करके उपचार किया जा सकता है।

व्यवहारवादी यह मानते हैं कि व्यवहार का अध्ययन किसी उपयुक्त पद्धति या विधि द्वारा, बिना किसी आन्तरिक मानसिक स्थिति पर विचार किये किया जा सकता है।

व्यवहारवाद के अनुसार किसी व्यक्ति की विभिन्न पर्यावरणीय उद्दीपनों के प्रति अनुक्रियाएं हमारे व्यवहार को स्वरूप प्रदान करती हैं।

चिन्तन का व्यवहारवादी सम्प्रदाय (Behavioural School of Thought) यह मानता है कि व्यवहारों की व्याख्या या वर्णन वैज्ञानिक रूप से किया जा सकता है। थार्नडाईक और वाटसन (Thorndike and Watson) ने अन्तः निरीक्षक (Introspection Method) को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने मनोविज्ञान को प्रयोग विधि तक ही सीमित रखा।

संज्ञानात्मक क्रांति (Cognitive Revolution) के परिणामस्वरूप 'व्यवहारवाद' कुछ पिछड़ सा गया। व्यवहारवाद और संज्ञानात्मक स्कूलों में यद्यपि मनोवैज्ञानिक विचारों में सैद्धांतिक रूप से सहमति नहीं थी, लेकिन फिर भी दोनों ने व्यावहारिक उपचारात्मक विधियों में सहयोग किया है। जैसे संज्ञानात्मक-व्यवहारात्मक

Scanned with OKEN Scanner

थैरेपी (Cognitive-Behavioural Therapy) ने कुछ उपचारों में अपनी उपयोगिता का प्रदर्शन किया है। उदाहरणार्थ–फोबिया (Phobias)

इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवहारवाद निम्न बातों पर आधारित है–

(i) कोई भी शारीरिक क्रिया व्यवहार होता है।
(ii) इसमें सभी व्यवहारों को शामिल किया जा सकता है।
(iii) किसी भी मनोवैज्ञानिक विकार (Disorder) का उपचार व्यवहार में परिवर्तन करके किया जा सकता है।
(iv) पर्यावरणीय उद्दीपनों के प्रति अनुक्रियाएं हमारे व्यवहार को स्वरूप प्रदान करती हैं।
(v) व्यवहारों की व्याख्या वैज्ञानिक रूप से की जा सकती है या की जानी चाहिए।
(vi) व्यवहारवाद निरीक्षण योग्य और मापन योग्य व्यवहार पर बल देता है।
(vii) व्यवहारवाद द्वारा सत्य आंकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं।
(viii) व्यवहारवाद एक दृष्टिकोण होता है।

वाटसन के अनुसार, व्यवहारवाद इस विश्वास पर आधारित है कि व्यवहार को मापा जा सकता है, उसे प्रशिक्षित किया जा सकता है तथा उसे परिवर्तित किया जा सकता है। (The term Behaviourism refers to the school of psychology founded by John B. Watson based on the belief that behaviours can be measured, trained and changed.)

व्यवहारवाद को 'व्यवहारात्मक मनोविज्ञान' (Behavioural Psychology) भी कहा जाता है।

'व्यवहारवाद' अधिगम का एक ऐसा सिद्धांत है जो इस विचार पर आधारित है कि सभी व्यवहार अनुबन्धन द्वारा अर्जित किया जाता है। अनुबन्धन पर्यावरण के साथ अन्तः क्रिया के माध्यम से होता है। व्यवहारवादी यह मानते हैं कि हमारी पर्यावरणीय उद्दीपनों के प्रति अनुक्रियाएं हमारे व्यवहारों को स्वरूप प्रदान करती हैं।

अनुबन्धन निम्नलिखित दो प्रकार का होता है–

1. प्राचीन अनुबन्धन (Classical Conditioning) : प्राचीन अनुबन्धन वह प्रविधि है, जिसका प्रयोग व्यवहारात्मक प्रशिक्षण में किया जाता है तथा जिसमें प्राकृतिक रूप से उपलब्ध उद्दीपनों को किसी अनुक्रिया के साथ जोड़ा जाता है। इसके बाद पहले से उपलब्ध तटस्थ उद्दीपन को प्राकृतिक रूप से उपलब्ध उद्दीपन के साथ जोड़ा जाता है। इस प्रकार तटस्थ उद्दीपन प्राकृतिक रूप से उपलब्ध उद्दीपन की उपस्थिति के बिना। अतः ये दोनों तत्त्वों को अनुबन्धित-उद्दीपन (Conditioned Stimulus) तथा अनुबन्धित-अनुक्रिया (Conditioned Response) कहा जाता है।

जेम्स ड्रीवर (James Drever, 1968) ने अनुबंधन का अर्थ इस प्रकार बताया है–'अनुबन्धन वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक अनुक्रिया होती है। इसके अतिरिक्त यह अनुक्रिया एक प्राकृतिक या सामान्य अनुक्रिया है।' (A process by which a response comes to be elicited by a stimulus object or situation other than that to which it is the natural or normal response.–James Drever 1968)

लेफ्राइनकोस (Lefrancois 1983) के अनुसार, 'अनुबन्धन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उद्दीपक (Stimulus) तथा अनुक्रिया (Response) के बीच एक साहचर्य (Association) स्थापित हो जाता है।

व्यवहारवादियों के अनुसार–

(i) जिस प्रकार का व्यवहार सीखना हो उसी प्रकार का उद्दीपन उस व्यक्ति को दिया जाता है।
(ii) बार-बार दिया जाने वाला उद्दीपन उस क्रिया को उत्पन्न करता है।
(iii) अनुक्रिया के रूप में होने वाला व्यवहार उस उद्दीपन से या उससे जुड़े अन्य कारकों से भी अनुबंधित हो जाता है।
(iv) अनुबन्धन स्नायुमंडल (Nervous System) में विकसित होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

2. **सक्रिय अनुबन्धन (Operant Conditioning) :** सक्रिय अनुबन्धन की मूल धारणा (Basic Assumption) यह है कि सीखने वाले व्यक्ति की क्रिया या व्यवहार का पुनर्बलन (Reinforcement) हो जाता है। यह स्थिति प्रायः किसी वातावरण में कार्यशील हो जाने पर ही पैदा होती है।

इस प्रकार का अनुबन्धन उसी प्रकार की प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति मुक्त अनुक्रिया परिस्थिति (Free Response Situation) में रहकर किसी व्यवहार को सीखता है। जैसे स्किनर बाक्स में प्राणी इधर-उधर स्वतंत्रतापूर्वक घूम सकता है। इस प्रकार की स्थिति में प्राणी को स्वयं ही अनुक्रिया करनी होती है न कि किसी विशेष उद्दीपन द्वारा उत्तेजित होने पर। जैसे–स्किनर के प्रयोग के दौरान चूहा बाक्स के लीवर को स्वयं ही दबाने का प्रयास करता है। इस दृष्टि से प्राणी पूरे वातावरण को देखते हुए अनुक्रिया करता है। इसलिए इसे सक्रिय अनुबन्धन (Operant Conditioning) कहते हैं।

एम.एल. बिगे (M.L. Bigge) के अनुसार, 'सक्रिय अनुबन्धन सीखने की वह प्रक्रिया है जिसमें अनुक्रिया निरंतर या संभावित होती है तथा उस समय सक्रियता की शक्ति भी बढ़ जाती है। (Operant Conditioning is the learning process where by a response is made mere probable or more frequent an operant is strengthened.–M.L. Bigge)

किसी भी प्रयोज्य (Subject) के लिए पुरस्कार या पुनर्बलन (Reward or Reinforcement) की उपलब्धि प्रयोज्य (Subject) की अनुक्रियाओं पर निर्भर करती है। अतः प्रयोज्य की अनुक्रियाएं पुनर्बलन का अनुदेशन (Instruction of Reinforcement) बन जाती हैं।

◆◆◆

1. थार्नडाइक का प्रयास एवं मूल सिद्धांत (Thorndike's Trial and Error Theory)

1. **थार्नडाइक के प्रयास एवं मूल सिद्धान्त के बारे में आप क्या जानते हैं? इस सिद्धांत की शैक्षिक उपयोगिता का वर्णन कीजिए।**
(What do you mean by Thornedike's Trial and Error Theory? Describe the educationla implications of this theory.)

अथवा

अधिगम की परिभाषा दीजिए। थार्नडाइक के अधिगम के नियमों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
(Define Learning. Explain briefly Thorndikes's laws of learning.)

अथवा

सीखने से आप क्या समझते हैं? सीखना कैसे होता है? थार्नडाइक के सीखने के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by learning? How learning takes place? Discuss Thorndike's Theories of learning.)

अथवा

थार्नडाइक के अधिगम के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता पर प्रकाश डालें।
(Throw light on Educational implications of Thorndike's theory of Learning.)

अथवा

थार्नडाइक के अधिगम के नियमों का शिक्षा के क्षेत्र में क्या महत्त्व है? सविस्तार वर्णन करें।
(What is the importance of Thorndike's laws of learning in education? Describe in detail.)

उत्तर–अधिगम के सिद्धान्त (Theories of Learning)–मनोविज्ञान का विकास दर्शन (Philosophy) से हुआ है। जहाँ तक मनोविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रश्न है, उनका मूल, दर्शनशास्त्र

Scanned with OKEN Scanner

में निहित रहा है, अधिगम के क्षेत्र में भी जितने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है, उन सबका मूल दर्शन शास्त्र में निहित है। दार्शनिक मनोविज्ञान ने मनोविज्ञान को मानसिक जीवन का विज्ञान माना है।

अधिगम के क्षेत्र में अनेक सिद्धांत प्रचलित हैं। सभी अधिगम सिद्धान्त इन तथ्यों पर आधारित हैं–

1. अधिगम की सीमाएँ क्या हैं ?
2. अभ्यास की अधिगम की प्रक्रिया में क्या भूमिका है ?
3. दण्ड पुरस्कार, प्रोत्साहन, आदि का सीखने की प्रक्रिया में क्या महत्त्व है ?
4. क्या एक सीखी हुई क्रिया किसी अन्य क्रिया को सीखने में योगदान करती है।
5. सीखने की प्रक्रिया में बोध (Understanding) तथा सूझ बूझ का क्या महत्त्व हैं ?
6. जब हम याद करते हैं या भूलते हैं तब क्या होता है ?

ये उपरोक्त सभी प्रश्न अधिगम की सम्पूर्ण क्रिया से जुड़े हुए हैं। सीखने की सीमा व्यक्ति की अधिगम की क्षमता है। व्यक्तिगत विभिन्न के कारण ही व्यक्ति भिनन भिन्न रूप में सीखता है। अधिगम की क्रिया की पुष्टि अभ्यास से होती है। अभ्यास को बनाये रखने के लिये अभिप्रेरणा के विभिन्न पक्षों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

अधिगम, मनोविज्ञान की महत्त्वपूर्ण क्रिया है। अधिगम को यदि मनोविज्ञान से अलग कर दिया जाये तो वह शून्य हो जायेगा। इसका मुख्य कारण है–व्यवहार का अस्तित्त्व। अधिगम या सीखी जाने वाली हर क्रिया व्यवहार द्वारा संचालित होती है।

मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक परीक्षणों ने सीखने के सिद्धान्तों की व्याख्या करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। एक सिद्धान्त को समझने के लिये दूसरे सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है। अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करने से पहले यह समझना अति आवश्यक है कि 'सिद्धान्त' (Theory) क्या है।

सिद्धान्त क्या है?
(What is Theory?)

सिद्धान्त की परिभाषा तथा व्याख्या करना आसान तथा सरल नहीं है क्योंकि इसमें अनेक मतभेद रहते हैं। सिद्धान्त के तीन कार्य होते हैं–

1. यह ज्ञान के क्षेत्र तक पहुँचने का साधन है। इसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता अपना मत प्रतिस्थापित करता है।
2. सिद्धान्त ज्ञान के विस्तृत भंडार को सारांश रूप से प्रस्तुत करता है। सारांश करते समय ज्ञान की शुद्धता समाप्त हो जाती है।
3. अधिगम के सिद्धान्त अधिगम के सजृनात्मक (creative) प्रयास को प्रस्तुत करते हैं।

अधिगम परिपक्वता पर निर्भर करता है। परिपक्वता व्यक्ति को अधिगम के योग्य बनाती है। मनोवैज्ञानिकों के समूह अधिगम के सिद्धान्त तथा नियमों के निर्धारण में एकमत नहीं रहे हैं।

प्रयास एवं भूल का सिद्धान्त
(Trial and Error Theory)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन थार्नडाईक (Thorndike) ने 1898 में किया था। उसके अनुसार, मानवों और जानवारों की सीखने की प्रक्रिया बहुत सीमा तक प्रयासों एवं भूलों (Trail and Error) पर निर्भर करती है। अपने इस सिद्धान्त के पक्ष में उसने जावनरों पर कुछ प्रयोग किये जो कि विश्व प्रसिद्ध हैं। इस उद्दीपन-अनुक्रिया का सिद्धान्त (Theory of Stimulus –Response) तथा संयोजनवाद (Connectionism) का सिद्धान्त भी कहा जाता है।

थार्नडाईक के अनुसार, **"सीखना सम्बन्ध स्थापित करना है तथा सम्बन्ध स्थापना का कार्य मस्तिष्क करता है। उसके अनुसार मनुष्य और पशु दोनों प्रयास और भूल द्वारा बहुत कुछ सीख लेते हैं। प्रयास जैसे**

Scanned with OKEN Scanner

जैसे बढ़ता जाता है, भूलें वैसे वैसे कम होती जाती हैं। अतः मनुष्य अपनी भूलों से ही सीखता रहता है। अतः हम अपनी गल्तियों से ही बहुत कुछ सीखते हैं।"

इस प्रकार प्रयास और भूल विधि में प्रयास करना, असफल होना, फिर तब तक प्रयास करते रहना शामिल है जब तक मनुष्य को सफलता नहीं मिल जाती।

प्रयास और भूल के सिद्धान्त की विशेषताएँ
(Characteristics of Trial and Error Theory)

(i) अधिगम ही संयोजन है (Learning is Connection)—उद्दीपन सिद्धान्त के अनुसार अधिगम की क्रिया में विभिन्न परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध स्थापित होता है। इस सत्य का परीक्षण थार्नडाईक ने चूहों, मछली तथा बिल्लियों पर प्रयोग करके किया तथा यह निष्कर्ष निकाला कि अधिगम की क्रिया का आधार स्नायुमंडल है। स्नायुमंडल (Nervous System) में एक स्नायु का दूसरी स्नायु (Nerve) से सम्बन्ध हो जाता है।

(ii) संयोजन सिद्धान्त (Connectionism)—थार्नडाईक के परिणाम यह बताते हैं कि संयोजन सिद्धान्त मनोविज्ञान के क्षेत्र में नवीन विचारधारा तो है ही, साथ ही वह अधिगम का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त भी है।

(iii) सम्पूर्ण इकाई नहीं (Not a complete unit)—संयोजनवाद मानव को सम्पूर्ण इकाई नहीं मानता। वह तो व्यवहार का विश्लेषण करता है। यह मत संयोगों (Bonds) को महत्त्व देता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में जितने अधिक संयोग स्थापित कर लेता है उसे उतना ही अधिक बुद्धिमान माना जाता है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोग
(Experiments done by various Psychologists)

1. थार्नडाईक द्वारा भूखी बिल्ली पर प्रयोग (Experiment on a hungry cat by Thorndike) – थार्नडाईक ने भूखी बिल्ली को एक बाक्स में बंद कर दिया। इस संदूक में इस प्रकार की व्यवस्था थी कि उसके अन्दर एक चिटकनी लगी थी जो बाक्स के दरवाज़े या ढक्कन को बंद करती थी। इस चिटकनी पर पैर पड़ते ही यह खुल जाता था। बाक्स के बाहर मछली का एक टुकड़ा रख दिया गया। सन्दूक या बाक्स में बंद बिल्ली इस टुकड़े को देख सकती थी। मछली का बाहर पड़ा टुकड़ा देखकर बिल्ली की उत्तेजना बढ़ी तथा वह यह 'प्रयास' (Trials) करने लगी कि वह किसी तरह उसके बाक्स से बाहर निकल आये और उस टुकड़े को प्राप्त कर ले। बाक्स के बाहर निकलने के लिये उसने उछल कूद करनी शुरू कर दी। इधर-उधर पजें मारने लगी। इस उछल-कूद की प्रक्रिया में संयोग से उसका एक पैर चिटकनी पर पड़ गया। चिटकनी खुलने से वह बाक्स खुल गया तथा बिल्ली को बाहर निकलने का रास्ता मिल गया। वह आ गई तथा बाहर पड़े मछली के टुकड़े को प्राप्त करके उसने अपनी भूख मिटाई।

थार्नडाईक ने यह प्रयोग बिजली पर कई बार दोहराया गया। शुरू शुरू में प्राथमिक प्रयासों (Trials) की संख्या बहुत अधिक थी, लेकिन धीरे-धीरे यह कम होती चली गई। बार बार इस प्रयोग को दोहराने पर एक स्थिति ऐसी भी आ गई जब बिल्ली ने कोई भूल किये बिना पहली बार में ही चिटकनी को पाँव दबा कर खोल लिया तथा बाहर जाकर मछली के रूप में अपना भोजन प्राप्त कर लिया।

इस प्रयोग को थार्नडाईक ने लगातार 10 दिन तक किया। उसने बिल्ली को कुल 5 प्रयास दिये। अन्त में बिल्ली एक ही प्रयास द्वार बिना त्रुटि किये बाक्स खोलना सीख गई। इस प्रयोग में कुछ आवश्यक तत्वों ने कार्य किया जो कि निम्नलिखित हैं—

प्रयास और भूल द्वारा सीखने के आवश्यक तत्त्व
(Essential Elements or features of Trial and Error Learning)

1. अभिप्रेरणा (Motivation)—सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की मुख्य भूमिका होती है। इसके अभाव में इस सिद्धान्त के अनुसार सीखना कठिन है। प्रारम्भ में सीखने वाला व्यक्ति समायोजन करने में

Scanned with OKEN Scanner

असमर्थ होता है। किसी प्रकार के तनाव के अभाव में व्यक्ति तत्काल स्वयं को समायोजित करने में सफल होता है तथा उसके व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं होता। बाक्स में भूखी बिल्ली के लिये बाहर आना तथा मछली खाने का उद्दीपन उसे कुछ प्रयास करने के लिये अभिप्रेरित करता है। यदि किसी संतुष्ट बिल्ली को बाक्स में बंद किया जाये तो कोई उद्दीपन उत्पन्न नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में कोई भी व्यक्ति कुछ नहीं सीख सकता।

2. बाधा (Barrier or Obstacle)—किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये किसी बाधा का होना आवश्यक है। अन्यथा कोई भी व्यक्ति कुछ भी नहीं सीख पायेगा। यदि कोई बाधा नहीं होती तो कोई भी कुछ भी सीख नहीं पायेगा। इसी बाधा को ही दूर करने के प्रयास किये जाते हैं।

3. निरर्थक अनुक्रियाएँ (Random Movements)—इस प्रयोग के दौरान व्यक्ति कुछ निरर्थक अनुक्रियाएँ करता है। परन्तु ये निरर्थक अनुक्रियाएँ हमारे लिये सहायक सिद्ध होती हैं क्योंकि इन्हीं में से हमें उन अनुक्रियाओं का पता चलता है जो हमारी समस्या के समाधान के लिये अनुकूल नहीं होती। अतः इन निरर्थक क्रियाओं को दोहराया नहीं जाता। प्रो. डेशियल (Prof Dashiell) के अनुसार, 'निरर्थक अनुक्रियाएं हमें अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान करती हैं।' (Random responses help us is an indirect manner.)

4. व्यर्थ अनुक्रियाओं को दूर करना (Elimination of wrong responses)—इस विधि में व्यर्थ, गलत और असफल अनुक्रियाओं को एक एक कर के दूर किया जाता है। इससे सही अनुक्रिया सीखी जा सकती है।

5. आकस्मिक सफलता (Chance Success)—निरर्थक अनुक्रियाओं के परिणामस्वरूप आकस्मिक रूप से सफल-अनुक्रिया अर्जित की जा सकती हैं।

6. चयन (Selection)—निरर्थक अनुक्रियाओं में से सही अनुक्रिया का चयन कर लिया जाता है अर्थात् वह व्यवहार जिसके द्वारा बाक्स की चिटकनी तथा दरवाज़ा खुल जाते हैं।

7. स्थिरता (Fixation)—अन्त में बिल्ली सभी त्रुटियों और गलत प्रयासों को छोड़ कर यही प्रयत्न करना सीख गई तथा वह बिना किसी त्रुटि के पहले ही प्रयास में दरवाज़ा खोलना सीख गई। इस प्रकार हम निरन्तर प्रयास करते हुए अपनी भूलों या त्रुटियों को कम करते चले जाते हैं और इसी तरह से ग़लत अनुक्रियाओं (Incorrect Responses) के स्थान पर सही अनुक्रियाओं (Correct Responses) को व्यक्त करना सीख जाते हैं।

उपरोक्त विवरण के आधार पर प्रयास और भूल विधि का विश्लेषण किया निम्न प्रकार से किया जा सकता हैं—

1. सीखने वाले व्यक्ति का अपना उद्देश्य या लक्ष्य होता है। उपरोक्त प्रयोग में उद्देश्य है बाक्स से बाहर निकलना तथा भोजन ग्रहण करना।
2. निश्चित उद्देश्य के पश्चात्, विभिन्न प्रकार की क्रियाएं की जाती है।
3. इन अनुक्रियाओं में से कुछ अनुक्रियाएं उद्देश्य अर्जित करने में सहायता देती हैं।
4. वह प्रतिक्रिया जो उद्देश्य अर्जित करने में सहायक हो, आदत का हिस्सा बन जाती है। जब वैसी ही स्थिति उत्पन्न होती है तो वह वही अनुक्रिया का प्रयोग करता है और वे भी अधिक कुशलता से।
5. वे प्रतिक्रियाएँ जो उद्देश्य अर्जित करने में सहायक नहीं होती, आलोप हो जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रयास और भूल विधि एक प्रकार का क्रम होता है तथा इसके द्वारा अपेक्षित परिणाम का अनुमान लगाया जा सकता है।

2. मैकडल द्वारा चूहे पर किया गया प्रयोग (Rat experiment by McDougall)—इस प्रयोग में भी चूहे को एक ऐसे छोटे बक्से में बन्द कर दिया गया जिसका रास्ता छुपा हुआ था। चूहे ने 165 बार ग़लतियां करने के पश्चात् अन्त में सही रास्ता ढूंढ ही लिया।

Scanned with OKEN Scanner

3. मार्गन द्वारा कुत्ते पर किया गया प्रयोग (Dog experiment by Morgan)—एक कुत्ते को एक ऐसे लोहे के पिंजरे में बंद कर दिया गया जिसका दरवाज़ा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता था। कुत्ते ने कई प्रयास किये और अन्त में दरवाज़ा खोलने में सफल हो गया।

सीखने के नियम
(Laws of Learning)

उपरोक्त अधिगम सिद्धान्तों में थार्नडाईक द्वारा किये गये प्रयोग काफी प्रसिद्ध हुए। उसने प्रयास और भूल के सिद्धान्त को आधार बना कर सीखने सम्बन्धी कई नियमों का प्रतिपादन किया। इन नियमों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं—

1. प्रमुख नियम (Main Laws) 2. गौण नियम (Secondary Laws)

1. प्रमुख नियम
(Main Laws)

(a) तत्परता का नियम (Laws of Readiness)—इस नियम के अनुसार जब कोई व्यक्ति कुछ सीखने के लिये तत्पर होता है तब वह बड़ी तीव्रता तथा शीघ्रता से सीखता है और परिणामस्वरूप उसे संतुष्टि अर्जित होती है। इस नियम को प्रेरणा का नियम (Law of Motivation) भी कहा जाता है। वुडवर्थ (Woodworth) ने इसे मानसिक तैयारी का नियम (Law of Mental Set) कहा है। इसके अनुसार ही, यदि हम सीखने के लिये तैयार नहीं होते तो हम शीघ्रता और तीव्रता से नहीं सीख सकते। अतः किसी भी कार्य को सीखने के लिये मानसिक तौर पर व्यक्ति को तैयार रहना चाहिए।

शैक्षिक उपयोगिता (Educational Implications)—इस नियम का शैक्षिक महत्त्व इस प्रकार है—

1. ध्यान रुचि पैदा करना (Arousing attention and Interest)—तत्परता के नियम का पालन करने से विद्यार्थियों में ध्यान तथा रुचि को उत्पन्न करना सुगम हो जाता है।

2. जिज्ञासा पैदा करना (Arousing curiosity)—सीखने के दौरान विद्यार्थी में जिज्ञासा का होना अति आवश्यक है। इस नियम का पालन करके हम कक्षा में विद्यार्थियों के मन में जिज्ञासा उत्पन्न कर सकते हैं।

3. विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना (Motivating the students)—अभिप्रेरणा को सीखने या अधिगम हृदय माना जाता है। यदि विद्यार्थी को उपयुक्त अभिप्रेरणा मिले तो वह कुछ सीखने के लिये मानसिक रूप से तैयार हो जाता है तथा अपनी सारी शक्तियाँ सीखने की प्रक्रिया में झोंक देता है। अतः इस नियम का अनुकरण करते हुए विद्यार्थियों को अभिप्रेरित किया जाना चाहिए।

4. नवीन ज्ञान के लिये तैयारी (Readiness for new knowledge)—कक्षा में अध्यापक को चाहिए कि वह बच्चे को नया ज्ञान देने से पूर्व उन्हें मानसिक रूप से तैयार करे। इस तैयारी में बच्चों की वैयक्तिक विभिन्नताओं (Individual Differences) की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है।

5. जबरदस्ती कार्य नहीं (No compulsion)—अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों को नवीन ज्ञान सीखने या नई क्रिया करने के लिये उस समय तक बाध्य न करे जब तक कि वे मानसिक और शारीरिक रूप से तैयार नहीं हो जाते। तब तक कोई कार्य नहीं सिखाया जाना चाहिए।

6. निहित योग्यताओं का पता लगाना (To explore hidden abilities)—अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों की रुचि, अभिरुचि, योग्यता, क्षमता आदि का परीक्षण कर ले। ऐसा करने से बालकों में निहित योग्यताओं और क्षमताओं का पता चल जायेगा।

(b) प्रभाव का नियम (Law of Effect)—इस नियम को 'प्रसन्नता एवं दुख का नियम' (Law of Pleasure and Pain) या 'संतुष्टि एवं कष्ट का नियम' (Law of Satisfaction and Annoyance) भी कहा गया है। हर कार्य का कुछ-न कुछ प्रभाव अवश्य होता है। जैसे, कई कार्यों का अन्त प्रसन्नतापूर्वक होता है तथा कईयों का दुखदायक संतुष्टि अथवा प्रसन्नता से जुड़े कार्यों को बार बार दोहराने से अधिगम

Scanned with OKEN Scanner

प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। वे कार्य जिनका सम्बन्ध कष्ट, दुख, दंड इत्यादि से होता है, नहीं दोहराये जाते तथा उनका प्रभाव या शक्ति भी दुर्बल पड़ जाती है।

थार्नडाईक के अनुसार, जब किसी परिस्थिति या अनुक्रिया के बीच एक सुधार योग्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तथा उसके साथ संतोषजनक स्थिति या अवस्था का सम्पर्क हो जाता है, तो ऐसे सम्बन्ध की शक्ति बढ़ती है, परन्तु जब उसके साथ कष्ट जुड़ा होता है तो उसकी शक्ति कम हो जाती है।

शैक्षिक उपयोगिता
(Educational Implications)

प्रभाव के नियम का शैक्षिक महत्त्व निम्न प्रकार से है–

1. उचित मनोभावों का विकास (Development of desirable sentiments)–इस नियम के अनुकरण से विद्यार्थियों में उचित मनोभावों को विकसित किया जा सकता है। सकारात्मक (Positive) मनोभावों को परिस्थितियों की संतोषजनक अवस्था के साथ जोड़ा जा सकता है।

2. रुचि का सम्बन्ध (Relationship of Interest)–रुचि का इस नियम के साथ सीधा एंव स्पष्ट सम्बन्ध है। रुचि से संतोष मिलता है तथा इससे सीखने की प्रक्रिया प्रभावशाली होती है।

3. स्मरण शक्ति का सम्बन्ध (Relationship of Memory)–प्रभाव के नियम के साथ स्मरण शक्ति का भी सीधा सम्बन्ध पाया गया है। रोचक चीज़ों की अपेक्षा शीघ्र याद हो जाती है तथा अधिक समय तक याद रहती हैं।

4. अच्छी आदतों का निर्माण (Formation of good habits)–इस नियम का पालन करने से बच्चों में अच्छी आदतें और उत्तम दृष्टिकोणों का विकास होता है तथा दंड या असंतुष्टि, के परिणामस्वरूप बुरी आदतों को भी दूर किया जा सकता है।

5. क्रोध तथा ईर्ष्या के संवेग (Emotion of anger and jealousy)–इस नियम की मदद से क्रोध तथा ईर्ष्या के संवेगों को दूर या कम किया जा सकता है क्योंकि क्रोध और ईर्ष्या को असंतुष्टि या कष्ट की अवस्था से सम्बद्ध किया जा सकता है।

6. पुरस्कार और दंड के सिद्धान्त की निर्भरता (Dependence of reward and punishment)–पुरस्कार और दंड का सिद्धान्त इस नियम पर निर्भर करता है। अच्छे व्यवहार का सम्बन्ध पुरस्कार और बुरे व्यवहार का सम्बन्ध दंड के साथ जोड़ा जा सकता है।

7. कदाचारी व्यवहार का सुधार (Rectifying delinquent behaviour)–कदाचारी व्यवहार को दंडित करके उसमें सुधार किया जा सकता है।0

प्रभाव के नियम के दोष (Limitations of Law of Effect)–इस नियम के कुछ दोष भी हैं जैसे–

1. कई परिस्थितियों में देखा गया है कि पुरस्कार की अपेक्षा दंड का प्रभाव अधिक होता है।
2. ऐसा भी देखा गया है कि रोचक अनुभवों की अपेक्षा अरोचक अनुभवों को अधिक लम्बे समय तक याद रखा जाता है या याद रहते हैं।
3. कई बार एक परिस्थिति में कुछ कार्य संतोष प्रदान करते हैं लेकिन किसी अन्य परिस्थिति में वही कार्य उसे कष्ट दे सकता है।
4. कई बार संतोष एवं कष्ट देने वाले कार्यों की पहिचान कठिन हो जाती है।

(c) अभ्यास का नियम (Law of Exercise)–इस नियम का दूसरा नाम है– उपयोग तथा अनुपयोग का नियम (Law of use and disuse)। यह कहावत प्रसिद्ध है कि- 'करत करत अभ्यास के जड़मति हो सुजान' (Practice makes a man perfect.)। अतः जिस कार्य को हम बार बार करते हैं उसके चिन्ह मस्तिष्क में दृढ़ हो जाते हैं। इस नियम के अन्तर्गत दो उप-नियम आते हैं–

1. उपयोग का नियम (Law of Use)–यह नियम इस बात पर बल देता है कि मनुष्य उसी कार्य को बार बार करता है जिसकी वह उपयोगिता समझता है। जब परिस्थिति तथा अनुक्रिया के बीच संशोधन

Scanned with OKEN Scanner

योग्य सम्बन्ध बन जाए तो अन्य बातें समान होने पर उस सम्बन्ध की शक्ति बढ़ जाती है। यदि हम किसी कार्य का अभ्यास करते हैं या उसे बार बार उपयोग करते हैं तो हम उसे सरलतापूर्वक करना सीख जाते हैं तथा इस प्रकार उस कार्य में कुशल हो जाते हैं।

2. अनुपयोग का नियम (Law of Disuse)—अनुपयोग के नियम के अन्तर्गत अन्य बातें समान रहने पर भी यदि क्रिया अनुपयोगी होती है तो संयोगों के निर्धारण में यह क्षीण हो जाती है।

साधारण शब्दों में अभ्यास का नियम हमें यह बताता है कि यदि सीखने की किसी क्रिया को बार बार दोहराया जाए तो वह अधिक प्रभावपूर्ण और स्थाई बन जाती है। इसके विपरीत, यदि सीखे हुए कार्य को दोहराने का अवसर नहीं मिलता तो विस्मृति (Forgetting) की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

शैक्षिक उपयोगिता (Educational Implications)—अभ्यास के नियम की शैक्षिक उपयोगिता निम्नलिखित हैं—

1. मौखिक अभ्यास (Verbal Practice)—अध्यापकों को चाहिए कि वह जो कुछ भी पढ़ाएँ उसका मौखिक अभ्यास अवश्य करवाएं। मौखिक अभ्यास से पढ़ी गई सामग्री की पुनरावृत्ति होती है तथा अधिगम प्रभावशाली होता है।

2. दोहराना (Repetition)—पढ़ाये गये पाठों को समय समय पर दोहराते रहना चाहिए। इससे बालकों का मस्तिष्क ज्ञान के प्रति सचेत रहता है। पाठ्य-सामग्री को दोहराने का भी अवसर मिलता रहता है।

3. वाद-विवाद (Discussion)—अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों में विषय के अनुकूल वाद-विवाद कराए। वाद-विवाद से अभ्यास तो होता ही है, तर्क, समर्थन आदि से विषय को समग्र रूप से प्रस्तुत करने से वह और भी प्रभावशाली ढंग से सीख लेता है।

4. आदतों का निर्माण (Formation of habits)—अच्छे कार्यों को यदि दोहराया जाये तो वे आदतों का रूप धारण कर लेते हैं। अतः अध्यापक को चाहिए कि बच्चे अच्छे कार्यों का अभ्यास करते रहें।

5. बुरी आदतों का समापन (Elimination of bad habits)—यदि बच्चों को अच्छे कार्यों का अभ्यास कराया जाये तो बुरी आदतें स्वयं ही साथ छोड़ जाती है। इसी प्रकार यदि बच्चों को उनकी आदतों का सचेत अभ्यास कराया जाये, तो भी वे अपनी उस आदत को छोड़ने का प्रयास करेगा। वह अपनी ग़ल्ती के लिये सचेत हो जाता है।

6. लिखाई में सुधार (Improvement in handwriting)—इस नियम का पालन करने के परिणामस्वरूप कक्षा में बच्चों की लिखाई में सुधार किया जा सकता है। छोटे बच्चों को हर रोज़ लिखने के लिये कहा जाता है। इससे उनकी लिखाई में सुधार होता है।

7. शुद्ध उच्चारण (Correct Pronunciation)—अभ्यास द्वारा ही उच्चारण में शुद्धता लाई जा सकती है तथा बच्चे गल्त उच्चारण को त्यागने लगते हैं।

8. विस्मृति कम करना (Reducing Forgetting)—अभ्यास से कार्य स्थाई होते हैं तथा विस्मृति कम होने लगती है।

9. कौशलों एवं कलाओं का विकास (Development of skills and arts)—अभ्यास द्वारा संगीत, चित्रकारी, टाईप करना, शार्टहैंड और खेल आदि कलाओं का तथा कौशलों का विकास किया जा सकता है।

2. गौण नियम
(Secondary Laws of Learning)

1. बहुविध अनुक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)—इस नियम के अनुसार, अधिगम के उद्दीपन (Stimulus of Learning) के फलस्वरूप अनेक अनुक्रियाएं होती हैं। जब भी अनुक्रिया का फल (Reward) मिलता है, ऐसी अनेक अनुक्रियाएँ प्रकट होती हैं। जब भी सीखने वाले के समक्ष समस्या आती है, वह एक के बाद दूसरा प्रयास उसे हल करने के लिये करता है, जब वांछित व्यवहार उत्पन्न हो जाता है, सफलता मिल जाती है और अधिगम संभव हो जाता है। इस नियम का मूल अभ्यास का नियम

Scanned with OKEN Scanner

है। एक व्यक्ति के एक परिस्थिति के बारे भिन्न भिन्न उत्तर होते हैं, जैसे थार्नडाईक की बिल्ली ने पिंजरे से बाहर निकलने के लिये बहुत से बहुमुखी प्रयत्न किये। किसी विषय को प्रारम्भ करने से पूर्व छात्रों से समस्या से सम्बन्धित प्रश्न किये जाते हैं। छात्र उनके उत्तर देते हैं। ये उत्तर अनेक होते हैं। इन उत्तरों में व्यर्थ के उत्तर कम होते हैं। छात्र अध्यापक की सहायता से सही उत्तर देने लगते हैं।

2. रूझान या मनोवृत्ति का नियम (Law of Set or Attitude)—इस नियम का सम्बन्ध अधिगम की मानसिक स्थिति से है। यदि छात्र मानसिक रूप से किसी क्रिया को सीखने के लिये तैयार नहीं है तो वे नये कार्य को नहीं सीख सकेंगे। अधिगम के दौरान व्यक्ति की मनोवृत्ति उसके रूझान (Attitude) द्वारा निर्धारित होती है। रूझान या मनोवृत्ति केवल यही निर्धारित नहीं करते कि व्यक्ति किसी परिस्थिति में क्या करेगा, यह भी पता चलता है कि कौन सी बातों से उसे आनन्द प्राप्त होगा और किन से असंतोष होगा। इसी आधार पर थार्नडाईक ने आकांक्षाओं के स्तर (Level of Aspiration) की धारणा पर कार्य किया।

3. आंशिक क्रिया का नियम (Law of Partial Activity)—इस नियम के अनुसार व्यक्ति इस योग्या होता है कि आवश्यक तत्त्व को अनावश्यक तत्त्व से अलग कर सके। सीखने वाला अधिगम या समस्या के विभिन्न तत्त्वों में से वास्तविक तत्त्वों का चयन करने में समर्थ होता है। व्यक्ति किसी समस्या को हल करने के लिये आवश्यक पदों (Items) का चयन करता है तथा अनुक्रिया करता है।

4. सादृश्ता द्वारा अनुक्रिया (Response by Analogy)—नियम का आधार पूर्वानुभव (Past Experience) तथा पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge) होता है। पढ़ाते समय विषय की समानता तथा असमानता का जीवन से सम्बन्ध बताना आवश्यक है। पढ़ाये गये विषयों का सम्बन्ध दैनिक जीवन की क्रियाओं से जोड़ने पर पाठ का सात्मीकरण (Assimilation) हो जाता है तथा बालक उसे अच्छी प्रकार सीख लेते हैं।

5. साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)—इस निमय के अन्तर्गत प्राप्त ज्ञान का उपयोग अन्य परिस्थितियों में किया जाता है। ऐसा तभी होगा जब अध्यापक छात्रों के सामने वैसी ही परिस्थिति प्रस्तुत करेगा। थार्नडाईक ने बिल्ली को मछली के टुकड़े के साथ साहचर्य कर खड़ा होना सिखाया। दैनिक जीवन में हम एक चुटकी बजाकर पालमू कुत्ते को खड़ा होना सिखा देते हैं।

6. नवीनता का नियम (Law of Recency)—इस नियम के अनुसार नवीन चीज़ शीघ्र याद होती है। जैसे, विद्यार्थियों को परीक्षा से कुछ देर पहले अपनी पुस्तकों की दोहराई करनी चाहिए।

7. प्राथमिकता का नियम (Law of Primary)—यह कथन प्रसिद्ध है कि— पहला प्रभाव अन्तिम प्रभाव होता है (First impression is the last impression)। अतः आरम्भिक अवस्था में अर्जित प्रभाव ही स्थाई होता है। इसलिये बच्चों और अध्यापकों को आरम्भ से ही गम्भीर होना चाहिए।

8. स्वामित्व का नियम (Law of Belongingness)—यह नियम हमें बताता है कि यदि उत्तर स्थिति से सम्बन्ध रखता हो तो सम्बन्ध को बहुत जल्दी याद किया जा सकता है।

9. उत्तेजक की तीव्रता का नियम (Law of Intensity of Stimuli)—इस नियम के अनुसार यदि उत्तेजक या उद्दीपन तीव्र है तो उसकी अनुक्रिया भी तीव्र होगी तथा यदि उद्दीपन दुर्बल है तो उसकी अनुक्रिया भी दुर्बल ही होगी। स्कूलों में परीक्षाएँ विद्यार्थियों के लिये शक्तिशाली उद्दीपन का कार्य करती हैं।

प्रयास और भूल के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता
(Educational Implications of Trial & Error Theory)

1. प्रेरणा का महत्व (Importance of Motivation)—थार्नडाईक के इस सिद्धान्त में थार्नडाईक ने अभिप्रेरणा पर अधिक बल दिया है। उसके अनुसार कक्षा में शिक्षण से पहले तथा शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों को अभिप्रेरित किया जाना चाहिए। इसके लिये अध्यापक प्राकृतिक और कृत्रिम अभिप्रेरणा (Natural and Artificial Motivation) की सहायता ले सकता है। जैसे पुरस्कार, दंड, प्रशंसा, लक्ष्य का पूर्व निर्धारण इत्यादि।

Scanned with OKEN Scanner

2. सरल से कठिन (From Simple to Difficult)—यह सिद्धान्त कार्य के सरल से कठिन की ओर चलने पर बल दिया जाता है। इसलिये अध्यापक को चाहिए कि वह साधारण से जटिल, ज्ञात से अज्ञात तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष की ओर चले।

3. कौशलों का विकास (Development of Skills)—इस सिद्धान्त के द्वारा विद्यार्थियों में कौशलों का विकास किया जा सकता है। जैसे टाईप करना, गाना, संगीत सीखना, नाचना इत्यादि।

4. काम करके सीखना (Learning by Doing)—यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि विद्यार्थियों का स्वयं हाथ से काम करके सीखने के अवसर देने चाहिए। इससे विद्यार्थियों के सप्रत्यय (Concepts) अधिक स्पष्ट होते हैं।

5. वैज्ञानिक आधार (Scientific Inventions)—विश्व में कई वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य प्रयास और भूल के सिद्धान्त पर ही आधारित है तथा कई प्रयासों का परिणाम हैं।

6. सूझ बूझ द्वारा सीखने में प्रयोग (Useful in Learning by insight)—सूझ बूझ द्वारा सीखने की प्रक्रिया में प्रयास और भूल विधि का समावेश रहता है। इसके बिना सूझ बूझ विधि का प्रयोग नहीं हो सकता।

7. अभ्यास द्वारा सीखना (Learning by Experience)—यह बात सुपरिचित है कि अभ्यास व्यक्ति को दक्ष बना देता है (Practice makes a man perfect)। अर्थात् अधिगम में अभ्यास का विशेष स्थान है। अभ्यास के माध्यम से अध्यापक विद्यार्थी को अधिक से अधिक सिखा सकता है।

8. लक्ष्य केन्द्रित (Goal-centred)—हर अधिगम प्रक्रिया लक्ष्य-केन्द्रित होती है। जब भी कोई व्यक्ति लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास करता है तो वह अवश्य सीखता है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को लक्ष्य से सम्बद्ध करें। इससे विद्यार्थी के अधिगम प्रयासों में वृद्धि होगी।

9. अच्छी आदतों का विकास (Development of Good Habits)—इस सिद्धान्त की सहायता से बच्चों में अच्छी अच्छी आदतों का विकास होता है, जैसे बड़ों का आदर करना, सदा सत्य बोलना, परिश्रम करना, धैर्य रखना आदि।

10. स्व-अधिगम (Self Learning)—इस सिद्धान्त के अन्तर्गत विद्यार्थी स्वयं सीखने का प्रयास करने लग जाते हैं। वे प्रयास करते हैं तथा त्रुटियाँ भी करते हैं लेकिन धीरे धीरे ये त्रुटियाँ कम होती चली जाती हैं। छोटे बच्चों का अधिगम इसी प्रकार होता है अर्थात् वे भाषा गणित आदि इसी विधि से सीखते हैं।

11. मंद बुद्धि बालकों के लिये लाभकारी (Useful for Mentally Retarded Chlidren)—प्रयास और भूल का सिद्धान्त मंद-बुद्धि बालकों की शिक्षा के लिये एक उत्तम विधि है। मंद बुद्धि में बालक विभिन्न प्रयास करते हैं तथा कई त्रुटियाँ होती हैं। इन त्रुटियों पर विभिन्न तरीकों से नियंत्रण किया जाता है।

12. सीखने की अनियमित गति (Irregular Learning pace)—सीखने की गति सदा एक समान नहीं रहती। उनके सीखने की गति कभी कम होती है तथा कभी अधिक। अतः यदि विद्यार्थियों धीमी या गति से सीखता है तो उसे डाँटना नहीं चाहिए, बल्कि उसके सीखने की धीमी गति पर नज़र डाल कर तथा उसके कारणों का पता लगा कर कोई उपाय ढूँढना चाहिए।

13. सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास (Development of Positive Attitude)— विद्यार्थी में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकसित होना आवश्यक होता है। इसके लिये थार्नडाईक का सिद्धान्त बहुत सहायक होता है। सकारात्मक दृष्टिकोण से बच्चों में हीन भावना का विकास नहीं होता।

14. क्रमिक प्रक्रिया (Gradual Process)—यह सिद्धान्त इस बात में विश्वास करता है कि अधिगम एक क्रमिक प्रक्रिया है। विद्यार्थी धीरे धीरे सीखते हैं। धीरे धीरे सीखने वाले विद्यार्थियों पर शीघ्रता से सीखने के लिये दबाव नहीं डालना चाहिए। इससे उनकी अधिगम प्रक्रिया पर कुप्रभाव पड़ता है।

Scanned with OKEN Scanner

प्रयास और भूल सिद्धान्त की सीमाएँ
(Limitations of Trial and Error Theory)

(i) इस सिद्धान्त में बुद्धि के प्रयोग को कोई महत्त्व नहीं दिया गय। यह विधि यांत्रिक (Mechanical) है। इस विधि में कई निरर्थक क्रियाएँ होती हैं।

(ii) इस विधि में समय और शक्ति अधिक नष्ट होती है। इसमें व्यर्थ के प्रयासों में समय अधिक नष्ट होता है।

(iii) इस विधि में अधिगम का स्थानान्तरण (Transfer of Learning) बहुत कम होता है।

(iv) इसमें अन्तः दृष्टि (Insight) का अभाव रहता है जो कि इस विधि के लिये आवश्यक है।

(v) पिछड़े हुए बच्चे तथा मंद बुद्धि बालक ही इस विधि से अधिक लाभ उठा सकते हैं, लेकिन प्रतिभाशाली बच्चों के लिये यह विधि अधिक उपयोगी नहीं होती। क्योंकि धीमी गति से सीखना प्रतिभाशाली बच्चे पसंद नहीं करते।

(vi) इस सिद्धान्त से हर प्रकार का अधिगम संभव नहीं है। कई बार बहुत प्रयास करने के पश्चात् भी सही अनुक्रिया नहीं हो पाती।

प्रयास और भूल सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता

1.	प्रेरणा का महत्त्व	2.	सरल से कठिन
3.	कौशलों का विकास	4.	काम करके सीखना
5.	वैज्ञानिक आधार	6.	सूझबूझ द्वारा सीखना
7.	अभ्यास द्वारा सीखना	8.	लक्ष्य केन्द्रित
9.	अच्छी आदतों का विकास	10.	स्वः अधिगम
11.	मंदबुद्धि बालकों के लिये लाभकारी	12.	अनियमित गति
13.	सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास	14.	क्रमिक प्रक्रिया

चित्र : प्रयास और भूल सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता

◆◆◆

पैवलव का प्राचीन अनुबन्ध सिद्धान्त
(Pavlovi's Classical Conditioning Theory)

1. अनुबन्धन से आपका क्या अभिप्राय है? पैवलव के प्राचीन अनुबन्धन सिद्धान्त से सम्बन्धित प्रयोगों, तत्त्वों तथा इस सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता या महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
(What do you mean by conditioning? Throw light on the experiments, elements and educational importance of Pavlov's classical conditioning theory.)

अथवा

अनुबन्धन कैसे और क्यों होता है? एक अध्यापक अनुबन्धन द्वारा सीखने को विधि का अपने कक्षा अध्ययन में किस प्रकार उपयोग में ला सकता है?

अथवा

अनुबन्धन किसे कहते हैं? पैवलव के प्राचीन अनुबन्धन सिद्धान्त की मुख्य विशेषताओं एवं शिक्षा के क्षेत्र में इसकी उपयोगिता या महत्त्व का वर्णन कीजिये।

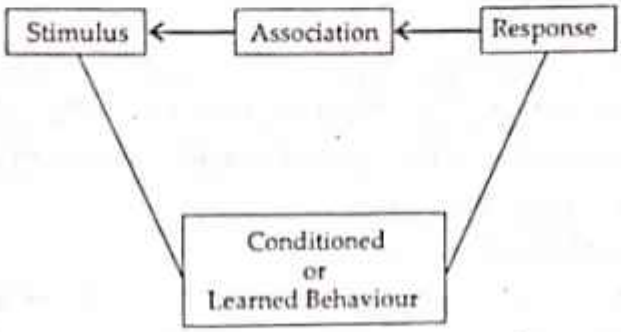
अथवा

Scanned with OKEN Scanner

पैवलव के अनुबन्धन सिद्धान्त की प्रयोगों सहित व्याख्या कीजिये।
(Interpret the Pavlov's conditioning theory with examples.)

उत्तर–अनुबन्धन का अर्थ (Meaning of Conditioning)–अनुबन्धन का सिद्धान्त *(Conditioning Theory)* व्यवहारवाद *(Behaviourism)* की देन है। यह सिद्धान्त शरीर विज्ञान से जुड़ा है। अनुबन्धन स्नायुमंडल *(Nervous System)* में स्थापित होते हैं या विकसित होते हैं। स्नायुमंडल का वातावरणीय उद्दीपन *(Environmental Stimulus)* किस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्रभावित होते हैं, उसी के अनुसार अनुक्रिया *(Response)* होती है।

व्यवहारवादियों ने बताया कि जिस प्रकार का व्यवहार सीखना हो, उसी प्रकार की उद्दीपन उस व्यक्ति को दिया जाता है। बार-बार दिया जाने वाला उद्दीपन उस अनुक्रिया *(Reaction)* को उत्पन्न करता है। अनुक्रिया के रूप में होने वाला यह व्यवहार उस उद्दीपन से या उससे सम्बद्ध अन्य कारक से भी अनुबन्धित हो जाता है।



चित्र : उद्दीपन और अनुक्रिया में सहचर्य

पैवलव *(Pavlov)* द्वारा कुत्ते पर किए गए प्रयोगों और थॉर्नडाइक *(Thorndike)* द्वारा बिल्ली पर किए गए प्रयोगों से यह निश्चित हुआ कि ज्ञानेन्द्रियों *(Senses)* को प्रभावित करने वाले उद्दीपन जिन अनुक्रियाओं को उत्पन्न करते हैं, उनके बार-बार होने से, वे अनुबन्धित *(Conditioned)* व्यवहार का रूप ले लेती हैं। यह व्यवहार अधिगमित *(Learnt)* हो जाता है। इस प्रकार का अधिगमित व्यवहार उद्दीपन *(S)* और अनुक्रिया *(R)* के सहचर्य *(Association)* पर निर्भर करता है। उद्दीपन *(S)* और अनुक्रिया *(R)* के सहचर्य से ही अनुबन्धित व्यवहार विकसित होता है। इसी अनुबन्धित व्यवहार को अधिगमित (सीखा हुआ) व्यवहार कहते हैं।

इसलिए अनुबन्धन के अधिगम सिद्धान्त *(Theory of Learning by Conditioning)* को सहचर्य या सम्बन्धवाद का सिद्धान्त *(Theory of Connectionism or Associations)* भी कहते हैं।

अधिगम के क्षेत्र में अधिकांश अनुक्रियाएँ कृत्रिम उद्दीपक *(Artificial Stimulus)* का परिणाम होती हैं। पैवलव *(Pavlov)* के प्रसिद्ध प्रयोग में घंटी का बजाना कृत्रिम उद्दीपक है। उसके परिणामस्वरूप कुत्ते का उसी प्रकार लार *(Saliva)* लटकाना जैसे वह भोजन की स्थिति में करता था, अधिगम व्यवहार का उदाहरण है। यह व्यवहार उस कृत्रिम उद्दीपक से अनुबन्धित हो गया। अनुबन्धित *(Conditioned)* इसलिए हो गया कि घंटी का बजाना शुरू में हमेशा ही वास्तविक उद्दीपक *(Real Stimulus)* भोजन के साथ-साथ चलता रहा।

सरल शब्दों में–वातावरण में बहुत से उत्तेजक हैं। किसी भी उत्तेजक के सामने आने पर व्यक्ति में सामान्य रूप से कोई विशेष उत्तेजना उत्पन्न होती है और फलस्वरूप किसी विशेष प्रकार की अनुक्रिया होती है। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारी स्वाभाविक अनुक्रियाएँ वातावरण के अस्वाभाविक उत्तेजकों से सम्बद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार जब अभ्यास के बाद मनुष्य की स्वाभाविक अनुक्रिया वातावरण के उत्तेजकों से स्वाभाविक रूप से सम्बद्ध हो जाती है तो इस प्रकार के सीखने को हम प्रतिबद्ध अनुक्रिया या सम्बन्ध प्रत्यावर्तन या अनुबन्धन के द्वारा सीखना कहते हैं। **उदाहरणार्थ**–गणित पढ़ाने वाला अध्यापक बहुत मारता है। आरम्भ में बच्चे मार खाने के कारण उससे डरने लगते हैं। कुछ समय के बाद चूंकि वह अध्यापक गणित

Scanned with OKEN Scanner

पढ़ाता है। अतः मार खाने वाले बच्चे गणित विषय से भी डरने लगते हैं, भागते हैं। आगे चलकर गणित का पीरियड ही विद्यार्थियों में आतंक पैदा कर सकता है। इस प्रकार गणित के पीरियड या गणित विषय के द्वारा बालकों में जो भय की अस्वाभाविक अनुक्रिया होती है, यह गणित के अध्यापक से सम्बन्धित होने के कारण होती है। इस प्रकार बालकों ने जो व्यवहार सीखा वह सम्बन्ध प्रत्यावर्तन से सीखना या अनुबन्धन के द्वारा सीखना कहलाता है।

जेम्स ड्रीवर (James Drever-1968) के अनुसार–"अनुबन्धन वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक अनुक्रिया होती है। इसके अतिरिक्त यह अनुक्रिया एक प्राकृतिक या सामान्य अनुक्रिया है।" *(A process by which a response comes to be elicited by a stimulus, object or situation other than that to which it is the natural or normal responses—James Drever, 1968)*

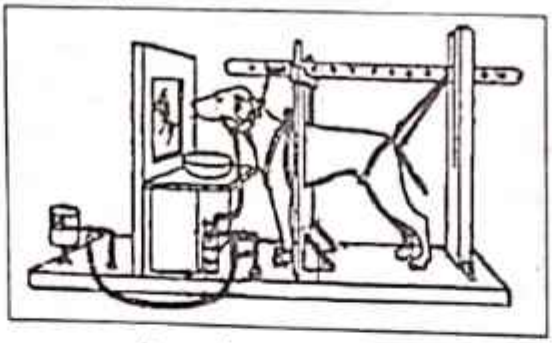
पैवलव का प्राचीन अनुबंधन का सिद्धान्त (Pavlov's Classical Conditioning Theory)– अनुबंधन के सिद्धान्त का प्रतिपादन 1904 में रूसी शरीर शास्त्री आई. पी. पैवलव *(I.P. Pavlov)* ने किया था। उनके अनुसार अधिगम की क्रिया अनुक्रिया *(Response)* से प्रभावित होती है। पैवलव ने कुत्ते पर अपने प्रयोग किए। इस क्षेत्र में किए गए कार्य पर उन्हें 1904 में नोबल पुरस्कार भी मिला।

पैवलव के इस सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक उद्दीपन *(Natural Stimulus)* के साथ-साथ एक कृत्रिम उद्दीपन *(Artificial Stimulus)* को जोड़ देने से कुछ समय बाद कृत्रिम उद्दीपन से वही अनुक्रिया या प्रतिक्रिया *(Response or Reaction)* को पैदा किया जा सकता है, जो प्राकृतिक उद्दीपन से पैदा होती है।

प्राकृतिक उद्दीपन + कृत्रिम उद्दीपन–अनुक्रिया

कृत्रिम उद्दीपन + व्यक्ति–अनुक्रिया

पैवलव का प्रयोग (Pavlov's Experiment)– पैवलव ने अपना प्रयोग एक कुत्ते पर किया। उसने कुत्ते के गले में काटकर एक छोटा-सा छेद कर दिया। उस छेद में एक नली लगा दी जो लार को एक बर्तन में एकत्रित करने में सहायक थी। उसने कुत्ते को 24 घन्टे तक भूखा रखा। कुत्ते को खड़ा करने के लिए एक विशेष प्रकार का यन्त्र बनाया गया।



चित्र : पैवलव का प्रयोग

भूखे कुत्ते के सामने भोजन प्रस्तुत किया गया। भोजन को देखकर कुत्ते के मुँह में लार उत्पन्न हुई। भोजन (स्वाभाविक उद्दीपक) को देखकर कुत्ते के मुँह में लार (स्वाभाविक प्रतिक्रिया) का उत्पन्न होना सामान्य बात है। स्वाभाविक उद्दीपक *(Natural Stimulus)* भोजन में तथा स्वाभाविक प्रतिक्रिया *(Natural Response)* लार में प्राकृतिक सम्बन्ध है।

कुत्ते के सामने घंटी *(Artificial or Conditioned Stimulus)* बजायी जाती और घन्टी बजाने के 7 और 8 सेकेण्ड के बाद कुत्ते के सामने भोजन प्रस्तुत किया जाता। भोजन को देखकर कुत्ते के मुँह में लार उत्पन्न होती। बार-बार घन्टी के बजने तथा साथ में भोजन के उपस्थित होने पर कुत्ते ने यह सीख लिया कि घन्टी भोजन का सूचक है। अब भोजन प्रस्तुत नहीं किया जाता था। कुत्ता भोजन प्रस्तुत करने पर पर्याप्त मात्रा में लार स्रवित करता था, किन्तु घन्टी के बजने पर लार स्रवित नहीं करता था। यह प्रक्रिया कुछ प्रयासों तक जारी रही। अब कुत्ते के सामने घन्टी तो बजायी जाती थी, लेकिन भोजन प्रस्तुत नहीं किया जाता था। भोजन की अनुपस्थिति में घन्टी के बजने पर ही कुत्ते के मुँह से लार स्रवित होने लगी।

Scanned with OKEN Scanner

प्राचीन अनुबन्धन सिद्धान्त को निम्नलिखित रूप से प्रदर्शित किया गया है–

(1) भोजन — लार

(2) घन्टी + भोजन — लार

(3) *After Training or Repetitions*

घन्टी — लार

इस प्रयोग के आधार पर पैवलव ने स्पष्ट किया कि भोजन को देखकर लार-स्राव होना साधारण बात है। उन्होंने कहा कि घन्टी में लार उत्पन्न करने की क्षमता नहीं है। परन्तु सीखने अथवा साहचर्य स्थापित होने के बाद यह क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

संक्षेप में, पैवलव ने अपने इस प्रयोग के आधार पर अनुबन्ध के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले, जिनका संक्षिप्त वर्णन **निम्नलिखित** प्रकार से है–

(1) प्रत्येक उद्दीपक के प्रति स्वाभाविक प्रक्रिया जरूर होती है। इस प्रयोग में भोजन का देना एक ऐसा उद्दीपक था, जिसके प्रति कुत्ते के मुँह में लार टपकना स्वाभाविक था।

(2) प्राकृतिक उद्दीपन (भोजन) के साथ कृत्रिम उद्दीपन (घंटी) दोनों को सम्बन्धित किए जाने का प्रयास करना चाहिए। इसे पैवलव ने प्राकृतिक उद्दीपन (भोजन) को कृत्रिम उद्दीपन (घंटी) के साथ सम्बन्धित किया जिससे कुत्ता यह समझने लगा कि घण्टी बजने के साथ उसे भोजन भी मिलेगा।

(3) कृत्रिम उद्दीपन (घंटी) के द्वारा भी पहले जैसी स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार टपकाना) अनुक्रिया को सम्पन्न कराना संभव हो सकता है।

(4) जिस घण्टी से लार उत्पन्न होती है, उससे मिलती-जुलती आवाज से भी लार टपक सकती है।

अनुबन्धन सिद्धान्त से सम्बन्धित अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयोग–

(1) मारक्विस का प्रयोग (Marquis's Experiment)–मारक्विस ने 10 नवजात शिशुओं पर प्रयोग किया। इस प्रयोग में उसने शिशुओं को केवल बोतल से माँ का दूध पिलाया। दूध पिलाने से पूर्व 4 सैकिन्ड तक घण्टी बजायी जाती थी। हफ्ते में ये शिशु घण्टी की आवाज सुनते ही मुँह खोलकर दूध पीने की प्रतिक्रिया करना सीख गए।

(2) जे. बी. वाटसन (J. B. Watson) का प्रयोग (Watson's Experiment)–**जे. बी. वाटसन** जोकि एक अमेरिकन, मनोवैज्ञानिक थे, ने भी इस दिशा में अनेक प्रयोग किए। एक प्रयोग में उन्होंने 11 साल के बालक को लिया। बालक का नाम अलबर्ट था। इस प्रयोग में अलबर्ट को खेलने के लिए एक खरगोश दिया गया। बालक को खरगोश के साथ खेलने में विशेष रूप से उसके बालों पर हाथ फेरने में बहुत मजा आता था। अब ऐसा प्रबंध किया गया कि जैसे ही अलबर्ट खरगोश के नरम-नरम बालों को छूता था, एक डरावनी आवाज पैदा की जाती थी। इस आवाज को सुनकर वह घबराकर अपना हाथ वापस कर लेता था। जब वह दोबारा हाथ बढ़ाता था तो वह डरावनी आवाज फिर की जाती थी। जब इस क्रिया को बार-बार दोहराया गया तो एक ऐसी स्थिति आ गई कि अब अलबर्ट बिना डरावनी आवाज के भी हाथ हटा लेता था। यानी डरावनी आवाज के पैदा न होने पर भी वह अपना हाथ हटा लेता था। इस प्रकार डरने की अनुक्रिया जो डरावनी आवाज से होनी थी वह अब (कृत्रिम उद्दीपक) खरगोश के साथ अनुबंधित *(Conditioned)* हो गई और इस अनुबंधन के फलस्वरूप बालक ने न केवल खरगोश से डरना सीख लिया, परंतु वह ऐसी सभी वस्तुओं, जैसे–सफेद रूई, रेशेवाली ऊन व फर आदि से बनी वस्तुओं से भी जो खरगोश के बालों जैसी हो, डरने लगा था।

क्लेसमेयर ने अनेक अन्य प्रयोगों का उल्लेख किया है–

एक व्यक्ति पहले घण्टी सुनता है। इस उद्दीपन से व्यक्ति के मन में कौतूहल उत्पन्न होता है। घण्टी बजने पर तत्काल प्रकाश की किरण पात्र की आँख पर फेंकी जाती है। प्रकाश के प्रति अनुक्रिया के रूप

Scanned with OKEN Scanner

में उसकी आँख के तारे सिकुड़ते हैं। अनेक बार ऐसा करने के उपरान्त केवल घण्टी बजाई जाती है, किन्तु फिर भी तारें सिकुड़ते हैं।

घर तथा विद्यालय में मिलने वाले सभी दण्ड अथवा पुरस्कार अनुकूलन उत्पन्न करते हैं। मान लो भूगोल का अध्यापक एक विद्यार्थी से असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है। जब भूगोल का अध्यापक कक्षा में प्रवेश करता है तो विद्यार्थी व्याकुलता अनुभव करता है, किन्तु फिर जब भूगोल पढ़ाने के लिए अन्य अध्यापक प्रवेश करता है तो भी विद्यार्थी व्याकुलता का अनुभव करता है। अध्यापक के प्रति घृणा अब विषय के प्रति अन्तरित हो जाती है।

कोई भी बालक अथवा वयस्क किसी न किसी प्रकार के अनुकूलन से नहीं बच सकता। एक व्यक्ति की एक रहट के निकट सड़क के किनारे दुर्घटना हो गई। बाद में वह रहट से ही घृणा करने लगा।

इसके अलावा घर तथा विद्यालयों में भी अनेक अनुबन्धन के उदाहरण देखे जा सकते हैं। अध्यापक विद्यार्थी के हस्तलेख की प्रशंसा करते हुए 'शाबाश' कहता है तथा कॉपी पर 'सुन्दर' लिख देता है तो बच्चा प्रसन्न हो जाता है। प्रसन्न होने के लिए 'शाबाश' प्राकृतिक उद्दीपन है। अगली बार बच्चा केवल कॉपी पर 'सुन्दर' लिखा हुआ देखता है, शाबाश नहीं सुनता किन्तु वह फिर भी प्रसन्न हो जाता है। अतः कृत्रिम उद्दीपन 'सुन्दर' प्राकृतिक उद्दीपन का स्थान ले लेता है।

प्राचीन अनुबन्धन के कुछ आवश्यक तत्त्व (Some Essential Elements of Classical Conditioning)—पैवलव द्वारा किए गए प्रयोग से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गए :—

1. तीव्रता (Intensity)—उद्दीपन की तीव्रता और अनुक्रिया में घनिष्ट सकारात्मक सम्बन्ध पाया गया है। अर्थात् उद्दीपन जितना अधिक तीव्र होगा, अनुबन्धन की क्रिया उतनी ही सरलता से सम्पन्न होगी। भूखे कुत्ते के लिए भोजन की तीव्रता अधिक प्रबल थी।

2. उद्दीपनों का एक साथ होना (Simultaneous Stimuli)—अनुबन्धन के लिए यह आवश्यक है कि दोनों उद्दीपन लगभग साथ-साथ प्रस्तुत किए जाएं। जब एक अनुक्रिया समाप्त होती है तभी दूसरा उद्दीपन प्रस्तुत कर देना चाहिए। घंटी बजते ही तुरन्त भोजन प्रस्तुत कर देना चाहिए।

3. विलोप (Extinction)—पैवलव ने यह स्पष्ट किया कि यदि अनुबन्धन स्थापित होने के बाद अर्थात् घंटी बजने के बाद कुत्ते के सम्मुख भोजन प्रस्तुत न किया जाए तो लार निकालने वाली अनुक्रिया लुप्त या समाप्त होने लगेगी।

4. तत्काल पुनर्स्थापना (Spontaneous Recovery)—उसका अर्थ है कि किसी अनुबन्धित अनुक्रिया का विलोप हो जाने पर यदि घंटी को प्रस्तुत किया जाता है तो अनुबन्धित अनुक्रिया का कुछ समझ बाद स्वतः पुनर्स्थापन *(Recovery)* हो जाता है।

5. अवरोध (Inhibition)—कई बार अनुक्रिया में अवरोध भी उत्पन्न हो जाता है। यदि अनुबन्धन करते समय कोई नया उद्दीपन उपस्थित नहीं किया जाता तो वह अनुबन्धन अनुक्रिया में बाधा या अवरोध पैदा करती है। बाहरी रुकावट या अवरोध को नियंत्रित करने के लिए पैवलव ने अपना प्रयोग ध्वनि-रहित कक्ष में सम्पन्न किया।

6. सामान्यीकरण (Generalization)—समान उद्दीपनों के लिए समान अनुक्रियाओं को सामान्यीकरण की संज्ञा दी गई है। पैवलव ने देखा कि अनुबन्धित उद्दीपक के समान उद्दीपन भी अनुबन्धित अनुक्रिया को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, खरगोश से डरने वाला बच्चा रूई के गोले से भी डरने लगा।

7. विभेदीकरण (Discrimination)—पैवलव ने देखा कि कुत्तों में अनुबन्धित उद्दीपन के सामान्यीकरण के साथ-साथ विभेदन की क्षमता भी पायी जाती है। मानव दो उद्दीपनों में विभेदीकरण करना सीख जाता है। लेकिन यह विभेदीकरण इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार का प्रशिक्षण दिया गया है अर्थात् कितना और किस प्रकार सीखा गया है?

8. आयु (Age)—वयस्कों की अपेक्षा बच्चों को आसानी से कृत्रिम उद्दीपन के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

9. मानसिक स्वास्थ्य और बुद्धि (Mental Health and Intelligence)—अच्छा मानसिक स्वास्थ्य तथा उच्च बुद्धि स्तर अनुवन्धित अनुक्रिया में सहायक होते हैं।

10. प्रेरणा (Motivation)—अनुवन्धित अनुक्रिया अभिप्रेरणा से बहुत प्रभावित होता है। हर चीज़ सीखने के लिए अभिप्रेरणा अति आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होता तो पैवलव के प्रयोग में कुत्ता भोजन के प्रति घंटी की आवाज़ की परवाह न करता तथा भोजन की ओर अभिप्रेरित न होता।

11. पुनरावृत्ति (Repetition)—अनुवन्धित अनुक्रिया को स्थापित करने के लिए पुनरावृत्ति अत्यन्त आवश्यक है। कुत्ते को भोजन देने से पहले बार-बार घंटी बजाई गई ताकि वह घंटी और भोजन के सम्बन्ध को समझ सके। यदि घंटी केवल एक बार ही बजाई जाती तो कुत्ता भोजन और घंटी में सम्बन्ध स्थापित करने में सफल न हो पाता।

अनुबंधित अनुक्रिया की विशेषताएँ (Properties of Conditioned Response)—

(i) अनुवन्धित अनुक्रिया विशिष्ट *(Specific)* होती है। अर्थात् वह केवल सम्बन्ध उद्दीपन से ही पैदा होती है। अन्य उद्दीपन का उस पर प्रभाव नहीं होता।

(ii) अनुवन्धित अनुक्रिया अस्थाई और अस्थिर होती है। कुछ समय पश्चात् उसका प्रभाव कम होने लगता है।

(iii) उपयोग के अभाव *(Disuse)* में अनुवन्धित अनुक्रिया समाप्त हो जाती है।

(iv) वयस्कों की अपेक्षा बच्चों में अनुवन्धित अनुक्रिया आसानी से स्थापित की जा सकती है।

पैवलव के प्राचीन अनुबंधन के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता (Educational Implications of Pavlov's Classical Conditioning Theory)—

1. भ्रमों को दूर करना (Elimination of Superstitions)—अनुबंधन की सहायता से भ्रमों या अन्ध-विश्वासों को दूर किया जा सकता है। जैसे, यदि एक बच्चे के मन में यह अन्ध-विश्वास बैठ जाए कि जब वह बिल्ली को रास्ता काटते देखता है तो उसे दंड मिलता है। इस प्रकार के अन्ध- विश्वास को अनुबंधन द्वारा दूर किया जा सकता है। अतः जब बिल्ली रास्ता काट जाए तो बच्चे को कभी दंड न दिया जाए।

2. सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नति में सहायक (Helpful in Developing Culture and Civilization)—यह सिद्धान्त संस्कृति तथा सभ्यता की उन्नति के लिए लाभदायक माना जाता है। बच्चा छोटी-सी आयु में बहुत कुछ सीख सकता है।

3. समायोजन में सहायक (Useful in Adjustment)—इस सिद्धान्त की सहायता से वातावरण के साथ समायोजन करने में सहायता मिलती है।

4. अच्छी आदतों का विकास (Development of Good Habits)—यह सिद्धान्त साहचर्य *(Association)* पर बल देता है। इस सिद्धान्त की सहायता से अच्छी आदतों का विकास किया जा सकता है, जैसे—अनुशासनप्रियता, सफाई, बड़ों का आदर करना इत्यादि।

5. बुरी आदतों को समाप्त करना (Elimination of Bad Habits)—इस सिद्धान्त की सहायता से हम बुरी आदतों को समाप्त कर सकते हैं। जैसे झूठ बोलना, चोरी करना, नाखून काटना। ऐसी क्रियाओं को हम दण्ड से जोड़कर इन्हें दूर कर सकते हैं।

6. भाषा सीखने में सहायक (Helpful in Learning Language)—भाषा को सिखाने के लिए अध्यापक अनुबन्धन की सहायता ले सकता है। इसमें साहचर्य विधि का प्रयोग करके भाषा का ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।

7. दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग (Use of Audio-Visual Aids)—कक्षा में अनुबन्धन द्वारा दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग बहुत प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। जैसे—यदि कक्षा में छोटे बच्चों को 'हाथी' शब्द सिखाना है तो 'हाथी' शब्द लिखकर साथ में उसको हाथी का चित्र दिखाया जाना चाहिये। बच्चे भी 'हाथी' शब्द को और उसके चित्र को देखकर बोलते हैं। फिर हाथी का चित्र हटा लिया जाता है। बालक केवल लिखे हुए 'हाथी' शब्द को ही दोहराएंगे। दूसरे शब्दों में, बच्चों ने अनुबन्धन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 'हाथी' कहना सीख लिया।

Scanned with OKEN Scanner

8. दंड एवं पुरस्कार का सिद्धान्त (Theory of Reward and Punishment)–दंड या पुरस्कार का सिद्धान्त भी अनुबन्धन पर ही आधारित होता है। बालकों को मालूम होता है कि बुरे कामों से उन्हें दंड मिलेगा और अच्छे कार्य से वे पुरस्कृत होंगे। यह बात उन्हें कक्षा में अभिप्रेरित करने में सहायक होती है।

9. भय, प्रेम और घृणा का विकास (Development of Fear, Love and Jealousy)–अनुबन्धन द्वारा कक्षा में भय, प्रेम और घृणा का विकास बहुत हो सकता है। जैसे–कक्षा में यदि कोई अध्यापक किसी बालक को अधिक पीटता है या उसका मजाक उड़ाता है तो वह बालक उस अध्यापक का नाम सुनते ही भय या घृणा का प्रदर्शन करेगा।

दूसरी ओर अध्यापक द्वारा बच्चों के साथ किया गया सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और उनके पढ़ाने के रोचक एवं प्रभावपूर्ण तरीके का अनुकूलन के फलस्वरूप बच्चों पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। वे विषय में रुचि प्रदर्शित करने लगते हैं तथा अध्यापक को भी स्नेह की दृष्टि से देखने लगते हैं।

10. प्रभावशाली अधिगम के लिए (For Effective Learning)—प्रभावशाली अधिगम के लिए किसी क्रिया या कार्य को बार-बार दोहराया जाना चाहिए। ऐसा इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सम्भव है। कई विषयों में दोहराना आवश्यक समझा जाता है, जैसे–गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि।

11. अनुशासन में सहायक (Helpful in Discipline)—सामूहिक स्तर पर स्कूल में अनुशासन बनाये रखने के लिए अनुबंधन के सिद्धान्त की सहायता ली जाती है।

12. अभिवृत्तियों का विकास (Development of Attitudes)—अधिगम के प्रति विद्यार्थियों के सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास अति आवश्यक होता है जो कि अनुबंधन के सिद्धान्त द्वारा ही संभव है। इस प्रकार के दृष्टिकोण विकसित होने पर विद्यार्थी कई प्रकार की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने में सूक्ष्म हो जाते हैं।

13. अभिप्रेरणा (Motivation)–विद्यार्थियों को अध्ययन के लिए अभिप्रेरित करना अति आवश्यक है जो इस सिद्धान्त द्वारा किया जा सकता है। अभिप्रेरित विद्यार्थियों की उपलब्धियाँ भी अधिक होती हैं।

14. संवेगात्मक एकता में सहायक (Helpful in Emotional Integration)—इस सिद्धान्त की सहायता से मानसिक असामान्यता *(Mental Abnormality)* और संवेगात्मक अस्थिरता *(Emotional Instability)* का उपचार किया जा सकता है। इससे संवेगात्मक एकता *(Emotional Integration)* का भी विकास किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त शास्त्रीय या प्राचीन अनुबंधन सिद्धान्त की कुछ अन्य शैक्षिक उपयोगिताएँ निम्न प्रकार से हैं–

(1) इस सिद्धान्त द्वारा बच्चों को भाषा शिक्षण तथा अभिव्यक्ति का ढंग सिखाने में बहुत सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए 'कुर्सी' शब्द का उच्चारण करते हुए अध्यापक कुर्सी की ओर संकेत कर उसका चित्र दिखाता है। इस 'शब्द' को वह श्यामपट्ट *(Black-Board)* पर लिखकर भी दिखाता है। शुरू में बालक द्वारा 'कुर्सी' शब्द कहना अथवा लिखना कुर्सी को प्रत्यक्ष रूप में देखने या उसके चित्र के देखने से सम्बन्धित होता है। लेकिन बाद में अगर उसके सामने चित्र या कुर्सी प्रत्यक्ष रूप से न भी हो तो भी वह केवल 'कुर्सी' शब्द को कहीं लिखा हुआ देखकर ही उसे मेज-कुर्सी कहकर उसका उच्चारण कर लेता है। इसी प्रकार वह गणित, विज्ञान व अन्य विषयों से सम्बन्धित अक्षरों, संकेतों एवं सूत्रों की पहचान तथा उनको पढ़ना-लिखना सीख सकता है।

(2) यह सिद्धान्त भावात्मक व्यवहार *(Affective Behaviour)* सम्बन्धी सभी गुणों व विशेषताओं को समझने में छात्रों व अध्यापकों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है। इसकी सहायता से रुचियों, वांछनीय आदतों, अभिवृत्तियों, अभिरुचियों, चरित्र व नैतिकता आदि के विकास के बारे में सुविधापूर्वक ढंग से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

Scanned with OKEN Scanner

(3) इस सिद्धान्त के द्वारा संवेगात्मक व्यवहार जैसे–रुचि और अरुचि, घृणा और प्रेम, मित्रता और शत्रुता, आशा और निराशा आदि के विकसित होने को स्पष्टता से समझाया जा सकता है।

(4) इस सिद्धान्त की सहायता से हम व्यवहार सम्बन्धी अवांछनीय आदतों, अंधविश्वासों, मानसिक तनावों आदि को छुड़ा सकते हैं।

(5) यह सिद्धान्त समस्यात्मक बालकों, मानसिक व शारीरिक रूप से पिछड़े बालकों के समायोजन में भी सहायक सिद्ध होता है।

(6) इस सिद्धान्त की सहायता से कक्षाओं, विद्यालयों व अन्य जगहों पर अनुशासनपूर्ण व्यवहार करने की प्रवृत्ति को बढ़ाया जा सकता है।

अनुबंधन के सिद्धान्त के दोष (Defects of Conditioning Theory)–

(i) उच्च विचारों और तर्क की प्रक्रिया को समझाने में यह सिद्धान्त असफल रहा है।

(ii) यह सिद्धान्त स्वः-क्रियाएँ *(Voluntary activities)* को समझाने में असफल रहा है।

(iii) यह चिन्तन प्रक्रिया की व्याख्या करने में असफल है।

(iv) यह सिद्धान्त तत्परता, पुनरावृत्ति, प्रभाव, अभिप्रेरणा, वातावरणीय कारक तथा भौतिक परिस्थितियों की भूमिका की व्याख्या नहीं करता।

(v) इस प्रकार का अधिगम अस्थाई होता है।

(vi) इसका प्रयोग बच्चों और पशुओं पर अधिक होता है।

◆◆◆

2. अनुबन्धन के अर्थ को स्पष्ट करते हुये अनुबन्धन से सम्बन्धित मुख्य कारकों तथा घटकों की विवेचना कीजिये।

अथवा

अनुबन्धन किसे कहते हैं? अनुबन्धन से सम्बन्धित मुख्य निर्धारकों या कारकों की विवेचना कीजिये।

अथवा

अनुबन्धन का क्या अर्थ है? अनुबन्धन से सम्बन्धित मुख्य कारकों तथा घटकों का वर्णन कीजिये।

उत्तर–सरल शब्दों में, जब कोई तटस्थ उद्दीपक *(Neutral Stimulus)* को स्वाभाविक उद्दीपक *(Natural Stimulus)* के साथ प्रस्तुत किया जाता है तो व्यक्ति तटस्थ उद्दीपक के प्रति भी क्रिया करने लगता है।

जेम्स ड्रीवर (James Drever) के अनुसार–"अनुबन्धन वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा अनुक्रिया उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त यह अनुक्रिया एक प्राकृतिक या सामान्य अनुक्रिया है।"

अनुबन्धन के कारक या निर्धारक (Factors of Conditioning)–**डीसे (Deese)** के अनुसार अनुबन्धन के निम्नलिखित कारक हैं–

(i) दो उद्दीपकों में समय का सम्बन्ध (Relationship of Time with Two Stimuli)–पैवलव के प्रयोग में भोजन (प्राकृतिक उद्दीपक) और घंटी का बजना (कृत्रिम उद्दीपक) दोनों समय की दृष्टि से एक साथ चलते हैं। इसी कारण कृत्रिम उद्दीपक वही प्रभाव उत्पन्न करने लगता है जो प्राकृतिक उद्दीपक करता है। कृत्रिम उद्दीपक से भी व्यवहार अनुबन्धित हो जाता है।

(ii) उद्दीपकों की प्रबलता (Intensity of Stimuli)–ऐसा पाया गया है कि अनुक्रिया तभी होगी जब प्राकृतिक उद्दीपक जिसके साथ-साथ कृत्रिम उद्दीपक चलता है, पर्याप्त रूप से प्रबल हो। उदाहरणार्थ, भोजन एक बहुत ही प्रबल उद्दीपक है। उसके साथ ही घंटी का बजना जारी रहा। घंटी के रूप में उद्दीपक उतना ही प्रबल हो गया जितना कि भोजन। इसके विपरीत, यदि घंटी के रूप में उद्दीपक यदि उस दूसरे

Scanned with OKEN Scanner

उद्दीपक से सम्बद्ध होता जिस ओर कुत्ता ध्यान ही नहीं देता तो घंटी भी उद्दीपक का कार्य करने में सक्षम न होती है और न ही कोई अनुक्रिया होती।

(iii) उद्दीपनों की पुनरावृत्ति (Repetition of Stimuli)–जब उद्दीपनों की पुनरावृत्ति होती है अर्थात् जब उद्दीपनों की उपस्थिति बार-बार होती है तो अनुक्रिया उनसे सम्बद्ध हो जाती है। एक बार अनुक्रिया के सम्बद्ध हो जाने पर तो वह अधिगम व्यवहार के रूप में सुदृढ़ हो जाती है। लार का घंटी के बजने के साथ टपकना उस समय से ही शुरू हुआ जब पहले भोजन के साथ-साथ अनेक बार घंटी भी बजाई जाती रही।

इस प्रकार उद्दीपनों की पुनरावृत्ति से अनुक्रिया तुरन्त होने लगती है तथा अनुक्रिया तांत्रिक ढंग से होने लगती है उसमें सोच और प्रयास कम होने लगते हैं। ऐसा व्यवहार अधिगम व्यवहार *(Learning Behaviour)* होता है। अतः अधिगम के लिए पुनरावृत्ति अति आवश्यक है।

(iv) नियंत्रित वातावरण (Controlled Environment)–कई बार वातावरण में ऐसे तत्त्व विद्यमान होते हैं जो अधिगम में बाधा डालते हैं। ऐसे तत्त्वों की उपस्थिति में उद्दीपक अपना पूरा प्रभाव नहीं डाल पाते। उद्दीपक तभी प्रभाव डाल पाएँगे जब वातावरण में बाधक तत्त्व नहीं होंगे। यदि कोई अध्यापक कक्षा में कविता पढ़ाता है तो कविता का आनन्द लेने के लिए कक्षा में शान्ति हो तथा विद्यार्थियों का ध्यान कविता-पाठ में हो तथा कक्षा में रोशनी, धूप भी पर्याप्त हो तथा बाहर भी ध्यान बाँटने वाली कोई बात न हो।

(v) कृत्रिम उद्दीपन दृढ़ हो (Strong Artificial Stimulus)–प्राकृतिक उद्दीपन के साथ-साथ कृत्रिम उद्दीपन का बार-बार होना आवश्यक होता है तभी वह दृढ़ हो सकेगा। दृढ़ होने पर ही कृत्रिम उद्दीपन प्राकृतिक की तरह दृढ़ हो पायेगा। यदि कृत्रिम उद्दीपन दृढ़ नहीं होता तो अपेक्षित व्यवहार *(Expected Behaviour)* कृत्रिम उद्दीपन तो अनुबंधित *(Conditioned)* नहीं हो पायेगा।

(vi) मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य (Mental and Physical Health)–मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य मानव के लिए आवश्यक होते हैं। उदाहरणार्थ, पैवलव के प्रयोग में यदि कुत्ते का स्वास्थ्य ठीक न होता, उसकी भोजन में रुचि भी न होती तो घंटी के बजने से अनुक्रिया के रूप में लार के टपकने का अनुबन्धन *(Conditioning)* भी संभव न होता। अतः अधिगमित व्यवहारों के विकास के लिए व्यक्ति का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य आवश्यक है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्ञानेन्द्रियों के स्वस्थ होने पर ही वातावरण उद्दीपक स्नायुमंडल *(Nervous System)* पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं। यदि स्नायुमंडल पर ये उद्दीपक अपना प्रभाव नहीं डाल सकते तो अपेक्षित अनुक्रिया भी उत्पन्न नहीं हो पाती। दूसरे शब्दों में, हम यह कह सकते हैं कि उद्दीपन से अनुक्रिया अनुबन्धित नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप अधिगम नहीं हो पाता।

(vii) प्रयासों का वितरण (Distribution of Trials)–ऐसा पाया गया है कि प्रयासों के बीच समयावधि अनुबन्धन को किसी न किसी ढंग से प्रभावित करती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रयासों *(Trials)* के बीच बहुत कम व बहुत अधिक अवधि अनुबन्धन को प्रभावित करती है। अतः प्रयासों का उपयुक्त वितरण ही अनुबन्धन को सकारात्मक ढंग से प्रभावित करता है।

(viii) स्वाभाविक उद्दीपक की विशेषताएँ (Characteristics of Unconditioned Stimulus)–जिस उद्दीपन पर कोई नियंत्रण न हो अर्थात् स्वाभाविक उद्दीपक की कुछ विशेषताएँ भी अनुबन्धन को प्रभावित करती हैं। जैसे स्वाभाविक उद्दीपक की मात्रा में वृद्धि अनुबन्धन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। मात्रा के अतिरिक्त स्वाभाविक उद्दीपक की अवधि में वृद्धि भी केवल एक सीमा तक ही अनुबन्धन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

(ix) वैयक्तिक भिन्नताएँ (Individual Differences)–व्यक्तियों में कई प्रकार की भिन्नताएँ पाई जाती हैं। अनुबन्धित अनुक्रिया *(Conditioned Response)* के दृष्टिकोण में भी वैयक्तिक भिन्नताएँ विद्यमान होती हैं।

प्राचीन अनुबन्धन के घटक (Components of Classical Conditioning)–प्राचीन अनुबन्धन के कुछ घटक इस प्रकार हैं–

Scanned with OKEN Scanner

(i) अनानुबन्धित उद्दीपक (Unconditioned Stimulus or US)–ऐसा उद्दीपक वह होता है जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के विश्वसनीयता के साथ एक विशिष्ट अनुक्रिया पैदा करता है। पैवलव के प्रयोग में भोजन *US* है। यह भोजन *(US)* कुत्ते में स्वाभाविक रूप से लार *(Saliva)* पैदा करता है। यह पुनर्बलन *(Reinforcement)* भी पैदा करता है।

(ii) अनानुबन्धित अनुक्रिया (Unconditioned Response or UR)–*UR* वह अनुक्रिया कहलाती है जो *US* से पैदा होती है। *US* के प्रस्तुत होते ही *UR* शुरू हो जाती है। जैसे भोजन *US* है तथा भोजन प्रस्तुत करते ही *UR* शुरू हो जाता है अर्थात् लार टपकनी शुरू हो जाती है। यह लार टपकना ही *UR* है। हवा के झोंको में पलकों का बंद होना *UR* है। *UR* जन्मजात हो सकती हैं या नहीं भी। अधिकतर मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अनेक *UR* जन्मजात ही होती है।

प्राचीन अनुबन्ध के घटक

↓

अनानुबन्धित उद्दीपक *(US)*

↓

अनानुबन्धित अनुक्रिया *(UR)*

↓

अनुबन्धित उद्दीपक *(CS)*

↓

अनुबन्धित अनुक्रिया *(CR)*

चित्र : प्राचीन अनुबन्धन के घटक

(iii) अनुबन्धित उद्दीपक (Conditioned Stimulus or CS)–अनुबन्धित उद्दीपक *(CS)* उसे कहते हैं जो समयानुसार अनानुबन्धित उद्दीपक *(US)* के साथ बंध जाता है तथा बन्धनों के परिणामस्वरूप उस अनुक्रिया को उद्दीपत करने लगता है, जिसे पहले केवल *US* ही पैदा करता था। यह उद्दीपक तटस्थ उद्दीपक होता है। तटस्थ उद्दीपक से यह अभिप्राय नहीं कि यह कोई भी अनुक्रिया उद्दीप्त नहीं करता। अधिकतर यह कोई न कोई अनुक्रिया अवश्य ही उद्दीप्त करता है। उदाहरणार्थ ध्वनि एक *CS* है।

(iv) अनुबन्धित अनुक्रिया (Conditioned Response or CR)–अनुबन्धित अनुक्रिया *(Conditioned Response or CR)* वह अनुक्रिया होती है जो *CS* और *US* के साथ जुड़ने के बाद घटित होती है। आमतौर पर *CR* तथा *UR* आपस में सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इन दोनों में कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य है।

◆◆◆

III. सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त (Operant Conditioning Theory)

1. स्किनर का सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त किसे कहते हैं? इस सिद्धान्त का वर्णन करते हुये इसकी शैक्षिक उपयोगिता अथवा महत्त्व का वर्णन कीजिये।

अथवा

स्किनर के सक्रिय अनुबन्धन से आप क्या समझते हैं? सक्रिय अनुबन्धन के अर्थ स्पष्ट करते हुए इस सिद्धान्त की शिक्षा में उपयोगिता की विवेचना कीजिये।

Scanned with OKEN Scanner

अथवा

स्किनर के सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त का क्या अर्थ है? सक्रिय व्यवहार के अर्थ को स्पष्ट करें तथा इस सिद्धान्त के शिक्षा में महत्त्व को स्पष्ट करें।

उत्तर–बी. एफ. स्किनर का अनुबन्धन सिद्धान्त (B. F. Skinner's Operant Conditioning Theory)–बी. एफ. स्किनर एक प्रसिद्ध अमेरिकन मनोवैज्ञानिक थे। स्किनर ने थॉर्नडाइक, पैवलव तथा वाटसन आदि के सिद्धान्तों की आलोचना की और इसके विरोध में अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर यह सिद्ध किया कि अनुक्रिया या किसी व्यवहार के घटित होने के लिए किसी ज्ञात उद्दीपन का होना आवश्यक नहीं है। अपने मत को स्पष्ट करने के लिए स्किनर ने अनुक्रिया तथा व्यवहार के दोनों रूपों की व्याख्या की। एक को उन्होंने अनुक्रिया व्यवहार *(Respondent Behaviour)* कहा और दूसरे को सक्रिय व्यवहार *(Operant Behaviour)* का नाम दिया।

अनुक्रिया व्यवहार का अर्थ (Meaning of Respondent Behaviour)—अनुक्रिया व्यवहार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए स्किनर ने कहा कि अनुक्रिया व्यवहार के अन्तर्गत वे सभी व्यवहार व अनुक्रियाएँ आती हैं जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण होती हैं। सांकेतिक भाषा में उसे उद्दीपक अनुक्रिया व्यवहार *(Stimulus Response Behaviour)* कहा गया है। उदाहरण के लिए, पिन चुभने पर पैर का उठना, मिठाई देख मुँह में पानी आना आदि व्यवहार को अनुक्रिया व्यवहार के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

सक्रिय व्यवहार का अर्थ (Meaning of Operant Behaviour)—वे सभी व्यवहार अथवा अनुक्रियाएँ जो किसी ज्ञात उद्दीपन के परिणामस्वरूप नहीं होतीं, उन्हें सक्रिय व्यवहार के अन्तर्गत रखा जाता है। उदाहरण के लिए हम कई बार देखते हैं कि विद्यार्थी कक्षा में बैठे-बैठे अपने पाँव हिलाते रहते हैं। उनसे इसका कारण पूछा जाए तो उनका उत्तर होता है बस यूँ ही। इसी तरह अध्यापक भी चाक को कभी एक हाथ में तथा कभी उसे दूसरे हाथ में लेता हुआ चहलकदमी करता है। उनसे भी पूछा जाए तो उनका भी जवाब होता है यूँ ही। अतः वे सभी व्यवहार या अनुक्रियाएँ जिनके लिए कारण के रूप में 'यूँ ही' उत्तर दिया जाता है उनको सक्रिय व्यवहार कहा जाता है। ऊपर लिखित व्यवहारों के प्रति कोई ज्ञात उद्दीपन नहीं होता है। अनुक्रिया या व्यवहार शुरू-शुरू में यूँ ही घटित हो जाता है और जब इस अनुक्रिया या व्यवहार को पुनर्बलन या बल मिल जाता है तो उसके द्वारा घटने की संभावना बढ़ जाती है और अगर पुनर्बलन नहीं मिलता तो उसके द्वारा घटने की संभावना में उसी मात्रा में कमी आ जाती है। इस प्रकार व्यवहार या अनुक्रियाएँ पहले होती हैं तथा उनको बल देने या कमजोर करने के लिए उद्दीपक बाद में उपस्थित होते हैं। फलस्वरूप इस प्रकार के व्यवहार को उद्दीपक अनुक्रिया व्यवहार *(Response Stimulus Type Behaviour)* कहते हैं।

सक्रिय अनुबन्धन का अर्थ (Meaning of an Operant Conditioning)—सक्रिय अनुबन्धन सीखने की उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा सीखने वाले के सक्रिय व्यवहार का अनुबन्धन *(Conditioning)* किया जाता है। स्किनर ने पैवलव और वाटसन की तरह अनुक्रिया व्यवहार *(Response Behaviour)* के अनुबन्धन पर बल न देकर सक्रिय व्यवहार के अनुबन्धन पर जोर दिया। अपने सक्रिय अनुबन्धन में स्किनर ने 'हम कैसे सीखते हैं'?

सक्रिय अनुबन्धन को नैमित्तिक अनुबन्धन *(Instrumental Conditioning)* भी कहते हैं। इस अनुबन्धन की मूल धारणा है कि सीखने वाले की क्रिया *(Behaviour)* का पुनर्बलन *(Reinforcement)* हो जाता है। यह स्थिति वातावरण में कार्यशील होने पर उत्पन्न होती है।

बी. एफ. स्किनर *(B. F. Skinner)* ने अधिगम के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए और यह अनुभव किया कि अभिप्रेरणा के कारण ही अधिगम में क्रियाशीलता आती है। अभिप्रेरणा का आधार उद्दीपन है। उद्दीपन भावी क्रिया को नियंत्रित करता है।

स्किनर के अनुसार, प्राणियों में दो प्रकार के व्यवहार पाये जाते हैं—अनुक्रिया *(Response)* तथा सक्रियता *(Operant)*। अनुक्रिया का सम्बन्ध उद्दीपन से होता है और सक्रियता किसी ज्ञान उद्दीपन से नहीं जुड़ी होती। यह स्वतंत्र होती है। सक्रिय व्यवहार किसी ज्ञात उद्दीपन से नहीं जुड़ा होता, इसलिए इसकी

Scanned with OKEN Scanner

शक्ति को परावर्ती *(Reflex)* नियमों के द्वारा नहीं मापा जा सकता। अनुक्रिया की दर *(Rate)* ही सक्रिय शक्ति का माप है।

सक्रिय अनुबन्धन की परिभाषा (Definition of Operant Conditioning)—सक्रिय या नैमित्तिक अनुबन्धन की कुछ मुख्य परिभाषाएँ **निम्न प्रकार** से हैं—

एम. एल. बिगे (M.L.Bigge) के अनुसार—"सक्रिय अनुबन्धन एक अधिगम प्रक्रिया है जिसमें अनुक्रिया सतत् या संभावित होती है, उस समय सक्रियता की शक्ति बढ़ जाती है।" *("Operant Conditioning is the learning process whereby a response is made more probable or more frequent an operant is strength end."—M. L. Bigge)*

नैमित्तिक और सक्रिय अनुबन्धन को अधिकतर मनोवैज्ञानिक एक ही मानते हैं। स्किनर ने जिस प्रक्रिया को सक्रिय अनुबन्धन *(Operant Conditioning)* कहा है, उसे नैमित्तिक अनुबन्धन का नाम भी दिया गया। **हिल्गार्ड** और **मार्क्विस** *(Hillgard and Marquis, 1940)* ने नैमित्तिक अनुबन्धन तथा प्राचीन अनुबन्धन *(Instrumental and Classical Conditioning)* की शब्दावली का प्रयोग किया। **रैथस (Rathus, 1986)** ने कहा है कि सक्रिय अनुबन्धन *(Operant Conditioning)* को नैमित्तिक अनुबन्धन *(Instrumental Conditioning)* भी कहा जा सकता है। **वुडवर्थ** *(Woodworth 1938)* ने सक्रिय अनुबन्धन *(Operant Conditioning)* को नैमित्तिक अनुबन्धन *(Instrumental Conditioning)* का एक प्रकार माना है।

डॉ. अमेटो (D. Amato,1970) के अनुसार—"नैमित्तिक अनुबन्धन वह कोई भी सीखना है जिसमें अनुक्रिया अवलम्बित पुनर्बलन पर आधारित हो तथा जिसमें प्रयोगात्मक रूप से परिभाषित विकल्पों का चयन शामिल न हो।" *("Instrumental Conditioning is any learning based on response contingent reinforcement that does not involve choice among experimentally defined alternatives."—* **D. Amato, 1970)**

अतः कहा जा सकता है कि—सक्रिय अनुबन्धन उत्तेजना-अनुक्रिया *(Stimulus Response)* के बीच **साहचर्य** *(Association)* स्थापित करने की दूसरी विधि है। अतः उत्तेजना अनुक्रिया के बीच **साहचर्य** स्थापित करने की दो विधियाँ हुईं—प्राचीन अनुबन्धन *(Classical Conditioning)* तथा नैमित्तिक अनुबन्धन या सक्रिय अनुबन्धन *(Instrumental Conditioning or Operant Conditioning).*

नैमित्तिक अनुबन्धन की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(i) इस प्रकार का अनुबन्धन कोई निश्चित अनुक्रिया प्रकट करने अथवा अवरुद्ध करने की ओर अग्रसर करता है।

(ii) इस प्रकार के अनुबन्धन में उन प्रक्रियाओं का प्रयोग होता है, जिनमें पुरस्कार या सकारात्मक उद्दीपक शामिल होते हैं।

(iii) इस अनुबन्धन में प्रयोज्य *(Subject)* निर्धारित अनुक्रिया प्रकट करके पुरस्कार या सकारात्मक उद्दीपक से मुक्ति प्राप्त करता है, क्योंकि वह प्रयोज्य पुरस्कार द्वारा वांछित व्यवहार करने लगता है।

(iv) यह अनुबन्धन प्रयोज्य की अनुक्रिया पर निर्भर करता है।

(v) कभी-कभी इस अनुबन्धन से जुड़े प्रयोगों में विभेदनात्मक संकेत *(Discriminative Cues)* का उपयोग होता है।

(vi) इस अनुबन्धन के परिणामस्वरूप व्यक्ति नई अनुक्रिया को अर्जित करता है।

(vii) इस अनुबन्धन से जुड़े प्रयोगों में उन अनुक्रियाओं को अनुबन्धित किया जाता है जो प्रयोज्य के नियंत्रण में होती हैं।

सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए स्किनर ने अनेक प्रयोग किए, जिनमें से मुख्य प्रयोगों का वर्णन **निम्न प्रकार** से है—

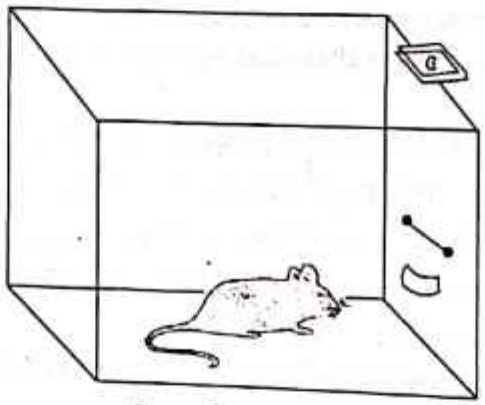
स्किनर द्वारा किया गया प्रयोग नं. 1 (Experiment No.1 Conducted by Skinner)—स्किनर ने अपने प्रयोग के लिए एक पेटी तैयार करके उसका प्रयोग किया, जिसे 'स्किनर पेटी' *(Skinner Box)*

Scanned with OKEN Scanner

की संज्ञा दी गई। इस पेटी में स्किनर ने एक भूखे चूहे को रखा। यह प्रयोग 1830 में सफेद चूहे पर किया गया। स्किनर की पेटी में एक 'लीवर' *(Lever)* लगा था। इस लीवर पर चूहे का पैर पड़ता था जिससे 'खट' की आवाज होती थी।

भूखे चूहे को अपनी भूख मिटाने के लिए भोजन की आवश्यकता थी। पेटी में लगे लीवर का सम्बन्ध पेटी की दीवार के ऊपरी भाग पर रखे हुए एक बर्तन से था। इस बर्तन में भोजन के टुकड़े पड़े थे। लीवर के नीचे एक प्लेट लगी हुई थी। इसमें ऐसी व्यवस्था थी कि जब चूहे का पैर लीवर पर पड़ता तो उस लीवर के दब जाने से बर्तन में रखे भोजन का टुकड़ा बर्तन के नीचे रखी प्लेट में गिर जाता था।

भूखे चूहे को स्किनर पेटी में कोई भी अनुक्रिया करने के लिए स्वतंत्र छोड़ा हुआ था। प्रारम्भ में चूहा इधर-उधर घूमने लगा। दाएँ-बाएँ उछलने लगा। कभी वह लीवर को सूंघता तो कभी पेटी की दीवारों को। इस प्रकार उछल-कूद *(Random Movements)* करते-करते संयोगवश *(By Chance)* वह लीवर को दबा देता। लीवर दबने से बर्तन में रखा भोजन का टुकड़ा नीचे प्लेट में आ गिरता। चूहे को भोजन मिला और उसने उसे ग्रहण किया। भोजन खाने के पश्चात् फिर उसने उछल-कूद की तथा फिर संयोगवश उसका पैर लीवर पर पड़ा तथा लीवर के दबने से फिर बर्तन में से भोजन का टुकड़ा नीचे रखी प्लेट पर आ गिरा। चूहे ने फिर भोजन ग्रहण किया। इस प्रकार चूहे की उछल-कूद *(Random Movements)* लीवर के आस-पास तक सीमित हो गई। अब वह सीधा लीवर को दबाने लगा ताकि उसे खाने को कुछ भोजन के टुकड़े मिल जाएं। अन्त में ऐसी स्थिति आ गई कि भूखे चूहे को जब भी पेटी में रखा जाता, वह तुरन्त लीवर को दबाता और भोजन के टुकड़े को प्राप्त करने में सफल हो जाता।



चित्र : स्किनर डिब्बा

स्किनर के इस प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ऐसे अनुबन्धन में पुनर्बलन या प्रबलन *(Reinforcement)* की प्राप्ति किसी निश्चित अनुक्रिया के घटित होने पर निर्भर करती है। ऐसे प्रयोगों में एक प्राणी को प्रबलन तभी प्राप्त होता है जब प्राणी प्रयोगकर्ता द्वारा निर्धारित अनुक्रिया करे।

इस प्रयोग में चूहा भूखा होने के कारण प्रणोदित *(Drived)* होता था और सक्रिय रहता था। स्किनर ने लीवर की क्रिया के चयन के निम्नलिखित कारण बताये–

(i) चूहे के लिए लीवर दबाना सरल क्रिया है।

(ii) चूहा घंटे में अनेक बार लीवर दबाने की क्रिया करता है, अतः उसके इस व्यवहार का निरीक्षण सरलता से किया जा सकता है।

(iii) लीवर दबाने की क्रिया में अन्य व्यवहार शामिल नहीं।

(iv) लीवर दबाने की क्रिया का आभास हो जाता है।

इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि किसी क्रिया के बाद कोई बल प्रदान करने वाला उद्दीपन मिलता है तो उस क्रिया की शक्ति में वृद्धि हो जाती है।

प्रयोग नं. 2. स्किनर का कबूतर पर किया गया प्रयोग (Skinner's Experiment on Pigeon)– स्किनर द्वारा बनाया गया बॉक्स अंधकारयुक्त एवं शब्दविहीन है। इस बॉक्स में भूखे चूहे को ग्रिलयुक्त संकरे

Scanned with OKEN Scanner

रास्ते से गुजरकर लक्ष्य तक पहुँचना था। प्रयोग आरम्भ करने से चूहे को निश्चित दिनों तक भूखा रखा गया, तथा उसे भोजन प्राप्त करने के लिए सक्रिय रहने का प्रबंध कर लिया गया था। बॉक्स में एक लीवर था। चूहा उपयुक्त मार्ग पर अग्रसर होता, लीवर पर चूहे का पैर पड़ता तथा खट की आवाज भी होती। लीवर पर पैर पड़ते ही प्रकाशयुक्त बल्ब जलता और उसे प्याले में कुछ खाना प्राप्त हो जाता। अतः लीवर को दबाने में होने वाली आवाज और प्राप्त भोजन पुनर्बलन *(Reinforcement)* का कार्य करता था। इस प्रकार चूहे द्वारा लक्ष्य प्राप्ति के लिए किए जाने वाले व्यवहार अथवा अनुक्रिया का लीवर दबाने से उत्पन्न आवाज और प्याले में उपस्थित थोड़े से खाने द्वारा पुनर्बलन होने का प्रयास इस प्रयोग में किया गया। चूहे द्वारा सक्रिय रहकर जैसे-जैसे पुनर्बलन मिलता चला गया, वैसे-वैसे ही सही अनुक्रिया करने और लक्ष्य तक पहुँचने की प्रक्रिया में तीव्रता आती चली गई।

अतः सक्रिय-अनुबन्धन के अनुसार सीखने का कार्य व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित उसके सक्रिय व्यवहार से शुरू होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सक्रिय अनुबन्धन में पहले सीखने वाले को कोई न कोई अनुक्रिया करनी पड़ती है। कबूतर वाले प्रयोग में जैसे कबूतर द्वारा थोड़ा-सा दाहिनी ओर घूमना। इस व्यवहार के फलस्वरूप उसे पुनर्बलन मिलता है। (जैसे–कबूतर वाले प्रयोग में कबूतर को दाहिने ओर घूमने पर अनाज का दाना मिला था) यही पुनर्बलन सीखने वाले को अपनी पहली अनुक्रिया या व्यवहार को दोबारा (पुनरावृत्ति) करने के लिए प्रेरित करता है। पुरस्कार के रूप में उसे फिर पुनर्बलन (जैसे–कबूतर को अनाज के दाने) मिलता है। परिणामस्वरूप वह पहले से ज्यादा उत्साह के साथ अपने द्वारा पहले किए गए व्यवहार की पुनरावृत्ति करता है या व्यवहार को बार-बार करता है। इस प्रकार के अनुबन्धन में सीखने वाले को धीरे-धीरे वांछित व्यवहार करना सिखाया जा सकता है।

सक्रिय या नैमित्तिक अनुबन्धन का आधार (Basis of Instrumental Conditioning)—सक्रिय अनुबन्धन का आधार पुनर्बलन *(Reinforcement)* है। सक्रिय अनुबन्धन या नैमित्तिक अनुबन्धन में कोई भी घटना या उद्दीपक जो किसी प्रकार की अनुक्रिया उत्पन्न करता है, पुनर्बलन कहलाता है। *(A reinforcer in operant conditioning is only stimulus or event which, when produced by a response, makes that response more likely to occur in the future.)*

जो पुनर्बलन बार-बार दिया जाता है वह भावी व्यवहार का निर्णायक हो जाता है। सक्रिय अनुबन्धन के लिए विस्तृत उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। किसी अनुक्रिया के लिए पुनर्बलन को माध्यम बनाया जाता है। अन्य व्यक्तियों की स्वीकृति मुस्कान, आत्म-महत्त्व *(Self-Importance)*, आत्म-क्षमता *(Self-Worth)*, कठिन कार्यों को करना तथा अन्य अनेक आनन्ददायक अवस्थाएँ पुनर्बलन के रूप में हमारे व्यवहार को प्रभावित करती हैं। सक्रिय अनुबन्धन या नैमित्तिक अनुबन्धन में व्यवहार एक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

स्किनर द्वारा बताये इस अनुबन्धन में दो प्रकार के पुनर्बलन पाये जाते हैं—सकारात्मक *(Positive)* और नकारात्मक *(Negative)*। सकारात्मक पुनर्बलन में व्यक्ति क्रिया में योग देता है जबकि नकारात्मक पुनर्बलन इसके विपरीत है।

क्रिया-प्रसूत व्यवहार एवं पुनर्बलन (Operant Behaviour and Reinforcement) —सीखने के कार्य में पुनर्बलन द्वारा भरपूर सहायता मिली है। व्यवहार अथवा अनुक्रिया के घटने के पश्चात् उसे पुनर्बलन प्रदान करने से तात्पर्य कुछ इस प्रकार के आयोजन से है जिनके द्वारा उस प्रकार की अनुक्रिया अथवा व्यवहार के पुनः घटित होने की संभावना को बढ़ा दिया जाए। अनुक्रिया अथवा व्यवहार को हम दो प्रकार से पुनर्बलित कर सकते हैं–

(1) धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement)–कुछ देकर जिसे पाना उसे अच्छा लगे इस प्रकार के पुनर्बलन को धनात्मक पुनर्बलन कहते हैं, जैसे–भोजन, पानी, लैंगिक संपर्क, धन-दौलत, मान-सम्मान, प्रशंसा एवं सामाजिक स्वीकृति आदि की प्राप्ति।

(2) ऋणात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement)–जिसके पास से कुछ हटाकर या जिसका हटना अच्छा लगे उसे ऋणात्मक पुनर्बलन कहते हैं। बिजली के आघात, डरावनी आवाज, अपमान एवं डाँट-फटकार आदि से बचना दूसरे उदाहरण हैं।

Scanned with OKEN Scanner

क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन द्वारा प्रणाली को वांछित व्यवहार सीखने की दिशा में पुनर्बलन अपनी भूमिका अच्छी तरह तभी निभा सकता है जबकि उसे यथोचित रूप में दिया जा सके। उस दिशा में मुख्य रूप से निम्न चार प्रकार का पुनर्बलन आयोजन *(Reinforcement Schedule)* प्रयोग में आता है–

(1) अविछित पुनर्बलन आयोजन (Continuous Reinforcement Schedule)–यह शत-प्रतिशत पुनर्बलन आयोजन है जिससे सीखने वाले की प्रत्येक सही अनुक्रिया या व्यवहार को पुनर्बलित (पुरस्कृत) किया जाता है।

(2) निश्चित अन्तराल पुनर्बलन आयोजन (Fixed Interval Reinforcement Schedule)–इस आयोजन में सीखने वाले को एक निश्चित समय के पश्चात् पुनर्बलन दिया जाता है, जैसे किसी प्रयोग में चूहे को 3 मिनट के बाद भोजन का कुछ अंश प्रदान करना, किसी नौकर को एक सप्ताह के बाद वेतन देना आदि।

(3) निश्चित अनुपात पुनर्बलन आयोजन (Fixed Ratio Reinforcement Schedule)–इस आयोजन में यह निश्चित करके पुनर्बलन प्रदान किया जाता है कि कितनी बार सही अनुक्रिया करने पर पुनर्बलन दिया जाए। उदाहरण के लिए कबूतर को 50 बार सही चोंच मारने पर एक दाना देना, क्रियाओं के तीन ठीक उत्तर देने पर पुरस्कार देना इत्यादि।

(4) परिवर्तनशील पुनर्बलन आयोजन (Variable Reinforcement Schedule)–कई बार पुनर्बलन प्रदान करने में निश्चित अन्तराल और अनुक्रियाओं के निश्चित अनुपात को ध्यान में नहीं रखा जाता, बल्कि उसे किसी भी समय कितनी अनुक्रियाओं के पश्चात् प्रदान कर दिया जाता है। इस प्रकार के पुनर्बलन आयोजन को परिवर्तनशील पुनर्बलन आयोजन कहा जाता है।

पुनर्बलन आयोजन के उपरोक्त प्रकारों की उपयुक्तता में से अविछिन्न पुनर्बलन या निरन्तर पुनर्बलन *(Continuous Reinforcement)* द्वारा जितनी शीघ्रता से किसी वांछित व्यवहार को सीखने में सहायता मिल सकती है उतनी ही शीघ्रता से पुनर्बलित करने पर व्यवहार के विलुप्तिकरण *(Extinction)* की संभावना बढ़ जाती है। सीखे हुए वांछित व्यवहार को कम-से-कम भूलने अथवा उसके विलुप्तिकरण की संभावना को कम करने की दिशा में परिवर्तनशील पुनर्बलन आयोजन सबसे अधिक उपयुक्त रहता है। इस तरह से पुनर्बलन के आयोजन में शुरुआत शत-प्रतिशत पुनर्बलन द्वारा दी जानी चाहिए। इसके पश्चात् निश्चित अन्तराल अथवा निश्चित अनुपात पुनर्बलन को प्रयोग किया जाना चाहिए तथा अन्त में सीखे हुए वांछित व्यवहार को स्थायी रूप प्रदान करने की दिशा में परिवर्तनशील पुनर्बलन का उपयोग किया जाना चाहिये।

स्किनर के क्रिया-प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त की शैक्षणिक उपयोगिता (Educational Implications of Theory of Skinner's Operant Conditioning)–क्रिया-प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त का रचनात्मक उपयोग की दृष्टि से शैक्षणिक उपयोगिता में महत्त्वपूर्ण स्थान है। शैक्षणिक उपयोग के लिए निम्न बातें अच्छी तरह कही जा सकती हैं–

(1) क्रिया-प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त अच्छे परिणामों की दृष्टि से सीखने की प्रक्रिया और परिस्थितियों को इस प्रकार नियंत्रित और आयोजन करें कि सीखने वाला उचित पुनर्बलन द्वारा निरन्तर आगे बढ़ने को प्रोत्साहित होता रहे तथा उसे सीखने में कम-से-कम असफलता और निराशा का सामना करना पड़े।

(2) क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त का उपयोग व्यवहार परिमार्जन या व्यवहार में संशोधन के कार्य में बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता है। जिस बच्चे के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है उसके बारे में यह पता लगाया जाना चाहिए कि उसके लिए क्या कुछ एक अच्छे पुनर्बलन का कार्य कर सकता है। जैसे ही अपेक्षित व्यवहार की ओर बच्चे के कदम पड़ें, तुरन्त ही उपयुक्त पुनर्बलन द्वारा इस व्यवहार को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे द्वारा अपेक्षित व्यवहार की पुनरावृत्ति अवश्य होगी तथा इसे पुनर्बलन दिया जाएगा। परिणामस्वरूप बच्चा अपेक्षित व्यवहार की ओर तेजी से अग्रसर होगा और पुनर्बलन के संतुलित उपयोग द्वारा अच्छी तरह से अपेक्षित व्यवहार को सीखने में समर्थ हो जाएगा।

(3) क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त के अनुसार अनुक्रिया की उपयुक्तता एवं कार्य की सफलता अभिप्रेरणा *(Motivation)* का सबसे अच्छा स्रोत है। चूहे और कबूतर को भोजन की प्राप्ति एक अच्छा

Scanned with OKEN Scanner

अभिप्रेरक है और विद्यार्थी को अपने सही उत्तर की जानकारी सीखने के कार्य में एक सशक्त पुनर्बलन का कार्य करती है। प्रशंसा के दो शब्द, अध्यापक के प्रोत्साहित करने वाले हाव-भाव सफलता की अनुभूति, अधिक अंक और पुरस्कार, इच्छित कार्य करने की स्वतंत्रता आदि सभी ऐसे पुनर्बलन हैं जिनके द्वारा विद्यार्थी पूरी तरह अनुप्रेरित होकर अधिक उत्साह से सीखने की ओर अग्रसर हो सकता है। इस तरह क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन में अभिप्रेरणा के लिए वांछित अनुक्रिया और उपयुक्त पुनर्बलन को स्थान देकर अभिप्रेरणा के क्षेत्र में आंतरिक अभिप्रेरणा की अपेक्षा बाह्य अभिप्रेरकों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(4) व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त का अच्छी तरह उपयोग किया जा सकता है। स्किनर के अनुसार–**"हम अपने-आप में वही होते हैं जिसके लिए हमें प्रोत्साहित या पुरस्कृत किया जाता है। जिसे हम व्यक्तित्व कहते हैं वह और कुछ नहीं बल्कि समय-समय पर प्राप्त उन पुनर्बलनों का परिणाम है जिससे हम और हमारा व्यवहार एक निश्चित सांचे में ढल जाता है। उदाहरण के लिए, एक अंग्रेज बच्चा छोटी आयु में ही अंग्रेजी अच्छी तरह बोलना इसलिए सीख जाता है, क्योंकि जब पहली बार उसने अंग्रेजी भाषा जैसी ध्वनियाँ निकाली होंगी तो उसके प्रयत्नों को पूरा प्रोत्साहन मिला होगा। अगर यही बच्चा किसी जापानी या रूसी परिवार में पैदा होता तो फिर अंग्रेजी का स्थान जापानी या रूसी भाषा ने ले लिया होता क्योंकि इस अवस्था में उसे वैसा प्रयास करने पर अपने परिवेश द्वारा पुनर्बलन या प्रोत्साहन मिलता है।"**

(5) क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त के अनुसार अधिगम में अधिक से अधिक सफलता तभी मिल सकती है जब–

(i) सीखने की सामग्री को इस तरह आयोजित किया जाए कि सीखने वाले को अधिक से अधिक सफलता और कम-से-कम असफलता का सामना करना पड़े।

(ii) सही अनुक्रिया अथवा उत्तरों के लिए उसे तेजी से पुनर्बलन प्राप्त होता रहे।

(iii) सीखने वाले को स्वयं उसकी अपनी गति से सीखने का पूरा अवसर मिले।

(6) क्रिया-प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त के अनुसार **ताड़ना या दंड** *(Punishment)* न तो वांछित व्यवहार को सीखने में मदद कर सकता है और न बुरी आदतों अथवा व्यवहार को त्यागने में।

दंड के द्वारा कुछ समय के लिए बच्चा गलत व्यवहार करना छोड़ सकता है परन्तु जैसे ही दंड का भय अथवा उसका प्रभाव समाप्त होता है, बुरे व्यवहार की पुनरावृत्ति होने लगती है। इसलिए क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन दंड के स्थान पर वांछित व्यवहार को पुनर्बलन प्रदान कर सुदृढ़ करने और अवांछनीय व्यवहार की उपेक्षा कर उसे विलुप्त करने का विकल्प देता है।

उपरोक्त सभी बातों को क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त ने ही जन्म दिया है। परिणामस्वरूप आज शैक्षणिक जगत् में **अभिक्रमिक अनुदेशन (Programmed Learning)**, शिक्षण मशीनों और कम्प्यूटर निदेशित अपनी जड़ें गहरी करती जा रही हैं।

उपरोक्त शैक्षणिक उपयोगिता के अतिरिक्त स्किनर के क्रिया-प्रसूत सिद्धान्त की महत्ता या उपयोगिता निम्नलिखित कारणों से भी है–

(1) **विद्यार्थियों को प्रेरित करना (To Motivate the Students)**–इस सिद्धान्त की सहायता से विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

(2) **दोहराना (Repetitions)**–विद्यार्थियों को पाठ्य-वस्तु की बार-बार दोहराई करानी चाहिए।

(3) **शब्द भण्डार (Vocabulary)**–धनात्मक पुनर्बलन की सहायता से अध्यापक विद्यार्थियों के शब्द भण्डार में वृद्धि करने में सफल होता है।

(4) **अभिक्रमित अधिगम (Programmed Learning)**–यह विधि विज्ञान तथा गणित के अध्ययन में बहुत अधिक लाभदायक है।

Scanned with OKEN Scanner

(5) **पद विभाजन (Small Steps)**–इस विधि द्वारा पाठ्य-वस्तु को सरलता से छोटे-छोटे पदों में विभाजित किया जा सकता है।

(6) **सन्तोष प्राप्त होना (Satisfaction)**–कार्य करने से विद्यार्थियों को सन्तुष्टि की अनुभूति होती है, जिससे वे सीखने के लिए सक्रिय होते हैं।

(7) **व्यवहार को स्वरूप प्रदान करना (Shaping the Behaviour)**–इस सिद्धान्त की सहायता से विद्यार्थियों के व्यवहार को स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

(8) **भय को दूर करना (Elimination of Fear)**–कुछ मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्त का उपयोग विद्यार्थियों में विद्यालय के प्रति व्याप्त भय को दूर करने में करते हैं।

(9) **पुनर्बलन (Reinforcement)**–धनात्मक पुनर्बलन की सहायता से विद्यार्थियों के व्यवहार को वांछित दिशा में परिवर्तित करके उनकी उपलब्धियों को बढ़ाया जा सकता है।

(10) **सरल से कठिन (Easy to Difficult)**–यह सिद्धान्त सरल से कठिन पर बल देता है।

क्रिया-प्रसूत या सक्रिय-अनुबन्धन का महत्त्व निम्नलिखित है–

(a) सक्रिय-अनुबन्धन के सिद्धान्त द्वारा अध्यापक बालकों के व्यवहार को वांछित स्वरूप एवं दिशा प्रदान कर सकता है। इस कार्य के लिए अध्यापक को उद्दीपन नियन्त्रित करना पड़ता है।

(b) सक्रिय अनुबन्धन में पुनर्बलन *(Reinforcement)* का बहुत महत्त्व है। अध्यापक धनात्मक पुनर्बलन *(Positive Reinforcement)* के द्वारा बालकों के व्यवहार को वांछित दिशा में परिवर्तित कर सकता है। पुनर्बलन के विभिन्न रूप हो सकते हैं, जैसे–दण्ड एवं पुरस्कार, परिणाम का ज्ञान आदि। अध्यापक को धनात्मक पुनर्बलन का प्रयोग अधिक करना चाहिए।

(c) अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को उनके प्रयासों के परिणाम का ज्ञान करा दे। ऐसा करने से विद्यार्थी अपने कार्य में अधिक प्रगति कर सकते हैं।

(d) स्किनर ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध किया है कि प्राणी में सन्तुष्टि प्रदान करने वाली क्रिया से सक्रियता आती है। अध्यापक विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर सीखने के लिए प्रेरित कर सकता है। ऐसा करने से विद्यार्थियों को सन्तुष्टि मिलेगी और अधिगम भी शीघ्र होगा।

(e) इस सिद्धान्त की सहायता से अध्यापक बच्चों के शब्द भण्डार में वृद्धि कर सकता है।

(f) स्किनर के सिद्धान्त की सहायता से जटिल और मानसिक रोगियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है।

◆◆◆

2. पैवलव के शास्त्रीय अनुबन्धन तथा स्किनर के क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन में कौन-कौन से मुख्य अन्तर पाये जाते हैं? वर्णन कीजिये।

अथवा

पैवलव द्वारा प्रतिपादित अनुक्रिया अनुबन्धित सिद्धान्त व स्किनर द्वारा प्रतिपादित क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

उत्तर–स्किनर के प्रसूत अनुबंधन एवं पैवलव के शास्त्रीय-अनुबंधन में अन्तर (Difference between Skinner's Operant Conditioning and Pavlov's Classical Conditioning)–वटसन एवं पैवलव जैसे व्यवहारवादियों द्वारा प्रतिपादित शास्त्रीय-अनुबंधन को स्किनर ने अनुक्रिया अनुबंधन की संज्ञा दी है। इस प्रकार के अनुबंधन, अनुक्रिया व्यवहार *(Respondent Behaviour)* सम्बन्धी अधिगम में वांछित अनुक्रिया अथवा व्यवहार उत्पन्न करने में उद्दीपन *(Stimulus)* की केन्द्रीय भूमिका रहती है। इसलिए इसे उद्दीपनजन्य अनुबंधन *(Type S-Conditioning)* कहा जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

क्रिया-प्रसूत अनुबंधन, क्रिया-प्रसूत व्यवहार सम्बन्धी सीखने में सहायक होता है। इस प्रकार के अधिगम में अनुक्रिया या प्रत्युत्तर *(Response)* की केन्द्रीय भूमिका रहती है। इसलिए इसे अनुक्रिया-जन्य अनुबंधन *(Type R-Conditioning)* कहकर भी पुकारा जाता है।

उद्दीपनजन्य शास्त्रीय अनुवन्धन में प्राकृतिक उद्दीपक अथवा कृत्रिम उद्दीपक अनुबंधित अनुक्रिया *(Conditional Response)* उत्पन्न करने में सहायक होता है और एक तरह अधिगम किसी न किसी रूप में उद्दीपन से जुड़ा होता है। अतः इस प्रकार के अनुबंधन में सिद्धान्त वाले के सामने समस्या यह रहती है कि वह अधिक उपयुक्त उद्दीपकों का चुनाव कैसे करें ताकि वांछित अनुक्रिया होती रहे।

अनुक्रियाजन्य क्रिया-प्रसूत अनुबंधन में सिखाने वाले के सामने समस्या यह रहती है कि सीखने वाले द्वारा की जा सकने वाली सभी संभावित अनुक्रियाओं अथवा व्यवहारों में से वांछित अनुक्रिया अथवा व्यवहार को कैसे उत्पन्न किया जाए। इस प्रकार उत्पन्न सही व्यवहार अथवा अनुक्रिया को पुनर्बलन द्वारा सबल बनाकर स्थायित्व कैसे प्रदान किया जाए?

अनुक्रिया अनपपंधन और क्रिया-प्रसूत अनुबंधन के अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है–

क्रम संख्या	अनुक्रिया अनुबंधन (Respondent Conditioning)	क्रिया-प्रसूत अनुबंधन (Operant Conditioning)
1.	इस प्रकार के अधिगम में वांछित अनुक्रिया अथवा व्यवहार उत्पन्न करने में उद्दीपक *(Stimulus)* की केन्द्रीय भूमिका रहती है। इसलिए इसे उद्दीपन जन्य अनुबंधन *(Type S-Conditioning)* भी कहते हैं।	इस प्रकार के अधिगम में अनुक्रिया *(Response)* की केन्द्रीय भूमिका रहती है। इसलिए इसे अनुक्रिया जन्य *(Type R-Conditioning)* भी कहा जाता है।
2.	अनुक्रिया अनुबंधन, अनुक्रिया व्यवहार सम्बन्धी अधिगम में सहायक सिद्ध होता है।	क्रिया-प्रसूत अनुबंधन क्रिया प्रसूत व्यवहार सम्बन्धी अधिगम में सहायक सिद्ध होता है।
3.	इसमें अनुबंधन प्रक्रिया की शुरुआत किसी विशेष उद्दीपक द्वारा कोई निश्चित अनुक्रिया उत्पन्न करने द्वारा होती है।	इस अनुबंधन में शुरुआत सीखने वाले की उन अनुक्रियाओं को लेकर होती है जिन्हें सिखाने वाले द्वारा अथवा विशेष रूप से सीखने वाले द्वारा कराने का प्रयत्न किया जाता है।
4.	इस प्रकार के अनुबंधन में अनुबंधन की शक्ति अनुबंधित अनुक्रिया की सामर्थ्य *(Magnitude of Conditioned Response)* पर निर्भर करती है। प्रयोगों में इसकी माप संभव है जैसे पैवलव के प्रयोग में कुत्ते द्वारा गिराई जाने वाली लार की मात्रा के द्वारा अनुबंधन शक्ति का अंदाजा लगाया जा सकता है।	इस प्रकार के अनुबंधन में अनुबंधन की शक्ति को अनुक्रिया दर *(Response Rate)* द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। प्रयोगों में इसकी माप संभव है। उदाहरण के लिए स्किनर के चूहे वाले प्रयोगों में लीवर को एक ऐसी विलडिंग प्रणाली से जोड़ा जा सकता है जिससे चूहे द्वारा लीवर दबाने की अनुक्रिया की दर का रेखीय चित्र *(Graph)* प्राप्त हो सके।
5.	इस अनुबंधन में सीखने वाला जरा भी स्वतंत्र नहीं है। जिस तरह का उद्दीपन उसके सामने होता है वैसा ही व्यवहार करने के लिए विवश होता है।	इस प्रकार के अनुबंधन में सीखने वाले की अनुक्रिया करने की काफी कुछ स्वतंत्रता होती है।

Scanned with OKEN Scanner

क्रम संख्या	अनुक्रिया अनुबंधन (Respondent Conditioning)	क्रिया-प्रसूत अनुबंधन (Operant Conditioning)
6.	इस अनुबंधन में अनुक्रिया उत्पन्न करने के लिए किसी ज्ञात उद्दीपन *(Known Stimulus)* का होना नितांत आवश्यक है।	क्रिया-प्रसूत अनुबंधन प्रताड़ना अथवा दंड को वांछनीय व्यवहार सिखाने अथवा अवांछनीय व्यवहार को सुधारने के लिए उपयोग में लाने का सख्त विरोधी है। विकल्प के रूप में यह चाहता है कि वांछनीय व्यवहार को पुनर्बलन द्व ारा सुदृढ़ किया जाए तथा अवांछनीय व्यवहार की ओर न कोई ध्यान दिया जाए और न किसी तरह से उसे पुनर्बलित या प्रोत्साहित किया जाए। यह थॉर्नडाइक के माध्यमजन्य अनुबंधन के निकट है क्योंकि इसमें अनुक्रिया अथवा व्यवहार स्वयं ही व्यवहार को अनुबंधित करने के लिए माध्यम या यंत्र *(Instrument)* का कार्य करता है।
7.	इस प्रकार के अनुबंधन में प्रताड़ना अथवा दंड *(Punishment)* को बुरी आदतें छुड़ाने एवं अवांछनीय व्यवहार को भूल जाने *(Deconditioning)* के रूप में उपयोग में लाया जाता है।	क्रिया-प्रसूत अनुबंधन प्रताड़ना अथवा दंड को वांछनीय व्यवहार सिखाने अथवा अवांछनीय व्यवहार को सुधारने के लिए उपयोग में लाने का सख्त विरोधी है। विकल्प के रूप में यह चाहता है कि वांछनीय व्यवहार को पुनर्बलन द्व ारा सुदृढ़ किया जाए तथा अवांछनीय व्यवहार की ओर न कोई ध्यान दिया जाए और न किसी तरह से उसे पुनर्बलित या प्रोत्साहित किया जाए।
8.	अनुक्रिया अनुबंधन और शास्त्रीय अनुबंधन दोनों एक ही हैं।	यह थॉर्नडाइक के माध्यमजन्य अनुबंधन के निकट है क्योंकि इसमें अनुक्रिया अथवा व्यवहार स्वयं ही व्यवहार को अनुबंधित करने के लिए माध्यम या यंत्र *(Instrument)* का कार्य करता है।
9.	इस प्रकार के अनुबंधन में पुनर्बलन का प्रयोग सीखने वाले द्वारा की गई अनुक्रिया अथवा व्यवहार के पहले किया जाता है।	इस प्रकार के अनुबंधन में शुरुआत व्यवहार अथवा अनुक्रिया द्वारा होती है और उसके बाद उसे बल प्रदान करने के लिए पुनर्बलन दिया जाता है।
10.	इस प्रकार के अनुबंधन का सम्बन्ध सीखने वाले के स्वचालित तन्त्रिका तन्त्र से है।	इस प्रकार के अनुबंधन का सम्बन्ध सीखने वाले के केन्द्रीय तन्त्रिका यन्त्र से है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3.3 सज्ञानात्मकवादी (Cognitivist)

1. अधिगम के सज्ञानात्मक परिप्रेक्ष्य के बारे में आप क्या जानते हैं?
(What do you mean by congnitive perspective of learnings?)

उत्तर–अधिगम का सज्ञानात्मक परिप्रेक्ष्य वह होता है जिसमें चिंतन, समझ, प्रत्यक्षण, स्मरण करना, समस्या समाधान तथा अन्य अनेक मानसिक क्रियाएँ आती हैं जिससे हमारा दुनिया का ज्ञान विकसित होता है। हम दुनिया को जान सकते हैं। यह हमें इस योग्य बनाता है कि हम वातावरण के साथ विशिष्ट ढंग से रह सकें।

कुछ संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक मानव मन को कम्प्यूटर की तरह एक सूचना प्रक्रमण तंत्र के रूप में देखते हैं। इस विचार धारा के अनुसार मन एक कम्प्यूटर की तरह का होता है जो सूचना को प्राप्त करता है, प्रकरण करता है, रूपांतरण करता है, संचित करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी पुनःप्राप्ति करता है। आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनुष्यों को उनके सामाजिक एवं भौतिक वातावरण के अन्वेषणों के द्वारा अपने मन की सक्रिय रचना करने के रूप में देखता है।

पियाजे, विगोटस्की, चोमस्की, ब्रुनर प्रसिद्ध सज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक हैं। गेस्टाल या अन्तदृष्टि सिद्धान्त तथा टालमैन का चिह्न अधिगम सिद्धान्त सीखने के ज्ञानात्मक सिद्धान्तों में से अत्यन्त विकसित सिद्धान्त है। मनोवैज्ञानिकों ने सम्पूर्ण प्रत्यक्षीकरण और फिर बुद्धिमतापूर्वक उचित अनुक्रिया व्यक्ति करने को अर्न्तदृष्टि कहा गया है। अन्तदृष्टि द्वारा सीखने में समस्यापूर्ण स्थिति को एक इकाई के रूप में देखा जाता है अर्थात समाधान को क्रिया से पहले ही देख लिया जाता है।

टॉलमैन का विश्वास है कि लक्ष्य को जाने वाले मार्ग को ही सीखा जाता है। हम अर्थ सीखते हैं, गतियाँ नहीं। हम उन चिह्नों और लक्ष्य के परस्पर सम्बन्ध को सीखते हैं। दूसरे शब्दों में हम सीखते हैं कि कौन-सी चीज किस ओर जाती है। अतः सीखने में चिह्नों को पहचानना और लक्ष्यों से सम्बन्धित उनके अर्थों को समझना सम्मिलित है। घटनाओं और परिणामों का अनुक्रम चिह्न व्यवहार के महत्व को स्पष्ट करता है अर्थात विशिष्ट लक्ष्यों पर पहुँचने की ओर संकेत करता है।

संज्ञान वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव को किसी वस्तु, घटना या परिस्थिति का बोध होता है अथवा ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण पहचान है तक, निर्णय तथा अवधारणा जैसी मानसिक क्रियाएं सहित होती हैं। तीन कोटियाँ जिनमें समस्त मानसिक क्रियाएँ वर्गीकृत की जाती है वे हैं–संज्ञान (Cognition), भावबोध (Affection), क्रियावृत्ति (Connation)। उदाहरणार्थ–अचानक सामने भूमि पर रेंगते हुए जीव को देखकर सर्प का बोध होता है। (संज्ञान) फलस्वरूप भय की संवेगात्मक अनुभूति होती है, (भावबोध) तदुपरान्त भागने की तत्परता या क्रिया होती है। (क्रियावृत्ति)। आजकल यह माना जाता है कि यदि बालक किसी पारिवारिक या सामाजिक परिस्थिति के सब पार्श्वों को संज्ञान समझ लेता है तो सर्वोत्तम होता है।

मनोवैज्ञानिक काफी लम्बे समय तक संज्ञान (Cognition) को बालकों की जन्मजात विशेषता मानते रहे जिसके कारण संज्ञानात्मक अनुभवों से सम्बन्धित विशेषताओं की वैज्ञानिक खोज करना संभव नहीं हो सका। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने तो संज्ञान के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं किया परंतु संज्ञानवादी मनोवैज्ञानिक ने व्यक्ति की विभिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताओं जैसे–प्रत्यक्षीकरण, तर्क, समस्या समाधान तथा चिन्तन आदि प्रक्रियाओं से सम्बन्धित विस्तृत विश्लेषण के आधार पर उन विभिन्न मानसिक तत्त्वों का भी पता लगा लिया, जो व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसके अतिरिक्त संज्ञानवादी मनोवैज्ञानिक ने संज्ञान (Cognition) को विभिन्न प्रकार की सूचनाओं के क्रियान्वयन (Processing of information) की एक विधि के रूप में स्वीकार किया। सूचनाओं के क्रियान्वयन की विधि (Processing of information method) का अर्थ है कि जब बालक वातावरण में उपस्थित

Scanned with OKEN Scanner

विभिन्न तत्त्वों का प्रत्यक्षीकरण करता है इसके बाद विभिन्न प्रकार के प्रतीकों (Symbols) के आधार पर उन तत्त्वों को समझने की कोशिश करता है तथा साथ ही उनके सम्बन्ध में अमूर्त चिन्तन (Astract thinking) करता है तो उपरोक्त सभी प्रक्रियाओं से मिलकर उसके अंदर एक ज्ञान-भण्डार अर्थात् एक प्रकार की संज्ञानात्मक संरचना का निर्माण होता है। यही ज्ञान-भण्डार अथवा संज्ञानात्मक संरचना बालक या प्राणी के व्यवहार को निर्देशित करने में भूमिका निभाती है। अतः इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि कोई भी बालक या व्यक्ति वातावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों (Stimulus) के द्वारा प्रभावित होकर सीधे तौर पर प्रतिक्रिया को व्यक्त नहीं करता बल्कि पहले वह उन उद्दीपकों को ग्रहण या प्राप्त करता है तथा उनकी व्याख्या (Interpretation) करता है। इनकी व्याख्या के पश्चात् वातावरण में उपस्थित बाहरी उद्दीपक की संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive sturucture) से अव्यवस्थित हो जाते हैं।

अतः इस प्रकार से व्यक्ति के अन्दर विकसित हुई संज्ञानात्मक संरचना वातावरण से सम्बन्धित उद्दीपकों और व्यक्ति के व्यवहार के बीच मध्यस्थता (Mediator) की भूमिका निभाती है। संज्ञानात्मक संरचना के अर्थ को स्पष्ट करते हुए स्टॉट ने कहा है कि–"संज्ञानात्मक क्षमता बाहरी वातावरण में विचारपूर्वक प्रभावपूर्ण ढंग से तथा सुविधा के साथ कार्य करने की क्षमता को कहते हैं।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का महत्त्व या उपयोगिता
(Importance or Utility of Piaget's Cognitive Development Theory)

ज्ञानात्मक योग्यताओं (Cognitive-abilities) की विकास प्रक्रिया को जानने के पश्चात् उनके बौद्धिक विकास में सहायता मिलती है। पियाजे का मानना है कि बच्चे के लिए माता-पिता का प्यार और अन्तःक्रिया दोनों ही जीवन के प्रथम दो वर्षों के लिए आवश्यक होते हैं। पियाजे ने उद्दीपन (Stimulus) की अधिक मात्रा प्रदान करने के महत्त्व पर अधिक बल दिया है। इन उद्दीपनों में दोनों प्रकार के उद्दीपन अर्थात् भौतिक और बौद्धिक उद्दीपन शामिल हैं। इन उद्दीपनों के रंग, आकार, स्वरूप और उनकी गति आदि में परिवर्तन भी आवश्यक होता है।

शोध कार्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि वे बच्चे और जानवर जिन्हें संवेदानात्मक उद्दीपन (Sensory Stimulation) प्रदान किया जाता है और ऐसे उद्दीपन जन्म से जीवन के प्रथम वर्षों तक दिये जाते हों, वे बच्चे और जानवर बौद्धिक और सामाजिक रूप से उन बच्चों और जानवरों से अधिक विकसित होते हैं जिन्हें इस प्रकार के उद्दीपन प्रदान नहीं किये जाते हैं। लेकिन यह जानकर कि इस प्रकार के विकास को तीव्र किया का सकता है, पियाजे ने इस बात पर भी बल दिया है कि बच्चों पर इस विकास का बोझ अधिक नहीं डालना चाहिए। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डेविड एलकिंड **(Mavid Elikind 1981)** ने अपनी पुस्तक 'दा हरीड चाईल्ड' में इस तथ्य से सहमति प्रदर्शित की है। इस पुस्तक की इस अधिक तीव्रता का दुष्प्रभाव बताया गया है माता-पिता बच्चों को बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करके बच्चों की सहायता करते हैं और यह सहायता उनके वर्तमान विकास-स्तर के अनुरूप होती है। बच्चों को उनके स्तर से अधिक कार्य करने के लिए कहना समय की व्यर्थता है।

बच्चों के विकास के बारे में अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिकों पर पियाजे के विचारों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। छोटे बच्चों के अध्ययनों में बच्चों के विकास का मापन विभिन्न आयु स्तर के बच्चों को एक ही कार्य देकर किया जाता है। जो बच्चे उस कार्य को नहीं कर पाते वे ज्ञानात्मक रूप से दुर्बल (Congnitively Deficient) माने जाते हैं।

जैलमन अन्यों (Gelman and others 1972) के अनुसंधानों द्वारा यह पता चला है कि बच्चों के ज्ञानात्मक विकास को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों को विभिन्न आयु-स्तरों के बच्चों से भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछने चाहिए। **शाज और जैलमन (Shatz and Gelman 1973)** ने यह बताया है कि दो-वर्षीय बालक अपने वाक्यों की लम्बाई बदल लेते हैं यह जानकर कि वे किससे बात कर रहे हैं। ऐसे बच्चे छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करते हैं जब वे छोटे बच्चों से बात करते हैं। **लैम्परस, फ्लेवैल और फ्लेवैल (Lampers,**

Scanned with OKEN Scanner

Flavell and Flavell 1977) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि दो वर्षीय बच्चे अपनी पुस्तक में चित्रों एवं उदाहरणों को अपनी मां के दिखाने के लिए पुस्तक को घुमा सकते हैं।

पियाजे के विचारों को निम्न रूप से संक्षिप्त स्वरूप प्रदान कर सकते हैं–

(i) जीवन के प्रथम दो वर्षों में बच्चों के बौद्धिक विकास के लिए माता-पिता का प्यार और अन्तःक्रिया आवश्यक है।

(ii) उद्दीपन की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

(iii) बच्चों को भौतिक और बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करने चाहिए।

(iv) संवेदनात्मक उद्दीपन (Sensory Stimulus) प्राप्त करने वाले बच्चों का बौद्धिक विकास तीव्र होता है।

(v) पियाजे के अनुसार इस विकास का बोझ बच्चों पर अधिक नहीं पड़ना चाहिए।

(vi) बच्चों को बौद्धिक उद्दीपन प्रदान करने चाहिए और ये उद्दीपन उनकी आयु-स्तर के अनुसार हों।

(vii) बच्चों को उनके आयु-स्तर से अधिक का कार्य करवाना समय व्यर्थ गंवाना होगा।

(viii) बच्चों को ज्ञानात्मक विकास को समझने के लिए भिन्न आयु-स्तर के बच्चों से भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछे जाएं।

(ix) पियाजे के अनुसार बुद्धि वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है (Process of adaptation to environment)

(x) पियाजे के अनुसार ही बौद्धिक-विकास में इस सामंजस्य को स्थापित करने से उत्पन्न परिवर्तनों को शामिल किया जाता है।

(xi) प्रत्येक बालक को बौद्धिक विकास कई स्तरों की शृंखला से गुजरता है।

(xii) प्रत्येक स्तर पर विभिन्न प्रकार की ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं द्वारा यह तय किया जाता है कि बालक किस प्रकार का बौद्धिक कार्य सम्पन्न कर सकता है।

◆◆◆

1. सीखने का अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ सिद्धान्त (Insight Theory of Learning)

1. अन्तर्दृष्टि शिक्षण से आप क्या समझते हैं? अन्तर्दृष्टि शिक्षण या सूझ-बूझ द्वारा सीखने के विभिन्न भागों तथा इसे प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये।

अथवा

सीखने के अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त या सूझ-बूझ सिद्धान्त से आपका क्या अभिप्राय है? सीखने के अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ द्वारा सीखने के सिद्धान्त के विभिन्न भागों तथा इसके महत्त्वपूर्ण तत्त्वों या कारकों का वर्णन कीजिए।

अथवा

अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए इसकी मुख्य विशेषताओं, तत्त्वों तथा नियमों का वर्णन कीजिए।

अथवा

सीखने का अन्तर्दृष्टि या सूझ सिद्धान्त का क्या अर्थ है? अन्तर्दृष्टि या सूझ सिद्धान्त की विशेषताओं, तत्त्वों, नियमों तथा कमियों या सीमाओं की विवेचना कीजिये।

उत्तर–गेस्टाल्ट *(Gestalt)* शब्द का अर्थ है–समग्र रूप। इसके अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु का आंशिक रूप से नहीं बल्कि पूर्ण रूप से सीखता है। इस सिद्धान्त का जन्मदाता जर्मनी का मनोवैज्ञानिक वरदीमर

Scanned with OKEN Scanner

(Wertheimer) कहा जाता है। उसके इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाने में कॉफका *(Kurt Koffka)* तथा कोहलर *(Kohler)* ने बहुत अधिक योगदान दिया। वरदीमर का मानना यह है कि 'सम्पूर्ण' बड़ा है और 'कुछ' उसका अंश है *(The whole is greater than the sum of its parts)*। इसे हिन्दी में पूर्णाकारवाद भी कहा जाता है।

इसके मूल में अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ *(Insight)* विद्यमान रहती है। अन्तर्दृष्टि का अर्थ है—समस्या के समाधान को गहराई में देखना। वुडवर्थ *(Woodworth)* के अनुसार, 'अन्तर्दृष्टि का अर्थ है—अच्छा निरीक्षण, स्थिति को पूर्ण इकाई के रूप में समझना या स्थिति के उन भागों को समझना जो लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग दिखाते हैं।' प्रो. कोहलर *(Prof. Kohler)* के अनुसार अन्तर्दृष्टि में पूर्व दृष्टि *(Foresight)* निहित होती है। इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि व्यक्ति का व्यवहार पूर्णता से निर्देशित होता है। व्यक्ति किसी वस्तु का पूर्ण रूप से प्रत्यक्षीकरण करता है, न कि भागों में।

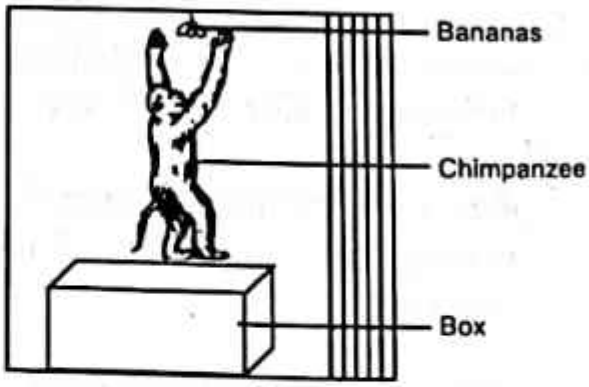
इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी समस्या के समाधान के लिए अर्न्तदृष्टि या सूझ का होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्तर्दृष्टि शिक्षण का तात्पर्य सीखने की उस प्रक्रिया से है, जिसके अन्तर्गत सीखने के लिए बार-बार प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि प्रयोज्य नई परिस्थितियों में उत्पन्न समस्या को चिन्तन द्वारा हल करता है। चिन्तन से उत्पन्न अन्तर्दृष्टि या सूझ के कारण वह प्रथम प्रयास में ही समस्या को हल कर लेता है। अन्तर्दृष्टि या सूझ प्राणी में अचानक उत्पन्न होती है।

अन्तर्दृष्टि या सूझ सिद्धान्त के सम्बन्ध में कोहलर का कहना है कि "व्यक्ति पहले स्थिति को समझता है और फिर अपनी सूझ-बूझ के अनुसार व्यवहार करता है। इस विधि के अनुसार क्रियाएँ करते हुए प्रयास व्यर्थ नहीं जाते और न ही क्रिया को बार-बार दोहराना पड़ता है। जब भी व्यक्ति किसी नई स्थिति के सारे तत्त्वों के बारे में विचार करता है और जब उसे सम्पूर्ण तौर पर समझ लेता है तब वह कोई प्रक्रिया करता है।"

कोहलर ने थॉर्नडाइक के प्रयास और भूल के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि व्यक्ति प्रयास और भूल से न सीखकर अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ से सीखता है। कोहलर ने पाया कि व्यक्ति अचानक समस्या का सही समाधान ढूँढ़ लेता है। इस सिद्धान्त में प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* पर अधिक बल दिया है तथा उसे महत्त्वपूर्ण माना है। कोहलर और कॉफका इस परिणाम पर पहुँचे कि व्यक्ति किसी समस्यात्मक परिस्थिति का सूझ-बूझ या अन्तर्दृष्टि से समाधान निकालता है।

अन्तर्दृष्टि शिक्षण से सम्बन्धित प्रयोग (Experiments)—कोहलर *(Kohler)* ने 1913 से 1917 तक बर्लिन विश्वविद्यालय में एक चिम्पैन्ज़ी *(Chimpanzee)* पर प्रयोग किए, जिसका नाम था—सुल्तान। इन प्रयोगों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से हैं—

प्रयोग नं. 1—कोहलर ने अन्तर्दृष्टि शिक्षण से सम्बन्धित एक प्रयोग में वनमानुष को एक समस्या समाधान के लिए चुना। उन्होंने वनमानुष को भूखा रखकर एक बड़े पिंजरे में बन्द कर दिया। इस पिंजरे की छत से केले इतनी ऊँचाई पर लटका दिये कि वनमानुष जमीन पर खड़े होकर उन्हें नहीं पकड़ सकता था। उसी पिंजरे में एक ओर लकड़ी के दो बक्से रखे हुए थे। केले को प्राप्त करने के लिए वनमानुष जमीन से खड़े होकर उनको पकड़ने की कोशिश में असफल हो गया।

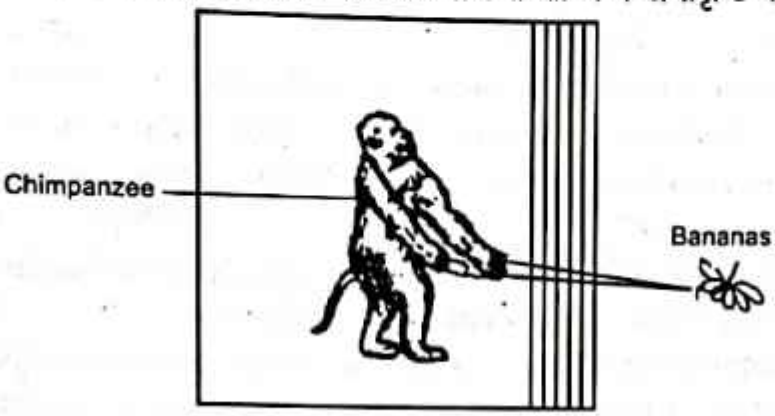


प्रयोग न. 1

कुछ देर तक वह चुपचाप बैठा रहा। फिर उसे अचानक सूझ आई, वह उठा और उसने लकड़ी के एक बॉक्स को उठाकर बीच जमीन पर रखा, किन्तु इस बॉक्स की ऊंचाई भी केलों को प्राप्त करने के लिए कम थी। अतः वह दूसरा बॉक्स लाया और उसे भी पहले बॉक्स के ऊपर चढ़कर केले प्राप्त करने में सफल हो गया। इस प्रकार केले प्राप्त करने की समस्या का हल प्रयोज्य ने अन्तर्दृष्टि या सूझ के माध्यम से प्राप्त किया।

Scanned with OKEN Scanner

प्रयोग नं. 2–एक अन्य प्रयोग में कोहलर ने प्रयोग नं. 1 की तरह वनमानुष को पिंजरे में बन्द किया। वह भूखा था। पिंजरे के बाहर केले इतनी दूरी पर रखे गए कि वनमानुष का हाथ उन तक न पहुँच सका। वनमानुष उनको प्राप्त करना चाहता था। उसी पिंजरे में दो छड़ियाँ रखी हुई थीं, जिनमें एक छड़ी मोटी और दूसरी अपेक्षाकृत कम मोटी थी। इन दोनों छड़ियों को आपस में फँसाकर लम्बी छड़ी के रूप में बदला जा सकता था। वनमानुष ने कुछ देर बाद एक छड़ी उठाई और केलों को प्राप्त करने का असफल प्रयास किया। क्योंकि छड़ी की लम्बाई कम थी, इसलिए वह केले प्राप्त न कर सका। कुछ देर बाद छड़ियों को आपस में जोड़ लिया। छड़ी लम्बी हो जाने पर उसने उसकी सहायता से पिंजरे से दूर रखे केले प्राप्त कर लिए। कोहलर ने इस प्रयोग में भी छड़ियों का उपयोग करने की प्रक्रिया का जन्म अन्तर्दृष्टि या सूझ को माना।



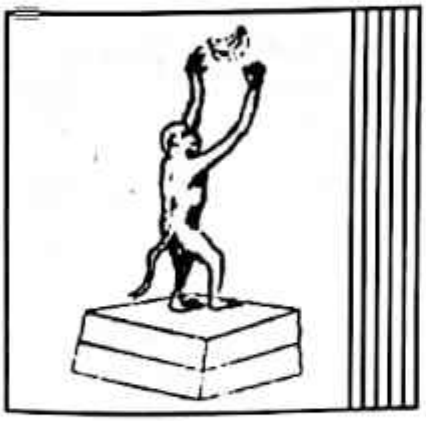
प्रयोग न. 2

प्रयोग नं. 3–तीसरे प्रयोग में कोहलर ने परिस्थितियों में थोड़ा परिवर्तन कर दिया। अब उसने केलों को छत से लटका दिया तथा छड़ियों के स्थान पर बक्से *(Boxes)* का प्रयोग किया। उसने भूखे सुलतान को पिंजरे में बन्द कर दिया। सुलतान को छत पर लटके हुए केले दिखाई दिए। केलों को देखकर सुलतान उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयास करने लगा। किन्तु सुलतान को सफलता नहीं मिली और वह निराश होकर बैठ गया। पिंजरे के कोने में लकड़ी का एक बक्सा रखा था। अचानक उसकी नजर इस बक्से पर पड़ी और उसे एक युक्ति सूझी। उसने बक्से को नीचे रखा। इस पर खड़े होकर उसने केलों को प्राप्त कर लिया तथा अपनी पेट की आग को शान्त किया।



प्रयोग न. 3

प्रयोग नं. 4–अन्तिम प्रयोग में कोहलर ने परिस्थितियों में फिर परिवर्तन कर दिया। उसने केलों को छत से लटकाया तो जरूर मगर केलों की ऊंचाई बढ़ा दी। अब उसने एक बक्से के स्थान पर पिंजरे में दो बक्से *(Two Boxes)* रख दिए। उसने भूखे सुलतान को पिंजरे में बन्द कर दिया। अब सुलतान को पता लग गया कि हाथ से केलों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसने बक्से को नीचे रखा और उस पर खड़े होकर केलों को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने लगा। किन्तु केले प्राप्त करने में असफल होने के कारण वह निराश होकर बैठ गया। उसे पिंजरे में रखा दूसरा बक्सा दिखाई दिया। अचानक उसे युक्ति सूझी। उसने दोनों बक्सों को ऊपर-नीचे रखा। इन पर खड़े होकर केलों को प्राप्त कर लिया और इस प्रकार अपनी भूख शान्त की।



प्रयोग न. 4

प्रयोग नं. 5–कोहलर ने 15 मास की लड़की पर भी प्रयोग किया। इस लड़की ने कुछ देर पहले ही चलना सीखा था। इस लड़की से करीब दो मीटर दूर एक खिलौना रख दिया। दूसरी ओर एक बाधा उत्पन्न

Scanned with OKEN Scanner

कर दी। खिलौने को देखकर उस लड़की ने उसे लेने के लिए तथा बाधा पार करने के लिए प्रयास किया। इसमें उसने अपनी सूझबूझ या अन्तर्दृष्टि से कार्य किया और बाधा के एक ओर से घूमकर उस खिलौने तक पहुँची। इस प्रयोग द्वारा भी सूझबूझ के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है।

उपर्युक्त प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि अन्तर्दृष्टि सीखने में सहायक होती है। अन्तर्दृष्टि का अर्थ—तत्कालीन परिस्थिति में उपस्थित विभिन्न वस्तुओं, विचारों और पक्षों के बीच आपसी सम्बन्धों की जानकारी चिंतन द्वारा प्राप्त करना होता है। जैसे—उपरोक्त प्रयोग में वनमानुष केले प्राप्त करने के लिए बक्सों की संख्या, केलों की जमीन से ऊंचाई, बक्सों की ऊंचाई, उन्हें रखने का स्थान आदि के बारे में चिन्तन से ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करता है। अचानक उत्पन्न अन्तर्दृष्टि से मानसिक-स्तर पर किसी समस्या का समाधान दिखाई देने पर उस विचार को कार्य रूप दिया जाता है। अन्तर्दृष्टि जागृत होने में पूर्व-शिक्षणों/अनुभवों का भी योगदान होता है। प्रयोज्य अपने अनुभवों से सीखे गए विभिन्न कार्यों की स्मृति के आधार पर नवीन परिस्थिति में उन अनुभवों के प्रयास एवं भूल की स्थापना व असमानता को देखता है। इनके आधार पर वह जहाँ-कहीं पहले किसी अनुभव का प्रस्तुत परिस्थिति में उपयोग कर सकता है उसके बारे में सोचकर नयी समस्या का समाधान खोजता है। चिन्तन के स्तर पर समाधान की प्राप्ति अन्तर्दृष्टि कहलाती है।

अन्तर्दृष्टि या सूझ द्वारा सीखने की विशेषताएँ (Characteristics of Insight Learning)—अन्तर्दृष्टि या सूझ के द्वारा सीखने की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) एकल प्रयास के द्वारा सीखना (Learning by Single Effort)—अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने में प्रयोज्य में चिन्तन के द्वारा विभिन्न प्रयासों को क्रमशः सोचने के बाद अचानक अन्तर्दृष्टि या सूझ उत्पन्न होती है, क्योंकि वह समस्या का समाधान अधिकतर एक ही प्रयास में कर लेता है।

(2) अन्तर्दृष्टि में चिन्तन का महत्त्व या उपयोगिता (Utility of Thinking in Insight)—अन्तर्दृष्टि या सूझ द्वारा सीखने में प्रयोज्य सभी संभावित बाधाओं को दूर करने के लिए अपने पूर्व अनुभवों का लाभ उठाकर चिन्तन के आधार पर समाधान खोजता है।

(3) समस्या का पूर्ण रूप से प्रत्यक्षीकरण करना (To Percieve Problems as a Whole)—इस विधि के अनुसार सीखने के अन्तर्गत समस्या का समाधान समस्या के विभिन्न पक्षों को अलग-अलग देखकर संभव नहीं होता, बल्कि उस परिस्थिति के समस्त पक्षों को एक साथ प्रत्यक्षीकृत करके ही समाधान के लिए अन्तर्दृष्टि उत्पन्न हो सकती है।

(4) अन्तर्दृष्टि या सूझ उच्च श्रेणी के जीवों में संभव (Insight is Possible in only Higher Order Organisms)—इस प्रकार के सीखने की संभावना निम्न श्रेणी के जीवों में नहीं होती। केवल उच्च श्रेणी के जीव जैसे—मानव, वनमानुष, बन्दर आदि में ही यह संभव है, क्योंकि चिन्तन जैसी उच्च मानसिक क्रियाएँ विकसित मस्तिष्क के कारण उनमें अधिक विकसित होती हैं।

(5) विभिन्न तत्त्वों का सम्मिश्रण (Combination of Different Elements)—इस प्रकार के शिक्षण में लक्ष्य, बाधा, तनाव, संगठन व पुनः संगठन जैसे पाँच तत्त्व पाये जाते हैं। इनके कारण ही अन्तर्दृष्टि उत्पन्न होती है।

(6) आयु का प्रभाव (Effect of Age)—आयु बढ़ने की कुछ सीमा तक बुद्धि में भी विकास होता है। इसके अलावा आयु की वृद्धि के कारण अनुभवों में वृद्धि होती है। इस वृद्धि का सीधा सम्बन्ध अन्तर्दृष्टि की उत्पत्ति से होता है। अतः आयु का प्रभाव भी इस प्रकार के शिक्षण पर पाया जाता है।

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अन्तर्दृष्टि के द्वारा सीखने की कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(i) सूझ द्वारा सीखना प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर करता है। प्रत्यक्षीकरण जितना सघन होगा, अधिगम उतना ही अधिक होगा।

(ii) प्राणी में बुद्धि की मात्रा जितनी अधिक होगी, प्राणी में सूझ भी उतनी अधिक होगी। सूझ व बुद्धि में सीधा धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है।

Scanned with OKEN Scanner

(iii) सूझ व्यक्ति की आयु से भी सम्बन्धित है। अन्य बातें समान रहें तो पाया गया है कि व्यक्ति की आयु ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, एक सीमा तक त्यों-त्यों उसकी अंन्तर्दृष्टि विकसित होती जाती है।

(iv) अन्तर्दृष्टि पर व्यक्ति के पूर्व-अनुभवों का प्रभाव पड़ता है। पूर्व अनुभवों का विशाल भंडार अन्तर्दृष्टि में विकास करता है।

(v) लक्ष्यों की स्पष्टता अन्तर्दृष्टि में सहायक होती है। लक्ष्य जितने अधिक स्पष्ट होंगे अन्तर्दृष्टि उतनी ही अधिगम में अधिक सहायक होगी।

(vi) अन्तर्दृष्टि से पूर्व व्यक्ति सामान्यतः प्रयत्न व भूल से समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है।

(vii) अन्तर्दृष्टि सदैव समस्या के संपूर्ण अंगों या समग्राकृति को समझने पर ही आती है। सूझ का सम्बन्ध अवबोध या समझ *(Understanding)* से भी है।

(viii) अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है।

(ix) अन्तर्दृष्टि से जो कुछ सीखा जाता है उसका स्थानान्तरण भी होता है।

(x) अन्तर्दृष्टि के उपरान्त वस्तुएँ या समस्याएँ नये रूप में दिखाई पड़ती हैं।

(xi) अन्तर्दृष्टि या सूझ व्यक्तियों के व्यवहारों में तुरन्त परिवर्तन लाती है।

अन्तर्दृष्टि के भाग (Parts of Insight)—वुडवर्थ ने अन्तर्दृष्टि के निम्न दो भाग बताये हैं–

(1) अग्रदृष्टि (Fore-sight)–जब किसी परिस्थिति में समस्या समाधान को सुलझाने से पहले अनुकरण किए जाने वाले मार्ग के बारे में पहले से चिन्तन करके उस गार्ग के बारे में सोचता है और उसी को कार्य के रूप से बदलता है तो इस प्रकार के चिन्तन को अग्रदृष्टि कहते हैं।

(2) पश्चदृष्टि (Hind-Sight)–इसके अन्तर्गत जीव की दृष्टि अपने अनुभवों के द्वारा सीखे गए कार्यों की ओर होती है अर्थात् इसमें चिन्तन की दिशा पहले किए गए कार्यों की ओर होती है और कार्यों से प्राप्त अनुभव का उपयोग करके वह समस्या के समाधान को खोजता है तो इस प्रकार का चिन्तन पश्चदृष्टि से सम्बन्धित होता है।

सीखने या अधिगम के नियम (Law s of Learning)—अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त या गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार अधिगम में नीचे लिखे नियमों का प्रयोग होता है–

(i) संरचना का नियम (Law of Structure)–गेस्टाल्टवादियों के अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु या समस्या की सम्पूर्ण संरचना को देखकर ही उसका हल निकाल सकता है और सीखने की संपूर्ण प्रक्रिया उस समय पूर्ण मानी जाती है जब उस प्रक्रिया का एक निश्चित स्वरूप अधिगमकर्ता के सम्मुख निखर कर सामने आता है।

(ii) समरूपता का नियम (Law of Similarity)–गेस्टाल्टवादियों के अनुसार रंग, रूप, आकार, आदि में समानता के आधार पर व्यक्ति अनेक तत्त्वों के आधार पर एक समूह बना लेता है और इससे व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि का विकास होता है।

(iii) समीपता का नियम (Law of Proximity)–इसे निकटता का नियम *(Law of Nearness)* भी कहते हैं। विभिन्न तत्त्वों में जितनी अधिक निकटता होगी, वे उतनी ही सरलता से समग्र आकृति बना लेते हैं। तत्त्वों के मध्य निकटता जितनी कम होगी, उनको एक समूह में या समग्र रूप में दृष्टिपात करना उतना ही कठिन होगा।

(iv) समाप्ति का नियम (Law of Closure)–इस नियम के अनुसार एक आकृति या समस्या के संवृत्त *(Closed)* अंश एक इकाई के रूप में दिखाई देते हैं और इनको एक इकाई के रूप में समझना सरल होता है।

(v) निरन्तरता का नियम (Law of Continuity)–किसी आकृति या परिस्थिति के किसी एक अंश में निरन्तर परिवर्तन होता है तो उस परिवर्तन की ओर व्यक्ति का ध्यान जल्दी चला जाता है और उसके प्रति सुगमता के साथ अन्तर्दृष्टि विकसित हो जाती है।

Scanned with OKEN Scanner

उपरोक्त तथ्यों तथा प्रयोगों के आधार पर गेस्टाल्ट अधिगम की आगे विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं–

अन्तर्दृष्टि या सूझबूझ या गेस्टाल्ट द्वारा सीखने के मूल तत्त्व (Essentials of Learning by Insight or Gestalt Method)—कोहलर ने सूझ-बूझ के इस सिद्धान्त में निम्नलिखित आवश्यक तत्त्वों की चर्चा की है–

1. सम्पूर्ण इकाई का बोध (Comprehension as a Whole)—इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सीखने के लिए स्थिति को सम्पूर्ण इकाई के रूप में समझना आवश्यक होता है।

2. स्पष्ट लक्ष्य (Clear Goal)—इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने का लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए और यह स्पष्ट प्रारम्भ से ही हो।

3. सामान्यीकरण की शक्ति (Power of Generalization)—सीखने वाले व्यक्ति में सामान्यीकरण की शक्ति का होना अति आवश्यक होता है।

4. समाधान का अचानक सूझना (Sudden Solution)—अन्तर्दृष्टि के अन्तर्गत 'अचानक' कार्य होता है। अतः समस्या का समाधान भी अचानक ही सूझता है। इस विधि के दौरान लम्बे समय तक चिन्तन की आवश्यकता नहीं रहती है।

5. वस्तुओं का नया रूप (New Form of Objects)—अन्तर्दृष्टि के परिणामस्वरूप समस्या या स्थिति से जुड़ी वस्तुएँ नये रूप में दिखाई देने लगती हैं।

6. स्थानान्तरण (Transfer)—अन्तर्दृष्टि के माध्यम से सीखने पर ज्ञान का स्थानान्तरण भी संभव है। एक स्थिति में सीखी हुई बात को दूसरी स्थिति में प्रयोग किया जा सकता है।

7. व्यवहार में परिवर्तन (Change in behaviour)—अन्तः दृष्टि द्वारा सीखी हुई बात से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन अवश्य होता है।

इसके अतिरिक्त **यर्क्स (Yerks)** ने अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने की प्रक्रिया का विश्लेषण कर इसमें **निम्नलिखित तत्त्व** पाए हैं–

(i) समस्यात्मक परिस्थिति का अन्वेषण करना।
(ii) बिना झिझक तथा बिना विश्राम किए हुए, एकाग्रचित होकर समस्या पर ध्यान देना।
(iii) उपयुक्त प्रतिक्रिया करने का प्रयास करना।
(iv) एक प्रतिक्रिया अनुपयुक्त सिद्ध होने पर दूसरी प्रतिक्रिया करना।
(v) लक्ष्य की ओर निरन्तर ध्यान देना तथा उचित प्रतिक्रिया की प्रेरणा प्राप्त करना।
(vi) आकस्मिक रूप से सही प्रतिक्रिया को व्यक्त करना।
(vii) समस्या अथवा परिस्थिति के आवश्यक पक्षों पर ध्यान देने तथा अनावश्यक पक्षों को छोड़ देने की योग्यता आना।

इन सभी तत्त्वों की उपस्थिति में अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम संभव हो सकता है।

अन्तर्दृष्टि निर्माण के नियम (Laws of Insight Formation)–

1. क्षमता (Capacity)—अन्तर्दृष्टि शारीरिक क्षमता पर भी निर्भर करती है। ये क्षमताएँ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती हैं। व्यक्ति के विकास के साथ-साथ उसकी क्षमताएँ भी विकसित होती रहती हैं। अतः वह जितना अधिक विकसित होगा, उसकी अन्तर्दृष्टि की क्षमता भी उतनी ही विकसित होगी।

2. पूर्व-अनुभव (Previous Experiences)—सम्बन्धित पूर्व-अनुभव भी अन्तर्दृष्टि को प्रभावित करते हैं। इन पूर्व-अनुभवों पर अन्तर्दृष्टि निर्भर करती है। अतः अन्तर्दृष्टि से पहले कुछ पूर्व-अनुभव, परिपक्वता, प्रयासों और भूलों का होना अति आवश्यक होता है।

3. प्रयोगात्मक प्रबन्ध (Experimental Arrangement)—अन्तर्दृष्टि का विकास प्रयोगात्मक प्रबन्ध से भी जुड़ा हुआ है।

Scanned with OKEN Scanner

4. भटकन और खोज (Fumbling and Search)—कई बार भटकन और खोज के प्रयासों के परिणामस्वरूप अन्तर्दृष्टि का जन्म होता है।

5. तत्पर आवृत्ति (Readily Repetition)—अन्तर्दृष्टि के माध्यम से जो भी समस्या का समाधान ढूँढ़ा जाता है वह कभी भूलता नहीं। उसे बार-बार दोहराया जा सकता है।

6. नई स्थिति में उपयोग (Useful In New Situation)—कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अन्तर्दृष्टि द्वारा अर्जित अधिगम का किसी और नई स्थिति में भी प्रयोग किया जा सकता है।

7. सम्पूर्ण अनुभव (Whole Experience)—ऐसा देखा गया है कि सूझ-बूझ द्वारा अर्जित अनुभव स्वयं में पूर्ण होता है। उसमें अधूरापन नहीं रहता। यह सम्पूर्ण अपने अंशों के बराबर नहीं हो सकता।

अन्तर्दृष्टि के सिद्धान्त की सीमाएँ या दोष (Limitations of Insight Theory)—

(1) बच्चे और पशु इस सिद्धान्त की सहायता से नहीं सीख सकते। वे केवल प्रयास और भूल विधि द्वारा ही सीख सकते हैं।

(2) इस विधि में प्रयास और भूल का भी प्रयोग होता है। लेकिन कठिन समस्याओं में सफलता प्राप्त करने से पहले कई प्रयास करने पड़ते हैं और उनमें कई त्रुटियाँ भी रह जाती हैं। कई बार प्रौढ़ व्यक्ति भी एक ही बार में समस्या को हल नहीं कर पाते।

(3) प्रत्येक विषय केवल अन्तर्दृष्टि से नहीं सीखा जा सकता है। सीखने में प्रयास का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(4) बालकों का अधिगम अनुभव पर बहुत अधिक सीमा तक निर्भर करता है।

(5) मंदबुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए उपयोगी नहीं है। यह बुद्धिमान व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी है।

(6) इस सिद्धान्त में अभ्यास *(Practice)* के महत्त्व को गौण कर दिया गया है, जो उचित नहीं है। मनुष्य तथा पशु के कुछ शिक्षण ऐसे भी हैं जहाँ अभ्यास की बड़ी जरूरत पड़ती है। टाइप करना सीखना, साइकिल चलाना सीखना, भूल-भूलैया समस्या को हल करना सीखना आदि इसके उदाहरण हैं। ऐसे शिक्षणों की व्याख्या इस सिद्धान्त के आधार पर करना संभव नहीं है।

निष्कर्ष (Conclusion)—इस प्रकार हमने देखा है कि विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त सामने रखे हैं। सब अपने सिद्धान्त को ही सही बताते हैं और अन्य सिद्धान्तों की आलोचना करते हैं। किन्तु सत्य तो यह है कि सभी सिद्धान्त अपने में अपूर्ण हैं। वे सीखने की प्रक्रिया के केवल एक ही पक्ष की व्याख्या करते हैं। किन्तु वे सब मिलकर सीखने की प्रक्रिया पर समुचित प्रकाश डालते हैं। इस प्रकार वे एक-दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं और इसलिए सबको मान्यता प्रदान करना आवश्यक है। नित्यप्रति के जीवन में जब जैसी समस्या आ जाए उसी के अनुसार हमें सीखने की विधि का चयन करके उसको हल कर डालना चाहिए।

◆◆◆

2. अन्तर्दृष्टि, सूझ-बूझ या गेस्टाल्ट सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता का वर्णन कीजिये।

अथवा

अधिगम या सीखने के अन्तर्दृष्टि या गेस्टाल्ट सिद्धान्त की शिक्षा के क्षेत्र में क्या उपयोगिता या महत्त्व है? विवेचना कीजिये।

अथवा

अधिगम या सीखने से सम्बन्धित अन्तर्दृष्टि या गेस्टाल्ट सिद्धान्त शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है? उल्लेख कीजिये।

उत्तर—सीखने के अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता या महत्त्व निम्नलिखित प्रकार से है—

Scanned with OKEN Scanner

(i) अन्तर्दृष्टि का विकास (Development of Insight)—इस सिद्धान्त की सहायता से व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि का विकास करना संभव होता है। इस सिद्धान्त की सहायता से विज्ञान, रेखा गणित एवं बीज गणित की समस्याओं को हल करने में सहायता मिलती है। साहित्य के क्षेत्रों में इस सिद्धान्त का कोई अधिक उपयोग नहीं। इस सिद्धान्त द्वारा अधिगम में कम समय लगता है। यह विधि प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी है। इसमे अध्यापकों को भी कम परिश्रम करना पड़ता है। इस सिद्धान्त की सहायता से अर्जित अधिगम को हम अन्य परिस्थितियों में भी प्रयुक्त कर सकते हैं तथा ऐसा ज्ञान स्थाई प्रकृति का होता है।

(ii) एकीकृत पाठ्यक्रम (Integrated Curriculum)—इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम एकीकृत होना चाहिए। पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों तथा भागों में आपसी तालमेल होना चाहिए।

(iii) कल्पना, तर्क एवं चिन्तन के विकास में सहायक (Helpful in Developing the Power of Imagination, Reasoning and Thinking)—अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त व्यक्ति में कल्पनाशक्ति, तर्कशक्ति एवं चिन्तनशक्ति के विकास और उसे बेहतर बनाने में सहायक सिद्ध होता है। यह सिद्धान्त रचनात्मक और सृजनात्मक क्रियाओं में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(iv) एकल क्रिया पर निष्कर्ष नहीं (No Conclusion on the Basis of Single Act)—कक्षा में अध्यापक को विद्यार्थियों की एक ही क्रिया या व्यवहार से किसी प्रकार का कोई निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए। क्योंकि यह सिद्धान्त बच्चे को समग्र रूप या पूर्ण रूप से देखने पर बल देता है, न कि उसके आंशिक व्यवहार पर।

(v) सीखने में गतिशीलता (Dynamism in Learning)—अन्तर्दृष्टि या सूझ के द्वारा अधिगमकर्ता की तत्परता तथा प्राप्त शिक्षण के प्रभाववश सीखने की क्रिया में निरन्तर विकास होता चलता है। ज्ञानात्मक तथा संवेगात्मक तत्परता ही सीखने में गतिशीलता का आधार बनती है। गतिशीलता का उद्देश्य छात्रों के विकास में सहायता देना होता है। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह विद्यार्थियों में सीखने की क्रिया को अनवरत रूप देने की भावना जागृत करे। इसके लिए समस्या को इस भांति सरल रूप में प्रस्तुत करना चाहिए कि बालक में सीखने की अपेक्षित तत्परता आ जाय तथा वह समस्या को समझ भी सके।

(vi) सूझ द्वारा सीखने हेतु सफलता के लिए अध्यापक की सहायता (Teacher's Help for Success)—सूझ द्वारा सीखने की प्रक्रिया में भी अध्यापक का सहयोग तथा मार्गदर्शन महत्त्वपूर्ण होता है। समस्या के सम्भव हलों के विषय में सोचने की प्रेरणा देना तथा उनकी परीक्षा करके सही हल अथवा प्रतिक्रिया चुनने का संकेत देना शिक्षक का उत्तरदायित्व है। समाधान खोजने की प्रक्रिया के बीच बालकों को उचित प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा समस्या में उनकी रुचि बनाए रखना चाहिए।

सूझ द्वारा सीखने के लिए समस्या को इस भांति प्रस्तुत करना चाहिए कि बालक में कौतूहल का भाव जागृत हो जाए तथा उसकी संतुष्टि के लिए वह समस्या पर ध्यान केन्द्रित कर सके। जिज्ञासा सूझ का मूल तत्त्व है जिसके समाप्त हो जाने पर विद्यार्थी समस्या का हल नहीं खोज सकता। अस्तु अध्यापक का कर्तव्य है कि वह सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थी की जिज्ञासा एवं रुचि जागृत करे।

(vii) विषयों और अनुभवों से सम्बद्ध (Related to Topics to the Experience)—कक्षा में पढ़ाये गए प्रकरणों को बच्चों के अनुभवों से सम्बद्ध किया जा सकता है तथा लक्ष्य की ओर बढ़ा जा सकता है।

(viii) पूर्ण अंशों का योग नहीं (Whole is Not a Sum of the Parts)—इस सिद्धान्त का विश्वास है कि सम्पूर्ण विभिन्न अंशों के योग के बराबर नहीं होता। अतः कक्षा में पाठ को शुद्ध करते समय चीज़ों को कक्षा में सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(ix) पूर्व-अनुभवों पर आश्रित (Depend Upon Past Experiences)—अन्तर्दृष्टि पूर्व-अनुभवों और योग्यता पर निर्भर करती है। अध्यापक बच्चों की अन्तर्दृष्टि का उत्तम उपयोग उचित पाठ योजना, महत्त्वपूर्ण अनुभव प्रदान करने तथा सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान *(Theory and Practice)* में एकीकरण करके कर सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

(x) अभिप्रेरणा (Motivation)—कक्षा में विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्दृष्टि का विकास करने के लिए अध्यापक बच्चों को अभिप्रेरित कर सकता है।

(xi) कठिन विषयों के लिए उपयोगी (Useful in Difficult Subjects)—इस सिद्धान्त की अधिकतम उपयोगिता कठिन विषयों में दिखाई देती है—जैसे गणित, विज्ञान इत्यादि।

(xii) आकांक्षा स्तर (Aspiration Level)—अध्यापक नये ज्ञान को प्रदान करते समय देख ले कि विद्यार्थियों का मानसिक तथा शारीरिक स्तर इस योग्य है भी कि वे नया ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं। यदि उनकी आकांक्षा का स्तर सामान्य है तो वे सामान्य ज्ञान को ही भली-भाँति ग्रहण कर सकते हैं।

(xiii) पूर्ण समस्या (Whole Problem)—अध्यापक को चाहिए वह विद्यार्थियों को समस्या का पूरा ज्ञान कराए। यदि समस्या के प्रति ज्ञान अपूर्ण है तो अन्तर्दृष्टि उत्पन्न नहीं होगी। किसी भी समस्या में उस समय तक सूझ उत्पन्न नहीं होती जब तक उसका ज्ञान पूर्ण रूप से न हो जाए। अतः यह आवश्यक है कि सार्थक पाठ पढ़ाये जाएं।

(xiv) वातावरण (Environment)—अध्यापक को चाहिए कि वह बालक के सामने इस प्रकार का वातावरण प्रस्तुत करे कि बच्चे स्वयं अधिगम के लिए प्रेरित हों। अधिगम की क्रिया का विकास स्वयं होना चाहिए।

(xv) बालक सम्पूर्ण रूप में (Child as a Whole)—बालक के व्यवहार के सभी पक्षों को देखकर उसका अध्ययन किया जाना चाहिए। एक कार्य के आधार पर बालक के व्यवहार के बारे में कोई परिणाम नहीं निकालना चाहिए। अतः बालक का सम्पूर्ण रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए।

(xvi) लक्ष्यों का निर्धारण (Determination of Goals)—अध्यापक को चाहिए कि वह अपने शिक्षण-अधिगम लक्ष्यों को अवश्य निर्धारित कर ले। क्योंकि निर्धारित लक्ष्यों के कारण छात्र में सीखने के लिए तनाव पैदा होगा जिससे वे सीखने के लिए अभिप्रेरित होंगे। अभिप्रेरणा के अन्तर्गत अधिगम प्रभावशाली होगा।

(xvii) बुद्धि का उपयोग (Use of Intelligence)—इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बुद्धि के उपयोग पर बल दिया जाता है। यांत्रिक रूप से किए गए प्रयासों पर कोई अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता, बल्कि बुद्धि के उपयोग को भी महत्त्व दिया जाता है। अतः पाठ्यक्रम ऐसा निर्धारित होना चाहिए कि बुद्धि के विकास एवं उपयोग की नींव पड़े।

(xviii) वैज्ञानिक खोजों के लिए लाभकारी (Useful for Scientific Inventions)—वैज्ञानिक खोजों के लिए भी अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त ही सहायता करता है। इसके अभाव में खोज कार्य नहीं हो सकते।

(xix) अधिगम स्थानान्तरण पर बल (Emphasis on Transfer of Learning)—गेस्टाल्ट का यह सिद्धान्त अधिगम के स्थानान्तरण पर भी बल देता है। इस विधि द्वारा सीखने की प्रक्रिया में अधिगम का स्थानान्तरण होना चाहिए।

उपरोक्त शैक्षिक उपयोगिताओं के अतिरिक्त अन्तर्दृष्टि या सूझ सिद्धान्त का शिक्षा के क्षेत्र में **निम्नलिखित प्रयोग या उपयोगिता है**—

(i) अध्यापक छात्र में सीखने की अन्तर्दृष्टि को पैदा करे तभी वह नया ज्ञान सीखेगा।

(ii) अध्यापक को छात्रों के सम्मुख पूर्ण समस्या रखनी चाहिए ताकि उनमें सूझ उत्पन्न हो सके।

(iii) शिक्षक को पढ़ाई हुई विषय-वस्तु का सामान्यीकरण *(Generalization of Content)* करना चाहिए ताकि छात्रों की इससे सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का अपने-आप समाधान हो जाए। सामान्यीकरण सूझ सिद्धान्त का मूल तत्त्व है।

(iv) अध्यापक के पूर्व-अनुभव पर बल देना चाहिए ताकि इससे अन्तर्दृष्टि के विकास में मदद मिले। शिक्षक को नवीन ज्ञान देते समय इसका सम्बन्ध पूर्व-ज्ञान से अवश्य करना चाहिए।

(v) शिक्षक नवीन ज्ञान देते समय यह भी देख ले कि छात्र इस ज्ञान को ग्रहण करने योग्य हैं। यदि उनकी आकांक्षा का स्तर ऊंचा नहीं है तो उच्च स्तरीय ज्ञान ग्रहण नहीं कर सकते।

(vi) अध्यापक को छात्रों के सामने सीखने के लक्ष्य रखने चाहिए ताकि वे उनके अनुसार ध्यान लगाएं एवं परिश्रम करें।

(vii) शिक्षक को छात्रों के ज्ञानार्जन के लिए खोज की प्रवृत्ति जागृत करनी चाहिए ताकि बुद्धि का विकास हो सके।

Scanned with OKEN Scanner

(viii) शिक्षक छात्रों के सामने ऐसा वातावरण तैयार करे जिससे कि वे स्वयं सीखने के लिए प्रेरित हों।

अतः सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि मानव जीवन में सूझ द्वारा सीखने का बड़ा महत्त्व है। इस सिद्धान्त या विधि का अनुसरण हम नित्य करते हैं। बालकों के सामने गणित, ज्यामिति आदि की समस्याएँ रख दी जाती हैं और थोड़ी देर समझने के बाद वे सूझ द्वारा उनका हल निकाल लेते हैं। अभी तक जितने भी आविष्कार या खोजें हुई हैं सब में अन्तर्दृष्टि प्रधान रही है। हम नित्य नई-नई परिस्थितियों में पड़ते हैं—घर में, खेल के मैदान में, दफ्तर में, कक्षा में, किन्तु हमारी सूझ ही हमारी सहायता करती है। वास्तव में सभी उच्च श्रेणी के सीखने के कार्य अन्तर्दृष्टि या सूझ द्वारा होते हैं।

अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने या सूझ सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of Gestalt Theory)—अन्तर्दृष्टि के सिद्धान्त द्वारा प्रत्येक प्रकार का अधिगम सम्भव नहीं है। बालक का पढ़ना, लिखना, बोलना अकस्मात् अथवा यकायक नहीं होता। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के द्वारा सीखने की एक बड़ी चिन्तन प्रक्रिया है। अतः इसके द्वारा सीखना छोटे बालकों तथा पशुओं द्वारा संभव नहीं होता। प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध होता है कि सूझ में प्रयत्न तथा भूल अवश्य होती है। इसके अतिरिक्त पशु-क्षेत्र में अन्तर्दृष्टि के तथ्य को स्वीकार करने तथा सम्बन्धित स्पष्टीकरण देने में गेस्टाल्टवादियों के प्रयोग अत्यन्त सराहनीय हैं। मानव-क्षेत्र में तो अधिकतर कार्य अन्तर्दृष्टि के आधार पर किए जाते हैं। जटिल परिस्थितियों के समाधान का सम्पूर्ण रूप में प्रत्यक्षीकरण जब मनुष्य को होता है तो उसे अन्तर्दृष्टि का ही परिचायक मानते हैं। इस प्रकार सीखने की क्रिया में वह अपनी बुद्धि, पूर्व-ज्ञान, रुचि, मनोवृत्ति आदि मानसिक-प्रवृत्तियों का उपयोग करता है। विज्ञान, कला, इंजीनियरिंग आदि ऐसे विषय हैं जिनको अभ्यास के द्वारा नहीं सीखा जा सकता, बल्कि इनको सीखने के लिए सूझ की अति आवश्यकता है। इस प्रकार सीखने के क्षेत्र में इस सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कोहलर के सिद्धान्त का खण्डन भी हुआ है। रिगंटन आदि मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि उन्हें बन्दर के बच्चों पर प्रयोग करने पर अन्तर्दृष्टि का कोई भी परिचय नहीं मिला। उन्होंने दूसरी बात यह भी कही है कि अचानक समस्या का समाधान संयोग की बात है, अन्तर्दृष्टि या सूझ की बात नहीं है। इस प्रकार अन्तर्दृष्टि या सूझ सिद्धान्त को पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं है। अतः कोहलर द्वारा किए गए प्रयोगों को सरल बताया गया है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त बिल्कुल नवीन तथा अपरिचित विज्ञान की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता, क्योंकि यह सिद्धान्त दर्शन तथा मनोविज्ञान का मिश्रित रूप है।

◆◆◆

3. प्रयास एवं भूल सिद्धान्त तथा अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ सिद्धान्त में कौन-कौन से मुख्य अन्तर पाये जाते हैं? स्पष्ट कीजिये।

अथवा

सीखने के प्रयास एवं त्रुटि सिद्धान्त तथा अन्तर्दृष्टि या गेस्टाल्ट सिद्धान्त में पाये जाने वाले मुख्य अन्तरों का वर्णन कीजिये तथा बताइये कि छात्रों हेतु कौन-सी विधि अधिक उपयुक्त है?

अथवा

संक्षिप्त टिप्पणी अथवा नोट लिखें–प्रयास एवं भूल तथा अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ सिद्धान्त में अन्तर।

अथवा

प्रयास एवं भूल सिद्धान्त तथा अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त में अन्तर स्पष्ट करते हुये बताएँ कि विद्यार्थियों हेतु इन दोनों विधियों में से कौन-सी विधि अधिक श्रेष्ठ है?

उत्तर– प्रयास एवं भूल के सिद्धान्त तथा अन्तर्दृष्टि के सिद्धान्त में अन्तर (Difference between Trial & Error Theory and Insight Theory)—

सूझ या अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त अधिक श्रेष्ठ है (Insight Theory is Better)–अध्ययन तथा दैनिक कार्यों में विद्यार्थियों को प्रयत्न और भूल की विधि की अपेक्षा सूझ विधि से अधिक स्थायी लाभ होगा और

Scanned with OKEN Scanner

समय भी बचेगा। मान लीजिये कि किसी व्यक्ति को एक कमरे में फर्नीचर सजाना है। एक सामान्य बुद्धि या अल्पबुद्धि व्यक्ति मेज को अलग-अलग स्थान पर रखकर प्रयत्न और भूल की विधि से उसका स्थान निश्चित करेगा। एक बुद्धिमान व्यक्ति कमरे में किसी ऐसे स्थान पर खड़ा होकर जहाँ से पूरा कमरा दिखाई पड़ता हो, कमरे में मेज-कुर्सी आदि की सम्भावनाओं की कल्पना करके पूरे कमरे की तस्वीर दिमाग में फैलाकर प्रत्येक चीज की जगह पहले निश्चित कर लेगा और फिर उन्हें यथास्थान रख देगा। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रयत्न और भूल की विधि बुद्धिमानों के काम की नहीं है। बहुत-सी नवीन परिस्थितियों में उसके बिना काम नहीं चल सकता। बुद्धिमान व्यक्ति को अवसर के अनुसार दोनों विधियों का उपयोग करना चाहिये।

क्रम संख्या	प्रयास एवं भूल का सिद्धान्त	अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त
1.	इस सिद्धान्त का प्रतिपादन थॉर्नडाइक ने 1898 में किया जो एक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक था।	इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1917 में जर्मन मनोवैज्ञानिक कोहलर ने किया।
2.	इसमें अधिगम धीमा होता है।	अधिगम अचानक होता है।
3.	अधिगम अभ्यास पर आधारित है।	अधिगम सूझ बूझ व समझने पर आधारित है।
4.	उच्च बौद्धिक योग्यताओं की कोई भूमिका नहीं होती।	इसमें उच्च बौद्धिक योग्यताओं की भूमिका होती है, जैसे तर्क-शक्ति, समझने की योग्यता, समस्या-समाधान की योग्यता आदि।
5.	यह सभी के लिए उपयोगी है।	यह उच्च श्रेणी के मनुष्य ही सीख सकते हैं।
6.	इसमें शरीर के सभी अंगों का नियोजन आवश्यक होता है।	इसमें समस्या के सभी तत्त्वों का प्रत्यक्षीकरण करना आवश्यक होता है।
7.	इसमें शारीरिक कुशलता एवं यांत्रिक कुशलता पर अधिक बल दिया गया है।	इसमें बौद्धिक क्रियाओं तथा मस्तिष्क का सीखने में उपयोग करने पर अधिक बल दिया जाता है।
8.	इस सिद्धान्त में मानव चेतन स्तर पर लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है।	इस सिद्धान्त में अचेतन मन अधिक क्रियाशील होता है।
9.	इसमें प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए नये सिरे से प्रयास करने पड़ते हैं।	इस सिद्धान्त द्वारा अर्जित ज्ञान का स्थानान्तरण संभव है तथा नवीन समस्याएँ सुलझाने में सफलता प्राप्त होती है।
10.	इसमें अर्जित सफलता परिश्रम तथा लगन पर आधारित होती है।	इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सफलता व्यक्तिगत की सूझ पर आधारित होती है।
11.	इसमें अधिगम का स्थानान्तरण नहीं होता।	प्रशिक्षण में अधिगम का स्थानान्तरण संभव है।
12.	यह संवेदना और गत्यात्मक समन्वय पर आधारित है।	यह प्रत्यक्षीकरण पर आधारित है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

टॉलमैन का चिह्न अधिगम सिद्धान्त
(Tolman's Sign Learning Theory)

1. टॉलमैन के चिह्न अधिम सिद्धान्त के बारे में आप क्या जानते हैं? इस सिद्धान्त के शैक्षिक महत्व का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by Tolman's sign Learning Theory? Describe the educational implications of this theory.)

अथवा

टॉलमैन के अधिगम से सम्बन्धित व्यवहारवादी ज्ञानात्मक सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
(Describe the Tolman's Behaviourist Cognitive theory of learning.)

उत्तर–टॉलमैन (Tolman) का सिद्धान्त सीखने के ज्ञानात्मक सिद्धान्तों (Cognitive theories) में से अत्यन्त विकसित सिद्धान्त है।

उन्होंने 1932 ई. में अपनी पुस्तक 'परपसिव बिहेवियर इन इनिमल एण्ड मैन' 'Purposive Behaviour Animal and Man' में अपने सिद्धान्त की व्याख्या की है। वह उद्देश्यात्मक व्यवहारवाद में विश्वास रखते थे। उनकी नजर में सीखा हुआ व्यवहार सदैव किसी लक्ष्य की ओर निर्देशित तथा उन्मुख होता है। उनका यह दृढ़ मत था कि वस्तुनिष्ठ रूप से सिखा हुआ व्यवहार योग्य उद्देश्यों द्वारा ही व्यवहार नियमित होता है। इस कारण इनको प्रयोजनशील व्यवहारवादी कहा जाता है। यह सिद्धान्त अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे–उद्देश्यात्मक व्यवहार का सिद्धान्त 'Theory of Purposive Behaviour' चिह्न-स्वरूप सिद्धान्त 'Sign-Gestalt Theory' चिह्न-महत्त्व सिद्धान्त 'Expectancy Theory' ज्ञानात्मक-सिद्धान्त 'Cognitive Theory' इत्यादि।

'टॉलमैन' ने अपनी प्रणाली में सम्मिश्रण को स्वीकार किया है। उन्होंने अन्य सम्प्रदायों (Schools) से कई सिद्धान्त लिए हैं। जैसे–वाटसन का व्यवहारवाद (Watson's Behaviourism) मैकड्गल का 'हामिक' मनोविज्ञान (MC-Dougall's Hormic Psychology) वुड्वर्थ का गत्यात्मक मनोविज्ञान (Woodworth's dynamic psychology)।

टॉलमैन के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएं (Main Characteristics of Tolman's Theory of sign learning)–इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. विशुद्ध व्यवहारवाद (Genuine Behaviourism)–टॉलमैन की प्रणाली विशुद्ध व्यवहारवाद पर आधारित है। यह विधि के रूप में आत्मविश्लेषण (Introspection) का खण्डन करती है। चेतना, युक्तिमान विचार जैसी क्रियाओं की चर्चा करते हुए उनका अभिप्राय केवल इस बात से था कि निरीक्षित व्यवहार की व्याख्या की जाए।

2. आणविक व्यवहार (Molecular Behaviour)–टॉलमैन ने आणविक (Molecular) व्यवहार पर बल नहीं दिया, बल्कि सामूहिक व्यवहार पर बल दिया है। सामूहिक व्यवहार में निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

(I) लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में यह हमेशा वातावरण सम्बन्धी समर्थनों का प्रयोग करता है।
(II) यह लक्ष्य निर्देशित होता है। यह हमेशा किसी चीज को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता है।
(III) यह चुनाव करता है अर्थात् लम्बे और कठिन साधनों की अपेक्षा यह छोटे और आसान साधनों को चुनता है। इसे लघु प्रयत्न का सिद्धान्त (Principle of least effort) कहा जाता है।
(IV) यह शिक्षणीय (Docile) है अर्थात् सामूहिक व्यवहार में शिक्षणीयता होती है। शिक्षणीयता उद्देश्य का ही चिह्न है।

Scanned with OKEN Scanner

टॉलमैन के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य
(Main Objective of Tolman's Theory)

टॉलमैन विश्वास रखता है कि लक्ष्य हो जाने वाले मार्ग को ही सीखा जाता है, अनुक्रियाओं (Responses) को नहीं सीखा जाता। हम अर्थ सीखते हैं गतिया नहीं, हम उन चिह्नों की सहायता लेते हैं जो अर्थ सिखाते हैं। इन चिह्नों तथा लक्ष्यों के आपस के सम्बन्ध को सीखते हैं। दूसरे शब्दों में हम सीखते हैं कि कौन-सी चीज़ किस ओर जाती है। अतः सीखने में चिह्नों को पहचानना और लक्ष्य से सम्बन्धित उनके अर्थों को समझना शामिल है। घटनाओं और अनुक्रम चिह्न-व्यवहार के तत्व को स्पष्ट करता है अर्थात् विशिष्ट लक्ष्यों पर पहुँचने की ओर संकेत करता है। इस अनुक्रम का परिणाम है—साधन और साध्य के संबंध को सीखना।

टॉलमैन के प्रयोग (Tolman's Experiments)—आने सिद्धान्त को अच्छा प्रकार से स्पष्ट करने के लिए टॉलमैन के कुद प्रयोग इस प्रकार हैं—

1. स्थान-शिक्षण पर प्रयोग (Experiments on place learing)—स्थान शिक्षण पर प्रयोग इस बात को स्पष्ट करने के लिए किए गए की शिक्षार्थी आरम्भ से ही लक्ष्य की ओर निश्चित घटना-क्रम से नहीं चलता बल्कि उसमें परिवर्तन स्थितियों के अनुसार विभिन्न व्यवहार करने की योग्यता होती है—जैसे कि वह जानता है कि लक्ष्य कहा है। टॉलमैन और 'Ritchie' ने इस पर एक प्रयोग किया उन्होंने चूहों के दो वर्ग लिए। एक वर्ग को एक ऊँची भूल-भुलैया (Maze) में दौड़ने का इस प्रकार प्रशिक्षण दिया कि किसी भी ओर से प्रवेश होकर यदि हव बाईं ओर मुड़ेंगे तो उन्हें भोजन मिलेगा। इसे अनुक्रियात्मक शिक्षण (Response learning) कहते हैं। दूसरे वर्ग को एक विशिष्ट स्थान पर हुए भोजन को प्राप्त करना सिखाया गया। इसे स्थान-शिक्षण कहते हैं।

2. पुरस्कार प्रत्याशा पर प्रयोग (Experiments on Reward Expectancy)—पुरस्कार प्रत्याशा का सरल अर्थ यह है कि विद्यार्थी को पुरस्कार का पहले से ज्ञान होता है, परन्तु यदि पुरस्कार समाप्त कर दिए जाए या परिवर्तित कर दिए जाए तो व्यवहार में बाधा पड़ जाती है।

टॉलमैन और Tinklepaugh ने दो बर्तन लिए। उन्होंने बन्दर की उपस्थिति में एक बर्तन में केले डाल दिए। बन्दर ने केले वाले बर्तन को पहचानकर उसमें से केला निकाल लिया। फिर केले की जगह पर कुछ पत्ते रख दिए, जिन्हें बन्दर पसन्द नहीं करता। यह देखा गया कि बन्दर ने पत्ते को स्वीकार नहीं किया, बल्कि केले की तलाश करने लगा। इससे स्पष्ट होता है कि पशुओं को किसी विशिष्ट लक्ष्य या पुरस्कार की प्रत्याशा होती है।

3. अव्यक्त-शिक्षण पर प्रयोग (Experiments on latent learning)—यह छुपा हुआ शिक्षण होता है जो दिखाई तो नहीं देता, परन्तु अनेक स्थितियों में स्पष्ट किया जा सकता है। Tolman और Honzile ने चूहों पर अव्यक्त-शिक्षण सम्बन्धी प्रयोगों का अध्ययन किया। उनके एक विशिष्ट प्रयोग में चूहा एक भूल-भुलैया में कई दिनों तक भोजन के बिना भागता रहा। फिर पुरस्कार रख दिया गया और परिणाम को देखा गया। परिणाम से स्पष्ट हुआ कि भोजन-पुरस्कार के न होने पर भी गलतियों की संख्या कम हो रही थी। परन्तु नियमित रूप से भोजन-पुरस्कार रखने से गलतियां अति शीघ्र कम होने लगीं। चूहों के वर्ग के लिए 11वें प्रयास में भोजन-पुरस्कार रखा गया था। वैसे ही अच्छा काम किया जैसे दूसरे वर्ग के लिए नियमित रूप से भोजन-पुरस्कार की व्यवस्था थी। इसका मतलब है कि पहले 10 प्रयासों में भी पहले वर्ग के चूहों ने कुछ सीख लिया था।

यही अव्यक्त-शिक्षण प्रयोग कहलाता है।

टॉलमैन के सीखने के नियम
(Tolman's Laws of Learning)

सन् 1932 ई. में टॉलमैन ने निम्नलिखित नियमों का प्रतिपादन किया—

Scanned with OKEN Scanner

1. क्षमता का नियम (Capacity laws)—सीखना व्यक्ति की विभिन्न-क्षमताओं पर निर्भर करता है। क्षमता-नियमों में टॉलमैन ने छः उपनियम शामिल किए हैं—

(I) औपचारिक साधन-साध्य-क्षमताएं (Formal mean end-capacities)

(II) प्रभेदात्मक एवं प्रबन्धात्मक क्षमताएं (Discriminating and manipulating capacities)

(III) धारता क्षमता (Retentivity)

(IV) विकल्पनात्मक मार्गों के लिए आवश्यक साधन-साध्य क्षमताएं (Mean and capacities needed for alternative routes etc.)

(V) कविचारात्मक क्षमता (Ideational capacities)

(VI) निर्माण-क्षमता (Creativity)

उत्तेजना-सम्बन्धी नियम (Stimulus laws)—टॉलमैन ने पाँच उत्तेजना सम्बन्धी नियम बताए हैं—

(I) एक रूप होने की योग्यता (Fusibility)।

(II) गेस्टाल्ट के अन्य नियम (Other Gestalt like laws)।

(III) विकल्पों का स्थानीय एवं भौतिक प्रकृतियों में परस्पर सम्बन्ध (Interrelation among spatial, temporal and characters of the alternatives)।

(IV) अनिवार्य चिह्नों का इकट्ठा होना और साधन-साध्य के प्रति उनका सम्बन्ध (Togetherness of essential sign and their mean end relationship)।

(V) क्षेत्र के नए अवरोधों और विस्तारों के अनुसकूल सामग्री की चारित्रिक विशेषताएं।

3. प्रस्तुतिकरण विधि के नियम (Laws concerning manner of presentation)—इस विधि के भी इन्होंने पाँच नियम बताए हैं—

(I) आवृत्ति-नवीनता (Frequency, recency)।

(II) अनुप्रेरणा (Motivation)।

(III) प्रभाव नहीं बल्कि बल (Not effect but emphasis)।

(IV) विकल्पों के प्रस्तुतीकरण का क्रम और अनुक्रम (Temporal orders and sequences in the presentation of alternatives)।

(V) पहले से दिए गए विकल्पों और वास्तविक समाधान के प्रस्तुतीकरण में भौतिक सम्बन्ध (Temporal relations between the presentations of the already given alternative and the true solution)।

टॉलमैन प्रणाली का नवीन रूप (New Version of Tolman's System)—सन् 1949 ई. में टॉलमैन ने अपनी प्रणाली का नवीन रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने निम्नलिखित छः प्रकार के सीखने का उल्लेख किया।

(I) क्षेत्र-प्रत्याशाएं (Field Expectancies)—इससे तात्पर्य उन चिह्न स्वरूप प्रत्याशाओं से है जिनसे व्यक्ति छोटे रास्तों का प्रयोग करता है। टॉलमैन का विचार है कि 'कैथेक्स' और समतुल्य-विश्वासों की अपेक्षा क्षेत्र प्रत्याशाएं जल्दी भुला दी जाती हैं।

(II) गत्यात्मक-प्रतिमान (Motor Patterns)—इसका सम्बन्ध प्रस्तुत स्थिति में किसी प्रकार के गत्यात्मक-प्रतिमान की प्राप्ति के साथ है। टॉलमैन का विश्वास है कि इस प्रकार की प्राप्ति सरल-प्रतिबन्धता (Simple conditioning) पर आधारित है।

(III) कैथेक्स (Cathexes)—चालक (Drive) और लक्ष्य के बीच में विकसित होने वाले धात्मक या ऋणात्मक सम्बन्धों को कैथेक्स कहते हैं। यदि एक प्यासा बच्चा 'प्यास' रूप चालक और पानी के बीच में कोई सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो वह धनात्मक-कैथेक्स होगा। यदि एक जला हुआ बच्चा स्रोत से डरता है और उसमें दूर रहता है तो वह ऋणात्मक-कैथेक्स होगा।

(IV) समतुल्य विश्वास (Equivalent beliefs)—लक्ष्यों तथा उपलक्ष्यों में उपस्थिति सम्बन्धों के ज्ञान को समतुल्य-विश्वास कहते हैं। इससे व्यक्ति पहले उपलक्ष्य की ओर ऐसा व्यवहार करता है जैसे वह

Scanned with OKEN Scanner

वास्तविक लक्ष्य की ओर करेगा। अतः वह उन उपलक्ष्यों की ओर अग्रसर होगा जिनके प्रति उनमें धनात्मक समतुल्य विश्वास उत्पन्न हुआ होगा और उन उप-लक्ष्यों से दूर रहेगा जिनके प्रति उसमें ऋणात्मक समतुल्य विश्वास उत्पन्न हुआ होगा। टॉलमैन ने इस बात पर बल दिया है कि समतुल्य-विश्वास, सीखने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

(V) क्षेत्र-ज्ञान विधियां (Field-Cognitation modes)—क्षेत्र ज्ञान-विधियां सीखने में लगाई जाने वाली जटिल मानसिक विधियां हैं। ये आंशिक रूप से आन्तरिक योग्यताओं पर निर्भर करती हैं। ये प्रत्यक्षात्मक (Perceptual), स्मृत्यात्मक (Memorial) तथा निष्कर्षात्मक (Inferential) प्रक्रियाओं पर आधारित क्षेत्र प्रत्याशाएं प्राप्त करने की योग्यता का प्रतिनिधित्व करती हैं।

6. चालक-प्रभेदात्मकता (Motor discrimination)—चालक-प्रभेदात्मकता एक ऐसा शिक्षण है जिसमें प्राणी विभिन्न चालकों में भेद करना सीखता है। उदाहरण के लिए—भूल-भूलैया में पशु भूखा होने पर दाईं दिशा को जाएगा और प्यासा होने पर बाईं दिशा में जाएगा।

शैक्षिक महत्त्व (Educational Implications)—

(I) लक्ष्यों को परिभाषित करना (Defining the Goals)—अध्यापकों और माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए अनुकूल उचित लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करें।

(II) पुरस्कार और दण्ड का प्रयोग (Use of Reward and Punishment)—लक्ष्यों की स्थापना में पुरस्कार एवं दण्ड की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

(III) ठीक विधियों पर बल (Emphasis on Right Methods)—लक्ष्य की अपेक्षा रास्ता महत्त्वपूर्ण होता है। अतः ठीक विधियां अपनाई जानी चाहिए। सार्थक-शिक्षण को प्रोत्साहित करना चाहिए। अन्धगतियों को उत्साहित नहीं करना चाहिए। पूर्ण और उसके अंशों में स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

(IV) व्यक्तिगत-शिक्षा (Individual Education)—शिक्षा विद्यार्थियों की आयु, पूर्वानुभूति तथा क्षमताओं पर आधारित होनी चाहिए।

◆◆◆

3.4 निर्मितिवाद (Constructivism)

1. निर्मितिवाद से आप क्या समझते हैं? इसका सम्प्रत्यय स्पष्ट करते हुए नियोजन और विकास के लिए अधिगम अनुभवों का वर्णन करें।
(What do you mean by Constructivism? While explaining its concept, describe the planning and development of learning experiences.)

अथवा

निर्मितिवाद के सिद्धान्त का वर्णन करें।
(Describe the theory of Constructivism.)

उत्तर—मूल रूप से निर्मितिवाद अवलोकन (Observation) और वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित एक सिद्धान्त है, जिसमें यह पता लगाया जाता है कि व्यक्ति कैसे सीखते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अपनी समझ (Understanding) और विश्व सम्बन्धी ज्ञान का निर्माण वस्तुओं के अनुभवों और उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम से करते हैं। जब हम किसी नई चीज का सामना करते हैं तब हमें अपने पूर्व विचारों और अनुभवों के साथ इसका मेल (Reconcile) करना पड़ता है। चाहे हम नई सूचना को असम्बद्ध मानकर अस्वीकार कर दें या जिस पर हम विश्वास करते हों उसमें परिवर्तन कर दें। लेकिन स्थिति कोई भी

Scanned with OKEN Scanner

हो, हम अपने ज्ञान के स्वयं ही रचयिता होते हैं। इसे करने के लिए हमें प्रश्न पूछने चाहिएं, खोज करनी चाहिए तथा जो कुछ हम जानते हैं उसका मूल्यांकन करना चाहिए।

कक्षा की परिस्थिति में अधिगम का निर्मितिक दृष्टिकोण (Constructivist View Point) विभिन्न शिक्षण अभ्यासों की ओर संकेत करता है।

सामान्य दृष्टि से, इसका अभिप्राय है विद्यार्थियों को सक्रिय तकनीकों (प्रयोगों, वास्तविक संसार, समस्या समाधान आदि) के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करना ताकि अधिक ज्ञान का सृजन किया जा सके तथा फिर अपनी बातों में जो कुछ विद्यार्थी कर रहे हैं उसके करने में तथा उनकी बिम्बित कैसे परिवर्तित हो रही है, को प्रतिबिम्बित (Reflect) करना। अध्यापक यह सुनिश्चित करता है कि उसे विद्यार्थी में पूर्व उपस्थित (Pre-existing) सम्प्रत्ययों का बोध है।

अवधारणाएं (Assumptions)—इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगमकर्ता अपने ज्ञान का निर्माण अपने वातावरण के साथ अन्तर्क्रिया के आधार पर स्वयं करता है। निर्मितिवाद (Constructionism) की निम्नलिखित अवधारणाएँ हैं—

(i) ज्ञान निर्माण अधिगमकर्ता भौतिक रूप से करते हैं जो सक्रिया अधिगम (Active Learning) में संलिप्त होते हैं।

(ii) ज्ञान निर्माण अधिगमकर्ता संकेतात्मक रूप से करते हैं जो स्वयं क्रिया का प्रतिनधित्व करते हैं।

(iii) ज्ञान का निर्माण अधिगमकर्ता सामाजिक रूप से करते हैं जो अपना अर्थ दूसरों को सम्प्रेषित (Convey) करते हैं।

निर्मितिवाद के संदर्भ में 'अधिगम डिजाईन' (Learning Design) पर अधिक बल दिया गया है। पारम्परिक पाठ योजना में इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया जाता था कि अध्यापक क्या कुछ करेगा? लेकिन निर्मितिवाद के अन्तर्गत विद्यार्थियों के लिए अधिगम अनुभवों का डिजाईन तैयार करना हो तो अध्यापक इस बात पर बल देगा कि विद्यार्थी क्या करेंगे। अध्यापक के व्यवहारों को नियोजित करने की बजाए उन बातों को संगठित किया जाये जिसे अधिगमकर्ता ने सम्पन्न करना हो।

पिछले दशक में निर्मितिवाद अधिगम (Constructivist Learning) शिक्षण में प्रमुख उपागम बनकर उभरा है। निर्मितिवाद व्यवहारवाद पर आधारित शिक्षा से संज्ञानात्मक सिद्धान्त पर आधारित शिक्षा की ओर 'शिफ्ट' (Shift) का प्रतिनिधित्व करता है।

व्यवहारवादी (Behaviourist) बुद्धि, उद्देश्यों के विभिन्न पक्ष (Domains of Objectives), ज्ञान के स्तर (Levels of Knowledge) और पुनर्बलन (Reinforcement) पर केन्द्रित रहे हैं। लेकिन निर्मितिवादी का अवधारणा है कि अधिगमकर्ता वातावरण के साथ अपनी अन्तर्क्रिया के आधार पर अपने ज्ञान का निर्माण करता है।

अधिकांश पारम्परिक अध्यापक (Conventional Teacher) का नियोजन प्रतिमान (Planning Model) मौखिक व्याख्या (Verbal Explanations) पर आधारित होता है या किसी प्रक्रिया दृष्टि प्रदर्शन (Visual Demonstration of a Procedure or Skill) जिसका बाद में विद्यार्थी अभ्यास करता है। इस प्रकार एक अध्ययन 'A place called school' में गुडलेंड (Goodland 1984) ने पाया कि अधिकांश अध्यापक बच्चों से बातें करते रहते हैं। विद्यार्थियों ने यह रिपोर्ट किया कि उन्हें शारीरिक शिक्षा, ललित कला, औद्योगिक कला जैसे विषय अधिक पसंद हैं क्योंकि इनमें उन्हें कुछ करने को मिलता है। इनमें से सक्रिय प्रतिभागी (Active Participants) थे, न कि केवल निष्क्रय सूचना प्राप्तकर्ता। निर्मितिवाद (Constructivism) का यह मूल संदेश (Primary Message) है।

निर्मितिवादी अधिगम डिजाईन (Constructive Learning Design)—निर्मितिवादी अधिगम डिजाईन के निम्नलिखित 6 आवश्यक तत्त्व (Elements) होते हैं—

1. परिस्थिति (Situation)
2. ग्रुपिंगज (Groupings)
3. ब्रिज (Bridge)
4. प्रश्न (Questions)
5. प्रदर्शन (Exhibit)
6. प्रतिबिम्ब (Reflections)

Scanned with OKEN Scanner

छात्र अधिगम प्रक्रिया के संदर्भ में ये तत्त्व शिक्षण नियोजन (Teaching planning) और प्रतिबिम्ब के लिए डिजाईन किये गये हैं–

1. परिस्थिति (Situation)–अध्यापक विद्यार्थियों को समझाने के लिए परिस्थिति का विकास करते हैं। अध्यापक कौन-सी परिस्थिति की व्यवस्था कर रहा है। उस परिस्थिति को कोई नाम दिया जाये तथा समस्या-समाधान की, प्रश्नों के उत्तर देने की, निर्णय लेने की, निष्कर्ष निकालने या लक्ष्य निर्धारित करने की प्रक्रिया का वर्णन किया जाये। इस परिस्थिति में यह भी शामिल किया जाये कि अध्यापक विद्यार्थी से क्या कुछ करने की अपेक्षा रखता है तथा विद्यार्थी स्वयं उसका स्वयं क्या अर्थ लेते हैं।

2. ग्रुपिंग्ज़ (Groupings)–ग्रुप के दो वर्ग होते हैं–

(i) विद्यार्थियों का समूहीकरण कैसे किया जायेगा। यह सम्पूर्ण कक्षा के रूप में, वैयक्तिक रूप से, दो, तीन या चार या पाँच, छः या अधिक संयुक्त रूप से विचारकों की टीम हो सकती है। इनके समूह बनाने के लिए किस आधार का प्रयोग करेंगे, उन्हें गिनकर, कपड़ों के आधार पर? यह उस परिस्थिति पर निर्भर करता है जिसे डिजाईन किया गया है और जो सामग्री तुम्हारे पास है।

(ii) विद्यार्थियों के पास समझाने के लिए प्रयोग की जाने वाली सामग्री है उसकी व्यवस्था करना जैसे भौतिक मॉडलिंग द्वारा, ग्राफिक्स के द्वारा प्रस्तुतीकरण, संख्यात्मक वर्णन (Numerically Describing) या वैयक्तिक रूप से उनके संयुक्त अनुभवों को लिखना।

3. सेतु या ब्रिज (Bridge)–यह विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान को जानने की और वे जो कुछ पहले से जानते हैं और परिस्थिति की व्याख्या से जो कुछ वो सीख पाएंगे उसमें एक सेतु या ब्रिज (Bridge) बनाने की प्रारम्भिक क्रिया है। इसमें ये क्रियाएँ शामिल होती हैं। जैसे–छात्रों को समाधान के लिए साधारण समस्या दी जाये, पूरी कक्षा में बहस कर अन्य कोई खेल खेलना या सूचियाँ तैयार करना। कई बार यह छात्रों के समूहीकरण से पहले ही उत्तम ढंग से कर लिया जाता है और कई बार समूहीकरण के बाद। यह आपने सोचना है कि क्या उचित होगा।

4. प्रश्न (Questions)–अधिगम डिजाईन के हर तत्त्व में प्रश्न हो सकते हैं। कौन से मार्ग-दर्शक प्रश्नों का अन्य प्रयोग करेंगे जो परिस्थिति से परिचित कराएँ, समूहों की व्यवस्था करें, सेतु या ब्रिज निर्धारित (Set) करे, सक्रिय अधिगम को जारी रखना, प्रदर्शन के संकेत देने और प्रतिबिम्बों (Reflections) को प्रोत्साहित करना आदि इस तत्त्व में शामिल हैं। इसी तत्त्व के अन्तर्गत विद्यार्थियों की ओर से पूछे जाने वाले प्रश्नों का अनुमान लगाने की भी तुम्हें आवश्यकता है तथा उन्हें अनेक चिन्तन की व्याख्या करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए भी प्रश्न तय करने पड़ेंगे।

5. प्रदर्शन (Exhibit)–इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को उनके चिन्तन का रिकार्ड प्रदर्शित किया जाता है। इसमें कार्डों पर वर्णन लिखना और शाब्दिक प्रस्तुतीकरण (Verbal Representation), ग्राफ बनाना, चार्ट या अन्य विजुअल प्रस्तुतीकरण (Visual Representation), अभिनय करना या भूमिकर निभाना, मॉडल आदि बनाकर भौतिक प्रस्तुतीकरण, विडियो टेप बनाकर, प्रस्तुतीकरण के लिए फोटोग्राफ, आडियो टेप बनाना आदि शामिल किया जाता है।

6. परावर्तन या प्रतिबिम्ब (Reflection)–ये विद्यार्थियों के परावर्तन या प्रतिबिम्बन (Reflections) होते हैं। विद्यार्थी क्या सोचते हैं जब उन्हें परिस्थिति समझाई जाती है और जब उन्हें दूसरों द्वारा कुछ प्रदर्शित किया जाता है। इसमें विद्यार्थी अपनी चिन्तन प्रक्रिया से क्या कुछ स्मरण कर पाते हैं, उनकी कल्पना में विद्यमान छवियाँ (Images) और उनके आन्तरिक वार्तालाप में प्रयुक्त भाषा आदि शामिल होता है। विद्यार्थी कक्षा से बाहर कैसा दृष्टिकोण, कौशल और धारणाएं (Concepts) लेकर जायेंगे? विद्यार्थियों ने आज क्या सीखा कि वे उसे कल भूलें नहीं? वे पहले क्या जानते थे, वे क्या जानना चाहते हैं और उन्होंने क्या सीखा? यह सब कुछ इस तत्त्व का हिस्सा है। यह सभी छः तथा यह संकेत देते हैं कि ये तत्त्व आपस में कितने एकीकृत हैं और समग्र रूप से (As a Whole) कार्य करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

उपरोक्त छः तत्त्वों को नियंत्रित करने हेतु निम्न चरणों का उपयोग किया जाता है–

1. मूल्यांकन (Assessment)–मूल्यांकन इस अधिगम डिजाईन के प्रत्येक पद या चरण का अभिन्न अंग होता है। अध्यापक प्रत्येक परिस्थिति (Situation) के डिजाईन विद्यार्थियों के अधिगम उपागमों के मूल्यांकन, आवश्यकताओं या रुचियों के आधार पर तैयार किया जाता है। इसी प्रकार अध्यापक ग्रुपिंग या समूहीकरण के लिए एक प्रक्रिया का डिजाईन तैयार करता है जो कि उपलब्ध सामग्री और वांछित विद्यार्थियों के मिश्रण के मूल्यांकन के आधार पर किया जाता है। अध्यापक विद्यार्थी जो कुछ पहले से जानते हैं तथा जो कुछ वे जानना चाहते हैं, उसका साधारण मूल्यांकन का डिजाईन तैयार करते हैं। अध्यापक उन प्रश्नों का डिजाईन तैयार करते हैं जो विद्यार्थियों के सम्प्रत्ययों, कौशलों या अभिवृत्तियों (Attitudes) के बोध या समझ का मूल्यांकन करते हैं, जिन्हें वे सीखने का प्रयास करते हैं। विद्यार्थी जो कुछ सोचते हैं उसके बारे में एक प्रदर्शनी (Exhibit) की व्यवस्था अपने विद्यार्थियों के लिए करते हैं ताकि वह रिकार्ड किया जा सके कि विद्यार्थी क्या चिंतन करते हैं तथा इसे दूसरों द्वारा मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत किया जाता है। अन्त में अध्यापक विद्यार्थियों ने जो कुछ सीखा है, उसे प्रतिबिम्बित (Reflect) करने के लिए व्यवस्था करता है।

2. नियोजन (Application)–यह नियोजन उपागम जिसे हम प्रस्तुत कर रहे हैं, वह इन बातों पर आधारित होती है–

(i) विद्यार्थियों को उन परिस्थितियों में भागीदार बनाना जिसमें वे प्रक्रम की स्वयं द्वारा संयुक्त रूप से व्याख्या करना,

(ii) समस्या का समाधान,

(iii) प्रश्नों का निर्धारण।

विद्यार्थियों को सक्रिय रूप से स्वयं का ज्ञान निर्मित करने के लिए कहा जाता है और यदि ज्ञान का निर्माण वे स्वयं परिस्थिति का अर्थ निकाल कर तथा अध्यापक के सहयोग एवं मार्गदर्शन से किया जाता है। अध्यापक परिस्थिति का संचालन करता है और उन समूहों को वह प्रोत्साहन और प्रश्न प्रदान करता है जो स्वयं अपनी-अपनी व्याख्याएँ निर्मित करते हैं और प्रदर्शन करते हैं।

उदाहरणार्थ–विज्ञान का अध्यापक किसी प्रक्रम (Phenomenon) का प्रदर्शन करता है और फिर विद्यार्थियों को, जो कुछ उन्होंने देखा है, उसकी व्याख्या करने के लिए कहता है। निर्मितिवाद (Constructivism) उपागम किसी भी विषय क्षेत्र य पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों की भागीदारी अर्थ निकालने में निश्चित करके प्रयोग किया जा सकता है। यह उपागम 45 या 50 मिनट के कक्षा पीरियडों में सैट किया जा सकता है जब कि कोई खास सम्प्रत्यय, कौशल या अभिवृत्ति (Attitude) का शिक्षण करना हो।

जब हम छात्र-अधिगम की चर्चा करते हैं तथा हम जानबूझ कर सम्प्रत्यय, कौशल और अभिवृत्ति शब्दों का प्रयोग करते हैं ताकि ज्ञान के विभिन्न आयाम (Dimensions) की सूचना हो।

कौशल और आवृत्ति 'ज्ञान' से भिन्न होते हैं। ज्ञान मात्र कुछ तथ्यों या सूचनाओं का संग्रह है। ब्लूम ने जिसे 'ज्ञान' कहा है वह वास्तव में प्राक् सूचना है तथा ब्लूम द्वारा बताये अन्य स्तर अधिगमकर्ता द्वारा स्वयं के लिए ज्ञान-निर्माण के विभिनन तरीके हैं। यह वर्गीकरण आवश्यक दिशा-निर्देश का कार्य करता है ताकि आगे बढ़ा जा सके।

निर्मितिवादी अधिगम (Constructivist Learning) यह मानता है कि ज्ञान क्या है और ज्ञान किस प्रकार अधिगमकर्त्ता द्वारा सक्रिया रूप से निर्मित होता है। निर्मितिवादी (Constructivists) इस बात से सहमत है कि ज्ञान-अर्जन या जानना बोध-निर्माण की सक्रिय प्रक्रिया है, न कि निष्क्रिय सूचना प्राप्ति।

(Constructivist Learning implies in initial concern with what knowledge is and how knowledge is actively constructed by the learner. Advocates of constructivism agree that acquiring knowledge or knowing is an active process of constructing understanding rather than the passive receipt of information.)

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

2. निर्मितिवादी और पारम्परिक कक्षाओं में अन्तर बताएँ। निर्मितिवाद की विशेषताओं के लाभ तथा आलोचना का वर्णन करें।

(Differentiate Traditional and Constructivist classrooms. Describe characteristics, uses and criticism of constructivism.)

उत्तर–निर्मितिवादी कक्षा और परम्परिक कक्षा में अन्तर या निर्मितिवाद के सिद्धांत और पारम्परिक शिक्षण अधिगम में अन्तर (Difference between Traditional Classroom and Constructivist Classroom)–कक्षा ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ पर अध्यापक निष्क्रिय विद्यार्थियों में ज्ञान उड़ेल देता हो, वे खाली बर्तन की तरह भरे जाने की प्रतीक्षा में रहते हों। निर्मितिवादी प्रतिमान (Constructivist Model) में विद्यार्थियों पर बल दिया जाता है कि वे अपनी स्वयं की अधिगम प्रक्रिया में भागीदारी करें। अध्यापक एक सहायक के रूप में कार्य करता है ताकि वे अपनी समझ या बोध को विकसित और उसका मूल्यांकन कर सकें। अध्यापक का एक सबसे प्रमुख कार्य अच्छे प्रश्न पूछना होता है।

निर्मितिवादी कक्षा (Constructivist Classroom), दोनों अध्यापक और विद्यार्थी ज्ञान के बारे में ही सोचते हैं। निर्मितिवादी यह मानते हैं कि विद्यार्थी पारम्परिक कक्षा में भी ज्ञान का निर्माण कर रहे हैं। पारम्परिक कक्षा और निर्मितिवादी कक्षा में निम्नलिखित अन्तर होता है–

क्रम संख्या	पारम्परिक कक्षा कक्ष (Traditional Classroom)	निर्मितिवादी कक्षा कक्ष (Constructivist Classroom)
1.	पारम्परिक कक्षा कक्ष में मूल कौशलों (Basic skills) पर बल दिया जाता है। पाठ्यक्रम समग्र (Whole) के भागों (Parts) से शुरू होता है।	पाठ्यक्रम में बड़े-बड़े सम्प्रत्ययों (Big Concepts) पर बल दिया जाता है, समग्र (Whole) से शुरू होता है तथा भागों (Parts) को शामिल करता है।
2.	स्थायी पाठ्यक्रम (Fixed Curriculum) से सख्ती से जुड़े रहने (Strict Adherence) को अधिक मान दिया जाता है।	विद्यार्थी के प्रश्नों और सूचियों को अधिक मान (Value) दिया जाता है।
3.	मुख्य रूप से पाठ्य-पुस्तकें और कार्य पुस्तकें (Work Books) सामग्री होती हैं।	सामग्री में शामिल हैं–सामग्री के प्राथमिक स्रोत।
4.	अधिगम पुनरावृत्ति या दोहराने (Repetition) पर आधारित होता है।	अधिगम अन्तःक्रियात्मक (Interactive) होता है तथा विद्यार्थी जो कुछ पहले से जानता है उसी पर अधिगम निर्मित होता है
5.	अध्यापक सूचनाओं को विद्यार्थियों में बाँटते (Disseminate) करते हैं तथा विद्यार्थी ज्ञान के प्राप्तकर्ता (Recipients) होते हैं।	अध्यापक विद्यार्थी से बातचीत (Dialogue) करते हैं तथा विद्यार्थी को उसके स्वयं के ज्ञान-निर्माण में सहायता करते हैं।
6.	अध्यापक की भूमिका निर्देशात्मक (Directive) होती है तथा शक्ति पर टिकी (Rooted in Authority) होती है।	अध्यापक की भूमिका अन्तर्क्रियात्मक (Interactive) होती है तथा बातचीत (Rooted in Negotiation) पर टिकी होती है।

Scanned with OKEN Scanner

क्रम संख्या	पारम्परिक कक्षा कक्ष (Traditional Classroom)	निर्मितिवादी कक्षा कक्ष (Constructivist Classroom)
7.	मूल्यांकन परीक्षण और सही उत्तरों के माध्यम से होता है।	मूल्यांकन में शामिल है—छात्र कार्य, अवलोकन (observations) और विचार बिन्दु (Points of views) तथा परीक्षण भी, प्रक्रिया उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जिनका उत्पादन (Product)।
8.	ज्ञान गतिहीन (Inert) या निष्क्रिय दिखाई पड़ता है।	ज्ञान गतिशील (Dynamic) और हमारे अनुभवों के साथ हमेशा अनुभवों के साथ हमेशा परिवर्तनशील दिखाई देता है।
9.	विद्यार्थी मुख्य रूप से अकेला ही कार्य करता है।	विद्यार्थी मुख्य रूप से समूहों में कार्य करते हैं।

निर्मितिवादी कक्षा की विशेषताएँ
(Characteristics of Constructivism)

निर्मितिवादी अध्यापक कई प्रश्न और समस्याएँ प्रस्तुत करता है, इसके बाद वह विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करता है ताकि वे अपने स्वयं के उत्तर उनकी सहायता से ढूँढ सकें। वे अपनी शिक्षण प्रक्रिया में विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करते हैं, जैसे—

(i) वे विद्यार्थयों को अपने प्रश्न स्वयं निर्मित करने के लिए संकेत (Prompt) प्रदान करते हैं। यह पूछताछ (Inquiry) है।

(ii) वे अधिगम की अभिव्यक्ति और बहु-व्याख्याएँ (Expression of Learning and Multiple Interpretations) की आज्ञा देते हैं। यह बहु-बुद्धियाँ (Multiple Intelligences) हैं।

(iii) सामूहिक कार्य (Group Work) को प्रोत्साहन देते हैं तथा साथियों (Peers) को स्रोत के रूप में (As Source) प्रयोग करते हैं। यह संयुक्त अधिगम (Collaborative Learning) है।

निर्मितिवादी (Constructivist) कक्षा में अधिगम की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(a) अधिगम का निर्माण (Learning is Constructed)—निर्मितिवादी कक्षा में अधिगम का निर्माण किया जाता है। विद्यार्थी खाली स्लेट नहीं होते जिस पर ज्ञान लिखा जा सके। वे अधिगम परिस्थितियों में पूर्व-निर्मित ज्ञान, विचारों और बोध (Undertstandings) के साथ प्रवेश करते हैं। यह पूर्व ज्ञान नये ज्ञान के सृजन के लिए कच्चे माल (Raw Material) का कार्य करता है।

(b) निर्मितिवादी कक्षा में अधिगम सक्रिय होता है (Learning is Active)—विद्यार्थी स्वयं के लिए नये बोध (New Understanding) का सृजन करता है। अधिगम क्रियायें विद्यार्थियों की सम्पूर्ण भागीदारी चाहती हैं। अधिगम प्रक्रिया का आवश्यक भाग है—विद्यार्थी का अपनी क्रियाओं की चर्चा करना विद्यार्थी स्वयं हपने लक्ष्य और अपने मूल्यांकन के साधन तय करता है।

(c) अधिगम प्रतिबिम्ब है (Learning is Reflective)—विद्यार्थी अपनी अधिगम प्रक्रिया को स्वयं नियंत्रित करता है तथा अपने अनुभवों को प्रतिबिम्बित (Reflect) करते हैं। यह प्रक्रिया उन्हें अपने स्वयं के अधिगम का विशेषज्ञ (Expert) बना देती है। अध्यापक ऐसी परिस्थितियों के सृजन में सहायक होता है जिनमें विद्यार्थी प्रश्न पूछने की प्रक्रिया सुरक्षित मानता है और अपनी ही प्रक्रियाओं में प्रतिबिम्बित होते हैं। अध्यापक को भी ऐसी क्रियाओं का सृजन करना चाहिए जिनमें विद्यार्थी का पूर्व ज्ञान और अनुभव प्रतिबिम्बित हो। इसमें "क्या सीखा गया और कैसे सीखा गया" पर बात करना वास्तव में महत्त्वपूर्ण होता है।

Scanned with OKEN Scanner

(d) सहयोगी अधिगम होता है (Collaborative Learning)—निर्मितिवादी कक्षा विद्यार्थियों के सहयोग पर निर्भर करती है। अधिगम में सहयोग क्यों योगदान करता है, इसके भी कई कारण हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इसमें विद्यार्थी केवल स्वयं से ही नहीं सीखते बल्कि अपने साथियों (Peers) से भी सीखते हैं। जब विद्यार्थी संयुक्त रूप से 'रिव्यू' (Review) करते हैं और स्वयं को अपनी अधिगम प्रक्रियाओं में प्रतिबिम्बित करते हैं, तब वे एक दूसरे से कई प्रकार की व्यूह रचनाएँ (Strategies) और विधियाँ अर्जित करते हैं।

(e) अधिगम जाँच पर आधारित (Learning is Inquiry Based)—निर्मितिवादी कक्षा में मुख्य क्रिया होती है—समस्या का समाधान। विद्यार्थी जाँच-विधि (Inquiry Method) में प्रश्न पूछता है, किस प्रकरण (Topic) की जाँच पड़ताल (Inquiry) करता है, वह निष्कर्ष निकालता है तथा उन निष्कर्षों का पुनः विचार करते हैं।

(f) प्रश्नों की खोजबीन से और अधिक प्रश्न बनते हैं। 'Learning is Evolving'—विद्यार्थियों के पास जो विचार होते हैं वे कई बार बाद में असत्य सिद्ध होते हैं या नये अनुभवों की व्याख्या के लिए अपर्याप्त होते हैं। ये विचार ज्ञान के एकीकरण में अस्थाई (Temporary) पद होते हैं। जब किसी विद्यार्थी को सूचना का नया अंश प्राप्त होता है तब क्या होता है? निर्मितिवादी प्रतिमान (Constructivist Model) के अनुसार विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान और अनुभव के साथ उसकी तुलना करता है। इसमें निम्नलिखित तीन बातें हो सकती हैं—

(i) नई सूचना पूर्व ज्ञान से मेल खा जाती है (Consonant with previous knowledge).

(ii) नई सूचना पूर्व ज्ञान से मेल नहीं खाती (Dissonant)। तब विद्यार्थी को अपने पूर्व बोध (Previous Understanding) में परिवर्तन करना पड़ता है ताकि वह नई सूचना से मेल खा जाये। यह कठिन परिश्रम का कार्य हो सकता है।

(iii) नई सूचना पूर्व ज्ञान से मेल नहीं खाती और इसे अनदेखा (Ignored) कर दिया जाता है। सूचना के अस्वीकृत अंश विद्यार्थी स्वीकार नहीं कर पाता।

निर्मितिवाद के लाभ
(Uses of Constructivism)

1. निर्मितिवाद के अन्तर्गत बच्चे अधिक सीखते हैं और अधिगम का आनन्द उठाते हैं जब वे सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।
2. रटने की बजाय शिक्षा चिन्तन और बोध पर केन्द्रित होती है तथा उत्तम होती है। निर्मितिवाद ऐसे अधिगम पर बल देता है कि कैसे चिन्तन किया जाता है और कैसे बोध (Understand) किया जाता है।
3. निर्मितिवादी अधिगम स्थानान्तरण योग्य (Transferable) होता है। निर्मितिवादी कक्षा में विद्यार्थी ऐसे संचालन के सिद्धान्त (Organising Principles) बनाते हैं कि वे अन्य अधिगम सैटिंग में भी कार्य कर सकते हैं।
4. निर्मितिवाद विद्यार्थी में अपना अधिगम (Ownership of Learning) होता है, क्योंकि यह अधिगम विद्यार्थियों के प्रश्नों और उनकी खोज पर आधारित होता है और मूल्यांकन का डिजाईन तैयार करने में भी उनका हाथ होता है। विद्यार्थियों में यह ज्ञान स्थाई होता है तथा नये ज्ञान को वास्तविक जीवन में स्थानान्तरित करता है।
5. निर्मितिवाद विद्यार्थियों में उद्दीपन (Stimulates) पैदा करता है और विद्यार्थी को व्यस्त रखता है तथा अपनी वास्तविक जिज्ञासा का प्रयोग करता है।
6. निर्मितिवाद कक्षा वातावरण का निर्माण करके सामाजिक और सम्प्रेषण कौशल (Communication Skills) का विकास करता है तथा सहयोग (Colaboration) पर

Scanned with OKEN Scanner

तथा विचारों के आदान-प्रदान पर बल देता है। विद्यार्थियों को यह सीखना चाहिए कि वे अपने विचारों को कैसे स्पष्ट बनायें तथा सामूहिक प्रोजैक्ट में किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से सहयोग करें। इसलिये विद्यार्थियों को अपने विचारों का आदान-प्रदान अवश्य करना चाहिए तथा स्वयं के योगदान का मूल्यांकन सामाजिक रूप से स्वीकृत ढंग से करना सीखना चाहिए।

निर्मितिवाद की आलोचना
(Criticism of Constructivism)

1. निर्मितिवाद वर्गवादी (Elitist) है। इसके आलोचक कहते हैं कि निर्मितिवाद व अन्य प्रगतिशील सिद्धान्त विशेषाधिकृत पृष्ठभूमि (Privileged Background) वाले बच्चों के साथ अधिक सफल है, जिनको सौभाग्यवाद श्रेष्ठ अध्यापक, परिश्रमी माता-पिता तथा अमीर पारिवारिक वातावरण मिला हो।
2. सामाजिक निर्मितिवाद से 'समूह चिन्तन' (Group Think) का विकास होता है। आलोचक यह मानते हैं कि निर्मितिवादी कक्षा के सहयोगी पक्ष के परिणामस्वरूप अधिकांश लोगों में तानाशाही (Tyranny of the majority) पैदा होने लगती है जिसमें कुछ विद्यार्थियों की आवाज या व्याख्याएँ पूरे समूह के निष्कर्षों पर राज करती हैं तथा असहमति वाले विद्यार्थियों को मजबूरी में बहुमत के साथ शामिल होना पड़ता है।
3. अभी ऐसा कोई प्रमाण मिलना शेष है कि निर्मितिवादी विधियाँ प्रभावी रूप से कार्य करती हैं। आलोचक यह मानते हैं कि निर्मितिवादी परीक्षण के माध्यम से मूल्यांकन को अस्वीकार करने के पश्चात् स्वयं को विद्यार्थियों की प्रगति के प्रति निर्मितिवादी स्वयं को जवाबदेह नहीं मानते। अध्ययनों ने यह भी स्पष्ट किया है कि विद्यार्थी निर्मितिवादी कक्षा-कक्ष में पारम्परिक कक्षा-कक्ष की तुलना में मूल कौशलों (Basic Skills) के संदर्भ में बहुत पीछे रह गये।

◆◆◆

3.5 ब्रूनर का अन्वेषणात्मक अधिगम
(Bruner's Discovery Learning)

1. ब्रूनर के अन्वेषणात्मक अधिगम सिद्धान्त के बारे में आप क्या जानते हैं? अन्वेषणात्मक अधिगम की प्रासंगिकता प्रयोग तथा इसमें अधिगमकर्ता तथा अध्यापक की भूमिका का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by Bruner's discovery learning theory? Describe its relevance, applicability and the role of learner and teacher in this theory.)

उत्तर–ब्रूनर का अन्वेषणात्मक अधिगम एक खोज आधारित निर्मितिवादी अधिगम सिद्धान्त है जब बच्चा अपने पुराने अनुभव तथा वर्तमान ज्ञान के आधार पर तथ्यों की खोज करता है। अन्वेषणात्मक अधिगम तथ्यों तथा उनके सम्बन्धों की खोज करने का सर्वोत्तम तरीका है। ब्रुनर का यह सिद्धान्त करके सीखने पर जोर देता है। अन्वेषणात्मक अधिगम समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है। जहाँ पर विद्यार्थी अपने अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर नए तथ्यों की खोज करता है।

ब्रूनर (Bruner) ने पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को अधिक उपयोगी बनाने के लिए उसमें आवश्यक परिवर्तन किये और उसे एक नया रूप प्रदान किया। ब्रूनर ने मुख्यतः दो बातों पर ध्यान दिया। बालक अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से किस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं और शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में बालक मानसिक चिन्तन कैसे करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

मानसिक अभिव्यक्ति (Mental Expression)–ब्रूनर के अनुसार शिशु अपनी अनुभूतियों को मानसिक रूप से निम्नलिखित तीन तरीकों से अभिव्यक्त करते हैं–

1. दृश्य प्रतिमा विधि (Iconic Mode)–यह वह विधि है जिसमें बालक अपनी अनुभूति को अपने मन में कुछ दृश्य प्रतिमाएँ (Visual Images) बना कर प्रकट करता है। इस अवस्था में बालक प्रत्यक्षीकरण (Perception) के माध्यम से सीखता है।

2. सांकेतिक विधि (Symbolic Mode)–यह वह विधि होती है जिसमें बच्चा अपनी अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस अवस्था में बालक अपने अनुभवों को शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता विकसित करने लगता है। इस प्रक्रिया में बच्चा प्रतीकों (Symbols) का उनके मूल विकल्पों से सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता का प्रदर्शन करता है।

3. सक्रियता विधि (Enactive Mode)–यह वह तरीका है जिसमें शिशु अपनी अनुभूतियों को शब्दहीन क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, जैसे भूख की अनुभूति को रो-रो कर अभिव्यक्त करना, हाथ-पैर हिलाना तथा वस्तु को पकड़ना। इन क्रियाओं के माध्यम से वह बाहरी वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है।

उपरोक्त ब्रूकर की विधियों में गेस्टाल्टवाद (Gestaltism), संज्ञानवाद (Cognitionism) और व्यवहारवाद (Behaviourism) की झलक दिखाई पड़ती है। दृश्य प्रतिमा विधि समग्राकृति अथवा गेस्टाल्ट वाद का अनुसरण करती है। सांकेतिक विधि पियाजे के संज्ञान वाद के सिद्धान्त के अनुरूप क्रिया करती है तथा सक्रियता विधि उद्दीपन-अनुक्रिया (S-R) सम्बन्ध को दर्शाती है।

ब्रूनर के अनुसार जन्म से 18 मास तक सक्रियता विधि (Enactive Mode) की प्रधानता रहती है, 18 से 24 मास की आयु तक दृश्य-प्रतिमा विधि तथा 7 वर्ष की आयु तक सांकेतिक विधि की प्रधानता रहती है। इस दृष्टि से ब्रूनर ने पियाजे की भांति संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development) को ऐसी प्रक्रिया माना है जो एक क्रम में चलती है।

ब्रूनर ने कक्षा के बच्चों का जो सूक्ष्म निरीक्षण किया उसके परिणाम निम्न रहे–

1. विषय की संरचना (Structure of Discipline)–ब्रूनर (Bruner) का विचार है कि हर विषय (Discipline) की अपनी ही एक संरचना होती है, उसके अनुसार आधारभूत संप्रत्यय नियम तथा प्रविधियां (Procedures) होती हैं। इन सब को सीखे बिना उस विषय का ज्ञान स्पष्ट नहीं हो सकता। अतः बच्चे को किसी भी विषय का ज्ञान स्पष्ट रूप से कराने के लिए सबसे पहले सम्प्रत्ययों, नियमों तथा प्रविधियों की स्पष्टता का होना अनिवार्य है।

2. सम्बद्धता का महत्त्व (Importance of Relevance)–ब्रूनर के अनुसार ही विद्यार्थियों को जो कुछ भी सिखाया जाता है उसका व्यक्ति एवं समाज दोनों से ही सम्बन्ध होना चाहिए अर्थात् दोनों के लिए उसकी उपयोगिता होनी चाहिए। इस दृष्टि से ब्रूनर ने दो प्रकार की सम्बद्धता (Relevance) बताई है–पहली व्यक्तिगत सम्बद्धता (Personal Relevance), दूसरी सामाजिक सम्बद्धता (Social Relevance)। ब्रूनर के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य भी व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बद्धता के अनुसार ही होने चाहिएं।

3. तत्परता (Readiness)–ब्रूनर के अनुसार बच्चों को सीखने के लिए तैयार करना आवश्यक है। इसके लिए बच्चों के अनुरूप पाठ्यक्रम तैयार करना आवश्यक होता है। प्रत्येक वर्ग के लिए पाठ्यक्रम तैयार करके उसके अनुसार बच्चों को तैयार करने या उस पाठ्यक्रम के अनुसार उनमें क्षमता का विकास करने को अधिक उत्तम नहीं समझा जाता।

4. अन्तर्दर्शी चिन्तन एवं विश्लेषणात्मक चिन्तन (Intuitive Thinking and Analytical Thinking)–ब्रूनर ने पाया कि अध्यापक अन्तर्दर्शी चिन्तन (Intuitive Thinking) की अपेक्षा विश्लेषणात्मक चिन्तन पर अधिक बल देते हैं जबकि शिक्षा और अधिगम की प्रक्रिया में अन्तर्दर्शी चिन्तन का अधिक महत्त्व होता है। अन्तर्दर्शी चिन्तन (Intuitive Thinking) वह होता है, जब व्यक्ति अपने मन-मस्तिष्क से किसी समस्या का समाधान सीधे प्राप्त करता है। अतः ब्रूनर ने सीधे सोचने के अवसर प्रदान करने पर अधिक बल दिया है।

Scanned with OKEN Scanner

5. अन्वेषणात्मक अधिगम (Discovery Learning)–ब्रूनर के अनुसार बच्चों को किसी विषय के सम्प्रत्ययों (Concepts) का ज्ञान स्वयं के प्रयत्नों से आगमन चिन्तन (Intuitive Thinking) द्वारा हासिल करना चाहिए। जो ज्ञान बच्चों द्वारा आत्म-अन्वेषित (Self Discovered) होता है, वही ज्ञान बच्चों में स्थायी रूप से रहता है तथा सार्थक होता है।

6. स्वयं कार्य करने का महत्त्व (Importance of Self Activity)–ब्रूनर के इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगम-परिस्थिति में विद्यार्थियों को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए। इससे विद्यार्थी विषय को उचित प्रकार से समझ सकते हैं और ऐसा समझा हुआ ज्ञान अधिक स्थाई होता है।

ब्रूनर का सिद्धान्त

1. → विषय की संरचना
2. → सम्बद्धता का महत्त्व
3. → तत्परता
4. → अन्तर्दर्शी एवं विश्लेषणात्मक चिन्तन
5. → अन्वेषणात्मक अधिगम
6. → स्वयं कार्य करने का महत्त्व

ब्रूनर के अन्वेषणात्मक सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Bruner's Theory of discovery learning)–

(i) यह सिद्धान्त अधिगम के बाद पुनर्बलन (Reinforcement) पद बल देता हे, जैसे पुरस्कार, दण्ड आदि।

(ii) ब्रूनर के सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा के द्वारा बच्चे में वैयकितक और सामाजिक दोनों ही गुणों का विकास होता है।

(iii) इस सिद्धान्त के अनुसार विषय की संरचना ऐसी होती है, जिससे विद्यार्थी आसानी से सीखता है।

(iv) ब्रूनर का यह सिद्धान्त बच्चों के पूर्व अनुभवों तथा नये विषय की विषय-वस्तु में समन्वय के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने पर बल देता है।

(v) इसी सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थियों को सिखाये जाने वाली विषय-वस्तु इस प्रकार के क्रम से प्रस्तुत की जाती है, जिससे विद्यार्थी तार्किक (logical) ढंग से कठिनाई स्तर को ध्यान में रखकर सीखता है।

ब्रूनर के अन्वेषणात्मक अधिगम के दोष (Drawbacks of Burner's Theory of Discovery Learning)–

(i) ब्रूनर के अन्वेषणात्मक अधिगम (Discovery Learning) पर अधिक बल दिया है लेकिन हर विषय एवं उसकी पाठ्यवस्तु को खोजपूर्ण विधि के माध्यम से सीखना संभव नहीं। उस स्थिति में यह समय की बर्बादी होगी।

(ii) ब्रूनर ने अन्तर्दर्शी चिन्तन (Intutive Thinking) पर भी बल दिया है लेकिन केवल निर्भर रहने से विद्यार्थियों में सम्प्रत्ययों (Concepts) के ज्ञान के बारे में विविधता आ सकती है। इससे सामान्य बच्चे में द्वन्द्व (conflect) की स्थिति उत्पन्न होने का भय रहता है।

(iii) विषय की संरचना (Structure of Discipline) को समझ पाना विद्यार्थियों के लिए कठिन होता है। इसे समझने के लिए विद्यार्थी में विशेष क्षमता (ability) और अभिप्रेरणा (Motivation) की आवश्यकता होती है।

ब्रूनर के अन्वेषणात्मक अधिगम के सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग (Educational Implications of Bruner's discovery learning theory)–

Scanned with OKEN Scanner

(i) ब्रूनर द्वारा अन्वेषण विधि (discovery Method) पर बल दिया गया है। इस विधि के उपयोग से बच्चों में समस्या समाधान की क्षमता में विकास संभव हो सकता है।

(ii) ब्रूनर ने ही सम्प्रत्यय (concept) को समझने पर अधिक बल दिया है। अतः अध्यापक को विषय सम्बन्धी सम्प्रत्ययों को उचित प्रकार से समझाना चाहिए।

(iii) ब्रूनर के इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण बच्चों की विभिन्न अवस्थाओं के अनुसार करना चाहिए।

(iv) ब्रूनर ने बच्चों के मानसिक विकास की अवस्थाओं की चर्चा की है। इन अवस्थाओं के अनुसार ही शिक्षण विधियों एवं प्रविधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(v) ब्रूनर ने वर्तमान अनुभवों के पूर्व ज्ञान व अनुभवों से सम्बद्ध करके नये सम्प्रत्यय के निर्माण पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। इस उपागम से विद्यार्थियों के ज्ञान को स्थायी एवं समृद्ध बनाया जा सकता है।

(vi) ब्रूनर के सिद्धान्त में विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप अध्यापक अपने कार्य के नियोजन (Planing), कियान्वयन (Execution) एवं मूल्यांकन (Evaluation) प्रक्रिया में आवश्यक परिवर्तन लाकर बच्चों में बौद्धिक विकास में सहायता प्रदान कर सकते हैं।

◆◆◆

3.6 विभिन्न प्रकार की अधिगम परिस्थितियों के लिए विभिन्न अधिगम सिद्धान्तों की प्रासंगिकता तथा प्रयोग
(Relevance and applicability of various Theories of learning for different kinds of Learning situations)

1. गैने द्वारा प्रतिपादित शिक्षण-अधिगम के सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
(Discuss in detail Gagne'e theory of teaching and learning.)

अथवा

गैने द्वारा बताए गए अधिगम या सीखने के प्रकारों या परिस्थितियों का उल्लेख करें।
(Elaborate about the Gagne's learning types or conditions.)

उत्तर–राबर्ट गैने *(Robert Gagne, 1965)* का शैक्षिक तकनीकी को विकसित करने में महत्त्वपूण f योगदान रहा है। गैने ने यह सुझाव दिया कि अधिगम के साधारण सिद्धान्त अधिगम की व्याख्या नहीं कर सकते। इसके समर्थन में गैने ने यह तर्क दिया कि अधिगम के स्वरूप में सामान्यीकरण उन अधिगम परिस्थितियों के निरीक्षण के आधार पर ही किया जा सकता है। जिन परिस्थितियों में अधिगम की प्रक्रिया होती है। गैने की धारणा के अनुसार साधारण या सामान्य व्यवहार के लिए कुछ 'पूर्व' आवश्यकताओं का निर्धारण करना होता है। उदाहरणार्थ, बोध स्तर *(Understanding Level)* के शिक्षण को ग्रहण करने के लिए स्मृति स्तर को शिक्षण की 'पूर्व आवश्यकता' होती है।

राबर्ट गैने ने अधिगम या सीखने पर अधिक जोर दिया है। इसके अनुसार अधिगम निष्पत्ति या उपलब्धि में परिवर्तन की क्षमता को विकसित करना है। लेकिन गैने निष्पत्ति परिवर्तन *(Performance Change)* को अधिगम के समान ही समझता है। गैने ने अपनी पुस्तक 'अधिगम की परिस्थितियां' *(The conditions of learning)* में निष्पत्ति या परिवर्तन या अधिगम का आठ वर्गों में किया है। गैने के अनुसार अधिगम परिस्थिति दो प्रकार की होती है।

1. आन्तरिक परिस्थितियाँ *(Internal Conditions)*
2. बाहरी परिस्थितियाँ *(External Conditions)*

Scanned with OKEN Scanner

आन्तरिक परिस्थितियों में ध्यान, अभिप्रेरणा और पूर्व-अधिगम द्वारा अर्जित क्षमताओं को शामिल किया जाता है।

बाहरी परिस्थितियों के अन्तर्गत विद्यार्थी के बाहर की परिस्थितियों अर्थात् भौतिक ऊर्जा के विभिन्न प्रकार के परिवर्तन शामिल किए जाते हैं। गैने ने अधिगम में यांत्रिक अनुबंधन पर शास्त्रीय अनुबन्धन *(Classical Conditioning)* की अपेक्षा अधिक बल दिया है।

गैने का मानना है कि अध्यापक को विद्यार्थियों में विद्यमान पूर्व-अपेक्षित *(Pre-requisite)* क्षमताओं को प्रयुक्त करने की अपेक्षा विद्यार्थी के बाहर की उपयुक्त अधिगम परिस्थितियों को क्रमबद्ध करना अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। गैने महोदय ने इस प्रकार की अधिगम परिस्थितियों को 'अधिगम या सीखने के प्रकार' का नाम दिया है।

संक्षेप में गैने द्वारा बताई गई अधिगम-परिस्थितियाँ निम्न प्रकार से है–

1. संकेत अधिगम (Signal Learning)—संकेत अधिगम वास्तव में पैवलव *(Pavlav)* और वाटसन द्वारा बताया गया प्राचीन अनुबंधन *(Classical Conditioning)* ही है। इस अधिगम प्रक्रिया में प्राकृतिक और अप्राकृतिक उद्दीपन को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है। यह केवल उद्दीपन-विकल्प *(Simulus Substitution)* है। अप्राकृतिक उद्दीपन से अप्राकृतिक अनुक्रिया उत्पन्न होती हैं। उदाहरणार्थ पैवलव के प्रयोग के अनुसार घंटी बजने पर कुत्ते के मुँह में लार उत्पन्न होता है। जबकि घंटी और खाने को उसके सामने एक साथ ही प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रयोग में घंटी संकेत का कार्य करती है। इसी प्रकार आय जीवन में छोटे बच्चों के अक्षर ज्ञान में संकेत अधिगम परिस्थिति को उत्पन्न करता है। जैसे क = कबूतर, ख = खरगोश आदि।

2. उद्दीपन-अनुक्रिया अधिगम (Stimulus–Response Learning)—यह थार्नडाइक *(Thorndike)* के यांत्रिक अनुबंधन की तरह ही है। इस प्रकार का अधिगम 'स्किनर' की सक्रिय अनुबद्ध अनुक्रिया का रूप है। इस प्रकार का अधिगम वास्तव में शुद्ध और अशुद्ध उद्दीपन में विभेदीकरण, उद्दीपन के समूहों में विभेदीकरण जो पुरस्कार उत्पन्न करते हैं और जो नहीं करते, शामिल है। गैने का विचार है कि उद्दीपनों का विभेदीकरण करना अनुक्रियाओं के पुनर्बलन *(Reinforcement of Responses)* से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जब किसी परिस्थिति में विद्यार्थी अनुक्रिया करता है और उसकी शुद्धता की पुष्टि की जाती है तब उससे विद्यार्थी को आगामी अनुक्रिया के लिए पुनर्बलन मिलता है। इसी आधार पर शिक्षण परिस्थितियों में ऐसा ही वातावरण पैदा किया जाता है। जिससे विद्यार्थी अनुक्रिया करते हैं तथा उसकी पुष्टि की जाती है। इससे तब आपेक्षित व्यवहार की आशाएँ बढ़ जाती है। इसका प्रमुख उदारहण अभिक्रमित अनुदेशन है। इस प्रकार के अनुदेशन में इसी प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न की जाती है। जब शिक्षण कार्य स्मृति स्तर पर किया जाता है तब इसी प्रकार की अधिगम परिस्थिति उत्पन्न की जाती है।

3. शृंखला या चेन अधिगम (Chain Learning)—इसे व्यावहारात्मक शृंखला कहना अधिक उपयुक्त है। शृंखला अधिगम के लिए उद्दीपन-अनुक्रिया की आवश्यकता होती है। जिसकी व्याख्या स्किनर और पैलबर्ट ने की है। शृंखला से अभिप्राय है–व्यक्तिगत उद्दीमन-अनुक्रियाओं के समूह का एक क्रम से सम्बन्ध।

गैने ने अपने सिद्धान्त में दो प्रकार की शृंखला अधिगम की व्याख्या की है। शाब्दिक और अशाब्दिक। गैने का विश्वास है कि शृंखला को शृंखला के रूप में नहीं सीखा जा सकता। जब तक कि व्यक्ति में व्यक्तिगत उद्दीपन अनुक्रिया *(Ss–Rs)* कड़ियों को सीखने की क्षमता न हो। उसके अनुसार इन कड़ियों *(Links)* को दोहराने से अधिगम अधिक होगा।

इस प्रकार उद्दीपन अनुक्रिया को एक शृंखला में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार के अधिगम में शिक्षण पाठ्यवस्तु को एक क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। क्रम में प्रस्तुत करने से पाठ्यक्रम को एक क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। जानवरों तथा छोटे बच्चों के प्रशिक्षण में इसी प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं।

4. शाब्दिक साहचर्य (Verbal Association)—इस प्रकार के अधिगम में शाब्दिक अनुक्रिया क्रम *(Sequence of Verbal Responding)* की व्यवस्था की जाती है। अधिक जटिल शाब्दिक शृंखला के लिए

Scanned with OKEN Scanner

व्यवस्था क्रम एक संकेत का कार्य करती है। शाब्दिक इकाई को सीखने के लिए उससे पहले वाली इकाई सहायता करती है। इस प्रकार के अधिगम का प्रयोग प्रायः भाषा-शिक्षण *(Language–Teaching)* में प्रयुक्त किया जा सकता है।

5. बहु-भेदीय या विभेदन अधिगम (Discrimination Learning)—इस प्रकार के अधिगम तक पहुंचने के लिए शाब्दिक और अशाब्दिक शृंखला अधिगम *(Verbal and non-verbal chain learning)* को ग्रहण करने की आवश्यकता होती है। बहु-भेदीय अधिगम वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति विभिन्न उद्दीपनों के लिए विभिन्न अनुक्रियाएँ करता है जो कि किसी सीमा तक भौतिक-दृष्टि से मिलती-जुलती है। इस प्रकार के अधिगम में शृंखलाओं में विभेदीकरण करने की क्षमता का विकास किया जाता है। सभी उद्दीपन मौलिक रूप से एक जैसे प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के अधिगम के लिए बोध स्तर का शिक्षण *(Understanding level of teaching)* अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

6. प्रत्यय अधिगम या सीखना (Concept Learning)—प्रत्यय अधिगम से अभिप्राय है—उद्दीपनों के वर्ग हेतु सांझी अनुक्रिया करना जबकि ये उद्दीपन एक दूसरे से भिन्न हों। बहु-भेदीय अधिगम प्रत्यय अधिगम की पूर्व-शर्त *(Pre-requistic)* होती है। प्रत्यय अधिगम विभेदीकरण अधिगम *(Discrimination learning)* पर भी निर्भर करता है। केण्डलर *(Condler, 1964)* ने प्रत्यय अधिगम पर अधिक बल दिया है। उद्दीपनों के एक समूह के लिए एक अनुक्रिया करना जबकि उद्दीपनों में मौलिक दृष्टि से अन्तर प्रतीत होता है। इस प्रकार का अधिगम विद्यार्थियों में ऐसी क्षमताओं का विकास करता है। वे विद्यार्थी समस्त उद्दीपनों के समूह के लिए अनुक्रिया *(Response)* का निर्धारण कर लेता है। शिक्षण व्यवस्था द्वारा बोध स्तर पर प्रत्यय अधिगम उपयुक्त रहता है।

7. अधिनियम अधिगम (Rule or Principle Learning)—इस प्रकार के अधिगम में दो या दो से अधिक प्रत्ययों में शृंखला का निर्माण करना है। अतः इस प्रकार के अधिगम के तिए दो या दो से अधिक प्रत्ययों का होना अति आवश्यक है। व्यवहार पर नियंत्रण इस प्रकार से किया जाता है कि जिससे वह नियमों को शब्दों में प्रस्तुत कर सके। इसके लिए प्रत्यय अधिगम की पूर्व आवश्यकता होती है। इस प्रकार का अधिगम चिन्तन स्तर पर किया जाता है। ऐसी शिक्षण व्यवस्था चिन्तन स्तर पर की जाती है। यह व्यक्ति की एक आन्तरिक स्थिति होती है जो कि उसके व्यवहार पर नियंत्रण करती है। यह 'सुपर प्रत्यय' भी कहलाता है। अधिनियम शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

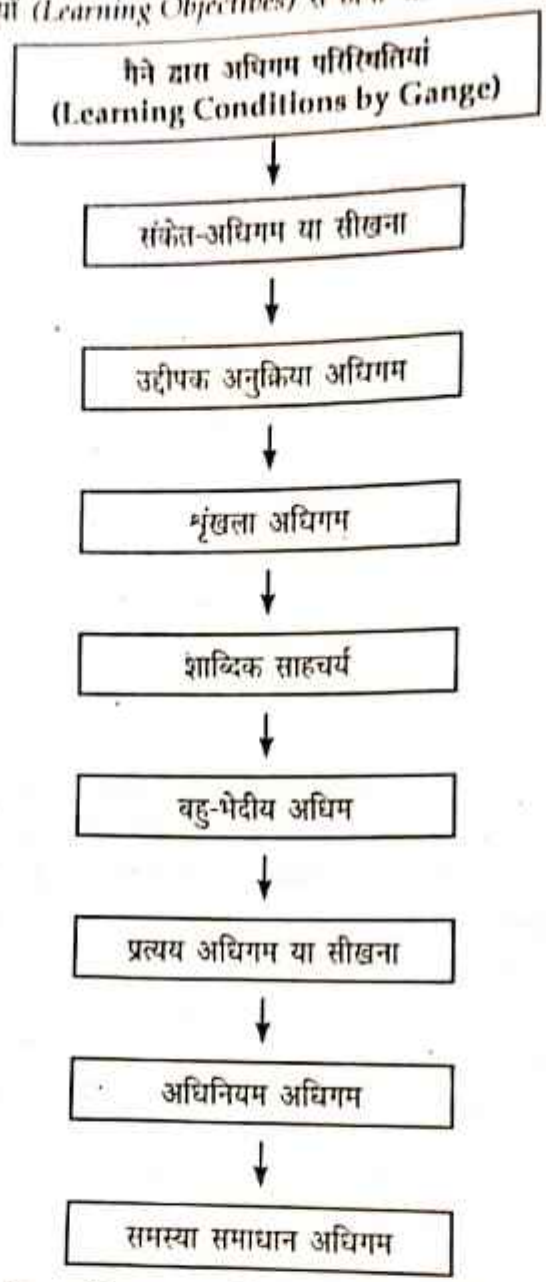
8. समस्या समाधान से सम्बन्धित अधिगम (Problem Solving Learning)—समस्या समाधान अधिनियम अधिगम का ही प्रसार है। इससे प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग क्रियान्वित होता है। इस प्रकार के अधिगम के लिए अधिनियम-अधिगम की पूर्व आवश्यकता होती है। इस प्रकार के अधिनियम के अन्तर्गत केवल अधिनियमों का प्रयोग ही नहीं होता, बल्कि विद्यार्थी को अपनी मौलिकता का भी प्रयोग करना पड़ता है। समस्या-समाधान स्थिति में विद्यार्थी पहले सीखे गए अधिनियमों में उस सम्बन्ध *(Combination)* की खोज करते हैं जो किसी नई परिस्थिति में प्रयुक्त हो सके। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विद्यार्थी दो या दो से अधिक पहले सीखे गए अधिनियमों का मिश्रण कर देते हैं जिससे उच्च-स्तरीय अधिनियम के रूप में नवीन-क्षमता उत्पन्न होती है। नियमों के सीखने के बाद ही समस्या-समाधन की सम्भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार के अधिगम-स्वरूपों के लिए चिन्तन स्तर का शिक्षण ही ठीक रहता है।

गैने के अनुसार अनुदेशन को एक विशिष्ट क्रमानुसार प्रस्तुत करना चाहिए। इस क्रम से गौने की अधिगत परिस्थितियों का क्रम अधिक व्यवहारिक बन पाएगा। गैने ने अपने इस क्रम *(Sequence)* को व्यवहारिक बनाने के लिए शिक्षण तथा अनुदेशन में मनोवैज्ञानिक शक्तियों का एक विशिष्ट क्रम प्रस्तुत किया है—प्रथम—अभिप्रेरणा *(Motivation)*, दूसरा—स्थानान्तरण *(Transfer)*, तीसरा—मापन *(Measurement)*, चौथा—अधिगम स्वरूप या परिस्थिति *(Learning Conditions)*, पाँचवां—ज्ञान का स्वरूप *(Form of knowledge)*, छठा—अधिगम के उद्देश्य *(Objectives of Leanrning)*।

शिक्षक को शिक्षण क्रियाओं की व्यवस्था अधिगम के स्वरूप *(Learning Conditions)* के अनुरूप

Scanned with OKEN Scanner

करनी चाहिए ताकि इनके अनुसार अभिप्रेरणा पद्धतियों का प्रयोग किया जा सके। विद्यार्थियों की अनुक्रियाओं का सम्बन्ध अधिगम उद्देश्यों *(Learning Objectives)* से होना आवश्यक है।



चित्र : गैने द्वारा बताई गई अधिगम परिस्थितियाँ

◆ ◆ ◆

2. सामाजिक अधिगम से क्या अभिप्राय है? बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धान्त का वर्णन करो। (What do you mean by Social Learning? Describe Bandura's Social Learning Theory.)

उत्तर—'सामाजिक अधिगम' से अभिप्राय (Meaning of Social Learning)—प्रेक्षणात्मक अधिगम (Observational Learning) ही सामाजिक अधिगम (Social Learning) कहलाता है। अधिगम के इस रूप को पहले 'अनुकरण' (Imitation) कहा जाता था। इस प्रकार के अधिगम में व्यक्ति समाजिक व्यवहारों को सीखता है, इसीलिये इसे सामाजिक अधिगम कहा जाता है। हमारे सम्मुख ऐसा अनेकों सामाजिक स्थितियाँ आती हैं जिनमें यह ज्ञात नहीं रहता कि हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए। ऐसी स्थिति में हम दूसरे

Scanned with OKEN Scanner

व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण (Observation) करते हैं और उनकी तरह ही व्यवहार करने लगते हैं। इस प्रकार के अधिगम को 'मॉडलिंग' (Modeling) भी कहा जाता है।

बच्चे अधिकांश सामाजिक व्यवहार प्रौढ़ों का प्रेक्षण तथा उनकी नकल करके सीखते हैं। कपड़े पहनना, बालों को सँवारने की शैली और समाज में कैसे रहा जाये, यह सब दूसरों को देखकर सीखा जाता है।

प्रसिद्ध अमेरिकी मनोवैज्ञानिक अलबर्ट बैण्डुरा (Albert Bandura) ने सीखने में प्रेक्षण (observation) के महत्त्व को स्वीकार कर सीखने के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसे बैण्डुरा का सामाजिक सीखने का सिद्धान्त (Bandura's Social Learning Theory) कहा जाता है।

बैण्डुरा के अनुसार पर्यावरण के विद्यमान किसी उद्दीपन के प्रति हम बिना सोचे-समझे अनुक्रिया नहीं करते। हमारे पर्यावरण में चारों ओर विद्यमान तत्त्वों में से सूझ एवं पूर्व की अनुभूतियों के आधार पर कुछ का चयन करते हैं। यह कार्य हम हमारे चारों ओर रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहारों का निरीक्षण कर उनका अनुकरण करते हैं और इस प्रकार हम प्रेक्षण द्वारा सीखने की प्रक्रिया सम्पन्न करते हैं। बैण्डुरा के अनुसार मानव का व्यवहार संज्ञानात्मक (Cognitive), व्यवहारात्मक (Behavioural) तथा पर्यावरणीय (Environmental) निर्धारकों के बीच अन्तर्क्रिया का परिणाम होता है। अतः मानव क्रिया में निम्नलिखित तीन कारकों का प्रभाव हमेशा रहता है–

(i) बाहरी वातावरण (External Environment),

(ii) संज्ञानात्मक एवं अन्तरिक घटनाएँ (Cognitive and Internal Events),

(iii) व्यवहार (Behaviour)।

ये तीनों कारक एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। बाहरी वातावरण (External Environment) में अन्य व्यक्तियों का व्यवहार शामिल है।

बैण्डुरा के अनुसार दूसरों के व्यवहारों का प्रेक्षण करके तथा उन्हें दोहराकर वैसा ही व्यवहार करना सीख लेता है और उसे भविष्य में दोहराने के लिए अपने व्यवहार में शामिल कर लेता है। इस प्रकार सीखने को मॉडलिंग (Modeling) कहते हैं।

इस प्रकार प्रेक्षण (Observation) द्वारा सीखना सामाजिक सीखने के सिद्धान्त का आधार है। इस सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट किया गया है कि जो भी हम सीखते हैं वह दूसरों को देखने सुनने के पश्चात् अनुकरण द्वारा अर्जित करके सीखते हैं। बच्चा अपनी शुरू की अवस्थाओं से ही दूसरों के व्यवहार का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हैं। जिसके व्यवहार का बालक ज्यादातर निरीक्षण करते हैं वे हैं–उसके माता-पिता, पड़ौसी, मित्र, अध्यापक तथा समाज के अन्य बजुर्ग सदस्य आदि। बालक उन्हीं का निरीक्षण करते हैं। उदाहरण ार्थ–अधिकतर किशोर एवं युवा फिल्मों आदि में जो कुछ देखते हैं उन्हीं का अनुकरण अपने जीवन में करते हैं। प्रेक्षण द्वारा सीखने में व्यक्ति को स्व अनुभवों एवं प्रत्यक्ष अनुभवों की तुलना में अधिक अवसर मिलते हैं।

सामाजिक सीखने की प्रक्रिया में पद
(Steps in Social Learning Process)

इस सीखने की प्रक्रिया में सामान्यतः निम्न पदों का अनुसरण किया जाता है–

1. व्यवहार पर ध्यान देना और समझना (Attending to and Perceiving the Behaviour) –इस पद के अन्तर्गत अपने मॉडल के व्यवहार का निरीक्षण शामिल है। सीखने वाले को किसी मॉडल के व्यवहार का निरीक्षण कराया जाता है। इसी पद में सीखने वाले का ध्यान या तो मॉडल के सम्पूर्ण व्यवहार याउसके व्यवहार के किसी विशेष पहलू की ओर आकर्षित किया जाता है। सीखने वाला धीरे-धीरे इसी व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करने लगता है।

2. व्यवहार को याद करना (Remembering the Behaviour)–इस पद पर सीखने वाले ने जो कुछ भी निरीक्षण द्वारा देखा या समझा है इसे वह अपनी स्मृति में मानसिक प्रतिमानों (Mental Images) के रूप में अंकित कर लेता है।

Scanned with OKEN Scanner

3. स्मृति को क्रिया में लाना (Converting the Memory into Action)—इसके अन्तर्गत सीखने वाला पर्यावरण में वैसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर अथवा स्वयं की आवश्यकता के लिए माँग होने पर स्मृति में अंकित उस व्यवहार का अनुकरण करता है।

4. व्यवहार के बाद पुनर्बलन (Reinforcement of the Imitated Behaviour)—इस पद के अन्तर्गत अनुकरण किये गये व्यवहार (Imitated Behaviour) को सकारात्मक पुनर्बलन प्रदान किया जाता है ताकि सीखने वाला मॉडल के व्यवहार को भविष्य में भी अपने व्यवहार द्वारा प्रदर्शित कर सके।

उदाहरण—बी.एड. प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत हर विषय अध्यापक अपने विषय की पाठ-योजना बनाता है तथा आदर्श के रूप में बी.एड. के छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। छात्राध्यापक अपने अध्यापक की प्रत्येक क्रिया एवं व्यवहार का निरीक्षण करते हैं। निरीक्षण के पश्चात् वे अध्यापक की प्रत्येक क्रिया तथा प्रश्न पूछने का तरीका, सहायक शिक्षण सामग्री को प्रदर्शित करने की विधि, छात्रों को सक्रिय रखने की क्रिया और विषय-वस्तु की व्याख्या करने की विधि आदि को अपनी स्मृति में शामिल कर लेते हैं। फिर जब वे स्वयं पाठ पढ़ाते हैं तो वे उन सभी क्रियाओं को वैसे ही दोहराने का प्रयास करते हैं तथा आगे के पाठों में भी उन्हें दोहराने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार मॉडलिंग प्रक्रिया द्वारा सीखने की विधि सीखने के लिए एवं व्यवहार में अच्छी आदतों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होती हैं और व्यक्ति अथवा छात्र के प्रत्येक व्यवहार और क्रिया को अनुकरण द्वारा वंछित दिशा प्रदान की जा सकती है।

सामाजिक अधिगम या सीखने के सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Social Learning Theory)—

(i) व्यक्ति अपने जीवन में अधिकांश व्यवहार उस सिद्धान्त द्वारा निर्देशित विधि द्वारा ही सीखता है।

(ii) सामाजिक अधिगम की सम्पूर्ण प्रक्रिया में निरीक्षण, स्मृति पटल पर अंकन, अनुकरण एवं पुनर्बलन की प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं।

(iii) यह सिद्धान्त उद्दीपन-अनुक्रिया के मध्य संज्ञानात्मक आन्तरिक चरों की उपस्थिति (Presence of Internal Cognitive Variables) को मान्यता देता है।

(iv) यह सिद्धान्त व्यक्ति के व्यवहार का अनुकरण कर सीखने पर बल देता है।

(v) इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने वाला उन व्यवहारों को ही सीखता है जिन पर उसका ध्यान जाता है और जिनसे वह प्रभावित होता है।

सामाजिक अधिगम या सीखने के सिद्धान्त की कमियाँ या त्रुटियाँ (Demerits of Social Learning Theory)—

(i) इस सिद्धान्त में सबसे बड़ी कमी या दोष यही है कि सिखने के लिए आदर्श मॉडल को उपस्थित करना बहुत ही कठिन कार्य होता है।

(ii) व्यक्ति के सभी व्यवहार अनुकरण द्वारा नहीं सीखे जा सकते।

(iii) यह सुनिश्चित् करना कठिन होता है कि आदर्श मॉडल वास्तव में ही आदर्श हैं भी या नहीं।

सामाजिक अधिगम या सीखने के सिद्धान्त का शिक्षा में प्रयोग (Educational Implications of Social Learning Theory)—

(i) स्कूलों में अनुकरणीय पाठ्य सहगामी क्रियाओं (Co-curricular Activities) का आयोजन करना चाहिए।

(ii) इस सिद्धान्त के अनुसार अध्यापकों को छात्रों के सफलतापूर्वक निरीक्षण के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(iii) यह सिद्धान्त पर्यावरण में उपलब्ध व्यक्ति, क्रिया अथवा घटना आदि का अनुकरण कर सीखने पर बल देता है। अतः स्कूलों में ऐसा पर्यावरण उत्पन्न करना चाहिए कि बालक उन्हें देख कर सीख सकें।

Scanned with OKEN Scanner

(iv) प्रधानाचार्य एवं अध्यापकों को स्वयं को एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए ताकि छात्र उनका अनुकरण कर अच्छे व्यवहार को सीख सकें।

(v) अध्यापकों को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि बच्चे टेलीविजन पर कौन से कार्यक्रम देखते हैं। उन्हें अनुकरणीय कार्यक्रम देखने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(vi) विद्यार्थियों के लाभ के लिए अध्यापकों को कभी-कभी ऐसा बनावटी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न करनी चाहिएं जो अनुकरण द्वारा सीखने में सहायक हों।

◆◆◆

3. हल के पुनर्बलन सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन कीजिए।
(Describe in detail Hull's Theory of Learning.)

अथवा

हल के व्यवस्थित व्यवहार के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए तथा इसके शैक्षिक महत्त्व का उल्लेख कीजिए।
(Explain the Hull's systematic behaviour theory and its educational implication.)

अथवा

हल के पुनर्बलन सिद्धान्त के बारे में आप क्या जानते हैं? विस्तारपूर्वक बताएं।
(What do you understand by Hull's theory of reinforcement? Explain in detail.)

उत्तर–हल एक ऐसे प्रमुख व्यवहारवादी थे जिन्होंने पैवलव तथा थार्नडाइक द्वारा किए गए कार्यों तथा उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से प्रभावित होकर उन्हीं के अनुसार सीखने या अधिगम के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। हल के अनुसार, पैवलव, थार्नडाइक का गुभरी द्वारा बनाए गए सिद्धान्त सीखने या अधिगम की वस्तुनिष्ठ तथा पूरी तरह से व्याख्या करने में सक्षम नहीं है। हल परिणाम तथा प्रतिस्थापन *(Substitution)* से सम्बन्धित सिद्धान्तों को पूर्ण सिद्धान्त के रूप में रखने का प्रयास अपने इस पुनर्बलन के सिद्धान्त में किया है। हल के इस सिद्धान्त का मुख्य तत्त्व किसी आवश्यकता को दूर करना है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि यदि हमें किसी स्थिति में कोई आवश्यकता महसूस होती है जिसको हम दूर करना चाहते हैं, तो जो कुछ भी उस क्षण से पहले अनुभव कर रहे हैं, वह सब हमारी प्रतिक्रियाओं का प्रत्युत्तरों से सम्बन्धित हो जाता है।

'हल' के सिद्धान्त का मानना है कि जब आवश्यकता में कमी अर्थात् उसकी सन्तुष्टि हो जाती है तो *S–R* का सम्बन्ध, जो कमी के कारण स्थिर होते हैं, शक्तिशाली या प्रबल हो जाते हैं।

हल ने सीखने की प्रक्रिया और प्रवृत्ति को अत्यधिक व्यवस्थित रूप से समझने और परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। हल के सिद्धान्त को हम थार्नडाइक द्वारा निर्मित *S – R Bond* सिद्धान्त का संशोधित रूप भी कह सकते हैं। उन्होंने थार्नडाइक के *S–R* सूत्र को संशोधित करके इसको *S–O–R* सूत्र बना दिया। इसमें *S = Stimulus* (उद्दीपक), *O = Organism* (प्राणी) तथा *R = Response* (प्रतिक्रियाएँ या प्रत्युत्तर)। हल का यह मानना था कि भिन्न-भिन्न प्राणी भिन्न-भिन्न उद्दीपकों के भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया में व्यक्त करते हैं जबकि थार्नडाइक के *S–R* सूत्र यह दर्शाता है कि एक उद्दीपक के प्रति प्राणी को एक जैसी प्रतिक्रिया ही होती है। यह गलत है।

हल का मानना है कि उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया के अनुकूलन को ही हम अधिगम या सीखना कह सकते हैं तथा इस प्रकार का अनुकूलन काल समीपता *(Close Proximity in Time)* तथा पुनर्बलन *(Reinforcement)* के कारण ही सम्भव है तथा उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया में अनुकूलन स्थापित करने के लिए काल-समीपता आवश्यक होती है। हल के अनुसार पुनर्बलन उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा किसी भी चालक *(Drive)* की सन्तुष्टि होती है। इसी कारण से हल के इस सिद्धान्त को चालक-न्यूनीकरण सिद्धान्त

Scanned with OKEN Scanner

(Drive Reduction Theory) के नाम से भी जाना जाता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि चालक *(Drive)* के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता का होना आवश्यक होता है। आवश्यकता के कारण ही चालक की उत्पत्ति होती है तथा कोई भी प्राणी उद्दीपक तथा प्रतिक्रिया में अनुकूलन के आधार पर ही आवश्यकता की सन्तुष्टि करता है। इसी कारण से हल के इस सिद्धान्त को आवश्यकता-न्यूनीकरण का सिद्धान्त *(Need Reduction Theory)* के नाम से भी पुकारा जाता है।

हल के अनुसार जब प्राणी या जीव की कोई आवश्यकता होती है तो उससे उसे तनाव या कष्ट की अनुभूति होती है जिसके फलस्वरूप वह आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की कोशिश करता है। इसके लिए वह चालकों *(Drives)* के द्वारा क्रियाएँ *(Actions)* करता है तथा इन्हीं क्रियाओं को प्रतिक्रिया में प्रत्युत्तर *(Response)* कहते हैं। यहाँ पर आवश्यकता की तीव्रता-पुनर्बलन *(Reinforcement)* का कार्य करती है तथा यह पुनर्बलन प्राणी की क्रियाओं में गतिशीलता लाता है जिसके परिणामस्वरूप चालक-उद्दीपक *(Stimulus Drive* या *SD)* की उत्पत्ति या जन्म होता है। इस *SD* के नवीन प्रत्यय को हल ने पहली बार प्रस्तुत किया।

इसके अतिरिक्त हल ने अधिगम से सम्बन्धित कई नियम तथा उप-धारणाओं *(Postulates)* का निर्माण किया। इसमें वह मध्यवर्ती चरों *(Interesening Variables)* को भी समझाने का प्रयत्न करते हैं।

हल के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएं
(Main Assumption of Hull's Theory)

हल के सिद्धान्त से सम्बन्धित मुख्य धारणाएँ में निम्नलिखित प्रकार से हैं–

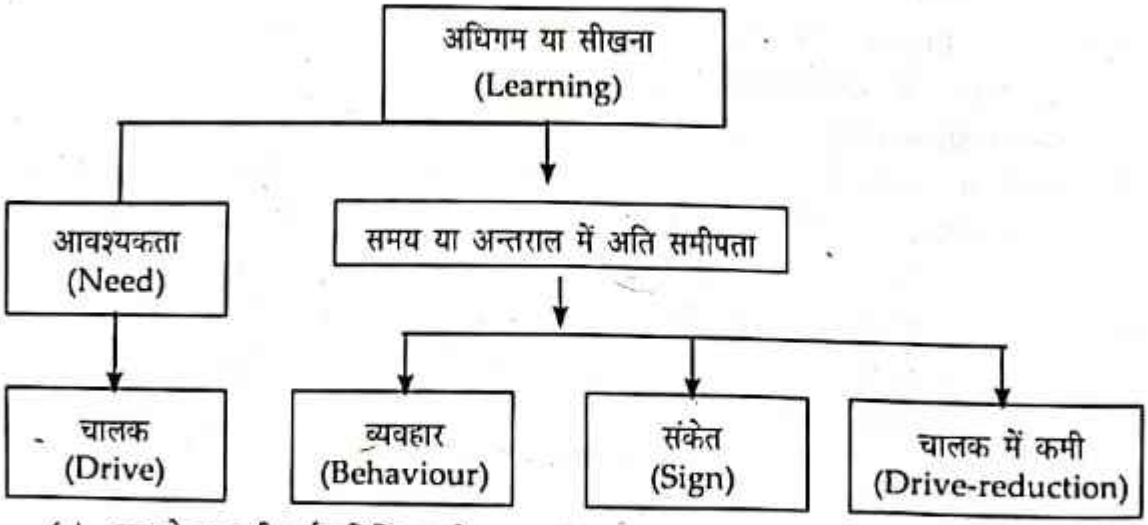
(i) आवश्यकता का अभाव या कमी अधिकता *S–R* के बीच सम्बन्धों को पुनर्बलित करती है।

(ii) इस सिद्धान्त की दूसरी धारणा यह है कि पुनर्बलन *(Reinforcement)* चालक-उद्दीपक *(Stimulus Drive)* पर आधारित होता है। हल का यह भी मानना है कि पुनर्बलन लक्ष्य-उद्दीपक *(Goal Stimulus)* के उत्पन्न या घटित होने पर निर्भर करता है।

(iii) हल का मानना है कि पुनर्बलनों आदतों के निर्माण के लिए एक आवश्यकता है। इस मान्यता के अनुसार–किसी भी *S–R* सम्बन्ध को दृढ़ या मजबूत बनाने के लिए अथवा कोई नया *S–R* सम्बन्ध बनाने के लिए निम्न प्रकार की प्रक्रियाओं का होना जरूरी है।

(a) *S* तथा *R* के बीच समय की अति समीपता *(Close Proximity in Time)*

(b) पुनर्बलन के माध्यम से आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस धारणा को हम नीचे दिए गए चित्र के अनुसार व्यक्त कर सकते हैं–



(c) हल के द्वारा दी गई प्रतिक्रिया की क्षमता *(Reaction Potential)* की धारणा की व्याख्या निम्न सूत्र के आधार पर की गई है–

$$SE_r = D \times V \times K \times S \times t_r$$

Scanned with OKEN Scanner

यहाँ पर SE_r = प्रतिक्रिया की क्षमता *(Reaction Potentically)*
D = चालक *(Drive)*
V = उद्दीपक तीव्रता गत्यात्मकता *(Stimulus Intensity Dynamics)*
K = प्रोत्साहन अभिप्रेरणा *(Incentive Motivation)*
Sh_r = आदत-शक्ति *(Habit-Strength)*

यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि आदत-शक्ति *(Habit-Strength)* प्रतिक्रिया क्षमता सदैव स्थिर नहीं रहती है। यह बदलती रहती है अर्थात् प्रतिक्रिया में परिवर्तन होने के कारण ही अनुक्रिया *(Response)* में परिवर्तन होता है तथा यदि प्रतिक्रिया को पुनर्बलित नहीं किया जाता तो उसमें अवरोध या बाधा उत्पन्न होती हैं। जो कि आदत-निर्माण में बाधा पहुंचाती है।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है हल ने अपने सिद्धान्त को वैज्ञानिक बनाने के लिए 'हल' ने अत्यधिक प्रयत्न किया है। उन्होंने वातावरण के प्राणी या जीव पर पड़ने वाले प्रभाव को निवेश अर्थात् *'Input'* तथा उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रियाओं को 'निर्गत' या *'Output'* का नाम दिया। हल का मानना है कि 'निवेश' तथा 'निर्गत' दोनों का प्रयोगात्मक रूप में मापन सम्भव है।

हल के सिद्धान्त का शैक्षिक महत्त्व या उपयोग
(Educational Implications of Hull's Theory)

हल के सिद्धान्त का शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्व या उपयोगिता **निम्न प्रकार** से हैं–

1. यह सिद्धान्त आदत-निर्माण के सम्बन्ध में विस्तृत एवं व्यापक व्याख्या प्रस्तुत करता है।
2. यह सिद्धान्त पुरस्कार एवं दण्ड के महत्त्व को स्पष्ट करता है।
3. यह पुनर्बलन के प्रयोग पर जोर देने के साथ-साथ उनके प्रयोगों की विधि के सम्बन्ध में भी विवेचना करता है।
4. इस सिद्धान्त की सहायता से आवश्यकता-न्यूनीकरण, शिक्षा के उद्देश्यों को बच्चों की आवश्यकताओं से जोड़ने, पाठ्यक्रम का निर्धारण करने तथा लक्ष्य निर्धारण आदि में पर्याप्त सहायता मिलती है।
5. यह सीखने या अधिगम के सम्बन्ध को आवश्यकताओं के साथ भली-भांति जोड़ता है। जिसके कारण अभिप्रेरणा का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है।
6. यह सिद्धान्त बच्चों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि को प्राथमिकता देती है।

◆◆◆

4. लेविन के अधिगम के क्षेत्रीय सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
(Describe the Newin's field theory of learning.)

उत्तर–लेविन का अधिगम का क्षेत्रीय-सिद्धान्त (Lewin's Field Theory of Learning)–इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कुर्ट-लेविन ने किया था। इस सिद्धान्त का मानना है कि जिस स्थिति का हम अनुभव करते हैं, वह सदैव संगठित या संरचित *(Structured)* होती है तथा यह संरचना उन अवयवों से अधिक स्थायी या स्थिर होती है जिन पर कि वह स्थिति आधारित होती है। उस संगठन के अन्तर्गत कोई एक तत्त्व ऐसा होता है जो उस पूर्ण या समस्त स्थिति को अपने प्रभाव में रखता है। अतः जब हम उस स्थिति का अनुभव करते हैं, तो यह संगठन या संरचना हमारे अनुभवों के अन्तर्गत सम्मिलित हो जाती है तत्पश्चात् हमारा ध्यान विवरण की ओर जाता है। यह संरचना हमारे अनुभवों में उस स्थिति में स्थायी रूप से बनी रहती है जबकि विवरण में परिवर्तन होता रहता है अर्थात् कहा जा सकता है कि सीखना सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण या प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना ही होता है। सीखने की प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी समस्या को हल करने की विधि को संरचना के रूप में देखा जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

लेविन का अधिगम का क्षेत्रीय सिद्धान्त अनुभव की अपेक्षा व्यवहार को अधिक महत्त्व देता है तथा प्रेरणाओं आदि का प्रयोग अधिक करता है। इस सिद्धान्त से सम्बन्धित मुख्य तत्त्व भर्त्सना *(Threat)*, लक्ष्य *(Goal)* तथा अवरोधक *(Barriess)* है। लेविन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम अवरोधक को पार करना होता है तथा ये अवरोधक भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। लेविन का मानना है कि सीखने या अधिगम की क्रिया को समझने के लिए हमें केवल यह समझना आवश्यक होता है कि जीवन-स्थल *(Life-Space)* का नव-संगठन किस प्रकार से होता है तथा हमारे मनोवैज्ञानिक की संरचना किस तरह से होती है। हमारे अनुभवों या जीवन-स्थल *(Life-Space)* की संरचना में बदलाव होने से ही सीखने या अधिगम की प्रक्रिया सम्भव होती है।

इसके अतिरिक्त लेविन के अधिगम के क्षेत्रीय सिद्धान्त का मानना है कि सीखना या अधिगम एक प्रकार की सापेक्षिक प्रक्रिया *(Relative Position)* है तथा इस प्रक्रिया के माध्यम से ही अधिगमकर्ता या सीखने वाला अपनी नई तथा पुरानी सूझ या अन्तर्दृष्टि *(Insight)* में परिवर्तन लाता है। यह सिद्धान्त व्यक्ति के जीवन क्षेत्र के संज्ञानात्मक संरचना *(Cognitve Structure)* में परिवर्तन के परिणामस्वरूप विकसित होने वाली अन्तर्दृष्टि या सूझ *(Insight)* को ही अधिगम या सीखना मानता है।

लेविन के इस सिद्धान्त का परिचय हमें लेविन की दो पुस्तकों के माध्यम से मिलता है। इन दो पुस्तकों के अन्तर्गत लेविन के स्थान *(Topology)* तथा सदिश *(Vector)* पर किए गए विभिन्न प्रयोगों की विशुद्ध व्याख्या शामिल है। इसी कारण से लेविन के इस सिद्धान्त को *'Topological and Vector Theory'* के नाम से भी जाना जाता है।

लेविन के सिद्धान्त से सम्बन्धित संप्रत्यय (Concept Related to Lewin's Theory)—लेविन ने अपने सिद्धान्त के अन्तर्गत निम्नलिखित मुख्य संप्रत्ययों को प्रस्तुत किया है—

1. स्थान या संस्थिति (Topology)—इस प्रत्यय का सम्बन्ध ज्यामिति से होता है तथा इसके अन्तर्गत ज्यामितिक-संरचनाओं *(Geometrical Structures)* के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। अन्य शब्दों में स्थान या संस्थिति ज्यामिति के उस भाग को कहते हैं जो कि उन तत्त्वों की खोज या पता लगाता है जो निरन्तर परिवर्तन के समय भी अपरिवर्तनशील रहते हैं। मनोविज्ञान के अन्तर्गत संस्थितिक प्रत्ययों को जीवन के क्षेत्र से सम्बन्धित संरचनाओं का प्रतिनिधित्व करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

2. सदिश (Vector)—लेविन द्वारा सदिश शब्द को यांत्रिक विज्ञान *(Mechanice)* तथा गणित विषयों से लिया गया है। सदिश से अभिप्राय उस गति से होता है जो कि व्यक्ति को अपेक्षित दिशा की ओर ले जाती है। सदिश के अन्तर्गत 'परिणाम तथा दिशा' दोनों ही सम्मिलित होते हैं। सदिश बल *(Force)* का प्रतिनिधित्व करता है। यह किसी उद्देश्य या उसकी विपरीत दिशा में गतिशील होता है। जब व्यक्ति एक दिशा की ओर बढ़ता है तो सदिश को अनेक प्रकार के अवरोधों का सामना करना पड़ता है। यदि सदिश कमजोर होता है तो ऐसी स्थिति में अवरोध दूर नहीं होते तथा व्यक्ति के नैराश्य *(Frustration)* की उत्पत्ति हो जाती है। सदिश के कारण ही व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है।

3. अवरोधक (Barrier)—यह गति को अवरुद्ध करता है। लेविन का मानना है कि अवरोधक वातावरण का गत्यात्मक अंग होता है। यह किसी भी व्यक्ति के उद्देश्य या लक्ष्य तक पहुंचने के मार्ग में बाधा पहुंचाता है। अवरोधक सदिश के कारण दूर होते हैं। यदि सदिश कमजोर है तो सदिश दूर नहीं होते। लेविन के अनुसार अवरोधक दो प्रकार के होते हैं।

1. पारगम्य 2. अपारगम्य

पारगम्य अवरोधक प्राणी या व्यक्ति की गति को रोकने में पूर्णतः सफल नहीं होते जबकि अपारगम्य अवरोधकों को पार करना प्राणी या व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता है।

4. कर्षण (Valence)—विभेदीकरण के नियम के अनुसार व्यक्ति वातावरण में रहकर वातावरण में पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुओं में विभेद या अन्तर करना सीखता है। इन विभिन्न वस्तुओं में से वह कुछ वस्तुओं को पसन्द तथा कुछ को नापसन्द करता है। वह जिन वस्तुओं को पसन्द करता है, उनके प्रति

Scanned with OKEN Scanner

वह आकर्षित होता है। ऐसी वस्तुएँ जिनकी ओर आकर्षित होता है वे वस्तुएँ उस व्यक्ति के लिए धनात्मक कर्षण *(Positive Valence)* शक्ति रखती है तथा व्यक्ति या जीव जिन वस्तुओं को पसन्द नहीं करता है तो ऐसी वस्तु में उस व्यक्ति या जीव के लिए ऋणात्मक कर्षण *(Negative Valence)* शक्ति रखती है।

5. जीवन-क्षेत्र (Life Space)—जीवन क्षेत्र से अभिप्राय होता है—विभिन्न प्रकार के बलों या शक्तियों *(Forces)* का वह क्षेत्र जिसमें रहकर व्यक्ति क्रिया या प्रतिक्रिया *(Response)* करता है। इसके साथ-साथ क्षेत्र के अन्तर्गत उन सभी बातों को भी शामिल किया जाता है जो वातावरण में विद्यमान होती है। जीवन क्षेत्र एक मनोवैज्ञानिक क्षेत्र है। जिसमें ऐसे तथ्यों की योग्यता *(Totality)* शामिल है जो विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का निर्धारण करती है। अतः व्यक्ति का अध्ययन इसी क्षेत्र के अन्तर्गत करना चाहिए। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के मानव-व्यवहारों के अध्ययन के लिए भी जीवन क्षेत्र का अध्ययन अत्यावश्यक है।

6. व्यवहार (Behaviour)—लेविन का मानना है कि व्यवहार *(Behaviour)* वर्तमान जीवन क्षेत्र *(Life Space)* का परिणाम है। लेविन ने इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि व्यवहार वर्तमान जीवन क्षेत्र पर आधारित है न कि भूत या भविष्य के जीवन क्षेत्र पर। लेविन ने इसे **निम्न सूत्र के रूप में** व्यक्ति किया है—

$$B = F(P \times E)$$

इस सूत्र के अनुसार

B = व्यवहार
F = का परिणाम *(The Functional of)*
P = मनोवैज्ञानिक व्यक्ति *(Psychological Person)*
E = मनोवैज्ञानिक वातावरण *(Psychological Environment)*

7. द्वंद्व या संघर्ष (Conflict)—लेविन के अनुसार व्यक्ति के जीवन मे कई क्षेत्र ऐसे होते हैं जिनमें कि एक ही समय में विभिन्न प्रकार के कर्षण *(Valence)* सक्रिय रहते हैं। यह क्षेत्र ही जीवन क्षेत्र कहलाते हैं। मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार के उपक्षेत्र होते हैं तथा इन उपेक्षेत्रों की अपनी-अपनी कर्षण शक्ति होती है। जब कभी व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित इन दो या अधिक उपक्षेत्रों में एक ही समय में समान कर्षण-शक्ति *(Valence Power)* उत्पन्न हो जाती है तो व्यक्ति में द्वंद्व या संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

8. विभेदीकरण या विभिन्नता (Differantiation)—आयु बढ़ने के साथ-साथ बच्चे में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में अन्तर करने की क्षमता आ जाती है तथा इसी को विभेदीकरण कहा जाता है। हताशा से प्रतिगमन होता है तथा प्रतिगमन से बच्चे के विभेदीकरण को ठेस पहुंचती है। प्रतिगमन के दौरान मानव के विभेदीकरण की क्षमता या योग्यता काफी कम हो जाती है।

9. गति (Locomotion)—लेविन ने अपने सिद्धान्त में गति को भी काफी महत्त्व प्रदान किया गया है। लेविन का मानना है कि व्यक्ति तथा वातावरण के बीच सन्तुलन होना जरूरी है तथा जब यह सन्तुलन की स्थिति बिगड़ जाती है तो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो जाता है तथा तनाव के कारण गति उत्पन्न होती है और गति का मुख्य उद्देश्य इस तनाव से मुक्ति प्राप्त करना होता है। गति करने के कारण ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है तथा फिर दोबारा या पुनः सन्तुलन स्थापित हो जाता है। अतः कहा जा सकता है कि गति एक प्रकार की निर्देशित प्रत्रिका होती है जिसका मुख्य उद्देश्य सन्तुलन को प्राप्त करना होता है।

लेविन के क्षेत्रवाद या क्षेत्र-सिद्धान्त का अधिगम में प्रयोग (Use of Lewin's Field Theory in Learning)—लेविन के क्षेत्रवाद या क्षेत्र-सिद्धान्त का अधिगम के क्षेत्र में प्रयोग **निम्नलिखित सन्दर्भों** में किया जाता है—

1. लेविन के सिद्धान्त के अनुसार अधिगम जीवन-क्षेत्र को विभेदित *(Differentiate)* या अन्तर करने की प्रक्रिया है यतथा यही विभेदीकरण की क्रिया मानव के जीवन क्षेत्र को छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजित करती है।
2. व्यक्ति की समस्यात्मक स्थिति जीवन क्षेत्र के अन्तर्गत असंरचित क्षेत्र *(Unstructured Field)* का प्रतिनिधित्त्व करती है और इसी के अन्तर्गत व्यक्ति अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है, परन्तु इसके संरचित हो जाने के फलस्वरूप व्यक्ति की समस्या का समाधान हो जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

3. लेविन का मानना है कि सीखने वाला व्यक्ति पुरस्कार प्राप्त करने के लिए तथा अपने उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु सबसे छोटा रास्ता अपनाता है। उदाहरण के लिए अधिक पैसा कमाने के लिए लॉटरी में पैसा लगाना आदि। दण्ड की स्थिति में व्यक्ति उस परिस्थिति का त्याग कर सकता है क्योंकि दण्ड कष्टकारी होता है।
4. लेविन के अनुसार संज्ञानात्मक संरचना *(Cognitive Structure)* में परिवर्तन या बदलाव पुनरावृत्ति *(Repitition)* के कारण ही संभव हो सकता है तथा संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन होना जरूरी भी है। किसी भी समस्या को भली-भांति व्यवस्थित करने पर व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि या सूझ *(Insight)* उत्पन्न होती है।
5. किसी भी प्रकार की क्रिया को दोहराने की प्रक्रिया हमारी संज्ञानात्मक संरचना *(Cognitive Structure)* तथा आवश्यकता के कारण उत्पन्न तनाव में परिवर्तन लाती है तथा जिसके फलस्वरूप हमारे लक्ष्य की आकर्षण शक्ति में परिवर्तन होने लगता है।
6. लेविन का मानना है कि सीखने वाले के दृष्टिकोण के आधार पर ही उसकी सफलता को आंका जा सकता है। जैसे–
   (i) व्यक्ति का लक्ष्य तक पहुंचना ही सफलता को निर्मित करना है।
   (ii) लक्ष्य के प्रति अग्रसर होना भी व्यक्ति को सफलता का अनुभव प्रदान करता है।
   (iii) व्यक्ति को या प्राणी को लक्ष्य के क्षेत्र में पहुंचने से ही सफलता का अनुभव प्राप्त होता है।
   (iv) समाज की स्वीकृति प्राप्त कर लेने से भी सफलता अनुभव होती है तथा व्यक्ति या प्राणी सफलता या विफलता अहं के प्रति लगाव तथा उसकी आकांक्षाओं के स्तर पर आधारित होती है।

लेविन के सिद्धान्त के शैक्षिक महत्त्व या उपयोगिता (Educational Implications and Utility of Lewin's Theory)–लेविन के सिद्धान्त से सम्बन्धित शैक्षिक महत्त्व या उपयोगिता में निम्नलिखित प्रकार से है–

1. लेविन ने अधिगम की सफलता के लिए लक्ष्यों के निर्धारण पर जोर दिया है उसके अनुसार लक्ष्यों की व्याख्या से अधिगम पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
2. लेविन ने अपने सिद्धान्त में अधिगम की सफलता के लिए जीवन क्षेत्र, जीवन-क्षेत्र से सम्बन्धित उपक्षेत्रों, गति, कर्षण तथा विभेदीकरण आदि के महत्त्व पर विशेष रूप से बल दिया है।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार अध्यापकों को चाहिए कि वे छात्रों के जीवन-क्षेत्र *(Life Space)*, स्वयं छात्र तथा उसके वातावरण में सम्बन्धों को समझना चाहिए।
4. लेविन ने अधिगम या सीखने के लिए बौद्धिक क्रियाओं तथा उद्देश्यों के बीच सम्बन्धों पर विशेष रूप से जोर दिया तथा जिसके कारण अधिगम या सीखने के क्षेत्र में शोध या अनुसंधान हेतु नए आयाम व क्षेत्र निर्मित हुए।
5. लेविन ने अपने इस सिद्धान्त में अनावश्यक पुनरावृत्ति *(Repitition)* का विरोध किया। अतः अध्यापकों को छात्रों के अधिगम के दौरान इस बात का ध्यान रखना चाहिए।
6. इस सिद्धान्त में लेविन ने अधिगम के लिए सर्वप्रथम प्रत्यक्षीकरण के महत्त्व को उपयुक्त स्थान दिया। अतः अध्यापकों को चाहिए कि वह विद्यार्थियों के प्रत्यक्षीकरण का विकास करने या भरसक प्रयास करें तथा जीवन-क्षेत्र *(Life Space)* को अधिक विस्तृत एवं व्यापक करें।
7. इस सिद्धान्त के अनुसार अध्यापकों को विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने का प्रयास करना चाहिए।
8. इस सिद्धान्त का मानना है कि अध्यापक विद्यार्थियों के समक्ष ऐसे उद्देश्य रखें जिन्हें वे आसानी से प्राप्त कर सकें।

◆ ◆ ◆

Scanned with OKEN Scanner

3.7 विभिन्न सैद्धान्ति परिप्रेक्ष्यों में दिखाई गई विभिन्न अधिगम परिस्थितियों में अधिगमकर्ता की भूमिका (Role of Learner in Various learning situations and seen in different theoretical perspectives)

1. विभिन्न सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों में दिखाई गई विभिन्न अधिगम परिस्थितियों में अधिगमकर्ता की भूमिका का वर्णन कीजिए।
(Describe the role of learner in various learning situations as seen in different theoretical perspectives.)

उत्तर–अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी (व्यक्ति) के व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। व्यवहार में ये परिवर्तन अनुभवों (अभ्यास) के फलस्वरूप होते हैं। ये परिवर्तन किसी भी दिशा में हो सकते हैं। व्यवहार में ये परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी (Relatively Permanent) होते हैं अर्थात् ये परिवर्तन पूर्ण रूप से स्थायी नहीं होते तथा बिल्कुल अस्थायी भी नहीं होते। इस प्रकार प्राणी अधिगम करता है तथा वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है। यही अधिगम का वास्तविक अर्थ है।

साधारण शब्दों में, प्राणी द्वारा किसी नई चीज के बारे में जान लेना या ज्ञान प्राप्त करना अधिगम है। शिशु जन्म के समय बिल्कुल असहाय होता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने माता-'पिता पर निर्भर रहता है। आयु में वृद्धि के साथ-साथ उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ विकसित होने लगती है। वातावरण में समायोजन स्थापित करने के लिए उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के प्रति वह विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है जिसके फलस्वरूप वह अनुभव (अभ्यास) अर्जित करता है। इन अनुभवों के द्वारा उसके व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं। व्यवहार में होने वाले इन परिवर्तनों को ही अधिगम कहते हैं। इस प्रकार प्राणी जीवन में अधिगम करता है तथा यह प्रक्रिया चलती रहती है।

अधिगम की प्रक्रिया जन्म से मृत्यु तक चलती रहती है। इस प्रक्रिया में अनुभवों का विशेष स्थान है। उदाहरण के लिए, एक बालक पहली बार दीपक की लौ देखता है। उत्सुकतावश वह लौ की तरफ अपना हाथ बढ़ाता है। लौ के निकट हाथ पहुँचने पर जलने का अनुभव होता है। फलस्वरूप वह लौ के पास से अपना हाथ हटा लेता है और फिर भविष्य में दीपक की लौ की तरफ अपना हाथ नहीं बढ़ाता। दीपक की लौ देखकर उत्सुकता का उत्पन्न होना और उत्सुकतावश उसे पकड़ने का प्रयास करना स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। इस स्वाभाविक प्रतिक्रिया के आधार पर शिशु को अनुभव प्राप्त होता है कि लौ पकड़ने पर हाथ जल जाता है। भविष्य में दीपक की लौ के प्रति उसकी प्रतिक्रिया पहली बार के समान नहीं होती। अब वह लौ के पास अपना हाथ पकड़ने से हाथ जल जाता है, अर्थात् अधिगम का अर्थ है–अनुभव के द्वारा व्यवहार में परिवर्तन।

प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन अनुभवों के फलस्वरूप होते हैं। यहाँ पर अनुभवों से अभिप्राय किसी कार्य या अभ्यास के भी व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिए, बुढ़ापे या बीमारी के कारण भी व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। परन्तु इसे अधिगम (सीखना) नहीं कहते। केवल अनुभव या अभ्यास के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की प्रक्रिया ही अधिगम कहलाती है।

गेट्स के विचार (Views of Gates)–"अनुभव और प्रशिक्षण से व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम है।" ("Learning is the modification of behaviour through experience and training."–A.I. Gates, 1946)

व्याख्या (Explanation)–इस परिभाषा के आधार पर यह स्पष्ट है कि अनुभव और प्रशिक्षण से प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। व्यवहार आन्तरिक व बाह्य होता है तथा परिस्थितियों के अनुसार

Scanned with OKEN Scanner

बदलता रहता है। अनुभव और प्रशिक्षण से तात्पर्य किसी कार्य में किए गए अभ्यास या परिस्थिति विशेष के अनुभवों से है। प्राणी जब भी कोई कार्य या क्रिया करता है तब वह अनुभव प्राप्त करता है। इन अनुभवों का संचय होता रहता है। इन अनुभवों के फलस्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। व्यवहार में होने वाले परिवर्तन ही अधिगम है। इससे वह वातावरण में समायोजन स्थापित करता है। इस प्रकार अनुभव और प्रशिक्षण से व्यवहार में परिवर्तन ही अधिगम है।

विभिन्न सैद्धान्ति परिप्रेक्ष्यों में दिखाई गई विभिन्न अधिगम परिस्थितियों में अधिगमकर्ता की भूमिका भी अलग-अलग होती है। थार्नडाईक ने प्रयास एवं भूल के सिद्धान्त को आधार बनाकर सीखने सम्बन्धी कई नियमों का प्रतिपादन किया।

तत्परता का नियम (Laws of Readiness)—इस नियम के अनुसार जब कोई अधिगमकर्ता के लिये तत्पर होता है तब वह बड़ी तीव्रता तथा शीघ्रता से सीखता है और परिणामस्वरूप उसे संतुष्टि अर्जित होता है। इस नियम को प्रेरणा का नियम (Law of Motivation) भी कहा जाता है। वुडवर्थ (Woodworth) ने इसे मानसिक तैयारी का नियम (Law of Mental Set) कहा है। इसके अनुसार, यदि हम सीखने के लिये तैयार नहीं होते तो हम शीघ्रता और तीव्रता से नहीं सीख सकते। अतः किसी भी कार्य को सीखने के लिये मानसिक तौर पर अधिगमकर्ता को तैयार रहना चाहिए।

प्रभाव का नियम (Laws of Readiness)—इस नियम को 'प्रसन्नता एवं दुख का नियम' (Law of Pleasure and Pain) या 'संतुष्टि एवं कष्ट का नियम' (Law of Satisfaction and Annoyance) भी कहा गया है। हर कार्य का कुछ प्रभाव अवश्य होता है। जैसे, कई कार्यों का अन्त प्रसन्नतापूर्वक होता है तथा कईयों का दुखदायक संतुष्टि अथवा प्रसन्नता से जुड़े कार्यों को बार-बार दोहराने से अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। वे कार्य जिनका सम्बन्ध कष्ट, दुख, दंड इत्यादि से होता है, नहीं दोहराये जाते तथा उनका प्रभाव या शक्ति भी दुर्बल पड़ जाती है।

थार्नडाइक के अनुसार, जब किसी परिस्थिति या अनुक्रिया के बीच एक सुधार योग्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तथा उसके साथ संतोषजनक स्थिति या अवस्था का सम्पर्क हो जाता है, तो ऐसे सम्बन्ध की शक्ति बढ़ती है, परन्तु जब उसके साथ कष्ट जुड़ा होता है तो उसकी शक्ति कम हो जाती है।

अभ्यास का नियम (Laws of Exercise)—थॉर्नडाइक के मतानुसार—सीखने में अभ्यास का नियम प्रमुख है। किसी उद्दीपक (Stimulus) के प्रति प्रतिक्रिया (Response) को बार-बार दोहराने से उद्दीपक और प्रतिक्रिया में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। पुनरावृत्ति अथवा अभ्यास से यह सम्बन्ध दृढ़ होता है और अभ्यास न करने से यह सम्बन्ध निर्बल पड़ता है। किसी क्रिया को बार-बार दोहराने से उसे सीख लिया जाता है। अभ्यास व्यक्ति को दक्ष बना देता है (Practic makes a man perfect)। क्रिया को करने में जितना अधिक अभ्यास किया जाता है, उसे उतनी ही सरलता से तथा बिना गलती के आवश्यकता पड़ने पर किया जा सकता है। यही अभ्यास का नियम है।

थार्नडाइक (Thorndike) के अनुसार, अभ्यास के नियम के अन्तर्गत दो उप-नियम हैं—

(a) उपयोग का नियम (Law of Use)

(b) अनुपयोग का नियम (Law of Disuse)

उपयोग के नियम के अनुसार, जब कोई प्रतिक्रिया किसी परिस्थिति में बार-बार घटित होती है तो प्रतिक्रिया और परिस्थिति में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अनुपयोग के नियम के अनुसार, जब प्राणी किसी परिस्थिति-विशेष के प्रति एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करता तो उत्तेजना और प्रतिक्रिया का सम्बन्ध कमजोर हो जाता है।

प्रयास व भूल सिद्धान्त के अनुसार, जब किसी प्राणी को नई परिस्थिति में रखा जाता है तो वह बिना सोचे-समझे तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ करता है। उसकी यह प्रतिक्रियाएँ दोषपूर्ण होती हैं। जब उस प्राणी को बार-बार उन्हीं परिस्थितियों में रखा जाता है तब उसकी दोषपूर्ण प्रतिक्रियाएँ कम होती हैं। पहले प्रयास में त्रुटियाँ अधिक होती हैं और प्रयासों की संख्या बढ़ने पर त्रुटियाँ कम होती जाती हैं। कई प्रयासों के बाद एक

Scanned with OKEN Scanner

ऐसी अवस्था आती है जब प्राणी त्रुटियाँ नहीं करता और उन परिस्थितियों में वह केवल उचित प्रतिक्रियाएँ ही करता है। यदि प्रयासों की त्रुटियों का मध्यमान निकाला जाए तो यह मध्यमान धीरे-धीरे घटता जाता है। इस प्रकार प्राणी प्रयास व भूल द्वारा सीखता है।

प्राणी के सामने जब कोई उद्दीपक प्रस्तुत होता है तो वह उसके प्रतिक्रिया अवश्य करता है। सरल शब्दों में जब प्राणी के सामने एक परिस्थिति या उद्दीपक प्रस्तुत होता है तब वह उद्दीपक के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है। उनमें से कुछ प्रतिक्रियाएँ दोषपूर्ण होती हैं। कई प्रयासों के बाद दोषपूर्ण प्रतिक्रियाएँ कम हो जाती है और उद्दीपक (Stimulus) व प्रतिक्रिया (Response) के बीच सम्बन्ध थापित हो जाता है, जिसे उद्दीपक-प्रतिक्रिया सम्बन्ध कहते हैं, यही सम्बन्धवाद है। इस सम्बन्ध के फलस्वरूप प्राणी भविष्य में उद्दीपक के प्रति ऐसी ही प्रतिक्रिया करता है। थॉर्नडाइक ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया कि **"सीखना सम्बन्ध स्थापित करना है।"** अधिगमकर्ता प्रयास व भूल द्वारा सम्बन्ध स्थापित करता है। यह सम्बन्ध अनेक प्रकार का हो सकता है तथा सीखने की प्रक्रिया में शारीरिक क्रियाओं का विशेष योगदान होता है।

अनुबन्धन सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य के अधिगमकर्ता की भूमिका–अनुबन्धन का सिद्धान्त व्यवहारवाद की देन है। व्यवहारवादियों ने बताया कि जिस व्यक्ति प्रकार का व्यवहार सीखना हो, उसी प्रकार का उद्दीपन उस व्यक्ति को दिया जाता है। बार-बार दिया जाने वाला उद्दीपन उन अनुक्रिया को उत्पन्न करता है। अनुक्रिया के रूप में होने वाला यह व्यवहार उस उद्दीपन से या उससे सम्बद्ध अन्य कारक से अनुबन्धित हो जाता है।

अनुबन्धन दो प्रकार का होता है–

1. प्राचीन अनुबन्धन
2. सक्रीय अनुबन्धन

प्राचीन अनुबन्धन वह प्रविधि है जिसका प्राकृतिक रूप से उपलब्ध उद्दीपनों को किसी अनुक्रिया के साथ जोड़ा जाता है। इसके बाद पहले से उपलब्ध तटस्थ उद्दीपन को प्राकृतिक रूप से उपलब्ध उद्दीपन के साथ जोड़ा जाता है।

व्यवहारवादियों के अनुसार–

1. जिस प्रकार का व्यवहार सीखना हो, उसी प्रकार का उद्दीपन उस अधिगमकर्ता को दिया जाता है।
2. बार-बार दिया जाने वाला उद्दीपन उस क्रिया को उत्पन्न करता है।

सक्रीय अनुबन्धन की मूल धारणा यह है कि अधिगमकर्ता की क्रिया या व्यवहार का पुनर्बलन हो जाता है। सक्रीय अनुबन्धन वह प्रक्रिया है जिसमें अधिगमकर्ता मुक्त अनुक्रिया परिस्थिति से रहकर किसी व्यवहार को सीखता है। अतः सक्रीय अनुबन्धन सीखने की वह प्रक्रिया है जिसमें अनुक्रिया निरन्तर होती है।

स्किनर ने पुनर्बलन (Reinforcement) को अधिक महत्व दिया। पुनर्बलन (पुरस्कार) की सहायता से व्यवहार को वाँछित दिशा में प्रेरित किया जा सकता है अर्थात् प्रतिक्रियाओं द्वारा व्यवहार में परिवर्तन किया जा सकता है। प्रतिक्रिया को पुनर्बलन की सहायता से मजबूत किया जा सकता हे। पुनर्बलन (पुरस्कार) का प्रभाव प्रतिक्रिया की सम्भावना का बढ़ा देता है। पुनर्बलन की सहायता से प्राणी के व्यवहार को एक विशेष दिशा में परिवर्तित किया जा सकता है। यदि किसी प्रतिक्रिया के बाद कोई बल प्रदान करने वाली उत्तेजना प्राप्त होती है तो उसकी शक्ति में वृद्धि होती है। इस सिद्धान्त की सहायता से बहुत छोटे बालकों को भी सरलता से सिखाया जा सकता है। क्रियाप्रसूत अनुबन्धन में प्राणी को यह अवसर प्रदान किया जाता है कि वह सक्रियता की भूमिका अदा करे। इस प्रकार क्रियाप्रसूत अनुबन्धन अधिगम की वह प्रक्रिया हे जिसमें अधिगमकर्ता को पुनर्बलन प्राप्त करने के लिए कोई क्रिया अवश्य करनी पड़ती है। बिना क्रिया किए हुए पुनर्बलन प्राप्त नहीं किया जा सकता तथा पुनर्बलन के कारण ही अधिगम होता है।

Scanned with OKEN Scanner

संज्ञानात्मक परिप्रेक्ष्य में अधिगमकर्ता की भूमिका

अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त तथा टालमैन का चिह्न अधिगम सिद्धान्त सीखने के ज्ञानात्मक सिद्धान्तों के अत्यन्त विकसित सिद्धान्त है।

गेस्टाल्ट का अर्थ एक आकृति की पूर्णता या समग्रता के रूप में लिया जा सकता है। गेस्टाल्टवादियों ने स्पष्ट किया कि प्राणी का व्यवहार पूर्णता से निर्देशित होता है। सम्पूर्ण अपने हिस्सों से बड़ा होता है। प्राणी किसी वस्तु का पूर्ण रूप से प्रत्यक्षीकरण करता है, न कि भागों में। अधिगमकर्ता वस्तु का पूर्ण रूप से प्रत्यक्षीकरण करके वह अधिगम करता है। पूर्ण (Whole) में ही वस्तु का वास्तविक रूप है। अधिगमकर्ता किसी वस्तु को आंशिक रूप से नहीं, अपितु पूर्ण रूप से सीखता है। वह वस्तु को एक इकाई के रूप में देखता है और उसके सम्पूर्ण रूप को देखकर बाद में उसके विभिन्न भागों पर दृष्टि डालता है। (The whole is greater than parts and perceive the total situation.)

कोहलर (Wolfgang Kohle) ने अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। **कोहलर** ने थॉर्नडाइक के प्रयास व भूल सिद्धान्त की आलोचना की और अपने प्रयासों के निष्कर्षों के आधार पर यह सिद्ध किया कि प्राणी अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखते हैं। **कोहलर** ने बन्दरों व चिम्पैंजियों की सीखने की प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए सबसे पहले अन्तदृष्टि (Insight) शब्द का प्रयोग किया। अन्तर्दृष्टि या सूझ एक प्रकार की मानसिक योग्यता है जो उच्चकोटि के प्राणियों में होती है। इसके द्वारा किसी भी समस्या का अचानक समाधान मस्तिष्क में आ जाता है। **कोहलर** के अनुसार, **"क्षेत्र की सम्पूर्ण व्यवस्था के सन्दर्भ में समस्या के पूर्ण समाधान का प्रकट होना ही अन्तर्दृष्टि है।"** दूसरे शब्दों में, अन्तर्दृष्टि का अर्थ समस्या का अचानक समाधान है जिससे एक ऐसी प्रक्रिया शुरू होती है, जो परिस्थिति के अनुसार चलती है और समाधान प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र के स्वरूप के सन्दर्भ में होता है। **कोहलर** ने अपने प्रयोगों में देखा कि प्राणी पूर्ण रूप से समस्या का प्रत्यक्षीकरण करता है और उसका अचानक ठीक समाधान ढूँढ़ लेता है। वह सारी स्थिति को देखकर अन्तर्दृष्टि के द्वारा समस्या का ठीक समाधान करने में सफल होता है। कोहलर ने सीखने में प्रत्यक्षीकरण को विशेष महत्त्व दिया है। अन्तर्दृष्टि सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के बाद उत्पन्न होती है तथा इसके द्वारा प्राणी समस्यायुक्त परिस्थिति का अचानक ठीक समाधान ढूँढ़ लेता है।

निर्मितिवादी परिप्रेक्ष्य में अधिगमकर्ता की भूमिका

मूल रूप से निर्मितिवाद अवलोकन (Observation) और वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित एक सिद्धान्त है जिसमें यह पता लगाया जाता है कि व्यक्ति कैसे सीखते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अपनी समझ (Understanding) और विश्व सम्बन्धी ज्ञान का निर्माण वस्तुओं के अनुभवों और उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम से करते हैं। जब हम किसी नई चीज का सामना करते हैं तब हमें अपने पूर्व विचारों और अनुभवों के साथ इसका मेल (Reconcile) करना पड़ता है। चाहे हम नई सूचना को असम्बद्ध मानकर अस्वीकार कर दें या जिस पर हम विश्वास करते हों उसमें परिवर्तन कर दें। लेकिन स्थिति कोई भी हो, हम अपने ज्ञान के स्वयं ही रचयिता होते हैं। इसे करने के लिए हमें प्रश्न पूछने चाहिएं, खोज करनी चाहिए तथा जो कुछ हम जानते हैं उसका मूल्यांकन करना चाहिए।

कक्षा की परिस्थिति में अधिगम की निर्मितिक दृष्टिकोण (Constructivist View Point) विभिन्न शिक्षण अभ्यासों की ओर संकेत करता है।

सामान्य दृष्टि से, इसका अभिप्राय है विद्यार्थियों को सक्रिय तकनीकों (प्रयोगों, वास्तविक संसार, समस्या समाधान आदि) के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करना ताकि अधिक ज्ञान का सृजन किया जा सके तथा फिर अपनी बातों में जो कुछ विद्यार्थी कर रहे हैं उसके करे में तथा उनकी बिम्बित कैसे परिवर्तित हो रही है, को प्रतिबिम्बित (Reflect) करना। अध्यापक यह सुनिश्चित करता है कि उसे विद्यार्थी में पूर्व उपस्थित (Pre-existing) सम्प्रत्ययों का बोध है।

Scanned with OKEN Scanner

अवधारणाएं (Assumptions)–इस सिद्धान्त के अनुसार अधिगमकर्ता अपने ज्ञान का निर्माण अपने वातावरण के साथ अन्तर्क्रिया के आधार पर स्वयं करता है। निर्मितिवाद (Constructionism) की निम्नलिखित अवधारणाएँ हैं–

(i) ज्ञान निर्माण अधिगमकर्ता भौतिक रूप से करते हैं जो सक्रिया अधिगम (Active Learning) में संलिप्त होते हैं।

(ii) ज्ञान निर्माण अधिगमकर्त्ता संकेतात्मक रूप से करते हैं जो स्वयं क्रिया का प्रतिनधित्व करते हैं।

(iii) ज्ञान का निर्माण अधिगमकर्त्ता सामाजिक रूप से करते हैं जो अपना अर्थ दूसरों को सम्प्रेषित (Convey) करते हैं।

ब्रुनर का अन्वेषणात्मक अधिगम सिद्धान्त एक खोज आधारित निर्मितिवादी अधिगम सिद्धान्त है। जब बच्चा अपने पूराने अनुभव तथा वर्तमान ज्ञान के आधार पर तथ्यों की खोज करता है। यह अधिगम समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है।

निष्कर्ष–विभिन्न सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों में विभिन्न अधिगम परिस्थितियां हैं। इन अधिगम परिस्थितियों में अधिगमकर्ता की भूमिका भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। अधिगम के सभी सिद्धान्त उपयोगी हैं। सभी सिद्धान्त अपने-अपने तरीके से सीखने की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। थार्नडाइक के अनुसार अधिगमकर्ता प्रयास व भूल द्वारा सीखता है। पावलाव के अनुसार, अधिगमकर्ता अनुबन्धन द्वारा सीखता है। क्रिया प्रसूत अनुबन्धन के अनुसार, अधिगमकर्ता पुनर्बलन के कारण सीखता है। अन्तदृष्टि, अधिगमकर्ता पुनर्बलन के कारण सीखता है। अन्तदृष्टि सिद्धान्त के अनुसार अधिगमकर्ता अन्तदृष्टि (सूझ) के द्वारा सीखता है। निर्मितिवाद सिद्धानत कें अनुसार अधिगमकर्ता अपने ज्ञान का निर्माण अपने वातावरण के साथ अन्तर्क्रिया के आधार पर स्वयं करता है। ब्रूनर के अन्वेषणात्मक अधिगम सिद्धानत के अनुसार अधिगमकर्ता पूराने अनुभव तथा वर्तमान ज्ञान के आधार पर तथ्यों की खोज करके सीखता है। इस प्रकार सभी सिद्धान्त सीखने की व्याख्या अलग-अलग ढंग से करते हैं। सभी सिद्धान्त एक-दूसरे के विरोधी न होगर पूरक हैं तथा सीखने की प्रक्रिया के सम्पूर्ण रूप की व्याख्या करते हैं। प्रत्येक अधिगम सिद्धान्त में अधिगमकर्ता की भूमिका अलग तरह की होती है।

◆◆◆

3.8 शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में अध्यापक की भूमिका (Role of Teacher in Teaching Learning Situations)

1. शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में अध्यापक की भूमिका का वर्णन कीजिए।
(Describe the role of teacher in teaching learning situations.)

अथवा

अध्यापकों का स्कूल में क्या उत्तरदायित्व है? इनके गुणों की भी विवेचना कीजिए।
(What are the responsibilties of teachers in the school. Also discuss their merits.)

उत्तर–अध्यापक शिक्षा पद्धति का केन्द्र बिन्दु होता है। मुख्याध्यापक की सफलता उसके अध्यापकों पर कहीं हद तक निर्भर करती है। चाहे मुख्याध्यापक कितना भी विद्वान व कुशल क्यों न हो। यदि उसे योग्य शिक्षकों का सहयोग नहीं मिलता है तो वह विद्यालय को सुचारू रूप से चलाने में समर्थ नहीं हो सकता।

मानवीय साधनों में मुख्याध्यापक एवं अध्यापक दो बड़ी शक्तियाँ हैं जो किसी भी विद्यालय के लिए महत्त्वपूर्ण अंग हैं। संसाधनों का सफल प्रयोग केवल इसी आधार पर संभव हो सकता है यदि दोनों ही शक्तियाँ ईमानदारी तथा निष्ठापूर्वक अपने-अपने कार्य संभाले। यह अतिश्योक्ति नहीं होगी यदि हम कहें कि

Scanned with OKEN Scanner

मुख्याध्यापक के बाद अध्यापक विद्यालय की दूसरी बड़ी शक्ति होती है जो विद्यार्थियों के जीवन को एक सकारात्मक दिशा देकर योग्य नागरिक बनाती है। अध्यापक वास्तव में देश का महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व होता है जो इतिहास रचियता भी होता है। इस विषय में एच. जी. वैलज (H.G. Wells) का कथन है, **"इतिहास का वास्तविक निर्माता अध्यापक होता है। मनु ने अध्यापक को ब्रह्मा का रूप माना है।"** (*"The sole maker of the history in the teacher, Manu observes a teacher as the image of Brahma."*)

शिक्षा विद्यालय को गति देती है। यह बात सत्य है कि विद्यालय भवन, पाठ्यक्रम, निर्देशन कार्यक्रम, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ, पाठ्य-पुस्तकें आदि सभी वस्तुएँ शैक्षिक कार्यक्रम में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं परन्तु यदि उसमें काम करने वाले अध्यापकों का स्तर तथा चरित्र उच्च नहीं होगा तो वह विद्यालय कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। निःसन्देह वह अध्यापक ही है जो वर्तमान पीढ़ी के साथ आने वाली पीढ़ियों पर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता है। वह दुनिया को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में देखता है तो पूरे संसार को भाई चारे का पाठ पढ़ाता है। अतः हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि अध्यापक वह शक्ति है जो विद्यार्थियों के जीवन को ही नहीं अपितु देश के स्वरूप को बदल सकती है। अध्यापक की स्थिति तथा उसके कार्य को समझने के लिए भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:—

1. हुमायूँ कबीर ने अध्यापक के विषय में कहा है **"अच्छे अध्यापकों के बिना शिक्षा की सर्वोत्तम पद्धति भी सफल नहीं हो सकती। अच्छे अध्यापकों से शिक्षा पद्धति के दोषों को भी दूर किया जा सकता है।"**

(*"Without good teachers, even the best of system is bound to fail. With good teachers, even the defects of a system can be largly over-come."*)

अध्यापक का स्थान तो समाज में भगवान से भी बड़ा माना गया है। गुरु की प्रशंसा में रहीमदास, कबीरदास जैसे महान् कवियों ने अनेकों दोहे तथा छन्द लिखे हैं। कबीरदास जी ने तो गुरु की महिमा तथा पद को भगवान से भी बड़ा माना है। कबीरदास जी लिखते हैं :—

"गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े काके लागे पांय।
बलिहारी गुरु आपने गोबिन्द दियो बताए।।"
"सब धरती कागद करन, लेखनी सब बन राय।
सात समुद्र की मंसी करू, गुरु गुण लिखा न जाए।"

हमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता है जिनमें श्रेष्ठ गुण हों। उसका काम मात्र सूचनाएँ एकत्रित करना, उन्हें बाँटना ही नहीं है, उसे तो एक समाज-सुधारक का काम करना है तथा नैतिकता का प्रचार भी करना है।

अध्यापक के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए मुदालियर शिक्षा आयोग (Mudaliar Education Commission) ने कहा है कि, **"हम इस बात से पूर्णरूप से सहमत हैं कि शिक्षा के पुनर्निर्माण में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व अध्यापक है—उसके व्यक्तिगत गुण, उसकी शैक्षणिक योग्यताएँ, उसका व्यावसायिक जीवन, प्रशिक्षण तथा विद्यालय और समुदाय में उसका स्थान। विद्यालय की प्रसिद्धि तथा सामुदायिक जीवन पर उसका प्रभाव, उसमें कार्यरत अध्यापकों पर आधारित होता है।"**

(*"We are however, convinced that the most important factor in the complete educational reconstruction is the teacher—his personal qualities his educational qualities, his professional training and the place he occupies in the school as well as in the community. The reputation of a school and the influence on the life of community invariably depends upon the kind of teachers working in it."*)

इसी संदर्भ में **कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) (Kothari Education Commission 1964–66)** ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि, **"शिक्षा के गुणात्मक रूप से प्रभावित करने वाले सभी विभिन्न तत्त्वों में अध्यापक के गुण, कुशलता एवं चरित्र का महत्त्व निःसन्देह सर्वोपरि है।"**

(*"If all different factor which influence the quality of education and its contribution to material development, the quality, competence and character of teacher are undoubtedly the most significant."*)

Scanned with OKEN Scanner

हुमायूँ कबीर ने अध्यापक के विषय में एक और परिभाषा देते हुए लिखा है, "शाब्दिक अर्थ में शिक्षक राष्ट्रीय भाग्य का निर्णायक है।"

("*Teachers are literally the arbiters of a nation.*")

भारत के महानतम ऋषिवर मनु ने अध्यापक के विषय में कहा है कि, "अपनी माता के प्रति श्रद्धा द्वारा बालक विश्व को प्राप्त करता है, पिता की श्रद्धा से मध्य जगत तथा शिक्षक के प्रति श्रद्धा से ब्रह्माण्ड जगत को प्राप्त करता है।"

(*Manu, the greatest of Samiti says, "A child by devotion to his mother obtains this world, by devotion to his father the middle world, and by the devotion to his teacher, the Brahma world."*)

इस प्रकार शिक्षा का महत्त्व समाज तथा शिक्षा पद्धति दोनों से ही स्पष्ट है। वस्तुतः शिक्षक उन भावी नागरिकों का निर्माण करता है जिनके ऊपर राष्ट्र के उत्थान एवं पतन का भार है। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति इस अध्यापन कार्य को चुनता है तो यह किसी विवशता के कारण नहीं होना चाहिए। उसका यह चुनाव उसकी रुचियों, प्रवृत्तियों तथा इच्छा के अनुरूप होना चाहिए। केवल ऐसा होने पर ही वह इस व्यवसाय में कोई सार्थक कार्य कर सकता है। उसके अतिरिक्त शिक्षा विभाग को अध्यापकों के चयन के समय इस बात का अधिक ध्यान देना चाहिए कि केवल उन्हीं व्यक्तियों का इस व्यवसाय में चयन हो जो वास्तव में इसे इससे जुड़ना चाहते हैं।

आदर्श शिक्षक के गुण (Qualities of an Ideal Teacher)–आदर्श शिक्षक उसे माना जाता है जो विद्यार्थियों को तो राष्ट्र सेवा के लिए तैयार करता ही है साथ ही साथ समाज तथा देश को गति भी देता है। हमारे इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जो एक आदर्श शिक्षण के गुणों पर प्रकाश डालते हैं और जिन्होंने समाज व देश को नई दिशा दी। इस सूची में, गुरु द्रोणाचार्य, गुरु वशिष्ट, गुरु विश्वामित्र, गुरु अत्री, गुरु बृहस्पति, गुरु शुक्राचार तथा गुरु चाणक्य तथा अन्य कई गुरुओं के नाम आते हैं जिन्होंने लोक तथा परलोक दोनों को सुधारा है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अध्यापकों के लिए जो मापदंड भूतकाल में निर्धारित किए गए थे वे अब बदल चुके हैं। यह सेवा का कार्य अब व्यवसाय बन चुका है। परन्तु इतना होने पर भी हम यह नहीं कह सकते है कि आदर्श अध्यापकों का अंकाल पड़ गया है या वे गुण रहित हो गए हैं। आज भी एक लम्बी सूची ऐसे गुरुओं के नाम की है जो बच्चों के सर्वांगीण विकास में तो सहायक हैं ही साथ ही साथ देश को प्रगति के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ा रहे हैं। ऐसे शिक्षकों में बालकों को समझने की शक्ति, उचित रूप से कार्य करने की क्षमता, शिक्षण योग्यता, कार्य करने की इच्छा तथा रुचि आदि अनेकों गुण होते हैं।

शिक्षण एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें मस्तिष्क का मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह सम्बन्ध मुख्य रूप से अध्यापक के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। इस विषय पर संसार भर में अनेकों अध्ययन किए गए हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के डॉ. एफ. एल. कलैप ने 1913 में किए अपने अध्ययन के आधार पर अच्छे शिक्षक में कौन-कौन से गुण होने चाहिएं उनकी एक सूची बनाई थी। जिसके अनुसार आदर्श अध्यापक में निम्नलिखित गुण होने चाहिएं :–

(i) सम्बोधन (Addressing)
(ii) व्यक्तिक आकृतिक (Physical appearance)
(iii) आशावादिता (optimism)
(iv) संयम (Patience)
(v) उत्साह (Zeal)
(vi) मानसिक निष्पक्षता (Mental impartiality)
(vii) शुभ चिन्तन (Good thinking)
(viii) सहानुभूति (Sympathy)
(ix) जीवन शक्ति (Life force)
(x) विद्वता (scholarship)

Scanned with OKEN Scanner

एफ. एल. कर्लेप के बाद इस क्षेत्र में **कीथ तथा बागेल**, अमेरिकन विद्वानों, ने अध्ययन किए तथा कर्लेप के द्वारा निर्धारित किए गए 10 गुणों में 3 गुण और जोड़ दिए।

(i) चातुर्य (Wit)

(ii) नेतृत्व की क्षमता (Capability for leadership)

(iii) अच्छा स्तर (Good Level)

इन विद्वानों ने इन सूचियों को तैयार करते हुए विद्यालय के मुख्याध्यापकों, निरीक्षकों तथा अधीक्षकों की सहमति ली थी।

इनके पश्चात् **बौसिंग (Bossing)** ने अपने अध्ययन के दौरान बालकों की राय को भी महत्त्व दिया तथा शिक्षकों के गुणों की सूचित में दो गुण और जोड़ दिए।

(i) छात्रों के प्रति मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण (Friendly attitude towards students)

(ii) विनोदप्रियता (Humour)

रेमण्ट (Raymont) तो यहाँ तक कहते हैं कि अच्छा अध्यापक केवल वही हो सकता है जो तुच्छ तथा घटिया बातों को अपने जीवन से पूर्ण रूप से हटा दे। परन्तु ज्यादातर अध्यापकों की जिन्दगी में यह देखने को मिलता है कि उनकी कथनी तथा करनी में बड़ा अन्तर है। वे दिखावा तो करते हैं उच्च स्तरीय चरित्र तथा व्यक्तित्व का, परन्तु वास्तविक जीवन में वे तुच्छ फायदों तथा लालचों से ऊपर नहीं उठ पाते। अध्यापकों के इसी अवगुण से पीड़ित होकर महात्मा गाँधी ने कहा था कि शिक्षकों के आदर्श एवं व्यवहार में प्रायः सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता है। वे कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं।

भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा निश्चित किए गुणों को आधार बनाकर हम कह सकते हैं कि सामान्य दृष्टि से एक अध्यापक में निम्नलिखित गुण विद्यमान होने चाहिएं–

1. व्यक्तित्व संबंधी गुण (Qualities of Personality)–व्यक्तित्व के अन्तर्गत निम्नलिखित गुण आते हैं–

(क) व्यक्तित्व का बाह्य गुण (External aspect of personality)–व्यक्ति के बाह्य गुण का प्रभाव दूसरों पर पहली दृष्टि में ज्यादा पड़ता है। इसलिए उसका बाह्य व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली होना चाहिए। वे स्वास्थ्य की दृष्टि से इतने अच्छे होने चाहिए कि विद्यालय में होने वाली विभिन्न क्रियाओं में हिस्सा ले सकें। उसकी वाणी में मृदुलता तथा अधिकार का सही सम्मिश्रण होना चाहिए। उसका उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए तथा अभिव्यक्ति में उसके सन्तुलित व्यक्तित्व की झलक मिलनी चाहिए। यदि कोई अध्यापक शारीरिक रूप से कुछ कमजोर है या उसमें शारीरिक न्यूनताएँ हैं, तो वह अपनी इन कमियों को अपने बातचीत के ढंग, शिष्टाचार तथा मधुरवाणी से दूर कर सकता है।

(ख) व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष (Internal aspect of personality)–बाह्य पक्ष केवल प्रथम दृष्टि या औपचारिकताएँ निभाते वक्त काम करता है। यह व्यक्ति को पूर्णरूपेण नहीं करता। बाह्य पक्ष द्व ारा जो प्रभाव डाला जाता है उसे स्थिरता देने की भूमिका आन्तरिक पक्ष निभाता है। यह सत्य है कि जिन अध्यापकों का बाह्य पक्ष आकर्षक होता है वे नये विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों पर तुरन्त प्रभाव डालते हैं परन्तु यदि उनका आन्तरिक पक्ष कमजोर है तो वे अतिशीघ्र अपना आकर्षण खो देते हैं। इसके विपरीत बाहर से साधारण प्रतीत होने वाले अध्यापक अपने आन्तरिक गुणों से अपने प्रभाव को बहुत अधिक बढ़ा लेते हैं। इसलिए एक सफल अध्यापक में निम्नलिखित आंतरिक गुण होने चाहिएं।

(i) मानसिक स्वास्थ्य (Mental health)–एक सफल अध्यापक वही होता है जो मानसिक रूप से स्वस्थ होता है। इसके अतिरिक्त उसमें अनिवार्य भावात्मक स्थायित्व (Emotional Stability), संवेगों पर संयम तथा जीवन के प्रति सकारात्मक (Positive) दृष्टिकोण होना चाहिए।

(ii) विनोदप्रियता तथा बुद्धि चातुर्य (Humorous and wit)–एक सफल अध्यापक वही कहलाता है जो अपने पाठन कार्य को नीरसता तथा शुष्कता आदि विशेषणों से ग्रसित नहीं होने देता। इसलिए अध्यापक को विनोदप्रिय तथा चतुर होना चाहिए। ये वे गुण हैं जो किसी को भी अपनी ओर आकर्षित करने की

Scanned with OKEN Scanner

अद्भुत शक्ति रखते हैं। इन गुणों से सम्पन्न अध्यापक जटिल से जटिल तथा नीरस विषय को भी सुबोध तथा सरल बना सकता है तथा शिक्षण प्रक्रिया को रोचक बना सकता है।

(iii) लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण (Democratic outlook)–मुख्य शिक्षा के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक उद्देश्य है विद्यार्थियों में लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्तियों का विकास करना और यदि अध्यापक का स्वयं का दृष्टिकोण लोकतंत्रात्मक है तो वह अपने विद्यार्थियों के दृष्टिकोण को अपने अनुरूप तथा अनुसार ढालने में सफल हो सकता है। इस सफलता के लिए एक अध्यापक में अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के प्रति विश्वास, सहिष्णुता, आपसी सहयोग, न्यायप्रियता तथा समानता आदि गुण होने चाहिएं। क्योंकि ये गुण परस्पर सहयोग करते हुए प्रजातंत्र को सुदृढ़ तथा सफल बनाते हैं।

(iv) आत्म संयम (Self control)–धैर्य तथा संयम वे गुण हैं जो किसी भी व्यक्ति को महान बना सकते हैं। उनसे सहानुभूतिपूर्ण तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार पनपता है। कठिन परिस्थिति तथा उत्तेजक अवस्था में भी यदि वह धैर्य एवं संयम को नहीं छोड़ता तो निश्चित रूप से वह विषम परिस्थिति से भी बाहर निकल सकता है। यदि कक्षा में विद्यार्थी अध्यापक द्वारा कोई प्रश्न समझाने पर भी नहीं समझ पा रहे हों या विद्यार्थियों का व्यवहार आशा के विपरीत हो तो भी अध्यापक को अपना नियन्त्रण तथा आत्म संयम नहीं खोना चाहिए अपितु, उस विषम परिस्थिति से निपटने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।

(v) ईमानदारी तथा गम्भीर्य (Honesty and seriousness)–अध्यापक को अपने व्यवहार तथा कार्य के प्रति ईमानदार तथा गम्भीर होना चाहिए। केवल एक ईमानदार अध्यापक ही अपने विद्यार्थियों को गम्भीरता तथा ईमानदारी का पाठ पढ़ा सकता है। अध्यापक का चरित्र उसके विद्यार्थियों के लिए एक आदर्श होता है। इसलिए अध्यापक में ईमानदारी तथा नैतिकता जैसे गुण विद्यमान होने चाहिए।

(vi) सहानुभूति व्यवहार (Sympathetic behaviour)–वही अध्यापक सफल कहलाता है जो विद्यार्थियों की पढ़ाई के साथ-साथ दूसरी मुश्किलों से बाहर निकलने का रास्ता भी प्रशस्त करता है। यदि विद्यार्थी कोई गलती करता है या गलत रास्ते पर चल पड़ता है तो यह अध्यापक का कर्तव्य है कि वह उसे दुत्कारने की बजाए अपने प्यार से उसे समझाने का प्रयास करे और यदि विद्यार्थी किसी क्षेत्र में असफल हो जाता है तब भी उसे डाटने फटकारने की बजाए सहानुभूतिपूर्वक समझाना चाहिए। अध्यापक में एक पथ-प्रदर्शक के रूप में अपनी भूमिका निभाने के लिए मैत्रीपूर्ण तथा सहानुभूतिपूर्ण भावना अवश्य होनी चाहिए।

2. व्यावसायिक गुण (Professional Qualities)–अध्यापन कार्य एक श्रेष्ठ व्यवसाय है। यदि कोई व्यक्ति अध्यापक बनना चाहता है तो उसमें कुछ विशेष गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है। केवल वही व्यक्ति कुशल तथा सफल अध्यापक बन सकता है जिसे अध्यापन की माँगों तथा आवश्यकताओं का पूर्ण रूप से ज्ञान हो। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में, **"समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह एक केन्द्र बिन्दु हैं जहाँ से बौद्धिक परम्पराएँ तथा तकनीकी कुशलताएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचारित होती हैं। वह सभ्यता के दीप को प्रज्वलित रखने में योगदान प्रदान करता है। वह केवल व्यक्ति का ही मार्गदर्शन नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के भाग्य का निर्माण करता है। अतः अध्यापकों को समाज के प्रति अपने विशिष्ट कर्तव्य को पहचानना चाहिए।"**

("The place of a teacher in society is of great importance. He serves as the central figure of the transmission in intellectual traditions and technical skill from generation to generation and helps to keep the lamp of civilization burning. He not only guides an individual but also makes the destiny of the nation. Therefore, teacher have to realise their special obligations to the society.")

अध्यापक में किसी भी विषय के शिक्षण के लिए व्यावसायिक दृष्टिकोण से निम्नलिखित गुण होने चाहिएं–

(i) प्रशिक्षण (Training)–शिक्षण एक विज्ञान भी है और एक कला भी। इस कार्य में निपुणता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण अति आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अध्यापन कार्य में सफलता के लिए अध्यापक

Scanned with OKEN Scanner

का बाल मनोविज्ञान (Child Psychology) का ज्ञान होना अति आवश्यक है। वह भिन्न-भिन्न शिक्षण साधनों से अपने अध्यापक कार्य को प्रभावशाली बना सकता है। विद्यार्थियों के उचित मार्गदर्शन के लिए विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करना होता है तथा साथ ही साथ उनकी उपलब्धियों तथा न्यूनताओं का रिकॉर्ड रखना होता है तथा उस रिकॉर्ड का मूल्यांकन भी करना होता है। ये सभी व्यावसायिक प्रशिक्षण के बिना पूरी नहीं हो सकती। इसीलिए अध्यापक का प्रशिक्षित होना अत्यन्त जरूरी है।

(ii) विषय वस्तु का ज्ञान (Vital knowledge of the subject)–किसी भी अध्यापक को सफलता तब तक प्राप्त नहीं हो सकती है जब तक कि उसे अपने विषय का पूरा ज्ञान न हो। इसलिए शिक्षण कार्य की सफलता हेतु अध्यापक को अपने विषय का ज्ञाता होना जरूरी है।

(iii) मौलिकता (Originality)–अध्यापक में मौलिकता का होना अत्यन्त जरूरी है, क्योंकि किसी भी विषय की गतिशीलता तथा शिक्षण को निरन्तर रखने वाली प्रक्रिया अध्यापक से मौलिकता की माँग करती है।

(iv) प्रबन्ध तथा मार्गदर्शन की योग्यता (Management and guidance ability)–केवल विषय का ज्ञान होना किसी व्यक्ति को पूर्ण सफलता नहीं दिला सकता है। यह तो सफलता का एक अति महत्त्वपूर्ण घटक है। पाठन कार्य के साथ-साथ उसमें कार्य कुशलता तथा मार्गदर्शन जैसे गुणों का होना अति आवश्यक है। उसका काम केवल पाठ्य-पुस्तकों तक ही सीमित नहीं है बल्कि, उसे विद्यार्थियों का मार्गदर्शन भी करना होता है। इसीलिए अध्यापक को समाज का सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति समझा जाता है। उसे मार्गदर्शक, दार्शनिक, अभिभावक तथा मित्र (Guide, philosopher, guardian and friend) आदि सम्बोधनों से पुकारा जाता है।

वह अपने सभी अलंकारों को वास्तविक रूप केवल तब ही दे सकता है जब उसमें आवश्यक गुणों का भण्डार हो। उदाहरण के लिए मार्गदर्शक की भूमिका वह तभी कुशलतापूर्वक निभा सकता है जब उसमें मार्गदर्शन की योग्यता हो। इसके लिए उसे एक ओर तो विद्यार्थियों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं को समझना चाहिए और दूसरी और मार्गदर्शन की विभिन्न तकनीकों के प्रयोग का ज्ञान होना चाहिए। उसमें निरीक्षण की योग्यता होनी चाहिए तथा विभिन्न प्रकार के परीक्षणों जैसे, बुद्धि परीक्षण, रुचि, अभिकाभिय परीक्षण तथा परीक्षण आदि का ज्ञान होना चाहिए। उन सबके साथ-साथ अध्यापक को शिक्षण के लिए कई प्रकार की क्रियाओं का चयन तथा आयोजन करना होता है और इस कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अध्यापक में प्रबन्ध से सम्बन्धित योग्यता कितनी है।

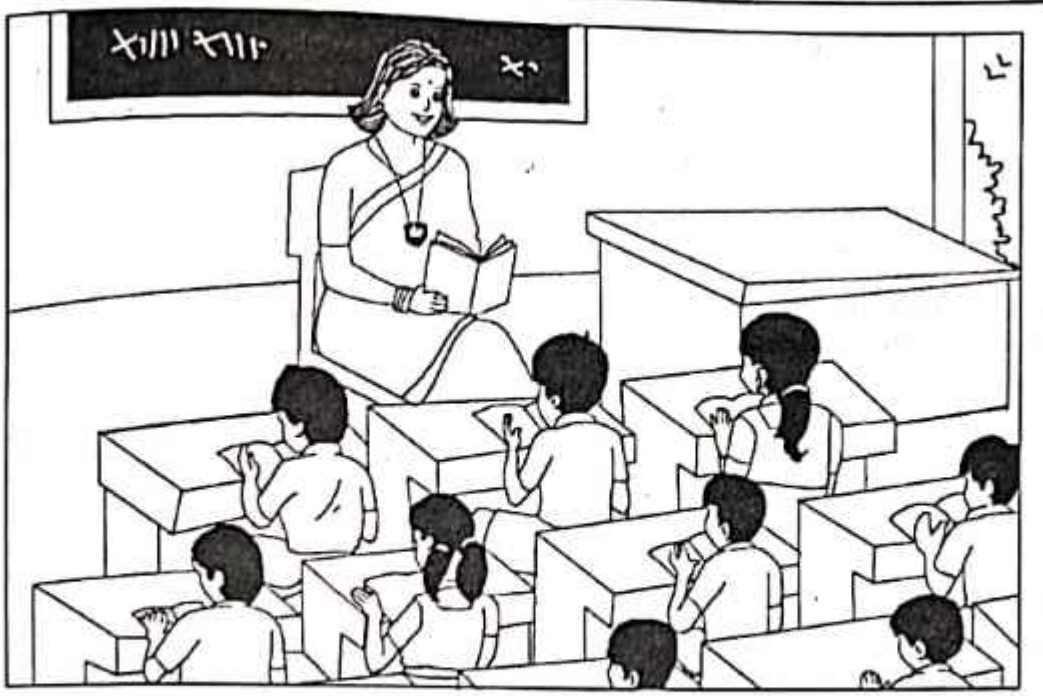
(v) साधनसम्पन्नता (Resourcefulness)–यह जरूरी नहीं है कि अध्यापक को वो सभी चीजें जो अध्यापन कार्य में अनिवार्य रूप से काम आती हैं। सुव्यवस्थित ढंग से मिल जाएं। इन स्थितियों से निपटने के लिए अध्यापक की साधनसम्पन्नता काम आती है।

(vi) सतत् अध्ययनशीलता (Continuous interest in reading)–शिक्षण प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जो मानव के साथ ही शुरू हो जाती है तथा उसकी मृत्यु तक चलती रहती है। अर्थात् किसी भी मानव की शिक्षा प्रक्रिया जीवन भर निरन्तर चलती रहती है। अध्यापक को नवीनतम जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने आपको पढ़ाई से जोड़े रखना होगा, क्योंकि वह शिक्षण व्यवस्था से न्याय तभी कर सकता है जब वह निरन्तर अपनी योग्यता को सुधारने में तल्लीनता से लगा रहे। प्रत्येक अध्यापक को चाहिए कि वह गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा कहे गए वचनों को सदैव याद रखे। उन्होंने कहा था, **"अध्यापक तब तक वास्तविक अर्थों में नहीं पढ़ा सकता जब तक वह स्वयं निरन्तर सीखता न रहे। एक दीपक तब तक दूसरे दीपक को प्रज्ज्वलित नहीं कर सकता जब तक वह स्वयं न जलता रहे।"**

("A teacher can never truly teach unless he is still learning. A lamp can never light another lamp unless in continues to burn its own flame.")

(vii) अपने कार्य में विश्वास (Faith in ones own work)–अध्यापक को अपने कार्य के प्रति अगास (दृढ़) विश्वास तथा आस्था रखनी चाहिए। यदि उसकी अपने कार्य में आस्था नहीं है तो वह अपना कार्य सफलतापूर्वक कराने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकता।

Scanned with OKEN Scanner



कक्षा

विद्यार्थियों के साथ सम्बन्ध
(Relations with the Students)

अध्यापक का विद्यार्थी से सम्बन्ध अभिभावक के समान है। बचपन में जैसे बच्चे का सर्वस्व उसकी माँ होती है उसी प्रकार विद्यालय स्तर पर अध्यापक विद्यार्थी का सर्वेसर्वा होता है। इसलिए अध्यापक को अपने तथा विद्यार्थी के बीच सम्बन्ध को श्रेष्ठ बनाने का भरसक प्रयास करना चाहिए। इस विषय में अध्यापक को निम्नलिखित नियम अपनाने चाहिए–

(i) विद्यार्थियों की रुचियों तथा आवश्यकताओं को समझना।

(ii) उसका स्वयं का आचरण श्रेष्ठ हो क्योंकि यदि अध्यापक का खुद का आचरण निम्न स्तर का होगा तो विद्यार्थियों पर उसका प्रभाव नहीं पड़ सकता है।

(iii) विद्यार्थियों की प्रवृत्तियों को समझना।

(iv) उसे निष्पक्ष होना चाहिए। पक्षपात तथा साम्प्रदायिकता से दूर रहना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है। उसके द्वारा लिए गए निर्णय गहरी सोच पर आधारित होने चाहिएं। उसे किसी भी मामले में अपनी व्यक्तिगत राय को सर्वोपरि नहीं रखना चाहिए।

(v) विद्यार्थियों के प्रति विश्वास, सहयोग, आदर की भावना को अपनाना तथा कटुता का स्वभाव तथा रूख अपनाने से दूर रहना चाहिए। उसे बच्चों पर अपनी दादागिरी नहीं थोपनी चाहिए और न ही तानाशाही प्रवृत्ति का सहारा लेना चाहिए।

(vi) अध्यापक को सदैव छात्रों से निकटता रखनी चाहिए तथा उसे छात्रों के साथ लोकतन्त्रात्मक पद्धति के आधार पर व्यवहार करना चाहिए। अहंकार तथा अहम् से उसे दूर रहना चाहिए। वह छात्रों के प्रति संवेदनशील हों।

(vii) कठिन समय आने पर उसे अत्यन्त और न्यायपूर्ण नीति को अपनाना चाहिए। उसे किसी को शत्रु नहीं बनाना चाहिए और न ही उसे किसी को हद से ज्यादा नजदीक रखना चाहिए। सभी छात्रों के प्रति उसका दृष्टिकोण समानता का होना चाहिए। इस संदर्भ में **अरविन्द घोष** ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है, **"अध्यापक केवल, शिक्षक या निर्देशक ही नहीं, वह सहायक तथा सच्चा मार्गदर्शक भी है। उसका मुख्य कार्य सुझाव देना है न कि किसी बात का अकारण**

Scanned with OKEN Scanner

दबाव डालना। उसका आचरण सर्वरूपेण, सहानुभूतिमय, सौहार्दपूर्ण तथा न्यायसंगत होना अपेक्षित है।" (*The teacher is not confined to the role of an instructor or task master, he is a helper and guide. His business should be sympathetic, friendly and just.*)

(viii) एक अध्यापक को विद्यार्थियों के साथ व्यवहार कुशलता से पेश आना चाहिए। विशेष स्थितियों में वह विद्यार्थी की प्रशंसा या दोषारोपण कर सकता है। लेकिन अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि दूसरों की उपस्थिति में किसी विद्यार्थी को ज्यादा हतोत्साहित व प्रताड़ित नहीं करना चाहिए।

(ix) वर्तमान समय में विद्यार्थी तथा अध्यापकों के सम्बन्ध में अत्यधिक बदलाव आ चुका है अब, अध्यापक का काम विद्यालय की गतिविधियों तक सीमित नहीं रहा है। वह विद्यार्थी के उत्थान तथा सर्वांगीण विकास के लिए हर समय प्रयासरत रहता है। वह अब अभिभावक, सच्चा मित्र, मार्गदर्शक, मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आदि अनेक रोल निभाता है। उन सभी गुणों को धारण करने वाले अध्यापक अपने विद्यार्थियों का मन तथा विश्वास जीत सकता है तथा उन पर पूर्ण नियन्त्रण रख सकता है।

मुख्याध्यापक से सम्बन्ध
(Relationship with the Head of Institutions)

एक अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह अपने मुख्याध्यापक तथा उच्चाधिकारियों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करे। उसे अपने अधिकारियों के प्रति निष्ठावान तथा आज्ञाकारी भी होना चाहिए।

कई बार देखने में यह आता है कि अध्यापकों तथा मुख्याध्यापक के सम्बन्ध बढ़िया नहीं होते हैं। उनमें हमेशा तनाव रहता है। इनके रिश्तों में मन-मुटाव तथा तनाव होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं–

(i) कई बार राजनीतिक दबाव या कारणों से कुछ अयोग्य, व्यक्तियों का मुख्याध्यापक के रूप में चयन हो जाता है। ऐसे लोग व्यक्तिवादी तथा घमण्डी होते हैं। हर काम को राजनीति के माध्यम से करवाना चाहते हैं। वे स्वयं काम या तो जानते ही नहीं या फिर करने से परहेज रखते हैं। अपनी गलतियों को दूसरों पर थोप कर उन्हें नाजायज तथा गलत ढंग से प्रताड़ित करते हैं। इन कारणों के होते ज्यादातर अध्यापक अपने मुख्याध्यापक के खिलाफ हो जाते हैं और विद्यालय में पढ़ाई का माहौल बिल्कुल खत्म हो जाता है। आदर्श स्थिति तो यह है कि विद्यालय के मुख्याध्यापक को परिवार के मुखिया का रोल अदा करना चाहिए तथा दूसरे कर्मचारियों द्वारा उसे यथोचित सम्मान तथा आदर मिलना चाहिए। अध्यापकों की गुटबन्दी, मुख्याध्यापक की तानाशाही केवल विद्यार्थियों के भविष्य को खराब करती है। इसलिए इन स्थितियों से मुख्याध्यापक तथा अध्यापक दोनों को बचना चाहिए तथा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सकारात्मक योगदान देना चाहिए।

(ii) मुख्याध्यापक को पक्षपातपूर्ण व्यवहार, अहंकार, मिथ्या घमण्ड तथा तानाशाह जैसी बुरी आदतों से बचना चाहिए।

(iii) कई बार मुख्याध्यापक की नियुक्ति वरिष्ठता (Seniority) या गुणों के आधार पर नहीं होती है। ऐसी नियुक्तियाँ ज्यादातर अधीनस्थ सहयोगियों के लिए ईर्ष्या का कारण बन जाती हैं। इसलिए मुख्याध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर रोब गाठने की बजाए उनका दिल जीतने का प्रयास करें।

अभिभावकों के साथ सम्बन्ध
(Relationship with Parents)

(i) अभिभावकों तथा अध्यापकों के बीच विश्वास तथा सहयोग का रिश्ता होना चाहिए।

(ii) विद्यार्थियों के साथ-साथ अभिभावकों की शिक्षा का प्रबन्ध करना भी अध्यापक का कर्तव्य है। उसके लिए वह विशेष भाषणों, सिनेमा शो तथा प्रदर्शनियों की व्यवस्था कर सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

(iii) अध्यापकों को अभिभावकों के प्रति विनम्र तथा उदार चित होना चाहिए। परन्तु कई बार यह भी देखने में आया है कि कुछ अभिभावकों का अध्यापकों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण होता है। ऐसे में अध्यापकों को अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोना चाहिए। उसे अभिभावकों को बौद्धिक स्तर अथवा अन्य किसी भी ढंग से समझाने का प्रयास करना चाहिए। अध्यापक को अभिभावकों की आर्थिक तथा व्यावसायिक समस्याओं का भी ध्यान रखना चाहिए। वह अभिभावकों की निम्नलिखित समस्याओं को सुलझाने में सहायता कर सकता है–

(क) सस्ती किताबें उपलब्ध कराना एवं गणवेष दिलवाना।
(ख) दिन का खाना, दोपहर का बच्चों को पौष्टिक भोजन करवाना।
(ग) डॉक्टरी सहायता, बच्चों, नाप-तोल, स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रगति चार्ट बनाना।
(घ) विद्यार्थियों के लिए वाहन का प्रबन्ध करवाना।
(ङ) निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति दिलाना आदि।

अध्यापक के मुख्य कार्य
(Main Obligations and Function of Teachers)

1. शिक्षण (Teaching)–प्रभावशाली शिक्षण के लिए अध्यापक को पाठ्यक्रम को विशेष योजना के अनुसार बनाना तथा शिक्षाक्रम को साप्ताहिक एवं मासिक इकाइयों में बाँट देना चाहिए। अध्यापक का प्रथम कर्तव्य है शिक्षा देना इसलिए उसे अपना सम्पूर्ण ध्यान शिक्षण कार्य पर केन्द्रित रखना चाहिए।

अध्यापक सदैव विद्यार्थियों के लिए आदर्श होता है। वह कक्षा में तथा कक्षा से बाहर भी विद्यार्थियों को सिखाता रहता है। ऐसा वह तभी कर सकता है जब उसे अपने विषय का सम्पूर्ण ज्ञान हो। नया सीखने की इच्छा शक्ति हो।

2. गठन (Organising)–अध्यापक का कार्य कक्षा में पढ़ाने तक ही सीमित नहीं है। वह विद्यालय की रीढ़ होता है। वह विद्यालय गठन और उसका सुचारु रूप से कार्य संचालन करने में मुख्याध्यापक को सकारात्मक सहयोग देता है। वह निम्नलिखित वस्तुओं का संगठन करता है–

(i) पाठ्यक्रम सम्बन्धी गतिविधियों का संगठन।
(ii) विद्यालय प्रांगण की साज-सज्जा, सामान की सुरक्षा आदि का प्रबन्ध।
(iii) पाठ्य-सहगामी क्रियाओं तथा गतिविधियों का संगठन।
(iv) स्वास्थ्य-विधि के साधनों की व्यवस्था।
(v) छात्रों के पुस्तकालय सम्बन्धी कार्य का संगठन।
(vi) शैक्षिक कार्य का संगठन।
(vii) समय-सारणी की रचना आदि।

3. निरीक्षण (Supervision)–यदि अध्यापक निरीक्षण को आवश्यकता अनुसार सहयोग करता है तो स्वाभाविक रूप से वह इस कार्य को सीख लेता है। इसी प्रकार निरीक्षक का भी कर्तव्य है कि वह अध्यापक की समस्याओं के समाधान में अपना सहयोग दे। उस द्वारा दी गई सहायता, परामर्श तथा प्रेरणा के रूप में हो सकती है। अध्यापक द्वारा निरीक्षण कार्य को अपनी सहायता के रूप में लेना चाहिए न की आलोचना के रूप में। निरीक्षण कार्य को सुधारने की जिम्मेदारी भी अध्यापक पर ही होती है।

4. परीक्षण एवं मूल्यांकन (Examination and Evaluation)–शिक्षा से सम्बन्धित कोई भी कार्य जब तक पूरा नहीं माना जाता जब तक उसका मूल्यांकन न किया जाए। अतः अध्यापक को पढ़ाने के साथ-साथ विद्यार्थियों की परीक्षा लेना तथा उनका मूल्यांकन करना एक अति अनिवार्य कर्तव्य है। अध्यापक को यह जानना जरूरी होता है कि उसके द्वारा दिया गया ज्ञान विद्यार्थियों ने किस स्तर तक ग्रहण किया है। इस कार्य के लिए वह मौखिक तथा लिखित परिक्षाएँ ले सकता है। परीक्षा, अध्यापकों के साथ-साथ विद्यार्थी को भी उसका सही स्वरूप दिखाती है चाहे वह दोष पूर्ण हो या फिर उच्च स्तरीय।

Scanned with OKEN Scanner

इसके साथ-साथ अभिभावकों को भी तभी संतुष्टि होती है जब उनके बच्चे परीक्षा में अव्वल नम्बर लेकर पास होते हैं। माध्यमिक कक्षाओं के सम्बन्ध में अध्यापक को आन्तरिक परीक्षक के रूप में परीक्षकों को मूल्यांकन की अनुक्रमांक सूची भेजनी होती है। मूल्यांकन की वर्तमान पद्धति को जानना उसके लिए अति आवश्यक है। विषयगत बातों और अंकन विधि का ज्ञान इसके लिए अपेक्षित है।

5. रिकॉर्ड रखना (Recording)–छात्रों के पूरे साल का लेखा-जोखा रखना अध्यापक का कर्तव्य है। इसके अन्तर्गत उसे विद्यार्थी की जन्म तिथि, प्रवेश तिथि, उपस्थिति, फीस, मासिक परीक्षाओं तथा सालाना (वार्षिक/अर्धवार्षिक) परीक्षाओं के अंकों का रिकॉर्ड भी रखना होता है।

6. मार्गदर्शन (Guidance)–अध्यापक को विद्यालय के मार्गदर्शन कार्यों में पूरा सहयोग देना चाहिए। इस संदर्भ में अध्यापक के निम्नलिखित कर्तव्य हैं–

(i) व्यवसाय की ओर प्रवृत्त करने वाले उचित व्यवसाय के चुनाव का निर्देशन।
(ii) अभिभावकों को उनके बच्चों की प्रगति से संबंधित सभी सूचनाएँ देना।
(iii) अपंग बच्चों के लिए विशेष व्यवस्था करना।
(iv) अध्ययन कार्य में निर्देशन करना।
(v) परीक्षाओं की व्यवस्था करना।
(vi) विद्यार्थी के पूरे साल का रिकॉर्ड रखना।
(vii) मन्द बुद्धि और कम ज्ञान वाले विद्यार्थियों को निर्देशन देना तथा उनकी समस्याओं को दूर करना।
(viii) विद्यार्थियों में मार्गदर्शन कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
(ix) परामर्शदाताओं को विद्यार्थियों से सम्बन्धित पूर्ण जानकारी देना।
(x) विद्यार्थियों को व्यक्तिगत विकास में रुचि लेने के लिए प्रेरित करना।
(xi) विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना।
(xii) कमजोर विद्यार्थियों के लिए उपचारात्मक शिक्षण (Remedial Teaching) की व्यवस्था करना आदि।

◆◆◆

लघु-उत्तरात्मक प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

प्रश्न 1. अधिगम का क्या अर्थ है?

उत्तर– अधिगम का अर्थ (Meaning of Learning)–अधिगम शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र-बिन्दु है। अधिगम शिक्षा मनोविज्ञान का दिल है। शिक्षा के क्षेत्र में अधिगम का एक विशेष महत्त्व है। क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य ही सीखना (अधिगम) है। शिक्षा देने का अर्थ सीखना है। हम यह कह सकते हैं–*Learning is the heart of all education. All education is an attempt to learn.* हम आज जो कुछ भी हैं वह सीखने का ही परिणाम है। समस्त स्कूली क्रियाकलाप सीखने के लिए होते हैं। स्कूल में, कक्षा में, घर में, अध्यापक और शिक्षक इसी के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। प्रत्येक बालक इस संसार में कुछ मूल प्रवृत्तियाँ लेकर आता है। इनकी तृप्ति सीखने पर निर्भर है। मूल प्रवृत्तियों का स्वरूप भी पाशविक होता है। सीखने की प्रक्रिया द्वारा उनमें परिवर्तन होता है। सीखने की प्रक्रिया के ही कारण आज विश्व का इतना अधिक विकास सम्भव हो सका है। सीखना एक अत्यन्त स्वाभाविक प्रक्रिया है जो मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक जारी रहती है। शिक्षा मनोविज्ञान का उद्देश्य सीखने को प्रभावशाली और अर्थपूर्ण बनाना है। सीखने की प्रक्रिया के बारे में बात करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि सीखना आखिर होता क्या है?

Scanned with OKEN Scanner

उदाहरण के लिए–यदि किसी छोटे बच्चे के सम्मुख कोई जलता हुआ लैम्प रखा जाए तो स्वाभाविक रूप से वह उसकी दीपशिखा को स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाता है। परन्तु उसका हाथ दीपशिखा से जल जाता है। उसे कष्ट होता है और वह तुरन्त ही अपना हाथ दीपशिखा से खींच लेता है। जब वह पुनः सम्मुख रखे हुए दीपक को देखता है तो उसे स्पर्श करने का स्वाभाविक व्यवहार नहीं करता, परन्तु यदि उसके सामने दीपक लाया जाता है तो वह उससे दूर भागने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार उसके स्वाभाविक व्यवहार में जो परिवर्तन होता है उसकी इस प्रक्रिया को ही सीखना कहा जाता है। इस व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है–"सीखने का अर्थ उस मानसिक प्रक्रिया से है जिसमें व्यक्ति के स्वाभाविक व्यवहार या भूतकालीन अनुभवों एवं व्यवहार में उन्नतिशील परिवर्तन होता है।"

प्रश्न 2. अधिगम की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– अधिगम की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन होता है।
(2) अधिगम के द्वारा बहुत हद तक व्यक्ति के व्यवहारों में स्थायी परिवर्तन होता है।
(3) सीखने की इच्छा व्यक्तिगत तथा सामाजिक आवश्यकताओं से जागृत होती है।
(4) अधिगम सामाजिक दृष्टि से उचित और अनुचित दोनों ही हो सकता है।
(5) सीखना नये अनुभव ग्रहण करना है।
(6) नये अनुभवों का संगठन होता है अथवा नये अनुभवों को स्थाई किया जाता है।
(7) सीखने की क्रिया जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है।
(8) अधिगम एक सृजनात्मक पद्धति है।
(9) सीखना उद्देश्यपूर्ण एवं लक्ष्य निर्देशित होता है।
(10) अधिगम प्रगति और विकास है।
(11) अधिगम स्थानान्तरित *(Transferable)* होता है।
(12) अधिगम का अनुमान व्यक्ति के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों से लगाया जाता है।
(13) सीखना सार्वभौमिक *(Universal)* है।
(14) अधिगम मानसिक प्रक्रिया है।
(15) अधिगम औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही परिस्थितियों में होता है।
(16) सीखना एक प्रक्रिया है न कि परिणाम।

प्रश्न 3. प्राचीन अनुबंधन के मुख्य घटक कौन-कौन से हैं? बताएं।

अथवा

प्राचीन अनुबंधन के घटकों के विषय में संक्षेप में बताएं।

उत्तर– प्राचीन अनुबन्धन के मुख्य घटक इस प्रकार हैं–

(i) अनानुबन्धित उद्दीपक (Unconditioned Stimulus or US)–ऐसा उद्दीपक वह होता है जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के विश्वसनीयता के साथ एक विशिष्ट अनुक्रिया पैदा करता है। पैवलव के प्रयोग में भोजन *US* है। वह भोजन *(US)* कुत्ते में स्वाभाविक रूप से लार *(Saliva)* पैदा करता है। यह पुनर्बलन *(Reinforcement)* भी पैदा करता है।

(ii) अनानुबन्धित अनुक्रिया (Unconditioned Response or UR)–*UR* वह अनुक्रिया कहलाती है जो *US* से पैदा होती है। *US* के प्रस्तुत होते ही *UR* शुरू हो जाती है। जैसे भोजन *US* है तथा भोजन प्रस्तुत करते ही *UR* शुरू हो जाता है अर्थात् लार टपकनी शुरू हो जाती है। यह लार लटकना ही *UR* है। हवा के झोंकों से पलकों का बंद होना *UR* है। *UR* जन्मजात हो सकते हैं या नहीं भी। अधिकतर मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अनेक *UR* जन्मजात ही होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(iii) अनुबन्धित उद्दीपक (Conditioned Stimulus or CS)—अनुबन्धित उद्दीपक *(CS)* उसे कहते हैं जो समयानुसार अनानुबन्धिक उद्दीपक *(US)* के साथ बंध जाता है तथा बन्धनों के परिणामस्वरूप उस अनुक्रिया को उद्दीप्त करने लगता है जिसे पहले केवल *US* ही पैदा करता था। यह उद्दीपक तटस्थ उद्दीपक होता है। तटस्थ उद्दीपक से यह अभिप्राय नहीं कि यह कोई भी अनुक्रिया उद्दीप्त नहीं करता। अधिकतर यह कोई न कोई अनुक्रिया अवश्य ही उद्दीप्त करता है। उदाहरणार्थ ध्वनि एक *CS* है।

(iv) अनुबन्धित अनुक्रिया (Conditioned Response or CR)—अनुबन्धित अनुक्रिया *(Conditioned Response or CR)* वह अनुक्रिया होती है जो *CS* और *US* के साथ जुड़ने के बाद घटित होती है। आमतौर पर *CR* तथा *UR* आपस में सम्बद्ध दिखाई पड़ते हैं। लेकिन इन दोनों में कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य है।

4. पैवलव के प्राचीन अनुबन्धन के सिद्धान्त की कमियों या सीमाओं को संक्षेप में बताएं।

उत्तर– पैवलव के प्राचीन अनुबन्धन सिद्धान्त की मुख्य कमियाँ या सीमाएँ निम्न प्रकार से हैं–

(i) उच्च विचारों और तर्क की प्रक्रिया को समझाने में यह सिद्धान्त असफल रहा है।

(ii) यह सिद्धान्त स्वं-क्रियाएँ *(Voluntary activities)* को समझाने में असफल रहा है।

(iii) यह चिन्तन प्रक्रिया की व्याख्या करने में असफल है।

(iv) यह सिद्धान्त तत्परता, पुनरावृत्ति, प्रभाव, अभिप्रेरणा, वातावरणीय कारक तथा भौतिक परिस्थितियों की भूमिका की व्याख्या नहीं करता।

(v) इस प्रकार का अधिगम अस्थाई होता है।

(vi) इसका प्रयोग बच्चों और पशुओं पर अधिक होता है।

प्रश्न 5. सक्रिय व्यवहार से आपका क्या तात्पर्य है? स्पष्ट करें।

अथवा

सक्रिय व्यवहार किसे कहते हैं? संक्षेप में बताएं।

उत्तर– वे सभी व्यवहार अथवा अनुक्रियाएँ जो किसी ज्ञात उद्दीपन के परिणामस्वरूप नहीं होतीं, उन्हें सक्रिय व्यवहार के अन्तर्गत रखा जाता है। उदाहरण के लिए हम कई बार देखते हैं कि विद्यार्थी कक्षा में बैठे-बैठे अपने पाँव हिलाते रहते हैं। उनसे इसका कारण पूछा जाए तो उनका उत्तर होता है बस यूँ ही। इसी तरह अध्यापक भी चाक को कभी एक हाथ में तथा कभी उसे दूसरे हाथ में लेता हुआ चहलकदमी करता है। उनसे भी पूछा जाए तो उनका भी जवाब होता है–यूँ ही। अतः वे सभी व्यवहार या अनुक्रियाएँ जिनके लिए कारण के रूप में 'यूँ-ही' उत्तर दिया जाता है उनको सक्रिय व्यवहार कहा जाता है। ऊपरलिखित व्यवहारों के प्रति कोई ज्ञात उद्दीपन नहीं होता है। अनुक्रिया या व्यवहार शुरू-शुरू में यूँ ही घटित हो जाता है और जब इस अनुक्रिया या व्यवहार को पुनर्बलन या बल मिल जाता है तो उसके द्वारा घटने की संभावना बढ़ जाती है और अगर पुनर्बलन नहीं मिलता तो उसके द्वारा घटने की संभावना में उसी मात्रा में कमी आ जाती है। इस प्रकार व्यवहार या अनुक्रियाएँ पहले होती हैं तथा उनको बल देने या कमजोर करने के लिए उद्दीपक बाद में उपस्थित होते हैं। फलस्वरूप इस प्रकार के व्यवहार को उद्दीपक अनुक्रिया व्यवहार *(Response Stimulus Type Behaviour)* कहते हैं।

प्रश्न 6. स्किनर के सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप में बताएं।

अथवा

स्किनर के सक्रिय या क्रिया प्रसूत अनुबंधन की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप में स्पष्ट करें।

उत्तर– *(i)* इस प्रकार का अनुबंधन कोई निश्चित अनुक्रिया प्रकट करने अथवा अवरुद्ध करने की ओर अग्रसर करता है।

Scanned with OKEN Scanner

(ii) इस प्रकार के अनुबंधन में उन प्रक्रियाओं का प्रयोग होता है, जिनमें पुरस्कार या सकारात्मक उद्दीपक शामिल होते हैं।

(iii) इसं अनुबंधन में प्रयोज्य (*Subject*) निर्धारित अनुक्रिया प्रकट करके पुरस्कार या सकारात्मक उद्दीपक से मुक्ति प्राप्त करता है, क्योंकि वह प्रयोज्य पुरस्कार द्वारा वांछित व्यवहार करने लगता है।

(iv) यह अनुबंधन प्रयोज्य की अनुक्रिया पर निर्भर करता है।

(v) कभी-कभी इस अनुबंधन से जुड़े प्रयोगों में विभेदनात्मक संकेत (*Discriminative Clues*) का उपयोग होता है।

(vi) इस अनुबंधन के परिणामस्वरूप व्यक्ति नई अनुक्रिया को अर्जित करता है।

(vii) इस अनुबंधन से जुड़े प्रयोगों में उन अनुक्रियाओं को अनुबंधित किया जाता है जो प्रयोज्य के नियंत्रण में होती हैं।

प्रश्न 7. स्किनर के सक्रिय अनुबंधन का आधार क्या है? स्पष्ट करें।

उत्तर– सक्रिय अनुबंधन का आधार पुनर्बलन (*Reinforcement*) है। सक्रिय अनुबंधन या नैमित्तिक अनुबंधन में कोई भी घटना या उद्दीपक जो किसी प्रकार की अनुक्रिया उत्पन्न करता है, पुनर्बलन कहलाता है।

(*A reinforcer in operant conditioning is only stimulus or event which, when produced by a response, makes that response more likely to occur in the future.*)

जो पुनर्बलन बार-बार दिया जाता है वह भावी व्यवहार का निर्णायक हो जाता है। सक्रिय अनुबन्धन के लिए विस्तृत उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। किसी अनुक्रिया के लिए पुनर्बलन को माध्यम बनाया जाता है। अन्य व्यक्तियों की स्वीकृति, मुस्कान, आत्म-महत्त्व (*Self-Importance*), आत्म-क्षमता (*Self-Worth*), कठिन कार्यों को करना तथा अन्य अनेक आनन्ददायक अवस्थाएँ पुनर्बलन के रूप में हमारे व्यवहार को प्रभावित करती हैं। सक्रिय अनुबन्धन या नैमित्तिक अनुबन्धन में व्यवहार एक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

स्किनर द्वारा बताये इस अनुबन्धन में दो प्रकार के पुनर्बलन पाये जाते हैं–सकारात्मक (*Positive*) और नकारात्मक (*Negative*)। सकारात्मक पुनर्बलन में व्यक्ति क्रिया में योग देता है जबकि नकारात्मक पुनर्बलन इसके विपरीत है।

प्रश्न 8. स्किनर के सक्रिय अनुबंधन सिद्धांत के शैक्षिक महत्त्व के संबंध में संक्षेप में बताएँ।

अथवा

स्किनर के सक्रिय अनुबंधन सिद्धांत के शैक्षिक महत्त्व को संक्षेप में लिखें।

उत्तर– स्किनर के सक्रिय अनुबंधन का शैक्षिक महत्त्व (Educational Implication of Skinner's operant conditioning)–अधिगम के सिद्धांतों में सक्रिय अनुबंधन के सिद्धांत का शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक उपयोग हुआ है। इस सिद्धांत की सबसे बड़ी देन शिक्षण मशीन (*Teaching machine*) और अभिक्रमित अधिगम (*Programmed learning*) है इन दोनों का ही आधुनिक शैक्षिक तकनीकों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें निम्नलिखित पदों (*Steps*) की सहायता से अधिगम प्रदान किया जाता है–

1. विषय-वस्तु (*Subject matter*) को छोटे-छोटे पद क्रमों में तोड़कर इकाईयों अथवा फ्रेमों में बाँट लिया जाता है।
2. अधिगमकर्ता प्रत्येक पदों अथवा फ्रेमों के लिए अनुक्रिया करता है।
3. अधिगमकर्ता सही अनुक्रिया करता है, क्योंकि पद क्रम को अत्यंत व्यवस्थित ढंग से बनाया जाता है।
4. सही अनुक्रिया को तत्काल ही पुनर्बलित (*reinforce*) किया जाता है। अर्थात् अधिगमकर्ता को पता लग जाता है कि वह सही अनुक्रिया कर रहा है अथवा गलत।

Scanned with OKEN Scanner

5. इस प्रकार अधिगमकर्ता अपनी गति से सीखता हुआ विषय-वस्तु के अंत तक पहुँच जाता है।
6. अधिगम-प्रक्रिया व परिस्थितियों के उपयुक्त आयोजन में यह सिद्धांत लाभकारी सिद्ध होता है।
7. इस सिद्धांत की सहायता से बालक के (किसी के भी) व्यवहार का उचित मार्ग दर्शन दिया जा सकता है।
8. इसके द्वारा हम व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उचित व सुचारु ढंग से कर सकते हैं।

प्रश्न 9. सक्रिय अनुबंधन सिद्धांत का क्या महत्त्व है? संक्षेप में स्पष्ट करें।

अथवा

सक्रिय अनुबंधन के महत्त्व को संक्षेप में बताएँ।

उत्तर– सक्रिय अनुबंधन का महत्त्व निम्नलिखित है–

(a) सक्रिय अनुबंधन के सिद्धांत द्वारा अध्यापक बालकों के व्यवहार को वांछित स्वरूप एवं दिशा प्रदान कर सकता है। इस कार्य के लिए अध्यापक को उद्दीपन नियंत्रित करना पड़ता है।

(b) सक्रिय अनुबंधन में पुनर्बलन *(Rainforcement)* का बहुत महत्त्व है। अध्यापक धनात्मक पुनर्बलन *(Positive reinforcement)* के द्वारा बालकों के व्यवहार को वांछित दिशा में परिवर्तित कर सकता है। पुनर्बलन के विभिन्न रूप हो सकते हैं। जैसे द्वंद्व पुरस्कार, परिणाम का ज्ञान आदि। अध्यापक को धनात्मक पुनर्बलन का प्रयोग अधिक करना चाहिए।

(c) अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को उनके प्रयासों के परिणाम का ज्ञान करा दिया जाए ऐसा करने से विद्यार्थी अपने कार्य में अधिक प्रगति कर सकते हैं।

(d) स्किनर ने अपने प्रयोगों में यह सिद्ध किया है कि प्राणी में संतुष्टि प्रदान करने वाली क्रिया से सक्रियता आती है। अध्यापक विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर सीखने के लिए प्रेरित कर सकता है। ऐसा करने से विद्यार्थियों को संतुष्टि मिलेगी और अधिगम भी शीघ्र होगा।

(e) इस सिद्धांत की सहायता से अध्यापक बच्चों के शब्द भंडार में वृद्धि कर सकता है।

(f) स्किनर के सिद्धांत की सहायता से जटिल और मानसिक रोगियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है।

प्रश्न 10. अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के सिद्धान्त का क्या अर्थ है? संक्षेप में बताएं।

अथवा

अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के सिद्धांत के अर्थ को संक्षेप में स्पष्ट करें।

उत्तर– गेस्टाल्ट *(Gestalt)* शब्द का अर्थ है–समग्र रूप। इसके अनुसार व्यक्ति किसी वस्तु को आंशिक रूप से नहीं बल्कि पूर्ण रूप से सीखता है। इस सिद्धान्त का जन्मदाता जर्मनी का मनोवैज्ञानिक वरदीमर *(Wertheimer)* कहा जाता है। उसके इस सिद्धान्त को आगे बढ़ाने में कॉफका *(Kurt Koffka)* तथा कोहलर *(Kohler)* ने बहुत अधिक योगदान दिया। वरदीमर का मानना यह है कि 'सम्पूर्ण' बड़ा है और 'कुछ' उसका अंश है *(The whole is greater than the sum of its parts)*। इसे हिन्दी में पूर्णाकारवाद भी कहा जाता है।

इसके मूल में अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ *(Insight)* विद्यमान रहती है। अन्तर्दृष्टि का अर्थ है–समस्या के समाधान को गहराई में देखना। वुडवर्थ *(Woodworth)* के अनुसार, 'अन्तर्दृष्टि का अर्थ है–अच्छा निरीक्षण, स्थिति को पूर्ण इकाई के रूप में समझना या स्थिति के उन भागों को समझना जो लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग दिखाते हैं।' प्रो. कोहलर *(Prof. Kohler)* के अनुसार अन्तर्दृष्टि में पूर्व दृष्टि *(Foresight)* निहित होती है। इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि व्यक्ति का व्यवहार पूर्णता से निर्देशित होता है। व्यक्ति किसी वस्तु का पूर्ण रूप से प्रत्यक्षीकरण करता है, न कि भागों में।

Scanned with OKEN Scanner

कोहलर ने थॉर्नडाइक के प्रयास और भूल के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि व्यक्ति प्रयास और भूल से न सीखकर अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ से सीखता है। कोहलर ने पाया कि व्यक्ति अचानक समस्या का सही समाधान ढूँढ़ लेता है। इस सिद्धान्त में प्रत्यक्षीकरण *(Perception)* पर अधिक बल दिया है तथा उसे महत्त्वपूर्ण माना है। कोहलर और कॉफका इस परिणाम पर पहुँचे कि व्यक्ति किसी समस्यात्मक परिस्थिति का सूझ-बूझ या अन्तर्दृष्टि से समाधान निकालता है।

प्रश्न 11. कोहलर ने अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के सिद्धान्त के कौन-कौन से आवश्यक तत्त्व बताए हैं?

उत्तर– कोहलर ने सूझ-बूझ के इस सिद्धान्त में निम्नलिखित आवश्यक तत्त्वों की चर्चा की है–

1. **सम्पूर्ण इकाई का बोध (Comprehension as a Whole)**–इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सीखने के लिए स्थिति को सम्पूर्ण इकाई के रूप में समझना आवश्यक होता है।
2. **स्पष्ट लक्ष्य (Clear Goal)**–इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने का लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए और यह स्पष्ट प्रारम्भ से ही हो।
3. **सामान्यीकरण की शक्ति (Power of Generalization)**–सीखने वाले व्यक्ति में सामान्यीकरण की शक्ति का होना अति आवश्यक होता है।
4. **समाधान का अचानक सूझना (Sudden Solution)**–अन्तर्दृष्टि के अन्तर्गत 'अचानक' कार्य होता है। अतः समस्या का समाधान भी अचानक ही सूझता है। इस विधि के दौरान लम्बे समय तक चिन्तन की आवश्यकता नहीं रहती है।
5. **वस्तुओं का नया रूप (New Form of Objects)**–अन्तर्दृष्टि के परिणामस्वरूप समस्या या स्थिति से जुड़ी वस्तुएँ नये रूप में दिखाई देने लगती हैं।
6. **स्थानान्तरण (Transfer)**–अन्तर्दृष्टि के माध्यम से सीखने पर ज्ञान का स्थानान्तरण भी संभव है। एक स्थिति में सीखी हुई बात को दूसरी स्थिति में प्रयोग किया जा सकता है।
7. **व्यवहार में परिवर्तन (Change in behaviour)**–अन्तः दृष्टि द्वारा सीखी हुई बात से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन अवश्य होता है।

इन सभी तत्त्वों की उपस्थिति में अन्तर्दृष्टि द्वारा अधिगम सम्भव हो सकता है।

प्रश्न 12. अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के निर्माण से सम्बन्धित मुख्य नियमों को संक्षेप में स्पष्ट करें।

उत्तर– अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के निर्माण से मुख्य नियम इस प्रकार से हैं–

1. **क्षमता (Capacity)**–अन्तर्दृष्टि शारीरिक क्षमता पर भी निर्भर करती है। ये क्षमताएँ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती हैं। व्यक्ति के विकास के साथ-साथ उसकी क्षमताएँ भी विकसित होती रहती हैं। अतः वह जितना अधिक विकसित होगा, उसकी अन्तर्दृष्टि की क्षमता भी उतनी ही विकसित होगी।
2. **पूर्व-अनुभव (Previous Experiences)**–सम्बन्धित पूर्व-अनुभव भी अन्तर्दृष्टि को प्रभावित करते हैं। इन पूर्व-अनुभवों पर अन्तर्दृष्टि निर्भर करती है। अतः अन्तर्दृष्टि से पहले कुछ पूर्व-अनुभव, परिपक्वता, प्रयासों और भूलों का होना अति आवश्यक होता है।
3. **प्रयोगात्मक प्रबन्ध (Experimental Arrangement)**–अन्तर्दृष्टि का विकास प्रयोगात्मक प्रबन्ध से भी जुड़ा हुआ है।
4. **भटकन और खोज (Fumbling and Search)**–कई बार भटकन और खोज के प्रयासों के परिणामस्वरूप अन्तर्दृष्टि का जन्म होता है।
5. **तत्पर आवृत्ति (Readily Repeated)**–अन्तर्दृष्टि के माध्यम से जो भी समस्या का समाधान ढूँढ़ा जाता है वह कभी भूलता नहीं। उसे बार-बार दोहराया जा सकता है।
6. **नई स्थिति में उपयोग (Useful in New Situation)**–कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अन्तर्दृष्टि द्वारा अर्जित अधिगम का किसी और नई स्थिति में भी प्रयोग किया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

7. **सम्पूर्ण अनुभव (Wholesome Experience)**—ऐसा देखा गया है कि सूझ-बूझ द्वारा अर्जित अनुभव स्वयं में पूर्ण होता है। उसमें अधूरापन नहीं रहता। यह सम्पूर्ण अपने अंशों के बराबर नहीं हो सकता।

प्रश्न 13. अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के सिद्धान्त की शिक्षा के क्षेत्र में क्या उपयोगिता या महत्त्व है? विवेचना कीजिए।

अथवा

अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के सिद्धान्त की शैक्षिक उपयोगिता का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के सिद्धान्त की शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता या महत्त्व निम्न प्रकार से हैं–

(i) अन्तर्दृष्टि का विकास (Development of Insight)—इस सिद्धान्त की सहायता से व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि का विकास करना संभव होता है। इस सिद्धान्त की सहायता से विज्ञान, रेखा गणित एवं बीज गणित की समस्याओं को हल करने में सहायता मिलती है। साहित्य के क्षेत्रों में इस सिद्धान्त का कोई अधिक उपयोग नहीं। इस सिद्धान्त द्वारा अधिगम में कम समय लगता है। यह विधि प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी है। इसमे अध्यापकों को भी कम परिश्रम करना पड़ता है। इस सिद्धान्त की सहायता से अर्जित अधिगम को हम अन्य परिस्थितियों में भी प्रयुक्त कर सकते हैं तथा ऐसा ज्ञान स्थाई प्रकृति का होता है।

(ii) एकीकृत पाठ्यक्रम (Integrated Curriculum)—इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम एकीकृत होना चाहिए। पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों तथा भागों में आपसी तालमेल होना चाहिए।

(iii) कल्पना, तर्क एवं चिन्तन के विकास में सहायक (Helpful in Developing the Power of Imagination, Reasoning and Thinking)—अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त व्यक्ति में कल्पनाशक्ति, तर्कशक्ति एवं चिन्तनशक्ति के विकास और उसे बेहतर बनाने में सहायक सिद्ध होता है। यह सिद्धान्त रचनात्मक और सृजनात्मक क्रियाओं में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(iv) एकल क्रिया पर निष्कर्ष नहीं (No Conclusion on the Basis of Single Act)—कक्षा में अध्यापक को विद्यार्थियों की एक ही क्रिया या व्यवहार से किसी प्रकार का कोई निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए। क्योंकि यह सिद्धान्त बच्चे को समग्र रूप या पूर्ण रूप से देखने पर बल देता है, न कि उसके आंशिक व्यवहार पर।

(v) विषयों और अनुभवों से सम्बद्ध (Related to Topics to the Experience)—कक्षा में पढ़ाये गए प्रकरणों को बच्चों के अनुभवों से सम्बद्ध किया जा सकता है तथा लक्ष्य की ओर बढ़ा जा सकता है।

(vi) पूर्ण अंशों का योग नहीं (Whole is Not a Sum of the Parts)—इस सिद्धान्त का विश्वास है कि सम्पूर्ण विभिन्न अंशों का योग बराबर नहीं होता। अतः कक्षा में पाठ को शुद्ध करते समय चीज़ों को कक्षा में सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(vii) पूर्व-अनुभवों पर आश्रित (Depend Upon Past Experiences)—अन्तर्दृष्टि पूर्व अनुभवों और योग्यता पर निर्भर करती है। अध्यापक बच्चों की अन्तर्दृष्टि का उत्तम उपयोग उचित पाठ योजना, महत्त्वपूर्ण अनुभव प्रदान करने तथा सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान *(Theory ana Practice)* में एकीकरण करके कर सकता है।

(viii) अभिप्रेरणा (Motivation)—कक्षा में विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए अन्तर्दृष्टि का विकास करने के लिए अध्यापक बच्चों को अभिप्रेरित कर सकता है।

(ix) कठिन विषयों के लिए उपयोगी (Useful in Difficult Subjects)—इस सिद्धान्त की अधिकतम उपयोगिता कठिन विषयों में दिखाई देती है—जैसे गणित, विज्ञान इत्यादि।

Scanned with OKEN Scanner

(x) आकांक्षा स्तर (Aspiration Level)—अध्यापक नये ज्ञान को प्रदान करते समय देख ले कि विद्यार्थियों का मानसिक तथा शारीरिक स्तर इस योग्य है भी कि वे नया ज्ञान ग्रहण कर सकते हैं। यदि उनकी आकांक्षा का स्तर सामान्य है तो वे सामान्य ज्ञान को ही भली-भाँति ग्रहण कर सकते हैं।

(xi) पूर्ण समस्या (Whole Problem)—अध्यापक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को समस्या का पूरा ज्ञान कराए। यदि समस्या के प्रति ज्ञान अपूर्ण है तो अन्तर्दृष्टि उत्पन्न नहीं होगी। किसी भी समस्या में उस समय तक सूझ उत्पन्न नहीं होती जब तक उसका ज्ञान पूर्ण रूप से न हो जाए। अतः यह आवश्यक है कि सार्थक पाठ पढ़ाये जाएं।

(xii) वातावरण (Environment)—अध्यापक को चाहिए कि वह बालक के सामने इस प्रकार का वातावरण प्रस्तुत करे कि बच्चे स्वयं अधिगम के लिए प्रेरित हों। अधिगम की क्रिया का विकास स्वयं होना चाहिए।

(xiii) बालक सम्पूर्ण रूप में (Child as a whole)—बालक के व्यवहार के सभी पक्षों को देखकर उसका अध्ययन किया जाना चाहिए। एक कार्य के आधार पर बालक के व्यवहार के बारे में कोई परिणाम नहीं निकालना चाहिए। अतः बालक का सम्पूर्ण रूप में अध्ययन किया जाना चाहिए।

(xiv) लक्ष्यों का निर्धारण (Determination of goals)—अध्यापक को चाहिए कि वह अपने शिक्षण-अधिगम लक्ष्यों को अवश्य निर्धारित कर ले, क्योंकि निर्धारित लक्ष्यों के कारण छात्र में सीखने के लिए तनाव पैदा होगा जिससे वे सीखने के लिए अभिप्रेरित होंगे। अभिप्रेरणा के अन्तर्गत अधिगम प्रभावशाली होगा।

प्रश्न 14. प्रयास एवं भूल सिद्धान्त तथा अन्तर्दृष्टि या सूझ-बूझ के सिद्धान्त में कौन-कौन से अन्तर पाए जाते हैं? स्पष्ट करें।

अथवा

प्रयास एवं भूल सिद्धान्त तथा अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त में पाए जाने वाले अन्तरों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर– प्रयास एवं भूल के सिद्धान्त तथा अन्तर्दृष्टि के सिद्धान्त में अन्तर (Difference between Trial & Error and Insight Theory)—

क्रम संख्या	प्रयास एवं भूल का सिद्धान्त	अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त
1.	इस सिद्धान्त का प्रतिपादन थॉर्नडाइक ने 1898 में किया जो एक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक था।	इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1917 में जर्मन मनोवैज्ञानिक कोहलर ने किया।
2.	इसमें अधिगम धीमा होता है।	अधिगम अचानक होता है।
3.	अधिगम अभ्यास पर आधारित है।	अधिगम सूझ बूझ व समझने पर आधारित है।
4.	उच्च बौद्धिक योग्यताओं की कोई भूमिका नहीं होती।	इसमें उच्च बौद्धिक योग्यताओं की भूमिका होती है, जैसे तर्क-शक्ति, समझने की योग्यता, समस्या-समाधान की योग्यता आदि।
5.	यह सभी के लिए उपयोगी है।	यह उच्च श्रेणी के मनुष्य ही सीख सकते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

क्रम संख्या	प्रयास एवं भूल का सिद्धान्त	अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त
6.	इसमें शरीर के सभी अंगों का नियोजन आवश्यक होता है।	इसमें समस्या के सभी तत्त्वों का प्रत्यक्षीकरण करना आवश्यक होता है।
7.	इसमें शारीरिक कुशलता एवं यांत्रिक कुशलता पर अधिक बल दिया गया है।	इसमें बौद्धिक क्रियाओं तथा मस्तिष्क का सीखने में उपयोग करने पर अधिक बल दिया जाता है।
8.	इस सिद्धान्त में मानव चेतन स्तर पर लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है।	इस सिद्धान्त में अचेतन मन अधिक क्रियाशील होता है।
9.	इसमें प्रत्येक समस्या के समाधान के लिए नये सिरे से प्रयास करने पड़ते हैं।	इस सिद्धान्त द्वारा अर्जित ज्ञान का स्थानान्तरण संभव है तथा नवीन समस्याएँ सुलझाने में सफलता प्राप्त होती है।
10.	इसमें अर्जित सफलता परिश्रम तथा लगन पर आधारित होती है।	इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सफलता व्यक्तिगत की सूझ पर आधारित होती है।
11.	इसमें अधिगम का स्थानान्तरण नहीं होता।	प्रशिक्षण में अधिगम का स्थानान्तरण संभव है।
12.	यह संवेदना और गत्यात्मक समन्वय पर आधारित है।	यह प्रत्यक्षीकरण पर आधारित है।

प्रश्न 15. अन्तःदृष्टि सिद्धान्त की मुख्य कमियों या दोषों को संक्षेप में बताएं।

अथवा

अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त की सीमाओं या कमियों को संक्षेप में स्पष्ट करें।

उत्तर– अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त की मुख्य सीमाएँ या कमियाँ निम्न प्रकार से हैं–

1. बच्चे और पशु इस सिद्धान्त की सहायता से नहीं सीख सकते। वे केवल प्रयास और भूल विधि द्वारा ही सीख सकते हैं।
2. इस विधि में प्रयास और भूल का भी प्रयोग होता है। लेकिन कठिन समस्याओं में सफलता प्राप्त करने से पहले कई प्रयास करने पड़ते हैं और उनमें कई त्रुटियाँ भी रह जाती हैं। कई बार प्रौढ़ व्यक्ति भी एक ही बार में समस्या को हल नहीं कर पाते।
3. प्रत्येक विषय केवल अन्तर्दृष्टि से नहीं सीखा जा सकता है। सीखने में प्रयास का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।
4. बालकों का अधिगम अनुभव पर बहुत अधिक सीमा तक निर्भर करता है।
5. मंदबुद्धि वाले व्यक्तियों के लिए उपयोगी नहीं है। यह बुद्धिमान व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी है।
6. आधुनिक अनुसंधानों से पता चलता है कि मनुष्य के सीखने, याद करने तथा स्वतन्त्र रूप से पुनःस्मरण करने में संगठनात्मक-कारकों *(Organisational Factors)* अथवा बोधात्मक-कारकों *(Perceptual Factors)* का हाथ विश्लेषणात्मक रूप से होता है, सामूहिक रूप में नहीं।
7. इस सिद्धान्त के आधार पर सभी प्राणियों तथा सभी तरह के शिक्षणों की व्याख्या संभव नहीं है। यह सिद्धान्त गति-सीखना *(Motor Learning)* की व्याख्या करने में सफल नहीं है। इसी तरह पशुओं के शिक्षणों की व्याख्या इस सिद्धान्त से कठिन है। बच्चों के शिक्षण

Scanned with OKEN Scanner

के लिए भी यह सिद्धान्त कठिन है। केवल वयस्कों के सीखने की क्रिया की व्याख्या यह सिद्धान्त कर पाता है। यहाँ इसके अतिरिक्त मन्द-बुद्धि के व्यक्तियों के सीखने की क्रिया की व्याख्या इस सिद्धान्त से पूरी तरह सम्भव नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि सूझ सिद्धान्त के अपने विशेष गुण तथा दोष हैं। इन दोनों के बावजूद यह सिद्धान्त शिक्षण के क्षेत्र में सूझ या समझ की स्वीकृति है।

प्रश्न 16. अन्तर्दृष्टि शिक्षण की मुख्य विशेषताएं कौन-कौन सी हैं?

अथवा

अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने को मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख करें।

उत्तर– अन्तर्दृष्टि के द्वारा सीखने की कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार से हैं–

(i) सूझ द्वारा सीखना प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर करता है। प्रत्यक्षीकरण जितना सघन होगा, अधिगम उतना ही अधिक होगा।

(ii) प्राणी में बुद्धि की मात्रा जितनी अधिक होगी, प्राणी में सूझ भी उतनी अधिक होगी। सूझ व बुद्धि में सीधा धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है।

(iii) सूझ व्यक्ति की आयु से भी सम्बन्धित है। अन्य बातें समान रहे तो पाया गया है कि व्यक्ति की आयु ज्यों-त्यों बढ़ती जाती है, एक सीमा तक त्यों-त्यों उसकी अन्तर्दृष्टि विकसित होती जाती है।

(iv) अन्तर्दृष्टि पर व्यक्ति के पूर्व-अनुभवों का प्रभाव पड़ता है। पूर्व अनुभवों का विशाल भंडार अन्तर्दृष्टि में विकसित करता है।

(v) लक्ष्यों की स्पष्टता अन्तर्दृष्टि में सहायक होती है। लक्ष्य जितने अधिक स्पष्ट होंगे, अन्तर्दृष्टि उतनी ही अधिगम में अधिक सहायक होगी।

(vi) अन्तर्दृष्टि से पूर्व व्यक्ति सामान्यतः प्रयत्न व भूल से समस्या का समाधान करने का प्रयास करता है।

(vii) अन्तर्दृष्टि सदैव समस्या के सम्पूर्ण अंगों या समग्राकृति को समझने पर ही आती है। सूझ का सम्बन्ध अवबोध या समझ *(Understanding)* से भी है।

(viii) अन्तर्दृष्टि द्वारा प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है।

(ix) अन्तर्दृष्टि से जो कुछ सीखा जाता है उसका स्थानान्तरण भी होता है।

(x) अन्तर्दृष्टि के उपरान्त वस्तुएं या समस्याएँ नए रूप में दिखाई पड़ती हैं।

(xi) अन्तर्दृष्टि व्यक्ति के व्यवहारों में तुरंत परिवर्तन लाती है।

(xii) अन्तर्दृष्टि के दो पक्ष होते हैं–पूर्व दृष्टि *(Foresight)* तथा पश्चात-दृष्टि *(Hindsight)*। **वुडवर्थ** तथा **मारक्विस** *(Woodworth and Marquis)* के अनुसार, **"लक्ष्य तक जाने वाले मार्ग को अनुसरण करने से पहले ही देख लेना पूर्व दृष्टि है.... किसी मार्ग का अनुसरण कर चुकने के बाद उसकी अच्छाई अथवा बुराई का ज्ञान होना पश्चात् दृष्टि है। जब सम्पूर्ण परिस्थिति स्पष्ट होती है तब पूर्वदृष्टि के लिए उत्तम अवसर होता है, परन्तु जब परिस्थिति की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को अन्वेषण तथा प्रहस्तन (Manipulation) करके जानना हो तो पश्चात् दृष्टि की ही अधिकाधिक आशा की जा सकती है।"**

(xiii) सूझ तथा बुद्धि में गहन सम्बन्ध होता है। आयु-बुद्धि के साथ सूझ की क्षमता भी बढ़ती जाती है। छोटी आयु में सूझ उतनी क्रियाशील अथवा जागृत नहीं होती, जितनी वयस्कावस्था अथवा प्रौढ़ावस्था में होती है।

प्रश्न 17. अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त का संक्षेप में मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर– पशु क्षेत्र में अन्तर्दृष्टि के तथ्य को स्वीकार करने तथा सम्बन्धित स्पष्टीकरण देने में गेस्टॉल्टवादियों के प्रयोग अत्यन्त सराहनीय हैं। मानव-क्षेत्र में तो अधिकतर कार्य अन्तर्दृष्टि के आधार पर किए जाते हैं। जटिल परिस्थितियों के समाधान का सम्पूर्ण रूप में प्रत्यक्षीकरण जब मनुष्य को होता है तो उसे अन्तर्दृष्टि का ही परिचायक मानते हैं। इस प्रकार सीखने की क्रिया में वह अपनी बुद्धि,

Scanned with OKEN Scanner

पूर्व-ज्ञान, रुचि, मनोवृत्ति आदि मानसिक-प्रवृत्तियों का उपयोग करता है। विज्ञान, कला, इंजीनियरिंग आदि ऐसे विषय हैं जिनको अभ्यास के द्वारा नहीं सीखा जा सकता, बल्कि इनको सीखने के लिए सूझ की अति आवश्यकता है। इस प्रकार सीखने के क्षेत्र में इस सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कोहलर के सिद्धान्त का खण्डन भी हुआ है। शेरिंगटन आदि मनोवैज्ञानिकों के प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हुआ है कि उन्हें वन्दर के बच्चों पर प्रयोग करने पर अन्तर्दृष्टि का कोई भी परिचय नहीं मिला। उन्होंने दूसरी बात यह भी कही है कि अचानक समस्या का समाधान संयोग की बात है, अन्तर्दृष्टि या सूझ की बात नहीं है। इस प्रकार अन्तर्दृष्टि या सूझ सिद्धान्त को पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं है। अतः कोहलर द्वारा किए गए प्रयोगों को सरल बताया गया है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त बिल्कुल नवीन तथा अपरिचित विज्ञान की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता, क्योंकि यह सिद्धान्त दर्शन तथा मनोविज्ञान का मिश्रित रूप है।

प्रश्न 18. अन्तर्दृष्टि शिक्षण के मुख्य तत्त्व या कारक कौन-कौन से हैं? संक्षेप में बताओ।

अथवा

अन्तर्दृष्टि शिक्षण के मुख्य तत्त्वों या कारकों को स्पष्ट करें।

उत्तर– किसी भी शिक्षण में अन्तर्दृष्टि की सहायता से समाधान की प्रक्रिया एक निश्चित क्रम से गुजरती है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक ने इस प्रक्रिया के मुख्य तत्त्व का वर्णन किया है, जो निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. **लक्ष्य**–कोई सीखने का कार्य बिना लक्ष्य के संभव नहीं होता। लक्ष्य के कारण प्रयोज्य किसी क्रिया को करने का प्रयास करता है। जैसे–कोहलर के प्रयोग में चिम्पैजी के लिए केले प्राप्त करने का लक्ष्य था।
2. **रुकावट या बाधा**–किसी भी परिस्थिति में समस्या तभी उत्पन्न होती है, जब लक्ष्य के कारण ही प्रयोज्य क्रिया करने का पयास करता है। रुकावट या बाधा का होना चिन्तन की शुरूआत का कारण होता है, जैसे–केले की अधिक ऊंचाई जिस कारण प्रयोज्य का हाथ उन तक नहीं पहुंचता बाधा होती है।
3. **तनाव**–बाधा के कारण लक्ष्य प्राप्ति का नहीं होना मानसिक तनाव का कारण बनता है। लक्ष्य प्राप्त करने की अभिप्रेरणा जितनी तीव्र होती है, तनाव उतना ही अधिक होगा। तनाव की स्थिति पीड़ादायक होती है, जिससे प्राणी मुक्ति प्राप्त करना चाहता है।
4. **संगठन**–तनाव से मुक्ति के लिए प्रयोज्य विभिन्न उपाय सोचता है। इन उपायों के लिए वह विभिन्न प्रकार से उन विचारों को संगठित करता है अर्थात् किस क्रिया को पहले व किस क्रिया को बाद में करना है, ताकि समस्या का समाधान मिल सके। इसके अन्तर्गत संभावित विचारों को सही ढंग से संगठित करने का प्रयास किया जाता है।
5. **पुनः संगठन और चिन्तन**–लक्ष्य प्राप्ति के लिए संभावित उपायों को संगठित करने के बाद उस संगठन को फिर संगठित करके चिन्तन किया जाता है, ताकि ऐसी गलती न रह जाए जिससे लक्ष्य प्राप्ति में कोई बाधा उत्पन्न हो। मानसिक स्तर पर विचारों का गठन व पुनः संगठन एक प्रकार का प्रयास एवं भूल का मानसिक व्यायाम है। ऐसा करने पर ही अन्ततः अन्तर्दृष्टि जाग्रत होती है और प्राणी लक्ष्य प्राप्ति के लिए कार्य करने लगता है जैसे–वनमानुष लक्ष्य (केले) प्राप्ति के लिए संभावित उपायों के बारेमें संगठित व पुनः संगठित करके समाधान की अन्तर्दृष्टि प्राप्त करता है और तुरन्त लकड़ी के दो बक्सों को एक दूसरे के ऊपर रखकर केले प्राप्त कर लेता है। अन्तर्दृष्टि शिक्षण से मानसिक तनाव समाप्त हो जाता है।

प्रश्न 19. टॉलमैन के अधिगम से सम्बन्धित व्यवहारवादी ज्ञानात्मक सिद्धान्त का परिचय दीजिए।

उत्तर– टॉलमैन (Tolman) का सिद्धान्त सीखने के ज्ञानात्मक सिद्धान्तों (Cognitive theories) में से अत्यन्त विकसित सिद्धान्त है।

Scanned with OKEN Scanner

उन्होंने (1932) ई. में अपनी पुस्तक 'परपसिव विहेवियर इन इनिमल एण्ड मैन' 'Purposive Behaviour Animal and Man' में अपने सिद्धान्त की व्याख्या की है। वह उद्देश्यात्मक व्यवहारवाद में विश्वास रखते थे। उनकी नजर में सीखा हुआ व्यवहार सदैव किसी लक्ष्य की ओर निर्देशित तथा उन्मुख होता है। उनका यह दृढ़ मत था कि वस्तुनिष्ठ रूप से सिखा हुआ व्यवहार योग्य उद्देश्यों द्वारा ही व्यवहार नियमित होता है। इस कारण इनको प्रयोजनशील व्यवहारवादी कहा जाता है। यह सिद्धान्त अनेक नामों से पुकारा जाता है, जैसे—उद्देश्यात्मक व्यवहार का सिद्धान्त 'Theory of Purposive Behaviour' चिह्न-स्वरूप सिद्धान्त 'Sign-Gestalt Theory' चिह्न-महत्त्व सिद्धान्त 'Expectancy Theory' ज्ञानात्मक-सिद्धान्त 'Cognitive Theory' इत्यादि।

'टॉलमैन' ने अपनी प्रणाली में सम्मिश्रण को स्वीकार किया है। उन्होंने अन्य सम्प्रदायों (Schools) से कई सिद्धान्त लिए हैं।

प्रश्न 20. टॉलमैन के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– **टॉलमैन के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएं (Main Characteristics of Tolman's Theory of sign learning)**—इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. **विशुद्ध व्यवहारवाद (Genuine Behaviourism)**—टॉलमैन की प्रणाली विशुद्ध व्यवहारवाद पर आधारित है। यह विधि के रूप में आत्मविश्लेषण (Introspection) का खण्डन करती है। चेतना, युक्तिमान विचार जैसी क्रियाओं की चर्चा करते हुए उनका अभिप्राय केवल इस बात से था कि निरीक्षित व्यवहार की व्याख्या की जाए।
2. **आणविक व्यवहार (Molecular Behaviour)**—टॉलमैन ने आणविक (Molecular) व्यवहार पर बल नहीं दिया बल्कि सामूहिक व्यवहार पर बल दिया है। सामूहिक व्यवहार में निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं—
   (I) लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में यह हमेशा वातावरण सम्बन्धी समर्थनों का प्रयोग करता है।
   (II) यह लक्ष्य निर्देशित होता है। यह हमेशा किसी चीज को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता है।
   (III) यह चुनाव करता है अर्थात् लम्बे और कठिन साधनों की अपेक्षा यह छोटे और आसान साधनों को चुनता है। इसे लघु प्रयत्न का सिद्धान्त (Principle of least effort) कहा जाता है।
   (IV) यह शिक्षणीय (Docile) है अर्थात् सामूहिक व्यवहार में शिक्षणीयता होती है। शिक्षणीयता उद्देश्य का ही चिह्न है।

प्रश्न 21. टॉलमैन के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उत्तर– **टॉलमैन के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य (Main Theme of Tolman's Theory)**—टॉलमैन विश्वास रखता है कि लक्ष्य हो जाने वाले मार्ग को ही सीखा जाता है। अनुक्रियाओं (Responses) को नहीं सीखा जाता। हम अर्थ सीखते हैं गतियाँ नहीं, हम उन चिह्नों की सहायता लेते हैं जो अर्थ सिखाते हैं। इन चिह्नों तथा लक्ष्यों के आपस के सम्बन्ध को सीखते हैं। दूसरे शब्दों में हम सीखते हैं कि कौन-सी चीज़ किस ओर जाती है। अतः सीखने में चिह्नों को पहचानना और लक्ष्य से सम्बन्धित उनके अर्थों को समझना शामिल है। घटनाओं और अनुक्रम चिह्न-व्यवहार के तत्व को स्पष्ट करता है अर्थात् विशिष्ट लक्ष्यों पर पहुँचने की ओर संकेत करता है। इस अनुक्रम का परिणाम है—साधन और साध्य के संबंध को सीखना।

प्रश्न 22. टॉलमैन के सिद्धान्तों का शैक्षिक महत्त्व बताइए।

उत्तर– **शैक्षिक महत्त्व (Educational Implications)**—

(I) लक्ष्यों को परिभाषित करना (Defining the Goal-objects)—अध्यापकों और माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए अनुकूल उचित लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करें।

Scanned with OKEN Scanner

(II) पुरस्कार और दण्ड का प्रयोग (Use of Reward and Punishment)—लक्ष्यों की स्थापना में पुरस्कार एवं दण्ड की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

(III) ठीक विधियों पर बल (Emphasis on Right Methods)—लक्ष्य की अपेक्षा रास्ता महत्त्वपूर्ण होता है। अतः ठीक विधियां अपनाई जानी चाहिए। सार्थक-शिक्षण को प्रोत्साहित करना चाहिए। अन्धगतियों को उत्साहित नहीं करना चाहिए। पूर्ण और उसके अंशों में स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

(IV) व्यक्तिगत-शिक्षा (Individual Education)—शिक्षा विद्यार्थियों की आयु, पूर्वानुभूति तथा क्षमताओं पर आधारित होनी चाहिए।

प्रश्न 23. निर्मितवाद से आप क्या समझते हैं?

उत्तर— **सम्प्रत्यय (Concept)**—संज्ञान (Cognition) ज्ञान होने की प्रक्रिया होती है। इसमें चिंतन, समझ, प्रत्यक्षण, स्मरण करना, समस्या समधान तथा अन्य अनेक मानसिक प्रक्रियाएँ आती हैं जिससे हमारा दुनिया का ज्ञान विकसित होता है। हम दुनिया को जान सकते हैं। यह हमें इस योग्य बनाता है कि हम वातावरण के साथ विशिष्ट ढंग से रह सकें।

कुछ संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक (Cognitive Psychologists) मानव मन को कम्प्यूटर की तरह एक सूचना प्रक्रमण तंत्र (Information Processing System) के रूप में देखते हैं। इस विचारधारा के अनुसार मन एक कम्प्यूटर की तरह का होता है जो सूचना को प्राप्त (Receive) करता है, प्रकरण (Processes) करता है, रूपांतरण (Transforms) करता है, संचित (Stores) करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी पुनःप्राप्ति (retrieves) करता है। आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनुष्यों को उनके सामाजिक एवं भौतिक वातावरण के अन्वेषणों के द्वारा अपने मन की सक्रिय रचना करने के रूप में देखता है। इस विचारधारा को कभी-कभी 'निर्मितिवाद' (Constructivism) कहते हैं। बाल-विकास के विषय में पियाजे का सिद्धान्त (Piaget's Theory) मानवमन के विकास का निर्मितिपरक सिद्धान्त (Constructivist Theory of Development of the Mind)।

मूल रूप से निर्मितिवाद अवलोकन (Observation) और वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित एक सिद्धान्त है जिसमें यह पता लगाया जाता है कि व्यक्ति कैसे सीखते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अपनी समझ (Understanding) और विश्व सम्बन्धी ज्ञान का निर्माण वस्तुओं के अनुभवों और उनकी अभिव्यक्ति के माध्यम से करते हैं। जब हम किसी नई चीज का सामना करते हैं तब हमें अपने पूर्व विचारों और अनुभवों के साथ इसका मेल (Reconcile) करना पड़ता है। चाहे हम नई सूचना को असम्बद्ध मानकर अस्वीकार कर दें या जिस पर हम विश्वास करते हों उसमें परिवर्तन कर दें। लेकिन स्थिति कोई भी हो, हम अपने ज्ञान के स्वयं ही रचयिता होते हैं। इसे करने के लिए हमें प्रश्न पूछने चाहिएं, खोज करनी चाहिए तथा जो कुछ हम जानते हैं उसका मूल्यांकन करना चाहिए।

कक्षा की परिस्थिति में अधिगम की निर्मितिक दृष्टिकोण (Constructivist View Point) विभिन्न शिक्षण अभ्यासों की ओर संकेत करता है।

सामान्य दृष्टि से, इसका अभिप्राय है विद्यार्थियों को सक्रिय तकनीकों (प्रयोगों, वास्तविक संसार, समस्या समाधान आदि) के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित करना ताकि अधिक ज्ञान का सृजन किया जा सके तथा फिर अपनी बातों में जो कुछ विद्यार्थी कर रहे हैं उसके करे में तथा उनकी विम्बित कैसे परिवर्तित हो रही है, को प्रतिबिम्बित (Reflect) करना। अध्यापक यह सुनिश्चित करता है कि उसे विद्यार्थी में पूर्व उपस्थित (Pre-existing) सम्प्रत्ययों का बोध है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

4

अपवंचन तथा वंचित बालक : उनके समायोजन तथा शिक्षा के लिए उपाय
[Deprivation and Deprived Children: Measures for their Adjustment and Education]

4.1 निर्धनता तथा वैश्वीकरण के सन्दर्भ में बाल्यावस्था (Childhood in the Content of Poverty and Globalisation)

1. बाल्यकाल से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

अथवा

"बाल्यावस्था जीवन का अनोखा काल है" इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए और इस काल की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर–शैशवावस्था के पश्चात् बच्चा जिस अवस्था में प्रवेश करता है उसे बाल्यकाल (Childhood stage) कहते हैं परन्तु आज तक इस संसार में कोई भी व्यक्ति विद्वान, मनोवैज्ञानिक या वैज्ञानिक नहीं हुआ है जो यह बता सके कि आज या इस सप्ताह या फिर इस महीने में यह बच्चा शैशवकाल से बाल्यकाल में प्रवेश करेगा। फिर भी सुविधा के लिए मनोवैज्ञानिकों तथा वैज्ञानिकों ने 5 वर्ष से लेकर 12 वर्ष के मध्य की आयु को बाल्यकाल माना है। परन्तु प्रश्न वही है कि क्या 5वें वर्ष में प्रवेश करते ही बच्चा एकदम से शैशव से निकलकर बाल्यकाल में प्रवेश कर जाता है या फिर 18 वर्ष के पूर्ण होने पर अगले ही दिन वह किशोर हो जाएगा। यह बहुत मुश्किल है। इसलिए बाल्यकाल को प्रकट करने वाले विशेषताओं जैसे शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक, बौद्धिक तथा मानसिक विकास को ध्यान में रखते हुए हम यह निश्चित करते हैं कि शैशव अब बाल्यकाल में बदल चुका है। यह अवस्था बड़ी ही नाजुक होती है। इसे मिथ्या परिपक्वता की अवस्था (Pseudo Maturity) की अवस्था के रूप में जाना जाता है। इस अवस्था में बच्चा अपने वातावरण को समझते हुए उससे सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है। वह अब मानसिक रूप से भी थोड़ा स्थिर यानी गंभीर होने लगता है। वह अपनी पहचान को निश्चित करने के लिए सामाजिक ताने-बाने को समझने का भरसक प्रयास करता है। इस अवस्था को गैंग ऐज (Gang-age) के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस अवस्था में समूह गतिविधियों का विकास बहुत ही तेजी से होता है। इस अवस्था की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. विकास की धीमी पर स्थिर गति (Period of Slow and Steady Growth)–जहाँ शैशवकाल में विकास की गति तेज तथा गहन होती है वहीं बाल्यकाल में यह गति अत्यन्त धीमी हो जाती है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता है कि गति रुक जाती है। यहाँ गति बड़ी ही स्थिरतापूर्वक आगे बढ़ती है। विशेष

Scanned with OKEN Scanner

रूप से लड़कों में यह गति लड़कियों की बजाय ज्यादा धीमी होती है। इस अवस्था में बच्चा प्रतिरोधक क्षमता (Immune system/Resistance) को विशेष रूप से विकसित कर लेता है।

2. स्वतंत्रता (Independence)–शैशवावस्था में जहाँ हर वह काम जिसे एक बच्चा स्वयं भी कर सकता है, दूसरे पर ज्यादा निर्भर रहता है। परन्तु इस अवस्था (Childhood) में बच्चा ज्यादा से ज्यादा काम स्वयं करना चाहता है। वह हर तरह की स्वतंत्रता चाहता है। जैसे-जैसे वह शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक अनुभव प्राप्त करता है, वह उन अनुभवों के आधार पर समाज में अपने आपको दूसरों से ताल-मेल बिठाने तथा अपनी पहचान के लिए प्रयास करता है। निःसन्देह वह इस अवस्था में अपने आपको दुनिया से जोड़कर देखता है और अपने समस्त कार्यों को खुद ही करना चाहता है। इस अवस्था में माँ-बाप पर निर्भर रहना बच्चे को पसन्द नहीं होता। वह उन्हें केवल सामाजिक तथा जीवन से संबंधित जरूरतों की पूर्ति करने वाले ही मानता है।

3. आदर्शवादी दृष्टिकोण (Realistic Attitude)–इस अवस्था में बालक संसार की कटु सच्चाइयों को धीरे-धीरे स्वीकार करने लगता है। वह अपने स्वयं के द्वारा रचे गए स्वप्नलोक, कल्पनाओं तथा परियों की दुनिया से निकलकर संसार की वास्तविकता से परिचित होने का प्रयास करता है। स्वप्नलोक की कल्पनाओं को धीरे-धीरे एक सशक्त वास्तविकतावादी की तरह छोड़ने लगता है।

4. भावनात्मक स्थिरता तथा नियंत्रण (Emotional Stability and Control)–इस अवस्था में बालक अपनी भावनाओं पर धीरे-धीरे नियंत्रण करना सीख जाता है। वह अब भावनात्मक रूप से अधिक स्थिर होता है। अपने कार्यों में शैशवकाल के दौरान जहाँ भावनाओं को मुख्य स्थान देने वाला बालक अब अपने कार्यों में बुद्धि को महत्त्व देने लगता है। अब वह अपनी भावनाओं को समाज द्वारा स्थापित तथा स्वीकृत तरीकों से दर्शाता है।

5. सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन (Change in Social Behaviour)–इस अवस्था में बच्चे के सामाजिक व्यवहार में भी बड़ा बदलाव आ जाता है। वह सारा दिन उद्देश्यहीन घूमता रहता है। उसे अब समूह में खेलना, बैठना तथा उठना पसन्द आता है। वह अपने खिलौनों तथा अन्य चीजों को दूसरों से बाँटने लगता है। वह अपने समूह के प्रति बड़ा वफादार होता है तथा अपने साथियों के लिए स्वयं को खतरों में डालने से पीछे नहीं हटता।

6. शब्द भंडार में वृद्धि (Increase in vocabulary)–बाल्यकाल में बच्चों का शब्द भण्डार बड़ी तेजी से बढ़ता है। उनके शब्द-भण्डार में कितने ही ऐसे शब्द होते हैं जिनका प्रयोग तो वह करता है, परन्तु उनके अर्थ को पूर्ण रूप से समझता नहीं है।

7. शारीरिक क्रियाएँ (Physical Activities)–बाल्यकाल में शारीरिक क्रियाओं के प्रति बच्चे का रूझान ज्यादा होता है। वह प्रत्येक काम को स्वयं करके देखना तथा सीखना चाहता है। वह चुपचाप बैठकर रहना पसन्द नहीं करता अपितु हर प्रकार के काम में स्वयं को शामिल करना चाहता है।

8. ज्ञान-इन्द्रियों का सम्पूर्ण विकास (Complete Development of Senses)–इस अवस्था में बालक अपनी समस्त ज्ञान इन्द्रियों (आँख, नाक, कान जिह्वा, त्वचा) का प्रयोग सफलतापूर्वक करना सीख जाता है। परन्तु आवाज में बदलाव 19 वर्ष की आयु तक आता रहता है। जैसे-जैसे बालिकाएँ बड़ी होती जाती हैं उनकी आवाज पतली तथा तीखी होती जाती है और बालकों की आवाज भारी तथा रोबीली होती जाती है।

9. तार्किक क्षमता का विकास (Development of capacity of debate)–इस अवस्था में बालक में तर्क-वितर्क की शक्ति बढ़ जाती है। वह हर बात को क्यों? कैसे? इन प्रश्नों के साथ जानना तथा समझना चाहता है।

10. बोध एवं चिन्तन की शक्ति (Understanding and thinking power)–पूर्व बाल्यकाल (Early childhood) में बोध-शक्ति (Understanding) और चिन्तन-शक्ति (Thinking Power) कम होती है। सामान्य प्रश्नों तथा उत्तरों से वह संतुष्ट हो जाता है, परन्तु उत्तर-बाल्यकाल अवस्था में उसकी बोध तथा चिन्तन-शक्ति में तेजी से विकास होता है।

Scanned with OKEN Scanner

11. नैतिकता का विकास (Development of Morality)–बाल्यकाल के उत्तरार्ध में बालक में नैतिकता का विकास होने लगता है। उसमें सही तथा गलत के प्रति दृष्टिकोण स्वतः ही पनपने लगता है। वह नैतिक आचरण (Moral Conduct) के विषय में सोचने लगता है और वे सभी कार्य, जिन्हें नैतिक रूप से समाज स्वीकार नहीं करता, उन्हें करने से बचने लगता है।

12. ठीक और गलत की पहचान (Knowledge regarding Right and Wrong)–इस अवस्था में बच्चे का क्या सही है? और क्या गलत? इन सभी बातों का ज्ञान हो जाता है। वह केवल उन्हीं कामों को करता है जो उसे सही लगते हैं।

13. खोज एवं भ्रमण के प्रति लगाव (Love for Exploring and Touring)–इस अवस्था में बालक को घूमना तथा खोज करना अत्यन्त अच्छा लगता है। विशेषज्ञ **बर्ट** (Burt) के अनुसार, बच्चों में विद्यालय से भागने तथा घूमने की प्रवृत्ति 9 वर्ष की आयु में चरम पर होती है। वह नए-नए स्थानों को देखना चाहता है तथा उनके बारे में अपने दोस्तों से बात करना उसे पसन्द आता है।

14. काम प्रवृत्ति का विकास (Sexual Development)–इस अवस्था में बालक में काम शक्ति बहुत अधिक होती है परन्तु इसका विकास बड़ी मुश्किल से होता है। अगर होता भी है तो बाल्यकाल के उत्तरार्ध के भी अन्तिम हिस्से में। काम (वासना) के रूप में उसे विपरीत लिंग की तरफ आकर्षण महसूस होने लगता है। परिवार में भी बहन तथा भाई साथ-साथ कम ही रहते हैं। यद्यपि वे एक-दूसरे के बारे में जानना चाहते हैं। परन्तु एंटागोनिस्ट (antagonistic) व्यवहार के कारण एक-दूसरे से दूर रहते हैं।

◆◆◆

2. बाल्य-अवस्था से आप क्या समझते हैं? बाल्य-अवस्था के दौरान बालकों की शिक्षा हेतु किन-किन बातों का ध्यान रखना अनिवार्य है?

अथवा

"शैक्षिक दृष्टि के बाल्यावस्था से अधिक महत्त्वपूर्ण और अवस्था नहीं है" इस कथन की विवेचना कीजिए और बताइए कि इस अवस्था के लिए क्या स्वरूप होना चाहिए?

उत्तर–शैशवावस्था के पश्चात् बच्चा जिस अवस्था में प्रवेश करता है उसे बाल्यावस्था *(Childhood)* कहते हैं, तथा इस अवस्था की अवधि 5 वर्ष के बाद शुरू होकर 12 वर्ष तक की होती है। दूसरे शब्दों में यह शैशव और किशोरावस्था के बीच की अवस्था होतीहै। इस अवस्था में शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा बौद्धिक विकास होते हैं। यह मिथ्या-परिपक्वता *(Pseudo-Maturity)* की अवस्था होती है। यह वही अवस्था होती है जब बच्चा अपने वातावरण पर नियंत्रण पाना सीखता है। उनमें मानसिक स्थिरता भी आती है इसी अवस्था में सामाजीकरण की प्रक्रिया सशक्त-रूप से शुरू होती है। 'गैंज-ऐज *(Gang Age)* इसी अवस्था का दूसरा नाम है अर्थात् इसी अवस्था में समूह-गतिविधयों का विकास बहुत ही तेजी से होता है। जिस प्रकार शैशवावस्था की विशेषताओं का ज्ञान एक अध्यापक के लिये आवश्यक होता है, उसी प्रकार बाल्यावस्था की विशेषताओंका ज्ञान भी अध्यापक के लिये आवश्यक है। बाल्यावस्था की कुछ मुख्य विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार से हैं–

(1) शारीरिक विकास की गति धीमी (Slow Physical Growth)–बाल्यावस्था में बालक की शारीरिक वृद्धि की गति शैशवास्था की अपेक्षा धीमी हो जाती है। लेकिन इतनी धीमी भी नहीं। लड़कियों में यह वृद्धि तेजी होती है लड़कों में धीमी। इस अवस्था में शरीर की प्रतिरोध *(Resistance)* की शक्ति बढ़ जाती है।

(2) शारीरिक क्रियाएँ (Physical Activities)–इस अवस्था में शारीरिक क्रियाओं को सीखने की प्रक्रिया को सीखने की प्रक्रिया तेज हो जाती है। बच्चा न कुछ सीखता ही रहता है। वह चुपचाप बैठना पसंद नहीं करता। ऐसा इसलिये भी होता है कि इस अवस्था में बच्चे की शारीरिक वृद्धि हो चुकी होती है।

Scanned with OKEN Scanner

(3) प्रश्नोत्तर की शक्ति (Power of Questioning an d Answering)–बाल्यकाल में प्रश्न पूछने की शक्ति का विकास हो जाता है। बच्चे नये-नये अनुभवों के आधार पर प्रश्न पूछता रहता है तथा उत्तर मिलने पर ही संतोष का अनुभव प्राप्त करता है। अतः उनमें जिज्ञासा की प्रवृत्ति हावी हो जाती है। हर स्थिति में वे अपनी जिज्ञासा को शांत करना चाहते हैं।

(4) बोध और चिन्तन शक्ति (Understanding and Thinking Power)–पूर्व बाल्यकाल *(Ealrly Childhood)* में बोध शक्ति *(Understanding Power)* और चिन्तन शक्ति *(Thinking Power)* कम होती है। साधारण उत्तरों से ही बच्चा संतुष्ट हो जाता है। लेकिन उत्तर-बाल्यकाल *(later Childhood)* में ये शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। वह उचित अनुचित में अन्तर ढूंढ सकता।

(5) मानसिक स्थिरता (Mental Stability)–यह अवधि मानसिक और शारीरिक स्थिरता की अवधि होती है। इसे मिथ्या-परिपक्वता *(Pseudo-maturity)* का काल भी कहा जाता है क्योंकि किशोरावस्था में एक बार फिर मानसिक अस्थिरता भी अवस्था आती है।

(6) दृश्य-श्रव्य इन्द्रियों का पूर्ण विकास (Complete Development of Audio and Visual senses)–8-9 वर्ष की आयु तक बच्चों में देखने और सुनने की इन्द्रियों का विकास पूर्ण रूप से हो जाता है। लेकिन आवाज की पिच *(Pitch)* के विभेदीकरण से विकास की प्रक्रिया 19 वर्ष तक चलती रहती है। इस आयु वर्ग में बच्चे कुछ करना या बनना अधिक पसंद करते है किसी एक कौशल को अर्जित करने की अपेक्षा।

(7) शब्द भंडार में वृद्धि (Increase in vocabulary)–8 से 12 वर्ष की आयु के दौरान बच्चों में शब्दों का भंडार बढ़ जाता है तथा उन्हें अंक भी अधिक याद रहते हैं। अतः इस अवस्था में भाषा का विकास अधिक होता है। शब्द कोश विशाल हो जाता है। भाषा का विकास उनका नियंत्रण होने लगता है तथा लम्बे-लम्बे वाक्य आदि उन्हें याद रहने लगते हैं। उनके उच्चारण में भी सुधार होता है।

(8) रुचियों का विकास (Development of Interests)–इस अवधि में बच्चों की रुचियों का बहुत अधिक विकास होने लगता है। लेकिन ये रुचियाँ स्थाई नहीं होती। वे वातावरण में परिवर्तन के साथ ही बदल जाती है।

9-10 वर्ष की आयु तक बालक में जो विशिष्ट योग्यताएँ होती है और जो प्रकृति से उनको मिली होती है, परिपक्व नहीं हो पाती। 14-15 वर्ष तक सामान्य योग्यताओं में सुधार अवश्य होता है।

स्कूल के विषयों के प्रति रुचियों में भी उतार-चढ़ाव आते रहेते हैं। उनमें विभिन्न करकों *(Factors)* के परिणामस्वरूप परिवर्तन आते हैं, जैसे अध्यापक का बदल जाना, विषय-वस्तु का बदल जाना, शिक्षण-विधियों में परिवर्तन करना आदि।

(9) सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन (Change in Social Behaviour)–इस अवस्था के दौरान बच्चे के सामाजिक व्यवहार या आचरण में भारी परिवर्तन आता है। इस अवस्था में बच्चों में निरुद्देश्य घूमने का प्रवृत्ति *(Gregarious Instinct)* अपनी चरम सीमा पर होती है। बच्चा किसी न किसी समूह का सदस्य बन जाता है लेकिन इस अवस्था में वह किसी प्रकार की कुर्बानी की भावना का प्रदर्शन नहीं करता। उसका व्यवहार सामाजिक प्रशंसा या दोष से जुड़ा होता है। वह समूह की शक्ति को अधिमान देता है।

(10) रचनात्मक कार्यों की प्रवृत्ति का विकास (Development of Construction instinct)–बाल्यावस्था के दौरान बच्चों में रचनात्मक कार्यों में रुचि का विकास हो जाता है। लड़कों में औजारों *(Tools)* की सहायता से कार्य करने से रुचि बढ़ जाती है तथा लड़कियों में कपड़ों की सहायता से गुड़ियों की पौशाकें बनाने में रुचि बढ़ती है। इसी प्रकार लड़कियाँ सिलाई, कढ़ाई और स्वैटर बुनने में अपनी रुचि का प्रदर्शन करने लगती है। इस अवधि के दौरान चीजों को इकट्ठा करने की प्रवृत्ति भी होती है।

(11) खोज एवं भ्रमण के प्रति प्रेम (Love of Exploring and Wandering)–बच्चों में खोज करने और भ्रमण करने के प्रति बहुत प्रेम विकसित होता है। वर्ट *(Burt)* के अनुसार, 9 वर्ष की आयु में स्कूल से भागने और भ्रमण करने की प्रवृत्ति चरम सीमा पर होती है। बच्चे नये-नये स्थानों पर घूमना चाहते हैं। जब भी उन्हें अवसर मिलता है वे स्कूल से का घर से भाग जाते हैं तथा इधर-उधर घूमते रहते हैं। एक

Scanned with OKEN Scanner

बुद्धिमान अध्यापक बच्चों की इस प्रवृत्ति या उचित प्रयोग उपयुक्त क्रियाओं की व्यवस्था करके कर सकता है। जैसे स्काऊटिंग, एन. सी. सी इत्यादि।

(12) काम-प्रवृत्ति की न्यूनता (Sex instinct)–इस अवधि में काम प्रवृत्ति करना पसंद करता है। काम-प्रवृत्ति के प्रदर्शन के अवसर उसे बहुत कम मिलते हैं।

(13) ठीक और गल्त की धारणा का निर्माण (Formation of concepts of right and worng) –पियाजे *(Piaget)* द्वारा किये गये खोज कार्य की परिणामस्वरूप छोटे बच्चों में ड्यूटी और ठीक गल्त की धारणा का निर्माण 7-8 वर्ष की आयु तक हो जाता है। ठीक तथा गलत की धारणा का निर्माण उन प्रौढ़ों के विचारों पर आधारित होता है। उनका वे बच्चे बहुत सम्मान करते हैं। इस आयु के पश्चात् वह अवधि आती है जब बच्चे प्रौढ़ों के किसी भी आज्ञा का पालन नहीं करते लेकिन नियमों का सम्मान करते हैं।

(14) नैतिकता का विकास (Development of Morality)–11-12 वर्ष की आयु तक बच्चों में नैतिक निर्णया के प्रति दृष्टिकोणों का विकास हो जाता है। वे परिस्थितियाँ पर विचार करना शुरू कर देते हैं। वे समाज के नैतिक आचरण *(Moral Code)* में दृढ़ विश्वास प्राकर करते हैं। वे समाज के निर्णयों के विरुद्ध नहीं जाते। लेकिन यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि बच्चों में वैयक्तिक भिन्नताएँ भी होती है तथा उस आयु वर्ग का बालक सामाजिक निर्णयों से स्वयं को स्वतन्त्र रखता हो और समाज की पारम्परिक नैतिकता में विश्वास न करता हो।

(15) कल्पना और स्मरण-शक्ति (Imaginations and Memory)–इस आयु वर्ग में कल्पना और स्मरण-शक्ति का पर्याप्त विकास हो जाता है। उसमें रचनात्मक कल्पना विकसित होती है अर्थात् वह हर समय कुछ न कुछ बनाने के प्रयास में रहता है।

बाल्यवस्था में शिक्षा
(Education in Childhood)

बाल्यावस्था में जो प्रमुख विकास दिखाई देता है उसमें निम्नलिखित पक्ष शामिल होते हैं–

(1) स्कूल की परिस्थितियों में बच्चे ईर्ष्या का दृष्टिकोण रखते हैं। वे अपनी कक्षा के अन्य विद्यार्थियों से उनकी सफलता पर ईर्ष्या करते हैं।

(2) घर पर भी वे उन छोटे या बड़े भाई-बहिनों से ईर्ष्या करते हैं जिनकी तरफ उनके माता-पिता अधिक ध्यान देते हैं।

(3) प्राथमिक कक्षाओं में बच्चे गर्व अनुभव करते हैं जब वे कोई 'चुटकुला' सुना देते हैं और समूह में उसे सबसे अच्छा 'जोकर' मान लिया जाता है।

(4) उत्तर-बाल्यावस्था में बच्चे संकेतों और चिह्नों *(Symbols and Sings)* को समझने लगते हैं।

(5) घरेलू समस्याएं, बुरा स्वास्थ्य, वास्तविक या काल्पनिक कुठाएँ *(Real or imagined frustrations)* आदि भी बालक को प्रभावित करते हैं।

अतः इन सभी विकास-क्रियाओं को देखते हुए बाल्यावस्था के दौरान बालकों की शिक्षा के लिये निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना अतिआवश्यक है।

(1) बालकों के व्यवहारों के प्रति सेचत रहना (Becareful about the behaviours of the children)–बाल्यावस्था में बालक जीवन की वास्तविकताओं को समझना शुरू कर देता है। यह बोध पहले की अपेक्षा इसी अवस्था में अधिक होता है। वह अपने भविष्य के बारे में सोचना शुरू कर देता है तथा एक आदर्श की तलाश में रहता है। यह आदर्श वह अपने पिता, माता, दोस्त या अध्यापक में देखता है। अतः इसका अर्थ यह हुआ कि बड़ों को बालक के व्यवहार के प्रति बहुत ही सावधान रहना चाहिए ताकि वांछित दिशा में उनके व्यवहारों को विकसित किया जा सके।

(2) प्रवृत्तियों का विकास (Development of Tendencies)–बालकों में प्रवृत्तियों के विकास के परिणामस्वरूप उनकी शैक्षिक प्रक्रिया में परिवर्तन लाने की आवश्यकता पड़ती है। अतः इस प्रकार की क्रियाओं को संचालित किया जाना चाहिये जिनसे उनकी प्रवृत्तियों का विकास हो।

Scanned with OKEN Scanner

(3) सामाजिक विज्ञानों का शिक्षण (Teaching of Social Sciences)–इस अवस्था में बालक जीवन की वास्तविकताओं में अधिक रुचि रखता है। अतः उसे इस अवधि में सामाजिक विज्ञानों के कुछ पक्षों का अध्ययन भी करवाया जाना चाहिए। विशेषकर इतिहास, भूगोल तथा सामाजिक अध्ययन।

(4) मानसिक व्यायाम (Mental Exercise)–शैशवावस्था के दौरान शिशुओं में पढ़ने-लिखने और गणित की योग्यता ग्रहण करने की व्यवस्था करने का प्रयास करने की सिफारिश की गई थी। गणित के पाठ्यक्रम में, इस अवस्था में ऐसी व्यवस्था हो कि बच्चों को उचित मानसिक व्यायाम करने का अवसर मिले।

(5) लेखन शक्ति का विकास (Development of Writing Power)–इस अवस्था के दौरान भाषा के पाठों की इस प्रकार की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि बालकों की लिखने की शक्ति का विकास इस सीमा तक हो जाये कि उनमें रचनात्मक प्रवृत्ति भी शामिल हो। 6 वर्ष की आयु तक बच्चों को गीत और कविताएँ सिखाई जानी चाहिए।

(6) सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular activities)–इस अवस्था के सर्वांगीण विकास के लिये सहगामी क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे बच्चों में रचनात्मकता और आत्म-प्रदर्शन की प्रवृत्ति का विकास होगा।

(7) अधिक संभागिता (More Participation)–इस अवधि के दौरान पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए। इस अवस्था के लिये संचालित शिक्षा में बालकों की अधिक से अधिक संभागिता को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। बालक 'करके सीखना' पद्धति के अन्तर्गत अधिक से अधिक सीखें।

(8) विषयों का चयन (Selection of Subjects)–इस अवस्था में बालकों के लिये कुछ ऐसे विषयों का अध्ययन आवश्यक है जो उनकी आवश्यकताओं को पूरा करते हो तथा भविष्य में उन्हें लाभप्रद हो। इस अवस्था में इन उद्देश्यों का चयन किया जा सकता है–भाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन, ड्राईंग, विज्ञान, चित्र कला इत्यादि।

◆◆◆

3. निर्धनता क्या है? निर्धनता के सन्दर्भ में बाल्यावस्था का वर्णन कीजिए।
(What is Proverty? Describe childhood in the context of Provery.)

अथवा

निर्धनता से आपका क्या अभिप्राय है? निर्धनता के क्या कारण हैं? निर्धनता के सन्दर्भ में बाल्यावस्था का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by Poverty? What are the couses of Poverty? Describe the childhood in context of Poverty.)

उत्तर–निर्धनता एक सामाजिक एवं आर्थिक समस्या है। इसकी उत्पत्ति एवं स्वरूप बड़ा जटिल है। विश्व के सामने गरीबी की समस्या एक सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक चुनौती है। गरीबी एक सर्वव्यापी समस्या है और समृद्ध देश भी इसकी चपेट से नहीं बच पाये हैं। विश्व में गरीब देशों की सख्याँ इतनी है कि उन्हें तीसरी दुनिया के नाम से पुकारा जाता है। तीसरी दुनिया के लोगों को अच्छा भोजन, वस्त्र एवं मकान उपलब्ध नहीं हैं। भारत में भी ऐसे बहुत से परिवार हैं जो औसत दर्जे का जीवन भी व्यतीत नहीं कर पाते। वे गरीबी से भयंकर रूप से पीड़ित हैं। वे सड़कों अथवा फुटपाथों पर ही अपना दम तोड़ते हैं, भीख माँगकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं तथा वे लोगों की दया पर ही जीवित रहते हैं।

निर्धनता का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Poverty)

गरीबी अथवा निर्धनता का अर्थ उस स्थिति से है, जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में असमर्थ रहता है।

Scanned with OKEN Scanner

निर्धनता एक आर्थिक स्थिति है, किन्तु यह एक सामाजिक पद को भी प्रकट करती है, क्योंकि एक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध सामाजिक श्रेणी और वर्ग से भी है। गरीबी और अमीरी तुलनात्मक शब्द हैं। साधारण भाषा में गरीबी का अर्थ आर्थिक असमानता, आर्थिक पराश्रितता और आर्थिक अकुशलता से लिया जाता है। गरीबी को केवल आर्थिक अभाव के रूप में प्रकट करना इसका संकुचित अर्थ है।

निर्धनता की परिभाषा विभिन्न समाजों में (देशों) भिन्न-भिन्न प्रकार से दी गई है, फिर भी इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना है। जैसे—अमेरिका में निर्धनता की धारणा भारत से बिल्कुल ही अलग होगी, क्योंकि अमेरिका में साधारण व्यक्ति कहीं अधिक ऊंचे जीवन स्तर पर रह रहा है। गरीबी की कुछ परिभाषायें इस प्रकार दी गयी हैं—

गिलिन और गिलिन के अनुसार, "गरीबी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति या तो अपर्याप्त आय अथवा मूर्खतापूर्ण व्यय के कारण अपने जीवन-स्तर को इतना ऊंचा नहीं रख पाता कि उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बनी रह सके और उसको तथा उस पर आश्रितों को अपने समाज के स्तरों के अनुसार उपयोगी ढंग से कार्य करने के योग्य बनाये रखा जा सके।"

वीवर लिखते हैं, "गरीबी एक ऐसे जीवन स्तर के रूप में परिभाषित की जा सकती है जिसमें स्वास्थ्य और शरीर सम्बन्धी क्षमता नहीं बनी रहती।"

डॉ. योगेश अटल ने गरीबी को तुलनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय आय से वंचित रहने के रूप में परिभाषित किया है। आप लिखते हैं, "गरीबी की अवधारणा का सम्बन्ध सापेक्ष रूप से वंचित रहने के तथ्य से है।"

जे. डी. गोडार्ड के अनुसार—"निर्धनता उन वस्तुओं का अभाव या अपर्याप्त पूर्ति है, जो एक व्यक्ति तथा उसके आश्रितों को सुस्वस्थ एवं कर्मठ बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं।"

गरीबी आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी एक सापेक्ष शब्द है। जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह गरीब है तो इसका अर्थ यह है कि वह उन सभी वस्तुओं को नहीं खरीद सकता है जिनकी वह इच्छा करता या पसन्द करता है। अतः वस्तुओं को चुनने एवं पसन्द करने की सीमा के रूप में भी गरीबी को परिभाषित किया जा सकता है। आय की दृष्टि से गरीब लोगों की आय इतनी ही होती है कि वे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं को ही जुटा पाते हैं, सुविधाओं और ऐश्वर्य की वस्तुओं को नहीं।

ऊपर दी गयी परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि निर्धनता वह दशा है जबकि व्यक्ति तथा उसके आश्रितों को जीवन का एक न्यूनतम स्तर बनाये रखने के लिये आवश्यक सामग्री भी उपलब्ध नहीं हो पाती है।

गरीबी एक सापेक्ष शब्द है। इसका अर्थ यह भी है कि एक देश जिसे हम गरीब कहेंगे, उसे दूसरे देश धनवान कह सकते हैं। इसका कारण यह है कि गरीबी का निर्धारण उस देश की प्रथाओं और जीवन-स्तर के आधार पर होता है। भारत में गरीबी की रेखा वह नहीं है जो अमेरिका और इंग्लैण्ड में है।

गरीबी दो देशों की तुलना में नहीं वरन् एक ही देश में भी विभिन्न वर्गों, समूहों, जातियों, क्षेत्रों, प्रान्तों, व्यवसायों, संस्कृतियों आदि की दृष्टि से भी सापेक्ष शब्द है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन-स्तर का जो आधार हरिजनों का है, वही व्यापारियों का नहीं होगा, जो आधार श्रमिकों का है, वही पूंजीपतियों का नहीं होगा, जो आदिम जातियों का है, वही शहरी लोगों का नहीं होगा, जो पंजाब का है वही राजस्थान, केरल या चेन्नई का नहीं होगा। गरीबी का सम्बन्ध एक समूह में जीवन जीने के पैमाने से है। एक संस्कृति में गरीबी के माप का जो आधार है, उसे हम दूसरी संस्कृति पर लागू नहीं कर सकते। वस्तुतः गरीबी का सम्बन्ध जीवन-स्तर से है और आय ही जीवन-स्तर को तय करने में मुख्य कारक है।

भारत में निर्धनता के कारण
(Causes of Poverty in India)

(1) वैयक्तिक कारक (Personal Factors)—प्राचीन समय में यह धारणा थी कि अपनी दशा के लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है। जब कोई व्यक्ति बीमारी, दुर्घटना, मानसिक अयोग्यता, नैतिक पतन, अविवेकपूर्ण f खर्च आदि से ग्रसित होता है तब गरीबी उत्पन्न होती है। व्यक्ति की अयोग्यता गरीबी पैदा करती है।

Scanned with OKEN Scanner

(2) भौतिक पर्यावरण (Physical Environment)–भौतिक पर्यावरण में हम प्राकृतिक साधनों का अभाव, प्रतिकूल जलवायु, कीड़े-मकोड़ों का उत्पात, प्राकृतिक संकट आदि को सम्मिलित करते हैं। यदि किसी देश में प्राकृतिक भण्डारों व खनिज पदार्थों का अभाव है, भूमि में उपजाऊपन की कमी है, तो ऐसी स्थिति में वहाँ के लोगों को धनोपार्जन के लिए प्रचुर प्राकृतिक साधनों के नहीं मिलने से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। खराब मौसम के कारण जैसे अत्यधिक गर्मी व सर्दी तथा ओलों के कारण फसल नष्ट हो जाती है तो लोगों को अभाव एवं गरीबी का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार से प्राकृतिक प्रकोप, जैसे बाढ़, अकाल, भूचाल, महामारी आदि भी गरीबी उत्पन्न करते हैं।

(3) आर्थिक कारक (Economic Factors)–गरीबी का सम्बन्ध आर्थिक पहलुओं से भी है। आर्थिक दशा का वर्णन आय और खर्च के सन्दर्भ में ही किया जाता है। अपर्याप्त उत्पादन, असमान वितरण, आर्थिक उतार-चढ़ाव, बेकारी, गरीबी का दुष्चक्र, मन्दी आदि गरीबी को जन्म देते हैं।

कुछ आर्थिक कारक अलग-अलग नीचे दिये गये हैं–

(i) असन्तुलित आर्थिक विकास–विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार देश की श्रमशक्ति का लगभग 64% भाग कृषि पर निर्भर है, जबकि उद्योग-धन्धों में केवल 16% व्यापार, यातायात एवं अन्य कार्यों में 20% लोग लगे हुए हैं।

(ii) अत्यधिक दरिद्रता–भारत में आज भी करोड़ों लोग गरीबी की रेखा से नीचे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(iii) पूंजी का अभाव–राष्ट्रीय आय कम होने तथा इसका बड़ा भाग उपभोग में व्यय हो जाने से बचत कम हो जाती है।

(iv) बाजार की अपूर्णतायें–भारत में बाजार की अनेक अपूर्णतायें एवं कमियाँ भी देखने को मिलती हैं, जैसे–उत्पादन के साधन, विशेष कर श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में अनेक कारणों से गतिशील नहीं हो पाते हैं। आर्थिक क्रियाओं में विशिष्टिकरण (Specialisation) की कमी पाई जाती है। इससे साधनों का सर्वोत्तम उपयोग नहीं हो पाता।

(v) श्रमिकों की कार्यक्षमता की कमी–भारत के श्रमिकों की कार्यक्षमता कम होने के कारण भी निर्धनता पायी जाती है। ऐसा माना जाता है कि भारतीय श्रमिकों की अपेक्षा अब प्रगतिशील देशों के श्रमिक प्रायः तीन गुना अधिक काम करते हैं। श्रमिकों की कार्यक्षमता की कमी के कारण यहाँ उत्पादन कम होता है और उसका प्रभाव राष्ट्रीय आय पर पड़ता है, जिससे निर्धनता बढ़ती है।

(vi) प्राकृतिक साधनों का अपर्याप्त उपयोग–जैसा कि सर्वविदित है कि इस देश में प्राकृतिक साधनों की कमी नहीं है और जल-शक्ति, भूमि, खनिज सम्पत्ति और पशु-धन आदि के क्षेत्र में भारत प्रर्याप्त धनी है, परन्तु वर्तमान अवस्था यह है कि भारतवासी इन साधनों को उचित ढ़ंग से उपयोग में नहीं ला पा रहे हैं, इसीलिए भारत में सब कुछ होते हुए भी वे निर्धन बने हुए हैं।

(vii) समुचित बैंकिग व साख-सुविधाओं की कमी–भारत में बैंकिग तथा साख-सुविधायें समुचित मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं, जिसके कारण देश में पूँजी का संचय और निर्माण उचित ढंग से नहीं हो पाता है और न ही किसानों, व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को पर्याप्त साख-सुविधायें प्राप्त हो पाती हैं। इससे भारत में खेती तथा अन्य उद्योग धन्धों का विकास नहीं हो पाता है जिससे निधर्नता बढ़ती है।

(4) सामाजिक कारक (Social Factors)–भारत में निर्धनता के लिये उत्तरदायी सामाजिक कारक निम्नलिखित हैं–

(i) अशिक्षा–अशिक्षा निर्धनता का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। अशिक्षित व्यक्ति बेरोजगार हैं जिसके कारण गरीबी बढ़ रही है।

(ii) बीमारी तथा निम्न स्वास्थ्य स्तर–अनेक भंयकर रोग भारतवासियों को अधिकतर घेरे रखते हैं जिसके कारण मिलों, कारखानों आदि से उन्हें प्रायः छुट्टी लेनी पड़ती है। इससे उत्पादन घटता है तथा श्रमिकों को रोजगार भी कम मिलता है। निम्न स्वास्थ्य स्तर के कारण कम आयु में ही मृत्यु भी हो जाती है। अतः

Scanned with OKEN Scanner

अनुभवी श्रमिकों की यहाँ कमी पायी जाती है जो उत्पादन को प्रभावित करता है जिससे आर्थिक उन्नति नहीं हो पाती।

(iii) परम्परावादी समाज–भारतीय समाज परम्परावादी है जिसमें अनेक सामाजिक प्रथायें, कुरीतियाँ तथा अन्धविश्वास पाये जाते हैं, जो बहुत बुरे प्रभाव व्यक्ति पर डालते हैं। बाल-विवाह, मृत्यु के उपरान्त भोज, विवाह की दावतों तथा आभूषण आदि अनुत्पादक कार्यों के लिये कर्ज लेकर भी अपव्यय कर देते हैं, यह कर्ज उनकी गरीबी का कारण बन जाता है।

(iv) जाति प्रथा–जाति प्रथा ने पूरे देश को छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित कर दिया है। सभी लोग एक साथ मिलकर आपसी सहयोग से देश की आर्थिक उन्नति में हाथ नहीं बटाँ सकते। उच्च लोग बेरोजगार होते हुए भी उन कार्यों को नहीं करते, जिन्हें निम्न जाति के लोग करते हैं। इस कारण से लोगों में निर्धनता बढ़ती चली जाती है।

(v) गन्दी बस्तियाँ–औद्योगिक श्रमिक अधिकतर गन्दी बस्तियों में ही निवास करते हैं। इन बस्तियों में रहने के कारण वे अनेकों बीमारियों के शिकार बन जाते हैं और दिन-प्रति-दिन इनका स्वास्थ्य गिरता चला जाता है। स्वास्थ्य के गिरने से कार्यक्षमता घट जाती है। इससे राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन में कमी आती है जो गरीबी का कारण बनता है।

(vi) संयुक्त परिवार–संयुक्त परिवार प्रणाली भी निर्धनता के लिये उत्तरदायी है। यह प्रणाली बहुत से लोगों को आलसी तथा निष्क्रिय बना देती है। इसमें व्यक्ति बैठकर खाने का आदि हो जाता है अपनी कोई भी जिम्मेदारी नहीं समझता, इसी कारण वह किसी काम को भी करने की कोशिश ही नहीं करता। ऐसे व्यक्ति देश की आर्थिक उन्नति में कोई हाथ नहीं बँटाते। संयुक्त परिवार व्यवस्था बाल-विवाह को बढ़ावा देती है जिससे जनसंख्या तेजी से बढ़ती है जो निर्धनता का कारण है।

(5) राजनैतिक कारक (Political Factors)–राजनीतिक अस्थिरता और उथल-पुथल भी गरीबी को जन्म देती है। ऐसी स्थिति में चारों ओर असन्तोष, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी, जमाखोरी आदि पनपती है। राजनीतिक दलों की पारस्परिक वैमनस्यता भी देश में अफवाहों को जन्म देती है और इसके फलस्वरूप व्यापार में उतार-चढ़ाव आते हैं। सरकार की आर्थिक नीतियों का भी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। सरकार की उत्पादन नीति, टैक्स नीति, आयात-निर्यात और वितरण व्यवस्था भी देश के लोगों की आर्थिक दशा को प्रभावित करती है।

(6) युद्ध (War)–युद्ध के दिनों में आर्थिक अपव्यय अधिक होता है, परिणामस्वरूप गरीबी पनपती है।

(7) सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors)–हमारी संस्कृति में अधिक धन प्राप्ति को या धन के लिये जीवन को खपा देने को उचित नहीं माना गया है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में सादा जीवन और उच्च विचार की बात कही गयी है। अतः लोग धन के पीछे नहीं भागते वरन् जीवन की कम से कम आवश्यकताओं को पूरा करने में ही सन्तोष महसूस करते हैं। वर्तमान में भारत की गरीबी का जो उल्लेख किया जाता है वह पश्चिमी देशों की देन है। गरीबी एक सापेक्ष अवधारणा है जिसे किसी देश और समाज की संस्कृति के सन्दर्भ में ही देखा जाना चाहिए।

(8) बढ़ती जनसंख्या (Increasing Population)–भारत में प्रतिवर्ष बढ़ती जनसंख्या की बाढ़ ने भी गरीबी को बढ़ावा दिया है। जिस गति से यहाँ जनसंख्या बढ़ रही है, उसी गति से जीवनयापन के लिये साधनों और सुविधाओं में वृद्धि नहीं होती। परिणामस्वरूप लोगों को बेकारी और भुखमरी का सामना करना पड़ता है। आर्थिक विकास की वर्तमान स्थिति में भारत इतनी बढ़ती हुई जनसंख्या का भलि प्रकार भरण-पोषण नहीं कर पा रहा है। 50 लाख श्रमिक प्रतिवर्ष भारत में बढ़ रहे हैं। इनको रोजगार देना सरल कार्य नहीं है, इस कारण बेरोजगारी बढ़ती है तथा बेरोजगारी से निर्धनता बढ़ती है।

श्रमिकों की जनसंख्या अत्यधिक होने से श्रमिकों की माँग की तुलना में श्रमिकों की पूर्ति बहुत ज्यादा हो जाती है, इससे श्रमिक मूल्य अर्थात् मजदूरी घट जाती है जो निर्धनता को बढ़ाती है।

Scanned with OKEN Scanner

जनसंख्या के बढ़ने से प्रति व्यक्ति की आय कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि न तो व्यक्ति को भर पेट भोजन मिलता है और न ही रहने के लिये अच्छे मकान। अपर्याप्त तथा असन्तुलित भोजन करने तथा अस्वास्थ्य कर मकानों में रहने से लोगों को कई प्रकार की भयंकर बीमारियाँ घेर लेती हैं जो कार्यक्षमता को घटाती है। कार्य क्षमता घटने से आय घट जाती है जिससे निर्धनता बढ़ती है।

जनसंख्या की अधिकता के कारण भूमि पर दबाव बढ़ता है। आज देश की श्रम शक्ति का लगभग 64 प्रतिशत भाग अपनी जीविका के लिये खेती पर निर्भर है। जनसंख्या के बढ़ने से खेत छोटे-छोटे हो गये हैं, आधुनिक या मशीनी खेती सम्भव नहीं हो पा रही है जिससे खेती का उत्पादन कम है अर्थात् खेती लाभ का कार्य नहीं रहा है। यदि और जनसंख्या बढ़ जाएगी तो कृषि पर और अधिक दबाव पड़ेगा, इस कारण आज गाँव का किसान अत्यधिक गरीब हैं।

अधिक जनसंख्या के कारण सरकार तो केवल इस विशाल जनता का भरण-पोषण करने की ही सोचती है उसे विकास कार्यों की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता, इस कारण अधिक जनसंख्या के कारण देश का विकास नहीं हो पाता और रोजगार के साधन नहीं बढ़ते बल्कि केवल गरीबी बढ़ती है।

(9) बेकारी (Unemployment)–बेकारी बढ़ने के साथ-साथ गरीबी बढ़ती है।

(10) कृषि की खराब दशा (Bad Condition of Agriculture)–कृषि की गिरी हुई दशा के कारण तथा सिंचाई के साधनों के अभाव में ग्रामीण को कई बार भुखमरी का सामना करना पड़ता है। उन्नत खाद, बीज एवं साधनों के अभाव एवं परम्परागत खेती के तरीकों के कारण कृषि की उपज इतनी नहीं हो पाती कि किसान वर्ष भर के लिये अपने परिवार का भरण-पोषण और कुछ बचत कर सके। किसान की गरीबी इस प्रकार की खेती के कारण बढ़ती जा रही है।

(11) जमींदारी प्रथा–इस प्रथा के कारण कुछ लोगों के पास ही कृषि योग्य भूमि केन्द्रित है। वे कृषि मजदूरों के द्वारा उस पर खेती करवाते हैं और फसल का अधिकांश भाग फसल पैदा करने वाले को न मिलकर भू-स्वामी को प्राप्त होता है। इससे गरीबी बढ़ती है।

(12) साहूकारी प्रथा–गांवों में सहकारी समितियों का अभाव है। किसान को अपनी आवश्यकता के लिये साहूकारों से अधिक ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है। साहूकार किसान की मजदूरी का पूरा फायदा उठाता है और जीवन भर कर्ज की रकम को चुकता नहीं होने देता। राजस्थान में अभी कुछ समय पहले तक सागड़ी प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा के अनुसार उधार लेने वाले व्यक्ति को उस समय तक जब तक कि वह कर्ज पुनः नहीं लौटा दें, साहूकार के यहाँ मुफ्त सेवा प्रदान करनी पड़ती थी। साहूकारों के चुंगल में फंस कर उनसे मुक्ति पाना कठिन था और गरीब सदा गरीब ही बने रहते थे।

(13) आलस्य और निष्क्रियता–भारत में काफी लोग आलसी तथा निष्क्रिय भी हैं। इस निष्क्रियता के लिये यहाँ की सामाजिक एवं भौगोलिक परिस्थितियाँ, भाग्य पर विश्वास, उदासीनता तथा बुरा स्वास्थ्य उत्तरदायी हैं। इस प्रकार का व्यक्ति का व्यवहार उसे गरीब से अधिक गरीब बनाता चला जाएगा।

(14) नरम राज्य (Soft State)–**गुन्नार मिर्डल** सभी अविकसित राष्ट्रों में गरीबी का एक कारण 'नरम राज्य' मानते हैं। नरम राज्य का अभिप्राय उस सामाजिक अनुशासन हीनता से है जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है, जैसे कानून की कमियाँ तथा कानून के पालन और लागू करने की खामियाँ, विभिन्न स्तरों पर सरकारी अफसरों द्वारा इन नियमों और निर्देशों की व्यापक अवहेलना जिनका उन्हें पालन करना एवं करवाना होता है। अक्सर उनकी ऐसे शक्तिशाली व्यक्तियों और समूहों से सांठ-गांठ होती है जिनके आचरण को नियमित बनाने की जिम्मेदारी इन अफसरों पर होती है। नरम राज्य की संकल्पना के अन्तर्गत भ्रष्टाचार भी आता है।

(15) सुधार नीतियों की असफलता ने भी गरीबी को जन्म दिया है।

(16) औद्योगीकरण और पूँजीवाद–उत्पादन के परम्परागत साधनों का स्थान जब मशीनों ने लिया तो फैक्टरी प्रणाली अस्तित्व में आयी। बड़े-बड़े उद्योग स्थापित किये गये, परिणामस्वरूप ग्रामीण कुटीर उद्योग प्रायः नष्ट हो गये और लोगों को बेकारी का सामना करना पड़ा और वे निर्धन हो गये।

Scanned with OKEN Scanner

निर्धनता के सन्दर्भ में बाल्यावस्था
(Childhood in the context of Poverty)

निर्धनता भारत की एक मुख्य समस्या बनी हुई है। निर्धनता के कारण माता-पिता अपने बच्चों को मूलभूत सुविधाएँ भी पूरी करने में असमर्थ होते हैं। ऐसे में अपने बालकों की शिक्षा की व्यवस्था करना उनके लिए मुश्किल ही नहीं असंभव हो जाता है। निर्धनता का बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों पर निर्धनता के प्रभाव का वर्णन निम्नलिखित है–

(1) निर्धनता के शारीरिक प्रभाव (Physical Effects of Poverty)–निर्धनता शारीरिक कमियों को जन्म देती है। बच्चों को शारीरिक माँग के अनुसार भोजन नहीं मिल पाता। उनके भोजन में पौष्टिक तत्वों की कमी होती है जिसके कारण उनका शारीरिक विकास रुक जाता है। बच्चों में प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिसके कारण बच्चों में अनेक बीमारियों का जन्म होता है। गरीबी के कारण बच्चों को गन्दे मकानों में रहना पड़ता है जिससे बीमारी फैलने का भय बना रहता है। इस प्रकार निर्धनता का बच्चों के स्वास्थ्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है।

(2) निर्धनता का बच्चों के संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास पर प्रभाव (Effects of Poverty on emotional and soual development)–निर्धनता का बच्चों के संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास पर भी काफी प्रभाव पड़ता है। गरीब बच्चों के संवेगों के अधिक अस्थिरता होती है। संवेगात्मक तथा सामाजिक व्यवहार साथ-साथ चलते हैं। जो बच्चे सामाजिक रूप से अस्थिर होते हैं, वे समाज में अपना स्थान नहीं बना पाते। गरीबी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा, पद, भूमिका आदि को प्रभावित करती है। अधिकांश बाल-अपराधी, भगोड़े, आवारा व मानसिक रूप से असन्तुलित बच्चे गरीब परिवारों से ही होते हैं।

(3) निर्धनता का सज्ञानात्मक योग्यता पर प्रभाव (Effects of poverty on cognitive ability)–निर्धनता का बच्चों के संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास पर भी काफी प्रभाव पड़ता है। निर्धन बच्चों का सज्ञानात्मक विकास पिछड़ जाता है। उनको सीखने के अवसर काफी कम मिलते हैं जिससे उनकी सज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास धीमी गति से होता है। निर्धनता स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है जिसका प्रभाव सज्ञानात्मक विकास पर भी पड़ता है।

(4) निर्धनता तथा बाल अपराध (Poverty and Juvenil deliguency)–गरीबी के कारण लोग अपराध करते हैं। अपराध तथा बाल अपराध के कई अध्ययन इस बात को स्पष्ट करते हैं कि जिन लोगों ने अपराध किया वे गरीब परिवार के थे। बच्चों में अनेक प्रकार की इच्छाएँ होती है। बच्चे अनेक वस्तुओं को प्राप्त करना चाहते हैं जो उन्हें आकर्षित करती हैं। जब वे सामान्य रूप से उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते तो वे उन्हें असामान्य ढंग से प्राप्त करने की कोशिश करते हैं जिससे वे बाल अपराधी बन जाते हैं। निर्धनता के कारण बच्चे छोटी-छोटी नौकरियाँ तथा जोखिम के कार्य करने लगते हैं। बुरी संगत के कारण भी बच्चे बाल-अपराधी बन जाते हैं।

(5) गरीबी तथा बाल श्रम (Poverty and Childlabour)–निर्धनता के कारण बाल श्रम को बढ़ावा मिलता है। इस कारण बच्चों के माता-पिता बच्चों को काम पर लगा देते हैं। जब बच्चे बचपन में ही कार्य करने लग जाते हैं तो इसका उनके शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(6) निर्धनता तथा भिक्षावृत्ति (Poverty and Begging)–निर्धनता भिक्षावृत्ति के लिए भी उत्तरदायी है। निर्धन व्यक्ति अपने बच्चों की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाते। ऐसे में माता-पिता को बच्चों से भीख मँगवाने में भी कोई शर्म नहीं आती।

(7) नशाखोरी (Drug use)–गरीबी के कारण बच्चे चिन्ता तथा निराशा से ग्रस्त हो जाते हैं। वे तनाव को कम करने के लिए नशाखोरी के शिकार हो जाते हैं। बुरी संगति भी नशाखोरी के लिए उत्तरदायी हैं।

(8) निर्धनता तथा अपवंचन (Poverty and Deprivation)–निर्धनता के कारण बच्चों को सुविधाओं तथा अवसरों से वंचित होना पड़ता है। निर्धनता के कारण उन्हें अपनी क्षमताओं को प्रदर्शित करने का मौका नहीं मिलता जिससे उनके विकास में बाधा आ जाती है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

4. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं? वैश्वीकरण के सन्दर्भ में बाल्यावस्था का वर्णन कीजिए। (What do you mean by globalization? Describe childhood in context of globalization.)

अथवा

वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं? शिक्षा में वैश्वीकरण की आवश्यकता तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—वैश्वीकरण का अर्थ—आज विश्व में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। ये परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, तकनीकी तथा शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में दिखाई देता है। वास्तव में वैश्वीकरण विश्व के विभिन्न देशों में परस्पर अन्तःक्रिया (Interaction) की प्रक्रिया है। यह अन्तःक्रिया विचारों, सामाजिक मूल्यों, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा तकनीकी आदि सभी क्षेत्रों में हो रही है और इसका कारण है सूचना व तकनीकी के क्षेत्र में विकास। वैश्वीकरण के संदर्भ में निम्नलिखित परिभाषाएँ दी जा सकती हैं—

1. नाइट (Knight) के अनुसार, **"वैश्वीकरण तकनीकी, वित्त, व्यापार, ज्ञान मूल्यों तथा विचारों की सीमा पार तक बढ़ते प्रवाह के साथ संबंध रखता है।"** ("Globalization refers to the increasing flow of technology, finance, trade knowledge, value and ideas across the boarders.")

2. लैचनर (Lechner) के अनुसार, **"वैश्वीकरण का अर्थ है वैश्विक संबंधों का विस्तार, सामाजिक जीवन का विश्व स्तर पर संगठन तथा विश्व चेतना का विकास।"** ("Globalization is the expansion of global linkages, the organization of social life on a global scale and growth of a global consciousness.)

वैश्वीकरण का महत्त्व तथा आवश्यकता
(Importance and Need of Globalization)

वैश्वीकरण भारत के लिए आवश्यक बुराई की तरह हो गया है। एक ओर तो जहाँ इसके कारण हम दुनिया के दूसरे राष्ट्रों से सीधे-सीधे सम्पर्क में आ गए हैं, वहीं इसका देश की सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक धरोहरों पर बुरा तथा नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। सकारात्मक पहलू की बात करें तो लगता है इससे देश के जीवन को एक नवीन स्फूर्ति तथा ऊर्जा मिली है, क्योंकि हम तथा दूसरे सभी राष्ट्र अपनी संकुचित विचारधारा से निकल कर समस्त संसार के राष्ट्रों की सोचने लगे हैं। आज संकट में पड़ एक राष्ट्र के लिए दूसरे राष्ट्र तुरंत खड़े हो जाते हैं। फिर चाहे संकट मनुष्य जनित हो या फिर प्राकृतिक आपदा। इसके अतिरिक्त भारत तो सदैव से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना को संजोए हुए है। इसलिए वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव भारत पर ज्यादा हैं। इससे भारत का दूसरे राष्ट्रों के साथ आपसी निर्भरता ज्यादा बढ़ गई है। इसे विश्व अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया भी कहा जा सकता है। आर्थिक आधार पर भारत के लिए वैश्वीकरण, भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Direct Foreign Investment) के लिए खोलता है। इससे विश्व के दूसरे विकसित तथा विकासशील राष्ट्र भारत में निवेश कर सकने में समर्थ होंगे। इन सबके अतिरिक्त वैश्वीकरण का महत्त्व निम्नलिखित आधार पर ज्यादा बढ़ गया है।

I. विश्व नागरिकता (World Citizenship)—विश्व नागरिकता से अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अब निजी स्वार्थ तथा निजी राष्ट्र स्वार्थ की भावना से ऊपर उठकर 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से काम करना होगा। उससे सम्पूर्ण विश्व अपना एक घर होगा। सभी देशों के व्यक्तियों को अलग-अलग राष्ट्र के नागरिक के रूप में न देखकर उन्हें भी अपने समान विश्व का नागरिक समझना चाहिए।

II. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैली समस्याओं का समाधान (Solution of world wide problems)—आज पूरा विश्व अगणित समस्याओं से त्रस्त है। इनमें से ज्यादातर समस्याएं लगभग प्रत्येक देश की समान हैं। उदाहरणार्थ—जनसंख्या विस्फोट, आधुनिकता के लिबास में लिपटी शिक्षा व्यवस्था, निर्धनता, बेरोजगारी, पर्यावरण जागरूकता, नैतिकता आदि। अगर विश्व के समस्त राष्ट्र मिलकर इन समस्याओं का सामना करते हैं तो निःसंदेह इन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। विश्व बैंक आज उन समस्त राष्ट्रों को जो शिक्षा के

Scanned with OKEN Scanner

क्षेत्र या फिर आर्थिक क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। उन्हें आर्थिक रूप से सहायता कर रहा है। विकसित राष्ट्र तथा सबल राष्ट्र भी दूसरे गरीब तथा विकासशील राष्ट्रों की हर संभव सहायता कर रहे हैं। इसे ही तो वैश्वीकरण कहते हैं।

III. राष्ट्रीय विकास (National Development)—आज इस आधुनिकता के दौर में प्रत्येक राष्ट्र चाहता है कि उसका संपूर्ण विकास हो। ऐसे में उनकी सहायता के लिए दूसरे विकसित तथा सबल राष्ट्र उनकी सहायता कर राष्ट्र विकास में सहयोग दे सकते हैं। जिससे विश्व के देश एक-दूसरे के और नजदीक आ जाएं।

IV. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयात-निर्यात (Import and Export at International Level)—आज विश्व के समस्त राष्ट्र एक-दूसरे के साथ व्यापारिक संबंध बना चुके हैं। वे एक-दूसरे से कृषि, वाणिज्य, तकनीकी, खनिज, संबंधित चीजों का आदान-प्रदान करते हैं। इससे वैश्वीकरण को बढ़ावा मिलता है।

V. संचार साधनों का विकास (Development of Mass Media)—आज संचार के साधनों—प्रेस, टेलीविजन, सूचना प्रौद्योगिकी में बेहताशा वृद्धि हुई है। विश्व के राष्ट्रों के बीच दूरियाँ घटती जा रही हैं। विश्व संकुचित हो गया है। सभी राष्ट्र एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। आपसी सहयोग तथा सद्भावना का विकास हुआ है। ये सब वैश्वीकरण के कारण ही संभव हुआ है।

भारत में वैश्वीकरण से उत्पन्न चुनौतियाँ (Challenges due to Globalization in India)—एक ओर तो वैश्वीकरण के अत्यंत फायदे हैं तो दूसरी ओर इससे भारत में कई चुनौतियाँ खड़ी हो गई हैं। ये चुनौतियाँ देश के जीवन से संबंधित प्रत्येक पहलू पर प्रभाव डालती नजर आ रही हैं। इस वैश्वीकरण का सबसे ज्यादा असर संस्कृति, सभ्यता, जीवन शैली तथा देश के नैतिक मूल्यों पर पड़ा है। इसलिए हमें कुछ ऐसी योजनाएँ बनानी होंगी जिनसे हम इस वैश्वीकरण के युग में अपनी हस्ती बनाए रख सकें तथा विश्व के दूसरे राष्ट्रों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सकें।

वैश्वीकरण के सन्दर्भ में बाल्यावस्था
(Childhood in context of Globalization)

वैश्वीकरण का बच्चों पर काफी प्रभाव देखने को मिलता है। वैश्वीकरण का बच्चों पर निम्नलिखित प्रभाव है—

1. प्रतिस्पर्धा (Competion)—वैश्वीकरण के कारण बच्चों में प्रतिस्पर्धा की भावना काफी वृद्धि हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रतिस्पर्धा अत्यधिक देखने को मिलती है। बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा में सामूहिक महत्व की भावना कम कम हुई है तथा उनमें व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिला है।

2. नवीन दृष्टिकोण का विकास (Development of New attitude)—वैश्वीकरण के कारण बच्चों में पूरातन मूल्यों, विश्वासों तथा आदर्शों के प्रति विश्वास कम हुआ है तथा उनकी जगह नए दृष्टिकोण ने ले ली है। यह नवीन दृष्टिकोण सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार हैं। जाति-पाति में भेदभाव न करना एक सकारात्मक दृष्टिकोण है जबकि यौन अनैतिकता एक नकारात्मक दृष्टिकोण है।

3. सूचना तकनीकी का प्रभाव (Effect of Information Teachnology)—वैश्वीकरण के काण सूचना तकनीकी को काफी बढ़ावा मिला है। बालक अपना अधिकतर समय ई-मेल, मोबाइल, इन्टरनेट आदि पर बिताते हैं। इससे बच्चों में नवीनतम ज्ञान का विकास होता है परन्तु इससे उनके मानसिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के प्रभावित होने की सम्भावना बनी रहती है।

4. सांस्कृतिक मूल्यों का हनन (Deterioration of Cultural Values)—वैश्वीकरण के कारण सांस्कृतिक मूल्यों का हनन हुआ है। वैश्वीकरण के पाश्चात्य देशों के साथ नजदीकी बढ़ने के कारण उनकी संस्कृति की छाप भारत की जीवन व्यवस्था में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लग गई है। संस्कृति के नाम पर फूहड़पन, नग्नता, रिश्तों में अविश्वास, सामाजिक मूल्यों की अवहेलना देश में आम बात हो गई है।

इस प्रकार वैश्वीकरण जहाँ कुछ फायदे देती है, वहीं भारत के लिए अहितकारी ज्यादा है। यह वैश्वीकरण की संस्कृति भारतीय जनमानस का धीरे-धीरे नैतिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक पतन की ओर

Scanned with OKEN Scanner

ले जा रही है और वह दिन दूर नहीं जब भारतीय संस्कृति के अस्तित्व पर एक प्रश्न चिह्न लग जाएगा। इसलिए भारत सरकार को बालकों के लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था करनी चाहिए जो उनमें अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम और विश्वास बढ़ाए।

5. बच्चों के रहन-सहन तथा खान-पान पर प्रभाव (Effects on Living Habits and Food of Children)—वैश्वीकरण का प्रभाव बच्चों के खान-पान तथा रहन-सहन पर भी पड़ा है। बच्चों को होटलों तथा कैन्टीन में खाना ज्यादा अच्छा लगता है। बच्चों को फास्ट-फूड ज्यादा रुचिकर लगता है। वैश्वीकरण के कारण बच्चों में वस्त्रों पर भी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देखने को मिलता है। लड़के तथा लड़कियों के पहनावे में भी बदलाव आया है। वस्त्रों के पहनावे के कारण अश्लीलता को भी बढ़ावा मिला है।

वैश्वीकरण व शिक्षा, शिक्षण विधियाँ, अध्यापक की भूमिका
(Globalization and Education, Teaching Methods, Role of Teacher)

भारतीय शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव (Impact of Globalization on Indian Education)—भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा विश्व की श्रेष्ठतम प्रणाली थी। वर्तमान में भी यह विश्व में अपना एक विशेष स्थान रखती है। यह विश्व बंधुत्व, भाईचारा, सहयोग, सहनशक्ति आदि भावों को बढ़ावा देती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा पर वैश्वीकरण के प्रभाव को निम्न रूपों में देखा जा सकता है—

1. वैश्वीकरण एवं भारतीय शिक्षा के उद्देश्य (Globalization and aims of Indian Education)—वैश्वीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित होकर जो शिक्षा आज हम अपने बच्चों को विश्व के नागरिक बनाने के लिए दे रहे हैं, वह एक हद तक सही है। यह केवल शैक्षिक विकास ही नहीं कर रही है, अपितु व्यावसायिक कौशल का विकास करने में भी सक्षम है। इस शिक्षा से तैयार विद्यार्थी मानवीय शक्ति के रूप में आर्थिक विकास में अपना सहयोग दे रहे हैं। शिक्षा का एक और उद्देश्य है—आधुनिकीकरण को बढ़ावा देना। यही नहीं आज हमारी शिक्षा का स्वरूप बदल चुका है। अब शिक्षा मात्र कुछ आंकड़े इकट्ठा करना नहीं रहा है। यह भी सर्वांगीण विकास कर विद्यार्थी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सफलता प्राप्त करने के लिए तैयार करती है।

2. मानवीय मूल्यों तथा संस्कृति का विकास (Development of Human Values and Culture)—शिक्षा का उद्देश्य मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देना तथा संस्कृति को पोषित करना भी है। अगर हमें इस वैश्वीकरण के दौर में अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो हमारी शिक्षा में वे सब गुण होने चाहिए जो परंपरागत जीवन शैली तथा मानवीय मूल्यों को बढ़ावा दें।

3. व्यावसायिक कुशलता का विकास (Development of Vocational Efficiency)—शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों में व्यावसायिक कुशलता तथा अपने व्यवसाय से प्रेम सिखाना भी है। आर्थिक सुधार केवल सफल व्यावसायिकता पर निर्भर करते हैं। वैश्वीकरण आर्थिक सुधारों से सीधे-सीधे संबंधित हैं।

4. वैश्वीकरण तथा पाठ्यक्रम (Globalization and Curriculum)—वैश्वीकरण के अन्तर्गत पाठ्यक्रम निर्धारण हेतु निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

(a) पाठ्यक्रम में भिन्नता हो।
(b) यह लचीला हो।
(c) सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार इसमें परिवर्तन किए जा सकें।
(d) पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के समुचित (सम्पूर्ण विकास) विकास को प्रदान करवा सके।
(e) आधुनिकता तथा परंपरागत मूल्यों में समन्वय स्थापित करे।
(f) मानवीय मूल्यों को बढ़ावा दे।
(g) नैतिकता को प्रखर करे।
(h) विश्व इतिहास, भूगोल, साहित्य तथा विज्ञान की जानकारी दे।
(i) विभिन्न कौशलों के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो।
(j) नैतिक शिक्षा तथा मौलिक आचरण पर बल दे।

Scanned with OKEN Scanner

(k) मूल्य शिक्षा (Value Education) द्वारा विश्व नागरिकता के लिए विद्यार्थियों को तैयार करें।

(l) 'वसुधैव-कुटुम्बकम' की भावना को पोषित करे।

(m) सहयोग, सहनशीलता तथा सह-सम्बन्धों को बढ़ावा दे।

(n) मातृभाषा को उचित संरक्षण तथा स्थान मिले।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के मध्यनजर पाठ्यक्रम में हिन्दी, अंग्रेजी, नैतिक शिक्षा, विज्ञान, इतिहास व तकनीकी विषयों के साथ व्यावसायिक विषयों को शामिल किया जाये।

5. वैश्वीकरण तथा शिक्षण-विधियां (Globalization and Teaching Methods)—भारतीय शिक्षा में वैश्वीकरण का प्रभाव शिक्षण विधियों पर बहुत अधिक दिखाई देता है। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में एजूसेट (Eduset) तथा इन्टरनेट (Internet) के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है। कम्प्यूटर तथा टेलीविजन की सहायता से विद्यार्थी घर बैठे ही स्वयं ज्ञान अर्जन कर रहे हैं। स्मार्ट क्लासरूम (Smart Classroom) का विचार धीरे-धीरे पनप रहा है। कक्षा कक्ष अब अत्याधुनिक होते जा रहे हैं।

6. वैश्वीकरण तथा अध्यापक (Globalization and Teacher)—आज अध्यापक की भूमिका वैश्वीकरण के कारण अत्यंत व्यापक हो गई है। अब वह बालक के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। आज के दौर में अध्यापक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

(i) उसे अपने विषय का पूर्ण ज्ञान हो।

(ii) वह सचेत तथा जागरूक हो।

(iii) समयानुसार परिवर्तन को स्वीकार करता हो।

(iv) उदारवादी दृष्टिकोण हो।

(v) विश्व नागरिकता की भावना में विश्वास हो।

(vi) शिक्षा की नवीन विधियों को जानता हो या फिर उन्हें सीखने के लिए प्रयत्नशील हो।

(vii) उसका ज्ञान विस्तृत हो।

(viii) शिक्षा संबंधी क्षेत्रों का ज्ञान हो।

(ix) अध्ययनशील हो।

(x) कर्तव्यों के प्रति समर्पित हो।

(xi) उसे इन्टरनेट (Internet) तथा कम्प्यूटर (Computer) का ज्ञान हो।

(xii) विद्यार्थियों में मूल्य स्थापित कर सके।

(xiii) वह नवाचारित (Innovative) हो।

◆◆◆

4.2 किशोरावस्था के दौरान तनाव से सम्बन्धित वर्तमान मुद्दे तथा अध्यापक की भूमिका (Current issues related to adolescents stress and role of the teacher)

1. तनाव क्या है? किशोरावस्था के दौरान तनाव से सम्बन्धित मुद्दों का वर्णन कीजिए। किशोरों की शिक्षा में अध्यापक की क्या भूमिका है?
(What is Stress? Describe the current issues related to adolescents stress. What is the role of teacher in the education of adolescents.)

उत्तर—तनाव का अर्थ और इसकी विशेषताएँ (Meaning and Characteristics of Stress)

—तनाव (Stress) या प्रतिबल आधुनिक समाज की एक बहुत बड़ी समस्या है। आधुनिक शोधों से लगभग यह तय है कि 75 से 80% रोगों का कारण तनाव है, यहाँ तक कि कैंसर एवं हृदय रोग जैसे जान लेवा रोगों

Scanned with OKEN Scanner

से तनाव अपनी छाप छोड़ चुका है। अगर, दफ्तर में काम समय से पूरा नहीं होता, दफ्तर में देरी या दफ्तर से घर जल्दी आना (अर्थात) किसी भी कार्य का मनुष्य की इच्छा के अनुसार नहीं होना तनाव कहलाता है। मनोवैज्ञानिकों ने तनाव की परिभाषा अपने-अपने ढंग से इस प्रकार की है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव (Stress) को उद्दीपक (Stimuls) कारकों के रूप में समझा है और कहा कि कोई भी परिस्थिति या घटना जो मनुष्य को असाधारण अनुक्रिया (कार्रवाई) करने के लिए मजबूर करती है, तनाव कहलाती है। कोई भी घटना जैसे नौकरी छूट जाना, घर-परिवार, खास मित्र की मृत्यु, दुर्घटना तथा अन्य प्रकार की हानियाँ "तनाव" उत्पन्न करती हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिको ने तनाव को अनुक्रिया (Response) के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है। यहाँ पर कठिन परिस्थितियों में मनुष्य द्वारा की गई दैहिक अनुक्रियाएं जैसे—चिन्ता, क्रोध, आक्रामकता इत्यादि, (नींद न आना, रक्त चाप में बढ़ोत्तरी) दिखलाता है तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य तनाव में है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हंस सेली ने तनाव को एक अनुक्रिया के रूप में परिभाषित किया है **"तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार किए गए अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।"**

मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जो दोनों दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक और न सिर्फ मानता है, बल्कि दोनों (उद्दीपक तथा अनुक्रिया) का मिश्रण मानता है। इसके अनुसार कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जो सभी व्यक्तियों के लिए तनाव उत्पन्न करती हैं और कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ या घटनाएँ होती है जो कुछ ही व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न करती हैं।

यदि हम ऊपरलिखित परिभाषाओं का विश्लेषण करते हैं तो तनाव की नीचे लिखी विशेषताएं समझ में आएगी।

विशेषताएँ या स्वरूप–

1. "तनाव" सामान्यतः जीवन की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं या नकारात्मक घटनाओं से होता है। इस सच्चाई से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि तनाव सकारात्मक घटनाओं से भी होता है, जैसे किसी उच्च कुल में शादी होना, बहुत बड़ा पुरस्कार या इनाम पाना इत्यादि। इनको हम स्वीकारात्मक तनाव (Positive-stress) कहते हैं। सकारात्मक तनाव को पूस्ट्रेस (Peustress) तथा नकारात्मक तनाव को डिसस्ट्रेस (Distress) की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार तनाव को एक बहुआयामीय प्रक्रिया कहा गया है।
2. "तनाव" में जो परिस्थितियाँ, घटनाएँ आदि होती हैं। (जिन से तनाव पैदा होता है) ये सभी मनुष्य के बस की बात नहीं होती हैं। अगर मनुष्य इन घटनाओं, परिस्थितियों को नियंत्रण में कर लेता है तो तनाव कम हो जाता है।
3. तनाव में मनुष्य मानसिक तथा शारीरिक रूप (दोनों तरह) Disturbance का अनुभव करता है। इसमें मनोवैज्ञानिक तथा दैहिक दोनों तरह की अनुक्रियाएं होती हैं।
4. तनाव थोड़े समय तक भी रह सकता है, तथा लम्बे समय तक भी चल सकता है। यह बहुत कुछ तनाव उत्पन्न करने वाली घटनाओं पर निर्भर करेगा।

किशोरावस्था जीवन का सबसे अधिक कठिन काल है। इस अवस्था में किशोरों को प्रतिबल, खिंचाव, तनाव, तूफान, संघर्ष, दबाव और निराशाओं का सामना करना पड़ता है। तीव्र शारीरिक परिवर्तनों के कारण उनके मानसिक जीवन में भयंकर उथल-पुथल होती है। यौन विकास के साथ-साथ प्रबल काम प्रेरणाएँ उनके व्यवहार को विलक्षण बना देती हैं। काम प्रेरणाओं के संचार के साथ मानसिक तनाव, चिन्ताएँ व संघर्ष भी बढ़ता है। उन्हें तनाव व दबाव सहने पड़ते हैं। किशोरों को शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक व संवेगात्मक पहलू में होने वाले परिवर्तनों का भी सामना करना पड़ता है। घर, परिवार व समाज में किशोरों को समायोजन की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस अवस्था में उन्हें न तो बच्चा समझा जाता है और न ही प्रौढ़ समझा जाता है। उन्हें उचित सम्मान, स्थान व स्थिति पाने के लिए प्रयास करने पड़ते हैं। वे अनिश्चितताओं व चिन्ताओं से युक्त रहते हैं। यही कारण है कि किशोरावस्था को जीवन का सबसे अधिक कठिन काल कहा जाता है।

Scanned with OKEN Scanner

कुछ समाजशास्त्रियों व मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया कि किशोरावस्था प्रतिबल, खिंचाव, तनाव, तूफान, संघर्ष, दबावों और निराशाओं का समय नहीं है। यह प्रतिबल, खिंचाव, तनाव, तूफान, संघर्ष, दबाव आदि तो समाज द्वारा लगाए गए बन्धनों के परिणाम हैं। जिस समाज में किशोरों पर बहुत कम या कोई बन्धन नहीं होता और जहाँ उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से हो जाती है, वहाँ किशोरों को कोई निराशा नहीं होती। **मीड (Margret Mead, 1939)** ने पिछड़े समाजों पर अध्ययन किये और देखा कि समाओं *(Samoa)* समाज में किशोरों में प्रतिबल और खिंचाव नहीं होते, अपितु उन्हें आत्म-विश्वास होता है। वे प्रसन्न व समायोजित होते हैं। इसके विपरीत, अन्य समाजों के किशोर अस्थिर व उत्तेजित होते हैं तथा अपने आप को असुरक्षित समझते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रतिबल, खिंचाव, तानव, संघर्ष और दबाव आदि तो समाज द्वारा लगाए गए बन्धन, रीति-रिवाज व नियमों के परिणाम हैं।

स्टेनले हाल के विचार (Views of Stanley Hall)–"किशोरावस्था प्रतिबल, खिंचाव, तूफान और संघर्ष का समय है।"

"Adolescence is the period of stress, strain, storm and strife." **–G. Stanley Hall, 1916**

व्याख्या (Explanation)–इस परिभाषा के आधार पर यह स्पष्ट है कि किशोरावस्था जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन, कठिन संघर्ष और तूफानी दौर का समय है। इस अवस्था में किशोरों में तीव्र रूप से परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के कारण उनका संवेगात्मक सन्तुलन समाप्त हो जाता है। उनमें बेचैनी व अस्थायीत्व आ जाता है तथा तनाव और मानसिक संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। तीव्र शारीरिक परिवर्तनों के कारण किशोरों के जीवन में भयंकर उथल-पुथल होती है। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ठीक उसी प्रकार बदल जाता है, जिस प्रकार भूकम्प के झटकों के बाद भूपटल की आकृतियाँ बदल जाती हैं। किशोरों में यौन विकास के साथ-साथ प्रबल काम प्रेरणाएँ भी उनके व्यवहार को विलक्षण बना देती हैं। जीवन में काम प्रेरणाओं के संचार के साथ मानसिक तनाव, चिन्ताएँ और संघर्ष भी बढ़ता है। उन्हें मानसिक तनाव और दबाव सहन करने पड़ते हैं। यही कारण है कि किशोरावस्था को तूफानी दौर का समय कहा जाता है।

इस अवस्था में किशोर न तो बच्चा होता है और न ही प्रौढ़ होता है। उसे कहीं बच्चे का तो कहीं प्रौढ़ का अभिनय करना पड़ता है। मानसिक दृष्टि से वह बहुत-सी बातों में छोटे बच्चों के समान होता है, परन्तु वह छोटे बच्चों में बैठ नहीं सकता। बहुत-सी बातों में उसे प्रौढ़ों के समान उत्तरदायित्व निभाने पड़ते हैं। परन्तु परिवार व समाज में उसे प्रौढ़ों के समान उचित स्थान नहीं मिलता अर्थात् प्रौढ़ों के समान सुविधाएँ भी उसे प्राप्त नहीं होतीं। बच्चे उसे अपने से बड़ा समझते हैं और प्रौढ़ उसे बच्चा समझते हैं। इस प्रकार, वह समायोजन करने में असफल रहता है तथा अनेक अनिश्चितताओं, चिन्ताओं, तनावों व संघर्षों से युक्त रहता है। इस प्रकार किशोरावस्था प्रतिबल, खिंचाव, तनाव और व संघर्ष का समय है।

किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन और समस्यात्मक समय है। इस अवस्था में किशोर लड़के और लड़कियाँ एक तूफानी दौर से गुजरते हैं। यह स्वाभाविक है कि किशोरों को मानसिक तनाव और दबाव सहने पड़ते हैं। जो इन्हें सहन नहीं कर पाते उनका व्यक्तित्व दुर्बल तथा विखण्डित हो जाता है। **लारसन व कारपस** का कथन है कि **"किशोरों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वह इन समस्याओं के बारे में बहुत गम्भीर होता है। वह छोटी-छोटी बातों पर निराश हो जाता है। इस निराशा के कारण उसका सन्तुलन बिगड़ जाता है। अपनी इस निराशा को वह समाजविरोधी क्रियाओं द्वारा व्यक्त करता है। वह अपने आदर्शों व संवेगों में संघर्ष अनुभव करता है। इसलिए कभी-कभी वह बड़ी दुविधा में पड़ जाता है।"**

किशोरों की मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं–

(1) किशोरों का शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक व यौन विकास तीव्र गति से होता है। इससे उसमें बेचैनी उत्पन्न हो जाती है। प्रायः उनका अपने आप पर नियन्त्रण समाप्त हो जाता है। उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और उनके व्यवहार में क्रोध, घृणा आदि दुर्गुण दिखाई देने लगते हैं। उनके व्यवहार और मनोदशा को समझना कठिन होता है।

Scanned with OKEN Scanner

(2) बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच में रहकर किशोर कभी प्रौढ़ों के समान व्यवहार करते हैं तथा कभी बच्चों के समान व्यवहार करते हैं। इस अवस्था में वे अपने आप को अनिश्चित स्थिति में पाते हैं।

(3) किशोर स्वतन्त्रता चाहते हैं, परन्तु परिवार और समाज में उन्हें वाँछित स्वतन्त्रता नहीं मिलती, जिसके फलस्वरूप वे खिन्न हो जाते हैं।

(4) किशोर लड़के-लड़कियाँ प्रायः अपने पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं। उनमें मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वे शीघ्र ही मानसिक सन्तुलन खो देते हैं।

(5) किशोरों में स्वतन्त्र रूप से निर्णय करने की योग्यता होती है। परन्तु इसके लिए उन्हें अवसर नहीं दिये जाते। इससे उनको बाद के जीवन में निर्णय लेने में कठिनाइयाँ होती हैं। किशोर दूसरों के निर्णय स्वीकार करने के पक्ष में नहीं होते।

(6) किशोरों के सामने व्यवसाय चुनने की समस्या होती है। वे व्यवसाय चुनकर जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु सही व्यवसाय चुनने में उन्हें समस्या होती है।

(7) किशोर अपने पारिवारिक नियन्त्रणों से मुक्त होकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। इसके लिए उन्हें नये सिरे से सम्बन्ध स्थापित करने पड़ते हैं। अपनी आयु के नये लड़के व लड़कियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(8) कुछ किशोरों में अनेक समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे—नियम के विरुद्ध कार्य करना, झूठ बोलना, चोरी करना, पारिवारिक नियन्त्रण का विरोध करना आदि। किशोर अपराधों की ओर भी अग्रसर हो जाते हैं। वे सामाजिक मर्यादाओं और कठोर अनुशासन को भंग करना चाहते हैं।

किशोरों के तनाव के मुख्य कारक

1. पारिवारिक संरचना में परिवर्तन (Changing family structures)—पारिवारिक संरचना में परिवर्तन किशोरों के लिए तनाव का मुख्य कारक है। जब पारिवारिक संरचना में नकारात्मक परिवर्तन आते हैं तो किशारों में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

मनुष्य का जीवन सुखों और दुखों का मिश्रण है। इस जीवन में कभी सुख तो कभी दुःख दोनों ही आते रहते हैं। इन दोनों तरह की घटनाओं की मुख्य जरूरत यह होती है कि मनुष्य उनके साथ किस प्रकार पुनर्समायोजन (Re-adjustment) करता है। मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में पाया है कि जब किशोर इन घटनाओं के साथ ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता तो वे तनाव (Stress) पैदा करती हैं। तनाव किशोर में दैहिक एवं सांवेगिक विकृतियाँ (Emotional-disorders) उत्पन्न करता है। किसी खास मित्र की मृत्यु, घर के किसी सदस्य की बीमारी, विवाह तलाक, पति या पत्नी की मृत्यु, ससुराल वालों से झगड़ा, घर बदलना तथा किसी छोटे-छोटे कानून का उल्लंघन के कारण तनाव पैदा होता है। जैसे पति या पत्नी की मृत्यु जीवन की सबसे अधिक तनाव देने वाली घटना है।

तनाव का संबंध, मनुष्य जीवन की घटनाएं अवश्य हैं, परन्तु एक मनुष्य किसी घटना से ज्यादा तनाव ग्रस्त नहीं होता। वहीं दूसरा मनुष्य उसी प्रकार की घटना से ज्यादा तनावग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार तनाव मनुष्य की व्यक्तिगत आदतों पर भी निर्भर करता है। अतः पारिवारि संरचना में परिवर्तन किशोरों में तनाव का मुख्य कारक हैं।

2. प्रेरकों का संघर्ष—जब अभिप्रेरकों के मध्य आपसी संघर्ष होता है, उस समय किशोर में तनाव उत्पन्न होता है। अगर अभिप्रेरक की पुष्टि नहीं होती तो किशोर में कुण्ठा उत्पन्न होती है जो तनाव का एक मुख्य कारण है। जैसे एक विद्यार्थी जो अपने साथियों से उत्तम अंक प्राप्त नहीं कर सकता, परन्तु खेल के मैदान में अपने साथियों से अच्छा प्रदर्शन करता है, उस समय वह सोच कर तनाव में रहेगा कि उसने परीक्षा

Scanned with OKEN Scanner

में अच्छे अंक प्राप्त नहीं किए। बालक को कई बार सहयोग की आवश्यकता होती है, जब उसे सहयोग नहीं मिलता, उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी किशोर अपने आप को सामाजिक रूप से (क्षेत्र) में समायोजित नहीं कर पाता, इससे भी तनाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विरोधी अभिप्रेरकों के बीच समझोते का प्रयास अपने आप में तनाव (stress) उत्पन्न करता है।

3. कुण्ठा तथा अकेलापन (Coneliness)—व्यक्ति कोशिश करता है और वह किसी लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाता तो उसमें कुण्ठा उत्पन्न हो जाती है। इस तरह की कुण्ठा दूसरों द्वारा बाधा खड़ी करने के कारण भी हो जाती है। कभी-कभी मनुष्य जीवन में अकेलापन महसूस करता है या परिवार में किसी की मृत्यु या भयानक बीमारी के कारण व्यक्ति को अपने दिन प्रति दिन के जीवन में कुण्ठा का अहसास होता है। इन दोनों तरह के कारणों से उत्पन्न कुण्ठाओं में तनाव (Stress) का जन्म होता है।

4. दिन-प्रतिदिन की उलझन—मनुष्य के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना तो निश्चित रूप से तनाव के स्रोत हैं, परन्तु कभी-कभी छोटी-मोटी उलझनों से भी तनाव उत्पन्न हो जाता है। इनको आगे चलकर छः भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **घरेलू उलझन**—इसमें घर की सफाई करना, खाना बनाना, बर्तन साफ करना, घर का सामान खरीदना आदि बातें आती हैं।
2. **आन्तरिक भाव से सम्बन्ध**—इसमें किसी से झगड़ा होने का डर, घर में अकेला रहने का डर आदि।
3. **समय की कमी की उलझन**—इसमें घर की बहुत सारी जिम्मेवारियाँ कम समय में पूरा करना आदि।
4. **आर्थिक उत्तरदायित्व**—इसमें धन कमाना, घरेलू खर्चों को पूरा करना आदि शामिल किया गया है।
5. **कार्य उलझन**—इसमें व्यक्ति जो कार्य कर रहा, वह उससे संतुष्ट नहीं है।
6. **पर्यावरण उलझन**—इसमें शोरगुल, आस-पड़ोस में होने वाली फालतू, तेज आवाज आदि।
7. **पर्यावरण स्रोत**—मनुष्य में तनाव उत्पन्न होने का कारण पर्यावरण (Environment) भी होता है। कुछ पर्यावरण कारक ऐसे हैं जो स्वाभाविक होते हैं और व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं, जैसे—आगजनी, तीव्र आंधी-तूफान, भूकम्प इत्यादि। इस प्रकार की घटना मनुष्य जीवन को काफी प्रभावित करती है तथा 'तनाव' उत्पन्न होता है।

तनाव कम करने के उपाय (Strategies for coping-stress)—तनाव का कारण चाहे जो भी हो, वह मनुष्य के दैहिक, मानसिक स्वास्थ्य पर बेहद खराब प्रभाव डालता है। इस प्रकार इसको कम करने के उपायों पर मनोवैज्ञानिकों ने गम्भीरता से सोचा है। तनाव को कम करने के लिए मनुष्य को समायोजी व्यवहार करना पड़ता है। समायोजी व्यवहार को मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है।

समायोजी व्यवहार से तात्पर्य उस व्यवहार से होता है जिसमें किशोर को तीन प्रकार की जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ता है—1. भौतिक वातावरण से मिलने वाली प्रत्यक्ष चुनौतियाँ। 2. अन्तर वैयक्तिक चुनौतियाँ। 3. अपनी दैहिक सीमाओं से मिलने वाली चुनौतियाँ। लेजारस तथा लाउनियर ने भी समायोजी व्यवहार को इस तरह परिभाषित किया है—"पर्यावरणीय एवं आंतरिक मांगों तथा उनके बीच के संघर्षों को नियंत्रण करने, उन्हें वश में करने, सहने या कम करने के क्रिया उन्मुखी एवं मानसिक दोनों तरह के प्रयासों को समायोजी व्यवहार कहा जाता है।" वुड एवं वुड (wood and wood) 1999 के अनुसार समायोजी व्यवहार से तात्पर्य विचारण एवं क्रिया के माध्यम से किया गया व्यक्ति के उस प्रयास से होता है जिसके द्वारा भार डालने या अपने ऊपर हावी होने वालों से निपटना है। इस प्रकार हम समायोजी व्यवहार (coping behaviour) की कई विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं।

1. समायोजी व्यवहार में तनाव युक्त परिस्थितियों के प्रति कई तरह की क्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ की जाती हैं।

Scanned with OKEN Scanner

2. समायोजी व्यवहार प्रयास युक्त (Effectful) होता है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि समायोजी व्यवहार एक सीखा हुआ व्यवहार होता है।

1. समस्या-केन्द्रित समायोजी उपाय—इस तरह के उपायों में किशोर समस्या तथा तनावपूर्ण परिस्थिति का मूल्यांकन करता है तथा कुछ ऐसा करने की कोशिश करता है कि वह इससे दूर रह सके। इस प्रकार किशोर समस्या को समाप्त करने के लिए दूसरे तरीके (Alternative-solution) ढूँढ़ता है ताकि तनाव को कम कर सके। इस प्रकार किशोर समस्या के स्वरूप को परिवर्तित करके तनाव को कम करने की अपनी पूरी कोशिश करता है और मुख्यतः दो तरह के उपाय अपनाता है ताकि यह उपाय तनाव को कम करने में लाभकारी सिद्ध हो सके।

1. नियंत्रण उपाय 2. पूर्व कथन उपाय

नियंत्रण उपाय—जब किशोर किसी तनावपूर्ण घटना पर अपना नियन्त्रण कायम रखने में सफल होता है तो इससे तनाव की गंभीरता स्वयं ही कम हो जाती है और तनाव उत्पन्न होने की समस्या ही खत्म हो जाती है।

पूर्व कथन उपाय—इस स्थिति में तनाव उत्पन्न होने से पहले ही किशोर को सारी जानकारी होती है कि समस्या का समाधान किस प्रकार किया जाता है, सोचने के लिए उसके पास काफी समय होता है और तनाव पैदा ही न हो, किशोर ऐसे उपाय पहले से ही कर लेता है। कई बार किशोर सोच समझ कर आन्तरिक उपाय करता है तथा तनाव को हर हालत में टालने की पूरी कोशिश करता है।

3. संवेग केन्द्रित समायोगी उपाय—इस विधि के अनुसार किशोर समस्या से उत्पन्न सांवेगिक अनुक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है। इसमें किशोर समस्या को परिवर्तित करने की कोशिश नहीं करता, परन्तु समस्या से उत्पन्न चिन्ता को कम या खत्म करने के उपाय करता है। जब किशोर यह समझता है कि तनाव उत्पन्न करने वाली समस्या इतनी गम्भीर है कि उसे बदला नहीं जा सकता तथा व्यक्ति में तनाव अधिक उत्पन्न हो रहा है। इस प्रकार किशोर तनाव कम करने के लिए दो तरह के उपाय अपनाता है—1. व्यावहारात्मक उपाय, 2. संज्ञानात्मक उपाय।

व्यावहारात्मक उपायों के तहत किशोर कुछ खास तरह से व्यवहार करके अपने तनाव को दूर करने की कोशिश करता है। संज्ञानात्मक उपायों द्वारा किशोर तनावपूर्ण परिस्थितियों के अर्थ में परिवर्तन का पुनः मूल्यांकन करता है। पुनः मूल्यांकन करते समय किशोर समस्या की वास्तविक गम्भीरता का पता लगा लेता है और तनाव को कम करने के सभी उपाय करता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किशोर अपनी सार्थक सूझ-बूझ से कार्य करता रहे और आने वाली समस्या का सार्थक सोच के साथ अवलोकन करता रहे तो तनाव को काफी हद तक या पूर्णतया कम किया जा सकता है। किशोर जीवन सामान्य तनाव को तो सहन करने के क्षमता रखता है। हर किशोर के जीवन में तनाव है। परन्तु ऐसे तनाव कभी भी उत्पन्न नहीं होने देने चाहिए जिनका इलाज सिवाय गम्भीर बीमारी या मृत्यु हो। आज के युग में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसकी सब प्रकार की इच्छाएं, उसकी आवश्यकता के अनुसार पूरी की जा सके। हर व्यक्ति समस्याओं का समाधान खोजने में पूर्ण रूप से समर्थ है। अगर वह स्वयं चाहता है कि तनाव रहित जीवन व्यतीत करता है तो पूर्ण रूप से तो नहीं, परन्तु काफी हद तक ऐसा कर सकता है।

किशोरों की शिक्षा में अध्यापक भूमिका (Role of Teacher in the Education of Adolescents)—किशोरों की शिक्षा में अध्यापक निम्नलिखित योगदान कर सकता है—

(1) सर्वप्रथम स्कूल तथा कक्षा में अध्यापक को किशोरों के व्यवहार एवं व्यक्तित्व को समझना चाहिए।
(2) स्कूल में तथा कक्षा में किशोरों को कोई दायित्वपूर्ण कार्य दिया जाना चाहिए।
(3) किशोरों को पढ़ाने के लिये विभिन्न शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
(4) किशोरों के सामाजिक समायोजन के लिये उन्हें सामाजिक शिक्षा पर बल देना चाहिए।
(5) किशोरों में अपराध-प्रवृत्ति न पनपे, इसके लिये उन्हें नैतिक शिक्षा देनी चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

(6) अध्यापक किशोरों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करें।
(7) स्कूलों में किशोरों के मार्गदर्शन हेतु केन्द्र खोले जायें।
(8) किशोरों के संवेगों को नियंत्रित करना अति आवश्यक है अतः इसके लिये अध्यापक आवश्यक व्यवस्था करे।
(9) अध्यापक को ऐसे कार्यक्रम बनाने चाहिए जिनमें किशोरों को अपने विचार व्यक्त करने और उन पर चर्चा करने की पूरी छूट हो।
(10) किशोरों के दृष्टिकोण को बहुत सहानुभूतिपूर्ण ढंग से सुनना और समझना अध्यापक का कार्य है।
(11) सभी विषयों को इस तरह पढ़ाना चाहिए कि किशोरों को उसमें आनन्द आए, उन्हें कार्य करने में रुचि हो, उनमें प्रेम, साहस और अपने पैरों पर खड़ा होने की क्षमता पैदा हो।
(12) अध्यापकों को प्रत्येक विषय पढ़ाते समय उस विषय के व्यावसायिक महत्त्व पर भी प्रकाश डालना चाहिए।
(13) विद्यालय में खेलकूद, फोटोग्राफी, सांस्कृतिक कार्यक्रम के सामाजिक, संवेगात्मक, शारीरिक एवं सर्जनात्मक विकास से बहुत लाभ होता है।
(14) विद्यालयों में मार्गदर्शन की सेवाओं का विस्तार होना चाहिए ताकि किशोरों को व्यक्तिगत, शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन मिल सके।
(15) अध्यापक को ऐसे कार्यक्रमों की रचना करनी चाहिए जिससे किशोरों में देश की संस्कृति और सभ्यता के अनुरूप जीवन-दर्शन का विकास हो।
(16) किशोरों में अनुशासन की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। इसके लिये अध्यापक अपना आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।
(17) किशोरों का पाठ्यक्रम विस्तृत होना चाहिए तथा पुस्तकालय सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
(18) किशोरों को व्यावसायिक निर्देशन भी प्रदान किया जाए ताकि भविष्य के बारे में उनकी चिन्ताएँ कम हों।
(19) अध्यापक किशोरों को आत्म-अभिव्यक्ति के लिये एक मंच प्रस्तुत करे ताकि उन्हें अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिल सके।
(20) किशोरों के प्रति अध्यापक का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण हो।
(21) किशोरों को उनके वैयक्तिक विभिन्नताओं के आधार पर ही कार्य सौंपे जाने चाहिए ताकि वे कार्य करते समय आनन्द महसूस करें।
(22) अध्यापक और माता-पिता को किशोरों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। एक श्लोक के अनुसार सोलह वर्ष की आयु में पुत्र को मित्र समझना चाहिए।

लालये त्पञ्च वर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रव दाचरेत्। —मनुस्मृति।

(23) किशोरों को सामाजिक दायित्व सौंपा जाना चाहिए।
(24) किशोरों में नैतिक भाव विकसित करने के लिए देशभक्ति, ईमानदारी, नेकी, राष्ट्रीयता आदि आदर्श धारण करने में अध्यापक को सहायता करनी चाहिए।
(25) किशोरों को अनुशासन शिक्षा देकर उनमें अनुशासित जीवन जीने की भावना का विकास करना चाहिए।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अध्यापक को किशोरों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं को समझकर विद्यालय में उनकी शिक्षा का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि जिससे वे अपने जीवन को सुखी बना सकें।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

4.3 विभिन्नता तथा विविल्लाता के सीमान्तकों के मुद्दे (Issues in Marginalisation of difference and diversity)

1. विभिन्नता तथा विविधता के सीमान्तकों के मुद्दों का वर्णन कीजिए। (Describe the issues in marginalisation of differences and diversities.)

उत्तर–भारतीय समाज एक विविधतापूर्ण समाज है। यहाँ विभिन्न जातियों, धर्मों व सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। प्राचीनकाल से ही कुछ लोगों को तो सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा और कुछ को निम्न दृष्टि से। जाति, धर्म, लिंग तथा आर्थिक स्तर के आधार पर कुछ लोग यहाँ सदियों से सामाजिक शोषण का शिकार रहे और उनकी स्थिति दयनीय होती गई। अंग्रेजों ने भी अपनी 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अनुसार आपसी भेदभावों को बढ़ावा दिया। किसी भी राष्ट्र के विकास की दृष्टि से यह स्थिति अत्यंत घातक है। इसलिये स्वतंत्रता के बाद असमानता को दूर करने के लिए भारतीय संविधान द्वारा प्रजातांत्रिक, धर्म निरपेक्ष तथा समाजवादी समाज व्यवस्था स्थापित करने का संकल्प किया गया, क्योंकि इन तीनों का आधार समानता है जैसा कि निम्न कथनों से स्पष्ट है–डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार–"प्रजातंत्र का यह मानना है कि सबको समान अवसर प्राप्त होने चाहिए ताकि उनकी विभिन्न योग्यताओं का विकास हो सके।" गाँधीजी के अनुसार–"समाजवादी समाज एक वर्गहीन और जातिहीन समाज है। समाजवाद के अंतर्गत सभी सदस्य समान हैं। कोई नीचा नहीं और कोई ऊंचा नहीं।"

धर्मनिरपेक्ष समाज के विषय में स्मिथ महोदय का विचार है कि–"यह प्रत्येक व्यक्ति को एक नागरिक की दृष्टि से देखता है, न कि उसके धर्म के आधार पर।"

स्पष्ट है कि प्रजातंत्र, समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना का लक्ष्य तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक समाज से असमानता को दूर करने में हम सफल नहीं होते। सामाजिक समानता लाने के लिए आजादी के बाद से अनेक प्रयास किए जाते रहे हैं, लेकिन समाज में अभी भी असमानता की स्थिति बनी हुई है। जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर आज भी भेदभाव देखने को मिल रहे हैं। इसके क्या कारण हैं तथा इसे कैसे दूर किया जाए, यह सब जानने से पूर्व असमानता को समझना आवश्यक है।

असमानता का अर्थ
(Meaning of Inequality)

सामान्यतः समानता के अभाव को असमानता कहा जाता है। सब व्यक्ति एक ही ईश्वर की संतान हैं। अतः समान अधिकार पाने के हकदार हैं। यद्यपि संविधान द्वारा उन्हें यह समान अधिकार दिए जाते हैं, फिर भी जब व्यवहार में समाज में जाति, धर्म, धन, लिंग या अन्य किसी कारण से हम परस्पर भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हैं तो वह असमानता की स्थिति है।

उदाहरण के लिए भारत में हरिजनों को अछूत व अपवित्र समझा जाता रहा तथा स्त्रियों को भोग की वस्तु। धनी वर्ग निर्धनों का शोषण करता रहा तथा अंग्रेजों के समय में रंगभेद के कारण भारतीयों को अपमान सहना पड़ा। यह असमानता के परिचायक हैं। स्वतंत्रता के बाद यहाँ संविधान द्वारा यद्यपि सब प्रकार की असमानताओं को दूर करने का लक्ष्य रखा गया है, पर अनेक क्षेत्रों में स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं है।

इस प्रकार यदि ध्यान से देखें तो कह सकते हैं कि भारत में यह असमानता दो रूपों में देखने को मिलती है–

1. सामाजिक : इसमें जाति, लिंग, धर्म तथा भाषा के आधार पर किए जाने वाले असमान व्यवहार सम्मिलित हैं।

Scanned with OKEN Scanner

2. **आर्थिक :** यदि कुछ व्यक्तियों की आय तो बहुत अधिक हो तथा उनके पास सम्पत्ति भी बहुत हो और कुछ व्यक्तियों के पास आय व सम्पत्ति कम हो तथा उन्हें अवसरों की समानता प्राप्त न हो तो वह आर्थिक असमानता कहलाती है।

विभिन्नता तथा विविधता के कारण
(Causes of Differences and Diversity)

ये कारण इस प्रकार हैं :

1. प्राचीन वर्ण व्यवस्था : प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्गों में बांटा गया था। इनमें ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया था तथा शूद्रों को निम्न। उनका कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना बताया गया था। इस व्यवस्था का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। संविधान द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिए जाने के बावजूद आज भी अनेक लोग अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों के साथ अछूतों जैसा व्यवहार करते हैं। अन्य तथाकथित उच्च जातियों के लोग इन जातियों में विवाह सम्बन्ध बनाने से कतराते हैं।

2. लड़की के सम्बन्ध में हमारे पुराने विचार : प्राचीन काल से ही यहाँ लड़कों को लड़कियों की तुलना में अधिक महत्त्व दिया जाता था। प्रत्येक व्यक्ति यहाँ पुत्र की कामना करता है, क्योंकि यह माना जाता है कि पुत्र के बिना व्यक्ति की गति नहीं होती। इसलिए आज भी लड़कियों के जन्म पर अनेक परिवारों में शोक छा जाता है और लड़कों के जन्म पर खुशी। लड़की को एक बोझ समझा जाता है और अनेक परिवारों में उनके खान-पान तथा शिक्षा आदि पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। लड़कियों को लड़कों जैसी आजादी भी नहीं दी जाती। गाँव या शहर में उच्च शिक्षा की व्यवस्था न होने से अनेक लड़कियाँ उससे वंचित रह जाती हैं। बचपन में वह अपने पिता के संरक्षण में रहती है, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करता है ऐसी हमारी मान्यता है। इस प्रकार लड़कियाँ सम्बन्धी हमारे विचार असमानता का कारण हैं।

3. प्रान्तीयता : भारत में विभिन्न प्रांत हैं। प्रत्येक प्रांत की अपनी अलग संस्कृति है। प्रत्येक प्रांत के वासी अपनी शिक्षा, जीवन-शैली तथा भाषा को दूसरे प्रांतों से अच्छा मानते हैं। वे दूसरे प्रांतों की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं की आलोचना करने में भी नहीं हिचकिचाते। इससे असमानता की स्थिति पैदा होती है।

4. धार्मिक विविधता : भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। प्रत्येक धर्म में अलग-अलग संप्रदाय हैं। असमानता की स्थिति तब उत्पन्न हो जाती है जब प्रत्येक धर्म को मानने वाले या किसी धर्म के किसी संप्रदाय के लोग अपने धर्म या संप्रदाय को दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ बताते हैं तथा दूसरे को निम्न दृष्टि से देखते हैं।

5. राजनैतिक दल : देश में असमानता की स्थिति के लिए राजनैतिक दल भी उत्तरदायी हैं। वे जाति, धर्म तथा भाषा के नाम पर वोट मांगते हैं तथा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए लोगों में आपसी मतभेदों को बढ़ावा देते हैं। ये दल भोले-भाले लोगों के मन में एक दूसरे के प्रति नफरत के बीज बो देते हैं।

6. अंग्रेजी शासन का प्रभाव : अंग्रेजों ने भारत में फूट के जो बीज बोए उनका प्रभाव आज समाज में आपसी भेदभाव व असमानता के रूप में दखने को मिल रहा है। भले ही आज हम स्वतंत्र हैं, संविधान द्वारा यहाँ प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्ष व समाजवादी व्यवस्था की स्थपना का संकल्प किया गया है, पर हम अभी भी जाति व धर्म के नाम पर बंटे हुए हैं।

7. मानवीय मूल्यों में गिरावट : प्राचीन भारतीय संस्कृति हमें विश्व परिवार का संदेश देती है व सबके मंगल की कामना करती है पर आज यहाँ मानवीय मूल्यों में गिरावट आती जा रही है। छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण हम आपस में झगड़ने लगे हैं। इससे मतभेद उभरते हैं व असमानता पैदा होती है।

8. धनी व निर्धन वर्ग में बढ़ता अंतर : आज भारत में धनी एवं निर्धन के बीच का अंतर बढ़ता जा रहा है। एक ओर ऐसा वर्ग है जिसे जीवन की न्यूनतम सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं, दूसरी ओर ऐसे लोग हैं जो विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं। यद्यपि नवीन आर्थिक सुधारों का उद्देश्य इनके बीच के अंतर को कम

Scanned with OKEN Scanner

करना था, पर उनका कोई अनुकूल प्रभाव दिखाई नहीं दे रहा। विषमता बढ़ रही है। आर्थिक केंद्रीकरण, निर्धनता, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, मूल्यवृद्धि तथा उत्पादन के साधनों के अनुचित वितरण आदि कारणों से भी अर्थिक क्षेत्र में असमानता बढ़ रही है। धनी वर्ग निर्धनों का शोषण कर रहा है, जिससे उनकी स्थिति दयनीय बनी हुई है।

विभिन्नता तथा विविधता के दुष्प्रभाव
(Consequences of Differences and diversity)

भारत में विद्यमान विभिन्नता और विविधता की स्थिति के निम्नलिखित दुष्प्रभाव दिखाई दे रहे हैं :

1. प्रजातंत्र की सफलता में बाधा : हमारा लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रत्येक क्षेत्र में प्रजातंत्र लाना है। प्रजातंत्र समानता, न्याय, स्वतंत्रता तथा भाईचारे के मूल्यों पर आधारित है। इनके अभाव में यह सफल हो ही नहीं सकता। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता की स्थिति प्रजातांत्रिक, सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के मार्ग में बाधा पैदा कर रही है।

2. समाजवादी व्यवस्था की स्थापना में बाधा : हम भारत में गाँधी व नेहरू के सपनों का समाजवाद लाना चाहते हैं। इस समाजवाद का अर्थ है : समानता पर आधारित समाज व्यवस्था जिसमें कोई भेदभाव न हो तथा कोई किसी का शोषण न करे, लेकिन सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती असमानताओं के कारण समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का लक्ष्य पूरा करने में बाधा उत्पन्न हो रही है।

3. राष्ट्रीय एकता में बाधक : भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में लोगों में राष्ट्रीय एकता का होना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इतिहास साक्षी है कि जब-जब हम भारतीय आपस में लड़े उसका लाभ विदेशियों ने उठाया और इसी कारण अंग्रेजों ने हमें इतने वर्षों तक गुलाम बनाकर रखा। राष्ट्रीय एकता के लिए यह जरूरी है कि हम अपने जातिगत या अन्य सभी प्रकार के भेदभावों को भुलाकर एक हो जाएं, लेकिन आज हम धर्म, जाति व भाषा के नाम पर आपस में लड़ रहे हैं। एक-दूसरे का रक्त बहा रहे हैं। यह स्थिति राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से घातक है।

4. राष्ट्रीय विकास में बाधक : राष्ट्रीय विकास का अर्थ है राष्ट्र का सर्वांगीण विकास। इसमें राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का विकास निहित है, पर असमानता के कारण कुछ वर्ग विशेष के लोगों का ही विकास हो पाता है। उदाहरण के लिए, आर्थिक विकास भी राष्ट्रीय विकास का एक पहलू है, लेकिन जब समाज में धनी वर्ग निर्धनों का शोषण करता है, उन्हें अपने से नीचा समझता है तो आर्थिक विकास में रुकावट पैदा होती है जिसका प्रभाव राष्ट्रीय विकास पर पड़ता है।

5. शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बाधक : असमानता के कारण अनेक माता-पिता अपनी लड़कियों को शिक्षा नहीं दिलाना चाहते। वे घर पर रहकर अपने माता-पिता की अनुपस्थिति में अपने छोटे बहन-भाइयों की देखभाल करती हैं या फिर मां-बाप के काम में हाथ बंटाती हैं। इससे शिक्षा के सार्वभौमिकरण में बाधा आ रही है।

विभिन्नता और विविधता दूर करने के लिए किए जा रहे प्रयास
(Efforts Being Made to Eradicate Differences and diversity)

स्वतंत्रता के बाद से विभिन्नता और विविधता को दूर करने के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जा रहे हैं :

(i) संविधान सभी नागरिकों को समानता का मूल अधिकार देता है। संविधान की धारा 14, 15 व 16 में कहा गया है कि कानून के समक्ष सभी समान हैं। इस अधिकार द्वारा उन निर्योग्यताओं को दूर करने का प्रयास किया गया है जिनके कारण भारत के सामान्य लोग सदियों से अपार कष्ट सहन करते आ रहे हैं। संविधान में यह भी स्पष्ट उल्लेख है कि राज्य स्त्रियों, बच्चों अन्य पिछड़े लोगों के लिए विशेष सुविधाएँ दे सकता है :

Scanned with OKEN Scanner

(ii) शिक्षा का मौलिक अधिकार भी असमानता दूर करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। संविधान द्वारा सभी वर्गों, धर्मों व जाति के लोगों को अपनी शिक्षा संस्थाएँ खोलने का अधिकार दिया गया है। सभी संस्थाओं में सबके लिए प्रवेश खुला है। अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग के लोगों तथा स्त्रियों के लिए विशेष शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था की गई है, जिससे उन्हें समाज के अन्य वर्गों के साथ समानता के स्तर पर लाया जा सके।

(iii) संविधान अपने नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता की भी गारंटी देता है। धर्म के आधार पर किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। अल्पसंख्यकों को भी समान अधिकार प्राप्त हैं।

(iv) नागरिकों को शोषण के विरुद्ध अधिकार प्रदान करके भारतीय संविधान द्वारा आर्थिक असमानता को दूर करने का प्रयास किया गया है। इसके अनुसार कोई किसी का शोषण नहीं कर सकता। इससे आर्थिक असमानता को दूर करने में मदद मिलेगी।

(v) अनुच्छेद 17 के द्वारा यहाँ अस्पृश्यता का अंत कर दिया गया है। इसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध है।

2. **विभिन्न अधिनियमों द्वारा असमानता दूर करने के प्रयास :** आजादी के बाद **निम्नलिखित अधिनियमों** द्वारा असमानता को दूर करने के प्रयास किए गए :

(i) **अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955**—इसके अनुसार इस कानून को न मानने या अस्पृश्यता को बढ़ावा देने वाले के लिए दंड की व्यवस्था की गई है। इसमें कहा गया है कि अस्पृश्यता के आधार पर कोई दुकानदार किसी को कोई चीज बेचने से इंकार नहीं कर सकता।

(ii) **नागरिक अधिकार संरक्षण कानून 1976 :** इसके द्वारा अस्पृश्यता के अपराध के लिए और अधिक कठोर दंड की व्यवस्था की गई है।

(iii) **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम :** इसके द्वारा स्त्रियों को परिवार की सम्पत्ति में समान अधिकार दिया गया है, जिससे उनके साथ होने वाले भेदभाव को दूर किया जा सके।

3. नई शिक्षा नीति द्वारा असमानता को दूर करने के लिए किए गए प्रयास : सभी संवैधानिक व्यवस्थाएँ व कानून व्यर्थ हैं यदि लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हैं तथा वे अपनी सोच को नहीं बदलते। उनमें जागरूकता लाए बिना समाज से असमानता को दूर किया ही नहीं जा सकता। इस संदर्भ में लोगों को सचेत करने का एक ही साधन है और वह है शिक्षा। इसी तथ्य को अनुभव करते हुए समाज के पिछड़े वर्गों तक शिक्षा सुविधाओं को पहुँचाने के लिए नई शिक्षा नीति में **निम्नलिखित प्रावधान** किए गए हैं :

(i) महिलाओं की साक्षरता के लिए विशेष प्रयास किए जाएंगे तथा उन रुकावटों का दूर किया जाएगा जिनके कारण वे प्राथमिक शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

(ii) अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था तथा जिला केंद्रों पर छात्रावास की सुविधाएँ बढ़ाना।

(iii) आदिवासी क्षेत्रों में विद्यालय खोलने को प्राथमिकता दी जाएगी। यहाँ आरंभिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी।

(iv) अल्पसंख्यकों के कुछ वर्ग शिक्षा की दृष्टि से काफी पिछड़े हैं। नई शिक्षा नीति में इन्हें भी कुछ विशेष सुविधाएँ दी गई हैं जिससे उनके साथ इंसाफ हो सके।

इसी प्रकार विकलांगों व प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए विशिष्ट विद्यालयों व दूरस्थ शिक्षा की व्यवस्था की गई है। इन सुझावों को क्रियान्वित भी किया जा रहा है। अनुसूचित जाति व जनजाति की लड़कियों को राज्य सरकारों द्वारा विशेष सुविधाएँ दी जा रही हैं। इस समय 1500 से भी अधिक छात्रावास चलाए जा रहे हैं। +2 तक तथा कहीं-कहीं बी. ए. तक लड़कियों की शिक्षा निःशुल्क कर दी गई है। अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए यू.जी.सी. द्वारा विशेष कोचिंग दी जा रही है। इस प्रकार शिक्षा द्वारा असमानता को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है।

Scanned with OKEN Scanner

इसके अतिरिक्त विद्यालयों में शिक्षा दी जा रही है उसके उद्देश्य तथा पाठ्यक्रम भी इस प्रकार का बनाया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों की सोच को बदला जा सके तथा वे सबके साथ समानता का व्यवहार कर सकें। अध्यापक का भी कर्तव्य है कि वह अपने व्यवहार द्वारा बच्चों के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करे। उसका बच्चों के साथ किया गया असमान व्यवहार बच्चों के दृष्टिकोण को भी वैसा ही बना देगा। अतः उसे चाहिए कि वह सबको एकसमान समझे। ऐसी पाठ्यक्रम सहगामी गतिविधियों को आयोजित करे जिनसे असमानता को दूर करने में मदद मिल सके।

4. अन्य प्रयास (Other Efforts) : असमानता दूर करने के प्रयास आजादी के पहले से ही किए जा रहे हैं। इस दिशा में राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उनके प्रयत्नों से सती-प्रथा का उन्मूलन हो गया है तथा उन्हें घर की चारदीवारी से बाहर आने का अवसर प्राप्त हुआ है। गाँधीजी ने अछूत समझे जाने वाले अस्पृश्य लोगों को हरिजन नाम देकर उन्हें समाज में समानता के स्तर पर लाने का प्रयास किया।

समानता की बात आज राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी की जा रही है। मार्च 1995 में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगेन में संयुक्त राष्ट्र द्वारा 'सामाजिक विकास' विषय पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें 130 देशों ने भाग लिया। सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के अवर सचिव ने बताया कि 'महिलाओं की असमानता पर बात किए बिना सामाजिक समस्याओं पर बात हो ही नहीं सकती।'

मानवाधिकार संगठन एम्नेस्टी इंटरनेशन ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर जारी अपनी रिपोर्ट में कहा है कि 1990 का दशक महिलाओं के लिए आतंक, भेदभाव तथा मानवाधिकारों के हनन का वर्ष रहा है। समानता की दृष्टि से यह स्थिति बहुत घातक है। अतः इस पर रोक लगाई जानी चाहिए।

असमानता को दूर करने की बात अधूरी रहेगी यदि भारत में रहने वाली मुस्लिम महिलाओं की स्थिति पर विचार न किया जाए। वे आज भी शोषण का शिकार हैं तथा पर्दे में रहने के लिए बाध्य हैं। वे अनेक शैक्षिक व सामाजिक समस्याओं से पीड़ित हैं। अतः समानता की दृष्टि से उनकी स्थिति में सुधार आवश्यक है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समानता के लिए किए जा रहे सरकारी व गैर सरकारी प्रयास तब तक व्यर्थ सिद्ध होंगे जब तक असमानता व शोषण के शिकार सामाजिक वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए स्वयं आगे नहीं आते। उन्हें पता होना चाहिए कि संविधान तथा सरकार द्वारा उनके लिए क्या विशेष व्यवस्थाएँ व सुविधाएँ दी जा रही हैं। यदि उन्हें इनका लाभ नहीं मिल पा रहा तो इसका क्या कारण है? इन सबके लिए उनका शिक्षित होना जरूरी है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हम 'सबके लिए शिक्षा' (Education for all) की व्यवस्था करें। जैसे-जैसे शिक्षा सुविधाएँ समाज के पिछड़े व शोषित वर्गों तक पहुँचेंगी, वैसे-वैसे हम सामाजिक असमानता को दूर करने की दिशा में आगे बढ़ पाने में सफल होंगे।

◆◆◆

5. छुआछूत को दूर करने के लिए संविधान में कौन-कौन से प्रबंध किए गए हैं? विवेचना करें।

अथवा

छुआछूत को दूर करने के लिए पारित किए अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो।

उत्तर–भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में लिखा है कि, "राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, जन्म, लिंग, स्थान तथा इनमें से किसी एक के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा।"

भारत सरकार ने संविधान के इस अनुच्छेद को विस्तारपूर्वक लागू करने के लिए "अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955" पारित किया। यह 1 जून, 1955 से लागू है। इस अधिनियम की प्रमुख धाराएँ निम्नलिखित हैं–

धारा 3 (Clause 3) के अनुसार–

(i) हर व्यक्ति को किसी भी सार्वजनिक पूजा के स्थान में प्रवेश करने की स्वतंत्रता होगी।

(ii) हर व्यक्ति किसी भी प्रकार की पूजा, प्रार्थना या दूसरे धार्मिक संस्कार करने में स्वतंत्र होगा।

Scanned with OKEN Scanner

(iii) हर व्यक्ति को धर्म संबंधी सभी पवित्र नदियों, तालाबों, झरनों आदि में नहाने या पानी लेने की स्वतंत्रता होगी। इन नियमों का पालन न करने पर सरकार द्वारा दी गई कोई भी सहायता बंद की जा सकती है या जमीन छीनी जा सकती है।

धारा 4 (Clause 4) के अनुसार–

(i) हर व्यक्ति को किसी भी दुकान, जलपान गृह, होटल या सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश करने तथा धर्मशालाओं या मुसाफिरखानों के बर्तनों अथवा अन्य चीजों के प्रयोग करने की स्वतंत्रता होगी।

(ii) किसी भी व्यवसाय को चुनने तथा करने की स्वतंत्रता होगी।

(iii) किसी भी नदी, कुएं, नल, घाट, श्मशान या कब्रिस्तान के स्थानों को प्रयोग करने की स्वतंत्रता होगी।

(iv) धर्मार्थ संस्थाओं के लाभ तथा सेवाओं का उपयोग करने का पूर्ण अधिकार होगा।

(v) किसी भी जगह पर बसने की स्वतंत्रता होगी।

(vi) किसी भी धर्मशाला, सराय आदि से लाभ उठाने का पूर्ण अधिकार होगा।

(vii) किसी भी सामाजिक या धार्मिक संस्कार को अपनाने की स्वतंत्रता, किसी भी तरह के जेवरों तथा अन्य चीजों को पहनने की स्वतंत्रता होगी।

धारा 5 (Clause 5) के अनुसार–

(i) हर व्यक्ति को किसी भी सार्वजनिक चिकित्सालय, शिक्षा संस्था या छात्रावास का अधिकार होगा तथा प्रत्येक के साथ समान व्यवहार होगा।

(ii) छुआछूत के आधार पर कोई भी दुकानदार किसी भी व्यक्ति को कोई चीज बेचने या सेवाएँ प्रदान करने से इंकार नहीं कर सकेगा।

धारा 7 (Clause) के अनुसार–

इस कानून के किसी भी नियम को न मानने या अस्पृश्यता को बढ़ावा देने वाले को दंड दिया जाएगा। ये दंड छः माह की कैद या 500 रु. जुर्माना या दोनों हो सकते हैं।

इस अधिनियम के द्वारा छुआछूत संबंधी आचरण एवं छुआछूत को किसी भी रूप में प्रोत्साहन देने पर प्रतिबंध अवश्य लगा दिया गया है, परन्तु व्यावहारिक रूप में आज भी व्याप्त है। इसके संपूर्ण उन्मूलन के लिए भारत सरकार ने एक अलग कानून नागरिक अधिकार संरक्षण कानून (Civil Right Protection Act 1976) पारित किया गया। यह 19 नवम्बर, 1976 से लागू है।

इसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं :

(i) छुआछूत के अपराध में दंडित लोग लोकसभा तथा विधानसभा का चुनाव नहीं लड़ सकेंगे।

(ii) इसको अपराध घोषित किया गया है और पुलिस बिना किसी शिकायत के इससे संबंधित अपराध में स्वयं सीधी कार्रवाई कर सकती है।

(iii) पहली बार इससे संबंधित अपराध के लिए 1 से 6 महीने की कैद + 100 से 500 रुपये जुर्माना दूसरी बार 6 से 12 महीने की कैद + 200 से 500 रुपये जुर्माना तथा तीसरी बार 1 से 2 वर्ष की कैद + 1000 रुपये जुर्माना तक किया जा सकता है।

(iv) यदि कोई अधिकारी इससे संबंधित जाँच के कार्य की जान-बूझकर अपेक्षा करेगा तो उसके इस कार्य को अपराध को प्रोत्साहन देने वाला तथा दंडनीय माना जाएगा।

(v) इसका प्रचार करना तथा उसे किसी भी रूप में न्यायोचित ठहराना भी अपराध होगा।

(vi) सामूहिक रूप से छुआछूत संबंधी अपराध करने पर ऐसे किसी क्षेत्र के लोगों पर सामूहिक जुर्माना करने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है।

(vii) पूजा के निजी स्थानों पर जहाँ जनता साधारणतः जाती रहती है, में छुआछूत करना दंडनीय होगा।

(viii) इन कानून का उल्लंघन करने वाले लोगों को दंड देने हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति तथा मामलों की सुनवाई हेतु विशेष अदालतों के गठन की व्यवस्था की गई है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

4.4 शहरी गन्दी बस्ती में रहने वाले बच्चे, सामाजिक रूप से वंचित लड़कियाँ (Children living in Urban slum, socially deprived girls)

शहरी गन्दी बस्ती में रहने वाले बच्चे (Children living in urban slum)

1. शहरीकरण से आप क्या समझते है? बच्चों के शहरी गन्दी बस्तियों में रहने के क्या दुष्परिणाम हैं? इन बच्चों की शिक्षा के लिए भारत सरकार ने क्या कदम उठाए हैं?

उत्तर–शहरीकरण का अर्थ (Meaning of Urbanization)–शहरीकरण वह प्रक्रिया होती है जिसमें लोग गाँवों को छोड़कर शहरों की तरफ जाने लगते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की एक उभरती हुई समस्या प्रवास की समस्या है। प्रवास से अभिप्राय है लोगों का देश के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक देश से दूसरे देश में बसना। अतएव प्रवास दो प्रकार का हो सकता है–आन्तरिक प्रवास तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास।

आन्तरिक प्रवास से अभिप्राय है देश के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसना। भारत जैसे अल्पविकसित देश में आन्तरिक प्रवास की समस्या मुख्य रूप से गावों से शहरों में जाकर बसने की समस्या या ग्रामीण-शहरी प्रवास की समस्या है। इसे शहरीकरण (Urbanisation) की समस्या भी कहते हैं। भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् शहरीकरण की प्रवृत्ति या ग्रामीण-शहरी प्रवास में वृद्धि हुई है।

नगरीकरण एक चुनौती किस प्रकार से है? (How is the urbanisation a challenge?)

भारत में नगरीकरण अर्थात् गांवों से शहरों में प्रवास निम्नलिखित कारणों से एक चुनौती है:

(a) आवास समस्या (Housing Problem)—नगरीकरण के फलस्वरूप शहरों में आवास सुविधाओं की समस्या उत्पन्न हो रही है। शहरों में प्रायः लाग फुटपाथों पर सोते हुए पाए जा सकते हैं।

(b) दूषित पर्यावरण (Environmental Pollution)—नगरीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के फलस्वरूप प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। शहरों की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए यातायात सुविधाओं की अधिक आवश्यकता होती है। इसके फलस्वरूप भारत के शहरों में वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण बहुत बढ़ गया है।

(c) कानून और व्यवस्था की समस्या (Problem of Law and Order)—शहरी क्षेत्रों में बहुभाषी तथा विविध संस्कृतियों के लोगों के प्रवास के फलस्वरूप कानून और व्यवस्था की समस्या जटिल तथा दीर्घकालीन हो गई है। इस कारण से जीवन की गुणवत्ता में घटने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

ग्रामीण-शहरी प्रवास की समस्या के समाधान के लिए यह आवश्यक है कि भारत में साधनों का अनुकूल उपयोग तथा रोजगार की दृष्टि से उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण होना चाहिए। इस समस्या से निपटने के लिए निम्नलिखित समाधान हैं–(i) ग्रामीण क्षेत्रों में लघु तथा कुटीर उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। देश के विभिन्न भागों में ये उद्योग बड़ी आसानी से स्थापित किये जा सकते हैं। (ii) गांवों में शिक्षा, चिकित्सा तथा अन्य संबंधित सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं तथा इन सुविधाओं के अभाव के कारण लोग ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास न करें। (iii) ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि शहरी क्षेत्रों की ओर रोजगार के लिए प्रवास करने की जरूरत नहीं रह जाए।

नगरीकरण और प्रति व्यक्ति आय सकारात्मक रूप में सम्बन्धित हैं, किन्तु नगरीकरण और बेरोजगारी में सम्बन्ध लगभग न के बराबर हैं और नगरीकरण और निर्धनता-रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या में कोई सम्बन्ध विद्यमान नहीं। इस स्थिति के लिए कई तत्व जिम्मेदार हैं : प्रथम, हमारे आयोजन प्रोग्रामों में नगर क्षेत्रों में गन्दी बस्तियों के सुधार के प्रति अवहेलना के कारण गरीबी की स्थिति बदस्तूर बनी हुई है।

Scanned with OKEN Scanner

उदाहरणार्थ, कोलकाता के गन्दी बस्ती सर्वेक्षण से पता चलता है कि इसकी जनसंख्या का 33 प्रतिशत गन्दी बस्तियों में रहता है। दूसरे, जहाँ पर संगठित क्षेत्र अपनी आय को सामूहिक सौदाशक्ति द्वारा उन्नत कर लेते हैं, असंगठित क्षेत्रों के श्रमिकों का पूंजीपतियों, जमींदारों, ठेकेदारों और उत्पादन के साधनों के अन्य मालिकों द्वारा बुरी तरह शोषण किया जाता है। तीसरे, नगरीय क्षेत्रों में पूंजी-प्रधान तकनीकों के बढ़ते हुए उपयोग के कारण उत्पादन में वृद्धि तो प्राप्त हो जाती है, परन्तु इससे सापेक्ष रूप में रोजगार में वृद्धि नहीं होती। परिणामतः देश की श्रम प्रचूषन-क्षमता (Absorptive Capacity) कम रहती है और इससे इस बात की कुछ हद तक व्याख्या होती है कि नगरीकरण का बेरोजगारी पर निश्चित रूप से प्रभाव नहीं पड़ता। अन्तिम परन्तु महत्त्वपूर्ण कारणतत्त्व यह है कि विकास के लाभ समाज के विभिन्न वर्गों में असमान रूप में वितरित होते हैं और इसके परिणामस्वरूप आय एवं सम्पत्ति के संकेन्द्रण से प्रति व्यक्ति आय तो बढ़ जाती है परन्तु इससे न तो गरीब वर्गों की आर्थिक दशा उन्नत होती है और न ही उच्च मजदूरी स्तर पर रोजगार का विस्तार होता है। दूसरे शब्दों में, देश में, घेरों में परिबद्ध विकास (Enclave type of development) होता है जिसका विस्तार प्रभाव बहुत ही कम रहता है। शहरी क्षेत्र में गन्दी बस्तियों में रहने वाले बच्चे बुरी तरह से प्रभावित है। उन्हें न तो संतुलित भोजन मिलता है और न ही उचित शिक्षा कुपोषण के शिकार बच्चे अनेक बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। निर्धनता के कारण वे शिक्षा से भी वंचित रहते हैं। परिणामस्वरूप ये बच्चे अनेक प्रकार की बुराइयों तथा व्यसनों में फँसते चले जाते हैं।

गहरी बस्ती में बच्चों के रहने से अनेक दुष्परिणाम होते हैं। गन्दी बस्ती में रहने वाले निर्धनता के कारण अनेक बुराइयों में फँसते चले जाते हैं।

1. **बाल अपराध**–समाज में बढ़ते अपराधों का कारण निर्धनता है। गरीब बच्चे धनी बच्चों को जब सब प्रकार की सुविधाओं का भोग करते देखते हैं, तो उनका बालमन उनके प्रति ईर्ष्या तथा द्वेष आदि की भावनाओं से भर जाता है। उनके माता-पिता उन्हें पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करा पाते, जिससे ये बच्चे विद्यालय से भागने लगते हैं और धीरे-धीरे अपराध करने लगते हैं।
2. **नैतिक पतन**–समाज में आज मानवीय मूल्यों में आ रही गिरावट से सभी चिंतित हैं। व्यक्ति का नैतिक पतन हो रहा है। निर्धनता भी इसका एक मुख्य कारण है। संस्कृत में एक कहावत है कि 'भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं करता?' अनेक अध्ययनों से भी यह सिद्ध हो चुका है कि अपराध व निर्धनता में संबंध है। अपनी भूख मिटाने व जीवन की जरूरतों को पूरा करने के लिए लोग चोरी, डकैती, रिश्वत, मिलावट, गबन तथा हिंसा जैसे अपराधों का सहारा लेते हैं, जिससे उनका नैतिक पतन होता है।
3. **आत्महत्या**–आज लोगों में आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। जब व्यक्ति अमीरों को बिना श्रम के सारी सुविधाएँ भोगते हुए देखता है तो उसे अपनी गरीबी दुखदायी लगने लगती है। वह तनावग्रस्त होकर आत्महत्या जैसा कदम उठा लेता है। इससे समाज उस व्यक्ति की योग्यताओं का लाभ उठाने से वंचित रह जाता है।
4. **बुरे व्यसनों में वृद्धि**–गरीबी के कारण व्यक्ति चिंतित एवं मानसिक दृष्टि से परेशान रहता है। वह निराशा, कुंठा व तनाव से ग्रस्त हो जाता है और इससे मुक्ति पाने के लिए मद्यपान, नशा, जुआ तथा वेश्यागमन करने लगता है। इस प्रकार निर्धनता बढ़ते दुर्व्यसनों के लिए उत्तरदायी है।
5. **भिक्षावृत्ति**–भारत में कई स्थानों पर लोगों में भिक्षावृत्ति बढ़ती जा रही है। इसके अनेक कारणों में एक कारण निर्धनता भी है। जब गरीब व्यक्ति अन्य प्रकार से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते तो भिक्षावृत्ति को अपना लेते हैं।
6. **आर्थिक विकास में बाधा**–आर्थिक विकास हमारा मुख्य लक्ष्य है। इसके लिए समाज से निर्धनता दूर करना और सबको रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना आवश्यक है, लेकिन भारत में गरीबी निरंतर बढ़ती जा रही है, जिससे आर्थिक विकास के मार्ग में बाधा आ रही है।

Scanned with OKEN Scanner

7. **समाजवादी समाज की स्थापना में बाधा**–भारतीय संविधान द्वारा यहाँ समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। भारतीय संदर्भ में समाजवाद का अर्थ है समानता पर आधारित समाज, लेकिन बढ़ती गरीबी के कारण यहाँ गरीबों व अमीरों के बीच का अंतर बढ़ता जा रहा है जिससे समाजवादी समाज व्यवस्था स्थापित करने का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन होता जा रहा है।
8. **निरक्षरता दूर करने में बाधक**–हम भारत से निरक्षरता को दूर करना चाहते हैं। प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाना हमारा लक्ष्य है, लेकिन निर्धनता के कारण माता-पिता अपने बच्चों को विद्यालय भेजने की अपेक्षा उन्हें किसी काम में लगाना बेहतर समझते हैं। आर्थिक समस्याओं से जूझते निरक्षर प्रौढ़ों के पास भी न तो पढ़ने का समय है और न उत्साह। इससे निरक्षरता उन्मूलन में बाधा उत्पन्न हो रही है।
9. **शारीरिक प्रभाव**–निर्धनता के कारण व्यक्ति अपने व परिवार के लिए पौष्टिक भोजन तथा चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध नहीं करवा पाते, जिससे उनके बच्चे तथा वे स्वयं कुपोषण एवं अनेक बीमारियों का शिकार बन जाते हैं।
10. **मानसिक प्रभाव**–पौष्टिक भोजन का अभाव व शारीरिक बीमारियाँ मानसिक विकास को भी प्रभावित करती हैं, क्योंकि कहा गया है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। निर्धनता के कारण माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिला पाते। इससे भी उनका मानसिक विकास प्रभावित होता है। रॉबर्टस महोदय ने अपने गरीब बच्चों का बौद्धिक परीक्षण किया गया और पाया कि इन बच्चों में कम बौद्धिक क्षमता थी।
11. **पारिवारिक विघटन**–आज हमारे परिवारों में प्यार के स्थान पर आपसी मनमुटाव, संघर्ष तथा तनाव व्याप्त है। इससे वे विघटन की ओर बढ़ रहे हैं। यदि ध्यान से देखा जाए तो पता लगता है कि इसका कारण आर्थिक समस्याएँ हैं

गन्दी बस्ती में रहने वाले बच्चों पढ़ाई के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए कदम–

1. **अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम (Non Formal Education Programme)** सन् 1976 में 6 से लेकर 14 वर्ष तक बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम की शुरुआत की गई थी। इस कार्यक्रम के अंतर्गत अंशकालिक स्तर पर शिक्षकों की नियुक्ति और स्वार्थहीन शिक्षकों के द्वारा शिक्षण का कार्य करने के कारण यह योजना काफी सफल हुई है। इस समय प्रतिवर्ष लगभग 6000 प्राथमिक स्कूल खोले जा रहे हैं जो कि लगभग 12 लाख बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं।
2. **राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (National Adult Literacy Programme)** : इस कार्यक्रम को 1978 में शुरू किया गया था और इसका मुख्य उद्देश्य देश के निरक्षर व्यक्तियों को मुख्य रूप से 15 से लेकर 35 वर्ष की आयु-समूह के व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान करना और साक्षरता हेतु प्रोत्साहित करना था। इसके अतिरिक्त यूनेस्को (*UNESCO*) ने वर्ष 1990 को अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता वर्ष घोषित किया था, जिसका मुख्य उद्देश्य लोगों में साक्षरता के महत्त्व के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना था। इसके अलावा अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता वर्ष को 22 जनवरी, 1990 को दिल्ली में आरंभ किया गया था। जिसके अंतर्गत दिल्ली के छात्रों और गैर-छात्र स्वयंसेवकों से लोगों में साक्षरता का संदेश फैलाने और वास्तविक रूप से साक्षरता के महान् उद्देश्य में अपनी सामूहिक शक्ति लगाने के लिए कहा गया था।
3. **राष्ट्रीय साक्षरता मिशन (National Literacy Mission)** : निरक्षरता को समाप्त करने के लिए हमारे देश में मई 1988 में 15 से लेकर 35 वर्ष तक की आयु-समूह के 8 करोड़ वयस्क अशिक्षितों को 1995 तक शिक्षित करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय साक्षरता मिशन कार्यक्रम की शुरुआत की गई। सन् 1997 में इस लक्ष्य में 9 से लेकर 14 वर्ष तक बच्चों को शामिल करके

Scanned with OKEN Scanner

10 करोड़ कर दिया गया था। अतः इस साक्षरता मिशन के द्वारा भी निरक्षरता को दूर करने का भरसक प्रयास किया।

4. **सभी के लिए शिक्षा पर विश्व सम्मेलन का आयोजन (Organisation of World Conference on Education for All)** : सन् 1990 में थाईलैंड में एक विश्व सम्मेलन का आयोजन किया था। जिसका मुख्य उद्देश्य सन् 2000 तक प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक आधार उपलब्ध कराना तथा सन् 2000 तक वयस्क निरक्षरता की दर में कम से कम आधे स्तर पर कमी करना, और विशेष रूप से महिलाओं की साक्षरता पर जोर देना था। इसके अतिरिक्त कुछ गैर सरकारी संगठनों (*NGOs*) ने भी प्राथमिक शिक्षा से संबंधित कार्य को गंभीरता से लिया है। जिसके कारण हमारे देश में साक्षरता की दर में पहले की अपेक्षा वृद्धि हुई है।
5. **डाकर-फोरम का संगठन (Organisation of Dakar foram)** : सन् 2000 अप्रैल में डाकर में एक फोरम को संगठित किया गया जिसमें 193 देशों ने हिस्सा लिया। इस फोरम के कार्यक्रमों को इसमें हिस्सा लेने वाले सभी देशों ने स्वीकार किया। इस फोरम के मुख्य लक्ष्य शिक्षा को मूल-मानवीय अधिकार मानना, शिक्षा के प्रति विस्तारित-दृष्टि (*Expanded vision*) के प्रति वचनबद्धता को दोहराना तथा सन् 2015 तक प्रत्येक बालक, युवक तथा वयस्क को शिक्षा प्रदान करना था। अतः निरक्षरता के उन्मूलन में इस फोरम की भी सराहनीय भूमिका रही।
6. **शिक्षा का अधिनियम 2009 (Education Act 2009)** : निरक्षरता को समाप्त करने के लिए शिक्षा का अधिकार 2009 लागू किया गया है, जिसके अनुसार 6 से 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य का प्रावधान किया है।

निरक्षरता को दूर करने के उपायों के अतिरिक्त भारत सरकार के द्वारा निरक्षरता के उन्मूलन के लिए किए जा रहे कुछ अन्य उपाय निम्नलिखित प्रकार से हैं–

1. सरकार के द्वारा सरकारी, सहायता प्राप्त स्कूलों तथा नगरपालिकाओं द्वारा चलाए जा रहे स्कूलों में प्राथमिक स्तर पर निःशुल्क शिक्षा देने का प्रावधान किया है।
2. मुक्त विश्वविद्यालय तथा मुक्त विद्यालय आदि भी विभिन्न प्रकार के जनसंचार के माध्यमों से निरक्षरता को समाप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।
3. निरक्षरता के उन्मूलन हेतु सरकार ने प्राथमिक शिक्षा हेतु अनिवार्य शिक्षा से संबंधित एक कानून पास किया है।
4. इस समस्या को दूर करने के लिए सरकार निर्धन छात्रों को विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियाँ तथा पुस्तकें और स्टेशनरी मुफ्त प्रदान कर रही है।
5. सरकार के द्वारा दूर-दराज के क्षेत्रों, पहाड़ी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों को शिक्षित करने हेतु अनेक स्कूल खोले जा रहे हैं।

◆◆◆

सामाजिक रूप से वंचित लड़कियाँ
(Socially Deprived girls)

1. भारत में महिलाओं की स्थिति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिये।

अथवा

स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में स्त्रियों की स्थिति का उल्लेख कीजिये।

उत्तर– भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति (Status of Women in India)—स्त्रियों की स्थिति से तात्पर्य यह है कि एक समाज विशेष में स्त्रियों का स्थान क्या है, उन्हें पुरुषों से ऊंचा या बराबर या नीचा

Scanned with OKEN Scanner

क्यों माना जाता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि किसी संस्कृति में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का क्या दृष्टिकोण पाया जाता है। इसके अलावा स्त्रियों की स्थिति के निर्धारण में इस बात का भी विशेष महत्त्व है कि उन्हें कौन-कौन से अधिकार प्राप्त हैं, विभिन्न क्षेत्रों में उनके क्या-क्या कार्य हैं तथा उनसे किन भूमिकाओं को अदा करने की आशा की जाती है। इन सभी बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति, विशेषतः हिन्दू समाज में काफी उच्च रही है। उन्हें शक्ति, ज्ञान और सम्पत्ति का प्रतीक माना गया है और इसी कारण दुर्गा, सरस्वती एवं लक्ष्मी के रूप में उनकी पूजा होती रही है। यहाँ पुरुष के अभाव में स्त्री को और स्त्री के अभाव में पुरुष को अपूर्ण माना गया है। इसी कारण हिन्दू समाज में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया है। भारत में वैदिक काल से अब तक स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन होते रहे जिनका उल्लेख नीचे दिया गया है–

स्त्रियों की स्थिति–ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में
(Status of Women : Historical Perspective)

(1) **वैदिक काल**–इस काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुष के समान थी। ब्रह्मचर्य आश्रम में लड़कियाँ लड़कों की तरह से ही शिक्षा प्राप्त करती थीं। गार्गी तथा मैत्रेयी ऋषि महिलायें थीं। विश्वम्भरा तथा अपाला ने विभिन्न भजनों की रचना की थी। इस काल में लड़कियों का विवाह युवावस्था में ही किया जाता था। बाल-विवाह प्रथा नहीं थी। लड़कियों को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता थी। विधवा पुनर्विवाह कर सकती थी। पत्नी के रूप में स्त्री की स्थिति काफी अच्छी थी। धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करने के लिये पुरुष के साथ पत्नी का होना भी आवश्यक था। इस समय पर्दा प्रथा नहीं थी। स्त्री को सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं थे। सारांश के रूप में यह कहा जा सकता है कि इस काल में स्त्रियों को आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

(2) **उत्तर–वैदिक काल**–ईसा के 600 वर्ष पूर्व से ईसा के 300 वर्ष बाद तक का काल उत्तर–वैदिक काल के नाम से जाना जाता है। महाभारत की रचना इसी काल में की गयी थी। महाभारत काल में नियमों की स्थिति के सम्बन्ध में विरोधी मत पाये जाते थे। अनुशासन पर्व में भीष्मपितामह ने कहा है कि स्त्री को सदैव पूज्य मानकर उससे स्नेह का व्यवहार किया जाना आवश्यक है। जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवताओं का निवास होता है तथा इनकी अनुपस्थिति में सभी कार्य पुण्य रहित हो जाते हैं। इस समय तक स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी और स्त्रियों को वेदों के अध्ययन की आज्ञा थी। इसी काल में जैन तथा बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ा था। अनेक स्त्रियाँ धर्म प्रचार के कार्य में लगी हुई थीं। इन धर्मों में स्त्रियों को पुरुष के समान माना जाता था। मनुस्मृति में सर्वप्रथम स्त्रियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाया गया। उन्हें वेदों को पढ़ने तथा यज्ञ करने से रोक दिया गया। विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गयी। रजस्वला होने से पूर्व ही लड़की का विवाह होना चाहिये। इस काल के अन्तिम वर्षों में स्त्रियों पर अनेकों प्रतिबन्ध लगाये गये।

(3) **धर्मशास्त्र काल**–ईसा के पश्चात् तीसरी शताब्दी से 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक का काल धर्मशास्त्र काल के नाम से जाना जाता है। यह युग सामाजिक तथा धार्मिक संकीर्णता का युग था। अब स्त्रियाँ परतंत्र, निर्बल तथा निस्सहाय मानी जाने लगी थीं। स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया तथा मानसिक रूप से दुर्बल बना दिया गया। इस समय लड़की के विवाह की आयु 10 वर्ष तथा कहीं-कहीं 12 वर्ष थी। लड़की के लिये वर का चुनाव लड़की के माता-पिता द्वारा किया जाता था। इस काल में बहुपत्नी प्रथा भी चालू हो गयी थी। विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गयी। मनु ने स्वयं कहा है कि स्त्रियाँ कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं हैं। बाल्यावस्था में उन्हें पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिये।

(4) **मध्यकाल**–मुगल शासकों के काल को मध्यकाल के नाम से पुकारा जाता है 11वीं शताब्दी से ही भारतीय समाज पर मुसलमानों का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस काल में हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के नाम पर स्त्रियों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये, उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया गया और उन पर

Scanned with OKEN Scanner

नियन्त्रण लागू कर दिये गये। इस समय स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहा। अब विवाह की आयु 5-6 वर्ष हो गयी। रक्त की शुद्धता को बनाये रखने और स्त्री के सतीत्व की रक्षा के उद्देश्य से बाल-विवाहों को विशेष तौर पर प्रोत्साहित किया गया है। इस काल में पर्दा प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियों का कार्य क्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित हो गया। अब विधवाओं को पुनर्विवाह करने का अधिकार नहीं था। सती प्रथा को बढ़ावा दिया गया और कई विधवाओं को सती होने के लिये बाध्य तक किया गया। पुरुष ने जहाँ विधवाओं को सब प्रकार के अधिकारों से वंचित करके सती होने तक के लिये विवश किया, वहाँ वह स्वयं एक पत्नी के होते हुए भी दूसरी और तीसरी स्त्री से विवाह करने लगा। इस काल में स्त्रियाँ पूर्ण रूप से परतंत्र हो चुकी थीं। पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से स्त्री पुरुष पर निर्भर हो गयी। इस समय पति की इच्छाओं को पूरा करना ही स्त्री का एकमात्र धर्म रह गया। इस काल में उन लड़कियों को पिता की सम्पत्ति का अधिकार मिलने लगा, जिनके कोई भाई नहीं था। इस काल में सती प्रथा के पुनः प्रचलन, पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध, पर्दा प्रथा के विस्तार एवं बहुविवाह की व्यापकता ने उनकी स्थिति को बहुत ही गिरा दिया।

(5) **ब्रिटिश काल**–18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक का समय ब्रिटिश काल के नाम से जाना जाता है। अंग्रेजों ने यहाँ के लोगों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं करने की नीति अपनायी। इस नीति के कारण उन्होंने स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से कोई प्रयत्न नहीं किया। इस काल में विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों की निम्न निर्योग्यतायें (समस्यायें) बनी रहीं–

(क) **सामाजिक क्षेत्र** में स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। इन्हें शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले हमारे यहाँ स्त्रियों की साक्षरता 6 प्रतिशत से भी कम थी। बाल विवाह सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा के प्रचलन ने स्त्री-शिक्षा में विशेष बाधा पहुँचाई।

पारिवारिक क्षेत्र में स्त्रियों को कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। सब प्रकार के पारिवारिक अधिकार पुरुष के पास केन्द्रित होते थे।

(ख) **आर्थिक क्षेत्र** में स्त्रियों को सन् 1937 के पूर्व विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। इन्हें अधिक से अधिक भरण-पोषण का अधिकार प्राप्त था स्त्री-धन के अतिरिक्त इन्हें और कोई सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं था। स्त्री स्वयं वस्तु या सम्पत्ति के रूप में समझी जाती थी। स्त्री के द्वारा किसी प्रकार का कोई आर्थिक कार्य करना अनुचित और अनैतिक समझा जाता था। **श्री पाणिक्कर** ने लिखा है कि हिन्दू समाज में पुत्री के अधिकार को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया।

(ग) **राजनीतिक क्षेत्र** में किसी गतिविधि में स्त्रियों के भाग लेने की मनाही थी। जब देश परतंत्र था और पुरुष अंग्रेजों के गुलाम थे तो स्त्रियाँ राजनीति में भाग कैसे ले सकती थीं। उनका सम्पूर्ण जीवन तो घर की चारदीवारी में ही बीतता था। महात्मा गांधी द्वारा समय-समय पर चलाये जाने वाले आन्दोलनों में कुछ स्त्रियों ने भाग अवश्य लिया परन्तु उच्च समझे जाने वाले परिवारों में इसका विरोध किया गया। सर्वप्रथम 1937 में पति की सम्पत्ति एवं शिक्षा के आधार पर कुछ स्त्रियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ।

स्त्रियों की निम्न स्थिति के कारण–

ईसा के 300 वर्ष पूर्व से स्वतंत्रता के पूर्व तक स्त्रियों की स्थिति में निम्नलिखित कारणों से गिरावट आती गई–

(1) स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा की गयी।

(2) कन्यादान का आदर्श।

(3) बाल-विवाह।

(4) **वैवाहिक कुरीतियाँ**–स्त्रियों की स्थिति को निम्न बनाने में अनेक वैवाहिक कुरीतियों; जैसे–कुलीन विवाह, अन्तर्विवाह, विधवा-विवाह पर प्रतिबन्ध, दहेज-प्रथा आदि का काफी योग रहा है।

(5) **संयुक्त परिवार प्रणाली** ने स्त्रियों की स्थिति को गिराने में सक्रिय योग दिया है।

Scanned with OKEN Scanner

(6) स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता।
(7) मुसलमानों के आक्रमण।
(8) स्त्रियों में अशिक्षा के कारण भी समाज में उनकी स्थिति निम्न हो गयी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद पिछले करीब 50 वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। अब उनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ है। डॉ. श्रीनिवास के अनुसार, पश्चिमीकरण, लौकिकीकरण तथा जातीय गतिशीलता ने स्त्रियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को उन्नत करने में काफी योगदान दिया है। वर्तमान में स्त्री-शिक्षा का प्रसार हुआ है। कई स्त्रियाँ औद्योगिक संस्थाओं और विभिन्न क्षेत्रों में नौकरी करने लगी हैं। अब वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होती जा रही हैं। उनके पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई है। अनेक सामाजिक अधिनियमों ने स्त्रियों की निर्योग्यताओं को समाप्त करने और उन्हें सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा दिलाने में योग दिया है। अब स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु काफी सुविधाएँ प्राप्त हैं। **वर्तमान में स्त्रियों की स्थिति में निम्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं:**

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्री-शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ है। इसके पूर्व न तो माता-पिता लड़कियों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में ही थे और न ही शिक्षा की दृष्टि से समुचित सुविधाएँ उपलब्ध थीं। सन् 1882 में पढ़ी-लिखी स्त्रियों की कुल संख्या 2,054 थी जो सन् 1971 में 5 करोड़ 94 लाख अब 2001 में 22.67 करोड़ हो चुकी है। 1991 की जनगणना के अनुसार स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत 39.29 तथा पुरुषों में 64.13 था जो अब 2001 में बढ़कर क्रमशः 54.16 तथा 75.85 हो गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली करीब 75 प्रतिशत स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से कोई-न-कोई कार्य करती रहती हैं। नगरों में भी निम्न वर्ग की स्त्रियाँ घरेलू कार्यों और उद्योगों के माध्यम से कुछ-न-कुछ कमाती रही हैं। औद्योगिकरण एवं आधुनिकीकरण ने स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता को कम करने और उनकी स्थिति को उन्नत करने में योग दिया है। शिक्षा के व्यापक प्रसार से अनेक स्त्रियों को नौकरी या आर्थिक दृष्टि से कोई-न-कोई काम करने के लिए प्रेरित किया। अब स्त्रियाँ उद्योगों, दफ्तरों, शिक्षण-संस्थाओं, अस्पतालों, समाज-कल्याण केन्द्रों एवं व्यापारिक संस्थाओं में काम करने लगी हैं। भारत में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं का कुल कार्यशील जनसंख्या में प्रतिशत 22.73 है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की राजनीतिक चेतना में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। पार्लियामेण्ट और विधानमण्डलों में स्त्री प्रतिनिधियों की संख्या और विभिन्न गतिविधियों में उनकी सहभागिता, राज्यपाल, मन्त्री, मुख्यमन्त्री और यहाँ तक कि प्रधानमन्त्री तक के रूप में उनकी भूमिकाओं से स्पष्ट है कि इस देश में स्त्रियों में राजनीतिक चेतना दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। पिछले कुछ वर्षों में पारित सामाजिक अधिनियमों ने भी स्त्रियों की निर्योग्यताओं को दूर करने और उनकी स्थिति को ऊँचा उठाने में उल्लेखनीय योग दिया है।

◆◆◆

2. हिन्दू स्त्रियों की प्रमुख समस्याएं कौन-कौन सी हैं? स्त्रियों की समस्याओं के समाधान के किये गये प्रयासों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

भारत में स्त्रियों की मुख्य समस्याओं तथा इन समस्याओं के समाधान हेतु किये गये विभिन्न प्रयासों का वर्णन कीजिये।

उत्तर–हिन्दू स्त्रियों की समस्याएँ (Problems of Hindu Women)–(1) पारिवारिक समस्याएं–हिन्दू समाज पुरुष-प्रधान है। भारत में परम्परात्मक रूप से पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार व्यवस्था पायी जाती है, जिसमें परिवार के पुरुष सदस्यों को तो अनेक अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त हैं, किन्तु स्त्रियों

Scanned with OKEN Scanner

को उनसे वंचित किया गया है। उनका जीवन खाना बनाने, बच्चों को जन्म देने, उनकी देख-रेख करने एवं परिवार के सदस्यों की सेवा में ही व्यतीत हो जाता है।

(2) **वैवाहिक समस्याएं**–परिवार की भाँति ही भारतीय स्त्रियों की वैवाहिक समस्याएँ भी गम्भीर हैं। विवाह से सम्बन्धित उनकी प्रमुख समस्याएँ निम्न प्रकार हैं–

(a) बाल-विवाह की समस्या।
(b) विधवा पुनर्विवाह की कमी।
(c) दहेज की समस्या।
(d) तलाक की समस्या।
(e) बेमेल-विवाह की समस्या।
(f) अन्तर्जातीय विवाह का अभाव।
(g) बहुपत्नी विवाह की समस्या।

(3) **पर्दा प्रथा**–यह प्रथा शिक्षा में बाधक है।

(4) **वेश्या वृत्ति**–इस समस्या ने स्त्री का नैतिक पतन किया है। वह विभिन्न प्रकार की बीमारियों का शिकार बन जाती हैं।

(5) **स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें**–जैसे कुपोषण, मृत्यु दर की अधिकता, कम जीवन अवधि (कम आयु)।

(6) **शैक्षणिक समस्यायें**–भारत में स्त्रियों की साक्षरता दर बहुत ही कम है। 1971 में महिलाओं में साक्षरता की दर 18.4 व पुरुषों में 39.5 थी, जो 2001 में बढ़कर क्रमशः 54.16 व 75.85 हो गयी। यह भिन्नता अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। 2001 में देश में 26.89 करोड़ स्त्रियाँ अनपढ़ थीं।

(7) **आर्थिक समस्यायें**–भारतीय नारियों की समस्यायें उनकी गरीबी, आर्थिक पर निर्भरता एवं शोषण से जुड़ी हुई हैं। भारत में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को कम वेतन एवं पारिश्रमिक दिया जाता रहा है। संयुक्त परिवार प्रणाली, पुरुषों पर निर्भरता, स्त्री अशिक्षा, अज्ञानता, पर्दा प्रथा, रूढ़िवादिता आदि कारणों से स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर तक ही सीमित है और वे अक्सर कमाने के लिये बाहर नहीं जातीं, फलस्वरूप उन्हें अपने भरण-पोषण तक के लिये पुरुष की ओर देखना होता है। निम्न आर्थिक स्थिति के कारण परिवार एवं समाज में भी उनकी प्रतिष्ठा उच्च नहीं हो पाती और उन्हें इसके कई दुष्परिणाम भुगतने होते हैं।

(8) **सामाजिक समस्यायें**–पारिवारिक एवं वैवाहिक समस्यायें सामाजिक समस्यायें ही हैं। स्त्रियों की एक समस्या स्त्री-पुरुषों की भूमिका में विभेद करने की है। स्त्रियों को प्रमुख रूप से घर से सम्बन्धित माना गया है और उन्हें गृह-कार्य की देखभाल का कार्य करना होता है। पत्नी एवं माँ की भूमिकायें ही उनकी प्रमुख भूमिकायें मानी गयी है।

(9) **राजनीतिक समस्यायें**–भारत में स्त्रियों में कभी राजनीतिक चेतना नहीं रही और वे राजकाज में भागीदार नहीं हुई। स्वतंत्रता के बाद महिलाओं ने विधायकों, सांसदों, राज्यपाल, मन्त्री, मुख्यमन्त्री और प्रधानमन्त्री तक का दायित्व संभाला है। इससे स्पष्ट है कि उनमें राजनीतिक चेतना बढ़ी है, फिर भी पुरुषों की तुलना में वे अब भी पिछड़ी हुई हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय नारियाँ आज भी विभिन्न पारिवारिक, वैवाहिक, सामाजिक, शैक्षणिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से ग्रस्त हैं। इन समस्याओं से मुक्ति लिये बिना समानता के इस युग में स्त्रियों को उनकी सच्ची प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती। स्त्रियों की स्थिति को सुधारने एवं उन्हें सामाजिक न्याय दिलाने के लिये यहाँ सुधार आन्दोलन हुए हैं और सरकारी व गैर-सरकारी स्तर पर कल्याण कार्य भी किये गये हैं।

आधुनिक स्त्रियों की स्थिति में होने वाले परिवर्तन के कारण–आधुनिक स्त्रियों की स्थिति में होने वाले परिवर्तन के मुख्य कारण संक्षेप में निम्न प्रकार से हैं–

कारण–

(1) स्त्रियों का शिक्षा की तरफ बढ़ता हुआ रूझान।

Scanned with OKEN Scanner

(2) पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण समानता की भावना का विकास।
(3) औद्योगीकरण के कारण बढ़ते हुए रोजगार के अवसरों से आत्मनिर्भरता का विकास।
(4) प्रेस तथा यातायात व संचार के साधनों के विकास से नारी में जागृति तथा विभिन्न नारी आन्दोलन में सहायता प्राप्त हुई।
(5) अन्तर्जातीय विवाहों में वृद्धि के कारण जातीय प्रतिबन्ध समाप्त और वर-मूल्य का कम होना।
(6) वर-मूल्य प्रथा के कारण स्त्री-शिक्षा का विकास हुआ, क्योंकि वर-मूल्य के अभाव के कारण लड़कियाँ पढ़ती रहती हैं और विलम्ब विवाह होने लगे हैं।
(7) संयुक्त परिवारों के टूटने से स्त्री की दशा में सुधार आया है।
(8) विभिन्न प्रकार के नारी सुधार आन्दोलनों से नारी में जागृति।
(9) आधुनिक सामाजिक विधान ने भी स्त्रियों की दशा सुधारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

स्त्रियों की समस्याओं के समाधान हेतु प्रयास
(Efforts to Solve Problems of Women)

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिये दो प्रमुख प्रयत्न हुए—सुधार आन्दोलन एवं कानूनों का निर्माण—

1. सुधार आन्दोलन—19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही कुछ चिन्तनशील व्यक्तियों जैसे—**राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, ऐनीबेसेन्ट, महर्षि कार्वे** आदि ने भारतीय समाज में स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। कई महापुरुषों ने समाज-सुधार के आन्दोलनों का संचालन कर स्त्रियों की स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। **राजा राममोहन राय** ने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की और आपके प्रयत्नों से ही 1829 में सती प्रथा निरोधक अधिनियम बना। आपने बाल-विवाह को समाप्त तथा विधवा पुनर्विवाह को प्रचलित कराने के पक्ष में जनमत तैयार किया। **स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने तथा बाल-विवाह और पर्दा प्रथा को समाप्त करने के लिये प्रयास किये। **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** ने बहुपत्नी विवाह एवं विधवा पुनर्विवाह निषेध का विरोध किया और आपके प्रयत्नों से 1856 में विधवा-पुनर्विवाह अधिनियम बना। **महर्षि कार्वे** ने भी विधवा-पुनर्विवाह एवं स्त्री शिक्षा के लिये प्रयास किये। **केशवचन्द्र सेन** के प्रयासों से 1872 में विशेष विवाह अधिनियम बना, जिसने विधवा-पुनर्विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता प्रदान की। इस शताब्दी में कई महिलाओं एवं स्त्री संगठनों ने स्त्रियों को अधिकार दिलाने एवं उनमें जागृति लाने के प्रयत्न किये। **रमाबाई रानाडे, मैडम कामा, तोरदत्त, मारग्रेट नोबल तथा ऐनीबेसेन्ट** आदि महिलाओं तथा अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, भारतीय महिला समिति, विश्वविद्यालय महिला संघ, अखिल भारतीय स्त्री-शिक्षा संस्था, कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट आदि स्त्री संगठनों ने भी स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं को कम करने एवं उनकी स्थिति को सुधारने के प्रयत्न किये। **महात्मा गांधी** स्त्री-पुरुषों की समानता के समर्थक थे। उन्होंने स्त्रियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये प्रेरित किया।

2. वैधानिक व्यवस्थायें—स्त्रियों की प्रस्थिति को सुधारने के लिये सरकार ने स्वतंत्रता से पूर्व एवं बाद में अनेक कानून बनाये उनमें से प्रमुख इस प्रकार से हैं—

(i) **सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829**, इसके द्वारा सती होने एवं विधवा स्त्री को इसके लिये उकसाने को दण्डनीय करार दिया गया। 1986 में इसमें संशोधन कर इसे और कठोर बना दिया गया व सती को महिमा मण्डित करने को भी दण्डनीय अपराध बना दिया।
(ii) **हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856** के द्वारा विधवा स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति प्रदान की गयी।
(iii) **बाल-विवाह निरोधक अधिनियम, 1929** के द्वारा बाल-विवाह पर रोक लगायी गयी। विवाह के समय लड़के की आयु 18 वर्ष तथा लड़की की आयु 15 वर्ष की गई। हिन्दू-विवाह अधिनियम

Scanned with OKEN Scanner

1955 में इस आयु में वृद्धि कर लड़के के लिये 21 वर्ष तथा लड़की के लिये 18 वर्ष कर दी गयी।

(iv) **हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937** द्वारा हिन्दू विधवा स्त्री को मृत पति की सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया गया।

(v) **अलग रहने तथा भरण-पोषण हेतु स्त्रियों का अधिकार अधिनियम, 1946** के द्वारा कुछ परिस्थितियों जैसे पति के भयंकर रोग से रोगी होने, निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने, धर्म परिवर्तन कर लेने, अन्य स्त्री से सम्बन्ध होने, दूसरा विवाह कर लेने या पत्नी को छोड़ देने की स्थिति में पत्नी को पति से अलग रहने पर भरण-पोषण का अधिकार प्राप्त होता है।

(vi) **विशेष विवाह अधिनियम, 1954** के द्वारा किसी भी धर्म या जाति को मानने वाले स्त्री-पुरुष को परस्पर विवाह करने की छूट दी गयी।

(vii) **हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955** में विवाह से सम्बन्धित कई नये प्रावधान भी किये गये। इसमें विवाह-विच्छेद, न्यायिक पृथक्करण के प्रावधान भी किये गये। विवाह के लिये लड़के की आयु 21 वर्ष एवं लड़की की आयु 18 वर्ष तय की गयी व बाल-विवाह समाप्त कर दिये गये।

(viii) **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956** में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किये गये। 2005 में इस कानून में संशोधन किया गया।

(ix) **हिन्दू नाबालिग तथा संरक्षता अधिनियम, 1956** में नाबालिग बच्चों के पिता की मृत्यु होने पर माँ को भी उनके संरक्षक होने का अधिकार प्रदान किया गया।

(x) **हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, 1956** के द्वारा स्त्री को भी पुरुष की तरह गोद लेने एवं लड़की को भी गोद लेने की छूट दी गयी। अविवाहित, विधवा या तलाक प्राप्त स्त्री भी इस अधिनियम के अन्तर्गत लड़के या लड़की को गोद ले सकती है। पुरुष का दायित्व है कि वह अपनी पत्नी व बच्चों व माता-पिता का भरण-पोषण करें।

(xi) **स्त्रियों व कन्याओं का अनैतिक व्यापार अधिनियम, 1956** के द्वारा वेश्यावृत्ति एवं अनैतिक व्यवहार पर रोक लगा दी गयी।

(xii) **दहेज निरोधक अधिनियम, 1961** के द्वारा दहेज लेने व देने को दण्डनीय अपराध करार दिया गया। 1986 में इसे संशोधित किया गया और अधिक कठोर बना दिया गया।

3. रोजगार तथा आय उत्पन्न करने वाली उत्पादन इकाइयाँ–यह योजना 1982-83 में नार्वे की अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था के सहयोग से प्रारम्भ की गई। इस कार्यक्रम से गरीब ग्रामीण नारियों, कमजोर वर्गों की नारियां, युद्ध में मारे गये सैनिकों की विधवाओं को लाभ मिल रहा है। नारियों को कृषि, दुग्ध उत्पादन, पशुपालन, रेशम विकास, खादी, हस्तशिल्प आदि में प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे आत्मनिर्भर बन सकें।

4. नारियों के लिये सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम–केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1958 ई. में प्रारम्भ इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जरूरतमन्द व शारीरिक रूप से अक्षम नारियों को काम और मजदूरी के अवसर उपलब्ध कराने के लिये वित्तिय सहायता दी जाती है। निम्न आय वाली कार्यरत नारियों के लिये शहरों तथा महानगरों में सस्ते एवं सुरक्षित आवास उपलब्ध कराना।

5. नारी शिक्षा–सामाजिक-आर्थिक गति को तेज करने के लिये लड़कियों की शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए सरकार ने समय-समय पर इस दिशा में अनेक कदम उठाये हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में व्यवस्था है कि शिक्षा को नारियों के स्तर में बुनियादी परिवर्तन लाने के साधन के रूप में प्रयोग में लाया जाऐगा।

6. प्रौढ़नारियों के लिये शिक्षा के सघन पाठ्यक्रम–केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1958 ई. में शिक्षा के सघन पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये गये जिनका उद्देश्य जरूरतमन्द नारियों को रोजगार के नये अवसर उपलब्ध कराना तथा प्राथमिक पाठशालाओं में शिक्षकों, बाल सेविकाओं, नर्सों, दाइयों और ग्रामीण इलाकों में परिवार नियोजन कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षित वर्ग तैयार करना था।

Scanned with OKEN Scanner

7. स्वास्थ्य एवं बाल कल्याण सेवायें–केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2002 को मंजूरी देकर पूरे देश में एक समान चिकित्सा सेवायें उपलब्ध करने का अपना संकल्प दोहराया। सरकार द्वारा सन् 2010 तक सकल घरेलू उत्पाद का छः प्रतिशत स्वास्थ्य क्षेत्र पर व्यय किया जाऐगा और राज्य सरकार को भी निर्देश दिया गया कि महिला व बाल-कल्याण सेवाओं के संचालन में कोई ढील नहीं बरते। प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिये समुचित कोष उपलब्ध हो।

8. नारियों पर होने वाले अत्याचार को रोकने के लिये शैक्षिक कार्य–नारियों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिये शैक्षिक कार्य की एक योजना शत-प्रतिशत आर्थिक सहायता देकर स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से लागू की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं सरकारी अधिकारियों सहित दूसरे लोगों के लिये प्रशिक्षण शिवरों का आयोजन, कानूनी शिक्षा प्रशिक्षण शिविर, लोक आदालतें, कानूनी शिक्षा की पुस्तकें, नारियों पर हो रहे अत्याचारो के बारे में लोगों को जानकारी देने आदि के कार्यक्रम चलाये जाते हैं।

◆◆◆

3. स्वतन्त्रता के पश्चात् स्त्री-शिक्षा के विकास पर विस्तारपूर्वक टिप्पणी अथवा नोट लिखिये।

अथवा

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न कमेटियों, आयोगों तथा विद्वानों के द्वारा दिये सुझावों एवं विचारों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में स्त्री शिक्षा का विकास कैसे हुआ? व्याख्या कीजिये।

अथवा

स्त्री-शिक्षा के विकास के सम्बन्ध में वत्सलम कमेटी, श्रीमती हंसा कमेटी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 तथा राष्ट्रीय नीति 1992 के द्वारा दिये गये सुझावों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर–आजादी के बाद स्त्री शिक्षा का विकास (Development in Women Education after Independence)—स्वतन्त्रता से पहले राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी जैसे अनेक समाज सुधारकों तथा राजनैतिक लोगों ने नारी-शिक्षा के महत्त्व पर जोर दिया था। आजादी के बाद सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं ने उस महत्त्व को समझते हुए नारी-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के भरसक प्रयास किए। उन्होंने यह महसूस कर लिया था कि नारी शिक्षा के बिना राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है।

पंचवर्षीय योजनाओं के तहत नारी शिक्षा के प्रचार व प्रसार का भरसक प्रयास किया गया, जिसके परिणामस्वरूप नारी-शिक्षा प्रगति के मार्ग पर तो अग्रसर हुई, परन्तु पुरुषों की शिक्षा प्रगति की तुलना में यह बहुत अधिक पीछे रह गई।

जहाँ तक प्राइमरी स्तर का प्रश्न है, लड़कियों की संख्या लड़कों के मुकाबले बहुत अधिक कम नहीं है, परन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर यह संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम रह जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो यह आँकड़ा और अधिक कम हो जाता है। यहाँ नारी शिक्षा के लिए अभी और प्रोत्साहन की जरूरत है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वास्तविक और सच्चा भारत गाँवों में बसता है, और जब तक ग्रामीण औरतों की शिक्षा का समुचित विकास नहीं होता तब तक देश कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। इस स्थिति को सुधारने के लिए भिन्न-भिन्न शिक्षा आयोगों ने भिन्न-भिन्न सुझाव दिए हैं जो निम्नलिखित हैं–

विश्वविद्यालय आयोग के सुझाव
(Suggestions of University Commission-1948-49)

विश्वविद्यालय आयोग ने महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर नारी शिक्षा के उत्थान के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं–

Scanned with OKEN Scanner

(i) **शिक्षा के अवसरों में इज़ाफा (Increase in educational opportunities)**–आयोग के अनुसार नारी शिक्षा के स्तर को पुरुष शिक्षा स्तर तक लाने के लिए सरकार द्वारा औरतों के लिए शिक्षा के अवसरों में इजाफा करना जरूरी है।

(ii) **जीवन के सुख साधन (Amenities of life)**–लड़कियों के लिए जीवन सम्बन्धी उन सभी सुख-साधनों की व्यवस्था की जानी चाहिए जो लड़कों के लिए उपलब्ध हैं।

(iii) **नारी शिक्षा के लिए सामान्य स्थान (Normal places for women students)**–शिक्षा विभाग तथा यू.जी.सी. द्वारा महाविद्यालय के लिए शैक्षिक कार्यक्रम कुछ इस प्रकार से तैयार किए जाने चाहिए ताकि लड़कियों को भी सामान्य माहौल मिल सके। यह माहौल उनके पूर्ण रूप से अच्छा नागरिक बनने में सहायक सिद्ध हो सके।

(iv) **शिक्षा-निर्देश (Educational guidance)**–लड़कियों को उनकी रुचि तथा दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उन्हें शिक्षा निर्देश दिए जाने चाहिए।

(v) **समाज में सामान्य स्थान प्राप्त करने में सहायता (Helping women in procurring normal place in society)**–इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की जाए ताकि नारी उसकी सहायता से समाज में समान दर्जा प्राप्त कर सके। इससे उस पर सदियों से लगा 'दोयम दर्जा' रूपी अभिशाप खत्म हो सके।

(vi) **सह-शिक्षा केन्द्र (Co-educational institutions)**–ऐसे सहशिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें नारियों की जरूरतों को उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना कि पुरुषों की जरूरतों का ध्यान दिया जाता है।

(vii) **समान वेतन (Equal salaries)**–इन बात की भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि एक स्तर पर काम करने वाले पुरुष अध्यापकों तथा महिला अध्यापकों को समान वेतन मिल सके।

(viii) **विनम्रता एवं सामाजिक जिम्मेदारी (Courtesy and social responsibility)**–पुरुष अध्यापकों को महाविद्यालयों में अधिक विनम्रता तथा सामाजिक जिम्मेवारी उठानी चाहिए।

स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय कमेटी के सुझाव
(Recommendations of National Committee of Women Education)

सन् 1958 में श्रीमती दुर्गा वाई देशमुख की अध्यक्षता में इस कमेटी ने नारी शिक्षा के विकास एवं प्रसारण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए, वे निम्नलिखित हैं–

(i) **सार्वभौमिक नामांकन (Universal enrolment)**–कमेटी ने नारी शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए सुझाव दिया कि 6 से 10 साल तक की सभी लड़कियों के नामांकन का कार्य 1981 तक पूरा हो जाना चाहिए।

(ii) **खाई को पाटना (Closing the gap)**–पुरुष शिक्षा तथा महिला शिक्षा के बीच जो एक बड़ी खाई बन गई है उसे पाटने का काम जितनी जल्दी हो सके पूरा कर लेना चाहिए।

(iii) **आपसी सहयोग (Securing co-operation)**–आयोग के अनुसार नारी-शिक्षा की सफलता के लिए अर्धसरकारी संगठन, निजी संस्थाओं, अध्यापक संगठन और जनता आदि को पूरा सहयोग देना चाहिए।

(iv) **विस्तृत सुधार कार्यक्रम (Extensive programmes for improvements)**–विद्यालयों में विस्तृत सुधार के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। इसमें मुख्य रूप से विद्यालयों की सफाई की व्यवस्था, गाँवों में सेवा करने वाली अध्यापिकाओं का ग्राम भत्ता, दोपहर का भोजन तथा विद्यालय गणवेश (School uniform) आदि की व्यवस्था आदि।

(v) **निःशुल्क आवास एवं यातायात की व्यवस्था (Free accommodation of females)**–निःशुल्क आवास एवं यातायात की व्यवस्था उन विद्यार्थियों के लिए करनी है जो या तो अलग-थलग दूर दराज के क्षेत्रों या पिछड़े क्षेत्रों से सम्बन्ध रखते हों।

Scanned with OKEN Scanner

(vi) स्त्री-शिक्षा के लिए कौंसिल (Council for the education of females)–आयोग के अनुसार लड़कियों तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिए राजकीय और राष्ट्रीय कौंसिल बनाई जानी चाहिए।

(vii) स्त्री-शक्ति की जरूरतों का अनुमान (Estimate of the women-power requirements) –पंचवर्षीय योजना के लिए योजनाबंदी आयोग को स्त्री-शक्ति की जरूरतों का अनुमान लगाना चाहिए।

(viii) प्रचार कार्यक्रम (Publicity Programme)।

(ix) छात्रवृत्तियाँ (Scholarships) की व्यवस्था।

(x) सहयोग की प्राप्ति (Securing co-operation of public)।

(xi) ऐच्छिक संगठनों की सहायता (Assistance to voluntary organisations।

(xii) शिक्षा जारी रखने की सुविधाएँ (Facilities for continuation classes)।

(xiii)प्रौढ़ नारियों के लिए संयुक्त कोर्स (Condensed course for Adult women)।

(xiv)सह-शिक्षा (Encouragement to co-education)।

स्त्री-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कौंसिल
(National Council for Women Education

1958 में गठित की गई स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय कमेटी का प्रभाव यह निकला कि सन् 1959 में शिक्षा मंत्रालय ने स्त्री शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कौंसिल 'National Council for Women Education' की स्थापना की। इस कौंसिल के मुख्य कार्य अग्रलिखित हैं–

(i) स्त्री शिक्षा के सुधार के लिए कार्यक्रम एवं निगम आदि बनाने का सुझाव।

(ii) स्त्री शिक्षा के विस्तार के लिए योजना बनाने का सुझाव।

(iii) आम जनता को स्त्री शिक्षा के विषय में जानकारी देने के लिए विभिन्न साधनों के बारे में सुझाव देना।

(iv) सरकार को लड़कियों की विद्यालयी शिक्षा के विषय में सुझाव देना।

(v) सरकार को लड़कियों की महाविद्यालय स्तर की शिक्षा के विषय में सुझाव देना।

(vi) स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित भाषायी प्रतियोगिताओं के बारे में सुझाव देना।

(vii) स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति के विषय में जानकारी देना।

(viii) स्त्री शिक्षा से संबंधित खेज कार्य करने का सुझाव।

(ix) स्त्री शिक्षा के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों तथा मुश्किलों की सूची बनाकर सुझाव देना।

भक्तवत्सलम कमेटी के सुझाव
(Recommendations of Bhakatvatslam Committee)

राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् (National Council of Education) ने 1963 ई. में एक अन्य कमेटी का गठन किया जिसे भक्तवत्सलम कमेटी (Bhakatvatslam Committee) के नाम से जाना जाता है। इस कमेटी ने सुझाव दिया है कि कोई भी कार्यक्रम शिक्षित तथा जानकार जनता के द्वारा ही बनाया जा सकता है। जनता के सहयोग के लिए कई क्षेत्र हैं, जैसे–

(i) दोपहर के खाने की व्यवस्था।

(ii) विद्यालय के भवन मुहैया करवाना या बनवाना।

(iii) सह-शिक्षा के प्रति जनता का दृष्टिकोण बदलना।

(iv) शिक्षण व्यवसाय तथा स्कूल माताओं के प्रति जनता में सम्मान उत्पन्न किया जाए।

(v) विवाहित स्त्रियों को गाँवों के विद्यालयों में कुछ समय पढ़ाने के लिए उत्साहित करना।

Scanned with OKEN Scanner

(vi) निजी विद्यालयों का निर्माण करना।
(vii) विद्यालयों के लिए भवन-निर्माण के लिए मजदूरों की व्यवस्था करना।
(viii) लड़कियों की शिक्षा के विषय में रूढ़िवादी दृष्टिकोण को बदलना।
(ix) ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों के लिए आवास की व्यवस्था करना।
(x) गरीब विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क पुस्तकों तथा शिक्षा से सम्बन्धित अन्य आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करना।
(xi) दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यार्थियों के लिए आवास की व्यवस्था करना।

राज्य की जिम्मेदारी (Responsibility of the State)—
(i) सेमिनारों का आयोजन करना।
(ii) सामाजिक संस्थाएँ, जो स्त्रियों की शिक्षा में प्रयत्नशील हैं, उन्हें हर संभव सहायता देना।
(iii) रेडियो तथा दूसरे श्रव्य-दृश्य सामान की व्यवस्था।
(iv) विद्यालयों के सुधार के लिए कांफ्रेंस आदि बुलाना।

श्रीमती हंसा मेहता कमेटी के सुझाव
(Recommendations of Smt. Hansa Mehta Committee)

लड़के और लड़कियों की शिक्षा में अनेक बाधाओं तथा समस्याओं को देखते हुए तथा उनके निवारण के लिए स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय कौंसिल (National Council for Women Education) ने एक कमेटी का गठन अलग से किया जिसे श्रीमती हंसा मेहता कमेटी (Smt. Hansa Mehta Committee) के नाम से जाना जाता है। इस कमेटी ने लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा में आई असमानता को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए—

(i) **प्राथमिक स्तर पर (At Primary Stage)**—कमेटी के अनुसार प्राथमिक स्तर पर लड़के तथा लड़कियों की पढ़ाई में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं होना चाहिए।

(ii) **मिडल स्तर पर (At Middle Stage)**—कमेटी के अनुसार मिडल स्तर पर कम से कम कोर्सों का प्रावधान हो। गृह विज्ञान की पढ़ाई भी इसी स्तर पर शुरू होनी चाहिए। वोकेशनल कोर्स के लिए इस स्तर पर अनिवार्यता नहीं होनी चाहिए। स्थानीय जरूरतों के हिसाब से शिल्पकला की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(iii) **माध्यमिक स्तर पर (At Secondary Stage)**—कमेटी ने माध्यमिक स्तर के लिए सर्वप्रथम सुझाव दिया कि इस स्तर पर हस्तकला तथा शिल्पकला को सामान्य कोर्स में रखा जाए। इसी स्तर पर लड़कियों के लिए फाइन आर्ट्स, घर की साज-सज्जा (Interior decoration), गृह विज्ञान (Home Science) का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिए। साथ ही साथ इस बात का भी प्रावधान कर देना चाहिए कि लड़कियों के लिए भी ये विषय अनिवार्य नहीं होंगे। लड़कियाँ अपनी रुचि के हिसाब से उनमें से कोई एक चुन सकती हैं। लड़कियों को विज्ञान तथा गणित की पढ़ाई के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इन सबके साथ-साथ उच्च स्तरीय सैक्स की शिक्षा प्राप्त अध्यापिकाओं द्वारा उन्हें सैक्स एजुकेशन का ज्ञान दिया जाना चाहिए।

(iv) **विश्वविद्यालय स्तर पर (At University Stage)**—स्त्रियों की मुख्य जरूरतों को मद्देनजर रखते हुए विश्वविद्यालय में उन कोर्सों को शुरू किया जाना चाहिए जो उनके जीवनपर्यन्त काम आ सकें।

कोठारी आयोग (1964-66) के सुझाव
(Recommendations of Kothari Commission-1964-66)

कोठारी आयोग नारी शिक्षा को विशेष महत्त्व देता था। उसने नारी शिक्षा तथा पुरुषों की शिक्षा में विद्यमान खाई को पाटने का भरसक प्रयास किया। आयोग के अनुसार यदि नारियों को शिक्षित कर दिया जाएगा तो देश की बढ़ती जनसंख्या पर रोक लगाने में काफी हद तक सफलता मिल सकती है। आज

Scanned with OKEN Scanner

नारी का कर्मस्थल केवल रसोईघर तथा जच्चा घर नहीं रह गया है, वह देश की प्रगति में होने वाले सभी कार्यों में अपना योगदान देती है। इसलिए कोठारी आयोग ने नारी शिक्षा के प्रसार के लिए, नारी शिक्षा के लिए अध्ययन मंडल की नियुक्ति की। आयोग के अनुसार, "हर क्षेत्र में शिक्षा को उत्पादन के साथ जोड़ना चाहिए।" आयोग के अनुसार इसे जीवन और व्यक्ति की आवश्यकताओं के साथ जोड़ दिया जाए, जिससे आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन हो सके। नारी शिक्षा में आई समस्याओं तथा बाधाओं को दूर करने के लिए आयोग ने कुछ और भी सुझाव दिए जो निम्नलिखित हैं–

(i) प्राथमिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।
(ii) माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा का विकास इस प्रकार हो कि लड़कियों तथा लड़कों की शिक्षा का अनुपात 1:3 से 1:2 तक पहुँच जाए।
(iii) लड़कियों की शिक्षा की व्यवस्था राष्ट्रीय समिति के सुझावों के अनुसार होनी चाहिए।
(iv) विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातक (Graduation) तक महिलाओं के लिए अलग से महाविद्यालयों का प्रबन्ध होना चाहिए।
(v) महिला अध्यापकों को विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिए।
(vi) लड़कियों के लिए अंशकालीन कोर्सों, व्यावसायिक कोर्सों, अलग विद्यालयों तथा छात्रावासों की व्यवस्था होनी चाहिए।
(vii) नारी-शिक्षा के पाठ्यक्रम का विकास किया जाए। गृह-विज्ञान लड़कियों के लिए वैकल्पिक विषय के रूप में रखा जाए।
(viii) उच्च शिक्षा के स्तर पर लड़के-लड़की की शिक्षा का अनुपात 1:4 से 1:3 होना चाहिए।
(ix) प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना राज्य सरकार करेगी।

महात्मा गाँधी के विचार
(Views of Mahatma Gandhi)

महात्मा गाँधी नारी-शिक्षा के बड़े पक्षधर थे। इसके साथ-साथ वे नारी के लिए समाज में बराबर का अधिकार चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने असहयोग आन्दोलन में औरतों को वो सभी कार्य करने की छूट दी जो पुरुष कर सकते थे।

गाँधी जी ने नारी-शिक्षा को जब तक सफल नहीं माना जब तक यह शिक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं हुई। नारी शिक्षा के विषय में उन्होंने कहा था कि, **"बच्चों की शिक्षा के प्रश्न को तब तक हल नहीं किया जा सकता जब तक साथ-साथ नारी शिक्षा को हल करने के लिए निरन्तर प्रयत्न न किए जाएँ।"**

("The question of education of children cannot be solved unless efforts are made simultaneously to solve the women's education.")

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के सुझाव
(Recommendations of National Policy of Education-1986)

1986 में बनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने देश में नारी-शिक्षा और नारियों की स्थिति को ऊपर उठाने का भरसक प्रयास किया। इसी वर्ष नारियों के रोजगार के लिए एक विशेष कार्यक्रम बनाया गया। इस कार्यक्रम को 'महिला सामाख्या' नाम दिया गया।

महिला सामाख्या का अर्थ (The Meaning of Mahilla Samakhya)–'महिला सामाख्या' का अर्थ है शिक्षा द्वारा स्त्रियों की समानता। यह नारियों के लिए शक्ति का एक प्रोजेक्ट था जिसका लक्ष्य नौकरी प्राप्त करने की बजाए, नारियों की अपने बारे में सोच को परिवर्तित करना था। इसका एक उद्देश्य समाज में फैली-रूढ़िवादी परम्पराओं को तिलांजलि देकर नए विचारों तथा तरीकों से क्रान्ति लाना था। इस प्रोजेक्ट् का एक लक्ष्य यह भी था कि नारियों के लिए ऐसा वातावरण तैयार करना जिसमें वे अपनी इच्छा

Scanned with OKEN Scanner

अनुसार ज्ञान और सूचना प्राप्त कर सकें। इस प्रोजेक्ट में 10 नियमों की कार्य सूची तैयार की गई थी जो नारी शिक्षा के प्रसार के लिए सहायक थे। ये दस नियम निम्नलिखित थे–

(i) गाँव में महिला प्रतियोगी गाँव के संस्कार, स्वभाव और समय निश्चित करते थे।
(ii) योजनाबंदी तथा निर्णय लेना आदि कार्य स्त्रियों के समूह के लिए उत्तरदायी होंगे।
(iii) प्रोजेक्ट की कार्यशीलता की भूमिका का लक्ष्य कार्यालयी और अन्य अभिकरणों को सुविधाएँ देना था।
(iv) मूल्यांकन जैसे कार्य स्त्रियों के समूह के लिए उत्तरदायी होंगे।
(v) शिक्षा को व्यापक अर्थों में लेना तथा समझना होगा।
(vi) शिक्षा को केवल साक्षरता तक ही सीमित नहीं किया जाना चाहिए।
(vii) स्त्रियों के जीवन के सुधार के लिए पूरा समय, समर्थन और बल देना चाहिए।
(viii) स्त्री शिक्षा के लिए अध्ययन का वातावरण (Ambience for education) बनाना चाहिए।
(ix) स्त्रियों को समाज में समानता तथा सम्मान का दर्जा दिया जाना चाहिए।
(x) अध्ययन विधियाँ स्त्रियों की जानकारी, निपुणता तथा अनुभव पर आधारित होनी चाहिए।

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति-1992
(National Policy of Education-1992)

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति–1992 के तहत स्त्रियों की शक्ति को बढ़ाने के लिए कई योजनाएँ बनाई गई थीं। उनमें से कुछ विशेष योजनाएँ निम्नलिखित हैं–

(i) अनौपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत 90% सहायता NFE को केवल लड़कियों के लिए दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त इन केन्द्रों पर अन्य सुविधाएँ भी दी जानी चाहिए।
(ii) श्यामपट्ट अभियान (Operation Black Board) योजना के अन्तर्गत इस बात का प्रावधान रखा गया कि भविष्य के जितने भी अध्यापकों की नियुक्ति होगी, उनमें से 50% महिला अध्यापक होनी चाहिए।
(iii) 'सम्पूर्ण साक्षरता अभियान' (Total Literacy Campaigns) में स्त्रियाँ मुख्य केन्द्र हों। इसके अतिरिक्त महिलाओं की संख्या 60% से ज्यादा होनी चाहिए।
(iv) इस बात के लिए प्रयास किया जाना चाहिए कि लड़कियों की संख्या विद्यालय में कम से कम 1/3 हो।
(v) लड़कियों की शिक्षा का निःशुल्क प्रबन्ध नवोदय विद्यालयों तथा केन्द्रीय विद्यालयों में होना चाहिए।

कार्यवाही का कार्यक्रम–1992 (Programme of Action-1992)–इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य लिंग अनुपात की जानकारी देना तथा उसकी समानता का प्रयास करना था। इसके साथ-साथ इसका यह भी उद्देश्य था कि औरतों को किसी भी सूरत में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए प्रोत्साहित करना था। इस कार्यक्रम के मुख्य चार घटक निम्नलिखित हैं–

(i) स्त्री और पुरुष की लिंग समानता के लिए वर्तमान मूल्यांकन विधि को बदलना।
(ii) स्त्रियों के विकास के लिए संस्थाओं की सीधी भूमिका।
(iii) अध्यापकों की सिखलाई, निर्णय लेने वाले, योजना बनाने वालों द्वारा लिंग समानता लाने के लिए महत्त्वपूर्ण तथा सही भूमिका अदा करना।
(iv) लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आधुनिक तरीकों को ढूँढ़ना।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

4.5. पालन-पोषण विल्लियाँ (Child Rearing Practices)

1. बालक की पालन-पोषण विधियों से क्या अभिप्राय है? पालन-पोषण विधियों को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
(What do you mean by child-rearing practices? Describe the factors affecting child rearing practices.)

उत्तर–पालन-पोषण का अर्थ (Meaning of Child Rearing Practices)–पालन-पोषण का मूल अर्थ होता है–बच्चे की देखभाल करना। अतः बालक के माता-पिता द्वारा या उनके किसी विकल्प द्वारा बच्चों को प्रशिक्षण देना या उनकी देखभाल करना। 'पालन-पोषण' शब्द का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में किया जाता है। दो शब्दों का अधिकतर प्रयोग किया जाता है–परवरिश (Parenting) और पालन-पोषण (Child Rearing Practices) विधियां। मूल रूप से इन दोनों शब्दों का उद्देश्य एक ही होता है अर्थात् बालक की देखभाल करना तथा उन्हें हर कार्य में सहायता करना। लेकिन इन दोनों शब्दों में थोड़ा-सा अंतर है। पालन-पोषण (Rearing) में बच्चों के प्रशिक्षण (Training) पर अधिक बल दिया जाता है तथा उनकी माता-पिता के साथ अन्तर्क्रिया होती है जबकि परवरिश (Parenting) में माता-पिता के उदाहरणीय व्यवहार में गुणों और उत्तरदायित्वों पर बल दिया जाता है।

पालन-पोषण विधियों को प्रभावित करने वाले कारक *(Factors Affecting Child Rearing Practices)*

माता-पिता द्वारा पालन-पोषण के लिए अपनाई जाने वाली विधियों में अक्सर भिन्नता दिखाई देती है, लेकिन इन सभी विधियों का उद्देश्य बालक की देखभाल करना ही होता है। पालन-पोषण की इन विभिन्नताओं के पीछे वैयक्तिक भिन्नताएं भी एक कारण हो सकता है। अतः माता-पिता द्वारा पालन-पोषण को प्रभावित करने वाले कारकों को जानना अति आवश्यक है। पालन-पोषण की विधियों को प्रभावित करने वाले कुछ मुख्य कारक निम्नलिखित हो सकते हैं–

1. आय (Income)–माता-पिता किस आय-वर्ग (Income Group) से संबंध रखते हैं–यह बात उनके द्वारा अपनाई जा रही पालन-पोषण विधियों को स्पष्ट रूप से प्रभावित करती है। कई माता-पिता बच्चों को छोटी आयु में ही काम पर लगा देते हैं। ऐसे वे अपनी आय या घर के खर्चों को या घर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करने पर बाध्य होते हैं। लेकिन दूसरी ओर धनी माता-पिता अपने बच्चों की हर आवश्यकता को बड़ी आसानी से पूरा कर देते हैं, जिससे उनका व्यक्तित्व सही दिशा में विकसित होता रहता है। ऐसे बच्चों की शिक्षा के बाद नौकरियां भी सुरक्षित होती हैं। इससे घर की आर्थिक दशा नियंत्रण में रहती है।

2. धर्म (Religion)–धर्म की भूमिका से इंकार करना बहुत भारी गलती होती है। पालन-पोषण में धर्म का प्रभाव भी बच्चों की विचारधारा को दिशा प्रदान करता है। ईसाई धर्म को मानने वाले माता-पिता नैतिकता और आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाते हैं। आध्यात्मिक माता-पिता बच्चों को अपनी ओर मोड़ने का प्रयास करते हैं।

3. संस्कृति (Culture)–हर संस्कृति में पालन-पोषण की अपनी ही शैली होती है। इसकी भूमिका का महत्त्व बहुत माना जाता है। उदाहरणार्थ, एक भारतीय बेटी अमेरिकी बेटी से भिन्न होगी। वह जब दूसरे देश में जाएगी तो उसका व्यक्तित्व कुछ हटकर दिखाई देगा। यह निश्चित है कि विश्व के सभी बच्चे संस्कृति के प्रभाव के कारण ही भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

4. माता-पिता के माता-पिता (Parent's of Parent)–बच्चों के पालन-पोषण की विधियां हमारे उन माता-पिता द्वारा अपनाई जाने वाली विधियों द्वारा भी प्रभावित होती हैं जिनका अनुसरण हमारे माता-पिता ने किया होगा। अक्सर माताएं अपनी माताओं द्वारा प्रयुक्त विधियों को अपनाती हैं। पिता अपने पिता द्वारा प्रयुक्त तौर-तरीकों का अनुसरण करते हैं। परिणामस्वरूप वे अपने बच्चों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करते हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई मां 'सख्त' व्यवहार वाली होती है तो उसके बच्चे भी अपनी 'मां' के व्यवहार का अनुसरण करने का प्रयास करते हैं।

5. सामाजिक वर्ग (Social Class)–सामाजिक वर्ग बच्चों के पालन-पोषण को प्रभावित करते रहते हैं। समाज के तीन वर्गों की पहचान की गई है–निम्न वर्ग, मध्य वर्ग और उच्च वर्ग (Lower Class, Middle Class and Upper Class)। लेकिन समाज का हर वर्ग अपने बच्चों का पालन-पोषण उचित प्रकार से करने का प्रयास करता है तथा उनकी आवश्यकताओं को अपने स्रोतों के अनुसार पूरा करता है। कुछ लोग सफल हो जाते हैं जबकि कुछ आंशिक रूप से ही सफल होते हैं। कुछ माता-पिता अपने बच्चों का पालन-पोषण इस प्रकार करते हैं कि वे समाज में उच्च वर्ग में शामिल हो जाते हैं। हर माता-पिता अपने बच्चों को उत्तम शिष्टाचार (Etiquettes) सिखाने का प्रयास करते हैं। वे उन्हें हर कौशल (Skill) का ज्ञान उपलब्ध कराते हैं।

कर्मचारी वर्ग (Working Class) के माता-पिता अपने बच्चों का इस प्रकार से पालन-पोषण करते हैं जिस प्रकार से उन्होंने स्वयं ने दुनिया देखी होती है। इस वर्ग के माता-पिता अपने बच्चों को हर सुविधा उपलब्ध नहीं करवा सकते और न ही उनकी हर आवश्यकता पूरी करवा सकते हैं। अतः पालन-पोषण की विधियां सामाजिक वर्ग के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकतीं।

पालन-पोषण की विधियों को प्रभावित करने वाले कारक

1. → आय
2. → धर्म
3. → संस्कृति
4. → माता-पिता के माता-पिता
5. → सामाजिक वर्ग

चित्र : पालन-पोषण विधियों को प्रभावित करने वाले कारक

◆◆◆

माता-पिता से पृथक्करण, क्रैच और अनाथाश्रमों में बालक [Separation from Parent, Children in Creches and Orphanages]

(A) माता-पिता से पृथक्करण (Separation from Parent)

1. माता-पिता से पृथक्करण से आप क्या समझते हैं? पृथक्करण के परिणामस्वरूप उत्पन्न व्यवहारों का वर्णन करें।

उत्तर–माता-पिता से पृथक्करण से अभिप्राय (Meaning of Separation from Parents)–'लगाव' और 'पृथक्करण' (Attachment and Separation) ये दो तत्त्व ऐसे हैं जो बच्चे के व्यवहारों को हर विकास अवस्था पर एक विशेष स्वरूप प्रदान करते हैं। बालक के व्यक्तित्व का कोई भी पक्ष इन तत्त्वों

Scanned with OKEN Scanner

से अछूता नहीं रह सकता। उदाहरणार्थ–अनुकूलन (Adoption), स्थानापन्न (Placement), मूल्यांकन (Assessment) आदि। हर स्नेहमयी अभिभावक अपने बच्चे के लिए चिन्तित होता है। विशेषकर तब जब उसका 'स्कूल' जाना शुरू होता है। स्कूल जाना माता-पिता को पीड़ा का अनुभव कराता है। उन्हें लगता है कि पता नहीं उसके बच्चे के साथ क्या घटित हो जाए। इसके अतिरिक्त घर पर बच्चों का और अभिभावकों का 'लगाव' (Attachment) दिन-प्रतिदिन बढ़ता या विकसित होता चला जाता है। जब 'लगाव' होता है तो पृथक्करण (Separation) भी होगा। अतः बच्चों का उन देखभाल करने वालों से दूर होना जिनसे वे बहुत अधिक जुड़े होते हैं या जिनके साथ उनका बहुत लगाव होता है, पृथक्करण कहलाता है। पृथक्करण सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है।

सकारात्मक रूप से, पृथक्करण के बहुत से लाभ भी होते हैं। जैसे–

(i) बालक की तत्काल सुरक्षा होती है।

(ii) माता-पिता के व्यवहारों की सीमा निर्धारित होती है।

(iii) बालक को विश्वस्त किया जा सकता है कि समाज उसकी सुरक्षा करेगा।

(iv) माता-पिता अस्थाई रूप से बच्चों की देख-रेख के भार से मुक्त महसूस करते हैं।

(v) बच्चों के लिए आवश्यक परिवर्तनों के लिए सोचने या विचार करने का अवसर मिल जाता है।

नकारात्मक प्रभाव के रूप में अध्ययन यह बताते हैं कि बच्चों को उनके परिवारों से दूर करने से उनके विकास की गति में हस्तक्षेप या रुकावट पैदा होती है। यदि पृथक्करण बार-बार होता है तो बालक के साथ घनिष्ठ संबंधों में रुकावट पैदा होगी। पृथक्करण से उत्पन्न नकारात्मक प्रभाव ये हो सकते हैं–

(i) सामाजिक-नैतिक अपरिपक्वता।

(ii) अपर्याप्त सामाजिक कुशलता।

(iii) संज्ञानात्मक और भाषायी विकास में विलम्ब।

(iv) मनोवृत्ति विकार (Mood Disorders) उत्पन्न होना।

(v) निम्न आत्म-सम्मान।

पृथक्करण के परिणामस्वरूप व्यवहार
(Behaviours as a Result of Separation)

पृथक्करण प्रक्रिया बच्चों के व्यवहारों को किसी न किसी रूप से प्रभावित करती रहती है। इस प्रक्रिया से बच्चों में निम्न व्यवहार देखने को मिलते हैं–

1. दुख का प्रदर्शन (Display of Grief)–पृथक्करण के परिणामस्वरूप बच्चे दुख (Grief) का प्रदर्शन करते हैं। यह दुख पांच चरणों में प्रदर्शित होता है–सदमा (Shock), गुस्सा (Anger), सौदेबाजी (Bargaining), अवसाद (Depression) और दृढ़ता (Resoluition)। यहां यह बताना आवश्यक होगा कि ये व्यवहार किसी भी क्रम में हो सकते हैं। आवश्यक नहीं कि यही क्रम हो। जैसे–गुस्से के बाद बालक अवसाद (Depression) का प्रदर्शन कर सकता है। सामाजिक कार्यकर्ता बच्चों की इस स्थिति को प्रदर्शित व्यवहारों की व्याख्या कई बार गलत भी कर जाते हैं।

2. छोटे और बड़े बच्चों द्वारा अभिव्यक्ति (Expression by Small and Older Children)–प्रारंभिक आयु में बच्चा इस पृथक्करण को या परिवार के टूटने को समझ नहीं पाता। यह स्थिति पहले पांच वर्ष तक होती हैं। बल्कि बड़े बच्चे भी भ्रम (Confusion) की स्थिति में रहते हैं। लेकिन बड़े बच्चे छोटे बच्चों की अपेक्षा पृथक्करण को समझने के लिए अपेक्षाकृत अधिक योग्य होते हैं।

3. भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएं (Different Reactions)–पृथक्करण या तलाक जैसी स्थिति में भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं करके अभिव्यक्ति करते हैं। ये प्रतिक्रियाएं उनकी आयु तथा स्वभाव पर निर्भर करती हैं तथा यह पृथक्करण या माता-पिता के बीच द्वंद्व या सहयोग के स्तर पर भी निर्भर करता है।

Scanned with OKEN Scanner

4. अन्य पारिवारिक सदस्यों द्वारा प्रतिक्रियाएं (Other Family Members' Reactions)– माता-पिता की प्रतिक्रिया के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा प्रतिक्रिया भी बच्चों की अभिव्यक्ति को प्रभावित करती है। माता-पिता में निरंतर झगड़ों से बच्चे पृथक्करण से गंभीर रूप से आहत होते हैं। ये सभी स्थितियां बच्चों के लिए बहुत तनावपूर्ण होती हैं। माता-पिता के साथ बच्चों के स्नेहमयी संबंधों के परिणामस्वरूप बच्चे अच्छी प्रकार से अनुकूलन कर सकते हैं।

पृथक्करण के परिणामस्वरूप व्यवहार

1. → दुख का प्रदर्शन
2. → छोटे-बड़े बच्चों द्वारा अभिव्यक्ति
3. → भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएं
4. → अन्य पारिवारिक सदस्यों द्वारा प्रतिक्रिया

चित्र : पृथक्करण के परिणामस्वरूप व्यवहार

◆◆◆

2. पृथक्करण एक जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। स्पष्ट करें। पृथक्करण में बच्चों और माता-पिता के लिए सहायक क्रियाओं से परिचित कराएं।
(Separation is a life-long process. Clarify it. Introduce with the helpful activities for children and parents.)

उत्तर–स्कूल में जाने से पूर्व की स्थिति माता-पिता के लिए बहुत चिंता की स्थिति होती है, क्योंकि इस अवस्था में उन्हें पृथक्करण (Separation) का सामना करना पड़ता है। यह एक सामान्य-सी बात होती है। प्री-स्कूल बच्चों के लिए यह प्रथम औपचारिक वातावरण होता है। बहुत छोटे बच्चे माता-पिता से पृथक होने के आदी होते हैं, लेकिन नया स्कूल-वातावरण बच्चे को भिन्न प्रकार का स्कूल वातावरण प्रदान करता है।

प्री-स्कूल एक ऐसी अवस्था है जिसमें बालक का माता-पिता के साथ जो लगाव होता है वह दूसरे प्रौढ़ अर्थात् अध्यापक की ओर स्थानांतरित होता है। अध्यापक के साथ यह रिश्ता या लगाव विकसित करना भी अति आवश्यक होता है। यह रिश्ता विश्वसनीय होना चाहिए। इस स्थिति में पहुंचने पर बच्चों में 'आत्म' (Self) की भावना विकसित होने लगती है। ऐसी अवस्था में बालक कक्षा में स्वतंत्र रूप से स्वयं को व्यस्त रखता है। वह दूसरों के साथ भी सकारात्मक और सामाजिक संबंध स्थापित कर लेता है।

शैशवावस्था में जो लगाव होता है, वह पूर्णतया सुरक्षित होता है। सुरक्षित लगाव (Secure Attachment) से अभिप्राय है बालक माता-पिता पर भरोसा करता है तथा यह सुरक्षित महसूस करता है कि माता-पिता उसका ध्यान रखेंगे।

पृथक्करण चुनौतीपूर्ण और तनावपूर्ण हो सकता है परंतु यह स्वयं के बारे में सीखने तथा स्वयं के आत्म-सम्मान के निर्माण में अवसर प्रदान करता है।

पृथक्करण की प्रक्रिया छोटे बच्चे के लिए पीड़ादायक हो सकती है लेकिन कई पाठ इस दौरान सीखे जा सकते हैं। अध्यापक को यह जानना जरूरी है कि पृथक्करण की प्रक्रिया जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

पृथक्करण में बच्चों और माता-पिता के लिए सहायक क्रियाएं
(Activities Helpful for Children and Parent During Separation)

पृथक्करण के दौरान बच्चों और माता-पिता के लिए कुछ आवश्यक सुझाव हैं जिन्हें मानने के परिणामस्वरूप बच्चे और माता-पिता का समायोजन उचित प्रकार से हो सकता है। ये सुझाव निम्नलिखित हो सकते हैं–

Scanned with OKEN Scanner

1. सकारात्मक संदेश (Positive Messages)–स्कूल के बारे में माता-पिता होने के नाते आपकी कुछ चिंताएं या संदेह हो सकते हैं, जिन्हें दूर करना अति आवश्यक होता है। यह आवश्यक होता है कि आप स्कूल सैटिंग के बारे में या स्कूल व्यवस्था के बारे में आश्वस्त हों। यदि आप किसी चीज को लेकर चिंतित हैं तो स्कूल अधिकारियों से सम्पर्क करें। यह सुनिश्चित करें कि आप जब भी बच्चे के पास हों तो आप स्कूल के बारे में सकारात्मक रूप से ही बोलेंगे।

2. उपयुक्त व्यवहार (Appropriate Behaviour)–आपके शरीर की भाषा (Body Language) आपके बच्चे के संबंध में बहुत कुछ सम्प्रेषित (Communicate) कर देती है। स्कूल छोड़ते समय आप अध्यापकों और अन्य माता-पिताओं का अभिवादन करते हुए 'हैलो' (Hellow) कहें। अन्य माता-पिताओं से मैत्रीपूर्ण वार्ता भी करते रहें। यदि आप अपने बच्चे के सम्मुख स्वयं को 'सहज' (Confartable) प्रदर्शित करेंगे तो वह स्वयं भी सहज की महसूस करेगा।

3. सम्प्रेषित करें (Communicate)–बच्चे की हर परिस्थिति के बारे में आप उसके अध्यापक को अवश्य सूचित करें। जैसे–यदि बच्चा बीमार रहा हो, रात भर सोया न हो या किसी अन्य प्रकार का परिवर्तन हुआ हो, तब इन सभी बातों के बारे में उसके अध्यापक को अवश्य सूचित करें। क्योंकि स्कूल से बाहर घटित होने वाली हर घटना बच्चे की उपलब्धि या निष्पादन (Performance) को प्रभावित करती है।

4. समस्या उत्पादक (Trouble Shooting)–कई बार बच्चे स्कूल जाने से इंकार करने लगते हैं या स्कूल का विरोध करना शुरू कर देते हैं। ऐसी स्थिति में आप स्कूल अध्यापक से तुरंत सम्पर्क करके उसे सारी स्थिति से अवगत कराएं। स्कूल जाने के लिए बच्चे को कोई प्रलोभन आदि मत दें।

5. समय से पूर्व पहुंचे (Arrive and Pick up on Time)–बच्चों और माता-पिता के पृथक्करण के समय अर्थात् जब बच्चे ने स्कूल जाने के लिए माता-पिता से अलग होना होता है, तब माता-पिता बच्चों को लेकर समय से कुछ पहले ही पहुंचे ताकि कक्षा में प्रवेश से पहले वे मानसिक और शारीरिक रूप से कुछ स्थापित (Settle) हो जाएं। एकदम भाग-दौड़ करते हुए स्कूल में प्रवेश से बच्चा सहज और सुखद महसूस नहीं करता। जब कक्षा में प्रवेश के पश्चात् वह कुछ बच्चों को कुछ कार्य करते हुए देखता है तो वह कुछ छूटा हुआ महसूस करता है अर्थात् उसने कुछ छोड़ दिया है।

◆ ◆ ◆

(B) क्रैच और अनाथाश्रम में बालक
(Children in Creches and Orphanages)

3. 'क्रैच' से क्या अभिप्राय है? अपने बच्चे के लिए क्रैच के चयन के लिए आप किन-किन बातों पर ध्यान रखेंगे? क्रैच के लाभ और हानियां बताएं।
(What do you mean by Creche? What precautions will you observe while selecting a Creche for your Child? Also describe its advantages and disadvantages.)

उत्तर–क्रैच से अभिप्राय (Meaning of Creche)–'क्रेश' (Creche) शब्द एक फ्रैंच शब्द है जिसका अर्थ है–'डे-केयर' (Day Care)। अर्थात् दिनभर देखभाल करना। कामकाजी माताओं (Working Mothers) को काम पर जाने से पहले अपने छोटे बच्चे को ऐसी संस्था में छोड़कर जाना पड़ता है जहां पर उसकी उचित प्रकार से देखभाल हो सके। ऐसी संस्था को ही 'क्रैच' (Creche) का नाम दिया जाता है।

मैकमिलन डिक्शनरी (Macmillon Dictionary) के अनुसार–एक ऐसा स्थान जहां पर शिशुओं और छोटे बच्चों की तब देखभाल की जाती है जब उनके माता-पिता व्यस्त होते हैं, क्रैच कहलाता है।

(A Place where babies and small children are looked after while their parent are busy is termed as chreche.)

Scanned with OKEN Scanner

क्रैच (Creche) में बच्चों को बिस्तर, मुक्त चिकित्सा सहायता तथा खिलौने आदि प्रदान किए जाते हैं। प्रत्येक क्रैच में सर्दियों में रूम-हीटर तथा गर्मियों में रूम कूलर की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। गैस स्टोव और फ्रिज आदि भी दिए जाते हैं। हर क्रैच के साथ इंगलिश माध्यम की एक नर्सरी भी सम्बद्ध होती है। इस नर्सरी में 3-5 वर्ष के बच्चों को लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है। क्रैच में 3 मास से लेकर 10 वर्ष तक के लड़के तथा 3 माह से 12 वर्ष तक की लड़कियों को दाखिल किया जाता है। कई क्रैचों में 8 वर्ष तक के बच्चों को भी दाखिल किया जाता है। क्रैच में बच्चों के साथ माता-पिता को ठहरने की अनुमति नहीं होती। यदि कोई क्रैच दिन में 2 घंटे से अधिक खुलता है तो उसे पंजीकृत (Registered) कराना पड़ेगा।

क्रैच के चयन के लिए आवश्यक बातें या सावधानियां
(Precautions for Choosing Creche for Your Child)

अपने बच्चों के लिए क्रैच का चयन करते समय निम्न बातों की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है–

1. क्रैच में देखभाल करने वालों के शिष्टाचार, उनकी शैक्षिक योग्यताएं और पठन योग्यताओं की जांच करें।
2. क्रैच में एक समय में अधिकतम कितने बच्चे रहते हैं–यह भी जानें।
3. क्रैच में देखभाल करने वालों की संख्या कितनी है?
4. यह जानना आपका अधिकार है कि आपके बच्चे को क्या भोजन (Food) दिया जा रहा है और आप क्या दिलाना चाहते हैं?
5. क्रैच शुरू करने वालों की क्रैच शुरू करने के बारे में प्रेरणा क्या थी?
6. व्यक्तिगत स्वच्छता, भवन और आस-पास का वातावरण कैसा है?
7. क्रैच परिसर के अंदर मेडिकल सुविधा होनी चाहिए तथा देखभाल करने वालों को बेसिक होम नर्सिंग और प्राथमिक सहायता का ज्ञान अति आवश्यक है।
8. सभी बड़े क्रैचों के निकट अस्पतालों और डॉक्टर की सुविधा आवश्यक है।
9. जिस क्रैच का आप चयन कर रहे हैं वह घर से कितना दूर है? क्या वहां के लिए कोई साधन है?
10. क्या क्रैच सभी सुरक्षा उपायों का अनुसरण होता है? जैसे–बच्चे को गिरने से बचाना, भवन से बाहर जाने से रोकना, सीढ़ियों पर जाने से रोकना।
11. कहीं बच्चों की पहुंच किचन (Kitchen) तक तो नहीं? वहां सुरक्षा की पूरी सावधानियों पर अमल हो रहा है या नहीं? जैसे–गैस, मिट्टी के तेल आदि से सुरक्षा।
12. बाथरूम और टॉयलेट आदि में सावधानियों का प्रयोग हो रहा है या नहीं?
13. बच्चा क्रैच में कहां पर विश्राम करेगा?
14. क्या क्रैच स्टॉफ प्रशिक्षित हैं?
15. क्या तुम्हारे बच्चे सुरक्षित और प्रसन्न हैं?
16. क्या बच्चे इकट्ठे खेलते और बातें करते हैं?
17. क्या क्रैच स्टॉफ मैत्रीपूर्वक व्यवहार करता है?
18. क्या स्टॉफ बच्चों की सुनवाई करता है?
19. क्या बच्चों के प्रयोग हेतु पर्याप्त खिलौने हैं?
20. क्या बच्चों के अधिगम और मनोरंजन के लिए बहुत-सी क्रियाएं आयोजित की जाती हैं?

क्रैच के लाभ (Advantages of Creches)–

1. क्रैच में आयु–अनुसार खिलौने व अन्य सामान उपलब्ध हो जाता है।
2. क्रैच में बच्चा विश्राम कर सकता है तथा वहां पर उद्दीपन प्रदान करने वाला वातावरण मिल जाता है।
3. क्रैच पर नजर रखना माता-पिता के लिए आसान होता है।

Scanned with OKEN Scanner

4. बच्चे को क्रैच में डालने के बाद माता-पिता की चिंता समाप्त हो जाती है।
5. बच्चा क्रैच में अपनी आयु वाले बच्चों के साथ अंतर्क्रिया करता है तथा आत्म-विश्वासी बनता है।

क्रैच की हानियाँ (Disadvantages of Creches)–

1. अधिकतर क्रैच रजिस्टर्ड नहीं होते और न ही वे निर्धारित मापदंडों का अनुसरण करते हैं।
2. क्रैच विशेष समय के बाद बंद हो जाते हैं। अतः शिफ्टों में कार्य करने वालों के लिए उपयोगी नहीं।
3. बीमार बच्चों से सम्पर्क हो सकता है जिस कारण आपका बच्चा भी बीमार हो सकता है।
4. जिस प्रकार की देखभाल आपके बच्चे को चाहिए कई बार कोई क्रैच वैसी सुविधा प्रदान कराने में असफल रहता है।
5. कई बार आपके बच्चे के बीमार होने पर आपको छुट्टी लेनी पड़ सकती है या सामानांतर व्यवस्था करके रखनी पड़ेगी।

◆◆◆

4. 'अनाथाश्रमों या अनाथालयों में बालकों'' पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें। (Write a note on 'Children in Orphanages.')

उत्तर–दो शब्दों का अधिकतर प्रयोग किया जाता है–अनाथ और अनाथालय या अनाथाश्रम। इन दोनों शब्दों का अर्थ समझना अति आवश्यक है।

'अनाथ' (Orphan) शब्द से अभिप्राय है–वह बालक जिसने अपने माता-पिता दोनों को ही खो दिया हो, उसे 'अनाथ' कहा जाता है। अनाथ वह बालक होता है जो स्थायी रूप से अपने माता-पिता द्वारा छोड़ (Abandoned) दिया जाए।

अनाथों की पहचान के लिए विभिन्न समूह विभिन्न परिभाषाओं का प्रयोग करते हैं। सामान्य प्रयोग में, एक अनाथ के जीवित माता-पिता नहीं होते जो उसकी देखभाल कर सकें। जिसके माता और पिता दोनों ही (Mother and Father) मर गए हों, वे 'डबल आरफन' (Double Orphan) कहलाते हैं।

विकसित देशों में 'अनाथ' कोई-कोई ही होता है, क्योंकि अधिकतर बच्चे बाल्यकाल में दोनों माता-पिता की अपेक्षा रखते हैं। अनाथों की संख्या उन युद्ध क्षेत्रों में अधिक होती है जहां पर युद्ध अधिक हुए हों, जैसे–अफगानिस्तान। काल्पनिक कथाओं में भी 'अनाथों' की चर्चा अधिक होती है, इसी प्रकार धार्मिक पुस्तकों में भी इनकी चर्चा हुई है।

जिन संस्थाओं में अनाथों की देखभाल होती है या जो संस्थाएं इनकी देखभाल को समर्पित होती हैं उसे अनाथालय या अनाथाश्रम (Orphanages) कहा जाता है। इनमें अनाथ बच्चे रहते हैं अर्थात् वे बच्चे जिनके माता-पिता मर जाते हैं या उनकी देखभाल के लिए अनिच्छा का प्रदर्शन करते हैं।

अनाथाश्रमों को पहले 'आरफेनोट्रोफिया' (Orphanotrophia) कहा जाता था। प्लेटो (Plato) के अनुसार अनाथों को पब्लिक गार्जियन (Public Gaurdian) की देखभाल के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए, जिनके मन में अनाथों के लिए प्रेम होना चाहिए। उन्हें अपने बच्चों की तरह रखना चाहिए। अनाथालयों में बच्चों के भोजन, कपड़ा, शिक्षा आदि की व्यवस्था की जाती है, लेकिन आवश्यक व्यक्तिगत प्रेम का अभाव रहता है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

4.6 स्कूलिंग : साथी प्रभाव, स्कूल संस्कृति, अध्यापकों से संबंध, अध्यापक अपेक्षाएं आदि
[Schooling : Peer Influences, School Culture, Relationship with Teachers, Teacher Expectations]

साथी प्रभाव एवं स्कूल संस्कृति
(Peer Influences and School Culture)

1. स्कूलों में बच्चों पर उनके साथियों का क्या प्रभाव पड़ता है? स्कूल संस्कृति से क्या अभिप्राय है? वर्णन करें।
(How the child is influenced by his peers? What do you mean by school culture? Describe it.)

उत्तर–साथी प्रभाव (Peer Influences)–स्कूल में बच्चों को उनके साथी अत्यधिक प्रभावित करते हैं। ये प्रभाव विकास की हर अवस्था के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकृति के होते हैं। इन प्रभावों पर ध्यान देना अति आवश्यक है। ये प्रभाव निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) माता-पिता की परवरिश शैलियां (Parenting Styles) साथियों के प्रभाव को भी प्रभावित करती हैं। जीवन की किसी अन्य अवस्था की अपेक्षा किशोरावस्था को साथी (Peers) अधिक प्रभावित करते हैं। किशोरों और साथियों में संबंधों की गुणवत्ता (Quality of Relationships) तथा साथियों के प्रकार भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(ii) किशारों के लिए साथी (Peers) किशोरावस्था में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(iii) किशोरों के जीवन में माता-पिता भी प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं।

(iv) वे किशोर जिनके माता-पिता और मित्र शैक्षिक उपलब्धियों की प्रशंसा करते हैं उनका निष्पादन (Performance) उन किशोरों से उपयुक्त होता है, जिनको किसी का समर्थन नहीं मिलता या किसी एक का ही मिलता हो।

(v) माता-पिता और मित्र किशोरों के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(vi) किशोर उन मित्रों से कम प्रभावित होते हैं। जो अपने माता-पिता के बहुत निकटता से जुड़े होते हैं।

(vii) मैत्रीपूर्ण कार्यों में लगे किशोर सकारात्मकता का अधिक प्रदर्शन करते हैं।

(viii) कक्षा से बाहर किशोरों के मित्रों के साथ उनके संबंध बहुत अच्छे होते हैं और पारिवारिक संबंधों के प्रति उनका दृष्टिकोण अधिक सकारात्मक होता है।

(ix) अपर्याप्त परिवारों में उत्पन्न खाई कई बार इस मित्रता के कारण पूरी होती है।

(x) मित्रों के माध्यम से तनाव से मुक्ति मिलती है और आत्म-सम्मान पैदा होता है। परिणामस्वरूप व्यक्तिगत शक्तियां विकसित होती हैं।

स्कूल-संस्कृति
(School-Culture)

अर्थ (Meaning)–स्कूल संस्कृति में अध्यापकों द्वारा अपनाई जाने वाली मूल धारणाएं और विश्वास शामिल होता है, जिन्हें स्कूल के सभी सदस्य आपस में बांटते (Share) हैं। ये अवधारणाएं और विश्वास (Assumptions and Beliefs) मानव-प्रकृति, मानव क्रिया और मानव संबंधों (Human Nature, Human activity and Human relationship) के बारे में होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

स्कूल संस्कृति में वह सब कुछ होता है जो एक संगठन के पास होता है। (School culture is what the organisation has.)

इसे हम एक तरीका भी कह सकते हैं जिनके द्वारा हम अपने वातावरण में सब कुछ करते हैं।

(It is the way we do things around here.)

स्कूल-संस्कृति शब्द को स्कूल वातावरण के पर्यायवाची (Synonymous) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। किसी भी स्कूल की सफलता के पीछे स्कूल-संस्कृति में विद्यमान स्वस्थ पैडागाजी (Pedagogy) होती है, जिसकी अध्यापक सहायता लेता रहता है।

सतही रूप से संस्कृति का संबंध इन चीजों से होता है—भौतिक संरचनाएं, पिछली घटनाओं को मानना।

यदि हम अधिक गहराई में जाएं तो संस्कृति का संबंध समारोहों, रीति-रिवाजों, व्यवहार के स्वीकृत मानक अर्थात् नियम और प्रक्रियाओं आदि से भी होता है।

इससे भी अधिक गहरे स्तर पर स्कूल संस्कृति का संबंध मूल धारणाओं और व्यक्तियों और संगठन के केन्द्रीय मूल्यों से होता है। यह तीसरा स्तर स्कूलों में सबसे अधिक शक्तिशाली होता है।

स्कूल में अधिकांश बच्चों के साथ समायोजन की समस्या रहती है। प्राइमरी में दाखिल करवाने के बाद बच्चे को स्कूल के वातावरण, अध्यापकों और सहपाठियों के साथ समायोजन करना सीखना पड़ता है। पूर्व प्राइमरी कक्षा में शिक्षा ग्रहण कर चुके बच्चों को नए वातावरण में समायोजन करने में उतनी कठिनाई नहीं होती, जितनी कि पहली बार प्रवेश पाने वाले बच्चों को होती है। अच्छा पारिवारिक वातावरण और प्रशिक्षण प्राप्त बालकों का समायोजन शीघ्र और उत्तम होता है।

कक्षा का वातावरण तीन प्रकार का हो सकता है—

1. प्रजातंत्रात्मक वातावरण (Democratic Environment)–इस प्रकार के वातावरण में अध्यापक और विद्यार्थी यह निश्चित कर लेते हैं कि उन्हें कक्षा में क्या कुछ करना है? इन कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों की कुछ विशेषताएं देखने को मिलती हैं—कक्षा में अन्य विद्यार्थियों में आपस में मैत्रीपूर्ण संबंधों का होना, आपस में सहयोग की भावना आदि।

2. निरंकुशवादी वातावरण (Authoritarian Environment)–इस प्रकार के वातावरण के अन्तर्गत कक्षा में अध्यापक ही सब कुछ होता है। कक्षा की सभी क्रियाओं के बारे में अध्यापक ही सभी निर्णय लेता है। ऐसे विद्यार्थी निष्क्रय, विद्रोही प्रवृत्ति के होते हैं। ऐसी परिस्थिति में विद्यार्थी अध्यापक की अनुपस्थिति में कुछ भी कार्य करने में असमर्थ होता है। इसमें सहयोग की अपेक्षा आपसी विरोध अधिक होता है।

3. स्वतंत्रात्मक वातावरण (Independent Environment)–इसमें अध्यापक विद्यार्थियों को पूरी छूट दे देता है। विद्यार्थी के सुझावों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। लेकिन व्यावहारिक रूप से ऐसी कक्षाएं देखने को बहुत कम मिलती हैं।

◆◆◆

अध्यापकों के साथ संबंध
(Relationship with Teachers)

2. अध्यापकों के साथ बच्चे के संबंध की व्याख्या करें। अध्यापक के साथ अच्छे संबंध क्यों आवश्यक हैं? (Explain the relationship of the child with the teachers. Why good relationship is required with the teachers?)

उत्तर–अध्यापक-बालक संबंध (Teacher-Child Relationship)–कक्षा एवं स्कूल में अध्यापक और बालक के बीच संबंधों की व्याख्या करना अति आवश्यक है। विशेषकर आज के आधुनिक शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत। क्योंकि स्कूल और कक्षा में बालक और अध्यापक के बीच संबंध कई बातों पर निर्भर करते हैं तथा कई कारकों से प्रभावित होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

एक छोटे बच्चे के लिए अध्यापक उसकी 'माता' का एक 'सबस्टिच्यूट' (Substitute) होता है। कुछ बड़े बालकों के लिए शिक्षक वह वयस्क व्यक्ति है जो 'आदरणीय' और सम्मान प्राप्त करने वाला होता है। उसके व्यवहार के अनुकरण पर बल दिया जाता है। इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि अध्यापकों में प्रभावशाली विशेषताओं का होना अति महत्त्वपूर्ण होता है।

अध्यापक की अभिवृत्तियों (Attitudes) के प्रति बालक बहुत ही संवेदनशील होते हैं। स्कूल में बालक के साथ किस प्रकार का व्यवहार संबंध हो—यह बात बालक के अधिगम और उपलब्धि को किसी न किसी प्रकार से अवश्य प्रभावित करती रहती है।

स्कूलों में अध्यापकों का सामान्य स्तर मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर ही होता है। इसी प्रकार अधिकांश बच्चे भी मध्यम सामाजिक-आर्थिक वर्ग से ही संबंध रखते हैं। इस प्रकार एक ही प्रकार के वर्ग से जुड़े छात्र और अध्यापक एक-दूसरे को समझने में कठिनाई महसूस नहीं करते।

लेकिन जब विद्यार्थी निम्न वर्ग से जुड़े होते हैं तो बालकों और अध्यापकों के मूल्यों में खाई उत्पन्न होने लगती है। ऐसे बालक अध्यापक की आज्ञा का पालन नहीं करते और साथ ही आक्रामक स्वभाव भी रखते हैं। कक्षाओं से अनुपस्थिति या उनकी उदासीनता उनके व्यवहार का अंग बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे 'धीमी गति' वाले विद्यार्थी बन जाते हैं अर्थात् वे धीमी गति से सीखते हैं। ऐसे में अध्यापकों को भी विद्यार्थियों से निराशा का सामना करना पड़ता है। ऐसे वातावरण में अध्यापक और विद्यार्थी एक-दूसरे को स्वीकार नहीं करते।

यदि हम प्रभुत्वात्मक अनुशासन (Authoritarian) वाले स्कूल में विद्यार्थियों की विशेषताओं पर नजर डालें तो उनमें हमें अलग विशेषताओं दिखाई पड़ेगी—

(i) अकेले में रहना
(ii) अलग-थलग रहना
(iii) अत्यधिक संवेदनशीलता
(iv) अन्तर्मुखी व्यक्तित्व
(v) शर्मीलापन इत्यादि।

प्रजातांत्रिक अनुशासन (Democratic) के अन्तर्गत बालक में प्रसन्नता, सहयोग की भावना, विश्वास तथा आत्म-विश्वास आदि विशेषताएं देखने को मिलती हैं।

इसी प्रकार संवेगात्मक वातावरण (Emotional Environment) भी कक्षा में वातावरण को नियंत्रित करता है तथा उसे पढ़ाई या सीखने योग्य बनाता है। ऐसी कक्षाओं में प्रसन्नता, सहयोग की भावना के साथ-साथ बच्चा कक्षा के नियमों को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता है तथा उन पर अमल करता है। इसके अतिरिक्त वह पढ़ने के लिए अधिक अभिप्रेरित भी होता है। इसके विपरीत, अस्वस्थ संवेगात्मक वातावरण विद्यार्थियों में तनाव की उत्पत्ति करता है तथा उन्हें झगड़ालू एवं चिढ़चिढ़ा भी बना देता है। ऐसे बालक पढ़ाई के लिए प्रेरित नहीं होते।

अध्यापक बालक के बीच अच्छे संबंधों की आवश्यकता
(Need of Good Relationship Between Teacher and Child)

(i) अध्यापकों की सिफारिश के परिणामस्वरूप बच्चे के बड़ा होने पर उसे स्कूल या कॉलेज में नौकरी मिल सकती है।
(ii) विज्ञान अध्यापक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बारे में सूचनाएं उपलब्ध करवाकर बच्चों की सहायता कर सकता है।
(iii) समुदाय में रहते हुए अध्यापक समुदाय में हो रही गतिविधियों या प्रतियोगिताओं के बारे में विद्यार्थियों को ठीक प्रकार से सूचित कर सकता है।
(iv) भविष्य में अध्यापक बच्चों के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

(v) विभिन्न अनुदानों (Grants), छात्रवृत्तियों के बारे में विद्यार्थियों को सूचित करके उनकी सहायता कर सकता है।

(vi) विशेष सामुदायिक कार्यक्रमों के लिए स्वयंसेवकों के लिए विद्यार्थियों के नामों की सिफारिश कर सकता है।

विद्यार्थियों के लिए सावधानियां
(Precautions for Students)

अध्यापकों के साथ अच्छे संबंध बनाने के लिए विद्यार्थियों को निम्न बातों से बचना चाहिए–

1. विश्वसनीयता न खोना–बच्चे को अध्यापक के प्रति अपनी विश्वसनीयता नहीं खोनी चाहिए। जब कोई विद्यार्थी विशेष पक्षपात के लिए प्रेरित होता है तो अध्यापक इस बात को समझ जाता है। अतः विद्यार्थी को अपनी विश्वसनीयता नहीं खोनी चाहिए।

2. अध्यापक को विशेष बनने का प्रयास नहीं (Don't Try to be Teacher's Pet)–बालक को चाहिए कि वह अध्यापक का 'विशेष' (Pet) बनने का प्रयास न करे, वरन् उसके अन्य साथी उससे नाराज होंगे।

3. कीमती उपहार न दें (No Costly Gifts)–अध्यापक को खुश करने के लिए या उनकी सेवाओं को पहचान देने के लिए कोई स्मृति-चिह्न तो दिया जा सकता है, लेकिन उन्हें कोई कीमती उपहार देने से बचना चाहिए।

संबंध कैसे विकसित किए जाएं (How to Develop Student-Teacher Relationship?)–जो अध्यापक हमें बिल्कुल नहीं जानते या जिन्हें हम पसंद नहीं करते उनसे विद्यार्थी कैसे संबंध स्थापित करें? इसके लिए कुछ आवश्यक बातें निम्न सुझाई गई हैं–

(i) विद्यार्थी अध्यापक के विषय में रुचि का प्रदर्शन करे। अध्यापक को यह दिखाएं कि आप उसके विषय पर विशेष ध्यान दे रहे हैं।

(ii) आप अध्यापक के सम्मुख एक समर्पित विद्यार्थी (Dedicated) वाला व्यवहार करें।

(iii) आप अध्यापकों से प्रश्न पूछें तथा उन्हें सम्मान दें।

(iv) कक्षा में समय पर उपस्थित हों तथा गृह-कार्य पूरा करके दिखाएं।

(v) अध्यापक के खाली पीरियड में एक कॉन्फ्रेंस का आयोजन भी आप कर सकते हैं।

◆◆◆

3. अध्यापक-विद्यार्थी की सामान्य समस्या क्या होती है? इस बारे में अध्यापक के उत्तरदायित्वों की चर्चा करें।
(What are the common teacher-student problems? Describe the teacher's responsibilities in this regard.)

उत्तर–स्कूल में अध्यापक विद्यार्थी में संबंधों के साथ-साथ उनमें समस्याओं का होना भी निश्चित है। यदि उनमें ऐसी कोई समस्या है तो यह पता लगाया जाना चाहिए कि वह समस्या क्यों है? इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम निम्नलिखित क्रियाएं सम्पन्न कर सकते हैं–

1. कई बार व्यक्तित्व की समस्या विद्यार्थी को धीमा बना देती है। यह बात अध्यापक के लिए भी उतनी ही सत्य है। जैसे–नौकरी का तनाव, पारिवारिक मामले, स्वास्थ्य समस्याएं। ये सभी कारक आम से लगते हैं लेकिन अध्यापन के निष्पादन (Performance) को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं। प्रभावित अध्यापकों का चिढ़चिढ़ा हो जाना स्वाभाविक है।

Scanned with OKEN Scanner

2. कई बार अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के प्रति आवश्यकताओं से अधिक अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है जिसे रिकॉर्ड में दर्ज किया जाता है। जब बच्चा किसी दूसरे स्कूल में जाता है तब उसका यही रिकॉर्ड वहां पर भी देखा जाएगा। तब सारी बातें उस नए स्कूल के अध्यापकों के सामने भी आ जाएंगी।
3. कई बार ऐसा होता है कि कई बार विद्यार्थी किसी अध्यापक को ही पसंद नहीं करता। तब ऐसी स्थिति में क्या किया जाता है? ऐसे लोगों के साथ कार्य करने की योग्यता सिद्ध करनी पड़ती है जो कि एक उत्तम कौशल माना जाता है।
4. कई बार कक्षा में विद्यार्थी किसी विषय में कठिनाई महसूस करता है तब विद्यार्थी को चाहिए कि वह अध्यापक के साथ बात करे ताकि वह उसे अतिरिक्त समय की व्यवस्था कर सके। कई बार विद्यार्थी यह भी चाहता है कि उसे वह विषय अलग से पढ़ाया जाए या अलग तरीके से पढ़ाया जाए।
5. यदि कोई पढ़ाया जाने वाला विषय आपको पसंद नहीं है तो इसका प्रभाव विद्यार्थी-अध्यापक संबंध पर भी पड़ सकता है। अतः विषय में रुचि का प्रदर्शन करना आवश्यक है।
6. किसी भी संबंध के विकास के लिए तथा उसे बनाए रखने के लिए सम्मान और शिष्टाचार एक मूल आवश्यकता होती है। जिस प्रकार अध्यापक की सभी से उत्तम व्यवहार की अपेक्षा होती है उसी प्रकार विद्यार्थियों के भी कुछ उत्तरदायित्व होते हैं। यह आवश्यक नहीं होता कि आप अध्यापक से हमेशा सहमत ही हों, लेकिन यह आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण होता है कि आप अध्यापक के प्रति कितनी विनम्रता का प्रदर्शन करते हैं। स्कूल से बाहर रहने की सूचना आप अपने अध्यापक को अवश्य दें तथा इस दौरान छूटा हुआ कार्य अवश्य पूरा करें। यह आपका कर्तव्य बनता है। विद्यार्थी को यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि अध्यापक उसके छूटे हुए कार्य को पूरा करेगा।

अध्यापक का उत्तरदायित्व (Teacher's Responsibility)–विद्यार्थियों के संदर्भ में आते ही अध्यापक के कुछ कर्तव्य निश्चित हो जाते हैं। विद्यार्थी अध्यापकों पर अत्यधिक भरोसा करते हैं, इसलिए ये कर्तव्य और भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। अध्यापक के निम्न कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व सामने आते हैं–

(i) अध्यापक विद्यार्थी-अध्यापक संबंध में एकता की भावना (Sense of Integrity) रखें।
(ii) अध्यापक अपनी सीमाएं या स्टैन्डर्ड निश्चित करें।
(iii) अध्यापक को बच्चों का उत्साहवर्धन करते रहना चाहिए क्योंकि उत्साहवर्धन करने वाले और व्यापक व्याख्या करने वाले अध्यापक का बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बहुत सख्त और दोष ढूंढ़ने वाले अध्यापकों का अपेक्षाकृत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
(iv) अध्यापक अपने व्यवहार द्वारा सकारात्मक गुणों का प्रदर्शन करें जो कि बच्चों के बाद के जीवन को बहुत प्रभावित करते हैं। अध्यापक को 'रोल मॉडल' (Role Model) के रूप में सभी बच्चे देखते हैं।
(v) अध्यापक द्वारा प्रयुक्त सम्प्रेषण और अभिव्यक्ति के तरीके भी बच्चों को प्रभावित करते हैं, जैसे–आवाज की तीव्रता या टोन (Tone), चेहरे के हाव-भाव इत्यादि। बच्चे इन चीजों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं।
(vi) मूलरूप से अध्यापक विद्यार्थी संबंध विश्वास, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन का संबंध होता है। ऐसे संबंध एक बार बन जाने पर कई वर्षों तक निरंतर प्रभावित करते रहते हैं।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

अध्यापक अपेक्षाएं तथा स्कूल उपलब्धि
(Teacher's Expectations and School Achievement)

4. अध्यापक-अपेक्षाओं से आप क्या समझते हैं? अध्यापक अपेक्षाओं और स्कूल उपलब्धियों में क्या संबंध है?
(What do you mean by teacher's expectations? How teacher's expectations are related to school achievements?)

उत्तर–सभी स्कूल विद्यार्थियों से कुछ अपेक्षाएं अवश्य रखते हैं। कुछ स्कूलों में तो अध्यापक और स्कूल सभी विद्यार्थियों से समान रूप से उच्च अपेक्षाएं बनाए रखते हैं या विद्यार्थियों के कुछ हिस्से से तो महान अपेक्षाएं रखी जाती हैं और विद्यार्थियों के कुछ खण्डों से निम्नतम अपेक्षाएं रखते हैं। इसी प्रकार शहर के बाहरी और भीतरी भागों के स्कूलों से भी भिन्न-भिन्न अपेक्षाएं रखते हैं।

ऐसे प्रमाण सामने आए हैं कि विद्यार्थियों से उच्च अपेक्षाओं के कारण उनके अधिगम में सुधार किया जा सकता है। अतः विद्यार्थियों की उच्च आकांक्षाओं के माध्यम से उनके अधिगम में सुधार किया जा सकता है। इस संबंध में निम्न बातों की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए–

1. विद्यार्थियों के प्रति अध्यापकों के विश्वासों को विशेष व्यवहार में बदलना (Translating Teacher's Beliefs into Differential Behaviours Towards Students)–एक अध्यापक के मन में अपने विद्यार्थियों के बारे में जो भी धारणाएं व विश्वास उत्पन्न होते हैं, अध्यापक विद्यार्थियों के प्रति अपना व्यवहार उन पर आधारित करके चेतन या अचेतन रूप में प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ–जब अध्यापक कभी भी अपने विद्यार्थी के साथ अशाब्दिक व्यवहार कर रहा होता है जैसे किसी की तरफ झुकना, मुस्कराना, विद्यार्थियों के साथ आंखों से सम्पर्क करना आदि। ऐसी स्थिति में अध्यापक यह सोचने लगता है कि वह उच्च योग्यता वाले विद्यार्थियों के साथ ऐसा व्यवहार कर रहा है। निम्न योग्यता वाले छात्रों को भी सीखने के कुछ अवसर दिए जाते हैं। उन्हें सीखने के लिए कुछ नई सामग्री प्रदान की जाती है, कुछ आसान प्रश्न भी पूछे जाते हैं, उनकी सफलता की कम प्रशंसा की जाती है तथा सम्बोधित भी कम ही किया जाता है।

2. विद्यार्थियों से अपेक्षाओं के बारे में विद्यार्थियों के विचार (Views of Students Regarding Expectations from them)–आमतौर पर अध्यापक जिन विद्यार्थियों से बहुत उम्मीदें लगाते हैं, वे विद्यार्थी उन अध्यापकों का बहुत सम्मान करते हैं। यदि विद्यार्थियों से अधिक अपेक्षाएं रखी जाएंगी तो वे विद्यार्थी अधिक परिश्रम करेंगे। यह बात विद्यार्थियों ने एक सर्वेक्षण के दौरान कही। अधिकतर विद्यार्थियों की यह इच्छा होती है कि अध्यापक उनकी क्रियाओं पर या समस्त कार्य-प्रणाली पर निकट से आकर नजर रखें। स्कूल के बाद भी उनकी कक्षाएं लगाई जाएं–ऐसी मांग उन्होंने की। कुछ विद्यार्थी चाहते हैं कि उन्हें नैतिक मूल्यों की शिक्षा भी दी जाए।

3. उच्च अपेक्षाएं बनाए रखने हेतु अध्यापक के प्रयास (Teachers Efforts to Maintain High Expectation from Students)–अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि अध्यापकों की विद्यार्थियों से जो अपेक्षाएं (Expectations) होती हैं वे स्वपूर्ण (Self-Fulfilling) होती रहती हैं। इसके लिए अध्यापकों के अपने दृष्टिकोण (Attitudes), विश्वासों (Beliefs), अपेक्षाएं इत्यादि विद्यार्थियों के सम्मुख समय-समय पर प्रकट करते रहें ताकि विद्यार्थी अपने अध्यापकों को भली-भांति समझ सकें। विद्यार्थियों से अध्यापक जो अपेक्षाएं रखते हैं वे उनकी अधिगम गति (Learning Rate) के साथ बराबरी नहीं कर सकती। विद्यार्थियों को उनसे अपेक्षाओं के अनुसार सहायता प्रदान करने के लिए तीन कारकों को ध्यान में रखना अनिवार्य होता है–समय, सामूहीकरण (Grouping) तथा विधि (Methodology)। अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों से अपेक्षाएं रखने में अध्यापकों का सेवाकालीन और पूर्व सेवाकालीन प्रशिक्षण भी उन्हें संवेदनशील बनाने में अपनी भूमिका निभाता है। विद्यार्थियों से उच्च अपेक्षाएं रखने का अर्थ है–विद्यार्थियों को उच्च इच्छाएं रखने के लिए प्रोत्साहित करना।

Scanned with OKEN Scanner

4. विद्यार्थियों से अपेक्षाओं को प्रभावित करने वाले अन्य कारक (Other Factors which Influence Expectations from Students)–शैक्षिक सफलता के लिए छुपी हुई योग्यता या जन्मजात योग्यता को उत्तरदायी माना जाता है। इसमें अनुदेशन की गुणवत्ता (Quality of Instruction), प्रयास (Trials or Efforts) तथा अनुदेशन की मात्रा या माता-पिता की सहभागिता (Parental Involvements) इत्यादि सब कुछ गौण (Secondary) हैं या उन्हें अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता।

यदि स्कूल में विद्यार्थी की उपलब्धि खराब है तब इसके लिए उसकी निम्न योग्यता उत्तरदायी है। विद्यार्थी में यह विश्वास बन जाता है कि वे चाहे जितनी भी मेहनत कर लें, उनकी उपलब्धि में वृद्धि या सुधार नहीं होगा।

कुछ ऐसी भी संस्कृतियां हैं जहां पर कड़ी मेहनत और प्रयासों को विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि की कुंजी (Key) माना जाता है।

5. विद्यार्थियों के निष्पादन पर अध्यापक-अपेक्षाओं का प्रभाव (Effect of Teachers Expectations on Students Performance)–क्या अध्यापक के द्वारा रखी जाने वाली अपेक्षाएं विद्यार्थियों के निष्पादन (Performance) को प्रभावित करती हैं? हां, ऐसा होता है। अध्यापक जो भी अपेक्षाएं विद्यार्थियों से करते हैं उनका प्रभाव विद्यार्थियों की उपलब्धियों तथा निष्पादन पर अत्यधिक पड़ता है। लेकिन जब विद्यार्थियों में अभिप्रेरण और योग्यताओं का अभाव दिखता है तब उनसे हमें अधिक प्रगति की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि विद्यार्थियों से अपेक्षाएं रखना अध्यापक का उत्तरदायित्व भी बन जाता है। यदि ये अपेक्षाएं विद्यार्थी को बता दी जाएं तो वे विद्यार्थी उन्हें पूरा करने या उन्हें बनाए रखने के लिए और अधिक परिश्रम करेंगे।

◆◆◆

बच्चों तथा किशोरों की आवश्यकताओं तथा व्यावहारिक समस्याओं की समझ (Understanding needs and Behavioural problems of children and adolescents)

साथियों से संबंध [Relationship with Peers]

(A) मित्रता और यौन (Friendship and Gender)

1. साथियों के साथ संबंध से क्या अभिप्राय है? इन संबंधों पर मित्रता और यौन या लिंग का क्या प्रभाव पड़ता है?
(What do you mean by relationship with peers? How friendship and gender affect such relationship?)

उत्तर–जब बालक एक ही आयु के हों और उनका परिपक्वता का स्तर भी एक समान हो तो वे बालक 'साथी' (Peers) कहलाते हैं। इन साथी बालकों के साथ संबंधों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। इन संबंधों पर ध्यान देना अति आवश्यक है। विशेषकर अध्यापक के लिए क्योंकि ये संबंध दोनों प्रकार से

Scanned with OKEN Scanner

प्रभावित कर सकते हैं—अर्थात् इनके अच्छे और बुरे प्रभाव हो सकते हैं। ये प्रभाव विभिन्न पक्षों को प्रभावित करते हैं। ये पक्ष हैं—साथियों में मित्रता और यौन (Friendship and Gender), प्रतिस्पर्धा और सहयोग (Competition and cooperation), प्रतिस्पर्धा और द्वंद्व (Competition and Conflict), आक्रामकता और क्रूरता (Aggression and Bullying from early Childhood to Adolescence) आदि। बालक के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए इन पक्षों पर विचार करना अति आवश्यक होता है। अतः इनका एक-एक करके अध्ययन किया जाएगा।

मित्रता और यौन का प्रभाव
(Friendship and Gender Effects)

बाल्यकाल से लेकर परिपक्वता की प्रक्रिया के दौरान बच्चे के मित्रों की संख्या तथा मित्रों की दृढ़ता में विभिन्न परिवर्तन होते रहते हैं। प्रारंभिक दिनों में तो बच्चा केवल खेलता है और इसी खेलने की प्रक्रिया में वह अपने भाई-बहनों को भी अपना मित्र बनाकर संतुष्ट हो जाता है। परंतु 5-6 वर्ष की आयु तक पहुंचने पर वह बच्चे पड़ोसी बच्चों के साथ अन्तर्क्रिया करता है और उन्हें अपना मित्र समझने लगता है। इस दृष्टि से 7-8 वर्ष की आयु में उसके मित्रों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। मित्रों की इस संख्या में पड़ोस के बच्चे तथा स्कूल में और कक्षा में साथ पढ़ने वाले बच्चे शामिल होते हैं। इस आयु वर्ग की मित्रता अधिक घनिष्ठ नहीं होती।

उत्तर-बाल्यकाल (Late Childhood) के दौरान बच्चों की इस मित्र मंडली का स्वरूप कुछ बदल जाता है। यह उचित प्रकार से संगठित होना शुरू हो जाती है। बच्चे इसी मित्र-मंडली में अपना अधिक समय व्यतीत करते हैं।

इस अवस्था के दौरान मित्र मंडली के सदस्य एक यौन (Gender) के होते हैं अर्थात् लड़के लड़कों से मित्रता करते हैं और लड़कियां लड़कियों से ही मित्रता करती हैं।

किशोरावस्था में यह घनिष्ठता अपनी चरमसीमा तक पहुंच जाती है। संबंधों की इस घनिष्ठता में धर्म, जाति, रंग-रूप, सामाजिक-आर्थिक स्तर आदि कोई हस्तक्षेप नहीं करता। इस स्तर पर भी इनकी मित्रता कई स्तरों की हो सकती है।

मित्रों के गुट को 'क्लिक' (Clique) कहा जाता है। इन गुटों को बनाने में 3-4 लोग ही शामिल होते हैं अर्थात् 3-4 व्यक्तियों का एक 'क्लिक' बनता है।

समान रुचि रखने वाले मित्र एक 'गिरोह' बनाते हैं, जिसे 'गैंग' (Gang) का नाम दिया जाता है।

किशोर बालक (Adolescents) विपरीत यौन (Opposite Gender or Sex) के सदस्यों के साथ मैत्री करने की इच्छा रखते हैं।

मित्रता कई तत्त्वों पर निर्भर करती है, जैसे—

(i) स्वभाव (Temperament)
(ii) सहानुभूति की क्षमता
(iii) अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी होना।
(iv) रुचियों की समानता।
(v) सामाजिक-आर्थिक स्तरों की समानता।
(vi) समायोजन की क्षमता।
(vii) यौन की समानता।
(viii) बुद्धि की समानता इत्यादि।

बाल्यकाल से जैसे-जैसे बच्चा किशोरावस्था और फिर प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ता है, वह परिवार से बाहर के लोगों द्वारा अधिक प्रभावित होता है। बालक पर उसके साथियों (Peers) का प्रभाव अधिक पड़ता है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

(B) प्रतिस्पर्धा और सहयोग
(Competition and Co-operation)

2. प्रतिस्पर्धा से क्या अभिप्राय है? व्याख्या करें।
(Explain the meaning of competition.)

उत्तर–प्रतिस्पर्धा का अर्थ (Meaning of Competition)–प्रतिस्पर्धा एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिससे बालक के समस्त सामाजिक विकास को गति (Speed) मिलती है। इस प्रक्रिया का आधार आत्म-अभिव्यक्ति (Self Assertion) होती है। हर व्यक्ति स्वयं को अपने ही तरीके से अभिव्यक्त करना चाहता है। उसकी अपनी भावनाएं, अपने विचार, अपना चिंतन होता है, जिसे वह दूसरों के सम्मुख अभिव्यक्त करने की इच्छा करता है। इसी अभिव्यक्ति की तुलनात्मक जांच को 'प्रतिस्पर्धा' शब्द द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया में निम्न भावनाएं उत्पन्न होती हैं–

(i) बच्चों में प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास जन्म से तीन वर्ष के बाद होता है और यह प्रतिस्पर्धा की भावना बालक के आत्म-सम्मान या आत्म-पहचान (Self Assertion or Self Identification) के विकसित होने के बाद उत्पन्न होनी शुरू हो जाती है।

(ii) प्रतिस्पर्धा (Competition) की भावना से ही बच्चों में विभिन्न प्रेरणाएं उत्पन्न होती हैं। जैसे–खेलने, दौड़ने, लिखने, कपड़ा पहनने आदि की प्रेरणाएं। यदि बच्चे में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न ही न हो तो वह भी तुलनात्मक दृष्टिकोण से वंचित रह जाएगा।

(iii) इस प्रकार की प्रतिस्पर्धाओं से बच्चों में ईर्ष्या भी उत्पन्न होने की संभावनाएं रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप उसमें आक्रामक प्रवृत्तियां सिर उठाने लगती हैं।

(iv) प्रतिस्पर्धा का सकारात्मक प्रभाव यह देखने को मिलता है कि आत्म-सम्मान की प्राप्ति के साथ-साथ बालक के सामाजिक विकास को भी गति मिलती है अर्थात् सामाजिक रूप से बालक बड़ी तेजी से विकसित होने लगता है।

(v) प्रतिस्पर्धाओं का नकारात्मक प्रभाव यह भी देखने को मिलता है कि विभिन्न प्रतिस्पर्धाओं में बार-बार की असफलता के कारण बालक असामाजिक विकास का शिकार हो सकता है अर्थात् बालकों में असामान्य व्यवहारों के विकसित होने की पूरी संभावनाएं दिखाई देने लगती हैं।

(vi) बालक जो जो कार्य करते हैं उनके पीछे बालक में आत्म-सम्मान की भावनाएं छुपी होती हैं अर्थात् बालक उस कार्य को करने के लिए आत्म-सम्मान की इच्छा रखते हैं। इसी आत्म-सम्मान को बनाए रखने के लिए वह प्रतिस्पर्धाओं का सहारा लेते हैं।

(vii) घर पर बालक अपनी हर चीज की तुलना अपने अन्य भाई-बहनों की चीजों से करता रहता है, जैसे–वह अपने खिलौनों व अन्य चीजों की तुलना अपने दूसरे भाई-बहन के खिलौने से करते हैं। कि किस के खिलौने उत्तम हैं। कई बार वह यह महसूस करता है कि उसकी सभी चीजें उसके भाई-बहनों की चीजों से ज्यादा सुंदर नहीं है। यह बात उसके मन में ईर्ष्या पैदा करती है।

प्रतिस्पर्धा की भावना से ओत-प्रोत होना कोई बुरी बात नहीं है। इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभाव हो सकते हैं। यदि सकारात्मक रूप से प्रतिस्पर्धा को देखें तो बालक सफलता के लिए प्रयास करता है। यह सफलता दूसरों को असफल करके ही प्राप्त होती है। प्रतिस्पर्धाकर्ता अपने प्रतिद्वंद्वियों के लिए विभिन्न प्रकार की बाधाएं उत्पन्न करके अपने वांछित उद्देश्य प्राप्त करता है। अतः प्रतिस्पर्धाएं स्वस्थ, सार्थक और सकारात्मक होनी चाहिए।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner

3. 'सहयोग' से आप क्या समझते हैं ? सहयोग के प्रकार और कारणों पर प्रकाश डालें।
(What do you understand by cooperation? Throw light on the types and causes of Co-operation.)

उत्तर– सहयोग से अभिप्राय (Meaning of Co-operation)–समाजपक्षी व्यवहार (Prosocial Behaviour) का एक दुर्बल स्वरूप होता है, जिसे सहयोग (Co-operation) कहते हैं। इस दुर्बल स्वरूप या सहयोग में स्व-लाभ (Self gain) के तत्त्व मौजूद होते हैं। समाज में अनेक सम्बन्धों के निर्धारण के लिए कोई न कोई आधार चाहिए। सहयोग उस आधार की भूमिका निभाता है। सहयोग के प्रक्रम (Process) में जो सहभागी होते हैं, वे सभी लाभ उठाते हैं तथा वांछनीय (Desirable) लक्ष्यों को अर्जित करने का प्रयास करते हैं।

ग्रीन (A.W. Green) ने सहयोग को इस प्रकार से परिभाषित किया है– 'सहयोग दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा समान रूप से चाही गई या किसी कार्य को करने या किसी लक्ष्य तक पहुंचने का सांझा और निरन्तर प्रयास है।'

(Co-operation is the continous and common endeavour of two or more persons to perform a task or to reach a goal that is commonly cherished. –A.W. Green)

आकोलकर (Akolkar, 1960) के अनुसार, **"सहयोगी व्यवहार का सार यह है कि सम्बन्धित व्यक्तियों या समूहों का एक सामान्य लक्ष्य होता है तथा वे अपने व्यवहार को एक-दूसरे के साथ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं कि लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।**

उपर्युक्त परिभाषाओं से 'सहयोग' की प्रक्रिया के बारे में निम्नलिखित तथ्य उतर कर सामने आते हैं–

(i) सहयोग एक सामाजिक प्रक्रिया है।

(ii) सहयोग में दो या अधिक व्यक्ति या समूह संगठित होते हैं।

(iii) फिर वे संगठित होकर समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्य करते हैं या प्रयत्न करते हैं।

(iv) ऐसा देखा गया है कि सहयोग करने वाले व्यक्ति या समूह अधिकतर लक्ष्य की प्राप्ति तक ही प्रयास करते हैं।

(v) व्यक्तियों और समूहों के मध्य सहयोग के दौरान सम्बन्ध अच्छे या मधुर होते हैं।

(vi) ये सम्बन्ध स्थायी भी हो सकते हैं।

(vii) यही सहयोग सामाजिक जीवन को जन्म देता है।

(viii) यही सहयोग के परिणामस्वरूप व्यक्तियों और समूहों को संतोष या संतुष्टि की प्राप्ति होती है।

(ix) सहयोग के परिणामस्वरूप ही जटिल से जटिल कार्य सरल हो जाते हैं।

सहयोग के प्रकार (Types of Co-operation)–सहयोग का वर्गीकरण विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है–

(A) ग्रीन का वर्गीकरण (Green's Classification)

(B) मैकाइवर व पेज का वर्गीकरण (MacIver and Page's classification)

(C) आगबर्न का वर्गीकरण (Ogburn's Classification)

(A) ग्रीन का वर्गीकरण (Green's Classification)–ग्रीन (1956) के अनुसार सहयोग को निम्नलिखित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

a_1 प्राथमिक सहयोग (Primary Co-operation)

a_2 द्वितियक सहयोग (Secondary Co-operation)

a_3 तृतीयक या तृतीय सहयोग (Tertiary Co-operation)

Scanned with OKEN Scanner

a1 प्राथमिक सहयोग (Primary Co-operation)–इस प्रकार के सहयोग में दो या अधिक व्यक्ति समूह के लोग समूह के उद्देश्य को ही अपना उद्देश्य मान लेते हैं। इस दृष्टि से समूह के लोगों और उसके उद्देश्य में घनिष्ठ और सहज सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उदाहरण- परिवार। इसके सहयोग से घनिष्ठता का विकास होता है। आम शब्दों में 'अपनापन' अभिव्यक्त होता है। माँ-बेटा, पति-पत्नी का सम्बन्ध ऐसे और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

a2 द्वितीयक या गौण सहयोग (Secondary Co-operation)–इस प्रकार के सहयोग में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इस कारण से प्रयास करते हैं कि उनके अपने स्वार्थों (Self Interest) की पूर्ति हो। उदाहरण -एक कर्मचारी अपने अफसर से सहयोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए करता है, जैसे वेतन का मिलना, पदोन्नति पाना इत्यादि।

a3 तृतीयक या तृतीय सहयोग Tertiary Co-operation)–यह वह सहयोग होता है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति या समूह एक-दूसरे के साथ मिलकर समाज की सहायता करते हैं तथा समाज की बदली हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूलन का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणार्थ- युद्ध के दौरान विभिन्न राजनैतिक द्वारा सरकार को सहयोग देना इसी वर्ग का एक स्पष्ट उदाहरण है।

(B) मैकआईवर व पेज का वर्गीकरण (MacIver & Page's classification)–इस वर्गीकरण के अनुसार सहयोग को निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है–

b_1 प्रत्यक्ष सहयोग (Direct Co-operation)

b_2 अप्रत्यक्ष सहयोग (Indirect Co-operation)

b1 प्रत्यक्ष सहयोग (Direct Co-operation)–इस प्रकार के सहयोग में दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर या एक जनसमूह के लोग एक जैसा व्यवहार करते हैं। उदाहरण- किसी एक टीम के सदस्य अपनी प्रतिद्वंद्वी टीम को हराने का प्रयास करते हैं।

b2 अप्रत्यक्ष सहयोग (Indirect Co-operation)–अप्रत्यक्ष सहयोग प्रक्रम में दो या दो से अधिक व्यक्ति या एक समूह के लोग अलग-अलग कार्य करते हुए एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करते रहते हैं। जैसे, किसी फैक्टरी में सभी कर्मचारी अपना कार्य करते हुए भी एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करते रहते हैं। यदि उन्हें एक-दूसरे का सहयोग नहीं मिलता तो फैक्ट्री का उत्पादन सम्भव ही नहीं हो सकता।

C. ऑगबर्न का वर्गीकरण (Ogburn's Classification)–इस वर्गीकरण के अन्तर्गत निम्नलिखित श्रेणियां आती हैं–

C_1 सामान्य श्रम (Common Labour)

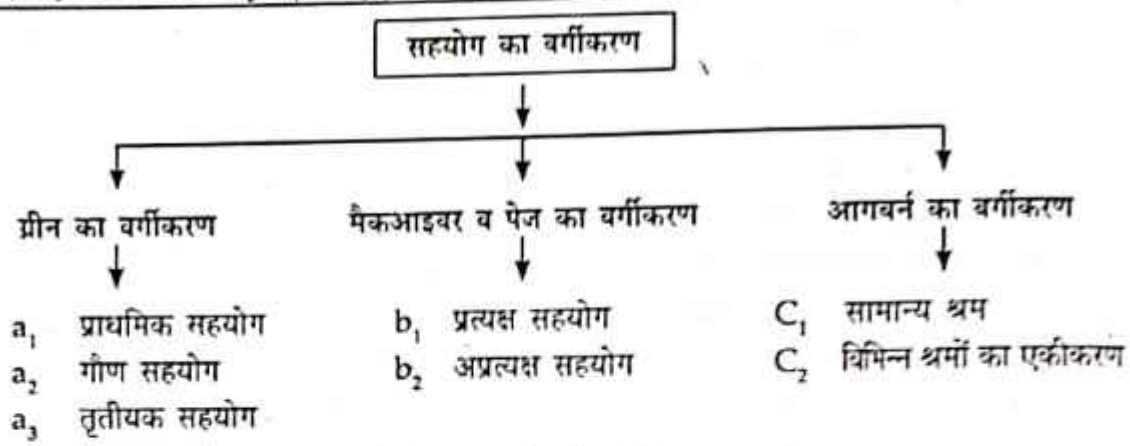
C_2 विभिन्न श्रमों का एकीकरण (Integration of Different Labours)

C1 सामान्य श्रम (Common Labour)–जब सभी व्यक्ति आपस में मिलकर एक-दूसरे में किसी समूह के सदस्य एक-दूसरे की सहायता करते हैं तो इस सामान्य श्रम (Common Labour) का नाम दिया जाता है। इसमें भी दो स्वरूप होते हैं-

(i) मित्रवत् श्रम या सहयोग (Companionable Labour or Co-operation) :- यह वह सहयोग होता है जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सहायता करते हुए आनन्द की अनुभूति करता है। ऐसे सहयोग को मित्रवत् श्रम या सहयोग का नाम दिया जाता है। उदाहरण- किसी प्रयोगशाला में विद्यार्थियों का एक-दूसरे को सहायता प्रदान करना इसी प्रकार की उदाहरण है।

(ii) पूरक श्रम या सहयोग (Supplementary Labour or Co-operation) :- यह वह सहयोग होता है जिसमें दूसरे व्यक्ति की सहायता के बिना कोई भी कार्य आसानी से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के सहयोग को अर्थात् जो सहयोग एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को देता है और उसके कार्य को आसान कर देता है तो ऐसे सहयोग को पूरक श्रम या सहयोग (Supplementary Labour or Co-operation) का नाम दिया जाता है।

Scanned with OKEN Scanner



चित्र : सहयोग के प्रकार

सहयोग के कारण या कारक
(Causes or factors of Co-operation)

सहयोग की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले अनेक कारण या कारक होते हैं, जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है–

(i) आवश्यकताओं की पूर्ति (Fullfilment of Needs) :- कोई भी व्यक्ति या समूह स्वयं में पूर्ण नहीं होता। हर किसी को अपनी आवश्यकताएं पूरी करने हेतु कोई न कोई साधन चाहिए। समय समय पर उन्हें किसी न किसी का सहयोग या सहायता की आवश्यकता रहती है।

(2) पारस्परिकता (Reciprocity) :- पारस्परिकता की भावना भी सहयोग की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सहायता या सहयोग करता है तो वह भी सहायता करने वाले व्यक्ति का बदले में सहयोग करेगा। पारस्परिकता 'लेना' और 'देना' (Give and take) की नीति का ही दूसरा नाम है।

(3) स्वार्थ की पूर्ति (Fullfilment of Selfishness) :- स्वार्थ की पूर्ति के लिए एक व्यक्ति या समूह दूसरे व्यक्ति या समूह को सहयोग करते हैं। समाज में उच्च स्थान प्राप्त करना ही व्यक्ति का मुख्य उद्देश्य बन कर रह गया है। समाज के सदस्य दिन प्रतिदिन स्वार्थी होते जा रहे हैं। कई बार स्वार्थों की पूर्ति के लिए व्यक्तियों को गलत तरीकों का अनुकरण भी करना पड़ता है। उदाहरणार्थ- व्यक्ति गलत तरीकों से धन कमा कर समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाने में रुचि रखता है।

(4) समूह का आकार (Size of the group) :- समूह का आकार सहयोग को प्रभावित करता है। जैसे-जैसे समूह बड़ा होता जायेगा सहयोग का स्वरूप भी परिवर्तित होता चला जायेगा। समूह के अधिकार और सहयोग में ऋणात्मक सम्बन्ध (Negative Correlation) पाया गया है।

(5) व्यक्तिगत उन्मुखता (Personal Orientation) :- शोधकार्य कार्य से यह भी स्पष्ट हुआ है कि कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही सहयोग उन्मुखी (Co-opration oriente) होते हैं। वे अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक सहयोग करना पसंद करते हैं।

(6) लिंग (Gender) :- नाईट और डयूबरो (Knight and Dubro 1984) ने अपने शोध द्वारा यह स्पष्ट किया है कि पुरुषों की अपेक्षा औरतों में सहयोग की भावना अधिक होती है और वे अधिक सहयोग करती हैं।

(7) पूर्व अनुभव (Past Experiences) :- भूतकाल में सहयोग के अच्छे परिणाम प्राप्त करने पर वर्तमान में आवश्यकता पड़ने पर सहयोग वाला व्यवहार प्रदर्शित करता है। लेकिन यदि भूतकाल में अनुभव कड़वे रहे हों तो वह वर्तमान में सहयोग लेने या देने से कतरायेगा।

(8) असामान्यता (Abnormality) :- कई बार असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करने पर भी सहयोग करने वाला व्यक्ति अपना हाथ खींच लेता है। कई बार तो वे सहयोग करना ही छोड़ देते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(9) उन्नति और सफलता (Progress and Success) :- हर व्यक्ति या समूह अपने अपने क्षेत्र में उन्नति और सफलता की इच्छा रखते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए वे दूसरों का सहयोग प्राप्त करते हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते तो कई बार वे इस उद्देश्य को अर्जित नहीं कर पाते।

(10) सामाजिक दबाव (Social Pressure) :- कई बार कई परिस्थितियों में सामाजिक दबाव के कारण सहयोग करना पड़ता है जबकि व्यक्ति में सहयोग करने की कोई तनिक भी इच्छा नहीं होती।

(11) संस्कृति (Culture) :- कई शोध कार्यों ने संस्कृति और सहयोग के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। कुछ संस्कृतियों में प्रतिस्पर्धा (Competition) को प्रोत्साहित भी किया जाता है जबकि कुछ संस्कृतियों में ऐसा नहीं किया जाता।

(12) संचार या सम्प्रेषण (Communication) :- संचार और सहयोग में भी घनिष्ठ सम्बन्ध पाया गया है। उपयुक्त सहयोग के लिए संचार का होना अति आवश्यक है। संचार जितना अधिक होगा सहयोग को भी उतना ही अधिक बढ़ावा मिलेगा। इसी प्रकार संचार या सम्प्रेषण जितना कम होता जायेगा, सहयोगात्मक व्यवहार में उतनी ही कमी आती चली जायेगी। एक अध्ययन में यह पाया गया है कि संचार रहित समूहों में संचार सहित समूहों की अपेक्षा कम सहयोगात्मक प्रवृत्ति होती है तथा संचार सहित समूहों में संचार रति समूहों की अपेक्षा सहयोगात्मक प्रवृत्ति अधिक होती है।

(13) धमकियाँ (Threats) :- कई बार धमकियों की भूमिका भी सहयोग प्रक्रम में महत्त्वपूर्ण होती है। धमकियों के बल पर व्यक्ति सहयोग के प्रति ईमानदार नहीं होते। अर्थात् धमकी देकर सहयोग प्राप्ति की आशा करना गलत होना। हां, यदि दोनों पक्ष धमकियों के परिणामस्वरूप एक-दूसरे को सहयोग देने लगते हैं तो धीरे-धीरे यह सहयोग वास्तविकता सहयोग की शक्ल से सकता है और नहीं भी। सामान्यतः यह वास्तविक सहयोग की स्वरूप नहीं ले पाता।

(14) परिचितता (Familiarity) :- परिचितता का अंश भी सहयोग को प्रभावित करता है। आमतौर पर हर व्यक्ति अजनबी व्यक्ति की अपेक्षा परिचित व्यक्ति को सहयोग करना अधिक पसंद करता है तथा उसे अधिक सहयोग करता है। परिचितता जितनी अधिक होगी, सहयोग की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। परिचितता और पसंद दोनों ही सहयोगी व्यवहार की सम्भावनाओं को बढ़ाते हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्ति जितना अधिक परिचित होता है तथा जितना अधिक पसंद करता है, सहयोग सम्बन्धी व्यवहार उतना ही अधिक जटिल होने की सम्भावना हो जाती है।

(15) पुरस्कार (Reward) :- जिस प्रकार अभिप्रेरणा (Motivation) में पुरस्कार की सकारात्मक भूमिका होती है, उसी प्रकार सहयोग प्रक्रम में भी पुरस्कार का प्रभाव देखने को मिलता है। जब कोई व्यक्ति किसी न किसी रूप में दूसरे व्यक्ति को सहयोग करता है तो सहयोग करने वाले को भी किसी न किसी रूप में पुरस्कार की प्राप्ति होती है। सहयोग के बाद मिले पुरस्कार का अधिक प्रभाव होता है। सहयोग के लिए पुरस्कार का प्रभाव पुरस्कार की प्रकृति पर भी निर्भर करता है। साधारण पुरस्कार शायद इतना प्रभावी नहीं हो, जितना कि विशिष्ट पुरस्कार तथा अधिक कीमती पुरस्कार।

(16) सामाजिक शक्ति (Social Power) :- सामाजिक रूप से शक्तिशाली माने जाने वाले व्यक्तियों के सम्मुख सामाजिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों का व्यवहार अधिक सहयोगात्मक होता है। कई बार सामाजिक रूप से शक्तिशाली व्यक्ति के पक्ष में, दुर्बल सामाजिक शक्ति वाला व्यक्ति इसलिए भी सहयोग का प्रदर्शन करता है कि कहीं शक्तिशाली व्यक्ति उससे नाराज न हो जाये या उस पर क्रोधित न हो। कई परिस्थितियों में सामाजिक रूप से शक्तिशाली व्यक्ति की विशेष दुर्बलता का पता सामाजिक रूप से दुर्बल व्यक्ति को पता चल जाता है, उस दुर्बलता का प्रयोग करते हुए ऐसे सामाजिक रूप से दुर्बल व्यक्ति असहयोगात्मक व्यवहार करने लगते हैं। साधारण भाषा में हम यह कह सकते हैं कि ये व्यक्ति दूसरे की कमजोरी का फायदा उठाने लगते हैं।

(17) अन्य व्यक्तियों का व्यवहार (Other's Behaviour) :- यह बात निश्चित है कि "जैसे हम करेंगे वैसा ही फल पायेंगे।" अर्थात् जैसा व्यवहार हम दूसरे व्यक्ति से करेंगे, वैसा व्यवहार ही दूसरे व्यक्ति

Scanned with OKEN Scanner

हम से करेंगे। जैसे, यदि कोई व्यक्ति हमारे साथ सहयोग करता है, तो समय या स्थिति या अवसर आने पर हम भी उस व्यक्ति को सहयोग करने पर नैतिक रूप से बाध्य हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति हमारे साथ चालाकी करता है तो वह भी किसी न किसी से भी सहयोग की आशा नहीं कर सकता।

◆◆◆

(C) प्रतिस्पर्धा और द्वंद्व
(Competition and Conflict)

4. 'द्वंद्व' से क्या अभिप्राय है? प्रतिस्पर्धा और द्वंद्व में क्या संबंध है? द्वंद्व के मूल कारणों का वर्णन करें। (What do you mean by Conflict? How it is related to competition? Describe the basic causes of conflict.)

उत्तर–द्वंद्व से अभिप्राय (Meaning of Conflict)–द्वंद्व (Conflict) और तनाव (Tension) दोनों शब्द का अधिकतर प्रयोग किया जा रहा है। इन दोनों शब्दों को एक-दूसरे के लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन इन दोनों शब्दों में अंतर होता है। तनाव (Tension) पहले पैदा होता है और इसके परिणामस्वरूप द्वंद्व (Conflict) पैदा होता है। तनाव एक चिंता की अवस्था होती है, लेकिन 'द्वंद्व' एक प्रकार की आक्रामकता (Aggression) की स्थिति होती है। यह स्थिति शाब्दिक या शारीरिक दोनों स्वरूपों में संभव है।

जब व्यक्तियों के दो समूह खुलेआम एक-दूसरे को गाली देते हुए या शारीरिक रूप से दिखाई देते हैं तथा उसे 'द्वंद्व' (Conflict) का नाम दिया जाता है।

बोरिंग, लैंगफील्ड तथा वेल्ड (Boring, Langfield and Weld, 1959) के अनुसार 'द्वंद्व' वह अवस्था होती है जिसमें दो या विरोधी प्रेरणाएं (Forces) उत्पन्न होती हैं तथा जिन्हें एक साथ संतुष्ट करना या पूरा करना संभव नहीं।

द्वंद्व से कुंठा पैदा होती है। द्वंद्व के दौरान व्यक्ति कभी तो एक प्रेरणा से जुड़े प्रत्युत्तर को चुनता है तो कभी दूसरी प्रेरणा से संबंधित प्रत्युत्तर को चुनता है। कई बार वह किसी भी प्रत्युत्तर को नहीं चुनता। द्वंद्व चेतन या अचेतन दोनों ही स्तर पर संभव हैं। परंतु अधिकतर द्वंद्व चेतन स्तर पर ही होते हैं।

द्वंद्व और प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा में संबंध
(Relation Between Competitions and Conflict)

जब विभिन्न समूह किसी प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा में एक-दूसरे के सामने आते हैं तब उनकी रुचियों में द्वंद्व पैदा हो जाता है। इस प्रकार के द्वंद्व के परिणामस्वरूप अन्तःसमूह तनाव (Inter-group Tension) पैदा होता है और फिर हिंसा जन्म लेती है।

विभिन्न समूहों में व्यक्तियों का प्रवेश विभिन्न कारणों से होता है। इन समूहों में सभी मिलकर कार्य करते हैं। लेकिन ऐसी इकट्ठा की स्थिति में द्वंद्व की संभावनाएं हमेशा जीवित रहती हैं। ऐसा द्वंद्व किसी एक व्यक्ति और एक समूह में हो सकता है या फिर दो या अधिक समूहों में हो सकता है।

आमतौर पर द्वंद्व (Conflict) नकारात्मक प्रभाव ही डालते हैं लेकिन इस बात से यह भी अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए कि 'द्वंद्व' हमेशा बुरे ही होते हैं। हल्का-सा द्वंद्व तो समूह की उपलब्धि या निष्पादन में वृद्धि करता है। द्वंद्व से नए विचारों को उद्दीपन (Stimulation) मिलता है। मैत्रीपूर्ण प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की जा सकती है तथा टीम की प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सकता है।

जब किसी समूह की आवश्यकताएं और व्यक्ति की आवश्यकताओं में मतभेद की स्थिति होती है तब ये द्वंद्व पैदा होते हैं।

हर समाज में दो समूह अवश्य होते हैं जिनका आधार भाषा, व्यवसाय या धर्म होता है। इन समूहों में द्वंद्व अकसर शक्तिशाली होते हैं। वर्तमान में इस प्रकार के द्वंद्वों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। ऐसे द्वंद्व युद्ध का रूप भी ले लेते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

द्वंद्वों के कारण
(Causes of Conflict)

ये द्वंद्व क्यों होते हैं, इसके मूल कारण निम्नलिखित हैं–

1. परिवार (Family)–द्वंद्व का एक स्रोत (Source) परिवार को माना जाता है। परिवार के सभी सदस्यों में भिन्नता अवश्य होती है। इन भिन्नताओं के कारण भी द्वंद्व उत्पन्न होते हैं। आमतौर पर बच्चों का किशोरावस्था तक का सफर आराम से कटता है लेकिन किसी व्यवसाय में जाने पर उन्हें विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

2. मूल प्रवृत्तियां (Basic Instincts)–व्यक्ति में दो मूल प्रवृत्तियां होती हैं–जीवन मूल प्रवृत्ति (Errors) और मृत्यु मूल प्रवृत्ति (Thanates)। ये दोनों मूल प्रवृत्तियां एक-दूसरे की विरोधी हैं। इनमें असंतुलन पैदा होने पर द्वंद्व (Conflicts) पैदा होने शुरू हो जाते हैं और समायोजन संबंधी समस्याएं पैदा होने लगती हैं।

3. व्यक्तिगत असफलताएं (Personal Failures)–व्यक्तिगत असफलताओं के परिणामस्वरूप हीन भावनाएं पैदा होती हैं और इन हीन भावनाओं के परिणामस्वरूप द्वंद्वों (Conflicts) की उत्पत्ति होती है।

4. संस्कृति (Culture)–संस्कृति का फैलाव (Expansion) भी होता है जो कि द्वंद्व का कारण बनता है जब एक संस्कृति के लोग अपनी उस संस्कृति के अनुसार चलते हैं तथा अन्य व्यक्ति दूसरी संस्कृति को पसंद करते हैं तो दूसरी संस्कृति का पहली संस्कृति में यह प्रचलन भी व्यक्तियों में द्वंद्व का कारण बन सकता है।

5. आर्थिक कठिनाइयां (Economic Problems)–वैवाहिक जीवन में आर्थिक परेशानियां बढ़ जाती हैं जिनके कारण द्वंद्व विकसित होने लगते हैं जिन्हें दूर करना अति आवश्यक है। वरना जीवन भर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।



चित्र : द्वंद्व के कारण

◆◆◆

5. द्वंद्वों से आप किस प्रकार बचाव कर सकते हैं?
(How you can escape from conflicts?)

उत्तर–द्वंद्व एक ऐसा व्यवहार होता है जिसका अवलोकन (Observation) बाहरी रूप से ही संभव है। जब दो समूहों में प्रतिस्पर्धा होती है तब दोनों समूह के सदस्य मन ही मन एक-दूसरे के व्यवहार से चिंतित दिखाई पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी अक्सर रहते हैं। अतः विद्यार्थियों को द्वंद्व की ऐसी स्थिति से हटाना बहुत ही आवश्यक है। प्रतियोगिताओं की मौजूदगी में द्वंद्वों (Conflicts) से हम स्वयं को कैसे बचा सकते हैं। इसके लिए कुछ निम्न सुझाव दिए गए हैं–

1. द्वंद्व की परिस्थिति में जो भी निर्णय लिया जाता है उसका दृढ़ता से पालन किया जाना चाहिए।
2. व्यक्ति को द्वंद्व की परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर द्वंद्व की परिस्थिति से तुरंत हट जाना चाहिए।
3. द्वंद्व के समाधान के लिए दूसरी पार्टी को प्रमाणों की सहायता से राजी करना चाहिए, कोई जोर-जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए।

Scanned with OKEN Scanner

4. द्वंद्व की परिस्थिति में समाधान की तलाश संयुक्त रूप से होनी चाहिए तथा किसी समाधान पर सभी की सहमति न होना सुखद होता है।
5. कई बार द्वंद्व के समाधान के लिए वार्ताओं का होना आवश्यक होता है तथा कई बार सौदेबाजी (Bargaining) की भी आवश्यकता पड़ जाती है, तब ऐसा करने से हिचकिचाना नहीं चाहिए।
6. द्वंद्व के समाधान के लिए यदि आवश्यकता पड़े तो तीसरी पार्टी की सहायता भी ली जा सकती है। मामले को तय करने में इस पार्टी को आमंत्रित किया जा सकता है जो मध्यस्थता करके समस्या का हल ढूंढ़ने में सहायता करती है। तीसरी पार्टी दोनों समूहों के तर्कों को सुनती है तथा फिर अपना निर्णय घोषित करती है। इस प्रकार की मध्यस्थता में दोनों पार्टियों की परस्पर सहमति हासिल की जाती है।
7. द्वंद्व के समाधान के लिए जो भी निर्णय लिया जाता है, उसका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए वरना द्वंद्व पुनः पैदा हो सकता है।

◆ ◆ ◆

(D) आक्रामकता और दबंगता (Aggression and Bullying)

6. आक्रामकता से आपका क्या अभिप्राय है? इसके प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन करो। यह कितने प्रकार की होती है?
(What do you mean by Aggression? Describe its main theories. What are its types?)

उत्तर–1. 'आक्रामकता' का अर्थ (Meaning of Aggression)–'आक्रामकता शब्द एक प्रकार की समस्या का प्रतिनिधत्व करता है तथा यह शब्द सार्वभौमिक (Universal) है। इस शब्द का अर्थ समझना अति आवश्यक है। आरनोल्ड बास (Arnold Buss, 1961) के अनुसार आक्रामकता एक ऐसा व्यवहार है जो दूसरों को हानि या कष्ट पहुंचाता है।

बार्चेल और कूपर (1979) के अनुसार, 'आक्रामकता वह व्यवहार है जिसका उद्देश्य लक्ष्य को हानि पहुंचाना है।' (Aggression : Behaviour aimed at injuring a specific target.) –Warchel & Kooper.)

शनीडर (Schneider, 1988) के अनुसार, 'आक्रामकता से अभिप्राय है दूसरे व्यक्ति के प्रति किये गये क्षति या नुकसान का प्रयास।' (Aggression : Behaviour that is intended to hurt another person. –Schneider, 1988)

आक्रामकता की विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने आते हैं -

(i) आक्रामकता दूसरों को नुकसान पहुंचाना है।
(ii) आक्रामकता दूसरों को नियत (Intention) से क्षति पहुंचाना है।,
(iii) यदि पीड़ित व्यक्ति किसी व्यक्ति द्वारा पहुंचाए जाने वाले कष्ट से बचना नहीं चाहता तो यह आक्रामकता (Aggression) नहीं कहलाएगा।
(iv) पशुओं के आक्रामकताकारी व्यवहार को परिभाषित करना कठिन है, क्योंकि उनकी नियत (Intention) को निर्धारित करना सम्भव नहीं होता।
(v) पशुओं के अतिरिक्त व्यक्ति की नियत को निर्धारित करना भी सरल नहीं।
(vi) आक्रामकता एक व्यवहार है, न कि संवेग, आवश्यकता या प्रेरणा है।

Scanned with OKEN Scanner

(vii) आक्रामकता की अभिव्यक्ति में संवेग, आवश्यकता और प्रेरणा की उपस्थिति हो भी सकती है और नहीं भी।

(viii) आक्रामक व्यवहार सदा जीवित प्राणियों के प्रति ही होता है।

(ix) हम सभी के व्यवहार में आक्रामकता की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य पाई जाती है।

(x) आक्रामकता सामाजिक व्यवहार का आवश्यक अंग है।

2. आक्रामकता के प्रकार (Types of Aggression)–आक्रामकता या आक्रामक व्यवहार विभिन्न प्रकार का हो सकता है। ये विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं :-

1. शारीरिक आक्रामक व्यवहार (Physical Aggressive Behaviour)–इस प्रकार के व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्ति अपने शारीरिक बल का प्रयोग करके दूसरे व्यक्ति को हानि या कष्ट पहुंचाता है। उदाहरण ार्थ- हाथों से, घूंसों से दूसरे व्यक्ति को पीटना, दाँतों से काटना आदि। चाकू से मारना या घायल करना या अन्य किसी शस्त्र से क्षति पहुंचाना इसी वर्ग की आक्रामकता के अन्तर्गत आते हैं।

(2) मौखिक आक्रामक व्यवहार (Verbal Aggressive Behaviour) :– इस प्रकार के आक्रामक व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्ति मौखिक आक्रामक व्यवहार का ही प्रयोग करता है। जैसे दूसरों की कटु आलोचना करना, छींटाकसी करना, धमकी देना, किसी को बेइज्जत करना।

(3) प्रत्यक्ष आक्रामक व्यवहार (Direct Aggressive Behaviour) :– इस प्रकार के आक्रामक व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से लक्ष्य-व्यक्ति के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है तथा उसे हानि पहुंचाने का प्रयास करता है।

(4) अप्रत्यक्ष आक्रामक व्यवहार (Indirect Aggressive Behaviour) :– यह वह आक्रामक व्यवहार होता है जिसमें लक्ष्य-प्राप्ति के प्रति अप्रत्यक्ष रूप से आक्रामक व्यवहार किया जाता है। जैसे- अधीनस्थ कर्मचारी अपने अधिकारी के विषय में बातचीत के माध्यम से अप्रत्यक्ष ढंग से आक्रामकता का प्रदर्शन करना।

(5) सक्रिय आक्रामकता (Active Aggression) :– इस प्रकार की आक्रामकता के अन्तर्गत व्यक्ति सक्रिय होकर नियत से लक्ष्य-व्यक्ति (Target) को क्षति पहुंचाने का प्रयास करता है और लक्ष्य-व्यक्ति बचने का प्रयास करता है।

(6) निष्क्रय आक्रामकता (Passive Aggression) :– निष्क्रय आक्रामकता के अन्तर्गत आक्रामक व्यक्ति लक्ष्य-व्यक्ति (Target) की सामान्य दिनचर्या में रुकावटें पैदा कर क्षति पहुंचाने का प्रयास करता है। जैसे- कोई ऑफिसर अपने अधीन किसी कर्मचारी की पदोन्नति में जानबूझ कर कोई न कोई अड़चन पैदा करता है।

(7) संवेग-आधारित आक्रामकता (Emotion-based Aggression) :– संवेग-आधारित आक्रामक क्रोध के संवेग के अन्तर्गत दूसरे व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार से नुकसान पहुंचाने का प्रयास करता है तथा दूसरा व्यक्ति उससे बचने का प्रयास करता है।

(8) नैमित्तिक आक्रामकता (Instrumental Aggression) :– इस प्रकार की आक्रमकता को प्रलोभन-आक्रामकता (Incentive Aggression) का नाम भी दिया गया है। इस प्रकार की आक्रामकता नियत से तो की जाती है लेकिन यहाँ प्राथमिक लक्ष्य आत्म-रक्षा (Self Protection) या किसी अन्य लक्ष्य की प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ कोई मुक्केबाज दूसरे मुक्केबाज को क्षति पहंचाता है। पहले मुक्केबाज का लक्ष्य पुरस्कार प्राप्त करना होता है।

3. आक्रामकता के सिद्धान्त (Theories of Aggression)–आक्रामकता क्यों होती है? व्यक्ति आक्रामकता का प्रदर्शन क्यों करता है? इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ना हो तो आक्रामकता के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन करना अति आवश्यक है। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार से हैं–

(A) जैविक सिद्धान्त (Biological Theory)–इस सिद्धान्त के समर्थकों का विचार है कि आक्रामकता व्यवहार के कारण स्वयं जीव के अन्दर ही विद्यमान होते हैं। किसी वातावरण या अधिगम से जुड़े नहीं होते। आक्रामकता का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। कुछ अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि आक्रामकता का

Scanned with OKEN Scanner

सम्बन्ध पौरुष हारमोन (Teslosterone) से है। कोई मनोवैज्ञानिक यह विचार भी अभिव्यक्त करते हैं कि जब मस्तिष्क के विभिन्न भागों को उद्दीपत (Stimulate) किया जाता है तो प्राणी को पीड़ा होती है। इसी पीड़ा के परिणामस्वरूप प्राणी आक्रामक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। उपरोक्त तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अभी यह निश्चित रूप से तय नहीं कि आक्रामकता का जैविक (Biological) आधार क्या है। जैविक आधार पर विभिन्न सिद्धान्तों का प्रचलन है, ये सिद्धान्त हैं -

(a) उद्विकासात्मक सिद्धान्त (Evolutionary Theory) :- इस सिद्धान्त के अनुसार डर्विन (Darwin) ने यह स्पष्ट किया है कि अन्तर्जातीय लड़ाई (Intraspicies fighting) उद्विकास में एक प्रमुख क्रिया तंत्र होता है। अनेक प्राणी अपनी मन-पसंद की चीज प्राप्त करने के लिए लड़ाई-झगड़ा करते हैं। इस लड़ाई में अधिक चतुर या बलशाली प्राणी जीत प्राप्त करते हैं तथा जीवित भी रहते हैं। इनके ही श्रेष्ठ गुण इनकी संतान में चले जाते हैं। हरबर्ट स्पैन्सर (Herbert Spencer, 1895) ने इस सिद्धान्त को सामाजिक व्यवहार पर भी लागू किया। व्यक्तियों में सुख बढ़ाने और दुःख घटाने की प्रवृत्ति पाई जाती है, जिसके परिणामस्वरूप लड़ाई होती है तथा व्यक्ति एक-दूसरे का विरोध करते हैं। कभी-कभी यही विरोध हिंसा का रूप भी धारण कर लेता है। इन झगड़ों में बलशाली लोग ही बच पाते हैं।

(b) मनोविश्लेषण का सिद्धान्त (Psychoanalytic Theory) :- इस सिद्धान्त के अनुसार इस बात पर बल दिया गया कि आक्रामकता तो काम (Sex) की तरह एक मूल प्रवृत्ति है जो समस्त व्यवहार को अभिप्रेरित करती है। जब बच्चा जन्म लेता है तो जीवन मूल प्रवृत्ति तथा मृत्यु मूल प्रवृत्ति पाई जाती हैं जो कि दोनों ही एक-दूसरे के विपरीत हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों से अभिप्रेरित होकर आनन्द, प्यार तथा प्रजनन जैसी क्रियाएँ करता है। मृत्यु मूल प्रवृत्ति प्रतिकूल आवेगों को जन्म देती है। ये आवेग मुक्ति (Release) चाहते हैं जो कि ये दूसरों पर आक्रामकता दिखा कर प्राप्त करते हैं।

कोई भी समाज काम-संतुष्टि (Sex Satisfaction) को बिना रोक-टोक के करने की आज्ञा नहीं देता। इसी प्रकार कोई भी समाज बेराक-टोक आक्रामकता सहन नहीं करता।

(c) वासस्थलीय सिद्धान्त (Ethological Theory) :- इस सिद्धान्त में डार्विन के विचारों तथा फ्रायड के मूल-प्रवृत्ति सिद्धान्त की झलक मिलती है। हाथियों, छिपकलियों, मछलियों, पक्षियों, कुत्तों, भेड़ियों तथा बन्दरों का गहन अध्ययन किया गया और इनमें वंशागत आक्रामकता मूल प्रवृत्ति (Inherited aggressive) की पुष्टि की। आक्रामकता (Aggression) नामक मूल प्रवृत्ति आत्म-प्रजनित (Self-generating) होती है। आन्तरिक रूप से आक्रामकता का दबाव हमेशा बना रहता है। इसके सक्रिय होने तक यह जमा होता रहता है। आक्रामकता की उग्रता इसकी जमा मात्रा पर निर्भर करती है। लारेन्ज (Lorenz) के अनुसार अनेक पशु अपने विरोधी द्वारा एक बार दब्बू (Submissive) संकेत प्रदान करने पर अपनी आक्रामकता को प्रदर्शित कर देते हैं क्योंकि उनमें ऐसा करने की योग्यता का विकास उद्विकास के माध्यम से हुआ होता है।

सीमाएँ (Limitations)-

(i) पशु व्यवहारों या मानसिक रोगियों पर अध्ययन करके प्राप्त परिणामों को सामान्य मानव व्यवहार पर लागू नहीं किया जा सकता।

(ii) मानव आक्रामकता में मूल-प्रवृत्ति की दो आधारिक विशेषताएँ नहीं पाई जाती। ये हैं- सार्वभैमिकता (Universality), तथा अवधिपरकता (Periodicity)।

(iii) आक्रामकता कुछ व्यक्तियों और समाजों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है जबकि अन्य में इनका अभाव पाया जाता है। इस पुष्टि से हम कह सकते हैं कि आक्रामकता जन्म-जात नहीं होती।

(iv) कई बार कई विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियाँ आक्रामकता के प्रदर्शन के लिए उत्तरदायी होती हैं।

(d) आक्रामकता के स्नायविक क्रियातंत्र (Neural Mechanism of Aggression) :- हैस (Hess, 1920) ने पशुओं पर अध्ययन करके यह पाया कि Limbic System और Brain Stem Region आक्रामकता की अभिव्यक्ति में योगदान देते हैं। इन क्षेत्रों को उत्तेजित करने पर पशु आक्रामकता प्रदर्शित

Scanned with OKEN Scanner

करते हैं। हाईपोथैलेमस (Hypothalamus) को (पशुओं में) उत्तेजित करने पर आक्रामकता उत्पन्न होती है। लेकिन इस विचार पर आपत्ति यह उठाई गई कि यदि हाईपोथैलेमस को शेष मस्तिष्क से अलग कर दिया जाये तब भी आक्रामकता देखी जा सकती है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मंत है कि मध्य मस्तिष्क आक्रामक अनुक्रिया को संगठित करता है जबकि उच्च मस्तिष्कीय संरचनाएँ इसकी अभिव्यक्ति को नियंत्रित करती हैं।

फलायन (Flynn, 1976) के अनुसार थैलेमस को उत्तेजित करने पर प्राणी शांत आक्रामकता प्रदर्शित करते हैं परन्तु यदि Amygdale को उत्तेजित किया जाये तो प्राणी भावों से परिपूर्ण आक्रामकता प्रदर्शित करते हैं। मोनिज (Moniz, 1936) ने मनोविदलता (Schizophrenia) के रोगियों के बारे में बताया कि यदि इनके मस्तिष्क के अग्र भागों (Frontal Lobes) को निकाल दिया जाये तो इनके आक्रामक व्यवहार को कम किया जा सकता है। मार्क (Mark, 1970) ने आक्रामकता का सम्बन्ध 'टैम्पोरल लॉब' (Temporal Lobe) से जोड़ा है।

इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि आक्रामकता का जैविक आधार होता है। जन्म से ही आक्रामकता के केन्द्र विद्यमान होते हैं।

(c) हारमोन और आक्रामकता (Hormones and Aggression) :– हारमोन भी आक्रामकता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्काट (Scot, 1958) के अनुसार नर अधिक आक्रामक होते है। एन्ड्रोजन (Androgen) नामक हारमोन आक्रामकता के लिए उत्तरदायी है।

(B) कुंठा आक्रामकता सिद्धान्त (Frustration Aggression Theory)–मूल सिद्धान्त का प्रतिपादन डोलार्ड और उसके साथियों ने (Dollard, Doob, Miller Mower and Sears, 1939) किया था। इनका विचार है कि कुंठा (Frustration) किसी न किसी प्रकार के आक्रामक व्यवहार को उत्पन्न करती है। इस दृष्टि से कुंठा की मात्रा जितनी अधिक होगी, आक्रामकता व्यवहार भी उतना अधिक होगा। कुंठा में अक्सर क्रोध आने लगता है। कुंठा से अभिप्राय है– लक्ष्य-प्राप्ति में उत्पन्न बाधा की परिस्थिति में व्यक्ति की मनःस्थिति। कुंठा के बारे में दो उप-कल्पनाएँ प्रचलित हैं- (i) प्रत्यक कुंठा किसी न किसी आक्रामकता को जन्म देती है। (ii) प्रत्येक आक्रामक व्यवहार किसी न किसी पहली कुंठा के कारक से होता है।

सीमाएँ (Limitations) :– (i) सभी आक्रामकता कुंठा का परिणाम नहीं होते।

(ii) अधिकतर आक्रामकता नैमित्तिक (Instrumental) पाई जाती है।

अनेक अध्ययनों से इस बात की पुष्टि हुई कि कुंठा से अक्सर आक्रामक व्यवहार उत्पन्न नहीं होता। कुछ अध्ययनों से यह भी सिद्ध हुआ है कि अन्य कारणों की अपेक्षा कुंठा आक्रामकता का एक सहायक कारण है।

(C) उद्धोलन सिद्धान्त (Arousal Theory)–विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि तब तेज शोरगुल से उच्च उद्धोलन (Arousal) उत्पन्न होता है, या कठोर व्यायाम से उच्च उद्धोलन उत्पन्न होता है तब कुछ परिस्थितियों में यह उच्च उद्धोलन आक्रामकता को उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होता है। उद्ध ोलन की मात्रा जितनी अधिक होगी, आक्रामकता व्यवहार भी उतना ही अधिक बढ़ता है।

(D) व्यक्तित्व सिद्धान्त (Personality Theory)–इस सिद्धान्त के अनुसार आक्रामकता करने वाले व्यक्तियों की कुछ अलग ही विशेषताएँ होती हैं। इस दृष्टि से विशेष प्रकार की विशेषताओं वाले व्यक्ति ही आक्रामक और हिंसा वाला व्यवहार कर सकते हैं। सभी लोग ऐसा नहीं कर सकते। इस प्रकार का व्यवहार करने वाले व्यक्तियों में असुरक्षा की भावना तो होती ही है, लेकिन साथ-साथ वह व्यक्ति अपना मूल्य या कीमत कम समझने लगते हैं। उन्हें यह भी लगता है कि समाज के अन्य लोग भी उनकी कीमत कम आंकते हैं। ऐसा वे अपनी स्वयं की प्रतिभा (Self Image) को बचाने के लिए आक्रामक और हिंसात्मक व्यवहार का अनुसरण करते हैं।

टच (Toch, 1969) के अनुसार कुछ व्यक्ति दूसरों को सताने या तंग करने में सुख महसूस करते हैं। अधिकतर ऐसे ही लोग आक्रामकता व्यवहार और हिंसा करते हैं। यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि

Scanned with OKEN Scanner

आक्रामकता और हिंसा बहुत ही तीव्र गति के होते हैं। क्योंकि आक्रामक व्यवहार करने वाला व्यक्ति इस बात से डरता है कि उसे आक्रमण की पहल करनी चाहिए वरना वह दूसरे के आक्रमण का शिकार हो सकता है।

यह भी अध्ययन किया गया है कि कुछ लोग अपने भाग्य पर स्वयं का नियंत्रण मानते हैं। उनके विचार से, उनके चारों ओर जो भी घटित हो रहा है वह भी उनसे प्रभावित है। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो यह मानते हैं कि उनके भाग्य का निर्धारण उनका भाग्य करता है या कोई बाहरी शक्तियाँ करती हैं। वह यह भी अनुभव करते हैं कि उनके चारों ओर जो कुछ भी घटित होता है उस पर उनका बहुत थोड़ा नियंत्रण होता है। ऐसे लोगों को अपनी शक्तियों पर शंका बनी रहती है। बाहरी शक्तियों पर वे अधिक विश्वास करते हैं। पहली प्रकार के लोग अधिक आक्रामक होते हैं।

(E) सामाजिक अधिगम सिद्धान्त (Social Learning Theory)–इस सिद्धान्त के प्रतिपादक यह मानते हैं कि आक्रामक व्यवहार अधिगमित सामाजिक व्यवहार है। इन सिद्धान्तवादियों का मानना है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ही आक्रामक व्यवहार सीख कर नहीं आता। इस प्रकार का अधिकांश अधिगम माता-पिता व परिवार के सदस्यों और साथी समूह के सदस्यों के आक्रामक व्यवहार के निरीक्षण के आधार पर सीखते हैं। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बंडूरा (Bandura) थे। यह सिद्धान्त अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं है। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया गया है कि अन्य व्यवहारों की भाँति आक्रामकता एक सीखा हुआ व्यवहार है।

सामाजिक अधिगम-सिद्धान्त के अनुसार क्या एक व्यक्ति आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित करता है या नहीं, यह अनेक कारकों पर निर्भर करता है। इसमें उसके पिछले अनुभव काम आते हैं।

बन्डूरा (Bandura) के अनुसार क्रोध या अन्य कोई संवेग आक्रामकता के प्रदर्शन के लिए आवश्यक नहीं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि क्रोध या कोई ऐसा ही संवेग आक्रामकता में कुछ न कुछ भूमिका अदा कर सकता है।

आक्रामक व्यवहार का अधिगम निम्न तथ्यों से जुड़ा हुआ है–

(i) आक्रामक व्यवहार दंड की अपेक्षा पुरस्कार से अधिक जुड़ा है। पुरस्कार से जुड़े आक्रामक व्यवहार का अनुसरण अधिक होता है।

(ii) उस आक्रामक व्यवहार का अधिगम शीघ्र होता है, जिससे इच्छित (Desired) लाभ प्राप्त होता है।

(iii) न्यायोचित आक्रामक व्यवहार का अधिगम (Learning) अधिक शीघ्र होता है।

(iv) उच्च प्रतिष्ठा वाले व्यक्तियों का आक्रामक व्यवहार का अनुसरण कम प्रतिष्ठा वाले व्यक्तियों के आक्रामक व्यवहार की अपेक्षा अधिक होता है।

(v) जन्म के समय बच्चे के पास जन्मजात् आक्रामक अनुक्रियाएँ नहीं होतीं, बल्कि वह इन अनुक्रियाओं के प्रत्यक्ष अनुभव कर या उन व्यक्तियों के व्यवहार को अवलोकित (Observe) करके अर्जित करता है।

◆◆◆

7. समाज में बढ़ते हुए आक्रामक व्यवहार के क्या-क्या कारण हो सकते हैं? प्रमुख कारणों का वर्णन करें। आक्रामक व्यवहार के नियंत्रण के लिए आप क्या करेंगे?
(What can be the causes of Aggressive Behaviour in the society? Describe the main causes. What you can do to control the aggressive behaviour?)

अथवा

आक्रामकता के प्रमुख निर्धारकों तथा इसके रोकथाम के उपायों का वर्णन करें।
(Describe the main determinants and methods of prevention and control of aggressiven behaviour.)

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

आक्रामकता को दण्ड एवं पुरस्कार न देना किस तरह नियंत्रित एवं रोक सकता है?
(How can punishment and non-rewarding control and prevent aggression?)

उत्तर–आक्रामकता के निर्धारक (Determinants of Aggression)–आक्रामकता को प्रभावित करने वाले कारकों या निर्धारकों को हम निम्न वर्गों में बांट कर उनका वर्णन कर सकते हैं-

(A) परिस्थिति जन्य कारक (Situational Factors) :– किसी भी परिस्थिति में कुछ ऐसे कारक होते हैं जो आक्रामकता को उकसाते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं-

(1) कुंठा (Frustration) :– कुंठा (Frustration) क्या है? जब हम किसी चीज को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, लेकिन हमारे प्रयासों में हस्तक्षेप किया जाता है तो व्यक्ति कुंठा का अनुभव करता है। डोलार्ड (Dollard, 1939) के अनुसार- कुंठा किसी न किसी रूप में आक्रामकता को पैदा करती है।

आक्रामकता हमेशा कुंठा से उत्पन्न होती है। वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि कुंठित (Frustrated) व्यक्ति सदा आक्रामकता का ही प्रदर्शन करता है। कुंठित होने पर कोई भी व्यक्ति कई प्रकार की अनुक्रियाएँ कर सकता है। जैसे- उदासी की अभिव्यक्ति।

आक्रामकता हमेशा कुंठा से ही उत्पन्न नहीं होती। कुछ ऐसे अन्य कारक भी हैं जो व्यक्ति को आक्रामक बनाते हैं। उदाहरणार्थ अपने कैप्टन का आदेश पाकर सैनिक आक्रामक व्यवहार का प्रदर्शन कर सकता है। आक्रामकता की मात्रा कुंठा की मात्रा पर निर्भर करती है। जितनी अधिक कुंठा होगी, आक्रामकता भी उतनी ही अधिक होगी। इस प्रकार लक्ष्य की निकटता और कुंठा का आपस में गहरा सम्बन्ध है। लक्ष्य जितना निकट होगा, रुकावट पड़ने पर कुंठा उतनी अधिक होगी तथा परिणामस्वरूप आक्रामकता भी उतनी ही अधिक होगी।

2. प्रतिरूपण (Modelling) :– प्रतिरूपणता भी आक्रामकता को उकसाती है। कई बार कोई व्यक्ति स्वयं को एक आक्रामक माडल के रूप में प्रस्तुत करता है। ये आक्रामक प्रतिरूप निम्नलिखित सूचनाएँ देते हैं- (i) ये उन विशिष्ट आक्रामक क्रियाओं को दर्शाते हैं जो दी हुई परिस्थिति में सम्भव होती हैं। (ii) ये आक्रामकता के उचित होने के बारे में सूचनाएँ प्रदान करते हैं। (iii) प्रतिरूप प्रेक्षकों को आक्रामकता प्रदर्शित करने पर प्राप्त परिणामों (Consequences) की झलकें प्रदान करते हैं। पुरस्कार प्रदान करने वाले आक्रामक व्यवहारों का प्रेक्षक (Observer) अनुकरण करते हैं। इस प्रकार आक्रामक माडल आक्रामकता में वृद्धि करते है। लड़के आदमी को तथा लड़कियों औरतों को माडल के रूप में चुनते हैं।

3. आक्रमण (Attack) :– कई बार प्रत्यक्ष रूप से उकसाने (Direct Provocation) पर आक्रामकता उत्पन्न होती है। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि आक्रामकता ही आक्रामकता को उत्पन्न करती है। अनेक परिस्थितियों में शारीरिक या शाब्दिक आक्रमण आक्रामक व्यवहार को उकसाते हैं। आक्रामकता से क्रोध और क्रोध से आक्रामक अनुक्रिया पैदा होती है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि वाचिक छेड़-छाड़ की अपेक्षा शारीरिक छेड़-छाड़ या उद्दीपन आक्रामक व्यवहार को अधिक उत्पन्न करता है। इस प्रकार यह देखा गया है कि जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ आक्रामकता का व्यवहार करेगा तो दूसरा व्यक्ति जवाब में आक्रामक व्यवहार अवश्य करेगा।

4. हथियार (Weapons) :– एक अध्ययन में यह भी पाया गया है कि जब किसी कुंठित व्यक्ति को कोई हथियार दिखाई पड़ जाये तो उसके आक्रामक व्यवहार की सम्भावना बढ़ जाती है। टर्नर (Turner, 1977) ने भी अपने अध्ययनों में यह पाया है कि हथियारों की उपस्थिति व्यक्ति में आक्रामकता तथा दंगों की सम्भावना में वृद्धि करती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कुंठा तथा उकसाहट के बाद हथियारों का प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति को दंगों के बारे में सोचने के लिए तत्पर (Ready) कर देता है।

5. तापमान व शोर (Temperature and Noise) :– एक अध्ययन के अनुसार यह पाया गया है कि जब तापमान में वृद्धि होती है तो आक्रामकता भी अपेक्षाकृत अधिक प्रदर्शित होती है। इसका कारण यह है कि तापमान में वृद्धि होने से तनाव में वृद्धि होती है तथा तनाव बढ़ने से आक्रामकता में वृद्धि होती है। तापमान में वृद्ध से व्यक्ति में पलायन का व्यवहार भी उत्पन्न होता है। लेकिन पलायन की उपस्थिति में आक्रामकता नहीं होती।

Scanned with OKEN Scanner

इसी प्रकार शोर अधिक बढ़ने से आक्रामकता में भी वृद्धि होती है। एक अध्ययन में यह पाया गया है कि शोर की मात्रा जितनी अधिक होगी, आक्रामकता भी उतनी ही अधिक होगी।

6. मादक पदार्थों का प्रभाव (Impact of Drugs) :- ऐसा पाया गया है कि जब कुछ मादक पदार्थों का सेवन किया जाता है तब उस स्थिति में व्यक्ति के आक्रामक व्यवहार में वृद्धि होती है। ऐसा इसलिए होता है कि इनका सेवन करने के बाद व्यक्ति की क्रियाशीलता और शक्ति अस्थायी रूप से बढ़ जाती है। इन मादक पदर्थों के सेवन से व्यक्ति में आक्रामकता के बाहरी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, ऐसा समझा जाता है कि व्यक्ति में सीमा से अधिक शराब पीने से आक्रामक और हिंसक व्यवहार उत्पन्न हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि रक्त में जब अलकोहल (Alcohol) की मात्रा 5% से अधिक हो जाती है तो वह अचेतना (Unconsciousness) का शिकार हो जाता है।

7. संचार साधन (Communication Media) :- प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि रेडियो, टेलीविजन और सिनेमा में व्यक्ति जिस प्रकार आक्रामक व्यवहार देखता है, उसी का अनुसरण किया जाता है। कई बार हिंसा वाले व्यवहार को पुरस्कृत किया जाता है, उससे भी आक्रामकता को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार का व्यवहार नौजवानों को अधिक प्रभावित करता है। प्रौढ़ व्यक्ति कम ही प्रभावित होते हैं।

(B) व्यक्तिगत कारक (Personal Factors) :- कुछ व्यक्तिगत कारक भी होते हैं जो आक्रामकता को किसी न किसी ढंग से प्रभावित करते रहते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं-

1. संवेगात्मक स्थिति (Emotional State) :- यहां पर संवेगात्मक स्थिति से अभिप्रायः है– आक्रामकताकर्ता की संवेगात्मक स्थिति (Emotional State of the Aggressor)। व्यक्ति की संवेगात्मक स्थितियाँ हैं-

(a) क्रोध उद्वेलन (Angry Arousal) :- क्रोध उद्वेलन की स्थिति में निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं–

(i) **कुंठा की प्रबलता (Strength of Frustration) :-** जिस लक्ष्य के निकट पहुंच जाते हैं तब हम अधिक कुंठा का अनुभव करते हैं।

(ii) **कुंठा का मनमानापन (Arbitrariness of Frustration) :-** मनमाने ढंग से प्राप्त कुंठा का प्रभाव कम होता है। अर्थात् किसी व्यक्ति को प्रदान की गई कुंठा यदि तार्किक, आकस्मिक या वैध (Legitimate) है, तो वह कम शत्रुता की भावना (Hostility) का प्रदर्शन करेगा परन्तु यदि वह इसे मनमानी (Arbitrary) या अवैध (Illegitimate) मानता है तो वह अधिक शत्रुता (Hostility) का प्रदर्शन करेगा।

(iii) **आक्रामक संकेत (Aggressive Cues) :-** आक्रामक क्रियाएँ वातावरण में विद्यमान उपयुक्त आक्रामक संकेतों पर निर्भर करती हैं। इस प्रकार के आक्रामक संकेत व्यक्ति को आक्रामकता की याद दिला देते हैं। इसी प्रकार ये संकेत क्रोध को और अधिक भड़का देते हैं।

(b) सामान्य उद्वेलन (General Arousal) :- कोई भी उद्वेलन (Arousal) आक्रामकता उत्पन्न कर सकता है परन्तु शरीर क्रियात्मक उद्वेलन (General Physiological Arousal) का आक्रामकता से क्या सम्बन्ध है, जिसका क्रोध के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता जैसे- उच्च, शोर, अधिक व्यायाम आक्रामकता को कैसे प्रभावित करते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने उच्च शोर, प्रतिस्पर्धा, उत्तेजनकारी औषधियाँ, उत्तेजक संगीत आदि का आक्रामकता पर प्रभाव का अध्ययन किया है।

जिलमैन (Zillman, 1979) ने व्यायाम का आक्रामकता पर प्रभाव का अध्ययन किया है। उसने पाया कि व्यायाम द्वारा व्यक्ति में आक्रामकता की अनुक्रिया को और प्रबल करती है।

(c) यौन उद्वेलन (Sexual Arousal) :- अनेक मनोवैज्ञानिकों ने यह पाया है कि मध्यम स्तरीय यौन उद्वेलन (Medium Sexual Arousal) आक्रामकता में कमी लाता है। जबकि उच्चतर स्तरीय यौन उद्वेलन आक्रामकता में वृद्धि करता है। कामुक उद्दीपक (Erotic Stimuli) व्यक्ति में निम्न प्रभाव पैदा करते हैं- (i) उद्वेलन में वृद्धि। (ii) भावात्मक स्थितियों में परिवर्तन। (iii) मध्यम कामुक सामग्री दर्शक में कम उद्वेलन (मुख्यतः घनात्मक प्रभाव) प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(d) उद्वेलन के अन्य प्रारूप (Other forms of Arousals) :– उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त अन्य कारकों की भी चर्चा की गई है जो उद्वेलन को प्रोत्साहित करते हैं। जैसे भीड़ (Crowd) ऋणात्मक भावनाओं और आक्रामकता में वृद्धि करता है। लेकिन भीड़ अपने आप में ऐसा कारक नहीं होता जो सीधे ही आक्रामकता को पैदा करता है। भीड़ में दूसरों की अधिक निकटता, असुविधा की भावना तथा कुंठा मिलकर आक्रामकता को पैदा करते हैं।

इसी प्रकार वायु-प्रदूषण तथा तापमान का अध्ययन भी अन्य कारकों में शामिल है। ये कारक सीधे ही उद्वेलन (Arousal) में वृद्धि कर सकते है। इसके अतिरिक्त ये क्रोध या कुंठा को भी उत्पन्न कर सकते हैं जो कि उद्वेलन (Arousal) के ही प्रारूप होते हैं। जरा सी असुविधाजनक परिस्थिति में होने पर थोड़ी सी गर्मी अनुभव करने पर क्रोधित तथा आक्रामक बना देती है।

मनोवैज्ञानिकों ने शोर और आक्रामकता के बीच भी उच्च सम्बन्ध पाया है। उच्च शोर से आक्रामकतापूर्ण व्यवहार अधिक होने लगता है। अनेक औषधियां भी आक्रामकता को प्रभावित कर सकती है।

कम शराब का सेवन आक्रामकता में कमी करता है तथा शराब का सेवन बढ़ने से आक्रामकता में वृद्धि होती है। इसी प्रकार यह भी पाया गया है कि औषधियाँ सीधे ही संवेगों को पैदा नहीं करती, बल्कि ये तो व्यक्ति में सामान्य संवेगात्मक उत्तेजन (General Emotional excitement) पैदा करती है।

2. आयु (Age) :– अनेक शोधों से यह पता चलता है कि आयु के साथ-साथ आक्रामकता के स्तर में भी अन्तर आता रहता है। छोटी आयु में आक्रामकता का स्तर ऊँचा होता है परन्तु धीरे-धीरे बच्चे के आक्रामक व्यवहार में कमी आने लगती है। अधिकतर यह देखा गया है कि किशोरावस्था में लड़कों में आक्रामक व्यवहार में वृद्धि होती है। 25 वर्ष की आयु के पश्चात् यह आक्रामक व्यवहार कम होने लगता है। आयु सीमा और आक्रामकता के बीच यह सम्बन्ध सभी संस्कृतियों एवं समाजों के बीच पाया जाता है।

3. लिंग (Sex) :– कुछ शोधकर्ताओं ने लिंग (Sex) और आक्रामकता में सम्बन्ध ढूंढने का प्रयास किया है। इग्ले (Eagly) और स्टेफन (Steffen, 1986) ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि स्त्री की अपेक्षा पुरुष अधिक आक्रामक होते हैं। परन्तु यह अन्तर अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है। कुछ परिस्थितियों में यह भी पाया गया है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक आक्रामक होती है। पुनरावृत्त उकसाहट (Repeated provocations) की स्थिति में पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक आक्रामक व्यवहार का प्रदर्शन करती है।

पुरुष और स्त्री के आक्रामक व्यवहार के अन्तरों के लिए निम्न आधार बताये हैं- (i) जैविक आधार (Biological Basis)। (ii) सामाजीकरण। लेकिन आजकल लड़के और लड़कियों के सामाजीकरण में अन्तर कम होने के कारण उनमें आक्रामकता में अन्तर भी कम होता जा रहा है।

4. व्यक्तित्व (Personality) :– कुछ व्यक्ति अधिक आक्रामक होते हैं तथा कुछ कम आक्रामक होते हैं। सामाजिक स्वीकृति आवश्यकता (Need for social Approval) और आक्रामकता के बीच महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध पाया जाता है। जिन व्यक्तियों में सामाजिक स्वीकृति की आवश्यकता अधिक होती है उनमें आक्रामकता कम होती है। ऐसा इसलिए कि उन्हें अपने अपमान या अपनी निन्दा होने का भय होता है।

आक्रामकता के प्रभाव की दृष्टि से व्यक्तित्व को दो प्रकारों में बांटा जा सकता है– (a) अति नियंत्रक व्यक्तित्व (Over Controllers)। (b) अव-नियंत्रक (Under Controllers)। अतिनियंत्रक व्यक्तित्व में व्यक्ति आक्रामकता को अनुभव तो करते हैं, लेकिन बाहरी रूप से प्रदर्शित नहीं करते तथा अपने ऊपर नियंत्रण बना लेते हैं। अव नियंत्रक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति छोटी से छोटी उकसाहट (Minor Provocation) के प्रति भी आक्रामकता से अनुक्रिया करते हैं। ऐसा देखा गया है कि यदि अति नियंत्रक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को बार-बार तंग किया जाये तो वह हिंसा पर भी उतर सकता है।

ग्लास (Glass, 1977) ने भी आक्रामकता की व्याख्या के लिए दो प्रकार के व्यक्तित्व की चर्चा की है– (a) टाईप–A. (b) टाईप–B.

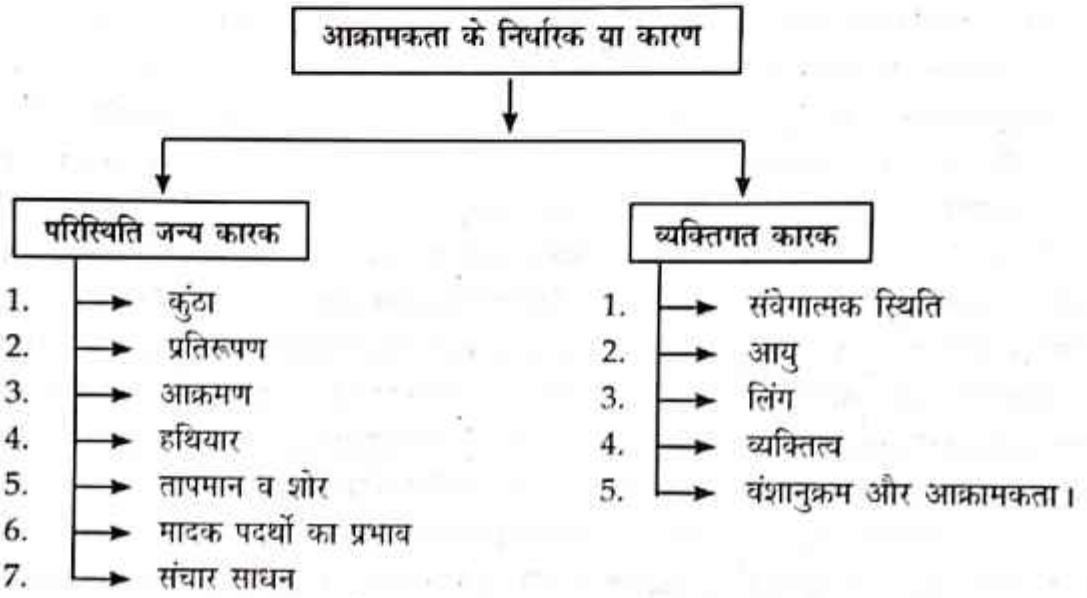
(a) टाईप–A वाले वर्ग में व्यक्ति अधिक स्पर्धा, जल्दबाजी, चिड़-चिड़े तथा आक्रामक होते हैं इस वर्ग के व्यक्ति अधिक वैरभाव वाली आक्रामकता (Hostile Aggression) का प्रदर्शन करते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(b) टाईप–B वाले वर्ग में व्यक्ति कम प्रतिस्पर्धा, आराम से काम करने वाले तथा शांत होते हैं। टाईप-B की तुलना में टाईप-A अधिक आक्रात्मकता का प्रदर्शन करते हैं। टाईप-B व्यक्तियों की तुलना में टाईप-A व्यक्ति सभी संस्कृतियों में अधिक आक्रात्मकता प्रदर्शित करते हैं।

5. वंशानुक्रम और आक्रामकता (Heredity and Aggression) :– वंशानुक्रम और आक्रामकता में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। अनेक शोधों से यह स्पष्ट हो चुका है कि जिन व्यक्तियों में एक से अधिक Y–क्रोमोसोम (Choromosomes)होता है अर्थात् जिनमें XYY–क्रोमोसोम होता है, वह व्यक्ति औसत व्यक्ति की अपेक्षा अधिक लम्बे होते हैं तथा हिंसात्मक व्यवहार करने वाले होते हैं। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि आक्रामकता का कारण बाहरी वातावरण में न होकर व्यक्ति में ही निहित है।

इस विचार के आलोचकों ने कहा है कि इस प्रकार के प्राप्त आंकड़े तथ्यात्मक नहीं होते, क्योंकि ऐसे आंकड़ों को एकत्रित करने की विधि उपयुक्त नहीं है।



चित्र : आक्रामकता के निर्धारक या कारक

आक्रामकता की रोकथाम व नियंत्रण *(Prevention and Control of Aggression)*

आक्रामक व्यवहार कभी भी वांछित (Desirable) नहीं रहा, क्योंकि ऐसा व्यवहार समाज के लिए हितकर नहीं हो सकता। इस प्रकार के व्यवहार को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। अतः आक्रामक व्यवहार पर नियंत्रण करना तथा उसकी रोकथाम करना व्यक्ति का परम कर्तव्य है। आक्रामक व्यवहार की रोकथाम एवं उस पर नियंत्रण करने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं-

1. दण्ड (Punishment) :– दण्ड विधि बहुत ही पुरानी एवं परम्परागत विधि है। आक्रामक व्यवहार करने वाले व्यक्ति को दंडित करके आक्रामक व्यवहार पर नियंत्रण पाया जा सकता है। दण्ड की तीव्रता (Intensity) आक्रामक व्यवहार की गम्भीरता पर निर्भर करती है। आक्रामक व्यवहार जितना गंभीर हो, दण्ड भी उसी के अनुसार होना चाहिए। साधारण आक्रामक व्यवहार के लिए साधारण दण्ड दिया जा सकता है या डाँट कर छोड़ा जा सकता है। ऐसे लोगों का सामाजिक बहिष्कार भी किया जा सकता है।

सीमाएँ (Limitations)–

(i) दण्ड व्यक्ति को और भी क्रोधी बना सकता है।

(ii) दण्ड देने वाले व्यक्ति स्वयं भी भविष्य में आक्रामक बन सकता है।

(iii) दण्ड का प्रभाव स्थाई नही होता।

(iv) दण्ड से व्यक्ति के व्यक्तित्व में अवांछनीय व्यवहारों या विशेषताओं को विकसित कर देता है।

Scanned with OKEN Scanner

दण्ड को प्रभावी बनाना (To make the Punishment effective) :

(i) दण्ड की पर्याप्त तीव्रता होनी चाहिए।

(ii) आक्रामक व्यवहार के बाद दण्ड अवश्य हो।

(iii) दण्ड तत्काल प्रदर्शित होना चाहिए।

2. रेचन क्रिया (Catharsis) :– रेचन क्रिया भी एक प्रभावी विधि मानी जाती है। अरस्तू (Aristotle) ने भी इसके महत्त्व की ओर संकेत दिया है। इस विधि के अन्तर्गत आक्रामक ऊर्जा को मुक्त किया जाता है। जैसे खेल-कूद, व्यायाम, फिल्मों में हिंसक दृश्यों को देखना। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बताया है कि आक्रामक ऊर्जा संचित होती जाती है तथा यह अवधि परक (Periodically) ढंग से प्रदर्शन मांगती है। कुंठा भी इसी प्रकार संचित होती रहती है तथा कुंठा पर आधारित यह ऊर्जा मुक्ति चाहती है।

3. सामाजिक कौशलों में प्रशिक्षण (Training in Social Skills) :– जिन व्यक्तियों के पास आक्रामक व्यवहार का सामना करने का कौशल नहीं होता वे जल्द ही आक्रामक परिस्थितियों में फंस जाते हैं। बेरन (Baron, 1988) के अनुसार जिन व्यक्तियों को दूसरे व्यक्तियों की आलोचना करने का ढंग नहीं आता वे अपने शब्दों की मार से दूसरों को क्रोधित कर देते हैं तथा झगड़ों में फंस जाते हैं। इसी प्रकार जो अपनी इच्छाएँ अभिव्यक्त नहीं कर सकते या जो दूसरों के संवेग नहीं समझ पाते, वे दूसरों को अपनी बातों से क्रोधित कर देते हैं। जिन व्यक्तियों में सामाजिक कौशलों का अभाव रहता है वे समाज में अधिक हिंसक कार्य करते हैं। अतः ऐसे लोगों को आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करने से उनमें आक्रामकता में न्यूनता लाई जा सकती है।

4. पीड़ित व्यक्ति द्वारा कष्ट की अभिव्यक्ति (Pain Expressed by the Victim) :– मनोवैज्ञानिकों ने इस बात का भी पता लगाने का प्रयास किया है कि क्या पीड़ित व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित पीड़ा आक्रामकता कर्ता की आक्रामक अनुक्रिया को प्रभावित कर सकती है? यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या आक्रामक व्यक्ति पीड़ित व्यक्ति पर क्रोधित होता है या नहीं। यदि आक्रामक व्यक्ति पीड़ित व्यक्ति पर क्रोधित हो रहा है तो पीड़ा संकेतों को प्राप्त करके उसकी आक्रामकता एक सीमा तक बढ़ती जाती है। पीड़ा के संकेत उन व्यक्तियों में आक्रामकता की मात्रा कम करते हैं जिन व्यक्तियों को पीड़ित व्यक्ति ने क्रोधित नहीं किया होता।

5. गैर आक्रामक प्रतिरूपों का प्रदर्शन (Exposure to non-aggressive Models):– यदि आक्रामकता वाली परिस्थितियों में गैर आक्रामक प्रारूपों (Non-aggressive Models) को स्थापित कर दिया जाये तो उनमें उत्तेजित व्यक्ति की आक्रामकता में कमी आ सकती है। ऐसे वातावरण में आक्रामक व्यक्ति स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं।

6. पुरस्कार आदि न देना (Non-Rewarding) :– आक्रामक व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के आगे आक्रामक व्यवहार करने वाले व्यक्ति की न तो प्रशंसा की जाये और न ही किसी प्रकार का पुरस्कार या प्रोत्साहन दिया जाये। इसके आक्रामक व्यवहार करने वाले व्यक्ति हतोत्साहित होंगे।

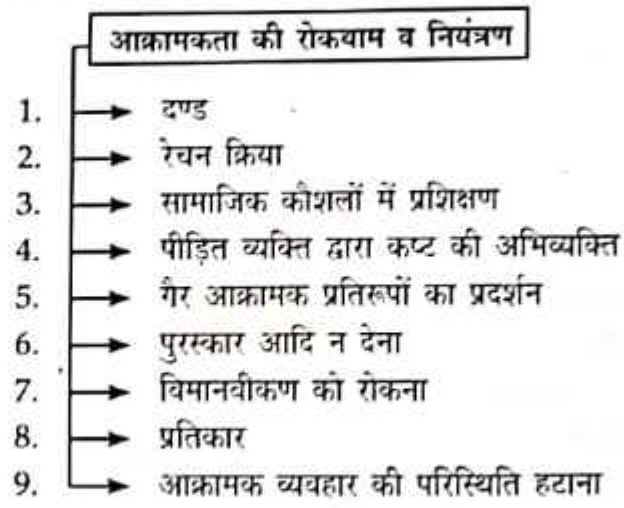
7. विमानवीकरण को रोकना (To avoid Dehumanization) :– आज समाज में 'व्यक्ति' एक वस्तु बन कर रह गया है। आदमी आदमी को नहीं पहचानता। समाज में मानवीय गुणों का महत्व कम हो रहा है। अतः इन मूल्यों में आ रही गिरावट को रोकना चाहिए तथा विमानवीकरण पर रोक लगानी चाहिए। इन प्रयासों से भी आक्रामक व्यवहार में कमी आ सकती है।

8. प्रतिकार (Retaliation) :– प्रत्याशित प्रतिकार भी बाहरी आक्रामकता को कम कर सकता है। बेरन (Baron, 1971) के अनुसार यदि आक्रामक अनुक्रिया के लिए प्रतिकार सम्भव हो तो आक्रामक अनुक्रिया के प्रदर्शन की सम्भावना कम हो जाती है। इसी प्रकार यह भी पाया गया है कि व्यक्ति द्वारा प्रतिकार करने वाले दूसरे व्यक्ति की शक्ति का प्रत्यक्षीकरण उसकी आक्रामकता को बहुत प्रभावित करता है।

9. आक्रामक व्यवहार की परिस्थिति हटाना (To Remove the Situation responsible for Aggression) :– यदि आक्रामक व्यवहार करने वाली कोई परिस्थिति स्पष्ट दिखाई दे रही है तो यदि उस परिस्थिति को तुरन्त हटा दिया जाता है तो आक्रामक व्यवहार करने वाले की उत्तेजना न्यूनतम हो

Scanned with OKEN Scanner

जायेगी तथा उस व्यक्ति का आक्रामक व्यवहार नियंत्रण में आ जायेगी। इसी प्रकार समाज और वातावरण में आक्रामक संकेतों और उद्दीपकों को कम कर दिया जाये या हटा दिया जाये ताकि आक्रामकता के लिए उत्तरदायी बाहरी उत्तेजनाएँ कहीं दिखाई ही न दें।



चित्र : आक्रामकता की रोकथान व नियंत्रण

◆◆◆

8. 'दबंगता' या धौंस जमाना या आखेदन से क्या अभिप्राय है? विभिन्न अवस्थाओं में दबंगता या आखेदन का वर्णन करें।
(What do you mean by Bullying? Describe bullying in various stages of development.)

उत्तर–दबंगता या आखेदन का अर्थ (Meaning of Bullying)–दबंगता या धौंस जमाना या आखेदन (Bullying) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा तंग करने का व्यवहार प्रदर्शित किया जाता है। लेकिन इस प्रक्रिया के मूल में 'आक्रामकता' (Aggression) की भावना शामिल होती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत बड़े या शक्तिशाली बच्चे छोटे या कमजोर बच्चों का शारीरिक उत्पीड़न करने का प्रयास करते हैं। उदाहरण ार्थ–कपड़े खींचना, चलते-चलते टाँग मार देना, टोपी उतार देना इत्यादि। इस प्रकार का व्यवहार संतुलित समायोजन वाले बालकों में कम तथा असंतुलित समायोजन वाले बालकों में अधिक पाया जाता है। लड़कियों में इस प्रकार का व्यवहार बहुत कम होता है तथा लड़कों में अधिक पाया जाता है।

वैसे भी, यदि हम गहराई से सोचें तो कुछ व्यक्तियों को दूसरों को दुःख देने में बहुत मजा आता है। उन्हें हिंसक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति की संज्ञा दी जाती है जब इन व्यक्तियों के ऐसे व्यवहारों से अन्य व्यक्ति दुखी होते हैं तो इन्हें बहुत प्रसन्नता का अनुभव होता है।

ऐसे व्यक्ति अक्सर अपनी आक्रामकता के लिए उपयुक्त व्यक्ति की तलाश में रहते हैं। आक्रामकता के शिकार व्यक्ति ऐसे दबंग व्यक्तियों से दब जाते हैं और उनसे घबराने लगते हैं। फिर ऐसे व्यक्ति दबंगों के सामना परेशान करने की प्रार्थना करते हैं तथा गिड़गिड़ाते हैं। ऐसे लोग प्रभावित लोगों पर और हावी हो जाते हैं।

पूर्व-बाल्यावस्था (Early Childhood)–यदि बच्चों को पूर्व-बाल्यावस्था में खेलने के पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किए जाते तब उनमें आक्रामकता की प्रवृत्ति (Aggressive Tendency) का विकास पूर्ण रूप से हो जाता है।

पूर्व बाल्यकाल में खेल की क्रियाएं अधिक होती हैं तथा इन क्रियाओं के माध्यम से बच्चों की सामाजिकता का आभास होता है। इस अवस्था के दौरान बालक के भीतर खेल तथा मनोरंजन के तत्त्व

Scanned with OKEN Scanner

अधिक सक्रिय होते हैं, और उनका अधिक मूल्य होता है। दूसरी ओर खेलों पर ही बालकों के सभी गुणों का विकास निर्भर करता है। जैसे–शारीरिक, नैतिक, मानसिक तथा सामाजिक गुण। बालक इन गुणों के महत्व को समझने में अपनी अल्प-आयु के होने के कारण समझने में असमर्थ होता है। बालक अपने सम्मान के प्रति अधिक सजग होता है। इन्हीं खेल-क्रियाओं के दौरान लड़ाई-झगड़ा तथा मार-पीट जैसी घटनाओं का होना स्वाभाविक होता है।

लेकिन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो बच्चा अन्य बालकों पर अपना प्रभुत्व (Dominance) स्थापित करना चाहता है। जो भी बच्चा दूसरे बच्चे की बात नहीं मानता या उसके निर्देशों का सामना नहीं करता, तब वह बड़े बच्चे के क्रोध और घृणा का पात्र बन जाता है। इस दृष्टि से प्रभुत्व और आक्रामकता दोनों आपस में संबंधित होते हैं। परिणामस्वरूप प्रभुत्व प्रदर्शन करने वाले बच्चों में द्वंद्व और आक्रामकता अधिक देखने को मिलती है।

जब द्वंद्व आक्रामकता तथा स्पर्धा (Conflict Aggression and Competition) की भावनाएं कार्य करती हैं, तब वहां सहयोग और सहानुभूति के भाव भी जाग्रत हो जाते हैं।

सामाजिक विकास से इस क्रम में बालकों में कुछ दुर्गुणों का पनपना भी स्वाभाविक हो जाता है, जैसे–चिढ़ाना (Teasing), धौंस दिखाना (Bullying), झूठ बोलना, चोरी करना। ऐसे आचरणों को 'समाज विरोधी आचरण' के वर्ग का हिस्सा माना जाता है।

इस अवधि में लड़के और लड़कियां दोनों ही असुखद भावनाओं की अभिव्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत तरीकों से करना सीख जाते हैं। ये भावनाएं आक्रामक व्यवहार के रूप में व्यक्त की जाती हैं। लड़कियों में आक्रामक व्यवहार कम होता है। आक्रामक व्यवहार पूर्व बाल्यकाल में अधिक होता है। पूर्व बाल्याकाल में अभी बच्चों का व्यवहार कुछ न कुछ मात्रा में आक्रामक (Aggressive) ही होता है।

लगभग पांच वर्ष की आयु तक यह व्यवहार चरम सीमा तक पहुंच जाता है। तत्पश्चात् इसकी तीव्रता और आवृत्ति (Intensity of Frequency) में कमी आने लगती है।

बच्चों में आक्रामक व्यवहार इन कारणों से संभव होते हैं–

(i) पारिवारिक तनाव के कारण।
(ii) अधिक ध्यान आकर्षित करने की लालसा।
(iii) ईर्ष्या की भावना का विकसित होना।
(iv) माता-पिता का तिरस्कारपूर्ण व्यवहार का होना।
(v) बच्चों को मारना-पीटना जब वह जरा-सी भी गलती करें।
(vi) उसके लक्ष्यों में रुकावट का आना।

इस आयु वर्ग में आक्रामकता का प्रदर्शन बच्चा हाथ-पैर पटक कर करता है। पांच वर्ष की आयु के पश्चात् उसका यह व्यवहार अप्रत्यक्ष होने लगता है।

उत्तर-बाल्यावस्था
(Late Childhood)

पूर्व-बाल्यावस्था में जिन सामाजिक गुणों का विकास होता है, उत्तर-बाल्यावस्था में भी उन्हीं गुणों का विकास होता है। अतः यह नहीं मान लेना चाहिए कि उत्तर-बाल्यकाल में बालक अपनी पूर्व बाल्यकाल की विशेषताओं से वंचित हो जाता है।

उत्तर-बाल्यकाल में बालक की सामाजिकता बहुत व्यापक रूप धारण कर लेती है। अब वह घर के संकुचित वातावरण से निकल कर सामूहिक जीवन का सदस्य बन जाता है। इस काल की प्रमुख विशेषता होती है–समूह-शक्ति (Group Loyalty)। यह अवस्था लगभग 7 से 12 वर्ष तक चलती है।

इस अवस्था में बालक 'सहयोग' (Co-operation) का अधिक सहारा लेता है। पूर्व बाल्यकाल में बच्चे अलग-अलग खेल की प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं परंतु उत्तर-बाल्यावस्था में सामूहिक खेल का विकास

Scanned with OKEN Scanner

होता है। परस्पर सहयोग की भावना बढ़ जाने से बालकों के भीतर सुरक्षा का भाव (Feeling of Security) सुदृढ़ हो जाता है। समूह में बच्चा अधिकांश समय व्यतीत करता है। इसीलिए उसमें सहानुभूति और परस्पर प्रेम की भावना विकसित होती है। बालक के विभिन्न क्षेत्रों में विकास हो जाने के परिणामस्वरूप वह अपनी इच्छाओं और विचारों को भाषा के द्वारा ढंग से व्यक्त कर सकने में सक्षम हो जाता है। 6 से 10 वर्ष की अवस्था 'गैंग आयु' (Gang Age) कहलाती है। इस अवस्था में बालक अपने निजी उद्देश्यों के लिए प्रतियोगिता और स्पर्धा करता है तथा एक-दूसरे के आगे निकलने की होड़ में रहता है।

किशोरावस्था (Adolescence)–यह 13-14 वर्ष से 18 वर्ष तक की अवस्था होती है। इस अवस्था में किशोर छोटे सामाजिक समूहों के सदस्य भी बनते हैं, जिन्हें 'क्लिक' (Cliques) कहा जाता है जिनमें 3-4 मित्र समान रुचियों वाले होते हैं। किशोरावस्था में बालक 'गैंग' के सदस्य भी बनते हैं। गैंग में आमतौर पर वे सदस्य होते हैं जो स्कूलों में कुसमायोजित होते हैं। ये एक ही कक्षा या स्कूल के छात्र होते हैं। गैंग में एक ही सेक्स के सदस्य होते हैं। ये गैंग समाज-विरोधी व्यवहारों को करते हैं। ये उनसे बदला भी लेते हैं। जिनकी उनके अच्छे संबंध नहीं होते या जो इनको स्वीकार नहीं करते। गैंग में बदले की भावना अधिक होती है।

आयु के बढ़ने के साथ-साथ इनके झगड़े भी कम होने लगते हैं तथा सामाजिक समायोजन भी बढ़ जाता है। इन अवस्था में अन्त तक अधिकांश किशोर गैंग से अलग हो जाते हैं और इनका 'क्लिक' भी टूटने लगता है।

◆◆◆

पदार्थ या मादक द्रव्य व्यसन
(Substance Abuse and drug Addiction)

1. मादक द्रव्य व्यवसन की समस्या से आप क्या समझते हैं? मादक द्रव्य व्यवसन के कारण तथा दुष्प्रभावों का वर्णन कीजिए।

उत्तर–मादक द्रव्य व्यसन की समस्या (नशाखोरी) (Problem of Drug Abuse)–आदिकाल से मानव नशीले पदार्थों का सेवन करता रहा है। नशे के लिये केवल शराव का ही प्रयोग नहीं किया जाता है, वरन् अन्य वस्तुओं जैसे–अफीम, गांजा, चरस, मारिज आना, भांग, कोकीन, मारफीन, हशीश, ब्राउन शुगर, पेथोडीन तथा एस्पिरीन आदि का भी सेवन किया जाता है। **लिण्डस्मिथ** का मत है कि इन वस्तुओं का प्रयोग व्यक्ति 'सामान्य' बनने के लिये करता है। शराव आदि का प्रयोग तो विशेष अवसरों पर करते हैं, किन्तु मादक द्रव्य का प्रयोग तो प्रतिदिन अथवा प्रातः किया जाता है। मादक द्रव्यों का सेवन जब एक बार किसी कारण से प्रारम्भ कर दिया जाता है तो वह आदत का रूप ले लेते हैं और उन्हें छोड़ने में शारीरिक एवं मानसिक कठिनाइयाँ महसूस होती हैं।

मादक द्रव्यों का प्रयोग अति प्राचीन काल से विश्व के सभी देशों में होता रहा है। यूरोप के देशों में इनका सेवन दवा के रूप में तथा भारत व चीन में मुक्त रूप में किया जाता रहा है। दक्षिणी अमेरिका में मजदूरों में कोकीन के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जाता रहा है, जिससे कि उनसे अधिकाधिक काम लिया जा सके। मादक द्रव्यों के उपयोग पर विश्व के सभी देशों में किसी-न-किसी प्रकार का नियन्त्रण आवश्य पाया जाता है, अतः कई लोग चोरी-छिपे मादक वस्तुओं को लाने ले जाने का कार्य करते हैं। कुछ गिरोह तो यह कार्य संगठनात्मक आधार पर करते हैं। हम यहाँ मादक द्रव्य व्यसन के विभिन्न पक्षों पर विचार करेंगे।

मादक द्रव्य क्या हैं ? (What are Drugs?)–अंग्रेजी में ड्रग (Drug) शब्द का प्रयोग दवाई के लिये भी किया जाता है और बहुत से दवाओं में मादक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है। ये मादक द्रव्य दो प्रकार के होते हैं जो इनके व्यसन की समस्या पैदा कर रहे हैं–एक, वें जो गैर-कानूनी मादक द्रव्य हैं। इन पर सरकार के द्वारा प्रतिबन्ध लगाया हुआ हैं। जैसे– अफीम, मार्फिन, हेरोइन, गांजा या ब्राउन सुगर,

Scanned with OKEN Scanner

चरस, कोकीन, क्रेक तथा एल.एस.डी. आदि। ये विशेष पौधों, फूलों या पत्तियों के रसों से बनाये जाते हैं, इन्हें कार्बनिक (Organic) द्रव्य कहा जाता है। **दूसरे,** वे जो बीमार को दवाई के रूप में दिये जाते हैं। उन्हें नुसखा द्रव्य कहते हैं। जैसे– Angeldust, MDMA अथवा ESTASY, EVE, RHAPSODY, MEPERLDINE अथवा MPTD ये सभी नींद लाने वाले, शांत करने वाले या उत्तेजना पैदा करने वाले पदार्थ हैं। अब इन का उत्पादन फैक्ट्रीयों में किया जाने लगा है और इन्हें कृत्रिम (Synthetic) द्रव्य के नाम से पुकारा जाता है।

मादक द्रव्यों को उत्तेजना (कोकिन, डक्सीड्रीन, मेथेड्रीन आदि) **निश्चेतक** (अफीम, गांजा, चरस आदि) तथा **मायिक या भ्रान्तिजनक** (एल.एस.डी.) में विभाजित किया जा सकता है। **उत्तेजक द्रव्यों** के प्रयोग से नींद नहीं आती है और लेने वाले को ऐसा महसूस होता है कि शरीर की ऊर्जा शक्ति बढ़ गई है। **निश्चेतक द्रव्य** लेने से मनुष्य उनींदापन महसूस करता है, चित्त प्रसन्न लगता है और उदासी की भावनायें भी दूर हो जाती हैं। **मादक द्रव्यों** के लेने से व्यक्ति दिन में ही सपने देखने लगता है तथा असलियत से उसका सम्बन्ध टूट जाता है।

मादक द्रव्य व्यसन का अर्थ
(Meaning of Drug Abuse)

मादक द्रव्य व्यसन शब्द का तात्पर्य है मादक पदार्थों पर शारीरिक निर्भरता (Physical dependence) । शारीरिक निर्भरता से तात्पर्य है कि मादक पदार्थों के निरन्तर प्रयोग से शरीर उन पदार्थों की उपस्थिति से अपना सामंजस्य कर लेता है और यदि इन का प्रयोग नहीं किया जाता है तो शरीर को दर्द, बेचैनी और रुगणता महसूस होती है। दूसरे शब्दों में, मादक द्रव्य व्यसन वह दशा है जिसमें शरीर को कार्य करते रहने के लिये मादक पदार्थ के प्रयोग की आवश्यकता महसूस होती है। यदि मादक पदार्थों का प्रयोग बन्द कर दिया जाता है तो संचालन में बाधा पैदा होती है।

इस प्रकार से मादक द्रव्य का अर्थ है "शरीर का मादक पदार्थों के विषैले प्रभावों (Toxic effect) पर आश्रित इतना हो जाना कि उसके बिना वह नहीं रह पाता है।" *(Addiction to a drug means that the body becomes so dependent to the toxic effect of the drug that one cannot do without it.)*

इस प्रकार मादक द्रव्य व्यसन की चार विशेषतायें हैं :

1. इसमें मादक पदार्थ ग्रहण करने की शरीर द्वारा तीव्र इच्छा या आवश्यकता व्यक्त की जाती है जिसे वह हर सम्भव साधन द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।
2. इसमें खुराक की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की प्रवृत्ति होती है।
3. मादक पदार्थों के प्रभावों पर मानसिक एवं शारीरिक निर्भरता पैदा होती है।
4. इसका व्यक्ति एवं समाज पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

अवैध मादक पदार्थों का उपयोग या वैध मादक पदार्थों का दुरुपयोग मादक पदार्थों का दुष्प्रयोग (Drug abuse) कहलाता है, जिससे शारीरिक मानसिक हानि होती है। इसके अन्तर्गत धूम्रपान, गांजा, हशीश, हेरोइन, कोकोइन, L.S.D. मार्फिन के इन्जेक्शन एवं शराब आदि का प्रयोग सम्मिलित हैं। इन्हें कई बार 'High on speed' या 'Trip' या 'Getting, Kicks' जैसे शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया जाता है।

भारत में मादक द्रव्य व्यसन अर्थात् नशीली दवाओं का दुष्प्रयोग
(Drug Addiction (Abuse) in India)

प्राचीन काल से ही भारत में लोग मादक द्रव्यों का प्रयोग करते रहे हैं। मादक पदार्थों के सेवन को सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त थी। आर्य लोग सोमरस का प्रयोग करते थे। अथर्ववेद में भांग के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। पुराणों में भांग के लिये 'विजया' शब्द का प्रयोग हुआ है। भारत में अफीम, भांग, गांजा, चरस एवं कोकीन का प्रयोग होता रहा है।

Scanned with OKEN Scanner

भारत में मादक पदार्थों के प्रयोग की मात्रा, प्रकृति, विस्तार और दुष्प्रभावों को जानने के लिये स्कूल एवं महाविद्यालयों के छात्रों, औद्योगिक श्रमिकों एवं ग्रामीण लोगों से सम्बन्धित अनेक अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनकर्ताओं में बनर्जी (1963 में कोलकात्ता में), दयाल (1977 में दिल्ली में), चिटनिस (1974 में मुम्बई में), वर्मा (1977 में पंजाब में), सेठ व मनचन्दा (1978 में उत्तर प्रदेश में), दुबे, कुमार और गुप्ता (1969 व 1977 में), राम आहुजा (1976 व 1986 में जयपुर में), सोहन, सुन्दरम् और चावला (1978 में दिल्ली में) गेंग्रेड व गुप्ता, देव एवं जिन्दल, दुबे, बर्गीज एवं बैंग आदि के नाम प्रमुख हैं। इनमें से हम यहाँ कुछ विद्वानों के अध्ययनों का उल्लेख करेंगे।

डॉ. राम आहुजा ने 1976 में जयपुर विश्वविद्यालय के छात्रों का अध्ययन करने पर पाया कि 26.1% विधि के छात्र, 23.6% वाणिज्य के छात्र, 17.5% कला व समाज विज्ञान के छात्र, 14% चिकित्सा विज्ञान के छात्र 14% विज्ञान के छात्र, 13.6% इन्जीनियरिंग के छात्र मादक पदार्थों का उपयोग करते थे। उनके 1986 के अध्ययन में 31% वाणिज्य के छात्र, कला व सामाजिक विज्ञान के 27.2% छात्र, 20.3% विज्ञान के छात्र, चिकित्सा विज्ञान के 7.3% छात्र, इन्जीरियरिंग के 6% छात्र एवं विधि के 4.8% छात्र मादक पदार्थों का उपयोग करते थे।

इनमें से 90% छात्र नियमित रूप से मादक पदार्थों का उपयोग करते थे तथा 1% ही इनके व्यसनी हो पाए थे। लगभग दो-तिहाई छात्र इनका प्रयोग मनोरंजन के लिए अर्थात् आराम और आनन्द के लिए, 1/5वाँ भाग छात्र दवा के रूप में तथा 2 से 3 प्रतिशत वास्तविकता से भागने के लिए करते थे।

इसका प्रयोग करने वालों में पब्लिक स्कूलों में पढ़े छात्र व छात्राएँ, शैक्षणिक दृष्टि से निराश, पाठ्येतर कार्यक्रमों में भाग न लेने वाले, उच्च परिवारों के छात्र जिन्हें जेबखर्च खूब मिलता था, छात्रावासों में रहने वाले तथा 16 से 21 वर्ष की आयु के छात्र अधिक थे।

वर्तमान में लगभग 40% छात्र और 18% छात्राएँ, जो कि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों में शिक्षारत हैं, किसी-न-किसी प्रकार के मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। दिल्ली नगर में ही धनी बस्तियों में रहने वाले लगभग 25% व्यक्ति स्मैक का प्रयोग करते हैं। कोलकात्ता में इस समय 50 हजार एवं मुम्बई में 80 हजार एवं दिल्ली में एक लाख से अधिक लोग नशीले पदार्थों का सेवन के आदी बन चुके हैं। इग एब्यूज एक्जामिशन, रिहेबिलिटेशन एण्ड रिसर्च सेण्टर के अध्ययन के अनुसार 7 लाख लोगों में से 87.6 प्रतिशत लोग 14 से 25 वर्ष की आयु के थे।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक सर्वेक्षण के अनुसार भारतीय विश्वविद्यालयों में 10% छात्र पक्के नशेबाज पाये गये जबकि 50% छात्र कम से कम एक बार किसी-न-किसी मादक पदार्थ का सेवन कर चुके हैं। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार पटियाला मेडिकल कॉलेज के 72%, कानपुर मेडिकल कॉलेज के 42%, दिल्ली विश्वविद्यालय के 57%, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 50% तथा मुम्बई विश्वविद्यालय के 55% छात्र-छात्रायें किसी-न-किसी प्रकार के नशे के आदी पाये गये। उनके लिये बीड़ी पीना, सिगरेट पीना, इन्टलेक्च्युअल तथा स्मैक, चरस व हेरोइन का इस्तेमाल करना आधुनिकता का प्रतीक है। नशा संस्कृति विश्वविद्यालय एवं कॉलेज परिसर से प्राथमिक स्कूलों में भी प्रवेश कर चुकी है। यूनिवर्सिटी कैम्पस, कॉलेज और स्कूलों की नुक्कड़ की चाय और पान-सिगरेट की दुकानों पर मादक द्रव्य खुलेआम बिकते हैं।

केन्द्रीय शिक्षा और समाज-कल्याण मन्त्रालय द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार काशी विश्वविद्यालय की छात्राएँ नशाखोरी में और मुम्बई की छात्राएँ मद्यपान में, चेन्नई विश्वविद्यालय की तम्बाकू सेवन में, दिल्ली विश्वविद्यालय की नींद की गोलियाँ सेवन करने में एवं जयपुर की कोकीन लेने में सबसे आगे हैं।

1978 में मोहन, सुन्दरम् एवं चावला ने दिल्ली के 2,000 स्कूली छात्रों का अध्ययन करने पर पाया कि 63% छात्र मादक पदार्थों का प्रयोग करते थे।

गेंग्रेड एवं गुप्ता (Gangrade and Gupta) ने दिल्ली के 4000 औद्योगिक श्रमिकों का अध्ययन करने पर पाया कि उनमें से 10.4% श्रमिक शराब, चरस, भांग, गांजा और अफीम में से किसी-न-किसी मादक पदार्थ का उपभोग करते थे। एक श्रमिक औसतन 40 रु. प्रतिमाह नशीले पदार्थों पर खर्च करता था।

Scanned with OKEN Scanner

देव और जिन्दल ने पंजाब के गाँवों का 1974 में अध्ययन करने पर पाया कि 15 वर्ष से अधिक की आयु के 74% लोगों में शराब पीने की आदत थी। पंजाब के ही गांवों का 1978 में **गुरमीत सिंह** ने अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि 29% लोग मादक पदार्थों का उपयोग करते थे, 40% तम्बाकू का, 26% शराब का एवं 19% अफीम का उपयोग करते हैं।

नशीली दवाओं का सेवन विश्वविद्यालय परिसर को लाँघकर अब पब्लिक स्कूलों की दिवारों में तेजी से प्रवेश कर रहा है। लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ इनकी अधिक शिकार हैं। पब्लिक स्कूल के छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थी इनका सेवन अधिक करते हैं। मसूरी, नैनीताल और दार्जलिंग के स्कूलों के प्रबन्धक छात्रों में नशीली दवाओं के सेवन से अधिक चिन्तित हैं। वर्तमान में मुम्बई में प्रतिदिन नशीली दवाओं के सेवन से 5 मौतें होती हैं और प्रत्येक रात्रि को देश में 100 नये बालक नशीली दवाओं का सेवन प्रारम्भ करते हैं।

अफीम का प्रयोग भारत में मुस्लिम व्यापारियों द्वारा 9 वीं शताब्दी में आरम्भ में हुआ। अफीम को पानी में घोलकर अथवा उसकी गोलियाँ बनाकर खायी जाती हैं। पाचन सम्बन्धी दोष, कफ, दर्द, पीड़ा तथा अनिद्रा की बीमारियों से मुक्ति पाने के लिए अफीम का प्रयोग दवा के रूप में किया जाता है। गांवों में माताएँ बच्चों को सुलाने के लिए व दस्त बन्द करने के लिए अफीम देती हैं, अफीम तम्बाकू की तरह भी पी जाती है। भारत पहले चीन को अफीम निर्यात करता था। जो बाद में बंद हो गया। 1953 के अन्त तक भारत सरकार ने अफीम को तम्बाकू की तरह पीना बन्द कर दिया। आजकल बाजार में अफीम की बिक्री बिल्कुल बन्द कर दी गयी है, लेकिन अफीम का नशा करने वाले लोग अफीम के डोडों को गलाकर उनका पानी पीते हैं। यह पानी नशा पैदा करता है।

चरस का प्रयोग भी भारत में जनसाधारण द्वारा होता रहा है। चरस का पेड़ मध्य एशिया में पाया जाता है। इसके पत्तों और फूलों का प्रयोग नशे के लिए किया जाता है। पंजाब, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली में चरस का प्रयोग बहुत होता था। भारत में चरस सिक्यांग व यार्कलैण्ड से आयात होती थी, किन्तु अब इसके प्रयोग पर भी पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिए जाने से चरस पीने वाले लोग गांजा पीने लगे हैं।

गांजा व भांग का एक ही पेड़ होता है। उस पेड़ की पत्तियाँ भांग एवं फूल गांजा कहलाता है। भांग का प्रयोग पानी में घोलकर, गोलियाँ बनाकर, पकौड़ी, कचौड़ी, लड्डू, बर्फी, बिस्कुट, कुल्फी आदि में डालकर किया जाता है। गांजे को तम्बाकू की तरह चिलम में भरकर पिया जाता है। भांग, गांजा, अफीम व चरस का प्रयोग तम्बाकू में पण्डों, पुजारियों, फकीरों, सन्तों, सपेरों, नटों आदि के द्वारा किया जाता रहा है। उत्सवों तथा त्योहारों एवं होली के अवसर पर लोग भांग का प्रयोग करते हैं। शिव भक्त शिवरात्रि पर इसका प्रयोग करते हैं। भांग हल्का नशा पैदा करती है और शरीर के लिए अधिक हानिकारक नहीं है। इसके पीने से निन्द्रा की अवस्था बनी रहती है। सरकार ने वर्तमान में इसकी खेती एवं व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और लाइसेंस प्रणाली लागू कर दी है।

कोकीन का प्रयोग उच्च वर्ग के लोगों, जमींदारों, मुस्लिम नवाबों एवं बादशाहों द्वारा किया जाता रहा है। कोकीन कोकी नामक पेड़ की पत्तियों से प्राप्त किया जाता है। भारत में इसका आयात 1890 से हुआ। इनका प्रचलन अधिकतर उत्तरी भारत में ही रहा है। दांत के दर्द व अन्य रोगों के लिए भी कोकीन का प्रयोग दवा के रूप में होता रहा है।

अफीम, गांजा और चरस को मिलाकर एल.एस.डी. का निर्माण किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में भारत में मादक द्रव्यों का सेवन बढ़ा है और चोरी-छिपे रुप में इनका विदेशों से आयात होता है। **कॉलेजों** व विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राओं द्वारा मादक पदार्थों का प्रयोग अधिक किया जाने लगा है।

मादक द्रव्य व्यसन के कारण
(Causes of Drug Addiction)

मादक द्रव्य व्यसन के कारणों में उन्हीं कारणों को सम्मिलित किया जाता है जो मद्यपान में दिखाये गये है। केवल दो कारण अलग हैं–

Scanned with OKEN Scanner

मादक द्रव्यों के सौदागरों की भूमिका (Role of Narcotic Maphia)–नारदिनी ने उचित ही लिखा है कि, "मादक द्रव्यों के विक्रय में लालच स्पष्ट कारक है। यही ऐसे लोगों के लिये प्रभुत्व प्रेरक शक्ति है जो इस व्यापार में आसान धन देखते हैं।" वास्तव में ये लोग मानव विनाश का खेल-खेल रहे हैं। इनको बेचने के लिये भी ये उन्हीं को माध्यम बनाते हैं जिन्हें एक बार इन पदार्थों का आदि बना लिया है।

भारत में आकस्मिक प्रसार (Sudden Expansion in India)–पहले इन नशीले पदार्थों का व्यापार पाकिस्तान से होता था, परन्तु अब यें पदार्थ भारत हो कर दूसरी जगह जा रहे हैं। सन् 1981 में इन पदार्थों के भेजने के लिये भारत को मार्ग के रूप में प्रयोग किया था। पहले तो कम मात्रा में व्यापार यहाँ से किया जाने लगा, 1984 में ही भारी मात्रा में भारत के रास्ते ये पदार्थ दूसरे स्थानों पर भेजे जाने लगे। आज भी व्यापार भारत के मार्ग से होना इस बात से ठीक नजर आता है कि भारी मात्रा में नशीले पदार्थों को भारत में पकड़ा जा रहा है।

मादक द्रव्य व्यसन के दुष्प्रभाव
(Bad effect of Drug Addiction)

मद्यपान के दुष्प्रयोग को पहले दिखाया गया है। मादक द्रव्य व्यसन के प्रयोग से भी ये ही दुष्प्रभाव पड़ते हैं। अतः यहाँ पर कुछ सामान्य प्रभावों को दिखाया गया है। **मेमोरिया** ने अनेकों प्रभावों के बारे में बताया है जिनसे आर्थिक, सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। ये हैं–

1. इससे अपराध, भ्रष्टाचार तथा नियम अवहेलना बढ़ती है।
2. व्यक्तियों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है।
3. मानव मस्तिष्क प्रभावित होता है।
4. इनके प्रयोग से शिक्षा का नुकसान होता है।
5. श्रमिक क्षमता कम होती है, जिसके कारण उत्पादन भी प्रभावित होता है।
6. परिवार की खुशी को समाप्त करने का कारण है।
7. वृद्धावस्था में ऐसे व्यक्तियों की हालत काफी खराब हो जाती है।
8. अपने आश्रितों के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज को हानि पहुँचाता है।
9. व्यसनी की यौन शक्ति में भी गिरावट आती है।
10. मादक पदार्थों के प्रयोग के 6 माह के अन्दर ही व्यक्ति इतना चिड़चिड़ा हो जाता है कि किसी भी कार्य को करने में सक्षम ही नहीं रहता।

इसलिये मादक द्रव्यों का सेवन अर्थव्यवस्था, कानूनी व्यवस्था, समाज एवं व्यक्ति के लिये इतना घातक है कि आज यह विश्व के सामने सबसे बड़ी चुनौती बन गया हैं।

महानगरों में स्त्रियों में नशे की बढ़ती आदत (Drug Addiction Among Women in Metropolitan Cities)–

भारत के बड़े-बड़े नगरों में महिलायें मानसिक तनाव से ग्रस्त हैं और मानसिक तनाव को कम करने के लिये कम उम्र में ही वे नशे की अंधी गलियों में भटक रही हैं। **महिला और नशा** विषय पर एक **संयुक्त राष्ट्र कार्यशाला** लगायी गयी, इस कार्यशाला, के बाद एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई और इसमें बताया गया कि भारत में महिला नशेड़ियों की संख्या लगातार बढ़ रही है और इनमें से दो तिहाई से अधिक नशेड़ियों की उम्र 21 से 35 वर्ष के बीच है। नशे की आदतन महिलाओं में लगभग 67 प्रतिशत कामकाजी हैं। **इस रिपोर्ट पर कुछ भारतीय विद्वानों की प्रतिक्रिया–**

1. **डॉ. शोभालाल कपूर**–ये मुम्बई में नशे की आदी महिलाओं को क्षेक करने वाली संस्था **मुक्ति सदन** की निदेशक हैं। आपने कहा कि महिलाओं में इतने नशें के बढ़ने को तो खतरे की घन्टी माना जाए। ये कामकाजी महिलाओं के अकेलेपन को इसका सबसे बड़ा कारण मानती है।
2. **डॉ. प्रतिमा मूर्ति भी डॉ. कपूर के विचारों का समर्थन करती हैं**–ये नशामुक्ति संस्था **निमहंस** की निदेशक हैं। ये बताती हैं कि ज्यादातर कामकाजी महिलायें होस्टलों में रहती है। नशे की शिकार 31 प्रतिशत महिलाओं ने विवाह नहीं किया है और 32 प्रतिशत तलाकशुदा या पति से

Scanned with OKEN Scanner

अलग रहती हैं। काम के तनाव के अलावा ये महिलायें अपने वर्तमान और भविष्य के प्रति भी चिंतित रहती हैं, ऐसी स्थिति में वे नशे को ही एक मात्र विकल्प मानती है और इस के जाल में फँस जाती हैं।

3. **डॉ. कपूर के अनुसार कामकाजी महिलाओं में से 45 प्रतिशत महिलायें देह व्यापार से जुड़ी हुई हैं**– आपके अनुसार कम उम्र में घर से भागकर मुबंई आयी महिलाओं में से अधिकतर वेश्यालयों में पहुँचा दी जाती हैं। **यहाँ वे आसानी से नशे की शिकार हो जाती हैं। इसके अलावा दिल्ली जैसे महानगरों में उच्च वर्ग की युवतियाँ या छात्रायें अपनी नशे की आदत को पूरा करने के लिये वेश्यावृत्ति करती हैं।**

संयुक्त राष्ट्र कार्यशाला में बच्चों के प्रति बढ़ती हुई लापरवाही से जुड़े कुछ और तथ्य भी सामने आये हैं। लगभग 36 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उन्होंने पहली बार 11 से 15 वर्ष की उम्र के आसपास नशा किया था। इसी तरह 32 प्रतिशत महिलाओं ने 16 से 20 वर्ष की आयु में ही नशा करना शुरू कर दिया था। ज्यादातर महिलाओं को नशे की आदत अपने निकट के सम्बन्धियों से ही लगी। लगभग 48 प्रतिशत महिलाओं ने अपने मित्रों और 16 प्रतिशत ने अपने पति या साथी के साथ पहली बार नशे का सेवन किया था।

संयुक्त राष्ट्र की कार्यशाला के रिपोर्ट के अनुसार भारतीय महिला आज नशे की ओर बड़ी तेज गति से बढ़ रही है।

विशेषज्ञ बताते हैं कि नशे की बढ़ती हुई आदत का मुख्य कारण यह है कि नशे के पदार्थ आसानी से मिल जाते हैं। सरकार के तमाम प्रयासों के बावजूद भी नशे का व्यापार काफी तेजी से पूरे देश में फैल रहा है। इसी कारण से नशा करने वाली महिलाओं की 90 प्रतिशत, हेरोइन या ब्राउन शूगर का प्रयोग करती हैं। इसके अतिरिक्त नसों में लिये जाने वाले इग का इस्तेमाल भी आमतौर पर हो रहा है। नशा उन्मूलन में लगी हुई स्वयंसेवी संस्थाओं की सबसे बड़ी शिकायत यह है कि सरकार का उतना सहयोग हमें नहीं मिल रहा है जितने कि हमें आवश्यकता है।

नशा निषेध या नशा बन्दी (Prohibition)–

"नशा-निषेध का तात्पर्य शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों जैसे–भांग, अफीम, गांजा, चरस तथा नशीली औषधियों के उपभोग, बिक्री तथा निर्माण को औषधीय प्रयोजनों के अतिरिक्त, कानून द्वारा निषिद्ध करना है।"

नशीली चीजों का अत्यधिक सेवन अनेक राष्ट्रीय, सामाजिक तथा आर्थिक दुष्परिणामों को जन्म देता है। इस कारण नशा-निषेध की सम्पूर्ण धारणा के अन्तर्गत स्वास्थ्य के लिये हानिकारक समस्त मादक वस्तुओं और औषधियों के उपभोग, बिक्री तथा निर्माण पर प्रतिबन्ध आता है। नशा-निषेध के कानूनों को तोड़ना दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया जाता है।

◆◆◆

4.8 वैश्वीकरण, नगरीकरण तथा आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव (Impact of Globalisation, Urbanisation and Economic changes)

1. **वैश्वीकरण का क्या अर्थ है? इसका क्या महत्त्व है? बच्चों तथा उनकी शिक्षा पर इसका क्या प्रभाव है?**
(What is meant by globalization? What is its importance? What is its impact of globalization education.)

उत्तर–आज का युग विज्ञान का युग है। दूरियाँ घट गई हैं। विश्व के सभी राष्ट्र एक दूसरे के नजदीक आ गए हैं, विभिन्न क्षेत्रों में सभी किसी न किसी रूप में एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं। लोगों की सोच व्यापक हुई है और वैश्वीकरण इन सबका परिणाम है। यदि सच पूछा जाए तो कहा जा सकता है कि

Scanned with OKEN Scanner

वैश्वीकरण की प्रक्रिया आज की आवश्यकता है। लेकिन इसकी आवश्यकता व महत्त्व पर विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि वैश्वीकरण का क्या अर्थ है?

वैश्वीकरण का अर्थ (Meaning of globalization)–वैश्वीकरण एक सोच है, एक व्यापक दृष्टिकोण है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया कहा जा सकता है जो व्यक्ति की सोच एवं दृष्टिकोण को व्यापक बना देती है और वह किसी भी विषय अथवा समस्या को केवल स्थानीय या राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में न देखकर पूरे विश्व के सन्दर्भ में देखने लगता है। वह यह समझने लगता है कि सभी राष्ट्रों में आर्थिक दृष्टि से परस्पर निर्भरता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण व्यक्ति में विश्व चेनता का विकास करने वाली प्रक्रिया है।

इस सन्दर्भ में लैचनर (Lechner) महोदय की यह परिभाषा उल्लेखनीय है–

"वैश्वीकरण का अर्थ है वैश्विक सम्बन्धों का विस्तार, सामाजिक जीवन का विश्व स्तर पर संगठन तथा विश्व चेतना का विकास।'

(Globalizaiton is the expansion of global linkages, the organisation of social life on a global scale and growth of a global consciousness.)

वैश्वीकरण की आवश्यकता व महत्त्व (Need and importance of globalization)–वैश्वीकरण की आवश्यकता व महत्त्व इस प्रकार है–

(1) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास के लिए (To develop international understanding)–अन्तर्राष्ट्रीयता के इस युग में व्यक्तियों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास आवश्यक है। उसे विश्व के नागरिक के रूप में तैयार करना है, जिससे वह उसके प्रति अपने कर्तव्यों को समझ सके। वैश्वीकरण ऐसा करने में मदद करता है।

(2) आर्थिक विकास (Economic development)–वैश्वीकरण मुख्य रूप से आर्थिक सुधार के कार्यक्रमों से सम्बन्ध रखता है। आज प्रत्येक राष्ट्र विकास करना चाहता है और यह आर्थिक विकास बिना सम्भव नहीं है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वैश्वीकरण आवश्यक है।

(3) राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता (Interdependence of nations)–सूचना व तकनीकी का तेजी से विकास हो रहा है। कोई भी राष्ट्र अकेला रहकर न तो अपनी समस्याओं का समाधान कर सकता है और न ही राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हो सकता है। अतः राष्ट्रों की परस्पर बढ़ती निर्भरता के कारण वैश्वीकरण आवश्यक है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान करना (To solve international problems)–कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जो विश्व मानवता के साथ सम्बन्ध रखती हैं, जैसे पर्यावरण प्रदूषण, अशिक्षा तथा गरीबी आदि। इन सब के समाधान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास करना आवश्यक है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया इसमें सहायक है।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना (To encourage international Trade)–विकासशील व अल्पविकसित राष्ट्रों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयात-निर्यात की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया जाए। वैश्वीकरण की प्रक्रिया इस दिशा में हमारी मदद करती है।

भारतीय शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव (Impact of globalization on Indian Education)–यूं तो भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा प्राचीन काल से ही विश्व बन्धुत्व (World Family) का सन्देश देती रही है, पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय शिक्षा पर वैश्वीकरण के प्रभाव को निम्न रूपों में देखा जा सकता है–

1. वैश्वीकरण एवं भारतीय शिक्षा के उद्देश्य (Globalization and aims of Indian education)–वैश्वीकरण की प्रक्रिया से प्रभावित होकर आज हमारी शिक्षा विद्यार्थियों को विश्व के नागरिक के रूप में तैयार कर रही है। यह उनमें व्यावसायिक कौशल का विकास भी कर रही है, जिससे प्रशिक्षित मानवीय शक्ति आर्थिक विकास में अपना योगदान दे सके। शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य आधुनिकीकरण को बढ़ावा देना भी है, क्योंकि इससे उनकी सोच व कार्य करने के तरीकों में नवीनता आएगी।

यही नहीं; आज हमारी शिक्षा का अर्थ ही बदल गया है। शिक्षा का अर्थ जानकारी या सूचना एकत्रित करना नहीं है। यह तो एक ऐसी प्रक्रिया बन गई है जो उन्हें यह सिखाती है कि वे कैसे सीखें। यह उनमें

Scanned with OKEN Scanner

समझ, कौशल व रचनात्मकता का विकास करती है जिससे वैश्वीकरण के इस युग में वे अपने दायित्वों का अच्छी प्रकार से निर्वहन कर सकें।

वैश्वीकरण व पाठ्यक्रम (Globalization and curriculum)–शैक्षिक पाठ्यक्रम भी वैश्विक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जा रहा है। उन्हें विश्व इतिहास, भूगोल व साहित्य आदि की जानकारी दी जा रही है। विभिन्न कौशलों के प्रशिक्षण द्वारा उन्हें कुशल मानव शक्ति के रूप में परिवर्तित किया जा रहा है, 'मूल्य शिक्षा' (Value education) तथा 'नैतिक शिक्षा' (Moral educaiton) जैसे विषयों के द्वारा उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाया जा रहा है, जिससे उन्हें विश्व नागरिकता के लिए तैयार किया जा सके।

वैश्वीकरण व शिक्षण विधियाँ (Globalization and Teaching Methods)–भारतीय शिक्षा में वैश्वीकरण का प्रभाव शिक्षण विधियों पर बहुत अधिक दिखाई दे रहा है। विद्यालयों व महाविद्यालयों में 'एजुसेट' द्वारा शिक्षा दी जा रही है। इन्टरनेट व कम्प्यूटर द्वारा घर बैठे ही बच्चे स्वयं ज्ञान अर्जित कर रहे हैं। स्मार्ट क्लास रूम (Smart class-room) का प्रत्यय विकसित हो रहा है, जिसके अन्तर्गत कक्षा-कक्ष सभी आधुनिक सुविधाओं से युक्त बनाकर बच्चों को प्रभावी ढंग से सीखने योग्य बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

वैश्वीकरण एवं शिक्षक (Globlization and Teacher)–वैश्वीकरण ने वर्तमान अध्यापक की भूमिका को पूरी तरह से बदल दिया है। वर्तमान तकनीकी ने शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अध्यापक की भूमिका को गौण बना दिया है। आज बच्चे इन्टरनेट तकनीक से हर प्रकार की जानकारी प्राप्त करने लगे हैं। दूरस्थ शिक्षा (Distance education) में भी अनेक नवाचार (Innovations) हो रहे हैं। टेली-कान्फ्रेन्सिंग (Tele conferencing) इनमें से एक है। इसके अन्तर्गत बच्चे कक्षा में पढ़ाने वाले अध्यापक से ही नहीं, कहीं दूर बैठे योग्य शिक्षक से ज्ञान अर्जित करते हैं।

वैश्वीकरण के कारण अध्यापक का घटता महत्त्व इसका एक दुष्प्रभाव ही है, क्योंकि कोई भी तकनीक कभी भी अध्यापक का स्थान नहीं ले सकती। अध्यापक बच्चों के लिए आदर्श होता है। वह बिना उपदेश दिए भी बच्चे में अच्छे संस्कारों को विकसित कर सकता है जो कि केवल तकनीक द्वारा असम्भव है। फिर भी अनेक भारतीय शिक्षा संस्थान विदेशी विश्वविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों से अपने विद्यार्थियों को शिक्षा दिलवाने की बात कर रहे हैं।

आधुनिक तकनीकी विकास के कारण शिक्षण विधियों में हो रहे परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए आज अध्यापक से यह अपेक्षा की जाने लगी है कि वह नवीन तकनीक का प्रयोग करने में दक्ष हो और वह केवल ज्ञानदाता ही नहीं एक मार्गदर्शक की भूमिका का भी अच्छी प्रकार निर्वाह करे।

वैश्वीकरण एवं शिक्षा का माध्यम (Globalization and Medium of education)– वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण ही आज भी भारतीय अंग्रेजी माध्यम को महत्त्व देते हैं। इसीलिए हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का निरन्तर विस्तार हो रहा है।

वैश्वीकरण एवं शिक्षा का सार्वभौमिकरण (Globalization and universalisation of education)–स्वतन्त्रता के बाद यद्यपि भारतीय संविधान द्वारा प्राथमिक शिक्षा के सार्भौमिकरण का लक्ष्य रखा गया था, परन्तु अनेक कारणों से हम इसे अभी तक भी प्राप्त नहीं कर पाए हैं। लेकिन विश्व बैंक ने 'सबके लिए शिक्षा' (Education for all) को एक आर्थिक महत्त्व का विषय मानते हुए 18 देशों को इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनुदान देने की बात कही। भारत भी इन देशों में से एक है। इस प्रकार वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण हम 'सबके लिए शिक्षा' के अपने लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैश्वीकरण का भारतीय शिक्षा पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इसके कुछ बुरे प्रभाव भी देखने को मिल रहे हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दी हमारी राष्ट्र-भाषा है। फिर भी विद्यार्थी अंग्रेजी माध्यम अपनाना चाहते हैं। अध्यापक और विद्यार्थी के बीच अन्तःक्रिया कम हुई है। यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का मशीनीकरण हो रहा है। दूरस्थ शिक्षा (distance education) का प्रचलन बढ़ा है। इन सब कारणों से शिक्षा बच्चे में अभीष्ट मूल्यों का विकास नहीं कर पा रही है। यही नहीं आर्थिक संसाधनों

Scanned with OKEN Scanner

के अभाव के कारण शिक्षण के नवीन साधनों व तकनीक को अपनाना भी हमारे लिए कठिन है; साथ ही इन सबके लिए अनुकूल शैक्षिक वातावरण का भी अभाव है। ध्यातव्य है कि कोई भी तकनीक अध्यापकों व विद्यार्थियों का स्थान नहीं ले सकती। आवश्यकता इस बात की है कि हम वैश्वीकरण की आत्मा या मूल-भावना को समझें और नवीन व प्राचीन में समन्वय बनाए रखते हुए यह प्रयास करें कि शिक्षक व शिक्षार्थी के बीच गरिमापूर्ण सम्बन्ध बने रहें, अध्यापक व विद्यार्थियों में अध्ययन की प्रवृत्ति बनी रहे और नवीन तकनीक उनके ज्ञान व कौशल को अधिक पुष्ट करने का माध्यम हो न कि यह उनका स्थान ग्रहण कर ले। यदि हम ऐसा कर पाते हैं तो हम शिक्षा के क्षेत्र में नई ऊँचाइयों को छूने में सफल होंगे; इसमें कोई सन्देह नहीं।

◆◆◆

2. नगरीकरण से आपका क्या अभिप्राय है? ग्रामीण समुदाय तथा नगरीय समुदाय में क्या अन्तर है? नगरीकरण का बच्चों के निर्माण तथा अनुभव पर प्रभावों का वर्णन कीजिए।
(What do you mean by urbanization? What is difference between rural and urban community? Describe the impact of urbanization on construction and experience of children.)

उत्तर–भारत के जीवन की विशेषताओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया को नगरीकरण कहते हैं। अतः नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा ग्राम धीरे-धीरे नगर में परिवर्तित हो जाता है।

नगर ग्राम से बाद की अवस्था है। नगर तथा नगरीय समुदाय की उत्पत्ति एकाएक नहीं हुई बल्कि जिन स्थानों पर कुछ अतिरिक्त सुविधायें उपलब्ध होती गयीं जिससे वहाँ की जनसंख्या बढ़ती चली गयी और वे स्थान नगरों में परिवर्तित होते चले गये। नगरीय समुदाय की एक विशेष जीवन शैली होती है जिसके आधार पर ये गांवों से अलग दिखाई देते हैं। नगरीय समुदाय की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। नगरीय समुदाय की परिभाषा विद्वानों ने जनसंख्या के आकार तथा घनत्व को सामने रखकर देने का प्रयास किया है। ये कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं–

(1) हलबर्ट (Helbert) के अनुसार–"स्वयं सभ्यता के जन्म के समान ही नगर का जन्म भी भूत के अंधेरे में खो गया है।

(2) किंग्स्ले डेविस (Kingslay Davis) का कहना है कि सामाजिक दृष्टि से नगर केवल जीवन की एक विधि है तथा यह एक अनुपम प्रकार के वातावरण अर्थात् नगरीय परिस्थितियों की उपज होती है। इनके अनुसार–"नगर एक ऐसा समुदाय है जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विषमता पायी जाती है तथा जो कृत्रिमता, व्यक्तिवादिता, प्रतियोगिता एवं घनी जनसंख्या के कारण नियन्त्रण के औपचारिक साधनों द्वारा संगठित होता है।"

(3) विलकन्स (Vilkans) के अनुसार–"नगरों के अन्तर्गत वे सभी क्षेत्र आते हैं जिनमें जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग मील 1000 से अधिक है तथा वस्तुतः कोई कृषि नहीं होती है।"

(4) लूमिस (Lumis) के अनुसार–"नगर एक ऐसी इकाई है जिसे उसके निकटवर्ती क्षेत्रों से जनसंख्या के आकार एवं घनत्व, व्यवसाय की प्रकृति, सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति जैसी विशेषताओं के आधार पर अलग किया जा सकता है।"

(5) क्विनिन (Quinin) के अनुसार–"नगर का अभिप्राय कानून द्वारा निर्धारित उस क्षेत्र से है जिसमें एक निश्चित जनसंख्या का निवास हो तथा जिसकी सीमाओं के अन्दर की व्यवस्था को स्थापित करने का कार्य राज्य द्वारा अधिकृत एक स्थानीय सत्ता के द्वारा किया जाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वह समुदाय नगरीय कहलाता है। जिसकी आबादी सघन और अधिक होती है, जहाँ धन का अधिक महत्व होता है, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण पाया जाता है, श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण पाया जाता है, समाज में गतिशीलता पायी जाती है, औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण तथा प्रतिस्पर्धा आदि विशेषताएँ होती है।

Scanned with OKEN Scanner

नगरीय समुदाय की विशेषताएँ
(Characteristics of Urban Community)

(1) अधिक जनसंख्या घनत्व (More Popluation Density)–नगरीय समुदाय की प्रमुख विशेषता उसकी अधिक जनसंख्या तथा अधिक जनसंख्या घनत्व है। जनसंख्या की अधिकता के आधार पर नगरों को नगर एवं महानगरों में वर्गीकृत किया जाता है; जैसे–दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, अहमदाबाद तथा चन्डीगढ़ आदि नगरों का जनसंख्या का घनत्व 2000/किमी. से भी अधिक है। उद्योग धन्धों की अधिकता, शिक्षण संस्थायें, राजनैतिक तथा व्यापारिक गतिविधियों का केन्द्र, व्यक्ति को अधिक सुविधायें आदि के कारण इन स्थानों की जनसंख्या बढ़ती चली जाती है। जो नगर के आकार को बढ़ाती चली जाती है।

(2) सामाजिक विभिन्नता (Social Heterogeneity)–नगर की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता सामाजिक भिन्नता होती है नगरों में विभिन्न प्रकार की जातियों, धर्मों एवं संस्कृतियों के लोग रहते हैं; जिनकी वेष-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, बोल-चाल एवं आदर्शों में अत्याधिक विभिन्नता पाई जाती है फिर भी इनमें सामंजस्य होता है। इस प्रकार नगरों में सामाजिक भिन्नता पायी जाती है।

(3) व्यवसायों में विभिन्नता (Occupational Differences)–नगरीय समुदाय में ग्रामीण समुदाय की तरह से सामान्यतः सभी लोगों का व्यवसाय एक जैसा नहीं होता है बल्कि नगर में उद्योग-धन्धों, व्यापार तथा वाणिज्य, विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी सेवाओं से सम्बन्धित व्यवसायों की अधिकता होती है और इन्हीं व्यवसायों के द्वारा नगरीय व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इस तरह से नगरों में व्यवसायों की अधिकता के कारण अलग-अलग लोग अलग-अलग व्यवसायों में लगे होते हैं।

(4) द्रव्य मापी अर्थव्यवस्था (Money Economy)–इससे हमारा अभिप्राय उस अर्थव्यवस्था से है जिसमें वस्तुओं का विनिमय, आदान-प्रदान मुद्रा के माध्यम से होता है, मुद्रा के प्रचलन से पहले भी नगरीय बाजार होते थे जिनमें वस्तुओं के बदले में वस्तुएँ ली और दी जाती थीं। लेकिन बाजार के विस्तार के साथ-साथ ऐसे माध्यम की आवश्यकता महसूस हुई जिससे वस्तुओं का मूल्य तय किया जा सके। यहीं से मुद्रा का प्रचलन चालू हो गया। एंडरसन एवं इंश्वर ने इसे आधुनिक नगरों की आधारभूत विशेषता माना है।

(5) श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण (Division of Labour and Specialisation)–नगरीय समुदाय में पाई जाने वाली व्यावसायिक विभिन्नता हर व्यक्ति से अपने व्यवसाय में विशेष योग्यता की मांग करती है। इसीलिये नगरों में जज, वकील, डाक्टर, प्रोफेसर, इंजीनियर आदि अपने-अपने व्यवसाय में विशेषज्ञ होते हैं। इतना ही नहीं एक ही व्यवसाय परन्तु अलग-अलग विशेषज्ञता भी पायी जाती है; जैसे–प्रोफेसर में हिन्दी, अंग्रेजी, भूगोल, इतिहास तथा राजनीतिशास्त्र आदि के विशेषज्ञ होते हैं। इसी तरह डाक्टरी व्यवसाय में शिशु विशेषज्ञ, आंखों का विशेषज्ञ, स्त्री रोग विशेषज्ञ, हड्डी एवं जोड़ विशेषज्ञ होते हैं। अतः नगरों में कार्य विशेषताओं के आधार पर बांट कर कराया जाता है जो अधिक लाभदायक होता है।

(6) सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility)–नगरों में व्यक्ति की स्थिति उसकी योग्यता पर आधारित होती है। व्यक्ति अपनी विशेषताओं तथा योग्यता के आधार पर अपना व्यवसाय बदल सकता है तथा अगर व्यवसाय नहीं बदलता तो अधिक वेतन प्राप्त होने पर स्थान बदल लेता है; जैसे–एक इन्जीनियर वेतन बढ़ने पर दूसरी कम्पनी में नौकरी कर लेता है। अर्थात् नगरों में व्यवसायों की अधिकता तथा व्यवसाय बदलने की छूट होने के कारण कार्य करने वालों में अधिक गतिशीलता पायी जाती है।

(7) अवैयक्तिक सम्बन्ध (Impersonal Relationship)–नगरीय जीवन अत्यन्त व्यापक होता है। इसमें विभिन्न जातियों, प्रजातियों, वर्गों एवं धर्मों के लोग निवास करते हैं। अतः नगरवासी सभी लोग आपस में एक-दूसरे को पूरी तरह से नहीं जानते। अगर दो व्यक्तियों में परिचय हो भी जाता है तो भी उनमें सम्बन्धों में औपचारिकता विद्यमान रहती है। इसीलिये इनमें अवैयक्तिक सम्बन्ध ही पाये जाते हैं। अतः नगरीय जीवन में सम्बन्धों का स्वरूप बाह्य एवं अवैयक्तिक अधिक होता है।

(8) औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण (Formal Social Control)–औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण नगरों की प्रमुख विशेषता होती है। नगरीय समुदाय में अत्यधिक सामाजिक विषमता के कारण केवल धर्म,

Scanned with OKEN Scanner

प्रथाओं, रूढ़ियों एवं मूल्यों की सहायता से सामाजिक नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता है। इसीलिये नगरों में औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण के साधनों जैसे–पुलिस, सेना, कानून एवं अदालत आदि की सहायता ली जाती है।

(9) पारिवारिक नियन्त्रण का अभाव (Lack of Family Control)–नगरीय समुदाय में पारिवारिक नियन्त्रण ग्रामीण समुदायों की अपेक्षा काफी कम होता हैं नगर में वे सुविधाएँ विभिन्न एजेन्सियों के द्वारा प्राप्त हो जाती हैं जिनके लिये पहले व्यक्ति परिवार पर निर्भर रहता था। नगरों में रोटी बनाने के लिये होटल, बच्चों के पालन-पोषण के लिये शिशु गृह, माताओं के काम के लिये अन्य संस्थायें खुल गयी हैं। पैसे खर्च करके परिवार के सभी कार्यों को नगरों में परिवार से बाहर ही कराया जा सकता है। पैसे का महत्व परिवार से अधिक हो गया है। इसी कारण व्यक्ति पर परिवार का नियन्त्रण स्वयं ही कम होता चला गया है। अब वह परिवार पर आश्रित नहीं रहा है।

(10) स्त्रियों की दशा (Status of Women)–नगरों में गांवों की तुलना में स्त्रियों की स्थिति ऊंची होती है। यहाँ पर जीवन के हर क्षेत्र में वे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती देखी जा सकती है। यहाँ पर महिलाओं को अपने व्यक्तित्व के विकास के सभी अवसर मिलते हैं। शिक्षा एवं जागरुकता के कारण वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत होती हैं और अन्याय के विरुद्ध लड़ती रहती है।

(11) प्रतिस्पर्धा (Competition)–नगरीय समुदाय में जीवन के हर क्षेत्र में चाहे सामाजिक हो, आर्थिक हो या फिर राजनैतिक हो, कड़ी प्रतिस्पर्धा देखी जा सकती है। नगरों में प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति को हराना होता है। इसके लिये चाहे उनको किसी भी साधन का प्रयोग क्यों न करना पड़े। **डेविस (Davis)** का इस सन्दर्भ में कहना है कि नगरों में व्यक्तिवादिता इस सीमा तक पायी जाती है कि व्यक्ति अपने को सबसे चतुर समझता है तथा अपने लिये अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है इससे चाहे उसको सार्वजनिक रूप से कितनी भी हानि क्यों न हो।"

(12) द्वितीय समूहों की प्रधानता (Dominancy of Secondary Groups)–नगरों में द्वितीय समूहों की प्रधानता पायी जाती है। नगरों में लोगों के समबन्ध अधिक घनिष्ठ नहीं होते। अधिकतर दिखावे का ही प्यार दिखाते हैं और सभी जगह दिखावा मात्र होता है। लोग केवल अपने हितों की पूर्ति के लिये ही दूसरे से सम्बन्ध जोड़ते हैं और काम निकलने के बाद सम्बन्ध या समूह समाप्त हो जाते हैं।

(13) सामाजिक समस्याओं का केन्द्र (Centre of Social Problems)–अत्यधिक जनसंख्या, औद्योगिकरण एवं गलाकाट प्रतिस्पर्धा के कारण नगर सामाजिक समस्याओं के केन्द्र बन गये हैं। नगर की प्रमुख समस्याओं में मकानों की समस्या, गरीबी, बेरोजगारी, मद्यपान, वैश्यावृत्ति, बाल-अपराध, कुपोषण आदि प्रमुख हैं।

(14) मानिसक संघर्ष (Mental Conflict)–नगरों से जहाँ कुछ सुविधायें प्राप्त होती है, वहाँ जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये अत्यधिक मानसिक संघर्ष करने पड़ते हैं। नगरों में जीवन शोरगुल से भरा हुआ तथा तेज गति से चलने वाला होता है। जीवन की गति में तेजी के कारण अपने आप को पिछड़ने से बचाने के लिये काफी मानसिक संघर्ष करने पड़ते हैं।

(15) फिजूल खर्ची एवं कृत्रिमता (Extravagence and Artificiality)–नगरों में फिजूल खर्ची एवं कृत्रिमता बहुत होती, क्योंकि नगरों में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसके बाहरी दिखावे से ही निश्चित होती है। इसी कारण व्यक्ति दिखावे पर काफी पैसा खर्च कर देता है। लोगों के आपसी व्यवहार में काफी औपचारिकताएँ पायी जाती हैं।

(16) तीव्र सांस्कृतिक परिवर्तन (Fast Cultural Change)–तीव्र सांस्कृतिक परिवर्तन नगरों की एक विशेषता है। मनुष्य द्वारा अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने के लिये संस्कृति में परिवर्तन किया जाता है। पर्यावरण में नयी-नयी खोजों के कारण प्रतिदिन कोई न कोई परिवर्तन आता रहता है तो मनुष्य भी इन्हीं परिवर्तनों के अनुसार अनुकूलन के लिये अपनी संस्कृति में भी परिवर्तन करता है। इस प्रकार ये परिवर्तन नगरों में अधिक होते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(17) सामाजिक सहनशीलता (Social Tolerance)–यह नगरीय समाज की महत्वपूर्ण विशेषता है। यह गुण इस समाज का आन्तरिक गुण नहीं होता बल्कि व्यक्ति अपने हितों की पूर्ति के लिये इच्छा न होते हुए भी सामाजिक सहनशीलता दर्शाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि नगरीय समाज में व्यक्तियों को अपने स्वार्थों के लिये अन्य व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः ऐसे व्यक्तियों में सामान्य सम्बन्ध बनाये रखने पड़ते हैं जो उनकी स्वार्थसिद्धि में काम आते हैं। इसीलिये व्यक्तियों में सहनशीलता का गुण पाया जाता है।

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त भी नगरीय समुदाय में कुछ और भी विशेषताएँ पायी जाती हैं जैसे–

(18) एकल परिवार (*Nuclear Family*)

(19) मैं की भावना (*"I" Feeling*)

(20) कृत्रिम वातावरण (*Man made Environment*)

(21) मनोरंजन का व्यापारीकरण (*Commercialisation of Recreation*)

(22) विभिन्न प्रकार के उद्योग (*Different Types of Industiries*)

(23) जाति का कम महत्व (*Less Importance of Caste*)

(24) विभिन्न प्रकार के विवाह (*Diffeent Types of Marriage*)

(25) यातायात एवं संचार के साधनों का विकास (*Development of Transport and Communication means*)

ग्रामीण समुदाय तथा नगरीय समुदाय में अन्तर *(Difference between Rural and Urban Community)*

समाजशास्त्र के विद्वान मैकाइवर ने ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय की तुलना में कठिनाइयाँ व्यक्त की है उनके अनुसार ग्रामीण तथा नगरीय शब्द एक ही स्थान की दो विभिन्न दशायें हैं। विभिन्न विद्वानों ने ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा सभी अपने मतानुसार सही हैं। सामान्यतः हम कह सकते हैं कि कोई भी समुदाय ऐसा नहीं होता जो पूरी तरह ग्रामीण या पूरी तरह नगरीय हों। दोनों की ही विशेषताएँ एक-दूसरे में पायी जाती है। फिर भी हम ग्रामीण तथा नगरीय समुदायों में निम्नलिखित आधार पर तुलना करने का प्रयास करेंगे–

(a) सामाजिक जीवन के आधार पर ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय की तलुना (Difference Between Rural and Urban Community on the Basis of Social Life)–सामाजिक जीवन के आधार पर दोनों में निम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं–

(1) गांव के लोगों में प्राथमिक तथा स्थायी सम्बन्ध पाये जाते हैं क्योंकि ग्रामीण समुदाय की जनसंख्या बहुत ही कम होती है। इसीलिये उन्हें आपस में एक-दूसरे के निकट आने के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं [illegible] इस कारण उनमें आपसी सम्बन्ध घनिष्ठ, अनौपचारिक तथा प्राथमिक होते हैं।

इसके विपरीत नगरीय समुदायों का आकार बड़ा होता है और व्यक्ति अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये असंख्य लोगों के सम्पर्क में आता है। स्वाभाविक है कि इतने लोगों के साथ उसके सम्बन्ध घनिष्ठ नहीं हो सकते। उनके साथ तो केवल द्वितीयक और औपचारिक सम्बन्ध ही होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण समुदायों में व्यक्तिगों के बीच प्राथमिक तथा नगरीय समुदाय में द्वितीयक सम्बन्ध पाये जाते हैं।

ग्रामीण समुदाय में आवगमन की कमी के कारण अधिक समय तक काफी लोग एक ही परिवार में रहते चले जाते हैं। जबकि नगरीय समुदायों में अस्थायी सम्बन्धों के कारण स्थायित्व नहीं पाया जाता है।

(2) सामुदायिक भावना के आधार पर दोनों में अन्तर–ग्रामीण समुदाय में हम की भावना पायी जाती है जबकि नगरीय समुदाय में मैं की भावना पायी जाती है। इसी को हम समूहवादी विचारधारा और व्यक्तिवादी विचारधारा भी कहते हैं।

Scanned with OKEN Scanner

(3) सामाजिक प्रतिष्ठा तथा जाति (Social Prestige and Caste) के आधार पर दोनों में अन्तर ग्रामीण समुदाय के व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा उसके व्यवसाय, खान-पान, रहन-सहन तथा जाति पर निर्भर करती है और यह उसके जन्म से ही तय हो जाती है और मृत्यु तक चलती रहती है, क्योंकि जाति जन्म से मृत्यु तक बदली नहीं जा सकती।

इसके विपरीत नगरीय समुदाय में एक व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा उसके व्यवसाय, खान-पान, रहन-सहन, व्यक्तिगत गुण और कुशलता पर निर्भर करती है। वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा में स्वयं की मेहनत से परिवर्तन ला सकता है।

(4) विभिन्न प्रकार की समितियों एवं संस्थाओं (Associations and Institutions) के आधारपर दोनों में अन्तर—नगरों में व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार की समितियां तथा संस्थायें पायी जाती हैं। जबकि गांवों में इस प्रकार की समिति या संस्था नहीं पायी जाती।

(5) व्यक्तिवादी भावना (Individualistic Feelings)—नगरीय समुदाय में लोग व्यक्तिवादी होते हैं, वे पड़ोसी के प्रति उदासीन होते हैं, उनमें सामाजिक सहनशीलता पायी जाती है। नगरों में व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास के काफी अवसर प्राप्त होते हैं। ग्रामीण समुदाय भाग्यवादी होता है तथा उनके सामाजिक जीवन में एकरूपता होने के कारण उनमें व्यक्तिवादी भावना नहीं पनपने पाती और व्यक्ति को उन्नति के बहुत ही कम अवसर मिल पाते हैं।

(6) सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) के आधार पर दोनों में अन्तर—ग्रामीण समुदाय में जाति के आधार पर बन्द स्तरीकरण होता है, व्यवसाय परिवर्तन की सुविधा नहीं होती। इस कारण से कम गतिशीलता पायी जाती है। नगरीय समुदाय में वर्ग के आधार पर खुला स्तरीकरण होता है और व्यवसाय परिवर्तन की भी सुविधा होती है। इसीलिये नगरों में अधिक गतिशीलता पायी जाती है। व्यक्ति अपना स्थान तथा व्यवसाय छोड़कर कहीं भी जा सकता है। सोरोकिन के अनुसार—"ग्रामीण समुदाय एक घड़े में पड़े शान्त जल के समान है जबकि नगरीय समुदाय एक पतीले में उबलते हुए पानी के सामान हैं।"

(7) सामाजिक परिवर्तन (Social Change)—के आधार पर दोनों में अन्तर ग्रामीण समुदाय के लोग रूढ़िवादी तथा परम्परावादी होते हैं। इसलिये उनमें तेजी से बदलाव नहीं होता और ये लोग कोई भी नया कदम उठाते हुए डरते हैं। इसके विपरीत नगरों में लोगों के तर्कवादी तथा शिक्षित होने के कारण किसी भी परिवर्तन को हानि-लाभ के आधार पर तुरन्त अपना लेते हैं। अर्थात् नगरों में सामाजिक परिवर्तन की गति तेज तथा गांवों में धीमी होती है।

(8) पर्यावरण (Environment) के आधार पर दोनों में अन्तर—नगर का पर्यावरण प्रकृति से दूर होता है। नगरों में हवा तथा पानी भी शुद्ध प्राप्त नहीं होता जबकि ग्रामीण समुदाय प्रकृति की गोद में शुद्ध हवा तथा पानी प्राप्त करता रहता है।

(9) सामाजिक नियन्त्रण (Social Control) के आधार पर दोनों में अन्तर—ग्रामीण समुदाय में अपने सदस्यों के व्यवहारों पर नियन्त्रण के लिये अनौपचारिक साधनों जैसे—परम्परायें, विश्वास, धर्म, रूढ़िया आदि का सहारा ज्यादातर लिया जाता है और औपचारिक साधनों का प्रयोग कम से कम किया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके विपरीत नागरीय समुदाय में विभिन्नता पायी जाती है, द्वितीयक सम्बन्ध पाये जाते हैं। वैज्ञानिक विचारधारा होती है। जिसके कारण अनौपचारिक साधनों के स्थान पर सामाजिक नियन्त्रण के औपचारिक साधनों का प्रयोग किया जाता है; जैसे—पुलिस, सेना, अदालत, कानून आदि औपचारिक साधन है। नगरों में परिवार की सामाजिक नियन्त्रण में कोई खास भूमिका नहीं रही है।

(10) पारिवारिक जीवन (Family Life) के आधार पर अन्तर—ग्रामीण समुदाय में संयुक्त परिवार पाये जाते हैं। व्यक्ति पर परिवार का पूरा नियन्त्रण पाया जाता है जबकि नगरों में एकाकी परिवार पाये जाते हैं और व्यक्ति पर परिवार का कोई नियन्त्रण नहीं होता।

Scanned with OKEN Scanner

ग्रामीण समुदाय में विवाह न केवल धार्मिक संस्कार बल्कि पारिवारिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य होता है। बाल-विवाह अब भी पाये जाते हैं। विधवा-विवाह, प्रेम विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह लगभग नहीं पाये जाते हैं। इसके विपरीत नगरीय समुदाय में विवाह का सामाजिक तथा धार्मिक आधार कमजोर हुआ है, विवाह की आयु में वृद्धि हुई है, प्रेम-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह काफी संख्या में होने लगे हैं। नगरों में तलाक की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है।

(11) स्त्रियों की स्थिति (Status of Woman) के आधार पर दोनों में अन्तर–नगरीय समुदाय में शिक्षा के कारण स्त्रियों की स्थिति ऊंची होती है क्योंकि शिक्षित होने के कारण वे पुरुषों की तरह से घर से बाहर जाकर नौकरी करने लगी है। पर्दा प्रथा नगरों में ना के बराबर ही पाया जाता है। विवाह तथा अन्य मामलों में स्त्रियों को पुरुष के समान अधिकार मिल गये हैं।

इसके विपरीत ग्रामीण समुदाय में अशिक्षा, रूढ़िवादिता के कारण स्त्री का जीवन घर की चार दीवारी में ही कैद रह जाता है। विवाह के सम्बन्ध में उससे कुछ नहीं पूछा जाता है। पर्दा आवश्यक है। आर्थिक मामलों में पूरी तरह से पुरुष पर निर्भर है।

(12) आर्थिक जीवन (Economic Life) के आधार पर दोनों में अन्तर–ग्रामीण समुदाय में अधिकतर लोगों का व्यवसाय कृषि या उससे सम्बन्धित उद्योग है। जिसके कारण आर्थिक समरूपता अपेक्षाकृत अधिक होती है। ग्रामीण समुदाय में श्रम विभाजन का अत्यन्त सरल रूप तथा व्यवसायों का विशेषीकरण नहीं होता। इसके विपरीत नगरीय समुदाय में अत्यधिक आर्थिक विषमता पायी जाती है। एक ओर तो बड़ी-बड़ी कोठियों में रहने वाले धनी लोग होते हैं तथा दूसरी ओर मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित झोंपड़पट्टी के लोग होते हैं। नगरीय समुदाय में वर्ग संघर्ष चलता रहता है। जबकि ग्रामीण समुदाय में जातीय संघर्ष न के बराबर होता है।

(13) आकृति एवं प्रकृति (Size and Nature) के आधार पर भी अन्तर–गांव की तुलना में नगरों का आकार बड़ा होता है। नगरों में विभिन्न देशों, प्रान्तों, धर्मों, वर्गों एवं जातियों के लोग रहते हैं। इसीलिये नगरों की जनसंख्या में एकरूपता नहीं होती जबकि ग्रामीण समुदाय में सामाजिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक एकरूपता पायी जाती है।

(14) सांस्कृतिक एवं राजनैतिक (Cultural and Political Life) जीवन के आधार पर दोनों में अन्तर–ग्रामीण समुदाय में धर्म के प्रति काफी आस्था होती है तथा उसका नैतिक जीवन बहुत ऊंचा होता है। लेकिन नगरों में शिक्षा एवं विज्ञान के प्रसार के कारण धर्म का प्रभाव कम होता जा रहा है। वे ग्रामीण लोगों की तरह से अन्धविश्वासी एवं भाग्यवादी नहीं होते बल्कि वे नवीनता के पुजारी होते हैं। ग्रामीण अन्धविश्वासी एवं भाग्यवादी होने के साथ-साथ अपने आपको परमपराओं से जोड़े रखना चाहते हैं।

नगरीय समुदाय में राजनैतिक जागरुकता अधिक होती है तथा लोग विभिन्न विषयों पर अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करते हैं लेकिन ग्रामीण समुदाय में राजनैतिक विचारधारा पारिवारिक होती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समुदाय तथा नगरीय समुदाय की उपरोक्त वर्णित विशेषताएँ वास्तव में सापेक्षिक हैं। यह जरूरी नहीं है कि उनमें से सभी विशेषताएँ किसी गांव या शहर में विद्यमान हों। इन दोनों में कोई स्पष्ट विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती है। अनेक ऐसे समुदाय भी हैं जिनमें दोनों ही लक्षण दिखायी देते हैं। हमें इन्हें परस्पर विरोधी समुदायों के रूप में नहीं देखना चाहिये। दोनों एक-दूसरे के पूरक तथा दोनों का ही व्यक्ति या समाज के लिये समान महत्व है।

नगरीकरण का बच्चों के निर्माण तथा अनुभव पर प्रभाव
(impact of urbanisation on construction and experience of children)

नगरीकरण का बच्चों के निर्माण तथा अनुभव पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है–

1. नगरीकरण के कारण बच्चों में हम की भावना के स्थान पर मैं की भावना का विकास हुआ है।
2. जटिल जीवन के कारण बच्चों में मानसिक संघर्षों की अधिकता देखने को मिलती है।

Scanned with OKEN Scanner

3. नगरीकरण के कारण बच्चों में अंधविश्वास तथा कुरीतियों में कमी आई है।
4. संयुक्त परिवार टुटकर एकाकी परिवार में बदल गए हैं इस कारण बच्चों में आपसी सहयोग की भावना कम होती है।
5. शहरीकरण के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण बच्चों में अनेक प्रकार की बिमारियाँ बढ़ रही है।
6. जनसंख्या वृद्धि के कारण शहरों बेरोजगारों की संख्या बढ़ गई है। इस कारण बेरोजगार यूवा अपराधों की ओर बढ़ जाते हैं।
7. शहरों में पाश्चात्य संस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है। इस कारण बच्चों में अनैतिकता की भावना बढ़ रही है।
8. शहरों में वैज्ञानिक विचारों के कारण धार्मिक रुढ़िवादिता में कमी आई है।
9. शहरीकरण के कारण स्त्रियों की शिक्षा में काफी बदलाव आया है। शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की बजाए बालिकाओं की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

◆◆◆

3. आर्थिक परिवर्तन से आपका क्या अभिप्राय है? आर्थिक परिवर्तन का बचपन तथा किशोरावस्था में बच्चों के निर्माण तथा अनुभव पर क्या प्रभाव है?
(What is economic change? What is the impact of economic changes on construction and experiences of children in childhood and adolescent age.)

उत्तर–आर्थिक परिवर्तन (Economic Changes)–आर्थिक परिवर्तन में उद्योग, कृषि तथा व्यापार आदि से सम्बन्धित परिवर्तन आते हैं। इस पहलू में उत्पादन और वितरण की ओर ध्यान दिया जाता है। निर्धनता को दूर करने और लोगों को निर्धनता के स्तर से उठाने के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। उद्योग, कृषि तथा व्यापार में विकास के कारण लोगों के दृष्टिकोणों में भी विकास हुआ है। प्रायः देखने में आ रहा है कि समाज में परिवर्तन बड़ी तेजी से हो रहा है। पूंजीवाद से समाजवाद आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तन का मिला जुला रूप है। लकड़ी के हल के स्थान पर ट्रेक्टर, कृषि की अधिकतर क्रियाओं में यंत्रीकरणा, देश में औद्योगिक क्रान्ति का आना आदि आर्थिक परिवर्तन के प्रमाण हैं। जमींदारी-प्रथा को हटाना तथा फालतू भूमि को भूमिहीन कृषकों में बाँटना, दलालों को समाप्त करके सहकारी क्रिया और विक्रय संस्थाओं का खोलना आदि भी आर्थिक परिवर्तन के उदाहरण है। निर्धनता की समस्या को ही लीजिए। हमारे देश में आधी से अधिक जनसंख्या निर्धनता रेखा से नीचे जीवन निर्वाह करती है तथा उनकी दशा सुधारने का यत्न किया जा रहा है। यह भी आर्थिक-परिवर्तन के वर्गीकरण में आता है।

आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव
(Impact of Economic change)

1. उत्पादन की रचना में परिवर्तन (Change in the Composition of Production)–कुजनेट्स के अनुमानों से पता चलता है कि विभिन्न क्षेत्रों के राष्ट्रीय आय में उनके भाग में परिवर्तन हुए। आधुनिक आर्थिक वृद्धि के साथ उत्पादन की रचना में परिवर्तन हुए। कृषि तथा कृषि से सम्बद्ध उद्योगों के भाग में कमी हुई, निर्माण तथा सार्वजनिक उपयोगिताओं का भाग बढ़ा; विनिर्माण में भी कम टिकाऊ वस्तुओं का उत्पादन होने लगा और कुछ सीमित मात्रा में उपभोक्ता वस्तुओं की बजाय उत्पादक वस्तुओं के विनिर्माण की ओर झुकाव बढ़ा; कुछ सेवा वर्गों, जैसे कि व्यक्तिगत, व्यावसायिक अथवा सरकारी सेवाओं के भागों में वृद्धि हुई और अन्य वर्गों, जैसे कि घरेलू नौकरों के भाग कम हो गए।

(क) कृषि क्षेत्र (Agricultural sector)–कुजनेट्स के अनुमानों से पता चलता है कि 13 देशों में से 12 विकसित देशों के कुल उत्पादन में कृषि-क्षेत्र का भाग पहले से कम हुआ। केवल आस्ट्रेलिया ही

Scanned with OKEN Scanner

एक ऐसा देश था जिसमें कृषि का भाग स्थिर रहा जो कि 23 प्रतिशत था। अन्य देशों में तीसरे दशक की प्रारंभिक अवधि में राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का भाग 20 से 30 प्रतिशत कम हुआ।

कृषि क्षेत्र के भाग में कमी आने का कारण यह तथ्य माना जाता है कि अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त उत्पादक साधनों की अपेक्षा कृषि क्षेत्र में श्रम-पूर्ति और पूंजी की मात्रा बहुत कम थी। एक अन्य कारण यह भी है कि ज्यों-ज्यों अर्थव्यवस्थाएँ पहले से अधिक समृद्ध हुई, त्यों-त्यों उनकी प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ती गई। परिणामस्वरूप, कृषि उत्पादनों के लिए प्रति व्यक्ति माँग उतनी तेजी से नहीं बढ़ी और इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का भाग कम हुआ। इस प्रवृत्ति का सैद्धान्तिक कारण एंजल का परिवार नियम है, जिसके अनुसार, ज्यों-ज्यों परिवार की आय बढ़ती है त्यों-त्यों परिवार के बजट में भोजन पर होने वाले व्यय का प्रतिशत भी घटता जाता है।

(ख) औद्योगिक क्षेत्र (Industrial sector)–12 देशों में राष्ट्रीय उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का भाग बढ़ा है। प्रारम्भिक अवधियों में औद्योगिक क्षेत्र का भाग कुल उत्पाद का 20 से 30 प्रतिशत के बीच रहा, लेकिन बाद की अवधि में यह बढ़कर 40 से 50 प्रतिशत या अधिक हो गया। केवल आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय उत्पाद में यह भाग 30 प्रतिशत के लगभग स्थिर रहा।

औद्योगिक क्षेत्र की संरचना की विभिन्न प्रवृत्तियों से पता चलता है कि कृषि से सम्बद्ध उद्योगों के भागों में कमी हुई, विनिर्माण (manufacturing) तथा सार्वजनिक उपयोगिताओं का भाग बढ़ा। कुछ सीमित मात्रा में उपभोक्ता वस्तुओं की बजाय उत्पादक वस्तुओं के विनिर्माण की ओर झुकाव बढ़ा। संयुक्त राज्य अमेरिका एवं स्वीडन दोनों देशों में विनिर्माण की संरचना में हुए परिवर्तन बिल्कुल मिलते-जुलते थे। विशेष रूप से खाद्य उद्योगों तथा लकड़ी की वस्तुओं के वर्ग में दोनों के भाग कम हुए। वस्त्र एवं चमड़े के उत्पादनों के भाग में तकनीकी परिवर्तनों के कारण बहुत अधिक वृद्धि हुई।

फिर, जिन तकनीकी परिवर्तनों से औद्योगीकरण तथा नगरीकरण हुआ, उन्होंने उन वस्तुओं और सेवाओं की माँग बढ़ा दी जिनकी ग्रामीण क्षेत्रों में जरूरत नहीं होती। शहरी क्षेत्रों में भोजन की माँग पूरी करने के लिए उसे साफ करना, डिब्बों में बन्द करना, तैयार करना, परिवहन करना और वितरण करना होता था। इन सबसे उद्योग तथा सेवा-क्षेत्रों के उत्पादनों की माँग बढ़ गई। नई उपभोक्ता एवं पूंजी वस्तुओं का विनिर्माण हुआ। उदाहरणार्थ, मनोरंजन के लिए गाँव में टेलीविजन सेंटों ने दावतों का स्थान ले लिया, परिवहन के साधन के रूप में रेलों तथा मोटरों ने घोड़ों का स्थान ले लिया, प्राकृतिक खादों के स्थान पर रसायन, लकड़ी के स्थान पर कोयला और तेल, पशु-शक्ति के स्थान पर मशीनी शक्ति इत्यादि आ गई।

(ग) सेवा क्षेत्र (Services sector)–कुछ सेवा वर्गों के जैसे कि व्यक्तिगत, व्यावसायिक अथवा सरकारी सेवाओं के भागों में वृद्धि हुई और अन्य वर्गों, जैसे कि घरेलू नौकरों के भाग कम हो गए। जहाँ तक वर्ष 1954-56 के लिए सेवा-क्षेत्र की संरचना का संबंध है जिसके आंकड़े अब उपलब्ध हैं, 9 विकसित देशों (इंग्लैण्ड, फ्रांस, बेल्जियम, पश्चिम जर्मनी, नीदरलैण्ड, डेनमार्क, नार्वे, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमरीका) के औसत भाग से पता चलता है कि वाणिज्य (व्यापार एवं वित्त) राष्ट्रीय उत्पाद के 14-15 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी था। आवासों के स्वामित्व का भाग 4% से कम था; और सरकार एवं रक्षा का भाग राष्ट्रीय उत्पाद के 7 प्रतिशत से अधिक था। अन्य सभी निजी सेवाएँ–व्यावसायिक, निजी एवं व्यापार–राष्ट्रीय उत्पाद के लगभग 10 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी रहीं। इसके अतिरिक्त, प्रति व्यक्ति उपभोक्ता आय में वृद्धि ने सेवाओं की विशेष रूप से परचून व्यापार में माँग बढ़ा दी। वस्तु उत्पादन की बदलती संरचना के साथ, विज्ञापन, वित्तीय तथा मिलती-जुलती सेवाओं की माँग भी बढ़ी। बढ़ते नगरीकरण से, पुलिस, सफाई, जनस्वास्थ्य, शिक्षा आदि में शहरों में सरकारी नौकरियों की माँग बढ़ी। प्रति व्यक्ति उपभोक्ता आय में वृद्धि में भी मनोरंजन, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य व्यावसायिक सेवाओं की माँग बढ़ा दी। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के अधिक प्रयोग से मरम्मत संबंधी सेवाओं की माँग में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

कुजनेट्स के अनुसार, आधुनिक आर्थिक वृद्धि उत्पादन की रचना में परिवर्तन तकनीकी परिवर्तनों द्वारा लाए गए हैं। तकनीकी परिवर्तन न केवल लागतें कम करते हैं और उत्पादकता बढ़ाते हैं, बल्कि नई

Scanned with OKEN Scanner

वस्तुएं, या नई प्रक्रियाएं अथवा कच्चे माल के प्रयोग करने से नये तरीके भी निकालते हैं, और इस प्रकार नए उद्योगों को आधार प्रदान करते हैं। तकनीकी परिवर्तन की दर जितनी अधिक ऊँची होगी, औद्योगिक संरचना में उतने ही अधिक परिवर्तन होंगे।

2. वस्तु प्रयोग की संरचना में परिवर्तन (Shifts in the Structure of Product Use)–सैद्धान्तिक रूप से अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रों में बनने वाला राष्ट्रीय उत्पाद या तो उपभोग किया जाता है या राष्ट्र के पूंजी-स्टॉक में जुड़ जाता है या विदेशों से प्राप्त वस्तुओं एवं सेवाओं के बदले निर्यात कर दिया जाता है। इन प्रयोगों का औसत प्रतिरूप तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(i) निजी उपभोग व्यय (Personal consumption expenditure)–इसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं; सभी उपभोक्ता वस्तुओं का क्रय, जिसमें आय की प्राप्तियाँ विदेशों से प्राप्त निवल उपहार और इस तरह की उपभोक्ता वस्तुओं का निवल विक्रय–जैसे कि घरेलू तथा अलाभकारी संस्थाओं के क्रय एवं प्राप्तियां। इसमें भूमि और आवास सम्मिलित नहीं हैं। ये व्यय विकसित देशों में उत्पादित सभी तैयार वस्तुओं तथा सेवाओं के 64 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी थे।

(ii) सरकारी उपभोग (Government consumption)–सरकारी उपभोग में वस्तुओं तथा सेवाओं के चालू क्रय सम्मिलित हैं। लेकिन सरकार द्वारा पुनर्विक्रय को कम कर दिया जाता है। इसमें सरकारी व्यापार एवं सार्वजनिक निगमों द्वारा की गई खरीद सम्मिलित नहीं होती, क्योंकि ये दोनों पूंजी निर्माण के अन्तर्गत आते हैं। सरकारी उपभोग में रक्षा के उद्देश्यों के लिए खर्च सम्मिलित हैं। हाल के वर्षों में सरकारी उपभोग कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 14 प्रतिशत था जबकि 19वीं शताब्दी के मध्य में इसका भाग सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सिर्फ 3.5 से 5 प्रतिशत रहा। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अनेक देशों में जो यह सुनिश्चित वृद्धि हुई, उसका प्रमुख कारण रक्षा-व्ययों में अधिक वृद्धि था।

(iii) सकल घरेलू पूंजी-निर्माण (Gross domestic capital formation)–इसमें पूंजी-स्टॉक में जुड़ने वाला वस्तुओं का सकल मूल्य सम्मिलित है। देश के भीतर, रक्षा उपकरणों को छोड़कर लेकिन आवासीय निर्माण को सम्मिलित करके सकल घरेलू पूंजी निर्माण राष्ट्रीय उत्पाद का 20 से 25 प्रतिशत था। जबकि सकल बचतों का भाग द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व प्रारंभिक अवधियों में 10 प्रतिशत से भी कम था, जो बढ़कर 12 और 20 प्रतिशत के बीच हो गया। लेकिन इंग्लैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में, यद्यपि प्रति व्यक्ति उत्पाद महत्त्वपूर्ण दर से बढ़ रहा था, फिर भी लगभग एक शताब्दी तक यह नहीं बढ़ा। नार्वे तथा स्वीडन में लगभग प्रथम विश्वयुद्ध तक, जबकि आस्ट्रेलिया में 1900 तक कोई वृद्धि नहीं हुई। निर्यात के और विदेशी साधन भुगतानों के शेषों की औसत हाल के वर्षों में कुल राष्ट्रीय उत्पाद की 0.2 प्रतिशत रही। घरेलू पूंजी-निर्माण का सापेक्ष आयात सिर्फ एक बड़े ऋणदाता इंग्लैण्ड के लिए महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि छोटे कर्जदार देश, विशेष रूप से कनाडा और आस्ट्रेलिया जिन्होंने अपनी प्रारम्भिक उपनिवेशक दशाब्दियों में, इंग्लैण्ड से पूंजी कोष प्राप्त किए।

वस्तु प्रयोग के व्यापक प्रतिरूप की प्रवृत्तियों से पता चलता है कि पूंजीवाद विकसित देशों में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दशक की विशिष्टता ऐसी अलग संरचना रही जिसमें द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले के स्तर की अपेक्षा सरकारी उपभोग और घरेलू या राष्ट्रीय पूंजी निर्माण के भाग निश्चित रूप से अधिक रहे जबकि उपभोग व्ययों के भाग अपेक्षाकृत कम रहे।

3. उपभोग की संरचना में परिवर्तन (Shift in the structure of consumption)–प्रोफेसर कुजनेट्स ने मुख्य रूप में पाँच मदों के अन्तर्गत उपभोक्ता क्रय शक्ति की संरचना में परिवर्तन लक्षित किए हैं। अनुमानों में (i) भोजन, (ii) मद्य एवं तम्बाकू, (iii) वस्त्र, (iv) आवास तथा (v) अन्य सम्मिलित हैं। 'अन्य' के अन्तर्गत घर का फर्नीचर और सामान, कारें, चिकित्सा, मनोरंजन इत्यादि मदें रखी गई हैं। सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य सेवाएँ छोड़ दी गई हैं क्योंकि इन्हें घरेलू उपभोग में सम्मिलित किया गया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के दशक में जर्मनी, नार्वे, संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में मद्य एवं तम्बाकू को सम्मिलित करके भोजन कुल उपयोग व्यय में भाग 32 से गिरकर 30 प्रतिशत रह गया। लेकिन

Scanned with OKEN Scanner

इंग्लैण्ड तथा इटली में कोई महत्त्वपूर्ण कमी नहीं हुई और न ही कुल उपभोक्ता व्यय में वस्त्रों के भाग में। कुल उपभोक्ता व्ययों में आवास का भाग इंग्लैंड, नार्वे और स्वीडन में गिरा। जबकि संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा और इटली में यह भाग स्थिर-सा रहा। 'अन्य' मदों जैसे घर का फर्नीचर तथा सामान, परिवहन विशेष रूप से कारों, चिकित्सा, मनोरंजन इत्यादि के संबंध में, कुल उपभोक्ता व्यय में इनका भाग इंग्लैण्ड, जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में बढ़ा लेकिन नार्वे, स्वीडन तथा इटली में कम हुआ।

इन प्रवृत्तियों से पता चलता है कि न केवल उपभोक्ता क्रय उस दर से बढ़े, जिस दर से प्रति व्यक्ति प्रयोज्य (disposable) आय बढ़ी, बल्कि भोजन आदि कुछ मदों की दर क्रय भी, कुल व्यय में जिनका भाग बढ़ने की आशा थी, नहीं बढ़े। वस्त्र जैसी अन्य मदों की स्थिति में, कुल परिव्यय में जिनके भाग बढ़ने की आशा थी, कई देशों में नहीं बढ़े। इस प्रकार आधुनिक आर्थिक वृद्धि के अन्तर्गत उपभोक्ता व्ययों के स्तर एवं संरचना की प्रवृत्तियों का जो विश्लेषण ऊपर किया गया है, वह इन दोनों बातों के लिए जो उपवर्गों के और विविध वर्गों के सकल विश्लेषण के आधार पर प्रत्याशित प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

इस व्यवहार के लिए उत्तरदायी कारणों पर तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है–

(i) जीवनयापन की परिस्थितियों में परिवर्तन–उत्पादन के संरचनात्मक परिवर्तनों द्वारा प्रभावित जीवनयापन स्थितियों में, और इसलिए उपभोग में, होने वाले परिवर्तनों में से सबसे अधिक ध्यान देने योग्य नगरीकरण है। नगरीकरण की प्रक्रिया के कई पक्ष हैं जो उपभोक्ता क्रयों के स्तर एवं संरचना की प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। प्रथम, नगरीकरण का अर्थ है देश के भीतर श्रम का बढ़ता विभाजन, बढ़ती विशेषज्ञता, और परिवार अथवा गाँव तक सीमित गैर-बाजार क्रियाओं से हटकर व्यापार-फर्मों की विशेषकृत बाजार क्रियाओं में लगना। एक समय था जब खाद्य संरक्षण, सिलाई, कपड़े बनाने और यहां तक कि भवन निर्माण और मकानों की मरम्मत का भी काम बहुत कुछ घर में ही और सामुदायिक प्रयत्नों से गाँव में ही कर लिया जाता था। आज इनमें से अधिकतर काम नगरीकृत आधुनिक समाज में व्यापार फर्में करती हैं। दूसरे, शहरी समुदायों के भीतर बढ़ती संकेन्द्रित जनसंख्याओं की ओर परिवर्तन का मतलब था कि निरन्तर इच्छाओं को सन्तुष्ट करना अधिक मंहगा हो गया। आवास, सफाई, जल, परिवहन तथा इसी प्रकार की आधारभूत जरूरतों के संबंध में शहरी जीवन की अतिरिक्त लागत, बचतों एवं पूंजी-निर्माण की सापेक्षता में उपभोक्ता क्रयों के स्तर को प्रभावित करती हैं। अन्तिम, शहरी जीवन उपभोग स्तर को बढ़ाता है, क्योंकि उससे प्रदर्शन प्रभाव को प्रोत्साहन मिलता है और नई उपभोक्ता वस्तुओं की संवेदनशीलता बढ़ती है।

(ii) जनसंख्या में व्यापारिक परिवर्तन–रोजगार स्तर तथा व्यावसायिक परिवर्तन और इनसे सम्बद्ध आय-वितरण में परिवर्तन भी उपयोग व्ययों को प्रभावित करते हैं। जब श्रमशक्ति के भीतर ही ऐसे परिवर्तन होते हैं, जैसे कुशलता, प्रशिक्षण एवं शिक्षा के निम्न स्तर से बाबूगिरी की ओर अग्रसर होना, तो इनसे भी उपभोक्ता व्यय बढ़ते हैं। प्रबंधकीय एवं व्यावसायिक श्रमिकों की बढ़ती संख्या जीवनयापन के एक न्यूनतम स्तर तथा सम्बद्ध उपभोक्ता क्रयों की माँग करते हैं जो कि उतनी ही आय वाले व्यक्तिगत व्यापारियों की माँग से कहीं अधिक होती हैं, और उससे उपभोक्ता क्रयों के स्तर एवं संरचना में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। फिर प्रथम विश्वयुद्ध से अनेक विकसित देशों में आय के परिणाम वितरण में घटती असमानता ने बचतों की सापेक्षता में उपभोक्ता व्ययों का अनुपात बढ़ा दिया है, और कुल उपभोक्ता क्रयों के भीतर एक से कम आय लोच वाली उपभोक्ता वस्तुओं के भागों में वृद्धि तथा एक से अधिक आय लोच वाली उपभोक्ता वस्तुओं के भागों में कमी ला दी है।

(iii) प्रौद्योगिकीय परिवर्तन–प्रौद्योगिकीय परिवर्तन उपभोक्ता वस्तुओं को प्रभावित करते हैं, क्योंकि वे नए प्रकार की वस्तुएं अस्तित्व में लाते हैं और पुरानी वस्तुओं में भी प्रमुख परिवर्तन ला देते हैं। भोजन तक के संबंध में आधुनिक डिब्बाबंदी तथा हिमीकरण (freezing) आदि ऐसी नई प्रक्रियाएं हैं जो आहार के लिए कुल माँग तथा विविध वर्गों में उसके वितरण को प्रभावित करती हैं। इस तरह से प्रौद्योगिकीय परिवर्तन उस समय और भी अधिक आकर्षित करते हैं जब वे नितान्त नई उपभोक्ता वस्तुएं अस्तित्व में लाते हैं। जैसे कि मानव-निर्मित वस्त्र, बिजली के घरेलू यंत्र, रेडियो और टेलीविजन सेट, कारें, वायुयान, परिवर्तन आदि।

Scanned with OKEN Scanner

4. निवेश की संरचना (Structure of Investment)–प्रोफेसर कुजनेट्स 'पूंजी निवेश' की बजाय 'पूंजी-निर्माण' शब्द के प्रयोग को अधिमान देता है, क्योंकि कभी-कभी निवेश शब्दों का प्रयोग पूंजी वस्तुओं के क्रय के लिए मुद्रा पूंजी खर्च करने की प्रक्रिया बताने या अधिक व्यापक अर्थ में, प्रतिभूतियों एवं अन्य वित्तीय दावों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसमें क्रय पर अथवा दावों की प्राप्ति पर नहीं बल्कि वास्तविक पूंजी में होने वाली बढ़ोत्तरियों पर बल है। इस प्रकार कुजनेट्स निवेश के स्थान पर सकल पूंजी-निर्माण शब्द का प्रयोग करता है। 1956-60 के दौरान, सभी विकसित देशों में सकल राष्ट्रीय बचतें उनके सकल घरेलू पूंजी-निर्माण के लगभग बराबर थीं। सकल राष्ट्रीय बचतों के लगभग 20% के लिए सार्वजनिक क्षेत्र उत्तरदायी रहा जिसमें सार्वजनिक निगम भी सम्मिलित थे। शेष के लिए निजी निगम एवं परिवार उत्तरदायी रहे। दूसरी ओर, निजी क्षेत्र के हिस्से में आने वाली पूंजी-उपभोग प्रभार (Charges) सकल राष्ट्रीय बचतों का 35.1% थे। इस कुल के कम से कम आधे भाग के लिए वे निजी निगम उत्तरदायी थे, जिनका खनन, विनिर्माण, परिवहन तथा लोकहित सेवाओं पर प्रभुत्व था।

प्रथम, भौतिक पूंजी वस्तुओं की किस्म द्वारा लाई गई घरेलू पूंजी-निर्माण की संरचना की प्रवृत्तियों से पता चलता है कि पूंजी-निर्माण में मालसूचियों (inventories) में परिवर्तनों का भाग प्रारंभिक स्तर से गिरा है जो कि कुछ देशों में (इंग्लैण्ड, जर्मनी, इटली, डेनमार्क, स्वीडन, संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा में) हाल के दशक में 10% से अधिक 15% तक रहे। यह कमी इसलिए हुई कि परिवहन तथा संचार के साधनों में व्यापक सुधार हुए, कृषि-क्षेत्र का भाग घटा, जिसे ऋतुगत बड़ी मालसूचियाँ विशिष्टता प्रदान करती हैं और संभवतः माँग में अल्पकालीन परिवर्तनों की माँग खपाने की उत्पादक क्षमता का प्रयोग बढ़ता गया।

दूसरे, स्थिर पूंजी-निर्माण में निर्माण और कुल पूंजी निर्माण का भाग गिरा। इटली, डेनमार्क, स्वीडन, कनाडा और जापान में कुल पूंजी-निर्माण का भाग 55 और 65% के बीच था, जो गिरकर 45% रह गया। निर्माण का भाग आंशिक रूप से इसलिए गिरा कि आवासीय भवनों का भाग गिरा। परन्तु अन्य प्रकार के निर्माण का भाग भी कम हुआ है। कुल निर्माण के अन्तर्गत भवन-निर्माण कुल पूंजी-निर्माण के 1/5 से लेकर 1/6 से अधिक नहीं था। निर्माण की भांति आवास व्यवस्था के भाग में कोई स्पष्ट प्रवृत्ति नहीं दिखाई दे सकी।

तीसरे, स्थिर पूंजी-निर्माण और कुल पूंजी-निर्माण में उत्पादकों के उपकरणों का भाग 20 और 25% के बीच था, जो बढ़कर 40 और 50% के बीच पहुंच गया। इनसे उन परिवर्तनों का पता चलता है जो आवासीय भवन व्यवस्था तथा लोकहित सेवाओं के क्षेत्रों से हटकर, जिनके लिए उनका आधारभूत जाल बिछाने को अधिक निर्माण की जरूरत थी–विनिर्माण तथा मिलते-जुलते क्षेत्रों की ओर झुकाव बढ़ा, जिन (उपरोक्त) में उत्पादकों के उपकरण का अनुपात अपेक्षाकृत अधिक रहता है। ये प्रवृत्तियाँ प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का भी परिणाम रही हैं जिन परिवर्तनों ने उन्नत उपकरणों की बढ़ती माँग उत्पन्न की है।

5. रोजगार की संरचना में परिवर्तन (Change in the Structure of Employment)–आधुनिक आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में, रोजगार की दिशा, स्तर तथा संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। ज्यों-ज्यों विकास में प्रगति हुई, त्यों-त्यों कुल जनसंख्या में श्रमशक्ति का अनुपात बढ़ता गया। इन राष्ट्रों के आर्थिक विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं से उनकी जनसंख्या का 30% श्रमशक्ति के अन्तर्गत था। अधिक हाल के वर्षों में, उनकी जनसंख्या का 40% से अधिक भाग श्रमशक्ति में रहा है। यह वृद्धि इसलिए हुई कि जनसंख्या की आयु संरचना में परिवर्तन हुआ, जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण में परिवर्तन हुए, लाभप्रद व्यवसायों में भाग लेने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ती गई, और श्रमशक्ति में प्रवेश की आयु-सीमा तथा सेवानिवृत्ति की आयु-सीमा घट गई। पहले हम विकसित देशों के तीनों क्षेत्रों में संलग्न कुल श्रमशक्ति के भागों पर विचार करते हैं–

(i) कुल श्रमशक्ति का उद्योग क्षेत्र में भाग–प्रत्येक विकसित देश में उद्योग क्षेत्र में काम करने वाली कुल श्रमशक्ति का भाग बढ़ा, परन्तु अनेक देशों में वह वृद्धि निरपेक्षतया और सापेक्षतया थोड़ी रही। फ्रांस, इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, इटली और आस्ट्रेलिया में यह भाग कुल प्रतिशतता अंक (अर्थात् 1 से 5 प्रतिशत अंक) ही बढ़ा। परन्तु डेनमार्क, स्वीडन, कनाडा और रूस में यह वृद्धि 10 से 20 प्रतिशत तक हुई। कुल उत्पाद में

Scanned with OKEN Scanner

उद्योग क्षेत्र के भाग में हुई सापेक्ष वृद्धि की तुलना में उद्योग में श्रमशक्ति के भाग में होने वाली सापेक्ष वृद्धि कम रही। उद्योग क्षेत्र में, दस विकसित देशों के लिए कुल उत्पाद में श्रमशक्ति का भाग, 1940 के बाद के दशक के अन्त और 1950 के बाद के दशक के प्रारंभ में 44% था। उद्योगों के ब्यौरेवार, यह भाग विनिर्माण में अधिकतम (63%) था, उसके बाद क्रमशः भवन निर्माण में (15%), परिवहन तथा संचार में (15%) रहा, जबकि भवन, खनन में (5%) और बिजली, शक्ति, गैस तथा जल के संबंध में (2%) यह न्यूनतम रहा।

(ii) कुल श्रमशक्ति का कृषि क्षेत्र में भाग–प्रत्येक देश में कृषि में संलग्न कुल श्रमशक्ति का भाग घटा, यहाँ तक कि आस्ट्रेलिया में भी जहाँ कि 1860 के दशक से 1930 के दशक के अन्त तक उत्पाद में कृषि का भाग या तो स्थिर रहा था फिर बढ़ा। प्रारंभिक स्तर की सापेक्षता में श्रमशक्ति में इस क्षेत्र के भाग में सदा बहुत कमी रही। पूर्व-आधुनिक अवस्था में, कृषि श्रमशक्ति का भाग संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान तथा रूस में 65% से अधिक था, और सामान्यतः यह भाग 50% से कम नहीं था। फिर अधिकांश देशों में यह भाग घटकर 20% से कम रह गया, केवल जापान तथा रूस को छोड़कर क्योंकि औद्योगीकरण की प्रक्रिया में वे देर से आए। कृषि क्षेत्र में रोजगार पर लगी श्रमशक्ति के भाग में होने वाली ये कमियाँ उतनी ही बड़ी थीं, जितनी कि कुल उत्पाद में कृषि के भाग में हुई कमियाँ थीं। क्योंकि कुल श्रमशक्ति में कृषि क्षेत्र का भाग गिरा, इसलिए भारी संख्या में लोग शहरी क्षेत्रों में गए होंगे। 20-35 वर्ष के आयु वर्ग के लोग, जो हाल ही दशाब्दियों तक शहरों में आए, अधिकतर पुरुष थे।

(iii) कुल श्रमशक्ति का सेवा-क्षेत्र में भाग–इंग्लैण्ड, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, स्वीडन तथा आस्ट्रेलिया में, सेवा-क्षेत्र में संलग्न कुल श्रमशक्ति का भाग या तो स्थिर रहा, या फिर अपेक्षाकृत कम बढ़ा। परन्तु अन्य देशों में विशेष रूप से डेनमार्क, नार्वे, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान तथा रूस में, इस भाग में बड़ी निरपेक्ष एवं सापेक्ष वृद्धि हुई, जो 10 और 16 प्रतिशत अंकों के बीच रही। पर कुल उत्पाद में सेवा-क्षेत्र के भाग में होने वाली वृद्धि की अपेक्षा कुल श्रमशक्ति में सेवा-क्षेत्र के भाग में हुई सापेक्ष वृद्धि बहुत अधिक थी।

नौ विकसित देशों के लिए कुल उत्पाद में सेवा-क्षेत्र में श्रमिशक्ति का भाग 34% था। आधुनिक आर्थिक वृद्धि में कुल श्रमशक्ति में कर्मचारियों का भाग बढ़ा है और उद्यमियों एवं स्वनियोजितों (self-employed) का भाग घटा है, जिससे यह परिवर्तनों से पता चलता है कि श्रमशक्ति में सेवा-क्षेत्र का भाग बढ़ा है और वस्तु-उत्पादक क्षेत्रों का भाग घटा है।

6. विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन (Shifts in the Structure of Foreign Trade) –कुजनेट्स विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय उत्पाद के साथ अनुपात को किसी भी देश की दूसरे देशों पर वस्तुओं के लिए निर्भरता का मापदण्ड मानता है। आधुनिक आर्थिक वृद्धि में 15 बड़े विकसित देशों का विदेशी व्यापार अनुपात उनका सकल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ने के साथ-साथ कम होता गया। दूसरी ओर, जिन देशों का सकल राष्ट्रीय उत्पाद कम था उनके विदेशी अनुपात बढ़े। इसलिए आर्थिक वृद्धि के सामान्य विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि छोटे विकसित राष्ट्र जैसे डेनमार्क, स्वीडन आदि बड़े विकसित राष्ट्रों पर निर्भर रहे हैं, जिनके साथ वे व्यापार करते हैं।

विकसित देशों की आर्थिक वृद्धि के दौरान किसी व्यापार अनुपातों में दीर्घकालीन परिवर्तन ऐसे साधनों के बीच प्रतियोगिता का परिणाम माने जा सकते हैं जो घरेलू उत्पाद की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं और जो विदेशी व्यापार के प्रवाह की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं। इस दृष्टिकोण से उन तत्त्वों की ओर संकेत किया जा सकता है, जो घरेलू उत्पादन की अपेक्षा विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करने में अधिक प्रभावशाली थे जिनके कारण पुराने विकसित देशों में विदेशी व्यापार के अनुपातों में प्रथम विश्वयुद्ध से पहले वृद्धि हुई।

संक्षेप में, आर्थिक विकास के कारण सभी प्रकार के आर्थिक कार्यों (Economic Functions) की संरचना में परिवर्तन आते हैं। उत्पादन-कार्यों (Production Functions) में तकनीकी भूमिका प्रमुख हो जाती है। बचत के अन्तर्गत विकास की स्थिति में व्यक्तिगत बचत (Personal Savings) का अनुपात कम हो जाता है। सरकारी बचत का अनुपात प्रायः बहुत कम होता है। अविकसित देशों के व्यक्तिगत बचत

Scanned with OKEN Scanner

का अनुपात बहुत अधिक होता है। बचत की यह स्थिति आर्थिक संगठन की ओर संकेत करती है अर्थात् अविकसित देशों में असंगठित क्षेत्रों में बचतें प्राप्त होती हैं जबकि विकसित देशों में संगठित क्षेत्र का कुल बचतों में अनुपात सर्वाधिक होता है। विदेशी व्यापार की स्थिति में भी अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं।

आर्थिक परिवर्तन का बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था के निर्माण तथा अनुभव पर प्रभाव
(Impact of economic change on construction and experience of children in childhood and adolescent age

आर्थिक परिवर्तन का बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था के निर्माण तथा अनुभव पर सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव दिखाई देते हैं। आर्थिक परिवर्तन के कारण बच्चों को अनेक प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्राप्त हो गई हैं। शिक्षा तकनीकी का विकास हुआ है जिसका बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इसके फलस्वरूप नगरों में जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिक नगरों का स्थापित होना इत्यादि में ऐसे परिवर्तन हुए हैं जो बच्चों तथा किशोरों पर काफी प्रभाव डालते हैं। हमारा देश कृषि प्रधान देश बनने की दिशा में जा रहा है। गाँव से नगरों की ओर जनसंख्या का प्रवास होता जा रहा है। औद्योगिकरण के कारण अनेक समस्याओं का सामना लोगों को करना पड़ता है। औद्योगिकरण के कारण प्रदूषण की समस्या बढ़ गयी है। प्रदूषित वातावरण के कारण बेरोजगारी तथा निर्धनता में वृद्धि हुई है। निर्धनता के कारण बच्चों को पोषक तत्व युक्त भोजन न मिलने से उनमें बीमारियों के फलने का भय बना रहता है। निर्धनता के कारण बाल-अपराध, बाल श्रम, भिक्षावृत्ति, नशाखोरी में बढ़ोत्तरी हुई है जिसका बच्चों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

आर्थिक परिवर्तन के कारण गन्दी व घनी बस्तियों का उदय हुआ है। मनोरंजन के साधन खर्चीले हो गए हैं और स्वस्थ मनोरंजन का अभाव हो गया है। कसरत, शारीरिक, व्यायाम, अखाड़ा, आदि का स्थान सिनेमा, नाटक, नृत्य आदि ले रहे हैं और इनके कथानकों से बालकों को बुरी प्रेरणा मिलती है।

आर्थिक परिवर्तन का बच्चों की शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आज नर्सरी विद्यालय, किन्डरगार्डन विद्यालय, मान्टेसरी विद्यालयों की बाढ़ आ गयी है। बच्चों के अनेक शिक्षा से सम्बन्धी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं। लेकिन आर्थिक परिवर्तन के कारण संयुक्त परिवार टुट रहे हैं बालकों में आपसी सद्भाव, भाई-चारा तथा संवेगात्मक दृढ़ता कम हो रही है।

आर्थिक परिवर्तन का बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। बच्चों का खान-पान तथा रहन-सहन बदल गया है। बच्चों में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से नैतिक मूल्यों का हनन हो रहा है।

अतः आर्थिक परिवर्तन का बालकों पर सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने से अनैतिक तत्व स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं और बच्चों में स्नेह, सदभाव और आत्मीयता का विकास होता है। इसके विपरित मुख की पीड़ा गरीबी सामाजिक सम्मान का अभाव, जीवन व्यापक में कठिनाई बालकों को भिक्षावृत्ति, नशाखोरी, बालअपराध आदि की ओर धकेलती है।

◆◆◆

4. आर्थिक विकास और शिक्षा का आपस में क्या संबंध है? शिक्षा इसमें कैसे मदद कर सकती है? विवेचना कीजिए।
(What is the relationship between economic development and education? How can education help in it? Discuss.)

अथवा

आर्थिक विकास से आप क्या समझते हैं? आप देश के आर्थिक विकास हेतु किस प्रकार की शिक्षा का सुझाव देंगे?
(What is the meaning of economic development? Discuss the relationship between education and economic development?)

अथवा

Scanned with OKEN Scanner

देश के आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका की विवेचना कीजिए।
(Discuss the role of education in economic development of the country.)

उत्तर–शिक्षा एवं आर्थिक विकास (Education and economic development)–शिक्षा आर्थिक विकास का आधार है। शिक्षा पर अधिक पूंजी लगाने से अल्प विकसित देश भी सुदृढ़ राष्ट्र बन जाते हैं। जो देश पूंजी व्यय नहीं कर पाते वे पिछड़ जाते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जापान, इंग्लैंड, रूस, अमेरिका आदि ने शिक्षा के माध्यम से उन्नति की। देश का नियोजित आर्थिक विकास शिक्षा पर ही निर्भर करता है। शिक्षा एवं आर्थिक विकास का संबंध जानने से पूर्व हमें आर्थिक विकास का अर्थ जान लेना आवश्यक है।

आर्थिक विकास का अर्थ
(Meaning of Economic Development)

राष्ट्र के आर्थिक विकास का अभिप्राय राष्ट्र की राष्ट्र क्षमता को सुदृढ़ करने अथवा राष्ट्रीय आय में वृद्धि से है। यह वृद्धि नकद राष्ट्रीय आय में होनी चाहिए।

प्रो. मार्शल आर्थिक विकास का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "किसी समाज का आर्थिक विकास राष्ट्रीय श्रमजीवियों का देश के प्राकृतिक साधनों द्वारा कार्य करने की शक्ति का नाम है।"

प्रो. आनन्द के अनुसार, "राष्ट्रीय आय में समानुपातिक वृद्धि भौतिक पूंजी निवेश में हो तो वह राष्ट्रीय विकास है।

यह प्रश्न भी विचारणीय है कि राष्ट्र का आर्थिक विकास कैसे हो सकता है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार 'आर्थिक नियोजन' (Economic Planning) इसका प्रमुख उपाय है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत विचार-विमर्श द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि किस क्षेत्र में कितना उत्पादन बढ़ाना है एवं किस प्रकार से बढ़ाना है और उसमें किन-किन साधनों का प्रयोग किस मात्रा में करना है।

नियोजन के अतिरिक्त आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। केवल शिक्षा ही आर्थिक विकास में मदद नहीं करती अपितु आर्थिक विकास भी शिक्षा पर प्रभाव डालता है।

शिक्षा एवं आर्थिक विकास में संबंध (Relationship between Education and Economic Development)–पहले शिक्षा एवं आर्थिक विकास में कोई संबंध नहीं समझा जाता था। विद्यालय केवल ऐसे स्थान समझे जाते थे जहाँ छात्र केवल विभिन्न विषयों का सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त करता है। अंग्रेजी काल में शिक्षा सैद्धांतिक बनी रही। इसके व्यावहारिक पहलू पर बल नहीं दिया गया। **गाँधी जी** ने बुनियादी शिक्षा प्रणाली को पहली बार शिक्षा के महत्त्व को समझा और उसे राष्ट्रीय विकास का आधार बनाने का प्रयास किया। शिक्षा व्यवहार से जुड़ी और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनीं। उसे उपयोग या सौंदर्य की वस्तु नहीं, अपितु शिक्षा को पूंजी निवेश समझा गया, जिसका प्रतिफल लम्बे समय में मिलता है।

अतः शिक्षा के व्यय को पूंजी निवेश के रूप में मानकर कोठारी कमीशन ने व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया। शिक्षा का उद्देश्य उत्पादकता में वृद्धि माना गया।

किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके आर्थिक विकास पर आधारित होता है और शिक्षा आर्थिक विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान निभाती है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अनुरूप शिक्षा के साधन उपलब्ध करवाकर राष्ट्र के उत्पादन का स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास करती है। शिक्षा भौतिक एवं मानवीय साधनों को अधिक गुणात्मक बनाकर आर्थिक विकास का आधार तैयार करती है। शिक्षा द्वारा राष्ट्रीय को योग्य नागरिक, कुशल श्रमिक, डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक तथा वैज्ञानिक प्रदान किए जाते हैं, जो नियोजित ढंग से शिक्षा का प्रयोग करके आर्थिक विकास में अपना सहयोग देते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि आर्थिक विकास तथा शिक्षा का परस्पर गहरा संबंध है। कुशल श्रमिक तथा सुदृढ़ संगठन शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किए जा सकते हैं। यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि शिक्षा ही आर्थिक विकास को प्रभाव नहीं करती। बल्कि आर्थिक विकास भी शिक्षा को प्रभावित करता है। उदाहरण

Scanned with OKEN Scanner

के लिए, जो राष्ट्र आर्थिक रूप से विकसित नहीं होता वहाँ शिक्षा संबंधी पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पातीं। इसके विपरीत जो राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से विकसित होते हैं वे अपने नागरिकों के लिए सभी सुविधाओं से सम्पन्न शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में शिक्षा का उद्देश्य ही राष्ट्र को आर्थिक विकास करना निश्चित किया जाता है। वहाँ का आर्थिक विकास शिक्षा की पाठ्यक्रम संरचना पर भी प्रभाव डालता है। अल्प विकसित राष्ट्रों में शिक्षा का पाठ्यक्रम इस प्रकार तैयार किया जाता है ताकि उससे उत्पादन बढ़े, जिससे बेरोजगारी कम हो सके एवं देश की अर्थव्यवस्था में सुधार हो सके। अतः अर्थव्यवस्था भी शिक्षा पर गहरा प्रभाव डालती है। इनके संबंध का दूसरा पहलू अर्थात् शिक्षा की आर्थिक विकास में भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।

आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका
(Role of Education in Economic Development)

किसी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि परिवर्तन के लिए शिक्षा को ही साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। क्योंकि शिक्षा द्वारा ही हम लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर उन्हें नवीन परिवर्तनों के लिए तैयार कर सकते हैं। यह बात हम आर्थिक विकास के विषय में भी कह सकते हैं।

भारतीय शिक्षा आयोग (1654–66) ने विज्ञान एवं शिल्पकला पर आधारित इस संसार में शिक्षा को लोगों की खुशहाली, कल्याण और सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करने वाली माना है और इसे आर्थिक विकास का प्रमुख साधन स्वीकार किया है। किसी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर मानव-संसाधनों के संचय की दर के अनुसार ही बढ़ती है तथा मानव संसाधन रूपी पूंजी के उत्पादन का कार्य शिक्षा का है। अतः शिक्षा उत्पादन का कार्य शिक्षा का है। अतः शिक्षा उत्पादन का महत्त्वपूर्ण कारक होने के कारण आर्थिक विकास का भी प्रमुख कारक है। इसके अभाव में आर्थिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रो. जॉन वेजी के अनुसार शिक्षा आर्थिक विकास की दृष्टि से तीन महत्त्वपूर्ण कार्य करती है–

1. शिक्षा समाज को कुशल जनशक्ति प्रदान करती है। इसके बिना भौतिक पूंजी व्यर्थ ही रहती है।

   शिक्षा जनसाधारण को तत्कालीन आवश्यकताओं के अतिरिक्त भविष्य की आवश्यकताओं एवं असुविधाओं के संबंध में सोचने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार उनमें जोखिम, उद्यम तथा क्रियाशीलता के गुणों का विकास करती है जोकि उत्पादन वृद्धि के प्रमुख एवं आवश्यक आधार हैं।
2. शिक्षा कृषकों को सामान्य एवं प्रारंभिक कुशलताएँ प्रदान कर फालतू उत्पादन की क्षमता प्रदान करती है जो कि भौतिक सम्पत्ति का मूल आधार है।

मनुष्य की मानवीकरण करने वाली शिक्षा का प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसे मुक्ति का साधन तथा मनुष्य का तीसरा नेत्र बताया गया है। 18वीं शताब्दी के अंत में एडम स्मिथ (Adam Smith) ने आर्थिक विकास के क्षेत्र में शिक्षा के योगदान को स्वीकार किया है। उसके बाद मार्शल (Marshall) तथा शुम्पीटर (Schumplter) ने इस धारणा की पुष्टि की। इसके बाद जॉन वेजी (John Vaizzey) ने पहली बार अपनी पुस्तक 'Economics of Education' में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख करते हुए शिक्षा तथा आर्थिक विकास के 'चूजा अंडा' (Chicken and egg) संबंध की संज्ञा दी। हरविसन तथा मेयर्स (Harvison and Mayers) ने अपनी पुस्तक 'Education, Manpower and Economic Growth' में शिक्षा को आर्थिक विकास का बीज तथा फूल दोनों ही माना है। (Education is both feed and fruit of economic development) शूल्टज ने अपनी पुस्तक 'Investment in Human Capital' में शिक्षा को मानव संसाधनों (Human Resources) में वृद्धि का प्रमुख साधन मानते हुए आर्थिक विकास का प्रमुख साधन माना है। ब्लागमार्ग ने Investment to the Economic of Education में भी इसी विचार को प्रकट किया है। भारत में डॉ. आत्माराम मिश्र ने अपनी पुस्तक Education planning

Scanned with OKEN Scanner

in India और श्री जे.पी. नायक ने अपनी पुस्तक Education Finance in India में आर्थिक विकास के लिए शिक्षा की भूमिका का वर्णन किया है। उनके अनुसार शिक्षा पूंजी निवेश का एक साधन है। इसे पूंजी निवेश समझकर कोठारी आयोग ने व्यवसायिक शिक्षा पर बल देने तथा पाठ्यक्रम में कार्य अनुभव को सम्मिलित करके के शिक्षा को जीवन से जोड़ दिया है। शिक्षा का उद्देश्य उत्पादन में वृद्धि माना गया है। इस प्रकार शिक्षा राष्ट्रीय आर्थिक विकास का आधार बन गयी और भारत सरकार ने 10+2+3 की नवीन शिक्षा की संरचना की, जिसे हरियाणा सरकार ने 1985 ई. से लागू कर दिया। इस शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत दस वर्षीय सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में विज्ञान तथा कार्य अनुभव को अनिवार्य विषय के रूप में सम्मिलित करके शिक्षा को उत्पादकता से जोड़ने का प्रयास किया गया है। दस वर्षीय सामान्य शिक्षा के बाद दो वर्षीय पाठ्यक्रम में तो शिक्षा के व्यवसायीकरण की दृष्टि से व्यावसायिक शिक्षा पर ही सर्वाधिक बल दिया गया है, जिससे इस पाठ्यक्रम को पूर्ण रूप से कर लेने के बाद प्रत्येक बालक राष्ट्रीय आर्थिक विकास में योगदान करने के लिए सक्षम हो जाऐं।

शिक्षा तथा आर्थिक विकास का तालमेल बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। शिक्षा एक उद्योग पूंजी निवेश बनकर राष्ट्रीय आर्थिक विकास में निम्नलिखित प्रकार से योगदान दे सकती है–

1. साधन के रूप में (Education as Instrument)–शिक्षा आर्थिक विकास में साधन के रूप में महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है। शिक्षा आर्थिक विकास की आत्मा है। भारत में शिक्षा आर्थिक विकास की आत्मा है। भारत में अब शिक्षा में आर्थिक महत्त्व को पहचान लिया गया है। भारतीय शिक्षा आयोग ने शिल्प कला पर आधारित इस विश्व में शिक्षा को ही खुशहाली, कल्याण और सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करने वाली मानते हुए आर्थिक विकास का सबल साधन माना है। आर्थिक विकास में केवल पूंजी ही योगदान नहीं देती। यदि शिक्षा संपन्न व्यक्ति नहीं होगें तो वह उत्पादन अधूरा रह जाएगा। धन, समय और शक्ति का दुरूपयोग होगा। शिक्षा लोगों को ज्ञान तथा प्रशिक्षण प्रदान करके राष्ट्रीय विकास के लिए सकारात्मक एवं रचनात्मक भूमिका निभाती है।

2. वातावरण का निर्माण (Creation of Proper Environment)–शिक्षा राष्ट्रीय विकास का निर्णायक तत्त्व है। यह उत्पादन के क्षेत्र में भी एक आवश्यक तत्त्व है। शिक्षा विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करती है। यह तो प्रकट है कि शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति चिंतन-मनन करता है। उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है। ऐसा व्यक्ति सदैव नई-नई विधियों की खोज करता है। अतः यह लोगों को मानसिक रूप से तैयार करती है। शिक्षा द्वारा संस्थाओं की कार्य कुशलता में प्रभावशाली ढंग से प्रवीणता लाई जाती है तथा राष्ट्रीय आर्थिक विकास तीव्र गति से आगे बढ़ता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा विकास के लिए उचित वातावरण तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

3. वैयक्तिक समृद्धि के लिए (For Individual Prosperity)–शिक्षा आर्थिक विकास का साधन बनकर व्यक्तिगत आय में वृद्धि करने में सहायता प्रदान करती है। व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करके किसी न किसी व्यवसाय में व्यस्त हो जाता है। वह अपनी योग्यताओं एवं क्षमतानुसार उत्पादन करके अपनी आय बढ़ाता है। आय बढ़ने से वह आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बन जाता है। शिक्षा व्यक्ति को तत्कालीन आवश्यकता तथा भविष्यकालीन आवश्यकताओं के संबंध में सोचने का अवसर प्रदान करती है तथा समस्या के समाधान हेतु योग्यताओं का विकास करती है। यह भौतिक सम्पत्ति को मूल आधार भी प्रदान करती है। शिक्षा कुशल जनशक्ति प्रदान कर तथा अपनी उत्पादकता में वृद्धि करके जीवन स्तर उन्नत करने में सहायक होती है।

4. शिक्षात्मक पक्ष और राष्ट्रीय विकास (Educational Aspect and National Economic Development)–शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन करना पड़ेगा। इसलिए कोठारी आयोग (1664-66) ने आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम में कार्य अनुभव (Work Experience) को सम्मिलित करने का सुझाव दिया। इससे लोगों की श्रम के प्रति निष्ठा बढ़ेगी। उसने ही सुझाव दिया कि विज्ञान के विषय पर अधिक बल दिया जाना चाहिए और उत्पादन में वृद्धि के लिए नई तकनीकों का प्रशिक्षण देने का सुझाव दिया। पाठ्यक्रम जीवन से संबंधित होकर छात्रों को रोजी-रोटी के लिए तैयार कर सकता है

Scanned with OKEN Scanner

तथा राष्ट्रीय विकास का साधन बन सकता है। 10+2+3 नए शिक्षा के पाठ्यक्रम में कार्य अनुभव को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में अधिक बल सैद्धांतिकता के स्थान पर प्रयोग तथा क्रियाशीलता को दिया जाता है तथा किसी एक कार्य में निपुणता के माध्यम से बालक को भावी व्यवहारिक व सामाजिक जीवन के लिए तैयार किया जाता है। उत्पादकता में वृद्धि के लिए विज्ञान एवं तकनीकी का प्रयोग किया जा रहा है।

3. शिक्षण विधियों और आर्थिक विकास (Teaching methods and economic development)–शिक्षण के माध्यम से छात्रों की योग्यताओं और कुशलताओं में विकास करके उनके व्यक्तित्व का उन्हें स्थायी गुण बनाया जा सकता है, ताकि वे उनकी स्थायी सम्पत्ति बन सकें। विद्यालय में कार्य द्वारा सीखना (Learning by doing) और अनुभव द्वारा सीखना (Learning by Experience) तथा परियोजना विधि (Project Method) आदि द्वारा पढ़ाया जाना चाहिए। उचित एवं वैज्ञानिक विधियों के माध्यम द्वारा छात्रों की शारीरिक एवं मानसिक कुशलताओं का विकास किया जा सकता है। वे राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

4. विद्यालय (School)–विद्यालय के माध्यम से शिक्षा राष्ट्रीय आर्थिक विकास में निम्न महत्त्वपूर्ण सहयोग देती है–

(a) स्कूल के माध्यम से कुशल जनशक्ति का निर्माण तथा उत्पादन वृद्धि में सहायक बना सकते हैं।
(b) यहीं पर देश के भविष्य का निर्माण होता है।
(c) स्कूल में पाठ्य सहगामी क्रिया का आयोजन है।
(d) विद्यालय का कृषि एवं उद्योग से संबंध स्थापित करके उसे सामुदायिक केंद्र बनाया जाए।
(e) यहाँ अनौपचारिक, उद्देश्यपूर्ण, अंशकालीन प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ। स्कूल में विचार, वाद-विवाद, नाटक, कविता, प्रदर्शनी, शैक्षणिक भ्रमण, व्यापार मेले, क्लब, भाषण पत्रिका आदि सहगामी क्रियाओं का भी आयोजन किया जाना चाहिए।

5. अनुशासन (Discipline)–कोई भी देश राष्ट्रीय विकास तथा आर्थिक रूप से विकासित नहीं हो सकता जब तक कि उसके नागरिक अनुशासित न हो। आज शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देने तक ही सीमित नहीं है बल्कि राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिए शिक्षा द्वारा छात्रों में अनुशासन की भावना विकसित की जाती है। उन्हें समझाया जाता है कि अनुशासन राष्ट्रीय पर्व है। ये भावनाएँ ही राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए अवसर उपलब्ध कराएँगी। आर्थिक विकास में अनुशासन का महत्त्व बताते हुए **सर पर्सीनन** (Sir Percy Nunn) लिखते हैं, "अनुशासन में प्राणी अपनी अंत प्रेरणाओं एवं शक्तियों को किसी नियमित स्वरूप में रखकर व्यर्थता एवं असंबद्धता को दूर करके उन्हें प्रभावपूर्ण बना देता है। कभी-कभी हमारा स्वभाव ऐसे नियंत्रण को स्वीकार करने में प्रतिक्रियाशील दिखाई देता है, किन्तु वास्तविक रूप में इसकी स्वीकृति अत्युत्म है।" अर्थात् ("Discipline consists in submisson of ones impulses and powers to a regulation which imposs form upon chaos and brings efficiency and economy where there would otherwise be ineffectiveness and waste. Though, part of out nature, may resist this control, its acceptance must, on the whole, be willing acceptance. —Sir Percy Nunn)

6. विद्यार्थी (Students)–आज का छात्र काल का नागरिक होगा। वह राष्ट्रीय विकास की धुरी है। युवा शक्ति को रचनात्मक एवं सृजनात्मक दिशा प्रदान की जानी चाहिए। उनमें राष्ट्रीय भावना का विकास करके शिक्षा अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

7. शिक्षा पर अधिक व्यय (More Expenditure on Education)–आजकल शिक्षा को एक पूंजी के रूप में माना जाता है। वास्तव में इस पर किया गया व्यय कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसलिए सरकार को अपना दायित्व समझकर अपने नागरिकों की शिक्षा पर अधिक से अधिक व्यय करना चाहिए। यह व्यय अधिकाधिक शिक्षा संस्थाओं को खोलने की बजाय शिक्षा में गुणात्मक सुधार की दृष्टि से किया जाना चाहिए। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् व्यक्ति अपने कार्य एवं व्यवसाय को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

8. अध्यापक और आर्थिक विकास (Teacher and Economic Development)–निःसंदेह अध्यापक राष्ट्र निर्माता है। वह राष्ट्रीय आर्थिक विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है। इसलिए अध्यापक का भी यह कर्तव्य बन जाता है कि वह भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में अपना योगदान दे। अध्यापक देश के आर्थिक विकास संबंधी सभी कार्यक्रमों में भाग लेकर इस क्रिया में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकता है।

अध्यापक का दृष्टिकोण राष्ट्रीय होना चाहिए। वह विद्यालय में पाठ्यक्रम के माध्यम से विभिन्न विषयों का राष्ट्रीय विकास से समन्वय स्थापित करे। वह विद्यालय में कार्य अनुभव और कार्य द्वारा सीखना के सिद्धांत पर बल देकर विद्यार्थियों में सहयोग की भावना को विकसित कर सकता है। वह विद्यालय में पाठ्य-सहगामी (Co-curriculum activities) क्रियाओं का इस प्रकार से आयोजन करें कि बच्चों में आर्थिक विकास की भावना पैदा हो सके। अध्यापक अपने दृष्टिकोण से भी विद्यार्थियों के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है। इससे राष्ट्र की आर्थिक दशा को सुधारने में मदद मिलेगी।

निष्कर्ष (Conclusion)–इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। शिक्षा मानव शक्ति के गुणों में वृद्धि करके उत्पादन एवं राष्ट्रीय विकास में सहयोग कर सकती है। शिक्षा नई रणनीति अपनाकर आर्थिक विकास में सहयोग करती है। वह संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा विकास में नव आचारों के लिए तैयार रहती है। इसी संबंध में **डीन रस्क** ने कहा है कि, "शिक्षा कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो एश्वर्य है। जिसको किया जा सकता है, जब विकास हो चुका हो, यह आवश्यक, बहुत ही योग्य और विकास क्रिया का एक आवश्यक अंग है।" अर्थात् ("Education is not something which is a lucary which can be afforded after development has accurred. It is an integral part, an immensely capable and essential part of the development process itself."—**Dean Pusk**)

शिक्षा और आर्थिक विकास का आपस में गहरा संबंध है। शिक्षा के माध्यम से आर्थिक रूप से अविकसित राज्यों को विकसित राज्यों की श्रेणी में आने में सहायता मिलेगी। वह संख्यात्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से राष्ट्र विकास में कारगार भूमिका अदा करती है। वह नई रणनीति अपना कर आर्थिक विकास में सहयोग दे सकती हैं। **बाल गंगाधार तिलक** ने कहा है कि, "शिक्षा और आर्थिक विकास दो ध्रुवीय क्रिया है जोकि विपरीत स्वभाव की तथा सांझे योगदान की हैं। वह चूजे तथा अंडे का संबंध है।" अर्थात्

("The relationship between education and economic development is a two-way process-one of a reciprocal nature, of mutual contribution. It is like a 'Chiken and egg' relationship." —Bal Gangadhar Tilak)

शिक्षा मानव गुणों में वृद्धि कर उत्पादक एवं राष्ट्रीय विकास में भी वृद्धि करती है। वह लोगों को कृषि, उद्योग, सहकारी जीवन, बैंकिंग सुविधाओं, यातायात तथा व्यापार आदि के लिए तैयार करती है। वह लागों में व्यापक अज्ञानता को नष्ट करके वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण का निर्माण करती है। शिक्षा राष्ट्रीय विकास का नियोजित, कारगर, रचनात्मक एवं सृजनात्मक साधन है। अतः शिक्षा राष्ट्रीय विकास का अपरिहार्य तत्त्व है।

◆◆◆

लघु-उत्तरात्मक प्रश्न
(Short Answer Type Questions)

प्रश्न 1. निर्धनता का क्या अर्थ है?

उत्तर– गरीबी अथवा निर्धनता का अर्थ उस स्थिति से है, जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में असमर्थ रहता है।

निर्धनता एक आर्थिक स्थिति है, किन्तु यह एक सामाजिक पद को भी प्रकट करती है क्योंकि एक व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध सामाजिक श्रेणी और वर्ग से भी है। गरीबी

Scanned with OKEN Scanner

और अमीरी तुलनात्मक शब्द है। साधारण भाषा में गरीबी का अर्थ आर्थिक असमानता, आर्थिक पराश्रितता और आर्थिक अकुशलता से लिया जाता है। गरीबी को केवल आर्थिक अभाव के रूप में प्रकट करना इसका संकुचित अर्थ है।

निर्धनता की परिभाषा विभिन्न समाजों में (देशों) भिन्न-भिन्न प्रकार से दी गई हैं, फिर भी इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना है। जैसे—अमेरिका में निर्धनता की धारण भारत से बिल्कुल ही अलग होगी, क्योंकि अमेरिका में साधारण व्यक्ति कहीं अधिक ऊंचे जीवन स्तर पर रह रहा है। गरीबी की कुछ परिभाषायें इस प्रकार दी गयी हैं—

गिलिन और **गिलिन** के अनुसार, "गरीबी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति या तो अपर्याप्त आय अथवा मूर्खतापूर्ण व्यय के कारण अपने जीवन-स्तर को इतना ऊंचा नहीं रख पाता कि उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बनी रह सके और उसको तथा उस पर आश्रितों को अपने समाज के स्तरों के अनुसार उपयोगी ढंग से कार्य करने के योग्य बनाये रखा जा सके।"

वीवर लिखते हैं, "गरीबी एक ऐसे जीवन स्तर के रूप में परिभाषित की जा सकती है जिसमें स्वास्थ्य और शरीर सम्बन्धी क्षमता नहीं बनी रहती।"

डॉ. योगेश अटल ने गरीबी को तुलनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय आय से वंचित रहने के रूप में परिभाषित किया है। आप लिखते हैं, "गरीबी की अवधारणा का सम्बन्ध सापेक्ष रूप से वंचित रहने के तथ्य से है।"

जे. डी. गोडार्ड के अनुसार—"निर्धनता उन वस्तुओं का अभाव या अपर्याप्त पूर्ति है जो एक व्यक्ति तथा उसके आश्रितों को सुस्वस्थ एवं कर्मठ बनाये रखने के लिये आवश्यक है।"

गरीबी आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी एक सापेक्ष शब्द है। जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह गरीब है तो इसका अर्थ यह है कि वह उन सभी वस्तुओं को नहीं खरीद सकता है जिनकी वह इच्छा करता या पसन्द करता है। अतः वस्तुओं को चुनने एवं पसन्द करने की सीमा के रूप में भी गरीबी को परिभाषित किया जा सकता है। आय की दृष्टि से गरीब लोगों की आय इतनी ही होती है कि वे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं को ही जुटा पाते हैं, सुविधाओं और ऐश्वर्य की वस्तुओं को नहीं।

प्रश्न 2. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं?

उत्तर— **वैश्वीकरण का अर्थ**—आज विश्व में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। ये परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, तकनीकी तथा शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में दिखाई देता है। वास्तव में वैश्वीकरण विश्व के विभिन्न देशों में परस्पर अन्तःक्रिया (Interaction) की प्रक्रिया है। यह अन्तःक्रिया विचारों, सामाजिक मूल्यों, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राजनीति तथा तकनीकी आदि सभी क्षेत्रों में हो रही है और इसका कारण है कि सूचना व तकनीकी के क्षेत्र में विकास। वैश्वीकरण के संदर्भ में परिभाषा निम्नलिखित है—

1. **नाइट (Knight)** के अनुसार, **"वैश्वीकरण तकनीकी, वित्त, व्यापार, ज्ञान मूल्यों तथा विचारों की सीमा पार तक बढ़ते प्रवाह के साथ संबंध रखता है।"** ("Globalization refers to the increasing flow of technology, finance, trade knowledge, value and ideas across the boarders.")
2. **लैचनर (Lechner)** के अनुसार, **"वैश्वीकरण का अर्थ है वैश्विक संबंधों का विस्तार, सामाजिक जीवन का विश्व स्तर पर संगठन तथा विश्व चेतना का विकास।"** ("Globalization is the expansion of global linkages, the organization of social life on a global scale and growth of a global consciousness.)

प्रश्न 3. नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत वैश्वीकरण के सन्दर्भ में शिक्षा के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत वैश्वीकरण के संदर्भ में शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Education according to new education Policy in Reference to Gloabalization)–

Scanned with OKEN Scanner

(i) विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास (All round development of a student)
(ii) अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास (To develop the spirit of international understanding)
(iii) छात्रों में वैज्ञानिक तथा लोकतांत्रिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना (To inculcate scientific and democratic attitudes among the students)
(iv) विश्व बंधुत्व की भावना का विकास करना (To develop the spirit of world fraternity)
(v) छात्रों के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना (To develop the moral and spiritual values among the student)
(vi) सामाजिक न्याय एवं धर्म निरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्धता का विकास करना (To develop the spirit of adherence to social justice and secularism)
(vii) मानसिक एवं शारीरिक श्रम के प्रति आदर की भावना का विकास करना (To inculcate the spirit of respect for mental and physical labour)
(viii) राष्ट्र अखंडता एवं उसके सम्मान के प्रति त्याग की भावना (To develop the spirit renunciation for the integration of the country and upholding its respect)
(ix) जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास (To develop the healthy attitude towards life)
(x) अनजानी तथा विपरीत परिस्थितियों से मुकाबले के लिए आत्मविश्वास का विकास करना (To develop self development to face unknown and adverse situations)
(xi) देश के सामाजिक सांस्कृतिक, भौतिक, आर्थिक एवं तकनीकी वातावरण के प्रति चेतना का विकास करना (To develop consciousness regarding social cultural physical economical and technological environment of the country.)
(xii) विद्यार्थियों में निज भावना का विकास (To develop the feeling of self)

प्रश्न 4. तनाव या प्रतिबल का क्या अर्थ है?

उत्तर– तनाव (Stress) या प्रतिबल आधुनिक समाज की एक बहुत बड़ी समस्या है। आधुनिक शोधों से लगभग यह तय है कि 75 से 80% रोगों का कारण तनाव है, यहाँ तक कि कैंसर एवं हृदय रोग जैसे जानलेवा रोगों पर तनाव अपनी छाप छोड़ चुका है। अगर, दफ्तर में काम समय से पूरा नहीं होता, दफ्तर में देरी या दफ्तर से घर जल्दी आना (अर्थात) किसी भी कार्य का मनुष्य की इच्छा के अनुसार नहीं होना तनाव कहलाता है। मनोवैज्ञानिकों ने तनाव की परिभाषा अपने-अपने ढंग से इस प्रकार की है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव (Stress) को उद्दीपक (Stimuls) कारकों के रूप में समझा है और कहा कि कोई भी परिस्थिति या घटना जो मनुष्य को असाधारण अनुक्रिया (कार्रवाई) करने के लिए मजबूर करती है, तनाव कहलाता है! कोई भी घटना जैसे नौकरी छूट जाना, घर-परिवार, खास मित्र की मृत्यु, दुर्घटना तथा अन्य प्रकार की हानियाँ "तनाव" उत्पन्न करती हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को अनुक्रिया (Response) के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है। यहाँ पर कठिन परिस्थितियों में मनुष्य द्वारा की गई दैहिक अनुक्रियाएं जैसे–चिन्ता, क्रोध, आक्रामकता इत्यादि, (नींद न आना, रक्त चाप में बढ़ोत्तरी) दिखलाता है तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य तनाव में है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हंस सेली ने तनाव को एक अनुक्रिया के रूप में परिभाषित किया है "तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकतानुसार किए गए अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है।"

Scanned with OKEN Scanner

मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जो दोनों दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक और न सिर्फ मानता है बल्कि दोनों (उद्दीपक तथा अनुक्रिया) का मिश्रण मानता है। इसके अनुसार कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जो सभी व्यक्तियों के लिए तनाव उत्पन्न करती हैं और कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ या घटनाएँ होती हैं जो कुछ ही व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न करती हैं।

प्रश्न 5. तनाव की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– विशेषताएँ या स्वरूप

1. "तनाव" सामान्यतः जीवन की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं या नकारात्मक घटनाओं से होता है। इस सच्चाई से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि तनाव स्वीकारात्मक घटनाओं से भी होता है, जैसे किसी उच्च कुल में शादी होना, बहुत बड़ा पुरस्कार या इनाम पाना इत्यादि। इनको हम स्वीकारात्मक तनाव (Positive-stress) कहते हैं। स्वीकारात्मक तनाव को पूस्ट्रेस (Peustress) तथा नकारात्मक तनाव को डिसस्ट्रेस (Distress) की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार तनाव को एक बहुअयामीय प्रक्रिया कहा गया है।
2. "तनाव" में जो परिस्थितियाँ, घटनाएँ आदि होती हैं। (जिन से तनाव पैदा होता है) ये सभी मनुष्य के बस की बात नहीं होती हैं। अगर मनुष्य इन घटनाओं, परिस्थितियों को नियंत्रण में कर लेता है तो तनाव कम हो जाता है।
3. तनाव में मनुष्य मानसिक तथा शारीरिक रूप (दोनों तरह) Disturbance का अनुभव करता है। इसमें मनोवैज्ञानिक तथा दैहिक दोनों तरह की अनुक्रियाएं होती हैं।
4. तनाव थोड़े समय तक भी रह सकता है, तथा लम्बे समय तक भी चल सकता है। यह बहुत कुछ तनाव उत्पन्न करने वाली घटनाओं पर निर्भर करेगा।

प्रश्न 6. विभिन्नता तथा विविधता के क्या कारण है?

उत्तर– विभिन्नता तथा विविधता के कारण (Causes of Difference and Diversity)—इस प्रकार हैं :

1. **प्राचीन वर्ण व्यवस्था :** प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्गों में बांटा गया था। इनमें ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया था तथा शूद्रों को निम्न। उनका कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना बताया गया था। इस व्यवस्था का प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। संविधान द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिए जाने के बावजूद आज भी अनेक लोग अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों के साथ अछूतों जैसा व्यवहार करते हैं। अन्य तथाकथित उच्च जातियों के लोग इन जातियों में विवाह सम्बन्ध बनाने से कतराते हैं।
2. **लड़की के सम्बन्ध में हमारे पुराने विचार :** प्राचीन काल से ही यहाँ लड़कों को लड़कियों की तुलना में अधिक महत्त्व दिया जाता था। प्रत्येक व्यक्ति यहाँ पुत्र की कामना करता है क्योंकि यह माना जाता है कि पुत्र के बिना व्यक्ति की गति नहीं होती। इसलिए आज भी लड़कियों के जन्म पर अनेक परिवारों में शोक छा जाता है और लड़कों के जन्म पर खुशी। लड़की को एक बोझ समझा जाता है और अनेक परिवारों में उनके खान-पान तथा शिक्षा आदि पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। लड़कियों को लड़कों जैसी आजादी भी नहीं दी जाती। गाँव या शहर में उच्च शिक्षा की व्यवस्था न होने से अनेक लड़कियाँ उससे वंचित रह जाती हैं। बचपन में वह अपने पिता के संरक्षण में रहती है, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करता है ऐसी हमारी मान्यता है। इस प्रकार लड़कियाँ सम्बन्धी हमारे विचार असमानता का कारण है।
3. **प्रान्तीयता :** भारत में विभिन्न प्रांत हैं। प्रत्येक प्रांत की अपनी अलग संस्कृति है। प्रत्येक प्रांत के वासी अपनी शिक्षा, जीवन-शैली तथा भाषा को दूसरे प्रांतों से अच्छा मानते हैं। वे

Scanned with OKEN Scanner

दूसरे प्रांतों की संस्कृति के विभिन्न पहलुओं की आलोचना करने में भी नहीं हिचकिचाते। इससे असमानता की स्थिति पैदा होती है।

4. **धार्मिक विविधता :** भारत में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं। प्रत्येक धर्म में अलग-अलग संप्रदाय हैं। असमानता की स्थिति तब उत्पन्न हो जाती है जब प्रत्येक धर्म को मानने वाले या किसी धर्म के किसी संप्रदाय के लोग अपने धर्म या संप्रदाय को दूसरों की तुलना में श्रेष्ठ बताते हैं तथा दूसरे को निम्न दृष्टि से देखते हैं।
5. **राजनैतिक दल :** देश में असमानता की स्थिति के लिए राजनैतिक दल भी उत्तरदायी हैं। वे जाति, धर्म तथा भाषा के नाम पर वोट मांगते हैं तथा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए लोगों में आपसी मतभेदों को बढ़ावा देते हैं। ये दल भोले-भाले लोगों के मन में एक दूसरे के प्रति नफरत के बीज बो देते हैं।
6. **अंग्रेजी शासन का प्रभाव :** अंग्रेजों ने भारत में फूट के जो बीज बोए उनका प्रभाव आज समाज में आपसी भेदभाव व असमानता के रूप में दखने को मिल रहा है। भले ही आज हम स्वतंत्र हैं, संविधान द्वारा यहाँ प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्ष व समाजवादी व्यवस्था की स्थपना का संकल्प किया गया है पर हम अभी भी जाति व धर्म के नाम पर बंटे हुए हैं।
7. **मानवीय मूल्यों में गिरावट :** प्राचीन भारतीय संस्कृति हमें विश्व परिवार का संदेश देती है व सबके मंगल की कामना करती है पर आज यहाँ मानवीय मूल्यों में गिरावट आती जा रही है। छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण हम आपस में झगड़ने लगे हैं। इससे मतभेद उभरते हैं व असमानता पैदा होती है।
8. **धनी व निर्धन वर्ग में बढ़ता अंतर :** आज भारत में धनी एवं निर्धन के बीच का अंतर बढ़ता जा रहा है। एक ओर ऐसा वर्ग है जिसे जीवन की न्यूनतम सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं दूसरी ओर ऐसे लोग हैं जो विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं। यद्यपि नवीन आर्थिक सुधारों का उद्देश्य इनके बीच के अंतर को कम करना था पर, उनका कोई अनुकूल प्रभाव दिखाई नहीं दे रहा। विषमता बढ़ रही है। आर्थिक केंद्रीकरण, निर्धनता, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, मूल्यवृद्धि तथा उत्पादन के साधनों के अनुचित वितरण आदि कारणों से भी अर्थिक क्षेत्र में असमानता बढ़ रही है। धनी वर्ग निर्धनों का शोषण कर रहा है जिससे उनकी स्थिति दयनीय बनी हुई है।

प्रश्न 7. किशोर बालक सम्बन्धों की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– किशोर बच्चों में कार्यपरक संबंधों की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं–

1. **पूर्व क्रिया या प्रतिक्रिया (Proactivity)–**इससे अभिप्राय है बालकों की आवश्यकताओं को बिना किसी शर्त के पूरा करना, उन्हें प्यार देना, उनके प्रति लगाव दिखाना, उनकी पहचान आदि करना।
2. **जीतना (Win)–**किसी दूसरे की आवश्यकताओं का अतिक्रमण न करके उन्हें पूरा करना, सीमाओं के भीतर रहकर सहयोग के प्रोत्साहन के लिए, बिना दूसरों की आज्ञापालन करके या लोगों की चापलूसी करने की बजाए विभिन्न विकल्पों (Alternatives) को प्रस्तुत करने की योग्यता।
3. **सफलता के लिए सहायता करना (Success Oriented)–**बालकों को स्पष्ट निर्देश देकर, कुछ स्टैन्डर्ड या सीमाएं निश्चित करके अवसर प्रदान करने, आयु के अनुसार व्यवहारों और अनुक्रियाओं का आग्रह करके, पाठ्यक्रम और सीखने की शैलियों की आवश्यकता पर बल देकर बच्चे की सहायता करने की योग्यता।
4. **सकारात्मकता (Positivity)–**साकारात्मकता बालक की योग्यता और उसके व्यवहार में अंतर करने की योग्यता है। बालक के लिए पुरस्कार-केन्द्रित वातावरण उत्पन्न करना, सकारात्मक

Scanned with OKEN Scanner

सम्प्रेषण की योग्यता तथा हास्य-भाव (Sense of Human) को बनाए रखने की योग्यता।

5. **दोहरे मापदंड नहीं (No Double Standards)**–इसमें वयस्क को स्वीकार्य बच्चे के साथ अन्तर्क्रिया और सम्प्रेषण करने की योग्यता शामिल होती है।
6. **उत्तरदायित्व (Responsibility)**–इसके अन्तर्गत अन्य लोगों को उत्तरदायी बनाए बिना स्वयं भावनाओं के लिए उत्तरदायित्व लेना, भावनाओं को आहत न होने देना तथा द्वंद (Conflicts) को हल करना आदि शामिल हैं।
7. **सहायता की भावना (Supportiveness)**–इसमें शामिल हैं–बालक की समस्याओं या भावनाओं के प्रति स्वीकृति, सहायता के साथ अनुक्रिया करना तथा बालक की भावनाओं को बाहर निकालने का रास्ता सुझाना इत्यादि। इसी में शामिल हैं–बालक की समस्याओं को सुलझाने की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी लेना या समाधान के सुझाव देना।

प्रश्न 8. परवरिश तथा पालन-पोषण में क्या अन्तर है? परवरिश के पक्षों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– परवरिश और पालन-पोषण में अंतर (Difference Between Parenting and Child Rearing Practices)–बालक की परवरिश और पालन-पोषण में भी अंतर होता है। परवरिश के अन्तर्गत माता-पिता के उदाहरणीय व्यवहारों की विशेषताओं और उत्तरदायित्वों पर बल दिया जाता है। दूसरी ओर पालन-पोषण क्रियाओं (Child Rearing Practices) में बालकों को प्रशिक्षण क्रिया या उनके पालन-पोषण तथा माता-पिता के साथ अन्तर्क्रिया पर बल दिया जाता है। (In parenting, emphasis is on the responsibility and qualities of examplary behaviours of parents, while in child-rearing practices the emphasis is on the act of training or bringing up of children and the interaction between parent and child.)

परवरिश के पक्ष (Aspects of Parenting)–परवरिश की सम्पूर्ण प्रक्रिया में हम निम्नलिखित पक्षों को सम्मिलित कर सकते हैं–

(i) सामाजिक विकास और संवेगात्मक समर्थन।
(ii) शारीरिक देखभाल।
(iii) सामाजिक कौशल और शिष्टाचार।
(iv) नैतिक और आध्यात्मिक विकास।
(v) आर्थिक सहायता।
(vi) शिक्षा पर खर्चा और बीमा करना।
(vii)चिकित्सीय देखभाल करना, सुरक्षा और आश्रय (Shelter) प्रदान करना।
(viii)आदर्श और मूल्य-प्रणाली से अवगत कराना।

इस प्रकार उपरोक्त क्षेत्रों या पक्षों में माता-पिता बच्चों की सहायता करके उन्हें पालते हैं तथा वैधानिक रूप से समाज के वयस्क सदस्य के रूप में विकसित होने में सहायता प्रदान करते हैं।

प्रश्न 9. पृथक्करण के सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभावों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– सकारात्मक रूप से, पृथक्करण के बहुत से लाभ भी होते हैं। जैसे–

(i) बालक की तत्काल सुरक्षा होती है।
(ii) माता-पिता के व्यवहारों की सीमा निर्धारित होती है।
(iii) बालक को विश्वस्त किया जा सकता है कि समाज उसकी सुरक्षा करेगा।
(iv) माता-पिता अस्थाई रूप से बच्चों की देख-रेख के भार से मुक्त महसूस करते हैं।
(v) बच्चों के लिए आवश्यक परिवर्तनों के लिए सोचने या विचार करने का अवसर मिल जाता है।

नकारात्मक प्रभाव के रूप में अध्ययन यह बताते हैं कि बच्चों को उनके परिवारों से दूर करने से उनके विकास की गति में हस्तक्षेप या रुकावट पैदा होती है। यदि पृथक्करण बार-बार होता है तो

Scanned with OKEN Scanner

बालक के साथ घनिष्ठ संबंधों में रुकावट पैदा होगी। पृथक्करण से उत्पन्न नकारात्मक प्रभाव ये हो सकते हैं–

(i) सामाजिक-नैतिक अपरिपक्वता।
(ii) अपर्याप्त सामाजिक कुशलता।
(iii) संज्ञानात्मक और भाषायी विकास में विलम्ब।
(iv) मनोवृत्ति विकार (Mood Disorders) उत्पन्न होना।
(v) निम्न आत्म-सम्मान।

प्रश्न 10. क्रैच के लाभ तथा हानियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– **क्रैच के लाभ (Advantages of Creche)–**

1. क्रैच में आयु–अनुसार खिलौने व अन्य सामान उपलब्ध हो जाता है।
2. क्रैच में बच्चा विश्राम कर सकता है तथा वहां पर उद्दीपन प्रदान करने वाला वातावरण मिल जाता है।
3. क्रैच पर नजर रखना माता-पिता के लिए आसान होता है।
4. बच्चे को क्रैच में डालने के बाद माता-पिता की चिंता समाप्त हो जाती है।
5. बच्चा क्रैच में अपनी आयु वाले बच्चों के साथ अंतर्क्रिया करता है तथा आत्म-विश्वासी बनता है।

क्रैच की हानियाँ (DIsadvantages of Creche)–

1. अधिकतर क्रैच रजिस्टर्ड नहीं होते और न ही वे निर्धारित मापदंडों का अनुसरण करते हैं।
2. क्रैच विशेष समय के बाद बंद हो जाते हैं। अतः शिफ्टों में कार्य करने वालों के लिए उपयोगी नहीं।
3. बीमार बच्चों से सम्पर्क हो सकता है जिस कारण आपका बच्चा भी बीमार हो सकता है।
4. जिस प्रकार की देखभाल आपके बच्चे को चाहिए, कई बार कोई क्रैच वैसी सुविधा प्रदान कराने में असफल रहता है।
5. कई बार आपके बच्चे के बीमार होने पर आपको छुट्टी लेनी पड़ सकती है या सामानांतर व्यवस्था करके रखनी पड़ेगी।

प्रश्न 11. कक्षा का वातावरण कितने प्रकार का हो सकता है?

उत्तर– कक्षा का वातावरण तीन प्रकार का हो सकता है–

1. **प्रजातंत्रात्मक वातावरण (Democratic Environment)**–इस प्रकार के वातावरण में अध्यापक और विद्यार्थी यह निश्चित कर लेते हैं कि उन्हें कक्षा में क्या कुछ करना है? इन कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों की कुछ विशेषताएं देखने को मिलती हैं–कक्षा में अन्य विद्यार्थियों में आपस में मैत्रीपूर्ण संबंधों का होना, आपस में सहयोग की भावना आदि।
2. **निरंकुशवादी वातावरण (Authoritarian Environment)**–इस प्रकार के वातावरण के अन्तर्गत कक्षा में अध्यापक ही सब कुछ होता है। कक्षा की सभी क्रियाओं के बारे में अध्यापक ही सभी निर्णय लेता है। ऐसे विद्यार्थी निष्क्रय, विद्रोही प्रवृत्ति के होते हैं। ऐसी परिस्थिति में विद्यार्थी अध्यापक की अनुपस्थिति में कुछ भी कार्य करने में असमर्थ होता है। इसमें सहयोग की अपेक्षा आपसी विरोध अधिक होता है।
3. **स्वतंत्रात्मक वातावरण (Independent Environment)**–इसमें अध्यापक विद्यार्थियों को पूरी छूट दे देता है। विद्यार्थी के सुझावों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। लेकिन व्यावहारिक रूप से ऐसी कक्षाएं देखने को बहुत कम मिलती हैं।

प्रश्न 12. विद्यार्थियों के प्रति अध्यापक का क्या उत्तरदायित्व है?

उत्तर– **अध्यापक का उत्तरदायित्व (Teacher's Responsibility)**–विद्यार्थियों के संदर्भ में आते ही अध्यापक के कुछ कर्तव्य निश्चित हो जाते हैं। विद्यार्थी अध्यापकों पर अत्यधिक भरोसा करते

Scanned with OKEN Scanner

हैं, इसलिए ये कर्तव्य और भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। अध्यापक के निम्न कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व सामने आते हैं–

(i) अध्यापक विद्यार्थी-अध्यापक संबंध में एकता की भावना (Sense of Integrity) रखें।

(ii) अध्यापक अपनी सीमाएं या स्टैन्डर्ड निश्चित करें।

(iii) अध्यापक को बच्चों का उत्साहवर्धन करते रहना चाहिए, क्योंकि उत्साहवर्धन करने वाले और व्यापक व्याख्या करने वाले अध्यापक का बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बहुत सख्त और दोष ढूंढ़ने वाले अध्यापकों का अपेक्षाकृत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

(iv) अध्यापक अपने व्यवहार द्वारा सकारात्मक गुणों का प्रदर्शन करें जो कि बच्चों के बाद के जीवन को बहुत प्रभावित करते हैं। अध्यापक को 'रोल मॉडल' (Role Model) के रूप में सभी बच्चे देखते हैं।

(v) अध्यापक द्वारा प्रयुक्त सम्प्रेषण और अभिव्यक्ति के तरीके भी बच्चों को प्रभावित करते हैं, जैसे–आवाज की तीव्रता या टोन (Tone), चेहरे के हाव-भाव इत्यादि। बच्चे इन चीजों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं।

(vi) मूलरूप से अध्यापक विद्यार्थी संबंध विश्वास, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन का संबंध होता है। ऐसे संबंध एक बार बन जाने पर कई वर्षों तक निरंतर प्रभावित करते रहते हैं।

प्रश्न 13. सहयोग की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर– सहयोग की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) सहयोग एक सामाजिक प्रक्रिया है।

(ii) सहयोग में दो या अधिक व्यक्ति या समूह संगठित होते हैं।

(iii) फिर वे संगठित होकर समान उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्य करते हैं या प्रयत्न करते हैं।

(iv) ऐसा देखा गया है कि सहयोग करने वाले व्यक्ति या समूह अधिकतर लक्ष्य की प्राप्ति तक ही प्रयास करते हैं।

(v) व्यक्तियों और समूहों के मध्य सहयोग के दौरान सम्बन्ध अच्छे या मधुर होते हैं।

(vi) ये सम्बन्ध स्थायी भी हो सकते हैं।

(vii) यही सहयोग सामाजिक जीवन को जन्म देता है।

(viii) इसी सहयोग के परिणामस्वरूप व्यक्तियों और समूहों को संतोष या संतुष्टि की प्राप्ति होती है।

(ix) सहयोग के परिणामस्वरूप ही जटिल से जटिल कार्य सरल हो जाते हैं।

प्रश्न 14. द्वंद्व तथा प्रतिस्पर्धा में क्या सम्बन्ध है?

उत्तर– **द्वंद्व और प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा में संबंध (Relation Between Competition and Conflict)**–जब विभिन्न समूह किसी प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा में एक-दूसरे के सामने आते हैं तब उनकी रुचियों में द्वंद्व पैदा हो जाता है। इस प्रकार के द्वंद्व के परिणामस्वरूप अन्तःसमूह तनाव (Inter-group Tension) पैदा होता है और फिर हिंसा जन्म लेती है।

विभिन्न समूहों में व्यक्तियों का प्रवेश विभिन्न कारणों से होता है। इन समूहों में सभी मिलकर कार्य करते हैं। लेकिन ऐसी इकट्ठे की स्थिति में द्वंद्व की संभावनाएं हमेशा जीवित रहती हैं। ऐसा द्वंद्व किसी एक व्यक्ति और एक समूह में हो सकता है या फिर दो या अधिक समूहों में हो सकता है।

आमतौर पर द्वंद्व (Conflict) नकारात्मक प्रभाव ही डालते हैं लेकिन इस बात से यह भी अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए कि 'द्वंद्व' हमेशा बुरे ही होते हैं। हल्का-सा द्वंद्व तो समूह की उपलब्धि या निष्पादन में वृद्धि करता है। द्वंद्व से नए विचारों को उद्दीपन (Stimulation) मिलता है। मैत्रीपूर्ण प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की जा सकती है तथा टीम की प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सकता है।

Scanned with OKEN Scanner

जब किसी समूह की आवश्यकताएं और व्यक्ति की आवश्यकताओं में मतभेद की स्थिति होती है तब ये द्वंद्व पैदा होते हैं।

हर समाज में दो समूह अवश्य होते हैं जिनका आधार भाषा, व्यवसाय या धर्म होता है। इन समूहों में द्वंद्व अकसर शक्तिशाली होते हैं। वर्तमान में इस प्रकार के द्वंद्वों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। ऐसे द्वंद्व युद्ध का रूप भी ले लेते हैं।

प्रश्न 15. द्वंद्व के कारणों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– **द्वंद्वों के कारण (Causes of Conflicts)**–ये द्वंद्व क्यों होते हैं, इसके मूल कारण निम्नलिखित हैं–

1. **परिवार (Family)**–द्वंद्व का एक स्रोत (Source) परिवार को माना जाता है। परिवार के सभी सदस्यों में भिन्नता अवश्य होती है। इन भिन्नताओं के कारण भी द्वंद्व उत्पन्न होते हैं। आमतौर पर बच्चों का किशोरावस्था तक का सफर आराम से कटता है, लेकिन किसी व्यवसाय में जाने पर उन्हें विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
2. **मूल प्रवृत्तियां (Basic Instincts)**–व्यक्ति में दो मूल प्रवृत्तियां होती हैं–जीवन मूल प्रवृत्ति (Errors) और मृत्यु मूल प्रवृत्ति (Thanates)। ये दोनों मूल प्रवृत्तियां एक-दूसरे की विरोधी हैं। इनमें असंतुलन पैदा होने पर द्वंद्व (Conflicts) पैदा होने शुरू हो जाते हैं और समायोजन संबंधी समस्याएं पैदा होने लगती हैं।
3. **व्यक्तिगत असफलताएं (Personal Failures)**–व्यक्तिगत असफलताओं के परिणामस्वरूप हीन भावनाएं पैदा होती हैं और इन हीन भावनाओं के परिणामस्वरूप द्वंद्वों (Conflicts) की उत्पत्ति होती है।
4. **संस्कृति (Culture)**–संस्कृति का फैलाव (Expansion) भी होता है जो कि द्वंद्व का कारण बनता है जब एक संस्कृति के लोग अपनी उस संस्कृति के अनुसार चलते हैं तथा अन्य व्यक्ति दूसरी संस्कृति को पसंद करते हैं तो दूसरी संस्कृति का पहली संस्कृति में यह प्रचलन भी व्यक्तियों में द्वंद्व का कारण बन सकता है।
5. **आर्थिक कठिनाइयां (Economic Problems)**–वैवाहिक जीवन में आर्थिक परेशानियां बढ़ जाती हैं जिनके कारण द्वंद्व विकसित होने लगते हैं, जिन्हें दूर करना अति आवश्यक है। वरना जीवन भर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

प्रश्न 16. आक्रामकता के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– **आक्रामकता के प्रकार (Types of Aggression)**–आक्रामकता या आक्रामक व्यवहार विभिन्न प्रकार का हो सकता है। ये विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं :-

1. **शारीरिक आक्रामक व्यवहार (Physical Aggressive Behaviour)**–इस प्रकार के व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्ति अपने शारीरिक बल का प्रयोग करके दूसरे व्यक्ति को हानि या कष्ट पहुंचाता है। उदाहरणार्थ- हाथों से, घूंसों से दूसरे व्यक्ति को पीटना, दाँतों से काटना आदि। चाकू से मारना या घायल करना या अन्य किसी शस्त्र से क्षति पहुंचाना इसी वर्ग की आक्रामकता के अन्तर्गत आते हैं।
2. **मौखिक आक्रामक व्यवहार (Verbal Aggressive Behaviour)** :– इस प्रकार के आक्रामक व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्ति मौखिक आक्रामक व्यवहार का ही प्रयोग करता है। जैसे दूसरों की कटु आलोचना करना, छींटाकसी करना, धमकी देना, किसी को बेइज्जत करना।
3. **प्रत्यक्ष आक्रामक व्यवहार (Direct Aggressive Behaviour)** :– इस प्रकार के आक्रामक व्यवहार के अन्तर्गत व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से लक्ष्य-व्यक्ति के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है तथा उसे हानि पहुंचाने का कष्ट करता है।

Scanned with OKEN Scanner

4. **अप्रत्यक्ष आक्रामक व्यवहार (Indirect Aggressive Behaviour) :–** यह वह आक्रामक व्यवहार होता है जिसमें लक्ष्य-प्राप्ति के प्रति अप्रत्यक्ष रूप से आक्रामक व्यवहार किया जाता है। जैसे- अधीनस्थ कर्मचारी अपने अधिकारी के विषय में बातचीत के माध्यम से अप्रत्यक्ष ढंग से आक्रामकता का प्रदर्शन करना।
5. **सक्रिय आक्रामकता (Active Aggression) :–** इस प्रकार की आक्रामकता के अन्तर्गत व्यक्ति सक्रिय होकर नियत से लक्ष्य-व्यक्ति (Target) को क्षति पहुंचाने का प्रयास करता है और लक्ष्य-व्यक्ति बचने का प्रयास करता है।
6. **निष्क्रय आक्रामकता (Passive Aggression) :–** निष्क्रय आक्रामकता के अन्तर्गत आक्रामक व्यक्ति लक्ष्य-व्यक्ति (Target) की सामान्य दिनचर्या में रुकावटें पैदा कर क्षति पहुंचाने का प्रयास करता है। जैसे- कोई ऑफिसर अपने अधीन किसी कर्मचारी की पदोन्नति में जानबूझ कर कोई न कोई अड़चन पैदा करता है।
7. **संवेग-आधारित आक्रामकता (Emotion-based Aggression) :–** संवेग-आधारित आक्रामक क्रोध के संवेग के अन्तर्गत दूसरे व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार से नुकसान पहुंचाने का प्रयास करता है तथा दूसरा व्यक्ति उससे बचने का प्रयास करता है।
8. **नैमित्तिक आक्रामकता (Instrumental Aggression) :–** इस प्रकार की आक्रमकता को प्रलोभन-आक्रामकता (Incentive Aggression) का नाम भी दिया गया है। इस प्रकार की आक्रामकता नियत से तो की जाती है लेकिन यहाँ प्राथमिक लक्ष्य आत्म-रक्षा (Self Protection) या किसी अन्य लक्ष्य की प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ कोई मुक्केबाज दूसरे मुक्केबाज को क्षति पहंचाता है। पहले मुक्केबाज का लक्ष्य पुरस्कार प्राप्त करना होता है।

प्रश्न 17. मादक द्रव्य व्यसन का क्या अर्थ है?

उत्तर– **मादक द्रव्य व्यसन का अर्थ (Meaning of Drug Abuse)**–मादक द्रव्य व्यसन शब्द का तात्पर्य है मादक पदार्थों पर शारीरिक निर्भरता (Physical dependence)। शारीरिक निर्भरता से तात्पर्य है कि मादक पदार्थों के निरन्तर प्रयोग से शरीर उन पदार्थों की उपस्थिति से अपना सामंजस्य कर लेता है और यदि इन का प्रयोग नहीं किया जाता है तो शरीर को दर्द, बेचैनी और रुग्णता महसूस होती है। दूसरे शब्दों में, मादक द्रव्य व्यसन वह दशा है जिसमें शरीर को कार्य करते रहने के लिये मादक पदार्थ के प्रयोग की आवश्यकता महसूस होती है। यदि मादक पदार्थों का प्रयोग बन्द कर दिया जाता है तो संचालन में बाधा पैदा होती है।

इस प्रकार से मादक द्रव्य का अर्थ है "शरीर का मादक पदार्थों के विषैले प्रभावों (Toxic effect) पर आश्रित इतना हो जाना कि उसके बिना वह नहीं रह पाता है।" *(Addiction to a drug means that the body becomes so dependent to the toxic effect of the drug that one cannot do without it.)*

इस प्रकार मादक द्रव्य व्यसन की चार विशेषतायें हैं :

1. इसमें मादक पदार्थ ग्रहण करने की शरीर द्वारा तीव्र इच्छा या आवश्यकता व्यक्त की जाती है जिसे वह हर सम्भव साधन द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।
2. इसमें खुराक की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की प्रवृत्ति होती है।
3. मादक पदार्थों के प्रभावों पर मानसिक एवं शारीरिक निर्भरता पैदा होती है।
4. इसका व्यक्ति एवं समाज पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

अवैध मादक पदार्थों का उपयोग या वैध मादक पदार्थों का दुरुपयोग मादक पदार्थों का दुष्प्रयोग (Drug abuse) कहलाता है। जिससे शारीरिक मानसिक हानि होती है। इसके अन्तर्गत धुम्रपान, गांजा, हशीश, हेरोइन, कोकोइन, L.S.D. मार्फिन के इन्जेक्शन एवं शराब आदि का प्रयोग सम्मिलित हैं। इन्हें कई बार 'High on speed' या 'Trip' या 'Getting, Kicks' जैसे शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया जाता है।

◆◆◆

Scanned with OKEN Scanner